स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवीकी पवित्र स्मृतिमें तत्सुपुत्र साहू शान्तिप्रसादजी द्वारा

संस्थापित

भारतीय ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमालाके अन्तर्गत प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड़, तमिल आदि प्राचीन भाषाओंमें उपलब्ध आगमिक, दार्शनिक, पौराणिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक आदि विविध-विषयक जैन-साहित्यका अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन तथा उसका मूल और यथासम्भव अनुवाद आदिके साथ प्रकाशन हो रहा है। जैन भण्डारोंकी सूचियाँ, शिलालेख-संग्रह, विशिष्ट विद्वानोंके अध्ययन-ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन-साहित्य ग्रन्थ भी इसी ग्रन्थमालामें प्रकाशित हो रहे हैं।



ग्रन्थमाला सम्पादक

डॉ हीरालाल जैन, एम. ए., डी. लिट्.

डॉ. आ. ने. उपाध्ये, एम. ए., डी. लिट्



प्रकाशक

भारतीय ज्ञानपीठ

प्रधान कार्यालय ३६२०।२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली–६

प्रकाशन कार्यालय . दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी–५

मुद्रक सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी–५



स्थापना फाल्गुन कृष्ण ९, वीर नि० २४७० ● विक्रम स० २००० ● १८ फरवरी, १९४४



स्व० मूर्तिदेवी, मातेश्वरी सेठ शान्तिप्रसाद जैन

भारतीय ज्ञानपीठ

JÑĀNAPĪṬHA MŪRTIDEVĪ GRANTHAMĀLĀ · Sanskrit Grantha No 41

PURUDEVACAMPŪ

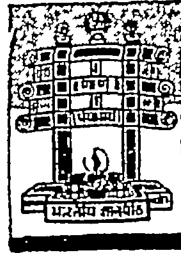
of

MAHĀKAVI ŚRĪMAD ARHADDĀSA

[Edited with a Vāsantī Sanskrit Commentary, Hindī Translation]

by

Pt. Pannalal Jain, Sāhityācārya



BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪṬHA PUBLICATION

VĪRA SAMVAT 2498 V. SAMVAT 2029 : 1972 A. D

First Edition : Price Rs. 21/-

BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪTHA MŪRTIDEVĪ

JAIN GRANTHAMĀLĀ

FOUNDED BY

SĀHU SHĀNTIPRASĀD JAIN

IN MEMORY OF HIS LATE BENEVOLENT MOTHER

SHRĪ MŪRTIDEVĪ

IN THIS GRANTHAMĀLĀ CRITICALLY EDITED JAIN ĀGAMIC, PHILOSOPHICAL, PAURĀNIC, LITERARY, HISTORICAL AND OTHER ORIGINAL TEXTS AVAILABLE IN PRĀKṚTA, SAMSKṚTA APABHRAMŚA, HINDI, KANNAḌA, TAMIL, ETC, ARE BEING PUBLISHED IN THEIR RESPECTIVE LANGUAGES WITH THEIR TRANSLATIONS IN MODERN LANGUAGES AND CATALOGUES OF JAIN BHANDARAS, INSCRIPTIONS, STUDIES OF COMPETENT SCHOLARS & POPULAR JAIN LITERATURE ARE ALSO BEING PUBLISHED



General Editors

Dr Hiralal Jain, M A., D. Litt.

Dr. A N Upadhye, M A., D Litt.



Published by

Bharatiya Jnanapitha

Head office 3620/21 Netaji Subhash Marg, Delhi-6

Publication office Durgakund Road, Varanasi-5



Founded on Phalguna Krishna 9, Vira Sam 2470, Vikrama Sam 2000, 18th Feb, 1944

प्रधान सम्पादकीय

संस्कृत रचनाओकी अनेक शैलियाँ और विधाएँ है, जैसे काव्य, नाटक, चरित, पुराण, कथा, आख्यायिका, स्तोत्र, गीत तथा मुक्तक आदि। इन सबका तीन वर्गों मे विभाजन किया जाता है, गद्य, पद्य और मिश्र। मिश्र रचना-शैली प्राचीनतम ब्राह्मणोमें पायी जाती है। उदाहरणार्थ, ऐतरेय ब्राह्मणकी शुन शेप कथा गद्यमें रचित होनेपर भी उसमें एक सौसे अधिक पद्यात्मक गाथाएँ आयी है। इस शैलीका प्रयोग पालि भाषाकी जातक कथाओमें और पश्चात् पचतन्त्र, हितोपदेश जैसी रचनाओमें बहुलतासे हुआ। नाटकमें भी गद्य और पद्य दोनोका प्रयोग हुआ। किन्तु यहाँ गद्य और पद्यका अपना-अपना विशिष्ट स्थान बन गया। यहाँ कथात्मक या वार्तालाप भाग गद्यमे और उसका सार अथवा उपदेशात्मक, भावात्मक या रसात्मक अग पद्यमें रचे गये जिससे कि वे सरलतापूर्वक स्मरण रखे जा सकें एव सभा-गोष्ठी आदिमे अपनी बातकी पुष्टिके लिए सुभाषित रूपमे सुनाये जा सके। इन्हे जो जितना स्मरण रख सके वह उतना ही सभा-चातुर विद्वान् माना जाने लगा।

किन्तु जब पद्य व गद्य रचनाओमे कलात्मकताकी मात्रा बढ़ी, तब उनके उक्त प्रकार क्षेत्रोका बँटवारा नियत न रह सका। अश्वघोष और कालिदाससे प्रारम्भ होकर भारवि, माघ और श्रीहर्ष तक महाकाव्य शैलीने अर्थ-गाम्भीर्यके साथ छन्द, रस, भाव, अलकार आदिमें अति कृत्रिम रूपसे विकास किया। गद्य रचना भी पीछे न रही और सुबन्धु तथा बाणने उसे भी इतना पुष्ट और कलात्मक बना दिया कि उसे भी महाकाव्यके समकक्ष स्थान प्राप्त हो गया। उक्त प्रसिद्ध कृतियोके रचयिताओका कौशल दोमें-से किसी एक ही क्षेत्रमे पाया जाता है, पद्य या गद्य।

स्वाभाविक था ऐसी प्रतिभाओंका भी उदित होना जो एक ही कृतिमे अपने गद्य और पद्य दोनो प्रकारके रचना-कौशलकी अभिव्यक्ति करना चाहें। ऐसी रचनाएँ चम्पूके रूपमें सम्मुख आयी। इनका नाम चम्पू क्यो पडा यह अभी तक एक रहस्य ही है। संस्कृत धातुओ और व्याकरणसे इस नामकी कोई व्युत्पत्ति समझमे नही आती। चम्पूकाव्य-कर्ताओने भी उसे नही समझाया। बहुत सम्भव है यह आर्यभाषाका शब्द न होकर द्राविड भाषा का हो ?

सबसे प्रथम दण्डीने अपने काव्यादर्शमे चम्पूकी परिभाषा की "गद्य-पद्यमयी काचित् चम्पूरित्यभि-धीयते" अर्थात् "ऐसी कोई विशेष रचना जो गद्य और पद्यमय हो चम्पू कहलाती है"। यह सातवी शतीके लगभगकी परिभाषा है। किन्तु जो चम्पू रचनाएँ उपलभ्य है वे दशवी शतीसे पूर्वकी कोई नही है। सर्व-प्रथम रचना त्रिविक्रम भट्टकी नलचम्पू और दूसरी सोमदेवसूरिकी यशस्तिलकचम्पू है। वे दोनो ही कवि दशवी शतीके पूर्वार्धमें हुए। प्रथम कृतिके विषयमे डॉ कीथका मत है कि उसका पद्य साधारण कोटि का है (His verses are no more than mediocre) किन्तु उनके मतानुसार द्वितीय कृति सुरुचि और सद्बुद्धिपूर्ण है (He is a poet of taste and good sense)। अन्य क्षेत्रोके अनुसार इस साहित्यिक शाखाका भी जैन कवियोने अच्छा विकास किया जिसका कुछ विवरण इस ग्रन्थकी प्रस्तावनामें दिया गया है। इस शृखलामे अन्तिम रचना है अर्हद्दास कृत प्रस्तुत पुरुदेवचम्पू।

दशवी शतीकी उक्त दो रचनाओसे प्रारम्भ होकर चम्पूकाव्योकी बडी बाढ आयी और आगामी सात-आठ शतियोमें दो सौसे भी अधिक चम्पू रचे गये। (डॉ छविनाथ त्रिपाठीने अपनी 'चम्पूकाव्यका आलोचनात्मक एव ऐतिहासिक अध्ययन' नामक कृतिमें २४५ चम्पूकाव्योकी सूची दी है)। अति आधुनिक चम्पूओमे उल्लेखनीय है शकर-चेतो-विलासचम्पू जिसमें शकर नामक कविने उन महाराज चेतसिहको अपना नायक बनाया है जो लार्ड वारन हेस्टिंग्स सम्बन्धी इतिहासमें प्रसिद्ध हुए।

चम्पूकाव्यके इस आठ सौ वर्षके इतिहासमें प्रस्तुत रचना पुरुदेवचम्पूका स्थान मध्यमे अर्थात् १३-१४वी शतीके लगभग आता है। यहाँ तथा अपनी अन्य दो रचनाओं 'मुनिसुव्रत काव्य' तथा 'भव्य-कण्ठाभरण'मे कर्ता अर्हद्दासने अपने विषयमें इतना ही कहा है कि वे आशाधरसूरिकी रचनाओंसे बहुत

लाभान्वित हुए थे। ये आशाधर निस्सन्देह वे ही सागार व अनगार धर्मामृत आदि अनेक ग्रन्थोके रचयिता है जो शहाबुद्दीन बादशाहके अत्याचारोसे त्रस्त हो अपनी जन्मभूमि माडलगढ (सपादलक्ष, राजस्थान) को छोड मालवाकी धारा नगरी और अन्तत नलकच्छ नामक ग्राममे वि स. १२५० के लगभग जा बसे थे। उनके उल्लेखसे प्रस्तुत ग्रन्थकर्ताकी यहाँ पूर्व कालावधि तो सिद्ध हो जाती है, किन्तु इससे कितने काल पश्चात् वे हुए इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होता, क्योकि उन्होने यह कही नही कहा कि वे आशाधरके साक्षात् शिष्य थे। अर्हद्दासकी रचनामे हमे चम्पूकाव्यके उच्चतम विकासका स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। कविने स्वय अपनी रचनाको "चञ्चत्कोमल-चारु-शब्द-निचयै पत्रै प्रकामोज्ज्वला" अर्थात् 'लहराते हुए कोमल और सुन्दर शब्दावलिरूपी पत्रोसे नितान्त उज्ज्वल' कहा है जो उसके अवलोकनसे यथार्थ प्रतीत होता है।

पुरुदेवचम्पूका मूलपाठ आजसे लगभग पचास वर्षों पूर्व माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला (क्र २७) मे प्रकाशित हुआ था। इस ग्रन्थमालाके सस्थापक सम्पादक स्वर्गीय प नाथूराम प्रेमीने अपना यह ध्येय बनाया था कि अप्रकाशित, अन्धकारमे पडे हुए सस्कृत-प्राकृत ग्रन्थोको कमसे कम मूलरूपमे अवश्य प्रकाशित करा दिया जाये। और इस प्रकार उन्होने सैकडो अज्ञात छोटी-बडी रचनाओको प्रकाशमे लानेका असाधारण श्रेय प्राप्त किया। प्रस्तुत रचनाका सम्पादन उसी प्रकाशनके आधारसे हुआ है। एक अन्य हस्तलिखित प्रतिसे भी पाठान्तर लिये गये हैं।

इस काव्यका विषय प्रथम जैन तीर्थंकर वृषभनाथ, आदिनाथ या पुरुदेवका चरित्र है। इसकी विशेपता यह है कि जैन साहित्यके अतिरिक्त वैदिक साहित्यमे भी इसका कुछ विवरण मिलता है। वेदोमे ऋषियोमे भिन्न ऐसे मुनियोके व उनकी साधनाओंके उल्लेख मिलते है जो नग्न रहते थे, अत जिन्हें 'वातरशन' कहा गया है। महापुराणानुसार वातरशन दिगम्बरका पर्यायवाची है। यही नही अनेक वैदिक पुराणोमे तो वृषभका चरित्र भी वर्णित पाया जाता है। और वह मुख्य बातोमे जैन मान्यतासे मेल भी खाता है। किन्तु इसका तात्पर्य यह नही कि वेदोंमे जहाँ भी वृषभ अथवा अन्य कोई समान शब्द आवे उसे जैन तीर्थंकरका नामवाची ही मान लिया जाये। वृषभका अर्थ बैल भी होता है और विशेपणरूपसे श्रेष्ठके अर्थमे उसका प्रयोग प्राचीनतम वेद रचनाओसे लेकर आज तक पाया जाता है। अत प्रसगपर भलीभाँति विचार कर जब तक अपने अभीष्ट अर्थकी अच्छी तरह पुष्टि न हो जाये तब तक उसे वैसा माननेकी शीघ्रता नही करना चाहिए। अपुष्ट कल्पनासे न केवल उस स्थलके वास्तविक ज्ञानका अभाव तथा लेखकका पूर्वाग्रह सिद्ध होता है, किन्तु जहाँ उसकी सार्थकता है उसके विषयमे भी विद्वानोकी उपेक्षा-दृष्टि बन जाती है।

पुरुदेवचम्पू एक उत्कृष्ट सस्कृत काव्य है। चरित्र-नायक आदिनाथका जीवन भी बडा ही रोचक और उपदेशप्रद है। अपनी पद्य रचनामे यह ग्रन्थ भारवि और माघ, तथा गद्यमे सुबन्धु और बाणकी कृतियोसे तुलनीय और प्रभावित है। समासोकी प्रचुरता व श्लेषादि अलकारोकी बहुलताके कारण उसके रस और भावका माधुर्य सहज हाथ नही लगता। इस कठिनाईको दूर करने हेतु अनुभवी व सिद्धहस्त विद्वान् प पन्नालालजी साहित्याचार्यने उसपर सुबोध सस्कृत टीका भी लिखी और हिन्दी अनुवाद भी किया। इसके लिए वे हमारे तथा समस्त सस्कृत-प्रेमियोके धन्यवादके पात्र हैं। बडा कठिन होता ऐसी रचनाओको उक्त सामग्री सहित प्रकाशमे लाना, यदि ज्ञानपीठके सस्थापक व सचालक इस कार्यमे विशेष उदार दृष्टि न रखते तथा धर्मकी गरिमाको अर्थसे अधिक महत्त्वशाली न समझते। इस हेतु हम श्री शान्तिप्रसादजी, उनकी पत्नी रमाजी तथा ज्ञानपीठके मन्त्री लक्ष्मीचन्द्रजीका बडा आभार मानते हैं।

— *ही ला जैन*
आ ने उपाध्ये

लाभान्वित हुए थे। ये आशाधर निस्सन्देह वे ही सागार व अनगार धर्मामृत आदि अनेक ग्रन्थोके रचयिता है जो शहाबुद्दीन बादशाहके अत्याचारोसे त्रस्त हो अपनी जन्मभूमि माडलगढ़ (सपादलक्ष, राजस्थान) को छोड मालवाकी धारा नगरी और अन्तत नलकच्छ नामक ग्राममे वि स १२५० के लगभग जा बसे थे। उनके उल्लेखसे प्रस्तुत ग्रन्थकर्ताकी यहाँ पूर्व कालावधि तो सिद्ध हो जाती है, किन्तु इससे कितने काल पश्चात् वे हुए इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होता, क्योकि उन्होने यह कही नही कहा कि वे आशाधरके साक्षात् शिष्य थे। अर्हद्दासकी रचनामे हमे चम्पूकाव्यके उच्चतम विकासका स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। कविने स्वय अपनी रचनाको "चञ्चत्कोमल-चारु-शब्द-निचयै पत्रै प्रकामोज्ज्वला" अर्थात् 'लहराते हुए कोमल और सुन्दर शब्दावलिरूपी पत्रोसे नितान्त उज्ज्वल' कहा है जो उसके अवलोकनसे यथार्थ प्रतीत होता है।

पुरुदेवचम्पूका मूलपाठ आजसे लगभग पचास वर्षों पूर्व माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला (क्र २७) मे प्रकाशित हुआ था। इस ग्रन्थमालाके सस्थापक सम्पादक स्वर्गीय प नाथूराम प्रेमीने अपना यह ध्येय बनाया था कि अप्रकाशित, अन्धकारमे पडे हुए सस्कृत-प्राकृत ग्रन्थोको कमसे कम मूलरूपमे अवश्य प्रकाशित करा दिया जाये। और इस प्रकार उन्होंने सैकडो अज्ञात छोटी-बडी रचनाओको प्रकाशमे लानेका असाधारण श्रेय प्राप्त किया। प्रस्तुत रचनाका सम्पादन उसी प्रकाशनके आधारसे हुआ है। एक अन्य हस्तलिखित प्रतिसे भी पाठान्तर लिये गये हैं।

इस काव्यका विषय प्रथम जैन तीर्थंकर वृषभनाथ, आदिनाथ या पुरुदेवका चरित्र है। इसकी विशेषता यह है कि जैन साहित्यके अतिरिक्त वैदिक साहित्यमे भी इसका कुछ विवरण मिलता है। वेदोमे ऋषियोसे भिन्न ऐसे मुनियोके व उनकी साधनाओके उल्लेख मिलते हैं जो नग्न रहते थे, अत जिन्हे 'वातरशन' कहा गया है। महापुराणानुसार वातरशन दिगम्बरका पर्यायवाची है। यही नही अनेक वैदिक पुराणोमे तो वृषभका चरित्र भी वर्णित पाया जाता है। और वह मुख्य बातोमे जैन मान्यतासे मेल भी खाता है। किन्तु इसका तात्पर्य यह नही कि वेदोमे जहाँ भी वृषभ अथवा अन्य कोई समान शब्द आवे उसे जैन तीर्थंकरका नामवाची ही मान लिया जाये। वृषभका अर्थ बैल भी होता है और विशेषणरूपसे श्रेष्ठके अर्थमे उसका प्रयोग प्राचीनतम वेद रचनाओसे लेकर आज तक पाया जाता है। अत प्रसगपर भलीभाँति विचार कर जब तक अपने अभीष्ट अर्थकी अच्छी तरह पुष्टि न हो जाये तब तक उसे वैसा माननेकी शीघ्रता नही करना चाहिए। अपुष्ट कल्पनासे न केवल उस स्थलके वास्तविक ज्ञानका अभाव तथा लेखकका पूर्वाग्रह सिद्ध होता है, किन्तु जहाँ उसकी सार्थकता है उसके विषयमे भी विद्वानोकी उपेक्षा-दृष्टि बन जाती है।

पुरुदेवचम्पू एक उत्कृष्ट सस्कृत काव्य है। चरित्र-नायक आदिनाथका जीवन भी बडा ही रोचक और उपदेशप्रद है। अपनी पद्य रचनामे यह ग्रन्थ भारवि और माघ, तथा गद्यमे सुबन्धु और बाणकी कृतियोसे तुलनीय और प्रभावित है। समासोकी प्रचुरता व श्लेषादि अलकारोकी बहुलताके कारण उसके रस और भावका माधुर्य सहज हाथ नही लगता। इस कठिनाईको दूर करने हेतु अनुभवी व सिद्धहस्त विद्वान् प पन्नालालजी साहित्याचार्यने उसपर सुबोध सस्कृत टीका भी लिखी और हिन्दी अनुवाद भी किया। इसके लिए वे हमारे तथा समस्त सस्कृत-प्रेमियोके धन्यवादके पात्र हैं। बडा कठिन होता ऐसी रचनाओको उक्त सामग्री सहित प्रकाशमे लाना, यदि ज्ञानपीठके सस्थापक व सचालक इस कार्यमे विशेष उदार दृष्टि न रखते तथा धर्मकी गरिमाको अर्थसे अधिक महत्त्वशाली न समझते। इस हेतु हम श्री शान्तिप्रसादजी, उनकी पत्नी रमाजी तथा ज्ञानपीठके मन्त्री लक्ष्मीचन्द्रजीका बडा आभार मानते हैं।

- ही ला जैन
आ ने उपाध्ये

प्रस्तावना

चम्पूकाव्य का विस्तार

'गद्यपद्यमय काव्य चम्पूरित्यमिधीयते' इस लक्षणके अनुसार गद्यपद्यमिश्रित रचनासे युक्त काव्यको चम्पूकाव्य कहा है। लोगोकी अभिरुचि विभिन्न प्रकारकी होती है, कुछ लोग तो गद्य-काव्यको अधिक पसन्द करते हैं और कुछ लोग पद्य-काव्यको अच्छा मानते हैं, पर चम्पूकाव्यमे दोनोकी रुचिका ध्यान रखा जाता है इसलिए वह सबको अपनी ओर आकृष्ट करता है। महाकवि हरिचन्द्रने जीवन्धरचम्पूके प्रारम्भमे ही कहा है—

गद्यावली पद्यपरम्परा च प्रत्येकमप्यावहति प्रमोदम्।
हर्षप्रकर्षं तनुते मिलित्वा द्राग्बाल्यतारुण्यवतीव कान्ता॥

—गद्यावली और पद्यावली—दोनो ही पृथक्-पृथक् प्रमोद उत्पन्न करती है फिर यतश्च हमारी यह रचना तो दोनोसे युक्त है अत बाल्य और तारुण्य अवस्थासे युक्त कान्ताके समान अत्याह्लाद उत्पन्न करेगी इसमे सशय नही है।

चम्पूसाहित्यकी ओर जब दृष्टि डालते हैं तब सर्वप्रथम त्रिविक्रम भट्टकी **'नलचम्पू'** पर दृष्टि जा रुकती है। इसमे नल-दमयन्तीकी मनोहारिणी कथा गुम्फित की गयी है। श्लेष परिसख्या आदि अलकार पद-पदपर इसकी शोभा बढा रहे है। पदविन्यास इतना सरस और सुकुमार है कि कविकी कलाके प्रति मस्तक श्रद्धावनत हो जाता है। इसी कविकी दूसरी रचना 'मदालसाचम्पू' भी है। यह कवि ९१५ ई० मे हुआ है। इसके बाद ई० ९५९ मे आचार्य सोमदेवके **'यशस्तिलकचम्पू'**की रचना हुई है। इस चम्पूमे आचार्यने कथाभागकी रक्षा करते हुए कितना प्रमेय भर दिया है? यह देखते ही बनता है। इसके गद्य कादम्बरीसे भी चार हाथ आगे है। कल्पनाएँ अद्भुत है। कथाका सौन्दर्य ग्रन्थके प्रति आकर्षण उत्पन्न करता है। सोमदेवने प्रारम्भमे ही लिखा है कि जिस प्रकार नीरस तृण खानेवाली गायसे सरस दूधकी धारा प्रवाहित होती है उसी प्रकार जीवनपर्यन्त न्याय जैसे नीरस विषयका अध्ययन करनेवाले मुझसे यह काव्य-सुधाकी धारा बह रही है। इस ग्रन्थरूपी महासागरमे अवगाहन करनेवाले विद्वान् ही समझ सकते हैं कि आचार्य सोमदेवके हृदयमे कितना अगाध वैदुष्य भरा है। उन्होने एक जगह स्वय कहा है कि लोकवित्त्व और कवित्त्वमे समस्त ससार सोमदेवका उच्छिष्टभोजी है अर्थात् उनके द्वारा वर्णित वस्तुका ही सब वर्णन करने वाले है। इस महाग्रन्थमे आठ समुच्छ्वास है। अन्तके तीन समुच्छ्वासोमे सम्यग्दर्शन तथा उपासकाध्ययन-नाग—श्रावकाचारका कितना विस्तृत और समयानुरूप वर्णन किया है यह देखते ही बनता है। तृतीय उच्छ्वास तो राजनीतिका भाण्डार ही है।

इसके बाद महाकवि हरिचन्द्रके **'जीवन्धरचम्पू'** काव्यकी रचना हुई है। इसकी कथा वादीभसिंहकी गद्यचिन्तामणि अथवा क्षत्रचूडामणिसे ली गयी है। यद्यपि जीवन्धर स्वामीकी कथाका मूल स्रोत गुणभद्रके उत्तरपुराणमे मिलता है तथापि उसमे और इसमे कितने ही स्थलोंमे नाम तथा कथामे वैचित्र्य पाया जाता है। इसमे प्रत्येक लम्भकी कथावस्तु तथा पात्रोके नाम आदि गद्यचिन्तामणिके नामोसे मिलते-जुलते है। महाकविने इस काव्यमे भगवान् महावीरस्वामीके समकालीन क्षत्रचूडामणि श्रीजीवन्धरस्वामीकी कथा गुम्फित की है। पूरी कथा अलौकिक घटनाओसे भरी है। कथाकी रोचकता देखते हुए जब कभी हृदयमे आता है कि यदि इसका चित्रपट बन जाता तो अनायास ही एक आदर्श लोगोके सामने आ जाता।

इस ग्रन्थकी रचनामे कविने वडा कौशल दिखाया है। अलकारकी पुट और कोमलकान्त पदावली वरवश पाठकके मनको अपनी ओर आकृष्ट कर लेती हैं। मुझे तो लगता है कि कविको निसर्गसिद्ध प्रतिभा प्राप्त थी इसीलिए प्रकरणानुकूल अर्थ और अर्थानुकूल शब्दोके अन्वेषणमे उसे जरा भी प्रयत्न नही करना पडा है। कितने ही गद्य तो इतने कौतुकावह हैं कि उन्हें पढ़कर कविकी प्रतिभाका अलौकिक चमत्कार दृष्टिगत होने लगता है। नगरीवर्णन, राजवर्णन, राज्ञीवर्णन, चन्द्रोदय, सूर्योदय, वनक्रीडा, जलक्रीडा तथा युद्ध आदि महाकाव्यके समस्त वर्णनीय विषयोको कविने यथा स्थान इतना सजाकर रखा है कि देखते ही वनता है। इसके वाद जैनचम्पू ग्रन्थोमे महाकवि अर्हद्दासके **पुरुदेवचम्पू**का नम्वर आता है, इसमे श्लेपादि अलकारोकी प्रधानता है। भगवान् आदिनाथका दिव्यचरित्र, भवान्तरवर्णनके साथ-साथ उसमे अकित किया गया है। इसकी विशेषता और साज-सजावटपर आगे लिखा जायेगा।

पुरुदेवचम्पूके वाद भोजराजके **'चम्पूरामायण'** अभिनव कालिदासके *'भागवतचम्पू'* कवि कर्णपूरके **'आनन्दवृन्दावनचम्पू'**, जीव गोस्वामीके **'गोपालचम्पू'**, श्रीशेषकृष्णके 'पारिजातहरणचम्पू', नीलकण्ठ दीक्षितके **'नीलकण्ठचम्पू'**, वेंकटाध्वरीके **'विश्वगुणादर्शचम्पू'**, अनन्तकविके **'चम्पूभारत'**, केशवभट्टके **'नृसिंहचम्पू'**, रामनाथके **'चन्द्रशेखरचम्पू'**, श्रीकृष्णकविके **'मन्दारमरन्दचम्पू'** और पन्त विट्ठलके **'गजेन्द्रचम्पू'** आदि ग्रन्थ दृष्टिमे आते हैं, जिनमे लेखकोने अपनी अपूर्व प्रतिभाका परिचय दिया है। इस अल्पकाय लेखमे समग्र ग्रन्थोका परिचय दे सकना सम्भव नही है इसलिए नाममात्र देकर सन्तोष धारण किया है। इस प्रकार गद्य-पद्यात्मक चम्पूसाहित्यका वडा विस्तार है। दशम ईसवीय शतीके पूर्वकी चम्पू रचना मेरी दृष्टिमे नही आयी है।

पाठको के हाथमे **'पुरुदेवचम्पू'**का यह सुसज्जित सस्करण समर्पित करते हुए प्रसन्नता होती है। पुरुदेव, भगवान् वृपभदेवका नाम है। दक्षिण भारतमे इस नामका अव भी खूब प्रचार है। उन्हीके कथानक-को लक्ष्यमे रखकर इस चम्पूकाव्यकी रचना हुई है। इसका सम्पादन श्रीमान् प० जिनदास शास्त्री फडकुले, सोलापुरके द्वारा सम्पादित और माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला वम्बईसे प्रकाशित सस्करणके आधारपर हुआ है। इसके पाठभेदोका सकलन ऐ पन्नालाल सरस्वती भवन, व्यावरसे प्राप्त हस्तलिखित प्रतिसे हुआ है।

हस्तलिखित प्रतिका परिचय

यह प्रति श्रीमान् प हीरालालजी शास्त्रीके सौजन्यसे प्राप्त हुई थी। इसमे ८१ पत्र हैं, पत्रोका आकार ११॥। × ६ इच है। प्रतिपत्रमे १२ पक्तियाँ और प्रति पक्तिमे ४८-४९ अक्षर हैं। अक्षर सुवाच्य हैं। लेखनसम्वन्धी अशुद्धियाँ हैं। नीचे टिप्पण भी दिया गया है। दशा अच्छी है। इसका साकेतिक नाम 'क' है। यद्यपि पाठभेद अत्यन्त अल्प हैं तथापि जो है वे महत्त्वपूर्ण हैं। द्वितीय स्तवकके अन्तमे ६५ और ६६वें श्लोकके वीचमे निम्नाकित श्लोक अधिक पाया गया है—

क्रीडायुद्धे चकोराक्ष्या तया धूतायुधोऽप्यसौ।
वभूव सहसा चित्र घनचापलतामिव ॥

इस प्रतिके आधारपर मुद्रित प्रतिके पाठ शुद्ध करने तथा छूटे हुए पाठोके समावेश करनेमें वहुत सहायता प्राप्त हुई है।

कथानायक

पुरुदेवचम्पूके कथानायक भगवान् वृपभदेव हैं। वृपभदेव इस अवसर्पिणी कालके चौवीस तीर्थंकरोंमे आद्य तीर्थंकर थे। तृतीयकालके अन्तमें जव भोगभूमिकी व्यवस्था नष्ट हो चुकी थी और कर्मभूमिकी रचना-का प्रारम्भ हो रहा था तव उस सन्धिकालमें अयोध्याके अन्तिम कुलकर श्री नाभिराजके घर उनकी पत्नी मरुदेवीसे इनका जन्म हुआ था। यह जन्मसे ही विलक्षण प्रतिभाके धारक थे। कल्पवृक्षोके नष्ट हो जानेके वाद विना वोये उपजनेवाली धानसे लोगोकी आजीविका होती थी परन्तु कालक्रमसे जव वह धान भी नष्ट हो गयी तव लोग भूख-प्याससे अत्यन्त क्षुभित हो उठे और सव नाभिराजके पास जाकर 'त्रायस्व

त्रायस्व' करने लगे। नाभिराज, शरणागत प्रजाको भगवान् वृषभनाथके पास ले गये। लोगोने अपनी करुण-कथा उनके समक्ष प्रकट की।

प्रजाजनोकी विह्वल दशा देखकर भगवान्की अन्तरात्मा द्रवीभूत हो उठी। उन्होने उसी समय अवधिज्ञानसे विदेह क्षेत्रकी व्यवस्थाका स्मरण कर इस भरतक्षेत्रमें भी वही व्यवस्था चालू करनेका निश्चय किया। उन्होने असि (सैनिककार्य), मषी (लेखनकार्य, कृषि (खेती), विद्या (सगीत-नृत्यादि), शिल्प (विविध वस्तुओका निर्माण) और वाणिज्य (व्यापार)—इन छह कार्योका उपदेश दिया तथा पुरन्दर—इन्द्रके सहयोगसे देश, नगर, ग्राम आदिकी रचना करवायी। भगवान्के द्वारा प्रदर्शित छह कार्योसे लोगोकी आजीविका चलने लगी। कर्मभूमिका प्रारम्भ हो गया। उस समयकी सारी व्यवस्था भगवान् वृषभदेवने अपने बुद्धिबलसे की थी। इसीलिए यह आदिपुरुष, ब्रह्मा, विधाता आदि सज्ञाओसे व्यवहृत हुए।

पिता नाभिराजकी प्रेरणामे उन्होने कच्छ, महाकच्छ राजाओकी बहनें यशस्वती और सुनन्दाके साथ विवाह किया। नाभिराजके महान् आग्रहसे राज्यका भार स्वीकृत किया। आपके राज्यसे प्रजा अत्यन्त सन्तुष्ट हुई। कालक्रमसे यशस्वतीकी कुक्षिसे भरत आदि सौ पुत्र तथा ब्राह्मी नामक पुत्री हुई और सुनन्दाकी कुक्षिसे बाहुबली पुत्र तथा सुन्दरी नामक पुत्री उत्पन्न हुई। भगवान् वृषभदेवने अपने पुत्र-पुत्रियोको अनेक जनकल्याणकारी विद्याएँ पढायी थी। जिनके द्वारा समस्त प्रजामे पठन-पाठनकी व्यवस्थाका प्रारम्भ हुआ।

नीलाजनाका नृत्यकालमे अचानक विलीन हो जाना भगवान्के वैराग्यका कारण बन गया। उन्होने बडे पुत्र भरतको राज्य तथा अन्य पुत्रोको यथायोग्य देशोका स्वामित्व देकर प्रव्रज्या धारण कर ली। चार हजार अन्य राजा भी उनके साथ प्रव्रजित हुए थे परन्तु वे क्षुधा, तृषा आदिकी बाधा न सह सकनेके कारण कुछ ही दिनोमें भ्रष्ट हो गये। भगवान्ने प्रथमयोग छह माहका लिया था। छह माह समाप्त होनेके बाद वे आहारके लिए निकले परन्तु उस समय लोग, मुनियोको आहार किस प्रकार दिया जाता है, यह नही जानते थे। अत विधि न मिलनेके कारण आपको छह माह तक विहार करना पडा। आपका यह विहार अयोध्यासे उत्तरकी ओर हुआ और चलते-चलते आप हस्तिनागपुर जा पहुँचे।

वहाँके तत्कालीन राजा सोमप्रभ थे। उनके छोटे भाईका नाम श्रेयास था। इस श्रेयासका भगवान् वृषभदेवके साथ पूर्वभवका सम्बन्ध था। वज्रजघकी पर्यायमे वह उनकी श्रीमती नामक स्त्री था। उस समय इन दोनोने एक मुनिराजके लिए आहार दिया था। श्रेयासको जातिस्मरण होनेसे वह सब घटना स्मृत हो गयी इसलिए उसने भगवान्को देखते ही पडगाह लिया और इक्षुरसका आहार दिया। वह आहार वैशाख शुक्ला तृतीयाको दिया गया था तभीसे इसका नाम अक्षय तृतीया प्रसिद्ध हुआ। राजा सोमप्रभ, श्रेयास तथा उनकी रानियोका लोगोने बडा सम्मान किया। आहार लेनेके बाद भगवान् वनमें चले जाते थे और वहाँके स्वच्छ वायुमण्डलमें आत्मसाधना करते थे। दीर्घकालीन तपश्चरणके बाद उन्हें दिव्यज्ञान—केवलज्ञान प्राप्त हुआ। अब वह सर्वज्ञ हो गये, ससारके प्रत्येक पदार्थको स्पष्ट जानने लगे।

उनके पुत्र भरत प्रथम चक्रवर्ती हुए। उन्होने चक्ररत्नके द्वारा षट्खण्ड भरतक्षेत्रको अपने अधीन किया और राजनीतिका विस्तार कर आश्रित राजाओको राज्यशासनकी पद्धति सिखलायी। उन्होने ही ब्राह्मण वर्णकी स्थापना की। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण इस भरतक्षेत्रमें प्रचलित हुए। इनमें क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये तीन वर्ण आजीविकाके भेदसे निर्धारित किये गये थे और ब्राह्मण व्रतीके रूपमें स्थापित हुए थे। सब अपनी-अपनी वृत्तिका निर्वाह करते थे इसलिए कोई दु खी नही था।

भगवान् वृषभदेवने सर्वज्ञ दशामें दिव्यध्वनिके द्वारा ससारके पथभ्रान्त प्राणियोको हितका उपदेश दिया। उनका समस्त आर्यखण्डमें विहार हुआ। आयुके अन्तिम समय वे कैलास पर्वतपर पहुँचे और वहीसे उन्होने निर्वाण प्राप्त किया। भरत चक्रवर्ती यद्यपि षट्खण्ड पृथिवीके अधिपति थे फिर भी उसमें आसक्त नही रहते थे। यही कारण था कि जब उन्होने गृहवाससे विरक्त होकर प्रव्रज्या—दीक्षा धारण की तब अन्तर्मुहूर्तमें ही उन्हें केवलज्ञान हो गया। केवलज्ञानी भरतने भी आर्य देशोमें विहार कर समस्त जीवोको हितका उपदेश दिया और आयुके अन्तमे निर्वाण प्राप्त किया।

सुनन्दाके पुत्र बाहुबलीने भी दिग्विजयके बाद भरतके साथ हुए संघर्षसे विरक्त हो दीक्षा धारण कर ली और एक वर्ष तक खडे-खडे तपश्चरण कर केवलज्ञान प्राप्त किया। शेष भाइयोने भगवान् वृषभदेवके समवसरणमें दीक्षा ग्रहण की थी। ब्राह्मी और सुन्दरी नामक दोनो पुत्रियोने ब्रह्मचारिणी रहकर आर्यिकाके व्रत धारण किये।

भगवान् वृषभदेव और भरतका जैनेतर भारतीय साहित्यमे उल्लेख

भगवान् वृषभदेव और सम्राट् भरत इतने अधिक प्रभावशाली पुण्यपुरुष हुए हैं कि उनका जैनग्रन्थोमें तो उल्लेख आया ही है उसके अतिरिक्त वेदके मन्त्रो, जैनेतर पुराणो तथा उपनिषदो आदिमें भी उल्लेख मिलता है। भागवतमें भी मरुदेवी, नाभिराय, वृषभदेव और उनके पुत्र भरतका विस्तृत विवरण दिया है। यह दूसरी बात है कि वह कितने ही अशोमें भिन्न प्रकारसे दिया गया है। इस देशका भारत नाम भी भरत चक्रवर्तीके नामसे ही प्रसिद्ध हुआ है।

यह वृत्तान्त हमे मार्कण्डेय, कूर्म, अग्नि, वायु, ब्रह्माण्ड, वाराह, लिंग, विष्णु तथा स्कन्द इन नौ पुराणोंमें मिलता है जिसका विवरण उद्धरणों-सहित आदिपुराण प्रथम भागकी प्रस्तावना (पृ १४-१५) में दिया जा चुका है। उनके अतिरिक्त कुछ अन्य उल्लेख निम्न प्रकार हैं—

"आसीत्पुरा मुनिश्रेष्ठ भरतो नाम भूपति ।
आर्षभो यस्य नाम्नेद भारतखण्डमुच्यते ॥५॥
स राजा प्राप्तराज्यस्तु पितृपैतामह क्रमात् ।
पालयामास धर्मेण पितृवद्रञ्जयन् प्रजा ॥६॥"

—नारदपुराण, पूर्वखण्ड, अध्याय ४८

"अहोमुच वृषभ यज्ञियाना विराजन्त प्रथममध्वराणाम् ।
अपा नपातमश्विना हुवे धिय इन्द्रियेण इन्द्रिय दत्तमोज ॥"

—अथर्ववेद, का० १९।४२।४

—सम्पूर्ण पापोसे मुक्त तथा अहिंसक व्रतियोके प्रथम राजा, आदित्यस्वरूप, श्रीवृषभदेवका मैं आवाहन करता हूँ। वे मुझे बुद्धि एव इन्द्रियोके साथ बल प्रदान करें।

"अनर्वाणं वृषभ मन्द्रजिह्व बृहस्पतिं वर्धया नव्यमर्के ।"

—ऋ० म १, सू १९०, म० १

मिष्टभाषी, ज्ञानी, स्तुतियोग्य, ऋषभको पूजासाधक मन्त्रो द्वारा वर्धित करो। वे स्तोताको नही छोडते।

"एव बभ्रो वृषभचेकितान यथा देव न हृणीषे न हसि ।"

भगवान् वृषभदेव और ब्रह्मा

लोकमे ब्रह्मा नामसे प्रसिद्ध जो देव हैं वह जैन परम्परानुसार, भगवान् वृषभदेवको छोडकर दूसरा नही है। ब्रह्माके अन्य अनेक नामोमे अग्रलिखित नाम अत्यन्त प्रसिद्ध हैं— हिरण्यगर्भ, प्रजापति, लोकेश, नाभिज, चतुरानन, स्रष्टा और स्वयभू। इनकी यथार्थ सगति भगवान् वृषभदेवके साथ ही बैठती है, जैसी कि आदिपुराणकी प्रस्तावना (पृ १५) में बतलायी जा चुकी है।

ऋषभदेव और महादेव

वर्तमानमे ग्यारहवें रुद्र सात्यकिको महादेवके रूपमे माना जाने लगा है परन्तु तथ्य यह है कि प्राचीनकालमे महादेव सज्ञा भगवान् वृषभदेव की ही थी। उनका वृषभ चिह्न था, उन्होने कैलास पर्वतपर तपश्चरण कर निर्वाण प्राप्त किया था और रत्नत्रयरूप त्रिशूलके वे धारक थे। सही मायनेमे मदनका दाह भी उन्होने किया था। वे ही शकर-शान्तिके कर्ता और त्र्यम्बक—ज्ञान नेत्र सहित तीन नेत्रके धारक थे।

इनकी एकतापर प्रकाश डालने वाले, डॉ० राजकुमार साहित्याचार्य, एम० ए०, पी-एच० डी० आगरा, पं० हीरालालजी शास्त्री व्यावर और डॉ० [3] कामताप्रसादजी एम० आर० ए० एस० डी० एल० अलीगजके लेख, जो कि अनेकान्त मे प्रकाशित हैं, द्रष्टव्य है।

पुरुदेवचम्पूका आधार

इन वृषभदेवका विस्तृत चरित्र जिनसेनाचार्यने महापुराण (आदिपुराण) में लिखा है उसीके आधारपर कविवर अर्हद्दासजीने 'पुरुदेवचम्पू' की रचना की है। पुरुदेवचम्पू की पीठिका (श्लोक ९-१०) मे कविवर अर्हद्दासजी ने आचार्य जिनसेनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए लिखा है कि—

अमृत तरंगिणीके सदृश प्रसिद्ध कोमल वचन पक्तिसे युक्त तथा फैलती हुई कीर्तिमे सहित वे पूर्व कवि कल्याण करें जिन्होंने किसी अन्यके द्वारा अखण्डित ससारसम्बन्धी सन्तापको समूल नष्ट करनेवाली, आदि जिनेन्द्रकी कथारूप अमृतका स्रोत प्रकट किया है।

आदि जिनेन्द्रकी उत्कृष्ट कथाके रसमे सुपरिचित मेरी जिह्वा उन गुरुओकी स्तुति करे जिनके कटाक्ष रूप अमृतके सेचनसे मेरी सुभाषितलता सुपुष्पित हुई है।

प्रतिवादियोकी प्रगल्भतारूप उन्नत शिखरको गिरानेके लिए जो वज्रके समान समर्थ है, तथा विकसित मालती लताके कुसुम रसकी सुगन्ध सन्ततिको छोडनेवाली वाणीसे जो कदलीफल सम्बन्धी मधुर रसकी चोरीमे चतुर हैं, ऐसे श्रीमन्त जिनसेनाचार्य गुरु जयवन्त हो।

वास्तवमे जिनसेन स्वामीने महापुराणकी रचना कर जैनजगत्का महान् उपकार किया है तथा उत्तरवर्ती ग्रन्थ कर्ताओके लिए सुयोग्य सामग्री प्रदान की है।

पुरुदेवचम्पूके रचयिता कवि अर्हद्दास

पुरुदेवचम्पू प्रबन्धके रचयिता कविवर अर्हद्दासजी है। इनके द्वारा रचित पुरुदेवचम्पू, मुनिसुव्रत काव्य तथा भव्य कण्ठाभरण ये तीन ग्रन्थ उपलब्ध हैं। इन तीनोके अन्तमे इन्होंने जो सक्षिप्त प्रशस्तियाँ दी है उनमे प० आशाधरजी का बडी श्रद्धाके साथ उल्लेख किया है। यथा—

मिथ्यात्वपङ्ककलुषे मम मानसेऽस्मिन्—
आशाधरोक्तिकतकप्रसरैः प्रसन्ने।
उल्लासितेन शरदा पुरुदेवभक्त्या
तच्चम्पुदम्भजलजेन समुज्जजृम्भे ॥
—पुरुदेवचम्पू।

मिथ्यात्वकर्मपटलैश्चिरमावृते मे
युग्मे दृशो कुपथयाननिधानभूते।
आशाधरोक्तिलसदञ्जनसंप्रयोगै
स्वच्छीकृते पृथुलसत्पथमाश्रितोऽस्मि ॥६५॥
—मुनिसुव्रत काव्य।

सच्छर्यैव तेषा भवभीरवो ये गृहाश्रमस्थाश्चरितात्मधर्मा।
त एव शेषाश्रमिणा सहायधन्या स्युराशाधरसूरिवर्या ॥
—भव्यकण्ठाभरण।

इन प्रशस्तियोंके आधारपर माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला वम्बईमें प्रकाशित पुरुदेवचम्पूकी प्रस्तावनामें उसके सम्पादक श्री प० जिनदासजी शास्त्रीने यह सम्भावना प्रकट की है कि अर्हद्दासजी प० आशाधरजीके शिष्य थे। परन्तु प० के० श्रीभुजवली शास्त्री[1] और स्व० प० नाथूरामजी प्रेमीने[2] इस कल्पनामें अपनी असहमति प्रकट की है। यदि यह आशाधरजीके शिष्य हैं तो यह भी तेरहवीं विक्रम शतीके अन्तिम और चौदहवीं शतीके प्रथम चरणके विद्वान् सिद्ध होते हैं। इनके विषयकी अन्य जानकारी अप्राप्त है।

श्री प० नाथूरामजी प्रेमीने सागारधर्मकी प्रस्तावनामें मुनिसुव्रतकाव्यकी प्रशस्तिके—

धावन्कापथसभृते भववने सन्मार्गमेक पर-
त्यक्त्वा श्रान्ततरश्चिराय कथमप्यासाद्य कालादमुम्।
सद्धर्मामृतमुद्धृतं जिनवच क्षीरोदधेरादरात्
पाय पायमित श्रम सुखपथ दासो भवाम्यर्हत ॥६४॥
मिथ्यात्व कर्मपटलैश् ॥६५॥

अर्थात्—कुमार्गोंसे भरे हुए संसाररूपी वनमें जो एक श्रेष्ठमार्ग था, उसे छोडकर मैं वहुत कालतक भटकता रहा। अन्तमें वहुत थककर किसी तरह काललब्धिवश उसे फिर पाया। सो अव जिनवचनरूप क्षीर सागरसे उद्धृत किये हुए धर्मामृत (आशाधरके धर्मामृत शास्त्र ?) को सन्तोषपूर्वक पी-पीकर और विगतश्रम होकर मैं अर्हद्भगवान्का दास होता हूँ ॥६४॥

कर्म-पटलसे वहुत कालतक ढँकी हुई मेरी दोनो आँखें जो कुमार्गमें ही जाती थीं, आशाधरकी उक्तियोंके विशिष्ट अजनसे स्वच्छ हो गयी और इसलिए अव मैं सत्पथका आश्रय लेता हूँ ॥६५॥

—इन श्लोकोंके आधारपर यह अनुमान किया है कि सम्भवत यह अर्हद्दास, वह मदनकीर्ति यति-पति जान पडते हैं जिनके विषयमें राजशेखर सूरिके 'चतुर्विंशति-प्रवन्धमें' यह उल्लेख किया गया है कि मदनकीर्ति, वादीन्द्र विशालकीर्तिके शिष्य थे। वे वडे भारी विद्वान् थे। चारो दिशाओंके वादियोंको जीतकर उन्होंने 'महाप्रामाणिक-चूडामणि' पदवी प्राप्त की थी। एकवार गुरुके निषेध करनेपर भी वे दक्षिणापथको प्रयाण कर कर्णाटकमें पहुँचे। वहाँ विद्वत्प्रिय विजयपुर नरेश कुन्तिभोज उनके पाण्डित्यपर मोहित हो गये और उन्होंने उनसे अपने पूर्वजोंके चरित्रपर एक ग्रन्थ निर्माण करनेको कहा। कुन्तिभोजकी कन्या मदनमजरी सुलेखिका थी। मदनकीर्ति पद्य रचना करते जाते थे और मदनमजरी पर्देके ओटमें वैठकर उसे लिखती जाती थी।

कुछ समयमें दोनोंके वीच प्रेमका आविर्भाव हुआ और वे एक दूसरेको चाहने लगे। जव राजाको इसका पता लगा तो उसने मदनकीर्तिका वध करनेकी आज्ञा दे दी। परन्तु जव उनके लिए कन्या भी अपनी सहेलियोंके साथ मरनेको तैयार हो गयी, तव राजा विवश हो गया और उसने दोनोका विवाह कर दिया। मदनकीर्ति अन्ततक गृहस्थ ही रहे और विशालकीर्तिके द्वारा वार-वार समझाये जानेपर भी प्रवुद्ध नही हुए।

क्या यही मदनकीर्ति ही तो कुमार्गमें ठोकरें खाते-खाते अन्तमे आशाधरकी सूक्तियोंसे अर्हद्दास न वन गये हो। मुनिसुव्रत काव्यकी प्रशस्तिके ६४वें श्लोकसे इस विचारधाराको वहुत कुछ पुष्टि मिलती है। फिर 'अर्हद्दास' यह नाम भी विशेषण जैसा ही जान पडता है। सम्भव है उनका वास्तविक नाम कुछ और ही रहा हो। एक वात यह भी विचारणीय है कि अर्हद्दासजीके ग्रन्थोंका प्रचार प्राय कर्णाटक प्रान्तमें ही रहा है जहाँ कि वे 'चतुर्विंशति प्रवन्ध' के उल्लेखानुसार सुमार्गसे पतित होकर रहने लगे थे। सत्पथपर पुन लौटनेपर उनका वही रह जाना सम्भव भी प्रतीत होता है।

---

१ देखो, मुनिसुव्रत काव्यकी प्रस्तावना।

२ देखो, सूरतसे प्रकाशित सागारधर्मामृतकी प्रस्तावना।

प्रेमीजीकी इस कल्पनाके सन्दर्भमें इतना ही लिखना है कि अन्य प्रबल प्रमाणोंके बिना उसपर विश्वास करना कठिन प्रतीत होता है।

पुरुदेवचम्पूके अन्यत्र उद्धरण

कविवर अर्हद्दासजीकी कविता प्रसाद आदि गुणोंसे परिपूर्ण तथा उपमा-रूपक आदि अलंकारोंसे अलंकृत है। पुरुदेवचम्पू तो श्लेषके चक्रमें पड़ जानेसे दुरूह हो गया है परन्तु मुनिसुव्रत काव्य, कवि की नैसर्गिक वाग्धारामें प्रवाहित होनेके कारण अपने प्रसादादि गुणोंको सुरक्षित रख सका है। इसके अलंकार भी यथास्थान शोभा पाते हैं। यही कारण है कि अलंकारचिन्तामणिमें इसके कितने ही श्लोक उदाहरणके रूपमें उद्धृत किये गये हैं। जैसे प्रथम सर्गका निम्नांकित द्वितीय श्लोक, अलंकारचिन्तामणिमें भ्रान्तिमान् अलंकारके उदाहरणमें उद्धृत किया गया है—

> चन्द्रप्रभं नौमि यदङ्गकान्ति ज्योत्स्नेति मत्वा द्रवतीन्दुकान्तः।
> चकोरयूथं पिबति स्फुटन्ति कृष्णेऽपि पक्षे किल कैरवाणि ॥२॥
> अत्र चन्द्रप्रभाङ्गकान्तौ ज्योत्स्नाबुद्धिः ज्योत्स्ना सादृश्यं विना न स्यादिति सादृश्यप्रतीतौ भ्रान्तिमदलंकारः।

—अलंकार चिन्तामणि, पृष्ठ ५३

प्रथम सर्गके निम्नांकित ३१ और ३२वें श्लोक अलंकारचिन्तामणिके पंचम परिच्छेदके इस प्रकरणमें समुद्धृत हैं—

> मुक्तागुणच्छायमिषेण तन्व्या रसेन लावण्यमयेन पूर्णे।
> नाभिह्रदे नाथनिवेशितेन विलोचनेनानिमिषेण जज्ञे ॥३१॥
> अमर्षणाया श्रवणावतंसमपाङ्गविद्युद्विनिवर्तनेन।
> स्मरेण कोपादवकृष्यमाणं रथाङ्गमुर्वीपतिराशशङ्के ॥३२॥

प्रथम सर्गका चौतीसवां श्लोक, अलंकारचिन्तामणिमें परिसंख्या अलंकारके उदाहरणमें उद्धृत किया गया है—

> श्लेषेऽपि चारुत्वातिशयरूपा परिसंख्या यथा—
> यत्रार्तवत्त्वं फलितादवीषु पलाशितान्द्रौ कुसुमेऽपरागः।
> निमित्तमात्रे पिशुनत्वमासीन्निरोष्ठ्यकाव्येष्वपवादिता च ॥८९॥

ऋतु प्राप्त आसामटवीनां आर्तवास्तासां भावः। आर्तवत्ता दुःखवतो भावश्च। द्रौ द्रुमे पर्णवत्ता मांसभक्षित्वं च। परागः पुष्परजः अपरागः सन्तोषाभावः परेषामागोऽपराधो वा। शुभाशुभ-सूचकत्वं कर्णेजपत्वं च। पश्च वश्च पवौ आदौ येषां ते पवादयः। पकारादयः ओष्ठ्यवर्णाः न सन्ति तानि अपवादीनि तेषां भावस्तत्ता निन्दा वादिता च।

—अलंकार०, पृष्ठ ९१

द्वितीय सर्गका निम्नांकित ३३वां श्लोक अलंकारचिन्तामणिमें प्रेयोऽलंकार और संसृष्टि अलंकारके उदाहरणमें समुद्धृत है—

> रहस्सु यस्याहरणे प्रवृत्ता महाबलगर्जा क्षितिपालवध्वा।
> न हि स्म कन्दर्पधनुष्प्रमुक्तशरौघदूराग्रहणा ...म् ॥३३॥
> अत्र शृङ्गाररसस्य पोषणम्। एवं रसान्तरेष्वपि योज्यम्। —पृष्ठ ९४
> उपमारूपकालंकारयोः संसृष्टिः। —पृष्ठ ९८

१४०० ई० के पूर्वार्धमें विरचित साहित्यदर्पणमें विश्वनाथ कविराजके द्वारा उद्धृत निम्न श्लोक—

> लग्नं रागावृताङ्ग्या सुदृढमिह यथैवासियष्ट्यारिकण्ठे
> मातङ्गानामपीहोपरि परपुरुषैर्या च दृष्टा पतन्ती।

इन प्रशस्तियोंके आधारपर माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला बम्बईसे प्रकाशित पुरुदेवचम्पूकी प्रस्तावनामें उसके सम्पादक श्री प० जिनदासजी शास्त्रीने यह सम्भावना प्रकट की है कि अर्हद्दासजी प० आशाधरजीके शिष्य थे। परन्तु प० के० श्रीभुजबली शास्त्री[1] और स्व० प० नाथूरामजी प्रेमीने[2] इस कल्पनामें अपनी असहमति प्रकट की है। यदि यह आशाधरजीके शिष्य हैं तो यह भी तेरहवीं विक्रम शतीके अन्तिम और चौदहवीं शतीके प्रथम चरणके विद्वान् सिद्ध होते हैं। इनके विषयकी अन्य जानकारी अप्राप्त है।

श्री प० नाथूरामजी प्रेमीने सागारधर्मकी प्रस्तावनामें मुनिसुव्रतकाव्यकी प्रशस्तिके—

धावन्कापथसभृते भववने सन्मार्गमेकं परं—
त्यक्त्वा श्रान्ततरश्चिराय कथमप्यासाद्य कालादमुम्।
सद्धर्मामृतमुद्धृतं जिनवचः क्षीरोदधेरादरात्
पायं पायमितः श्रमः सुखपथं दासो भवाम्यर्हतः ॥६४॥
मिथ्यात्वकर्मपटलैः ॥६५॥

अर्थात्—कुमार्गोंसे भरे हुए ससाररूपी वनमें जो एक श्रेष्ठमार्ग था, उसे छोड़कर मैं बहुत कालतक भटकता रहा। अन्तमें बहुत थककर किसी तरह काललब्धिवश उसे फिर पाया। सो अब जिनवचनरूप क्षीर सागरसे उद्धृत किये हुए धर्मामृत (आशाधरके धर्मामृत शास्त्र ?) को सन्तोषपूर्वक पी-पीकर और विगतश्रम होकर मैं अर्हद्भगवान्‌का दास होता हूँ ॥६४॥

कर्म-पटलसे बहुत कालतक ढँकी हुई मेरी दोनों आँखें जो कुमार्गमें ही जाती थीं, आशाधरकी उक्तियोंके विशिष्ट अंजनसे स्वच्छ हो गयीं और इसलिए अब मैं सत्पथका आश्रय लेता हूँ ॥६५॥

—इन श्लोकोंके आधारपर यह अनुमान किया है कि सम्भवतः यह अर्हद्दास, वह मदनकीर्ति यति-पति जान पड़ते हैं जिनके विषयमें राजशेखर सूरिके 'चतुर्विंशति-प्रबन्धमें' यह उल्लेख किया गया है कि मदनकीर्ति, वादीन्द्र विशालकीर्तिके शिष्य थे। वे बड़े भारी विद्वान् थे। चारों दिशाओंके वादियोंको जीतकर उन्होंने 'महाप्रामाणिक-चूडामणि' पदवी प्राप्त की थी। एकबार गुरुके निषेध करनेपर भी वे दक्षिणापथको प्रयाण कर कर्णाटकमें पहुँचे। वहाँ विद्वत्प्रिय विजयपुर नरेश कुन्तिभोज उनके पाण्डित्यपर मोहित हो गये और उन्होंने उनसे अपने पूर्वजोंके चरित्रपर एक ग्रन्थ निर्माण करनेको कहा। कुन्तिभोजकी कन्या मदनमंजरी सुलेखिका थी। मदनकीर्ति पद्य रचना करते जाते थे और मदनमंजरी पर्देके ओटमें बैठकर उसे लिखती जाती थी।

कुछ समयमें दोनोंके बीच प्रेमका आविर्भाव हुआ और वे एक दूसरेको चाहने लगे। जब राजाको इसका पता लगा तो उसने मदनकीर्तिका वध करनेकी आज्ञा दे दी। परन्तु जब उनके लिए कन्या भी अपनी सहेलियोंके साथ मरनेको तैयार हो गयी, तब राजा विवश हो गया और उसने दोनोंका विवाह कर दिया। मदनकीर्ति अन्ततक गृहस्थ ही रहे और विशालकीर्तिके द्वारा बार-बार समझाये जानेपर भी प्रबुद्ध नहीं हुए।

क्या यही मदनकीर्ति ही तो कुमार्गमें ठोकरें खाते-खाते अन्तमें आशाधरकी सूक्तियोंसे अर्हद्दास न बन गये हों। मुनिसुव्रत काव्यकी प्रशस्तिके ६४वें श्लोकसे इस विचारधाराको बहुत कुछ पुष्टि मिलती है। फिर 'अर्हद्दास' यह नाम भी विशेषण जैसा ही जान पड़ता है। सम्भव है उनका वास्तविक नाम कुछ और ही रहा हो। एक बात यह भी विचारणीय है कि अर्हद्दासजीके ग्रन्थोंका प्रचार प्रायः कर्णाटक प्रान्तमें ही रहा है जहाँ कि वे 'चतुर्विंशति प्रबन्ध' के उल्लेखानुसार सुमार्गसे पतित होकर रहने लगे थे। सत्पथपर पुनः लौटनेपर उनका वहीं रह जाना सम्भव भी प्रतीत होता है।

---

१ देखो, मुनिसुव्रत काव्यकी प्रस्तावना।
२ देखो, सूरतसे प्रकाशित सागारधर्मामृतकी प्रस्तावना।

प्रेमीजीकी इस कल्पनाके सन्दर्भमे इतना ही लिखना है कि अन्य प्रबल प्रमाणोके बिना उसपर विश्वास करना कठिन प्रतीत होता है।

पुरुदेवचम्पूके अन्यत्र उद्धरण

कविवर अर्हद्दासजीकी कविता प्रसाद आदि गुणोसे परिपूर्ण तथा उपमा-रूपक आदि अलकारोसे अलकृत है। पुरुदेवचम्पू तो श्लेपके चक्रमें पड जानेसे दुरूह हो गया है परन्तु मुनिसुव्रत काव्य, कवि की नैसर्गिक वाग्धारामे प्रवाहित होनेके कारण अपने प्रसादादि गुणोको सुरक्षित रख सका है। इसके अलकार भी यथास्थान शोभा पाते है। यही कारण है कि अलकारचिन्तामणिमें इसके कितने ही श्लोक उदाहरणके रूपमे उद्धृत किये गये है। जैसे प्रथम सर्गका निम्नाकित द्वितीय श्लोक, अलकारचिन्तामणिमे भ्रान्तिमान् अलकारके उदाहरणमें उद्धृत किया गया है—

चन्द्रप्रभ नौमि यदङ्गकान्ति ज्योत्स्नेति मत्वा द्रवतीन्दुकान्त ।
चकोरयूथ पिबति स्फुटन्ति कृष्णेऽपि पक्षे किल कैरवाणि ॥२॥
अत्र चन्द्रप्रभाङ्गकान्तौ ज्योत्स्नावुद्धि ज्योत्स्ना सादृश्य विना न स्यादिति सादृश्यप्रतीतौ भ्रान्तिमदलकार ।

—अलकार चिन्तामणि, पृष्ठ ५६

प्रथम सर्गके निम्नाकित ३१ और ३२वें श्लोक अलकारचिन्लामणिके पचम परिच्छेदके इस प्रकरणमें समुद्धृत है—

मुक्तागुणच्छायमिषेण तन्व्या रसेन लावण्यमयेन पूर्णे ।
नाभिह्रदे नाथनिवेशितेन विलोचनेनानिमिषेण जज्ञे ॥३१॥
अमर्पणाया श्रवणावतसमपाङ्गविद्युद्विनिवर्तनेन ।
स्मरेण कोपादवकृष्यमाण रथाङ्गमुर्वीपतिराशशङ्के ॥३२॥

प्रथम सर्गका चौंतीसवाँ श्लोक, अलकारचिन्तामणिमें परिसख्या अलकारके उदाहरणमे उद्धृत किया गया है—

श्लेपेऽपि चारुत्वातिशयरूपा परिसंख्या यथा—
यत्रार्तवत्व फलिताटवीपु पलाशितादौ कुसुमेऽपराग ।
निमित्तमात्रे पिशुनत्वमासीन्निरोष्ठ्यकाव्येष्वपवादिता च ॥८९॥

ऋतु प्रास आसामटवीना आर्तवास्तासा भाव । आर्तवतो दु खवतो भावश्च । द्रौ द्रुमे पर्णवत्ता मासभक्षित्व च। पराग पुष्परज अपराग सतोपाभाव परेषामागोऽपराधो वा। शुभाशुभ-सूचकत्व कर्णेजपत्व च। पश्च वश्च पवौ आदी येपा ते पवादय । पकारादय ओष्ठ्यवर्णा न एपा तानि अपवादीनि तेपा भावस्तत्ता निन्दा वादिता च।

—अलकार०, पृष्ठ ९१

द्वितीय सर्गका निम्नाकित ३३वाँ श्लोक अलकारचिन्तामणिमे प्रेयोऽलकार और ससृष्टि अलकारके उदाहरणमें समुद्धृत है—

रहस्सु वस्त्राहरणे प्रवृत्ता सहासगर्जा क्षितिपालवध्वा ।
सकोपकन्दर्पधनुष्प्रमुक्तशरौघहुकाररवा इवाभु ॥३३॥
अत्र श्रृङ्गाररसस्य पोपणम्। एव रसान्तरेष्वपि योज्यम्। —पृष्ठ ९४
उपमारसवदलकारयो ससृष्टि । —पृष्ठ ९८

१४०० ई० के पूर्वभागके विरचित साहित्यदर्पणमे विश्वनाथ कविराजके द्वारा उद्धृत निम्न श्लोक—

लग्न रागावृताङ्गचं सुदृढमिह यथैवारिकण्ठे पतन्त्या
मातङ्गान् मपीहोपरि परपुरुषैर्या च दृष्टा पतन्ती ।

तत्सक्तोऽय न किंचिद् गणयति विदित तेऽस्तु तेनास्मि दत्ता
भृत्येभ्य श्रीनियोगात् गदितुमिति गतेवाम्बुधि यस्य कीर्ति ॥
—साहित्यदर्पण, सप्तम परिच्छेद

पुरुदेवचम्पूके इस श्लोककी छायारूप है—

मातङ्गोपरि सपतन्त्यनुदिन श्यामा कृपाणीलता
सद्धाराञ्चितया तया परवशो नान्या समालोकते ।
मा भृत्येपु नियुक्तवान्निधिपतिस्तात श्रुत तेऽस्त्विति-
श्रीवार्ता गदितु ध्रुव जलनिधि यत्कीर्तिराटीकत ॥३॥
—पुरुदेव-स्तवक १०

पुरुदेवचम्पूका काव्यात्मक अन्तःपरिचय

पुरुदेवचम्पूमे दश स्तवक है। जिनमे प्रारम्भके ३ स्तवकोमे पुरुदेव भगवान् आदिनाथके पूर्वभवोका वर्णन किया गया है। शेप स्तवकोमे भगवान् आदिनाथ और उनके पुत्र भरत तथा बाहुबलीका चरित्र-चित्रण किया गया है। ग्रन्थका कथाभाग अत्यन्त रोचक है, उसपर कविने उसे अपनी कलमसे और भी रोचक बना दिया है। यही कारण है कि सस्कृत साहित्यमे इसका अनूठा स्थान माना जाता है। कविकी नयी-नयी कल्पनाओ तथा श्लेप, विरोधाभास, परिसख्या आदि अलकारोके पुटने इसके गौरवमे चार चाँद लगा दिये हैं। कितने ही श्लेप तो इतने कौतुकावह हैं कि अन्यत्र उनका मिलना असम्भव सा है। ग्रन्थका प्रत्येक भाग सरस और चुटीला है। ज्यो-ज्यो ग्रन्थ आगे बढता जाता है त्यो-त्यो उसकी भाषा और भाव-मे प्रौढता आती जाती है। इस कथनकी पुष्टिके लिए कुछ समुद्धरण आवश्यक है।

प्रारम्भमे मगलपीठिकाके तीन श्लोक देखिए, जिनमें क्रमसे वृपभजिनेन्द्र और कल्पवृक्ष, आदि-जिनेन्द्र और सूर्य तथा आद्यजिनपति और चन्द्रमाके रूपकको श्लेपका पुट देकर कितना आकर्पक बनाया गया है।

मगलपीठिकाके अन्तमे कवितारूपी लताका रूपकालकारके द्वारा अत्यन्त सुन्दर वर्णन है।

अलकानगरीके वर्णनमे श्लेषका चमत्कार देखिए—

'या खलु घनश्रीसम्पन्ना निभृतसामोदसुमनोऽभिरामा, सकलसुदृग्भि शिरसा श्लाघ्यमानमहिमा, विविधविचित्रविशोभितमालाढया, अलकाभिधानमर्हति'।

जो नगरी अलकाभिधान—अलका इस नामको (पक्षमे अलक—केश इस नामको) धारण करनेके योग्य है क्योकि यह घनश्रीसम्पन्ना—अत्यधिकलक्ष्मीसे सम्पन्न है (पक्षमें मेघके समान शोभासे युक्त है—कृष्णवर्ण है), निश्चल तथा हर्पसे भरे हुए विद्वानोसे मनोहर है (पक्षमे धारण किये हुए सुगन्धित फूलोसे मनोहर हैं, समस्त सुदृग्—विद्वान् (पक्षमें समस्त स्त्रियाँ) अपने मस्तकसे जिसकी महिमाका यशोगान करते हैं और विचित्र तथा विशोभी-तमालो—तमाल वृक्षोसे युक्त है (पक्षमें नाना रगकी सुशोभित मालाओसे सहित है।

अतिवल राजाकी मनोहरा नामक रानीका वर्णन करते हुए जो 'यस्या किल मृदुलपदयुगल गमन-कलाविलासतिरस्कृतहसकमपि विश्वस्तलालितहसक' (पृ० १४)

गद्य खण्ड दिया है उसमें विरोधाभास अलकार कितना साकार हुआ है यह देखनेके योग्य है।

राजा महाबलका वर्णन करते समय जो गद्यपक्तियाँ अवतीर्ण की हैं (पृ० १९) उन पक्तियोंमे परिसख्यालकार कितना स्पष्ट है तथा श्लेपालकारने उसे कितना विकसित किया है यह दर्शनीय है।

त्रिदशोपसेवितो य प्राज्यविराजितरुचिर्महामेरु ।
लक्ष्मीविलासगेहे जम्बूद्वीपे विभाति दीप इव

यहाँ सुमेरुके वर्णनमे रूपक और श्लिष्टोपमाका चमत्कार देखिए कितना सुखद है।

ललितागदेवकी स्वयप्रभा देवीके वर्णनमे देखिए श्लेपोपमाने कितना स्पष्ट रूप प्राप्त किया है। (देखिए श्लोक ७१–७२)

द्वितीय स्तवकमे पाणिग्रहणके लिए उद्यत श्रीमतीकी नेपथ्यरचना देखिए—(पृ ८७) जहाँ उत्प्रेक्षा, श्लेप और उपमाने कितना चमत्कार दिखलाया है।

सयोगश्रृगारके (श्लोक ६७) वर्णनमे अतिशयोक्तिका चमत्कार देखिए जहाँ उपमेयका अभाव कर मात्र उपमानको शेप रखा गया है।

इसी सन्दर्भका असगति अलकार (श्लोक ६८) भी द्रष्टव्य है।

तृतीय स्तवक (पृ १३२) मे वचनश्लेप, उपमा और परिसख्याकी महिमा देखिए।

अहमिन्द्रके वर्णन (पृ १३६) मे विरोधाभास और व्यतिरेकका सम्मिश्रण देखिए कितना सुन्दर है।

चतुर्थ स्तवकसे भगवान् वृपभदेवकी कथाका प्रारम्भ होता है। यहाँ कविने मरुदेवीके नख-शिख वर्णनमे अपनी काव्यप्रतिभाका अपूर्व प्रदर्शन किया है (श्लोक ११) मरुदेवीके नखोका वर्णन देखिए जहाँ नक्षत्र और राशियोको माध्यम बनाकर कितना सुन्दर विरोधाभास दिया है।

सस्कृतमे अब्ज शब्दके तीन अर्थ हैं कमल, चन्द्रमा और शख। यहाँ मरुदेवीके नेत्र, मुख और कण्ठका वर्णन करनेके लिए (श्लोक १३१) उन तीनोको देखिए, कितनी सुन्दरताके साथ एकत्र सँजोया है?

अयोध्यानगरीके वर्णनमे (पृ १४८) अनन्वय, श्लेप, विरोध और व्यतिरेकको किस खूबीके साथ एक साथ बैठाया है यह देख कविकी काव्यप्रतिभापर आश्चर्य प्रकट होता है।

मरुदेवीका स्वप्नदर्शन और पट्कुमारिका देवियोका विनोदोक्ति सन्दर्भ कवित्वकी दृष्टिसे बेजोड है। एक देवीकी विनोदोक्ति देखिए (श्लोक ३६) कितनी मनोरम है जहाँ आदिमे रूपयुता—सौन्दर्यसे युक्त द्राक्षावली, आदिमे 'रु' अक्षरसे युक्त होकर रुद्राक्षावली और मध्यमे अधिका सिता, ककारसे युक्त होकर सिकता बन गयी कितनी चमत्कारपूर्ण उक्ति है।

भगवान् वृपभदेवके जन्मोत्सवके प्रसगमें सुमेरुपर्वतका वर्णन करते हुए कविने जो पद्य और गद्य लिखे है उनमे उनकी काव्यप्रतिभा कितनी साकार हुई है, देखिए (श्लोक ६६–६८ व गद्य पृ १८२)।

यह सुमेरु शैलका वर्णन, कविने सौधर्मेन्द्रके द्वारा, ऐशानेन्द्र आदिको लक्ष्य कर कराया है अतः सौधर्मेन्द्रकी उक्तिका गौरव सुरक्षित रखनेका ध्यान रखा गया है।

पचम स्तवकमे जन्माभिपेकका जल लानेके लिए देवपंक्तियाँ क्षीरसागर पहुचती है उस समय श्लेपोपमा विरोध और व्यतिरेकके माध्यमसे कविने क्षीरसागरका वर्णन करनेके लिए (पृ १९१) पर जो गद्य-पक्तिया लिखी है वे बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

जिनबालक वृपभदेवका अभिपेक, इन्द्रने क्यो किया? इसकी कल्पना करते हुए कविने जो (पृ १९६) गद्यपक्तिया लिखी है वे कविकी काव्यप्रतिभाका जीता-जागता आदर्श हैं।

अभिपेकके बाद बिखरे हुए जलका तथा इन्द्रके द्वारा किये हुए ताण्डव नृत्यका वर्णन भी कविने अनुपम काव्यशैलीमें किया है। इन्द्रकृत भगवान्का स्तवन साहित्यिक दृष्टिसे बहुत महत्त्वपूर्ण है। जिनबालककी बालचेष्टाओका वर्णन, यद्यपि धर्मशर्माभ्युदयसे प्रभावित है, तथापि अपनी विशेषता पृथक् रखता है।

षष्ठ स्तवकमे भगवान् वृपभदेवकी कुमारावस्थाका वर्णन करते हुए शिखासे लेकर नख तक वर्णन किया गया है। उसमे कविकी काव्यप्रतिभाका अच्छा दिग्दर्शन हुआ है। मुखका वर्णन देखिए (श्लोक ३ व गद्य पृ. २२४) कितना कल्पनापूर्ण है।

पिता नाभिराजकी प्रार्थना स्वीकृत कर युवा वृषभदेवने यशस्वती और सुनन्दाके साथ विवाह किया। यशस्वतीने स्वप्नदर्शनपूर्वक गर्भ धारण किया। शुभमुहूर्तमें भरतको जन्म दिया। भरतका वर्णन करते हुए कविने जो आर्यायुगल (३७-३८) लिखा है उसका चमत्कार देखिए।

यशस्वतीने भरतके अनन्तर निन्यानवे पुत्र और ब्राह्मी नामक पुत्रीको भी उत्पन्न किया और सुनन्दाने बाहुबली पुत्र तथा सुन्दरी नामक पुत्रीको जन्म दिया। भगवान्ने अपने पुत्र-पुत्रियोंको अनेक प्रकारकी शिक्षा दी। कल्पवृक्षोंके नष्ट होनेपर प्रजामें संकटकी स्थिति आ गयी। नाभिराजा प्रजाजनोंको साथ लेकर भगवान् आदिनाथके पास गये। उन्होंने सबको सान्त्वना देते हुए इन्द्रके सहयोगसे कर्मभूमिकी रचना की। इन्द्रने भगवान्का राज्याभिषेक किया। राज्याभिषेकके अवसरपर सुवन्दीजनोंके मुखसे राजा वृषभदेवकी जो स्तुति की गयी है उसमें कविने कितना कौशल दिखाया है यह पद्य १३-१४ व १५ में देखिए।

बाहुबलीके सौन्दर्य और शौर्यके वर्णनमें कविकी श्लेषप्रतिभाका चमत्कार देखिए (स्तबक ६ श्लोक ४६)।

भगवान्की राज्यावस्था और राज्यशासनकी कुशलताका वर्णन करते हुए देखिए कितना श्लेषात्मक तथ्यका वर्णन हुआ है। (स्त ७, २१) श्लेषमूलक विरोधाभासका कितना सुन्दर उदाहरण है यह।

कदाचित् सभामें बैठे हुए भगवान्, नीलांजना नामक सुरनर्तकीका नृत्य देख रहे थे कि अकस्मात् उसकी आयु समाप्त हो गयी। उसका विलय देख भगवान् संसारसे विरक्त हो गये। वे संसारकी अनित्यताका विचार करने लगे। लक्ष्मीके विषयमें उनका हृदय क्या सोचने लगा यह श्लोक २६ में देखिए।

लौकान्तिकदेव आकर भगवान्के वैराग्यचिन्तनका समर्थन करते हैं। अन्तमें भगवान्ने भरतका राज्याभिषेक कर चार हजार राजाओंके साथ निर्ग्रन्थ दीक्षा धारण कर ली। देवोंने भगवान्का दीक्षा कल्याणक किया।

नमि और विनमिके लिए धरणेन्द्रने विजयार्धका राज्य प्रदान किया। हस्तिनापुरके राजा सोमप्रभ और श्रेयांसने भगवान्को एक वर्षकी तपस्याके बाद इक्षुरसका आहार दिया। एक हजार वर्षकी मौन तपस्याके बाद भगवान्ने केवलज्ञान प्राप्त किया। इन्द्रका आदेश पाकर कुबेरने समवसरणकी रचना की। कविवर अर्हद्दासजीने समवसरणके वर्णनमें अपनी काव्यप्रतिभाको बड़ी कुशलतासे साकार किया है। समवसरण सभा जिस वनचतुष्टयसे सुशोभित थी उसे श्लिष्टोपमालंकारसे कैसा अलंकृत किया गया है, यह देखनेके योग्य है (पृ ३०१)।

समवसरणमें विराजमान वृषभजिनेन्द्रका स्तवन इन्द्रके मुखसे देखिए कितना सुन्दर बन पड़ा है। स्तोता और स्तुत्य—दोनोंकी अनुरूपतापर कविने पूर्ण ध्यान रखा है (स्त ८, श्लोक ३८–४१)।

वीतराग जिनेन्द्रकी दिव्यध्वनि सुनकर भरत राजा सम्यग्दर्शनकी विशुद्धताको प्राप्त हुए तथा समस्त सभा परम धैर्यको प्राप्त हुई। दिव्यध्वनिके अनन्तर भगवान्का आर्यखण्डमें विहार हुआ। अन्तिम समय वे कैलासपर्वतपर आरूढ़ हुए।

समवसरणसे वापस आकर भरतने पुत्र जन्म तथा चक्ररत्नकी प्राप्तिका उत्सव किया। शरद् ऋतुमें सम्राट् भरतने दिग्विजयके लिए प्रस्थान किया। उस सन्दर्भमें शरद् ऋतुका वर्णन देखिए कितना सुन्दर हुआ है (स्त ९, श्लोक ३)।

सम्पूर्ण नवम स्तबक, सेनाके वैभव और दिग्विजयकी विविध घटनाओंके वर्णनसे भरा हुआ है। [illegible] धारा प्रारम्भसे लेकर अन्त तक [illegible] प्रवाहित [illegible] हुई है। जान पड़ता है कविका हृदय अनन्त [illegible] है। सारी दिशाओंमें भ्रमण करनेके बाद चक्रवर्ती भरत कैलास पर्वतपर पहुँचते [illegible] जिनेन्द्रके दर्शन कर कृतकृत्य हो जाते हैं।

[illegible] चक्ररत्नने प्रवेश नहीं किया तब पुरोहितके द्वारा उसका कारण जानकर [illegible] गया। बाहुबलीके द्वारा [illegible] अधीनता स्वीकृत न किये जानेपर मन्त्रियोंके [illegible] और [illegible] हुए। तीनों युद्धोंमें प्राप्त पराजयसे खिन्न होकर

भरतने बाहुबलीपर चक्ररत्न चला दिया। परन्तु वह भी उनका कुछ कर न सका, अन्तमें उन्होने ससारसे विरक्त होकर दीक्षा धारण कर ली। भरतने षट्खण्ड भरतक्षेत्रका राज्य शासन सँभाला।

अन्तमे श्री वृषभ जिनेन्द्रका कैलास पर्वतसे निर्वाण हुआ, देवोने निर्वाण कल्याणकका उत्सव किया।

इस प्रकार इस अल्पकाय काव्यमें कविने वडी कुशलताके साथ सम्पूर्ण आदिपुराणका समावेश किया हैं और इस खूवीसे किया है कि पुराणका रूप बदलकर एक काव्यकी सजीव प्रतिमा सामने खडी कर दी हैं।

पुरुदेवचम्पूपर अन्य कवियोका प्रभाव (आदान-प्रदान)

तुलनात्मक पद्धतिसे अध्ययन करनेपर प्रतीत होता है कि अर्हद्दासजीने वाणभट्टकी कादम्बरी, तथा हरिचन्द्रके धर्मशर्माभ्युदय और जीवन्धरचम्पूका अच्छी तरह आलोडन करनेके वाद ही पुरुदेवचम्पूकी रचना की है। जिनसेनका आदिपुराण तो इसका मूलावार है ही अतः उसकी कल्पनाओ और कही-कहीपर शव्दोका सादृश्य पाया जाना सव तरह सम्भव है। कादम्बरीकी निम्नाकित पक्तियाँ देखिए—

यस्या च सन्ध्यारागारुणा इव सिन्दूरमणिकुट्टिमेषु, प्रारब्धकमलिनीपरिमण्डला इव मरकतवेदिकासु, गगनपर्यस्ता इव वैडूर्यमणिभूमिषु, तिमिरपटलविघटनोद्यता इव कृष्णागुरुधूममण्डलेपु, अभिभूततारकापङ्क्तय इव मुक्ताप्रालम्वेपु, विकचकमलचुम्बिन इव नितम्बिनीमुखेपु, प्रभातचन्द्रिकामध्यपतिता इव स्फटिकभित्तिप्रभासु, गगनसिन्धुतरङ्गावलम्बिन इव सितपताकाशुकेषु, पल्लविता इव सूर्यकान्तोपलेपु, राहुमुखकुहरप्रविष्टा इवेन्द्रनीलवातायनविवरेपु विराजन्ते रविगभस्तय ।

—कादम्बरी, निर्णयसागर वम्बईका अष्टम सस्करण, पृष्ठ ११६–११७

इसका पुरुदेवचम्पूकी 'यत्र च जिनभवने' आदि (पृ ६५) पङ्क्तियोसे तुलना कीजिए।

कादम्बरीका विलासवती-वर्णन देखिए—

अथ तस्य चन्द्रलेखेव हरजटाकलापस्य, कौस्तुभप्रभेव कैटभारातिवक्ष स्थलस्य, वनमालेव मुसलायुधस्य, वेलेव सागरस्य, मदलेखेव दिग्गजस्य, लतेव पादपस्य, पुष्पोद्गतिरिव सुरभिमासस्य, चन्द्रिकेव चन्द्रमस , कमलिनीव सरस , तारापङ्क्तिरिव नभस , हसमालेव मानसस्य, चन्दनवनराजिरिव मलयस्य, फणामणिशिखेव शेषस्य, भूपणमभूत्त्रिभुवनविस्मयजननी जननीव वनिताविभ्रमाणा सकलान्त पुरप्रधानभूता महिषी विलासवती नाम।

—कादम्बरी उक्त सस्करण, पृष्ठ १३५।

इसके साथ पुरुदेवचम्पूका 'सा खलु बिम्बौष्ठी' आदि मरुदेवीवर्णन देखिए (पृ. १४१)।

कुछ सन्दर्भ धर्मशर्माभ्युदयके देखिए—

प्रस्थैरदु स्थै कलितोऽप्यमान- पादैरमन्दै प्रसृतोऽप्यगेन्द्र ।
मुक्तो वनैरप्यघ्न श्रिताना य प्राणिना सत्यमगम्यरूप ॥ (ध० श० १०।५)

इसका 'गान्धिलविष्टपे' आदि वर्णन (पृ. ८) से तुलना कीजिए—

अवकरनिकुरम्वे मारुतेनापनीते
कुरुत घनकुमारा साधु गन्धोदवृष्टिम्।
तदनु च मणिमुक्ताभङ्गरङ्गावलीभि–
र्विरचयत चतुष्क सत्वर दिक्कुमार्य. ॥
स्वयमयमिह धत्ते छत्रमीशाननाथ–
स्तदनुगतमृगाक्ष्यो मङ्गलान्युत्क्षिपन्तु।
जिन सविधममर्त्या नर्तितावालवाल–
व्यजनविधिसनाथा सन्तु सानत्कुमारा ॥

वलिफलकुसुमस्रग्गन्धधूपाक्षताद्यैः
प्रगुणयत विचित्राण्यन्नपात्राणि देव्यः ।
सलिलमिह पयोधेरेष्यति व्यन्तराद्या
पटुपटहमृदङ्गादीनि तत्सज्जयन्तु ॥
प्रवणय वरवीणा वाणि रीणासि कस्मा-
त्किमपरमिह ताले तुम्बरो त्व वरोऽसि ।
इह हि भरतरङ्गाचार्यविस्तार्यरङ्ग-
स्त्वरयसि नटनार्थं किं न रम्भामदम्भाम् ॥
समुचितमिति कृत्य जैनजन्माभिषेके
त्रिदशपतिनियोगाद् ग्राहयन्ताग्रहेण ।
कलितकनकदण्डोद्दण्डदोर्दण्डचण्ड
सुरनिवहमवादीद् द्वारपाल कुवेर ॥ (कुलकम्) (ध० श० ८।५–९)

इसे प्रस्तुत चम्पूके 'तदनु जिनेन्द्रजन्माभिषेक' आदि (पृ १८८) से मिलाइए ।

अभ्युपात्तकमलैः कवीश्वरैः सश्रुत कुवलयप्रसाधनम् ।
द्रावितेन्दुरसराशिसोदर सच्चरित्रमिव निर्मल सर ॥
पीवरोच्चलहरिव्रजोद्धुर सज्जनक्रमकर समन्तत ।
अब्धिमुन्नतरवारिमज्जितक्ष्माभृत पतिमिवावनीभुजाम् ॥

यह 'निजवल्लभमिव' (पृ० १५४) आदि पक्तियोसे तुलनीय है ।

सिक्त सुरैरित्थमुपेत्य विस्फुरज्जटालवालोऽथ स नन्दनद्रुम ।
छाया दधत्काञ्चनसुन्दरी नवा सुखाय वप्तु सुतरामजायत ॥ (ध० श० ९।१)

इसका मिलान प्रस्तुत 'जिननन्दनद्रुमोऽथ' आदि (५, ३१) श्लोकसे कीजिए ।

रेखात्रयेणेव जगत्त्रयाधिका विरूपयन्त निजरूपसपदम् ।
तत्कण्ठमालोक्य ममज्ज लज्जया विशीर्यमाण किल कम्बुरम्बुधौ ॥ (ध० श० ९।२५)

इसे 'भुवनत्रितयातिशायिशोभा' आदि (६, ८) से मिलाइए ।

अजस्रमासीद्धनसपदागमो न वारिसपत्तिरदृश्यत क्वचित् ।
महौजसि त्रातरि सर्वत सता सदा पराभूतिरभूदिहाद्भुतम् ॥ (ध० श० १८।६२)

इसे 'तदा देवे पृथ्वीमवति' आदि पद्य (७, २१) से मिलाकर देखिए ।

इसी प्रकार मिलाइए—

औत्सुक्यनुन्ना शिशुमप्यसशय चुचुम्ब मुक्तिर्निभृत कपोलयो ।
माणिक्यताटङ्ककरापदेशतस्तथाहि ताम्बूलरसोऽत्र सगत ॥६॥
—धर्मशर्मा० सर्ग ९, पु च ५, ३७ ।

क्रमेण सोऽथ मणिकुट्टिमाङ्गणे नखस्फुरत्कान्तिझरीभिरञ्चिते ।
स्खलत्पद कोमलपादपङ्कजक्रम ततान प्रसवास्तृते यथा ॥१०४॥
—जीवन्धरचम्पू, लम्भ १, पु च ५, ३९ ।

बभ्राम पूर्वं सुविलम्बमन्थरप्रवेपमानाग्रपद स बालक ।
विश्वम्भराया पदभारधारणप्रगल्भतामाकलयन्निव प्रभु ॥९॥
—धर्मशर्मा० सर्ग ९, पु० च० ५, ३९

भवान्तर वर्णन और उसकी उपयोगिता

अन्य शास्त्रोमे जहाँ महापुरुषोके अवतारवादकी चर्चा आती है वहाँ जैन शास्त्रोमे उनके उत्तारवादकी चर्चा की गयी है अर्थात् नीचेसे उठकर वे महापुरुष किस प्रकार बने, इसका वर्णन किया गया है। जैनदर्शन अनादि सिद्ध ईश्वरकी सत्ताको स्वीकृत नही करता। उसकी मान्यता है कि ससारका प्राणी ही अपनी साधनासे आत्मशुद्धिको प्राप्त करता हुआ अन्तमें परमशुद्ध अवस्थाको प्राप्त होता है और वही ईश्वर कहलाता है। ऐसे ईश्वर एक नही किन्तु अनन्त हैं। जैनपुराण ग्रन्थोमे वर्णनीय महापुरुषोके पूर्वभव वर्णनका प्रसग इसी उद्देश्यसे किया जाता है कि जिससे जनसाधारण समझ सके कि यह महापुरुष किस प्रकारकी साधना कर उत्कृष्ट अवस्थाको प्राप्त हुए हैं—

पुरुदेवचम्पूके कथानायक भगवान् वृषभदेव हैं। इनका अस्तित्व आजसे असख्य वर्ष पूर्व था। तृतीय कालके जब तीन वर्ष साढे आठ माह बाकी थे तभी इनका निर्वाण हो चुका था। यह इस अवसर्पिणीमे होने वाले चौबीस तीर्थंकरोमे प्रथम तीर्थंकर थे। ग्रन्थकर्ताने आदिपुराणके अनुसार इनके निम्नाकित १० पूर्व भवोका वर्णन किया है—

१ जयवर्मा, २ राजा महाबल, ३ ललितागदेव, ४ वज्रजघ, ५ भोगभूमिका आर्य, ६ श्रीधरदेव, ७ राजा सुविधि, ८ अच्युतेन्द्र, ९ वज्रनाभि चक्रवर्ती, १० सर्वार्थसिद्धि और उसके बाद भगवान् वृषभदेव।

(१) **जयवर्मा**—पश्चिम विदेह क्षेत्रमें विद्यमान सिंहपुरके राजा श्रीषेण और उनकी रानी श्रीसुन्दरीके ज्येष्ठ पुत्र थे। इनके छोटे भाईका नाम श्रीवर्मा था। श्रीवर्मा, समस्त जनताको प्रिय था इसलिए पिताने उसे ही राज्य दिया। इससे जयवर्माके मनमे बडा खेद हुआ। उन्होंने विरक्त होकर मुनिदीक्षा ले ली। एक बार आकाशमे एक विद्याधर राजा बडे वैभवके साथ जा रहा था। मुनि जयवर्माने उसके वैभवको देखकर मनमे निदान किया कि इस तपस्याके फलस्वरूप मैं भी इसी प्रकार वैभवका स्वामी बनूँ। निदानके समय ही बामीसे निकले हुए एक सर्पने उन्हे डस लिया जिससे वे मरकर महाबल हुए और जन्मान्तरसे आगत भोगाकाक्षाके कारण भोग-विलासमे मग्न रहने लगे।

(२) **महाबल**—गान्धिल देशके अलकापुरीके राजा अतिबल और उनकी रानी मनोरमाके पुत्र थे। पिताके दीक्षा लेनेके बादसे राज्यके अधिपति हुए। इनके स्वयबुद्ध, महामति, सम्भिन्नमति और शतमति नामक चार मन्त्री थे। इन मन्त्रियोमे स्वयबुद्ध मन्त्री परम आस्तिक और महाबलका हितैषी था। एक बार उसने राजसभामे रौद्रध्यान, आर्त्तध्यान, धर्म्यध्यान और शुक्लध्यानका वर्णन करते हुए उनमें प्रसिद्ध हुए राजा अरविन्द, दण्डविद्याधर, शतबल और सहस्रबलकी कथा सुनायी जिससे महाबलका मन जैनधर्मके प्रति अत्यन्त श्रद्धालु हो गया। एक बार उसी स्वयबुद्धने सुमेरु पर्वतपर चारणऋद्धिधारी मुनिराजसे महाबलके विषयकी जानकारी प्राप्त कर उसे सम्बोधित करते हुए कहा कि तुम्हारी आयु केवल एक माहकी अवशिष्ट है अत आत्मकल्याणके लिए अग्रसर होना श्रेयस्कर है। स्वयबुद्धका सम्बोधन पाकर महाबलने बाईस दिन तक सल्लेखना व्रत धारण कर मरण किया और उसके फलस्वरूप ऐशान स्वर्गमे ललिताग देव हुए।

(३) **ललितागदेव**—उपपाद शय्यासे ऐसा उठा जैसे सोकर उठा हो। ऐशानस्वर्गका वैभव देख वह आश्चर्यमें पड गया। अनन्तर अन्य देवोके कथनानुसार स्नानादिसे निवृत्त हो उसने सर्वप्रथम जिनेन्द्र भगवान्की अर्चा की। पश्चात् स्वर्गके भोगोपभोगोमे मन लगाया। उसके अन्तिम समयमें एक स्वयप्रभा नामकी देवी हुई थी। उसके साथ ललितागका सघन स्नेह था। उसी स्नेहके कारण इन दोनोका अगले भवोमे भी सम्पर्क होता रहा। आयु पूर्ण होनेपर ललितागदेव वज्रजघ हुआ और स्वयप्रभा श्रीमती।

(४) **वज्रजंघ**—जम्बूद्वीपस्थ सुमेरु पर्वतकी पूर्व दिशा सम्बन्धी विदेहक्षेत्रके पुष्कलावती देशकी राजधानी उत्पलखेट नगरीके राजा वज्रबाहु और उनकी रानी वसुन्धराके वज्रजघ नामक पुत्र थे। वहुत ही प्रतापी और गुणवान् थे। स्वयप्रभा देवीका जीव पूर्वविदेह क्षेत्रकी पुण्डरीकिणी नगरीके राजा वज्रदन्त और उनकी रानी लक्ष्मीमतीके श्रीमती नामकी पुत्री हुई। एक वार श्रीमती महलकी छतपर बैठी थी। वहाँ उसने आकाशमें जाते हुए एक देवको देखा। देखते ही उसे ललितागदेवका स्मरण हो आया और उसके विरहमे वह दु खी होने लगी। पण्डिता धायके प्रयत्नसे वज्रजघका पता लगा और अन्तमें उसके साथ श्रीमतीका विवाह हुआ। श्रीमतीने कालक्रमसे पचास युगलोमें सौ पुत्रोको जन्म दिया। श्रीमतीके पिता चक्रवर्ती थे। वे एक वार कमलमें मृत भ्रमरको देखकर ससारसे विरक्त हो गये। उन्होने पुत्रोको राज्य देना चाहा पर वे भी राज्य लेनेको तैयार नही हुए तव पुत्रके पुत्र पुण्डरीकको राज्य देकर मुनि हो गये। उन्हीके साथ उनके दो पुत्रोने भी मुनिदीक्षा धारण कर ली।

श्रीमतीकी माताका पत्र पाकर वज्रजघ श्रीमतीके साथ पुण्डरीकिणी नगरी गये। मार्गमें इन्होने एक सरोवरके तटपर मुनिके लिए आहार दान दिया। वे मुनि श्रीमतीके ही छोटे पुत्र थे। पुण्डरीकिणी नगरमें वालक पुण्डरीकको राज्यव्यवस्था जमाकर वज्रजघ वापस आ गये। एक वार शयन कक्षमें सुगन्धित धूपके धूमसे कण्ठावरुद्ध हो जानेके कारण वज्रजघ और श्रीमतीकी साथ ही साथ मृत्यु हो गयी और दोनो ही भोगभूमिमे आर्य-दम्पती हुए।

(५) **आर्यदम्पती**—आर्यदम्पती भोगभूमिमें कल्पवृक्षके नीचे बैठे थे उसी समय स्वयवुद्ध मन्त्रीका जीव जो अव प्रीतिंकर नामका चारणऋद्धिधारी मुनि था, आकाश मार्गसे भोगभूमिमे गया, वहाँ उसने आर्यदम्पतीको सम्यग्दर्शनका उपदेश दिया जिसे श्रवण कर दोनोने सम्यग्दर्शन धारण किया। आयुके अन्तमें मरकर आर्यदम्पती स्वर्गमें देव हुए। वज्रजघका जीव आर्य श्रीप्रभ विमानमे श्रीधरदेव हुआ और श्रीमतीका जीव आर्या भी सम्यक्त्वके प्रभावसे स्त्रीलिंग छेदकर स्वयप्रभ विमानमें स्वयप्रभ नामका देव हुई।

(६) **श्रीधर**—एक वार श्रीधरदेवने अपने गुरु प्रीतिंकर मुनिसे महावल भवके शेष तीन मन्त्रियोके विषयमें पूछा तो उन्होने वताया कि सम्भिन्नमति और महामति तो तीव्र मिथ्यात्वके कारण निगोदको प्राप्त हुए हैं और शतमति दूसरे नरक गया है। श्रीधरदेवने दूसरे नरक जाकर शतमतिके जीवको सम्यग्दर्शन धारण कराया। श्रीधरदेवका जीव स्वर्गसे च्युत होकर सुविधि हुआ।

(७) **सुविधि**—सुसीमा नगरके राजा सुदृष्टि और उनकी रानी सुनन्दाके पुत्र हुआ था। श्रीमतीका जीव, स्वयप्रभ भी स्वर्गसे च्युत होकर सुविधिके केशव नामका पुत्र हुआ। पूर्व भवके कारण सुविधिका केशवके ऊपर अत्यन्त राग था। सुविधि, अभयघोष चक्रवर्तीका भानेज था इसलिए उसने चक्रवर्तीकी पुत्री मनोरमाके साथ विवाह कर चिरकाल तक राज्यसुखका उपभोग किया। अन्तमें तपश्चरण कर सुविधि अच्युत स्वर्गमें इन्द्र हुआ। केशवका जीव भी स्वर्गमें प्रतीन्द्र हुआ।

(८) **अच्युतेन्द्र**का वाईस सागरका समय सानन्द व्यतीत हुआ तदनन्तर वहाँसे चयकर वह वज्रनाभि हुआ।

(९) **वज्रनाभि**—जम्वूद्वीप सम्वन्धी पुष्कलावती देशकी पुण्डरीकिणी नगरीके राजा वज्रसेन और उनकी रानी श्रीकान्ताका पुत्र था। केशवका जीव भी इसी नगरीमे कुवेरदत्त वणिक् और उसकी अनन्तमति स्त्रीके धनदेव नामका पुत्र हुआ। वज्रनाभि चक्रवर्ती था अत चक्ररत्नके प्रकट होनेपर वह दिग्विजयके लिए निकला। इसी पर्यायमे दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारणभावनाओका चिन्तवन कर उसने तीर्थंकर प्रकृतिका वन्ध किया। अन्तमे समाधिमरण कर सर्वार्थसिद्धिमे अहमिन्द्र हुआ। केशवका जीव भी यही अहमिन्द्र हुआ।

(१०) **सर्वार्थसिद्धिका अहमिन्द्र**—तैंतीस सागरकी आयुवाला था, तैंतीस हजार वर्ष बाद उसे आहारकी इच्छा होती थी और तैंतीस पक्ष वाद श्वासोच्छ्वास चलता था। उसका उतना लम्बा समय तत्त्वचर्चामें व्यतीत हुआ।

पुरुदेवचम्पूकारने भगवान् वृषभदेवके उपर्युक्त दश भवोके प्रसगम उनसे सम्बन्ध रखने वाले अन्य लोगोके भी भवान्तरोका वर्णन किया है। यह पूर्वभव वर्णन प्रारम्भके तीन स्तवकोमे पूर्ण हुआ है। आख्यानकी दृष्टिसे यह भाग, काव्यप्रबन्ध न रह कर पुराण बन गया है परन्तु कविने इस भागको भी अलकारोकी पुट देकर काव्य प्रबन्ध बनानेका पूर्ण प्रयत्न किया है और उसमे वे सफल भी हुए हैं। कुछ भाग तो साहित्यिक दृष्टिसे बहुत ही महत्त्वपूर्ण बन पडा है।

भरत और बाहुबली

भरत, भगवान् वृषभदेवके प्रथम पुत्र थे। यह इस अवसर्पिणी युगमे होनेवाले बारह चक्रवर्तियोमे प्रथम चक्रवर्ती थे। भगवान् आदिनाथको केवलज्ञान, भरतकी स्त्रीके प्रथम पुत्र रत्न और आयुधशालामे चक्ररत्न ये तीन कार्य एक साथ प्रकट हुए थे। 'धर्म ही अर्थ और कामका मूल है' ऐसा विचारकर भरतने सर्वप्रथम भगवान् आदिनाथके केवलज्ञान कल्याणका महोत्सव मनाया। कुबेर द्वारा रचित समवसरणमें जाकर उन्होने भगवान्‌की पूजा की। दिव्यध्वनि सुनी। पश्चात् घर आकर पुत्र जन्मका उत्सव किया तदनन्तर दिग्विजयके लिए प्रस्थान किया। जिनसेनाचार्यने अपने आदिपुराणमें इस दिग्विजयका विस्तारके साथ वर्णन किया है। उसी आधारपर अर्हद्दासजीने भी यहाँ दिग्विजयका वर्णन यथासम्भव विस्तारसे किया है और इस वर्णनमें उन्होने पूरा नवम स्तवक व्याप्त किया है। (पाँच सौ छब्बीस योजन विस्तृत भरतक्षेत्रके छह खण्डोमें भ्रमण करते हुए भरत चक्रवर्तीको साठ हजार वर्ष लगे थे ऐसा आदिपुराणमें स्पष्ट किया गया है।)

दिग्विजयसे लौटनेके बाद जब चक्ररत्नने अयोध्यामे प्रवेश नही किया तब पुरोहितने बताया कि अभी आपको अपने भाइयोको वश करना बाकी है, उनके वशीभूत होनेपर ही चक्ररत्नका अयोध्यामे प्रवेश होगा। पुरोहितकी आज्ञानुसार भरतने सब भाइयोके पास दूत भेजे और अधीनता स्वीकृत करनेका आदेश भेजा। बाहुबलीको छोड सब भाइयोने ससारसे विरक्त हो दीक्षा धारण कर ली परन्तु बाहुबलीने युद्ध करनेकी इच्छा प्रकट की। दोनो ओरकी सेनाएँ युद्धस्थलमे आ पहुँची तब उभयपक्षके मन्त्रियोने विचार किया कि भरत और बाहुबली—दोनो ही चरमशरीरी—तद्भवमोक्षगामी हैं अत. इनका तो कुछ बिगडनेवाला नही है परन्तु युद्धमें निरपराध सैनिक मारे जायेंगे। अच्छा हो कि ये अपना शक्ति परीक्षण स्वय करें। मन्त्रियोकी समतिमे दोनोके बीच दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध और मल्लयुद्ध होना निश्चित हुए। बाहुबलीने तीनो युद्धोमें भरतको पराजित कर दिया। भरतने क्रोधसे पीडित हो बाहुबलीके ऊपर चक्ररत्न चला दिया। पर यह चक्ररत्न भी बाहुबलीकी प्रदक्षिणा देकर अकर्मण्य हो गया।

इस घटनासे बाहुबलीको वैराग्य उत्पन्न हो गया और उन्होने दीक्षा धारण कर ली। एक वर्ष तक खडे-खडे तपश्चरण किया। ग्रीष्म ऋतुकी धूप, बरसातकी मूसलधार वर्षा और शीतकालकी भयकर शीतलहर उन्हें ध्यानसे विचलित नही कर सकी। एक वर्षके बाद उन्हे केवलज्ञान हो गया।

भरत निष्कण्टक राज्य करने लगे। इन्होने ब्राह्मणवर्णकी स्थापना की तथा उन्हे धार्मिक सस्कारोका उपदेश दिया। दिग्विजयके समय जो जयकुमार इनके सेनापति थे उन्होने ससारसे विरक्त होकर आदिजिनेन्द्रके पास दीक्षा धारण कर ली और भगवान्‌के समवसरणमे गणधर पद प्राप्त किया। माघ कृष्ण चतुर्दशीके दिन भगवान् आदिनाथने कैलासपर्वतसे मोक्ष प्राप्त किया। अन्तमे भरतने भी दीक्षा धारण कर यत्र-तत्र भ्रमण कर धर्मोपदेश दिया और उसी कैलाससे निर्वाणपद प्राप्त किया।

भरतके नामपर ही इस देशका भारत नाम प्रसिद्ध हुआ है, इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है।

छन्दोयोजना

पुरुदेवचम्पूमे प्राय सभी प्रसिद्ध छन्दोका प्रयोग हुआ है। 'रसके अनुरूप छन्दका प्रयोग काव्यकी शोभा बढा देता है' इस सिद्धान्तको दृष्टिमें रखते हुए कविने रसके अनुरूप ही छन्दोका चयन किया है। यहाँ छन्दोका वर्णानुक्रमसे नामोल्लेख किया जाता है तथा उनके आगे उन छन्दोवाले स्तवको व पद्योके अक दिये जाते है—

अनुष्टुप् (८ वर्ण, पाँचवाँ लघु, छठा गुरु, सातवाँ १-३ गुरु २-४ लघु)

[१] १६, १७, २०, २२, २५, २८, २९, ३१, ३२, ३४, ३५, ३७, ३८, ३९, ४१, ४३, ४४, ४६, ४८, ५२, ५४, ५६, ६८, ६९, ७० । [२] ४, ६, १०, १४, १५, १६, १७, २०, २५, २७, २८, ३०, ३१, ३३, ३५, ३६, ३७, ४०, ४१, ४२, ४३, ४४, ४७, ४८, ४९, ५३, ५४, ५६, ५७, ६१, ६४, ७०, ७१ । [३] १, ३, ४, ५, ९, ११, १२, १४, १६, १७, २२, २३, २६, २७, २९, ३१, ३२, ३६, ३७, ३८, ४०, ४४, ४५, ४६, ४७, ४८, ५०, ५१, ५३, ५४, ५८, ६५ । [४] २, ७, १७, १८, २०, २१, २२, २६, २८, २९, ३०, ३२, ३४, ३५, ४०, ५२, ५३, ६०, ६३, ६६, ६७, ६८, ७१, ७२ । [५] २, ६, ११, २३, २९, ३४, ३७, ३८, ४० । [६] ५, ११, १३, १५, १६, १७, २०, २३, २६, २८, ३२, ३९, ४३ । [७] ३, ७, १०, १६, १८, २२, ३१, ३४, ३७ । [८] ४, ५, ७, १२, १५, १६, १८, १९, ३०, ३४, ४२ [९] २, ९ १०, ११, १६, २०, २४, २५, २६, २८, २९, ३१, ३३, ३४, ३६, ३८ । [१०] ५, ८, ९, १२, १४, २०, २१, २२, २६, २७, ३१, ३२, ३५, ३८, ३९, ५१ ।

आर्या (विषम–१२, दूसरा–१८, चौथा–१५ मात्रा)

[३] ५९, ६० । [४] ८, ९, १४, १६, २३, ३३, ४३, ४४, ४७, ४८, ४९, ५०, ६९, [५] १६, १७, १८, २६, २७, २८, ३१, ३२, ३५, ३६ । [६] ७, ३०, ३७, ३८, ४४, ४५ । [७] २५ [८] २९, ३२, ३८, ३९, ४१ ।

इन्द्रवज्रा (११ वर्ण तौ ज गौ ग)

[४] १ [७] २, ३५, [९] ३५ [१०] ३७ ।

उपजाति (११ वर्ण, इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा मिश्रित)

[१] ३, ९, १३, ४५, ४९, ५९, ६२, ६६, ७३ । [२] ११, २३, ४६, ५०, ५९, ६०, ६६, ६९ । [३] २, १०, १५, २५, ३०, ३५, ५५, ६१, ६४ । [४] ४, ५, ६, ११, १२, २५, ५८, ६२ । [५] ३९ । [६] २२, २७, ३५, ४० । [७] ४, २१, ४० । [८] १० । [९] ५ [१०] २८, ४०, ४७, ४९ ।

उपेन्द्रवज्रा (११ वर्ण, ज त ज गौ)

[१] ५५ [२] ५२ [४] ४६, ५४, ५६ [१०] ११ ।

द्रुतविलम्बित (१२ वर्ण, न भौ भ रौ)

[१] ५७ [८] ४ [१०] ४८, ५० ।

पुष्पिताग्रा (विषम–न न र य, सम–न ज ज र ग)

[६] ६ [१०] २४

पृथ्वी (१७ वर्ण, ज सौ ज स य)

[१] ४, १४, २४, २६, ४०, ५० । [२], १३, ६३ । [३] २०, २१, २८ । [४] ५१ [५] १३ [७] ८, ३२ । [८] १७, ४५ । [९] ३, ८, २७, ३० । [१०] २३ ।

भुजङ्गप्रयात (१२ वर्ण, यथौ यथौ)

[१] ५८ [६] ९ ।

मञ्जुभाषिणी (१३ वर्ण, सजसा जगौ)

[१] ६३ [२] ३४

मन्दाक्रान्ता (१७ वर्ण, मो भनौ तौ गौ)

[१] ३, १८, ४२ । [२] १ [३] ८, ५६ । [४] १०, ६४ । [६] १४, १९ । [७] १२, २३ । [१०] १, १५ ।

मालिनी (१५ वर्ण, न न म य य)

[२] ८ [३] १९, ३८, ३५, ४१ । [४] ३१, ५७ । [५] ४ [६] १८, ४१ । [७] १७, ४२ । [८] ३५ [१०] ३३, ४५ ।

रथोद्धता (११ वर्ण, रनरा लगौ)

[२] ५ [३] ६२ [४] ८२ [५] २५ [७] २८

वंशस्थ (१२ वर्ण, जतौ जरौ)

[१०] ६

वसन्ततिलका (१४ वर्ण, तभजा जगौ ग)

[१] २१, ५१, ५३, ६५ । [२] २४, २६, २९, ३२, ३९, ७० । [३] ७, २४, ४२, ४३, ५२ । [४] २४, २७, ३०, ६५, ७० । [६] ४७ [७] ३९, ४१ । [८] १३, २० । [१०] (प्रशस्ति)

वियोगिनी (विषमे ससजा गुरु, समे सभरा लगौ)

[१०] १० ।

मालभारिणी

[२] ४५ [६] २, ४ । [७] २९ [९] २१, २३ । [१०] २५ ।

शार्दूलविक्रीडित (१९ वर्ण, म सजौ सतत गा)

[१] २, ६, ८, ११, १२, १५, १९, ३६, ६४, ६७, ७२, ७४ । [२] २, १२, २१, ५८ । [३] ६, १८, ३९, ४९ । [४] ३, १५, १९, ३६, ३८, ३९, ५५, ६१ [५] १, ३, ७, ८, १०, १२, २०, २१ । [६] १, ३, १०, २९, ३३, ३४, ४८ । [७] १, ९, ११, १३, १४, १५, १९, २६, २७, ३८ । [८] ६, ९, २४, २८, ३३, ४३, ४६ । [९] ४, ५, ३२ [१०] ३, ७, १३, १९, २९, ३६, ४८, ४६ ।

शालिनी (११ वर्ण, म तौ गौ)

[२] ५१, ६७ [४] ५९ [५] १४ [७] २४ ।

शिखरिणी (१७ वर्ण, य म न स भ ला ग.)

[१] १, २, १०, २७, ३०, ३३, ४७ । [२] ७, ९, १९, ५५, ६४ । [३] १३, ५७, ६३ । [५] ९, १५, २४, ३० । [६] २१, २४, ३१, ३६, ४२ । [७] ६, २०, ३०, ३३, ३६ । [८] २, ३, ८, ११, १४, ३६ । [९] ८, १२, १३, १४, १७, १८ । [१०] २, ११, ३०, ३४, ४२ ।

स्रग्धरा (२१ वर्ण, भ र भ न य य य)

[१] ६२ [३] ३३ [४] ४५ [५] २२ [६] २५, ४६ । [८] १७, २२, २३, ३१, ४४ । [९] १, ६, ७, १९, २२, ३७ ।

स्वागता (११ वर्ण, र न भ गौ)

[२] २२, ३८ । [४] ४१ [५] ३३ [६] ८ ।

हरिणी (१७ वर्ण, न स म र स ला ग)

[२] ३, १८, ६२, ६८ [४] १३ [५] ५, १९ [६] १२ [७] ५ [८] १, २१, २५, २६ । [९] १५ [१०] १६, १७, ४१, ४३

पुरुदेवचम्पू प्रबन्धका यह संस्करण और आभार-प्रदर्शन

आदिपुरुष भगवान् वृषभदेवको कथानायक बनाकर कविवर अर्हद्दासजीने अपनी काव्यप्रतिभाको कृतकृत्य किया है। आजसे ४३ वर्ष पूर्व जब मैं सागरके गणेश० विद्यालयमें अध्ययन करता था तब श्रीमान् प० जिनदासजी शास्त्री फडकुलेके द्वारा सम्पादित होकर माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला बम्बईसे पुरुदेव-चम्पूका प्रकाशन हुआ था। नयी पुस्तक छपकर आयी थी अत उसके पढनेका उत्साह हृदयमें उत्पन्न हुआ। विद्यालयके तात्कालिक साहित्याध्यापक श्री कपिलेश्वर झाने इसे पढाना स्वीकृत किया और मनोयोगपूर्वक मैंने इसका अध्ययन शुरू कर दिया। दो-तीन वर्ष बाद मैं इसी विद्यालयमें जब साहित्याध्यापक हो गया तब प्राय प्रतिवर्ष इसे पढानेका अवसर मिलने लगा। ज्यो-ज्यो अनुभव बढता गया त्यो-त्यो इसकी साहित्यिक विधाकी ओर आकर्षण बढता गया। श्री प० जिनदासजीने टिप्पणीके द्वारा ग्रन्थका हार्द प्रकट करनेका प्रयत्न तो किया परन्तु ऐसे श्लेषमय ग्रन्थोका हार्द सक्षिप्त टिप्पणसे प्रकट नही होता अत मनमें इच्छा होती थी कि इसकी एक टीका लिख दूँ इसके पूर्व जीवन्धरचम्पूकी टीका लिख चुका था। सस्कृत और हिन्दी टीका सहित उसका प्रकाशन जैन विद्वानोने तो पसन्द किया ही परन्तु मध्यप्रदेशीय शासन साहित्यपरिषद्ने भी उसे अत्यन्त पसन्द किया और सन् १९६० में उसपर ५००) का मित्र पुरस्कार घोषित किया।

पिछले वर्षोंमें जब भारतवर्षीय दि० जैन विद्वत्परिषद्की ओरसे गुरुगोपालदास बरैया शताब्दी समारोहका उत्सव दिल्लीमें किया गया तब उसमें जानेका अवसर मिला। उसी प्रसगपर लोकप्रिय वक्ता श्री १०८ मुनि विद्यानन्दजीसे साक्षात् मिलनेका भी अवसर प्राप्त हुआ। मिलते ही आपने कहा कि **'पुरुदेवचम्पूकी टीका आप कर दीजिए'**। मैंने कहा कि हो जायेगी। दिल्लीसे वापस आनेपर महाराजजी-का और भी आदेश मिला। उससे प्रेरित होकर मैंने टीकाका काम प्रारम्भ कर दिया। हस्तलिखित प्रतिसे पाठभेद लेनेके बाद सस्कृत और हिन्दी टीका लिखी। तैयार होनेपर मैंने पाण्डुलिपि श्री १०८ मुनि विद्यानन्दजीके पास भेज दी। उन्होने बडौतके चातुर्मासमें उसे मनोयोगपूर्वक देखा। श्लेषमय ग्रन्थकी मात्र हिन्दी टीकासे ग्रन्थका भाव स्पष्ट नही होता क्योकि हिन्दीमें कोश, व्याकरण तथा अलकारका चमत्कार उतना प्रकट नही किया जा सकता जितना कि सस्कृतमें, इसलिए मैंने दोनो टीकाएँ लिखी थी। परन्तु दोनों टीकाओंको मिलाकर ग्रन्थका परिमाण विस्तृत हो गया अत मुनिजी द्वारा उसके प्रकाशनकी व्यवस्था नही हो सकी। ऐसे प्रकाशन, व्ययसाध्य होनेसे छोटी-मोटी सस्थाओंसे हो भी नही सकते अत भारतीय ज्ञानपीठ-के मन्त्री श्रीमान् बाबू लक्ष्मीचन्द्रजीको मैंने लिखा और प्रसन्नताकी बात है कि उन्होने यह अपूर्व ग्रन्थ भारतीय ज्ञानपीठकी ओरसे प्रकाशित करना स्वीकृत कर लिया। पूज्य मुनिराजसे इसके निर्माणकी प्रेरणा मिली और ज्ञानपीठकी ओरसे इसके प्रकाशनकी व्यवस्था हुई इसलिए मैं मुनिराज जी तथा ज्ञानपीठके सचा-लकोका अत्यन्त आभारी हूँ। साहित्य प्रकाशनके क्षेत्रमे भारतीय ज्ञानपीठने थोडे ही समयमे जो कार्य किया है वह वचनागोचर है।

पुरुदेवचम्पू प्रबन्ध अपने ढगका एक अपूर्व ग्रन्थ है। इसके श्लेष बहुत बुद्धिगम्य है उनका भाव प्रकट करनेका मैंने बुद्धिपूर्वक प्रयत्न तो किया है पर क्षायोपशमिक ज्ञानका भरोसा क्या? अत त्रुटियोके लिए मैं विद्वद्वर्गसे क्षमाप्रार्थी हूँ।

सागर (म प्र.)
माघ कृष्णा ८ वीर. २४९८

विनीत
पन्नालाल जैन

विषयानुक्रमणिका

स्वयबुद्ध मन्त्री वन्दना कर सौमनसवनके पश्चिम दिशा सम्बन्धी चैत्यालयमे बैठा ही था कि वहाँ चारणऋद्धिके धारी आदित्यगति और अरिजय नामके दो मुनिराज जा पहुँचे। उनके दर्शन कर स्वयबुद्धने उनसे पूछा कि हे भगवन् ! हमारा राजा महाबल भव्य है या अभव्य ?	६६–६९	३२–३४
स्वयबुद्धके प्रश्नके उत्तरमे आदित्यगति मुनिराजने कहा कि वह भव्य है और दशमभवमें भरतक्षेत्रका तीर्थंकर होकर मोक्ष प्राप्त करेगा। इसी सन्दर्भमे उन्होने महाबलके पूर्वभव सुनाते हुए कहा कि वह पश्चिम विदेहमें सुशोभित गन्धिला देशके सिहपुर नगरके राजा श्रीषेण और श्रीसुन्दरीका जयवर्मा नामका पुत्र था। छोटे भाईको राज्य दिये जानेके कारण उसने ससारसे विरक्त हो मुनिदीक्षा ले ली। एक दिन आकाशमे वैभवके साथ जाते हुए एक विद्याधरको देखकर उसने निदान किया। उसी समय साँपके काटनेसे उसकी मृत्यु हो गयी और वह मरकर महाबल हुआ। पूर्वभव सम्बन्धी भोगलिप्साके कारण ही वह भोगोमें लिप्त हो रहा है।	७०–७५	३४–३५
आदित्यगति मुनिराजने यह भी कहा कि आज महाबलने दो स्वप्न देखे हैं। पहले स्वप्नमें देखा है कि तुम्हारे सिवाय तीन मन्त्रियोने उसे बहुत भारी कीचडमें गिरा दिया है परन्तु तुमने उन मन्त्रियोको डाँटकर महाबलको कीचडसे निकाला तथा सिहासनपर बैठाकर अभिषेक किया। दूसरे स्वप्नमे क्षीण होती हुई दीपककी ज्वाला देखी है। वह स्वप्नोका फल जाननेके लिए तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है सो तुम जाकर उसे स्वप्नोका फल बताओ। पहला स्वप्न उसकी समृद्धिको सूचित करनेवाला है और दूसरा स्वप्न, उसकी आयु एक माहकी शेष है, यह सूचित करना है। तुम्हारे मुखसे स्वप्नोका फल सुनकर वह धर्म में श्रद्धा करेगा। यह कहकर मुनिराज चले गये। स्वयबुद्धने भी घर आकर महाबलको स्वप्नोका फल सुनाया।	७६–८१	३५–३७
स्वयबुद्ध मन्त्रीके मुखसे स्वप्नोका फल सुनकर महाबलने आठ दिन तक आष्टाह्निक पर्वका महोत्सव किया और शेष २२ दिनकी सल्लेखना धारण की। अन्तमे समताभावसे प्राण त्यागकर वह ऐशानस्वर्गमे ललिताग नामका देव हुआ।	८२–८६	३७–३९
ललितागकी शोभा और वैभवका वर्णन	८७–९६	३९–४४
वहाँ ललितागदेवकी अनेक देवागनाएँ हुईं। अन्तमे स्वयप्रभा नामकी देवी हुई जो बहुत ही सुन्दर थी। स्वयप्रभाके साथ ललितागदेव नाना द्वीप समुद्रोमें क्रीडा करता हुआ काल व्यतीत करने लगा।	९७–१०२	४४–४६
स्तवकान्तमंगल	१०३	४७

द्वितीय स्तबक

तृतीय स्तवक

पंचम स्तबक

अष्टम स्तवक

दशम स्तबक

●

श्रीः

महाकविश्रीमदर्हद्दासविरचितः

पुरुदेवचम्पूप्रबन्धः

प्रथमः स्तबकः

§ १) क्रियाद्व' कल्याण भ्रमरहितसामोदसुमनः
समासेव्य श्रीमान् वृषभ इति विद्वत्सु विदितः ।
ददानः कल्पद्रु' श्रितजनततेरुत्तमफलं
समासीनो दिव्यध्वनिमृदुलतालंकृतमुख' ॥१॥

पुरुदेवमुरु लक्ष्म्या लक्षित परया मुदा । वन्दारुवृन्दवन्द्याङ्घ्रि वन्देऽनन्तगुणार्णवम् ॥१॥
महावीर वीर गुणगणगभीरं भवहर महाधीर धीर निखिलजनहीर सुखकरम् ।
समीर ध्यानाग्नेर्दुरितदवनीर श्रमहर भजाम सद्भक्त्या सुगतभवतीर शमधरम् ॥२॥
पुरुदेवचम्पुकाव्य गद्यपद्यावभासितम् । विवृणोमि समासेन विद्वज्जनमनोहरम् ॥३॥
ध्याय ध्याय गुरुगुणधर ज्ञानलक्ष्म्या लसन्त धीर वीर नततमसुर भासुर देहदीप्त्या ।
भक्त्या शक्त्या कृतविवरण काव्यमेतत्करोमि ध्वान्त चेतोगृहगतमिद सत्वर मे प्रणश्यात् ॥४॥
अर्हद्दासकृत काव्य नानालकारभूपितम् । गहन छात्रवृन्दस्य सत्यमध्यीयते सदा ॥५॥
छात्रास्तरन्तु तत्क्षिप्र तरण्या टीकयानया । इति चेत समाधाय कृतयत्नो भवाम्यहम् ॥६॥

अथ निर्विघ्न ग्रन्थपरिसमाप्तिकामो महाकविर्ग्रन्थनायक वृषभ भगवन्त स्तोतुमाह—

§ १) क्रियाद्व इति—वृषेण रत्नत्रयधर्मेण भाति शोभत इति वृषभः । वृषभ इति विद्वत्सु विशेषु विदित कल्पद्रु कल्पवृक्ष , वो युष्माक, कल्याण क्रियादिति कर्तृकर्मसवन्ध । अथ वृषभकल्पवृक्षयो सादृश्यमाह—भ्रमरहितसामोदसुमन समासेव्य तत्र वृषभपक्षे—भ्रमेण सशयेन रहिता भ्रमरहिता , आमोदेन हर्षेण सहिता. सामोदा , भ्रमरहिता सामोदाश्च ये सुमनसो देवा विद्वासो वा तै समासेव्य कल्पवृक्षपक्षे भ्रमरहिता भृङ्गहितकरा सामोदा सुगन्धिसहिताश्च या, सुमनस पुष्पाणि ताभि समासेव्य । 'सुगन्धि मुदि वामोद ' 'सुमना पुष्पमालत्यो स्त्रिया धीरे सुरे पुमान्' इति च विश्वलोचन । श्रीमान् अनन्तचतुष्टयलक्ष्मीसहित पक्षे शोभासहित । श्रितजनतते' आश्रितजनसमूहस्य उत्तमफल मोक्षफल पक्षे वरआभरणादिसमीप्सितफल, ददान', समासीन'-वृपभपक्षे सम्यक्प्रकारेण आसीन समवसरणस्थित इत्यर्थ , दिव्यध्वनिमृदुलतालक्कृतमुख दिव्यध्वने-

---

§ १) क्रियाद्वः—विद्वानोंमें वृषभ इस नामसे प्रसिद्ध वह कल्पवृक्ष तुम सबका कल्याण करे जो कि संशय रहित तथा हर्ष सहित देवोंसे सेवनीय है (पक्षमे भ्रमरोंके लिए हितकारी तथा सुगन्धित फूलोंसे सेवनीय है । अनन्तचतुष्टयरूप लक्ष्मीसे सहित है । (पक्षमे अनुपम शोभासे सहित है) आश्रित जन समूहको मोक्षरूपी उत्तमफल देनेवाला है (पक्षमे मनोवांछित वस्त्राभूषण आदि फल देनेवाला है) समवसरणसभामे विराजमान हैं और दिव्यध्वनिकी

§ २) जीयादादिजिनेन्द्रवासरमणिः सच्चक्रसंतोषको
राजच्छोभनखाश्रयप्रविलसत्पादस्तमोनाशनः ।
श्रीमान्वासवशोभितामरसभाहर्षप्रकर्षप्रदो
भ्राजत्केवलबोधवासररुचिर्निःसीमसौख्योदयः ॥२॥

मृदुलतया मार्दवेनालंकृतं मुखं यस्य सः । कल्पवृक्षपक्षे दिवि स्वर्गे अध्वनि मार्गे आकाशे इति यावत् समासीनः स्थितः, मृदुलतालंकृतमुखः मृदुलताभिः कोमलवल्लीभिरलंकृतः मुखमग्रभागो यस्य सः । श्लेषानुप्राणितो रूपकालंकारः । शिखरिणीछन्दः ॥१॥ § २) पुनरपि तमेवादिजिनेन्द्रं स्तोतुमाह—जीयादिति—आदिजिनेन्द्र एव वासरमणिः सूर्यः इति आदिजिनेन्द्रवासरमणिः, जीयादिति कर्तृक्रियासंबन्धः । अथोभयोः सादृश्यमाह—सच्चक्रसंतोषकः—सतां साधूनां चक्रं समूहस्तस्य संतोषकः आदिजिनेन्द्रः सन्तश्च ते चक्राश्चेति सच्चक्रा विद्यमानचक्रवाकास्तेषां संतोषको वासरमणिः 'अथ पुंस्येव चक्रः स्याच्चक्रवाकसमूहयोः' इति विश्वलोचनः । राजदिति—राजन्ती शोभा येषां तथाभूता ये नखा नखरास्तेषामाश्रयेण प्रविलसन्तौ शोभमानौ पादौ चरणौ यस्य तथाभूतः आदिजिनेन्द्रः, राजत् शोभनं यस्य तथाभूतं यत् खं गगनं तदेवाश्रयस्तस्मिन् प्रविलसन्तः शोभमानाः पादाः किरणा यस्य तथाभूतो वासरमणिः 'पादोऽस्त्री चरणे मूले तुरीयांशेऽपि दीधितौ' इति विश्वलोचनः । तमोनाशनः शोकनाशकः आदिजिनेन्द्रः, ध्वान्तनाशको वासरमणिः 'तमो ध्वान्ते गुणे शोके क्लीबं वा ना विधुंतुदे' इति विश्वलोचनः । श्रीमान् अनन्तचतुष्टयरूपसंपत्तियुक्तः आदिजिनेन्द्रः, शोभासहितो वासरमणिः 'शोभासंपत्तिपद्मासु लक्ष्मीः श्रीरपि गद्यते' इति विश्वः । वासवेति—वासवैरिन्द्रैः शोभिता समलंकृता या अमरसभा देवनिर्मितसमवसरणपरिषत् देवसभा वा तस्या हर्षप्रकर्षं प्रमोदाधिक्यं प्रददातीति तथाभूतः आदिजिनेन्द्रः, वा इति पदं त्यक्त्वा आसवेन मकरन्देन शोभीनि यानि तामरसानि कमलानि तेषां भा कान्तिस्तस्या हर्षो विकासस्तस्य प्रकर्षं प्रददातीति तथाभूतो वासरमणिः । भ्राजदिति भ्राजन् शोभमानः केवलबोधः केवलज्ञानमेव वासररुचिः सूर्यो यस्य तथाभूतः आदिजिनेन्द्रः, केवलानां समग्रपदार्थानां बोधो ज्ञानं यस्मिन् तथाभूतो वासरो दिवसः केवलबोधवासरः, भ्राजन्ती शोभमाना केवलबोधवासरे रुचिर्दीप्तिर्यस्य तथाभूतो वासरमणिः । निस्सीमसौख्योदयः—निस्सीमं सीमातीतमनन्तमिति यावत् सुखमेव सौख्यं निस्सीमं च तत् सौख्यं च निस्सीमसौख्यं तस्योदयः प्राप्तिर्यस्य तथाभूतः आदिजिनेन्द्रः, सुष्ठु खं सुखं, सुन्दरगगनं सुखमेव सौख्यं निस्सीमं सर्वतोऽनन्तप्रदेशत्वात् निस्सीमं सीमारहितं यत् सौख्यं सुगगनं तस्मिन् उदयो यस्य तथाभूतो वासरमणिः अथवा निस्सीमसौख्यस्यानन्तसुखस्योदयः प्राप्तिर्यस्मात् लोकानां तथाभूतः । श्लेषानुप्राणितो रूपकालंकारः । शार्दूलविक्रीडित

कोमलतासे सुशोभित मुखसे युक्त हैं (पक्षमें स्वर्ग तथा आकाश मार्गमें स्थित है एवं कोमल लताओंसे सुशोभित अग्रभागसे सहित है) ॥१॥ § २) जीयादिति—वे आदिजिनेन्द्ररूपी सूर्य जयवन्त हों जो सज्जनों के समूह को सन्तोष देनेवाले हैं (पक्षमे विद्यमान चक्रवाक पक्षियोंको सन्तुष्ट करनेवाले हैं), शोभायमान नखोंके आश्रयसे जिनके चरण अतिशय सुशोभित हो रहे हैं (पक्षमे सुन्दर आकाशरूपी आधारमें जिनकी किरणें सुशोभित हो रही हैं), शोकको नष्ट करनेवाले हैं (पक्षमें अन्धकारको नष्ट करनेवाले हैं), अनन्त चतुष्टयरूप लक्ष्मीसे सहित हैं (पक्षमे शोभासे सहित हैं), इन्द्रोंसे सुशोभित देवनिर्मित समवसरण सभाको अत्यधिक हर्ष प्रदान करनेवाले हैं (पक्षमे मकरन्दसे सुशोभित कमलोंकी कान्तिके अत्यधिक विकासको देनेवाले हैं), देदीप्यमान केवलज्ञानरूपी सूर्यसे सहित हैं (पक्षमें समस्त पदार्थोंको प्रकाशित करनेवाले दिनमे जिसकी दीप्ति विद्यमान रहती है) और जिन्हें अनन्तसुख प्राप्त हुआ है (पक्षमें अनन्त आकाशमें जिसका उदय होता है अथवा जिससे अन्य जीवोंको अपरिमित सुखकी प्राप्ति होती है) ॥२॥

§ ३) जीवं जीव प्रति कलयितु नित्यसौख्य प्रवृत्तः
श्रीमानाद्यो जिनपतिशशी सगतानन्तसौख्यः।
भव्योल्लास वितरतु सभोल्लासक्लृप्तप्रतिष्ठः
प्रौढध्वान्तस्फुरणहरण. सत्पथे सनिविष्टः ॥३॥

§ ४) विशासितकुशासन विविधबन्धविच्छेदनं
जिनाधिपतिशासनं जयति भव्यसमाननम्।
कुतीर्थकरवासनाकुलितचित्तसंत्रासनं
सता सुगुणशासन[1] सकलमङ्गलाशासनम् ॥४॥

छन्द ॥२॥ § ३) पुनरपि चन्द्ररूपकेणाद्य जिनपतिं स्तोतुमाह—जीवं जीवमिति—आद्य प्रथम, जिनपतिरेव शशी जिनपतिशशी जिनेन्द्रचन्द्र, भव्यानामुल्लासस्त भव्योल्लासं पक्षे भव्यश्चासावुल्लासश्चेति भव्योल्लासस्त, वितरतु ददातु, इति कर्तृक्रियासबन्ध । अथोभयो सादृश्यमाह—जीव जीव प्रति जन्तु जन्तु प्रति वीप्साया द्वित्वम् पक्षे जीवजीव चकोरक 'जीवजीवश्चकोरक' इत्यमर, नित्य च तत् सौख्य चेति नित्यसौख्य कर्मक्षयजनितत्वेन स्थायिसुख पक्षेऽभीक्ष्णसुख कलयितु प्रापयितु प्रवृत्तस्तत्पर, श्रीमान् अनन्तचतुष्टयलक्ष्मीसहित पक्षे शोभासहित, सगत प्राप्तमनन्तसौख्य यस्य तथाभूत, पक्षे सगत प्राप्तमनन्तसौख्य निस्सीमसुख यस्मात् जीवाना तथाभूत अथवा सुष्ठु ख सुख, सुखमेव सौख्यम्, अनन्त च तत्सौख्य चेत्यनन्तसौख्यं सर्वतो निरवधिगगन सगत प्राप्त सौख्य येन तथाभूत, सभाया समवसरणपरिषद उल्लासे प्रहर्षणे क्लृप्ता निश्चिता प्रतिष्ठा यस्य तथाभूतो जिनपति, पक्षे स इति पद पृथक्कृत्य 'जिनपतिशशी' इत्यस्य विशेषण कार्यम्, भाया कान्तेरुल्लासे क्लृप्ता प्रतिष्ठा यस्य तथाभूत शशी, प्रौढध्वान्तस्य निविडाज्ञानान्धकारस्य यत्स्फुरण सचारस्तस्य हरण यस्मात्तथाभूतो जिनपति पक्षे गाढतिमिरसचारापहारी, सत्पथे समीचीनमार्गे पक्षे सता नक्षत्राणा पन्था सत्पथम् तस्मिन् आकाशे सनिविष्ट स्थित । मन्दाक्रान्ताच्छन्द, श्लेषानुप्राणितो रूपकालकार। § ४) अथ जिनशासन स्तोतुमाह—विशासितेति—जिनाधिपतेर्जिनेन्द्रस्य शासन जिनाधिपतिशासनं जिनसमय जयति सर्वोत्कर्षेण वर्तते । तदेव विशिनष्टि—विशासित विनाशितं कुशासन मिथ्यासमयो येन तथाभूत विशासितकुशासनम्, विविधाना प्रकृत्यादिभेदभिन्नाना बन्धाना विच्छेदन विनाशकम् विविधबन्धविच्छेदनम्, भव्याना मोक्षप्राप्त्यर्हाणा समानन समादरणीय भव्यसमाननम्, कुतीर्थकरी मिथ्यासमयप्रवर्तिका या वासना

---

§ ३) जीवं जीवमिति—वे आदि जिनेन्द्ररूपी चन्द्रमा भव्यजीवोंको परमहर्ष प्रदान करें (पक्षमें उत्तम हर्ष प्रदान करें) जो प्रत्येक जीवके प्रति स्थायी सुख प्राप्त करनेके लिए तत्पर हैं (पक्षमे चकोर पक्षीके लिए निरन्तर आनन्द प्रदान करनेवाले हैं, अनन्त चतुष्टयरूप लक्ष्मीसे सहित हैं (पक्षमे शोभासे सहित हैं), जिन्हें अनन्त सुख प्राप्त हुआ है (पक्षमें जिनसे अनन्त सुख प्राप्त हुआ है अथवा जिन्होंने अवधिरहित निर्मल आकाश प्राप्त किया है), जिनकी महिमा समवसरण सभाके हर्षित करनेमें निश्चित है (पक्षमे जिनकी प्रतिष्ठा कान्तिके विस्तारमे निश्चित है), अत्यन्त सघन अज्ञानान्धकारके संचारको नष्ट करनेवाले हैं (पक्षमें प्रगाढ़ अन्धकारके संचारको नष्ट करनेवाले हैं) और समीचीन मार्गमें स्थित हैं (पक्षमे आकाशमे स्थित हैं) ॥३॥ § ४) विशासितेति—मिथ्याधर्मको नष्ट करनेवाला, अनेक प्रकारके बन्धोंको दूर करनेवाला, भव्य जीवोंके द्वारा आदरणीय, मिथ्याधर्मकी वासनासे दूषित चित्तवाले पुरुषोंको भय उत्पन्न करनेवाला,

---

१ सुगुणशालिना क० ।

§ ५) रत्नत्रय राजति जैत्रमस्त्रमचिन्त्यदिव्याद्भुतशक्तियुक्तम् ।
मोहक्षमावल्लभगुप्तसेना जिगाय ता येन जिनाधिराज' ॥५॥

§ ६) वाणी मे प्रथयन्तु ते गणधराः सज्ज्ञानवाराकरा]
येषा निर्मलमानसे श्रुतमयी हसी सदा खेलति ।
स्याद्वादोत्तमपक्षयुग्जिनपतेर्वक्त्राम्बुजान्निर्गता-
मिथ्यैकान्तमृणालकाण्डनिचय द्राक् खण्डशः कुर्वती ॥६॥

§ ७) श्रुतस्कन्धोदञ्चत्तरुमधिकशाखाविलसितं
स्तुमो यस्य स्थान जिनपवदनोद्यानमनघम् ।
दृगम्भोजोपेत स्मितमधुरहसाढ्यमधर-
प्रवाल नीलभ्रूमरुकमुदयद्रूपकलितम् ॥७॥

तया आकुलित यच्चित्त तस्य सत्रासन भयोत्पादकम् अथवा कुतीर्थकरवासनया आकुलित चित्त येषा तेषां सत्रासनम्, सता साधूना सुगुणशासन सम्यक्त्वादिगुणोपदेशकम्, सकलमङ्गलाना निखिलश्रेयसा स्वर्गापवर्गाणा-माशासन प्रापकम् । पृथ्वीछन्द ॥४॥ § ५) अथ रत्नत्रय स्तोतुमाह—रत्नत्रयमिति—जिनाधिराजो जिनेन्द्र , येन रत्नत्रयेण ता प्रसिद्धा मोह एव क्षमावल्लभो राजा तेन गुप्ता सुरक्षिता या सेना ता मोहाधिष्ठितकर्मपृतना जिगाय जयति स्म, अचिन्त्या अज्ञानि जनमनोऽगोचरा, दिव्या—अलौकिकी, अद्भुताश्चर्यकरी च या शक्तिस्तया युक्त, रत्नत्रय सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूप, जैत्र जेतु शीलम् अस्त्र राजति शोभते । रूपकालकार , उपजातिवृत्तम् । § ६) अथ गुरून् स्तोतुमाह—वाणीमिति—सज्ज्ञानवाराकरा सद्बोधसिन्धव , ते वक्ष्यमाणगुणविशिष्टा गणधरा गौतमादय , मे ग्रन्थकर्तु , वाणीं भारती प्रथयन्तु विस्तारयन्तु । येषा निर्मलमानसे स्वच्छान्त करणे निष्पङ्क-मानससरोवरे च, श्रुतमयी द्वादशाङ्गरूपा, स्याद्वादोत्तमपक्षयुक्—स्याद्वादेन प्ररूपितौ उत्तमपक्षौ निर्बाधविधि-निषेधात्मकसिद्धान्तौ पक्षे गरुतौ ताभ्या युज्यते तथाभूता, जिनपतेर्जिनेन्द्रस्य, वक्त्राम्बुजान्मुखारविन्दात् निर्गता प्रकटिता, मिथ्यैकान्त एव मृणालकाण्डनिचयो विसलतासमूहस्त, द्राक् झटिति, खण्डश कुर्वती नाशयन्ती हसी मराली सदा खेलति क्रीडति । जिनवाणीप्रख्यापकाश्चतुर्ज्ञानसागरा गणधरा मम वाणी विस्तारयन्त्विति भाव । श्लेषानुप्राणितो रूपकालकार , शार्दूलविक्रीडितच्छन्द ॥६॥ § ७) अथ श्रुतस्कन्ध स्तोतुमाह—श्रुतस्क-न्धेति—अधिकशाखाभिराचाराङ्गादिप्रभेदैर्विलसित शोभित त श्रुतस्कन्ध एवोदञ्चत्तरुरुन्नतवृक्षस्त स्तुमो नुम', यस्य स्थान धाम, जिनपवदन जिनेन्द्रवक्त्रमेव उद्यानमुपवनमिति जिनपवदनोद्यानम् आसीदिति शेष । कथभूत तदुद्यानमित्युच्यते—अनघ निर्दोषम्, दृगम्भोजोपेत नयनारविन्दसहित, स्मित मन्दहसितमेव मधुरहसो मनोज्ञ-

---

सत्पुरुषोंको उत्तम गुणोंका उपदेश देनेवाला और समस्त मगलोंको प्राप्त करानेवाला जिनेन्द्रदेवका शासन जयवन्त है—सबसे उत्कृष्ट है ॥४॥ § ५) रत्नत्रयमिति—जिनेन्द्र-देवने जिसके द्वारा मोहरूपी राजाके द्वारा पालित उस प्रसिद्ध कर्मरूपी सेनाको जीता था वह अचिन्त्य दिव्य तथा आश्चर्यकारी सामर्थ्यसे युक्त रत्नत्रय रूपी विजयी शस्त्र सुशोभित हो रहा है ॥५॥ § ६) वाणीमिति—जिनके निर्मल मनरूपी मानसरोवरमे स्याद्वादके द्वारा प्ररूपित उभयपक्ष रूपी पखोंसे युक्त, जिनेन्द्रदेवके मुख कमलसे निकली हुई तथा मिथ्या एकान्त रूपी मृणालोंके समूहको शीघ्र ही खण्ड-खण्ड करनेवाली द्वादशागरूपी हसी सदा क्रीडा करती है, सम्यग्ज्ञानके सागर वे गणधर देव मेरी वाणीको विस्तृत करें ॥६॥ § ७) श्रुतस्कन्धेति—निर्दोष, नेत्ररूपी कमलोंसे सहित, मन्दमुसकानरूपी हंससे सहित, अध-रोष्ठरूपी किसलयसे सहित, श्यामभृकुटिरूपी मरुवासे युक्त एवं वर्धमान रूपसे सहित जिनेन्द्र

§ ८) कल्याणं कलयन्तु पूर्वकवयः पीयूषकल्लोलिनी-
सल्लापिप्रथमानकोमलवचोधाराः स्फुरत्कीर्तयः ।
यैरादीश्वरसत्कथामृतझरी नीता प्रकाशं परं
संसारोद्भवतापमप्रतिहतं लोपं [1]नयन्त्यन्ततः ॥८॥

§ ९) आदीश्वरोदारकथारसज्ञा स्तुतिं गुरूणां तनुतां रसज्ञा ।
येषां कटाक्षामृतसेचनेन सुपुष्पिताभून्मम सूक्तिवल्ली ॥९॥

§ १०) जयन्तु श्रीमन्तः प्रथितजिनसेनार्यगुरवः
प्रवादिप्रागल्भ्योद्धुरशिखरदम्भोलिपटवः ।
दलन्मल्लीवल्लीकुसुमरससौरभ्यलहरी-
मुचा वाचा मोचाफलमधुरचौर्यैकचतुराः ॥१०॥

मरालस्तेनाढ्यं सहितम्, अधर एव प्रवालं किसलयो यस्मिन् तत्, नीलभ्रू श्यामभ्रुकुटिरेव मरुकः तन्नामवृक्षो यस्मिन् तत्, उदयद्रूपेण वर्धमानसौन्दर्येण कलितं सहितम् । रूपकालंकारः, शिखरिणीच्छन्दः ॥७॥ § ८) अथ पूर्वकवीन् स्तोतुमाह—कल्याणमिति—पीयूषकल्लोलिन्या सुधास्रवन्त्या सल्लापिनी सदृशी प्रथमाना प्रसिद्धा कोमला मृदुला वचोधारा वचनपङ्क्तिर्येषां तथाभूताः, स्फुरन्ती वर्धमाना कीर्तिर्येषां ते, पूर्वकवयः जिनसेनादयः, कल्याणं श्रेयः कलयन्तु कुर्वन्तु, यैः पूर्वकविभिः अप्रतिहतं अखण्डितं संसारोद्भवतापं भवभ्रमणसमुत्पन्नसंतापं अन्ततः सामस्त्येन लोपं विनाशं नयन्ती प्रापयन्ती आदीश्वरस्य भगवतो वृषभदेवस्य सत्कथैवामृतझरी पीयूषनिर्झरिणी परं सातिशयं प्रकाशं प्राकट्यं प्रख्यातिं वा नीता प्रापिता । रूपकालंकारः, शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥८॥ § ९) आदीश्वरेति—आदीश्वरस्य प्रथमतीर्थकरस्य उदारकथाया उत्कृष्टकथाया रसं जानातीति तथाभूता, रसज्ञा रसना, तेषां गुरूणामाशाधरसूरिवर्याणां स्तुतिं तनुताम् येषां कटाक्ष एवामृतं तस्य सेचनेन ममार्हद्दासस्य सूक्तिवल्ली सुभाषितलता, सुपुष्पाणि संजातानि यस्यां तथाभूता अभूत् । रूपकालंकारः । उपजातिवृत्तम् ॥९॥ § १०) जयन्त्विति—श्रीमन्तः काव्यलक्ष्मीयुक्ताः, प्रवादिनां प्रतिवादिनां प्रागल्भ्यमेवोद्धुरशिखरमुन्नतशृङ्गं तस्मिन् दम्भोलिवद् वज्रवत् पटवः समर्थाः प्रवादिमानशिखरभङ्क्तार इत्यर्थः, दलन्ति विकसन्ति यानि मल्लीवल्ल्या मालतीलतायाः कुसुमानि पुष्पाणि तेषां रसस्य मकरन्दस्य या सौरभ्यलहरी सौगन्ध्यसंततिस्तां मुञ्चति तथाभूता तया वाचा वाण्या मोचाफलस्य कदलीफलस्य मधुरो मधुररसस्तस्य चौर्येऽपहरणे एकचतुराः अतिनिपुणाः प्रथितजिनसेनार्यगुरवः प्रसिद्धजिनसेनाचार्याः, जयन्तु जयवन्तो भवन्तु । रूपकानुप्रासयोः संसृष्टिः ।

भगवान्‌का मुखरूपी उद्यान जिसका स्थान है आचारांगादि शाखाओंसे सुशोभित उस श्रुतस्कन्धरूप उन्नत वृक्षकी हम स्तुति करते हैं ॥७॥ § ८) कल्याणमिति—अमृतकी नदीके समान प्रसिद्ध तथा कोमल वचनावलीसे सहित एवं बढ़ती हुई कीर्तिसे युक्त वे पूर्व कवि कल्याण करें जिन्होंने अखण्डित संसारसे समुत्पन्न संतापको सम्पूर्ण रूपसे नष्ट करनेवाली आदीश्वर भगवान्‌की उत्तम कथा रूपी अमृतझरीको उत्कृष्ट प्रकाशमें लाया है ॥८॥ § ९) आदीश्वरेति—भगवान् वृषभदेवकी कथाके रसको जाननेवाली मेरी जिह्वा उन गुरुओंकी स्तुतिको विस्तृत करे जिनके कटाक्ष रूप अमृतके सींचनेसे मेरी सुभाषित रूपी लता सुपुष्पित हुई थी ॥९॥ § १०) जयन्त्विति—प्रवादियोंके गाम्भीर्यरूपी शिखरको गिरानेके लिए वज्रके समान निपुण तथा मालतीलताके खिले हुए पुष्परसकी सुगन्धिसन्ततिको छोड़नेवाली वाणीके द्वारा कदलीफलके मिठासके अपहरण करनेमें अतिशय चतुर श्रीमान् प्रसिद्ध जिनसेनाचार्य गुरु जयवन्त

---

१. नयत्यन्ततः क० ।

§ ११) श्रीमद्गौतमनामधेयगणभृत्प्रोवाच या निर्मला
ख्यातश्रेणिकभूभृते जिनपतेराद्यस्य रम्या कथाम् ।
तां भक्त्यैव चिकीर्षतो मम कृतिश्चम्पूप्रबन्धात्मिका
वेलातीतकुतूहलाय विदुषामाकल्पमाकल्पताम् ॥११॥

§ १२) जातेयं कवितालता भगवतो भक्त्याख्यबीजेन मे
चञ्चत्कोमलचारुशब्दनिचयैः[1] पत्रैः प्रकामोज्ज्वला ।
वृत्तैः पल्लविता ततः कुसुमितालंकारविच्छित्तिभिः
संप्राप्ता वृषभेशकल्पकतरुं व्यङ्ग्यश्रिया वर्धते ॥१२॥

§ १३) अथ विशालवीचिमालाविक्षिप्तविविधमौक्तिकपुञ्जसंजातमरालिकाभ्रमसमागतदृढालिङ्गनमङ्गलतरङ्गितकौतुकमराललोकविराजिततीरेण लवणाकरेण परिवृते, [2]अधःस्थितकुण्डली-

शिखरिणीच्छन्दः । § ११) श्रीमदिति—श्रीमद्गौतमनामधेयगणभृत् भगवतो वर्धमानस्य प्रधानगणधरः ख्यातश्रेणिकभूभृते प्रसिद्धश्रेणिकमहीपालाय आद्यस्य प्रथमस्य जिनपतेर्वृषभजिनेन्द्रस्य निर्मला निर्दोषा रम्या मनोहारिणी या कथा प्रोवाच जगाद, तां कथां भक्त्यैव न तु धनादिवाञ्छयैव चिकीर्षतः कर्तुमिच्छतः ममार्हद्दासस्य चम्पूप्रबन्धात्मिका चम्पूसन्दर्भरूपा 'गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते' इति चम्पूलक्षणम् । कृतिः रचना, विदुषां काव्यमर्मज्ञानां वेलातीतकुतूहलाय निर्मर्यादकौतुकाय आकल्पं कल्पकालपर्यन्तम्, आकल्पतां भवतु । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥११॥ § १२) जातेयमिति—भगवतो वृषभदेवस्य भक्त्याख्यबीजेन भक्त्यभिधानबीजेन जाता समुत्पन्ना मेऽर्हद्दासस्य इयं कवितालता काव्यवल्लरी, चञ्चन्तः शोभमानाः कोमलाः श्रुतिसुभगाः चारवो मनोहरार्थप्रतिपादकाश्च ये शब्दास्तेषां निचयैः समूहैः पत्रैः पर्णैः प्रकाममतिशयेनोज्ज्वला, वृत्तैश्छन्दोभिः पल्लविता किसलयिता ततस्तदनन्तरम् अलंकारविच्छित्तिभिरुपमारूपकाद्यलंकारशोभाभिः कुसुमिता पुष्पिता, वृषभेश एव कल्पतरुस्तं पुरुदेवकल्पानोकहं संप्राप्ता संश्रिता सती व्यङ्ग्यश्रिया ध्वनिलक्ष्म्या वर्धते । यथा तरुमाश्रित्य लता वर्धते तथा मदीया कवितालता भगवन्तं वृषभमाश्रित्य वर्धत इति भावः । रूपकालंकारः, शार्दूलविक्रीडितं छन्दः । § १३) अथ—प्रस्तावनानन्तरं कथामारभते—विशालवीचिमालाभिर्बृहत्तरङ्गसंततिभिः विक्षिप्तेषु विप्रकीर्णेषु विविधमौक्तिकपुञ्जेषु नानामुक्ताफलराशिषु संजातः समुत्पन्नो यो मरालिकाभ्रमो हंसीसंदेहस्तेन समागताः समायाताः, दृढालिङ्गनमङ्गलेन तरङ्गितं वृद्धिंगतं कौतुकं येषां तथाभूता ये मराल-

हों ॥१८॥ § ११) श्रीमदिति—श्रीमान् गौतम नामक गणधरने प्रसिद्ध श्रेणिक राजाके लिए आदिजिनेन्द्रकी जो निर्मल और रमणीय कथा कही थी उसे भक्तिसे ही बनानेकी इच्छा करनेवाले मुझ अर्हद्दासकी यह चम्पूप्रबन्ध रूप रचना कल्पकाल पर्यन्त विद्वानोंके अपरिमित कौतूहलके लिए हो ॥११॥ § १२) जातेयमिति—जो भगवान्‌के भक्तिनामक बीजसे उत्पन्न हुई है, शोभायमान कोमल एवं मनोहर अर्थके प्रतिपादक शब्दोंके समूह रूप पत्तोंसे अत्यन्त उज्ज्वल है, वसन्ततिलका आदि छन्दोंसे पल्लवित है, और अलंकारोंकी शोभासे पुष्पित है ऐसी मेरी यह कविता रूपी लता वृषभजिनेन्द्ररूपी कल्पवृक्षको प्राप्त होती हुई ध्वनिरूपी लक्ष्मीसे बढ़ रही है ॥१२॥ § १३) अथेति—तदनन्तर विशाल तरंगोंकी सन्ततिके द्वारा फैलाये हुए नाना प्रकारके मोतियोंकी राशिमें समुत्पन्न हंसियोंके भ्रमसे आगत, गाढ आलिंगनरूप मंगलसे बढ़े हुए कौतुकसे युक्त हंसोंसे जिसका तीर सुशोभित हो रहा है ऐसे लवणसमुद्रसे

१. चम्पु क० । २ क्षेत्रच्छदैः पूर्वविदेहमुख्यैरधःस्थितस्फारफणीन्द्रदण्डः । चकास्ति रुक्माचलकर्णिको यः सद्मश्रियः पद्म इवाब्धिमध्ये ॥ धर्मशर्माभ्युदय प्र० स० ।

न्द्रमृणालदण्डमण्डिततया, घननीलगगनतललोलम्बचुम्बितकाञ्चनगिरिकर्णिकतया च लक्ष्मीनिवासभूतलवणोदधिमध्यसंजातमञ्जुलकञ्जसभावनासंपादके जम्बुद्वीपे विराजमानस्य लवणतरङ्गिणीरमणपयोमयस्नेहपरीतजम्बूद्वीपभाजनमध्यप्ररूढदीपकलिकाशङ्काकरस्यामरधराधरस्य प्रत्यग्दिशाश्रिते, फलशालिशालीवनोपान्तमनुपतन्तीभिस्तद्विषयवास्तव्यनानानोकहशाखाशिखासमुद्भूतसमीरसमाकृष्टसुरापगागलितशैवालमालाभिरिव, समुन्नततरुतरुणसमालिङ्गितनभोलक्ष्मीवक्ष स्थलत्रुटितोज्झितमरकतमयमालामणिश्रेणिभिरिव, तद्देशमध्यस्थलालंकारभूतविजयार्धशिखरिसुरदन्तिसमुदस्ततुङ्गतमशृङ्गहस्तनिर्मूलितान्तरिक्षाकूपारपद्मिनीहरितपत्रमालाभिरिव शुक-

---

लोका हससमूहास्तैर्विराजित तीर यस्य तेन लवणाकरेण लवणोदेन परिवृते परिवेष्टिते, अध स्थितकुण्डलीन्द्र एव मृणालदण्डस्तेन मण्डिततया नीचै स्थितशेषनागविसदण्डशोभिततया, घननीलमतिशयनील घनैर्मेघैर्वा नीलं यद् गगनतल तदेव लोलम्बा भ्रमरास्तैश्चुम्बित काञ्चनगिरिकर्णिका सुमेरुकर्णिका यस्य तस्य भावस्तया, लक्ष्म्या निवासभूत लवणोदधिमध्यसजातं लवणसिन्धुमध्यसमुद्भूत यत् मञ्जुलकञ्ज मनोहरकमलं तस्य संभावनाया समुत्प्रेक्षाया संपादके समुद्भावके जम्बुद्वीपे प्रथमद्वीपे विराजमानस्य शोभमानस्य। लवणतरङ्गिणीरमणस्य लवणसमुद्रस्य पयोमयस्नेहेन जलरूपतैलेन परीत व्याप्त यत् जम्बूद्वीपभाजन जम्बूद्वीपपात्र तस्य मध्ये प्ररूढा प्रद्योतमाना या दीपकलिका तस्या शङ्काकरस्य संदेहोत्पादकस्य अमरधराधरस्य सुमेरुपर्वतस्य प्रत्यग्दिशाश्रिते पश्चिमाशास्थिते, गन्धिलविषये तन्नामदेशे, कथभूते गन्धिलदेशे, शुकपङ्क्तिभि कीरश्रेणिभि सदानीता शश्वत्प्रापिता वन्दनमाला यस्मिस्तथाभूते, कथभूताभि. शुकपङ्क्तिभिरिति तदेव विशिनष्टि—फलेति—फलशालीनि प्रसवशोभीनि यानि शालिवनानि सस्यक्षेत्राणि तेपामुपान्त समीपम् अनुपतन्तीभिरागच्छन्तीभि, तद्विषयेति—तद्विषयवास्तव्या तद्देशस्थिता ये नानानोकहा विविधवृक्षास्तेषा शाखाना शिखाभिरग्रभागै समुद्भूतो य समीर पवनस्तेन समाकृष्टा सुरापगाया वियद्गङ्गाया गलिता पतिता या शैवालमाला जलनीलीपङ्क्तयस्ताभिरिव, समुन्नतेति—समुन्नततरव समुत्तुङ्गवृक्षा एव तरुणा युवानस्तै. समालिङ्गित समाश्लिष्ट यद् नभोलक्ष्मीवक्ष स्थल गगनश्रिया उर स्थल तस्मात् आदौ त्रुटिता· पश्चादुज्झिता पतिता या मरकतमयमालाना हरितमणिमयमालाना मणिश्रेणयो मणिपङ्क्तयस्ताभिरिव, तद्देशेति—तद्देशमध्यस्थलस्यालंकारभूतो यो विजयार्धशिखरी खेचराद्रि स एव सुरदन्ती तस्य समुदस्त समुत्क्षिप्त तुङ्गतममत्युन्नत यत् शृङ्ग शिखर तदेव हस्त शुण्डा-

---

घिरा हुआ जम्बूद्वीप है। वह जम्बूद्वीप, नीचे स्थित शेषनागरूपी मृणालदण्डसे सुशोभित होने तथा अत्यन्त नील आकाशतलरूपी भ्रमरोंसे चुम्बित सुमेरुपर्वत रूपी डंठलसे युक्त होनेके कारण, लवण समुद्रके मध्यमे उत्पन्न हुए लक्ष्मीके निवासभूत मनोहर कमलकी सम्भावनाको उत्पन्न कर रहा है। उस जम्बूद्वीपमे वह सुमेरु पर्वत सुशोभित है जो कि लवण समुद्रके जलरूपी तैलसे व्याप्त जम्बूद्वीपरूपी पात्रके बीचमे उत्पन्न दीपककी लौकी शका करता रहता है। उसी सुमेरुपर्वतकी पश्चिम दिशामे एक गन्धिल देश है। उस गन्धिलदेशमे उन तोताओंकी पंक्तियोंसे सदा वन्दनमाला बँधी रहती है जो कि फलोंसे सुशोभित धान्यके वनोंके समीप वार-वार आती रहती हैं, जो उस देशमे रहनेवाले नाना वृक्षोंकी डालियोंके अग्रभागसे उत्पन्न वायुके द्वारा खिंची हुई आकाशगंगासे पतित शेवालकी सन्ततिके समान जान पडती हैं, जो अत्यन्त उन्नत वृक्षरूपी तरुण पुरुषोंके द्वारा आलिंगित आकाश लक्ष्मीके वक्ष स्थलसे टूट कर गिरे हुए हरे मणियोंकी मालाके मनकोंकी श्रेणीके समान जान पड़ती है, अथवा उस देशके मध्यस्थलके अलंकारस्वरूप विजयार्धपर्वत रूपी ऐरावत हाथीके ऊँचे उठे हुए अत्यन्त उन्नत शिखर रूपी सूडके द्वारा उखाड़ी हुई आकाश रूपी समुद्रकी कमलिनियोंके हरे पत्तोंकी मानो माला ही हों। वह देश समस्त देवसभाके

§ १४) मदीयरत्नप्रचय महार्घमाहृत्य सर्वं क्व नु गच्छसीति ।
रुषा पयोराशिरिवावृतोऽद्य यस्या' समीपे परिखा समिच्छे ॥१३॥

§ १५) यदीयकनकोज्ज्वलप्रथितसालमालाभितो
विभाति नगरश्रिया विधृतकाञ्चनक्षौमवत् ।
नभश्चरवसुधरारमणराजलक्ष्म्या पुनः
परीतनवहाटकप्रचुरकाण्डवस्त्रालिवत् ॥१४॥

§ १६) यस्याः शारदनीरदामलमहाहर्म्यावलिप्रोल्लसत्-
प्रख्याताम्बुजरागरत्नखचितैर्वातायनैर्विस्तृतैः ।
मार्तण्डाधिककान्तिभिर्द्युतटिनीपाथोजचक्राङ्गना
रात्रौ मीलनविप्रयोगविषयव्युत्पत्तिशून्याः कृता ॥१५॥

स्वदीप्तितरङ्गैः परिहसिता कुलाचला येन तस्य । § १४) अथालकाया परिखा वर्णयितुमाह—मदीयेति—महार्घं महामूल्य सर्वं निखिल मदीयश्चासौ रत्नप्रचयश्चेति मदीयरत्नप्रचयस्त मामकीनरत्नसमूहम्, आहृत्य अपहृत्य क्व नु गच्छसि । इति रुषा क्रोधेन आवृत परीत्य स्थित पयोराशिरिव सागर इव यस्या अलकाया समीपे परिखा खेयम् अस्तीति समिच्छे तर्कयामि । उपजातिवृत्तम्, उत्प्रेक्षालकार ॥१३॥ § १५) अथालकाया प्राकार वर्णयितुमाह— यदीयेति—अभित परित , यदीया यत्सबन्धिनी कनकोज्ज्वला सुवर्णनिर्मला प्रथिता प्रसिद्धा च या सालमाला प्राकारपङ्क्ति सा, नगरश्रिया नगरलक्ष्म्या विधृत यत् काञ्चनक्षौम सुवर्णवस्त्र तद्वत्, विभाति शोभते । पुनर्भूय नभश्चराणा विद्याधराणा यो वसुन्धरारमणो नृपस्तस्य राज्यलक्ष्म्या राज्यश्रिया, परीतानि परिधृतानि नवहाटकप्रचुराणि प्रत्यग्रभर्मव्याप्तानि काण्डवस्त्राणि चण्डातकानि 'लहँगा' इति प्रसिद्धानि कटिवस्त्राणि तेषामालि पङ्क्तिस्तद्वत् विभाति । उपमालकार । पृथिवीच्छन्द ॥१४॥ § १६) अथालकाया वातायनानि वर्णयितुमाह—यस्या इति—यस्या अलकाया , शारदनीरदा इव शरन्मेघा इवामला धवला या महाहर्म्यावलयो महाभवनपङ्क्तयस्तासु प्रोल्लसन्ति शोभमानानि प्रख्यातानि प्रसिद्धानि यानि अम्बुजरागरत्नानि पद्मरागरत्नानि तै खचितैर्व्याप्तैः विस्तृतैर्बृहद्भि , मार्तण्डादर्कादधिका कान्तिर्येषा तैः , तथाभूतैर्वातायनैर्गवाक्षै पाथोजानि च चक्राङ्गनाश्चेति पाथोजचक्राङ्गना द्युतटिन्या पाथोजचक्राङ्गना इति द्युतटिनीपाथोजचक्राङ्गना. मन्दाकिनीकमलचक्रवाक्य , रात्रौ रजन्या, मीलन च विप्रयोगश्चेति मीलनविप्रयोगौ निमीलनविप्रलम्भौ तौ विषयौ यस्यास्तथाभूता या व्युत्पत्ति कविसप्रदायस्तया शून्या रहिता कृता । यस्या वातायनैर्मन्दाकिन्याः कमलानि न निमीलन्ति चक्रवाक्यश्च न वियुक्ता भवन्तीति भाव । अतिशयोक्ति । शार्दूलविक्रीडित छन्दः ॥१५॥

---

§ १४) मदीयेति—जिस अलका नगरीके समीप परिखा ऐसी जान पड़ती है मानो 'मेरे समस्त महामूल्य रत्नोंके समूहको चुराकर कहाँ जाते हो,' इस क्रोधसे समुद्र ही उसे घेरकर स्थित हो ॥१३॥ § १५) यदीयेति—जिस नगरीके चारों ओर स्थित सुवर्णसे देदीप्यमान कोटोंकी पंक्ति नगरलक्ष्मीके द्वारा धारण किये हुए सुवर्णकी लडीवाले वस्त्रके समान सुशोभित होती है अथवा विद्याधर राजाकी राज्यलक्ष्मीके पहने हुए नवीन सुवर्णकी लड़ियोंसे व्याप्त कटि-वस्त्रों (लहँगों) की पंक्तिके समान जान पडती है ॥१४॥ § १६) यस्या इति—शरद् ऋतुके मेघोंके समान सफेद बड़े-बड़े महलोंके समूहमें सुशोभित प्रसिद्ध पद्मराग मणियोंसे जड़े हुए तथा सूर्यसे अधिक कान्तिसे युक्त जिसके बड़े-बड़े झरोखोंके द्वारा रात्रिमें आकाशगंगाके कमल और चकवियाँ निमीलित होने तथा बिछुड़ने सम्बन्धी कविसम्प्रदायसे शून्य कर दिये गये थे अर्थात् वहाँके ऊँचे-ऊँचे महलोंके लम्बे-चौड़े झरोखे सूर्यसे भी अधिक कान्तिवाले थे इसलिए रात्रिके समय आकाशगंगाके कमल निमीलित नहीं होते थे और चकवियाँ चकवोंसे

§ १७) यत्र च पूजोत्सवमङ्गलतरङ्गितदुन्दुभिमन्द्रतमनिध्वाननिर्भरेण, पिकनायकमदनिर्मूलननिदानललनाजनकलगीतकलाकल्लोलपल्लवितवल्लकीक्वणितकमनीयेन, विद्याधरीजनकलितलास्यवेलाचलितरशनादाममञ्जुमञ्जीररवमेदुरेण, तत्समाकर्णनवेलादोलायमानसगीतविद्यापारीणविद्याधरमुकुटतटघटितमालाजालोच्चलितचञ्चरीकसचयसकल्पितझङ्कारमनोहरेण, उत्सवकोलाहलेन जागरूकेव लक्ष्मीरालक्ष्यते ।

§ १८) द्विविधाः सुदृशो भान्ति यत्र मुक्तोपमाः स्थिताः ।
राजहसाश्च सरसान्तरङ्गविभवाश्रिताः ॥१६॥

§ १७) यत्रेति—यत्र च अलकानगर्याम्, उत्सवकोलाहलेन उद्धवकलकलेन लक्ष्मी. श्री जागरूकेव जागरणशीलेव, आलक्ष्यते दृश्यते इति कर्तृक्रियासवन्ध । अथोत्सवकोलाहल वर्णयितुमाह—पूजेति—पूजाया उत्सव एव मङ्गलं तस्मिन् तरङ्गिता वृद्धिगता ये दुन्दुभीना पटहाना मन्द्रतमा अतिगम्भीरा निध्वाना. शब्दास्तैर्निर्भरेण सभृतेन, पिकेति—पिकनायकस्य कोकिलश्रेष्ठस्य यो मदो गर्वस्तस्य निर्मूलन निराकरण तस्य निदानमादिकारण यत् ललनाजनस्य स्त्रीसमूहस्य कलगीत मधुरगीत तस्य कलाया वैदग्ध्या कल्लोलैं परम्पराभि. पल्लवितं वृद्धिगते यद् वल्लकीक्वणित वीणाशब्दस्तेन कमनीयेन मनोहरेण, विद्याधरीति—विद्याधरीजनेन खेचराङ्गनासमूहेन कलित कृत यत् लास्य नृत्य तस्य वेलाया समये चलितानि यानि रसनादाममञ्जुमञ्जीराणि मेखलादाममनोहरनूपुराणि तेषा रवः शब्दस्तेन मेदुरेण वृद्धिगतेन, तत्समाकर्णनेति—तस्य रवस्य समाकर्णनवेलाया श्रवणसमये दोलायमानानि कम्प्यमानानि सगीतविद्यापारीणविद्याधराणा सगीतकलाकुशलखेचराणा यानि मुकुटतटानि मौलितटानि तत्र घटितानि धृतानि यानि मालाजालानि स्रक्निकुरम्बाणि तेभ्य उच्चलिता उत्पतिता ये चञ्चरीका भ्रमरास्तेषा सचय समूहस्तेन सकल्पित कृतो यो झङ्कारोऽव्यक्तशब्दस्तेन मनोहरेण रम्येण । § १८) द्विविधा इति—यत्रालकाया स्थिता कृतनिवासा द्विविधा द्विप्रकारा सुदृश॰ सुष्ठु दृशौ नयने यासा तथाभूता सुलोचना स्त्रिय. सुष्ठु दृग् सम्यग्दर्शन येषा तथाभूता. सम्यग्दृष्टय , भान्ति शोभन्ते । उभयो सादृश्यमाह—मुक्तोपमा , सुलोचनापक्षे मुक्ता त्यक्ता उपमा याभिस्ता निरुपमा इत्यर्थ , सम्यग्दृष्टिपक्षे मुक्ताना मुक्ताफलाना सिद्धाना वा उपमा येषा तथाभूता. । राजहसाश्च राजहसा अपि द्विविधा द्विप्रकारा कलहसा नृपोत्तमाश्च भान्ति 'राजहसस्तु कादम्बे कलहसे नृपोत्तमे' इति विश्वलोचन. । उभयो सादृश्यमाह—सरसामिति तत्र कलहसपक्षे सरसा कासाराणा तरङ्गविभव कल्लोलवैभवम् आश्रिता.

बिछुड़ती नहीं थीं ॥१५॥ § १७) यत्र चेति—पूजाके उत्सवरूप मंगलकार्योंमें बजते हुए दुन्दुभियोंके अत्यन्त गम्भीर शब्दोंसे जो भरा हुआ था, श्रेष्ठ कोयलोंका गर्व दूर करनेवाली स्त्रीजनोंकी मधुर गानकलासे वृद्धिगत वीणाके निनादसे जो मनोहर था, विद्याधरियोंके द्वारा किये हुए नृत्यके समय चंचल मेखलादाम और मनोहर नूपुरोंके शब्दोंसे जो मिला हुआ था, तथा उस संगीतके सुनते समय हिलते हुए संगीतविद्यामें निपुण विद्याधरोंके मुकुटतटोंमें स्थित मालाओंके समूहसे उड़े हुए भ्रमरोंके समूहसे कृत झंकारसे जो मनोहर था''ऐसे उत्सव सम्बन्धी कोलाहलसे जिस अलका नगरीमें लक्ष्मी ऐसी जान पड़ती थी मानो जागृत ही रहती है । § १८) द्विविधा इति—जिस नगरीमें रहनेवाले दो प्रकारके सुदृश्—सुन्दर नेत्रोंवाली स्त्रियाँ और सम्यग्दर्शनसे सहित मनुष्य सुशोभित होते हैं क्योंकि दोनों ही मुक्तोपमा हैं अर्थात् स्त्रियाँ तो उपमारहित—अनुपम है और सम्यग्दृष्टि मुक्ताओं अथवा सिद्धोंकी उपमाको धारण करनेवाले हैं। इसी प्रकार जिस अलकानगरीमें दो प्रकारके राजहंस—कलहंस पक्षी और श्रेष्ठ राजा सुशोभित होते हैं क्योंकि जिस प्रकार कलहंसपक्षी 'सरसा तरङ्ग-

१. मकुट क०

§ १९) या खलु घनश्रीसपन्ना निभृतसामोदसुमनोऽभिरामा सकलसुदृग्भिः शिरसा श्लाघ्यमानमहिममहिता विविधविचित्रविशोभितमालाढ्या अलकाभिधानमर्हति।

§ २०) अलकाभिख्यया जुष्टा विकचाब्जसरोमुखी।
निस्तमस्कापि या चित्रमुत्तमस्फुरणोज्ज्वला ॥१७॥

प्राप्ता, नृपोत्तमपक्षे सरस सस्नेह यदन्तरङ्ग चित्त तस्य विभवम् आश्रिता. प्राप्ता'। श्लिष्टोपमा ॥१६॥ § १९) या खल्विति—खलु निश्चयेन या अलकानगरी अलकाभिधानम् अलका इति अभिधान नामधेयमलकाभिधानम् अर्हति पक्षे अलकाश्चूर्णकुन्तला इति अभिधानम् अर्हति तद्योग्या वर्तते इति भाव । अथालकानगरीचूर्णकुन्तलयो सादृश्यमाह—घनश्रीसपन्ना घना चासौ श्रीश्चेति घनश्री प्रभूतलक्ष्मीस्तया सपन्ना सहिता अलकानगरी पक्षे घनस्य मेघस्येव श्री शोभा श्यामलतेति यावत् तया सपन्ना। निभृतेति—निभृता स्थिता सामोदा सहर्षा ये सुमनसो विद्वासस्तैरभिरामा मनोहरा अलकानगरी, पक्षे निभृता स्थापिता सामोदा अतिनिर्हारिगन्धयुक्ता सुमनस पुष्पाणि ताभिरभिरामा । शिरसा उत्तमाङ्गेन श्लाघ्यमानमहिममहिता श्लाघ्यमान' प्रशस्यमानो यो महिमा तेन महिता अलकानगरी, पक्षे चूर्णकुन्तला अपि शिरसा प्रशस्यमानमहिमोपेता । विविधेति—विविधा अनेकप्रकारा विचित्रा विचित्रवर्णाश्च ये वय पक्षिणस्तै शोभिनो ये तमालास्तमालवृक्षास्तैराढ्या सहिता अलकानगरी, पक्षे विविधा अनेकप्रकारेण गुम्फिता विचित्रा नानावर्णकुसुमकलिता विशोभिता नितरा शोभिताश्च या माला स्रजस्ताभि आढ्या सहिता । श्लिष्टोपमा। § २०) अलकेति—अब्जसरोमुखी अब्जसर कमलोपलक्षितसरोवर एव मुख यस्यास्तथाभूता या नगरी अलकाभिख्यया अलकाना चूर्णकुन्तलाना केशानामभिख्यया शोभया जुष्टा सहितापि विकचा विगता कचा केशा यस्यास्तथाभूता अभूदिति विरोध पक्षे अलकाभिख्यया अलकेति नाम्ना 'अभिख्या नामशोभयो' इत्यमर । सहितापि विकचाब्जसरोमुखी विकचानि विकसितानि यानि अब्जानि कमलानि तैरुपलक्षितं सरो विकजाब्जसर तद् मुख यस्यास्तथाभूता। किंच, उज्ज्वला निर्मला या निस्तमस्कापि निर्गत तमो यस्यास्तथाभूतापि नानामणिमरीचिनिरस्ततिमिरापि उत्तमस्फुरणा उद्गत प्रकटित तमस्फुरण तिमिरसचारो यस्या तथाभूता वर्तते इति चित्रमाश्चर्यं 'ध्वान्त सतमस तमम्' इति धनजयोक्तेरकारान्तोऽपि तमशब्द प्रयुज्यते अथवा 'खर्परशरि विसर्गलोपो वा वक्तव्य' इति वार्तिकेन तमसो विसर्गस्य लोप पक्षे उत्तमस्फुरणोज्ज्वलेत्येक पदम्, उत्तमाना श्रेष्ठाना स्फुरणेन सचारेण उज्ज्वला

विभवाश्रित' होते है अर्थात् सरोवरोंके तरगरूपी विभवको प्राप्त होते हैं उसी प्रकार श्रेष्ठ राजा भी सरसान्तरग विभवाश्रित होते हैं अर्थात् स्नेहयुक्त अन्तःकरणके विभवको प्राप्त होते हैं ॥१६॥ § १९) या खल्विति—जो नगरी निश्चय ही अलकाभिधान—अलका इस नामको अथवा चूर्णकुन्तल—केश इस नामको धारण करनेके योग्य है क्योंकि नगरी तो घनश्रीसम्पन्ना—सातिशय लक्ष्मीसे सहित है और केश मेघोंके समान कालीकान्तिको धारण करते हैं, नगरी उसमें रहनेवाले प्रसन्नचित्त विद्वानोंसे मनोहर है और केश धारण किये हुए सुगन्धित पुष्पोंसे मनोहर हैं, नगरी सिरसे प्रशंसनीय महिमासे युक्त है और केश भी सिरपर शोभायमान महिमासे युक्त हैं, नगरी नाना प्रकारके रग-बिरंगे पक्षियोंसे सुशोभित तमालवृक्षोंसे युक्त है और केश भी नाना प्रकारकी गुम्फित रग-बिरगी मालाओंसे सहित हैं। § २०) अलकेति—कमलोंका सरोवर ही जिसका मुख है ऐसी वह नगरी अलकाभिख्या—केशोंकी शोभासे सहित होकर भी विकचा—केशरहित है (पक्षमे अलका इस नामसे युक्त होकर भी विकचाब्जसरोमुखी है—खिले हुए कमलोंसे सुशोभित सरोवररूप मुखसे सहित है) तथा देदीप्यमान रहनेवाली वह अलका नगरी निस्तमस्का—अन्धकारसे रहित होकर भी उत्तमस्फुरणा—अन्धकारके संचारसे सहित है (पक्षमे नाना मणियोंके प्रकाशसे सहित होनेके कारण निस्तमस्का—अन्धकार रहित होकर उत्तमस्फुरणोज्ज्वला—उत्तम मनुष्योंके संचारसे

§ २१) शास्ता तस्याः सकलखचरक्ष्मापकोटीरकोटी-
खेलन्मालासदृशविलसच्छासनः संबभूव ।
धीर. श्रीमानतिबल इति ख्यातनामा खगेन्द्रः
प्रख्यातश्रीर्निजकुलमहामेरुमन्दारशाखी ॥१८॥

§ २२) गङ्गीयन्ति सदा समस्तसरितो रौप्याचलन्त्यद्रयो
नीलाब्जानि सिताम्बुजन्ति गजता जम्भारिकुम्भीयति ।
चन्द्रत्यम्बुजबान्धवः पिककुलं लीलामरालायते
कर्पूरन्ति च कज्जलानि विलसद्यत्कीर्तिसंघट्टतः ॥१९॥

§ २३) यदीयकीर्तिकल्लोलैर्विश्वस्मिन्विशदीकृते ।
वैरिस्त्रीवदनाब्जानि मलिनानि बताभवन् ॥२०॥

निर्मला । विरोधाभास ॥१७॥ § २१) अथ नगरीवर्णनानन्तर नृपति वर्णयितुमाह—शास्तेति—तस्या अलकाया· शास्ता रक्षको नृपतिरिति यावत् अतिबल इति ख्यातनामा प्रसिद्धाभिधान , खगेन्द्रो विद्याधरेन्द्र संबभूव । अथ तस्यैव विशेषणान्याह—सकलेति—सकला निखिला ये खचरक्ष्मापा विद्याधरराजास्तेषा कोटीर-कोटीषु मुकुटाग्रभागेषु खेलन्ती विलसन्ती या माला तस्या सदृश विलसच्छोभमान शासन यस्य स , धीरो गभीर श्रीमान् लक्ष्मीमान् प्रख्यातश्री. प्रसिद्धलक्ष्मीक , निजेति—निजकुलमेव स्ववश एव महामेरु सुमेरुस्तत्र मन्दार-शाखी कल्पवृक्षः । रूपकालकार , मन्दाक्रान्ताच्छन्द ॥१८॥ § २२) अथातिबलनृपते कीर्ति वर्णयितुमाह—गङ्गीयन्तीति—'मालिन्य व्योम्नि पापे यशसि धवलता वर्ण्यते हासकीर्त्यो ' इति कविसप्रदायात्कीर्ति शुक्ला वर्ण्यते तत्संसर्गादशुक्ला अपि पदार्था· शुक्ला वर्ण्यन्ते, तथाहि—विलसन्ती शोभमाना यत्कीर्ति यदीयसमज्ञा तस्या सघट्टत. ससर्गात् 'यश कीर्ति· समज्ञा च' इत्यमर । सदा शश्वत् समस्तसरितो निखिलनद्य , गङ्गीयन्ति गङ्गेवाचरन्ति शुक्ला भवन्तीति भाव । अद्रयो गिरय , रौप्याचलन्ति विजयार्धवदाचरन्ति, नीलाब्जानि नील-कमलानि सिताम्बुजन्ति शुक्लकमलवदाचरन्ति, गजता हस्तिसमूह , जम्भारिकुम्भीयति ऐरावतवदाचरति, अम्बुजबान्धव सूर्य , चन्द्रति चन्द्रवदाचरति, पिककुल कोकिलसमूह लीलामरालायते क्रीडाहंसवदाचरति, कज्जलानि च कर्पूरन्ति घनसारवदाचरन्ति । तद्गुणानुप्राणितोपमालकार , शार्दूलविक्रीडितच्छन्द ॥१९॥ § २३) यदीयेति—यदीया चासौ कीर्तिश्च यदीयकीर्तिस्तस्या कल्लोलै. परम्पराभि विश्वस्मिन् जगति विशदीकृते धवलीकृते सति वैरिस्त्रीणा शत्रुसीमन्तिनीना वदनाब्जानि मुखकमलानि मलिनानि कृष्णानि

उज्ज्वल है)॥१७॥ § २१) शास्तेति—समस्त विद्याधर राजाओंके मुकुटोंके अग्रभागपर सुशोभित होनेवाली मालाके समान जिसकी आज्ञा सुशोभित हो रही है, जो अत्यन्त धीर वीर लक्ष्मी-मान्, प्रसिद्ध लक्ष्मीसे युक्त तथा अपने वंशरूपी महामेरु पर्वतपर कल्पवृक्ष स्वरूप था ऐसा अतिबल नामका विद्याधरेन्द्र उस अलका नगरीका शासक था ॥१८॥ § २२) गंगीयन्तीति—जिस अतिबल राजाकी कीर्तिके संसर्गसे समस्त नदियाँ सदा गंगानदीके समान आचरण करती हैं, पर्वत विजयार्धके समान आचरण करते हैं, नीलकमल सफेद कमलोंके समान जान पड़ते हैं, हाथियोंका समूह इन्द्रके हाथी—ऐरावतके समान हो जाता है, सूर्य चन्द्रमाके समान आचरण करता है, कोकिलोंका समूह क्रीड़ाहंसके समान हो जाता है और कज्जल कपूरके समान आचरण करते हैं॥१९॥ § २३) यदीयेति—जिसकी कीर्तिकी परम्परासे समस्त संसारके सफेद हो जानेपर शत्रुस्त्रियोंके मुखकमल काले पड़ गये थे यह खेदकी बात थी

§ २४) यस्य प्रतापतपनेन विलीयमाने
लेखाचले रजतलिप्तधराधरे च ।
यत्कीर्तिशीतलसुपर्वनदीतरङ्गै—
रङ्गीकृतौ सपदि तौ स्थिरतामयाताम् ॥२१॥

§ २५) रामा मनोहरा नाम बभूव वसुधापते. ।
सौन्दर्यसिन्धुलहरी मदनिर्धूममञ्जरी ॥२२॥

§ २६) यस्याः किल मृदुलपदयुगल गमनकलाविलासतिरस्कृतहसकमपि विश्वस्तलालितहसक, विद्रुमशोभाञ्चितमपि पल्लविताशोकद्रुमशोभाञ्चित, जङ्घायुग जङ्घालताविरहितमपि जङ्घालता-

---

अभवत्, वत खेदे ॥२०॥ § २४) यस्येति—यस्यातिवलखगेन्द्रस्य प्रताप एव तपनस्तेन प्रतापसूर्येण लेखाचले सुरगिरौ सुवर्णात्मकसुमेरुपर्वते, रजतलिप्तधरावरे च रौप्यात्मकविजयार्धपर्वते च विलीयमाने विद्रुते सति, यत्कीर्तिरेव यदीयसमज्ञैव शीतलसुपर्वनदी शीतलगङ्गासरित् तस्यास्तरङ्गै, अङ्गीकृतौ स्वीकृतौ तौ सुमेरुविजयार्धपर्वतौ सपदि शीघ्र स्थिरता दृढताम् अयाताम् प्रापतु । रूपकालकार, वसन्ततिलकावृत्तम् ॥२१॥ § २५) अथ राज्ञी वर्णयितुमाह—रामेति—वसुधापते अतिवलनृपते मनोहरा नाम मनोहरानाम्नी रामा वल्लभा बभूव । तस्या एव विशेषणान्याह—सौन्दर्येति—सौन्दर्यमेव सिन्धु सौन्दर्यसिन्धु लावण्यसागरस्तस्य लहरी वीचि , मदेति – मदस्य गर्वस्य निर्धूममञ्जरी प्रज्वलितज्वाला । रूपकालकार ॥२२॥ § २६) अथ विरोधाभासालकारेण राज्ञी वर्णयितुमाह—यस्या इति—यस्या मनोहराया. किल मृदुलपदयुगल कोमलचरणयुग गमनकलाया विलासेन तिरस्कृता' पराभूता हसा मराला येन तथाभूतमपि विश्वस्त यथा स्यात्तथा लालिता प्रसादिता हसा येन तदिति विरोध , परिहारपक्षे विश्वस्त निश्चिन्त यथा स्यात्तथा लालितो धृतो हसक पादकटको येन तत् 'हसक पादकटक ' इत्यमर । विगतो द्रुमो विद्रुमो वृक्षाभावस्तस्य शोभयाञ्चित सहितमपि पल्लवितः किसलययुक्तो योऽशोकद्रुम कङ्केलिवृक्षस्तस्य शोभयाञ्चितमिति विरोध , यद् वृक्षशोभारहित तद् वृक्षशोभासहित कथ भवेदित्यर्थ , परिहारपक्षे विद्रुम प्रवाल 'मूगा' इति हिन्दीभाषाया तस्य शोभयाञ्चितमपि पल्लविताशोकद्रुमशोभाञ्चितम् 'विद्रुम पुसि प्रवाल पुनपुसकम्' इत्यमर । यस्या मनोहराया जङ्घायुग प्रसृतायुग 'पिंडरी' इति हिन्दीभाषायाम्, जङ्घालता शीघ्रगामिता तया विरहितमपि जङ्घालताविख्यात शीघ्रगामिता प्रसिद्धमिति विरोध 'जङ्घालोऽतिजवस्तुल्यौ' इत्यमर । परिहारपक्षे शीघ्रगामितारहित-

---

॥२०॥ § २४) **यस्येति**—जिस अतिबल राजाके प्रतापरूपी सूर्यके द्वारा सुमेरु और विजयार्ध पर्वत पिघल गये थे परन्तु उसी अतिबल राजाकी कीर्तिरूपी शीतल गंगानदीकी तरंगोंसे स्वीकृत होनेपर वे दोनों शीघ्र ही दृढताको प्राप्त हो गये थे ॥२१॥ § २५) **रामेति**—राजा अतिबलकी मनोहरा नामकी रानी थी । वह मनोहरा सौन्दर्यरूपी समुद्रकी लहर और गर्वरूपी अग्निकी प्रज्वलित ज्वालाके समान जान पडती थी॥२२॥ § २६) **यस्या इति**—जिस मनोहरा रानीके कोमल चरणयुगलने गमनकलाकी शोभासे यद्यपि हसपक्षीको तिरस्कृत कर दिया था तो भी उसने विश्वास पूर्वक हस पक्षियोको प्रसन्न किया था, उनके साथ प्यार किया था तथा विद्रुमवृक्षोंकी शोभासे रहित होकर भी विद्रुमकी शोभासे युक्त थे (परिहार पक्षमें रानीके कोमल चरणयुगलने यद्यपि गमनकलाकी शोभासे हंसपक्षियोंको तिरस्कृत कर दिया था तो भी निश्चिन्तताके साथ उसने हसक—पादकटक (तोडर या पैजना) को धारण किया था और वे विद्रुम—वृक्षकी शोभासे रहित होनेपर भी विद्रुम—प्रवाल—मूंगाकी शोभासे सहित थे अर्थात् मूगाके समान लालवर्ण थे । उसकी जघाओ (पिंडरियों)का युगल जघालता—शीघ्रगामितासे रहित होनेपर भी जघालता—शीघ्रगामितासे प्रसिद्ध था (परिहार पक्षमे

विख्यातं, ऊरुद्वयं तु रम्भासमानमप्यरम्भासमानं, मध्यं पुनस्तनुसगतमपि अतनुसगत, स्तनमण्डलं तु विवेकवार्तापरिहीनमपि क्षमाधरकलितविद्वेषमपि सुवृत्तशोभित नमत्सरमपि कुम्भीन्द्रकुम्भयुग्मे समत्सर कण्ठतल च धूतदरमपि कान्तमहादरविराजितं कोमलाधरबिम्ब पुनर्बहुरागरञ्जितमपि तिरस्कृतपल्लवं, नवसुधारसोज्ज्वलमपि वसुधारसोज्ज्वलम्, विशालनयनद्वन्द्वं कर्णप्रणयपरीतमपि

मपि जङ्घा लतेवेति जङ्घालता तया विख्यातम्, यस्या ऊरुद्वयं तु सक्थियुगल तु रम्भासमानमपि कदलीसदृशमपि अरम्भासमान न कदलीसमानमिति विरोध । परिहारपक्षे अरमत्यन्त भासमान शोभमानम्, यस्या मध्यम् अवलग्न कटिप्रदेश इत्यर्थ., पुन· तनुसगतमपि शरीरसगतमपि अतनुसगत न शरीरसगतमिति विरोध , परिहारपक्षे अतनुः कामस्तेन सगत सहित, यस्या स्तनमण्डल कुचमण्डल तु विवेकस्य विचारस्य वार्तया परिहीन रहितमपि क्षमाधरै. शान्तपुरुषै सह कलित कृतो विद्वेषो येन तथाभूतमपि सुवृत्तशोभित सदाचारशोभितमिति विरोध. यत् सदसद्विवेकरहित शान्तजनद्वेपि च भवति तत् कथ सदाचारशोभित स्यादिति भाव , परिहारपक्षे विवेकवार्ता पीवरत्वाद्भेदवार्ता तया परिहीनमपि, कठिनत्वात् क्षमाधरै पर्वतै सह कलितविद्वेषं कृतविद्वेपमपि सुवृत्त वर्तुलाकारम् अतएव शोभितं 'वृत्तस्तु वर्तुलेऽतीते मृते ख्याते दृढे वृते । त्रिषु वृत्त तु चरिते वृत्त छन्दसि वर्तते ॥' इति विश्वलोचन । तदेव स्तनमण्डल नमत्सरमपि मात्सर्यरहितमपि कुम्भीन्द्रकुम्भयुग्मे गजेन्द्रगण्डयुगले समत्सर मात्सर्यसहितमिति विरोध , परिहारपक्षे नमन् सरो हारो यस्मिन् तत् नमत्सरम् । यस्या कण्ठतल च ग्रीवातल च धूतस्तिरस्कृतो दर शङ्खो येन तथाभूतमपि कान्तमहादर. सुन्दरमहाशङ्खस्तद्वद् विराजितमिति विरोध , परिहारपक्षे कान्तस्य वल्लभस्य महादरेण महाप्रीत्या विराजित शोभितम् । यस्या कोमलाधरविम्व मृदुलदन्तच्छदबिम्ब पुन बहुरागरञ्जित प्रभूतालक्तकरागेण रञ्जितमपि तिरस्कृत पल्लवोऽलक्तकरागो येन तदिति विरोध , परिहारपक्षे सौन्दर्यातिशयेन तिरस्कृत पल्लव किसलयो येन तत्, 'पल्लवो विस्तरे खड्गे शृङ्गारालक्तरागयो । चलेऽप्यस्त्री तु किसले विटपेऽपि च पल्लव ॥' इति विश्वलोचन । तदेव कोमलाधरबिम्व वसुधारसेन यावकरसेनोज्ज्वल न भवतीति न वसुधारसोज्ज्वल तथाभूतमपि वसुधारसेन यावकरसेनोज्ज्वलमिति विरोध , परिहारपक्षे नवसुधाया इव नव्यपीयूपस्येव रसस्तेनोज्ज्वलमपि वसुधारसेन यावकर-

---

शीघ्रगामितासे रहित होनेपर भी जंघारूपी लतासे प्रसिद्ध था) उसका ऊरुयुगल—जांघोंका युगल रम्भा समान—केलाके स्तम्भके समान होकर भी अरंभा समान—केलाके स्तम्भके समान नहीं था (परिहार पक्षमें केलाके स्तम्भके समान होकर भी अरं—अत्यन्त भासमान—शोभमान था)। उसका मध्यभाग तनुसंगत—शरीरसे संगत—जुड़ा हुआ होनेपर अतनुसंगत था—शरीरसे संगत नहीं था (परिहार पक्षमे तनुसंगत होनेपर भी अतनु—अनंग—कामसे संगत था अर्थात् अपनी सुन्दरतासे कामको उत्पन्न करनेवाला था)। उसका स्तनमण्डल यद्यपि विवेकवार्तासे हिताहितके ज्ञानकी चर्चासे रहित था तथा क्षमाधर—क्षमाशील मनुष्योंके साथ द्वेष करता था तो भी सुवृत्त—सदाचरणसे सुशोभित था, इसी प्रकार नमत्सर—ईर्ष्यासे रहित होनेपर भी गजेन्द्रके गण्डस्थलमे समत्सर—ईर्ष्यासे सहित था (परिहार पक्षमें विवेकवार्ता—भेदवार्तासे रहित था अर्थात् अत्यन्त स्थूल होनेके कारण परस्पर सटा हुआ था और कठोरताके कारण क्षमाधर—पर्वतसे भी द्वेष करता था अर्थात् पर्वतसे भी कहीं अधिक कठोर था एवं सुवृत्त—गोलाकारसे सुशोभित था, तथा नमत्सर नम्रीभूत सर—हारसे सहित होकर भी आकृतिकी अपेक्षा गजेन्द्रके गण्डस्थलके साथ समत्सर—ईर्ष्या करने वाला था)। उसका कण्ठतल धूतदर—शखका तिरस्कार करने वाला होकर भी कान्तमहादरविराजित—सुन्दर एवं विशाल शखके समान सुशोभित था (परिहारपक्षमें शंखका तिरस्कर्ता होनेपर भी कान्तमहादर पतिके महान् आदरसे सुशोभित था)। उसका कोमल अधर विम्ब बहुराग—बहुत भारी यावक अर्थात् ओठोंमे लगाने योग्य लालरगसे रंजित—रंगा हुआ

कृष्णार्जुनरुचिमेदुर मुखकमलं पुनः कृतराजविद्वेषमपि राजोल्लासमादधान भोगहितमपि नभोगहित विरराज।

§ २७) महाबलख्यातसुतस्तयोरभून्महोदय' सर्वकलासु कोविद' ।
सुतेषु भिन्नेष्वपि सत्सु यन्मयी प्रमोदवल्ली ववृधे महीपतेः ॥२३॥

§ २८) कलासरणिलासिकाविविधलास्यरङ्गस्थली-
निकाशरसनाञ्चलो निखिलकोविदोल्लासकः।

सेनोज्ज्वल शोभमानम् । यस्या विशालनयनद्वन्द्व दीर्घलोचनयुगल कर्णस्य राधेयस्य प्रणयेन प्रीत्या परीतमपि व्याप्तमपि कृष्णार्जुनयो वासुदेवपार्थयो रुच्या प्रीत्या मेदुरमिति विरोध कर्ण कौरवपक्षपाती कृष्णार्जुनौ तु पाण्डवपक्षपातिनौ तयोरेकत्र प्रीतिर्विरुद्धेति भाव । परिहारपक्षे कर्णयो श्रोत्रयो प्रणय प्राप्तिस्तेन परीतमपि श्रोत्रपर्यन्तदीर्घमिति भाव । कृष्णार्जुनरुचिभ्या कृष्णशुक्लकान्तिभ्या मेदुर सहितम् । यस्या मुख कमल वदनवारिज कृतो विहितो राज्ञा चन्द्रेण विद्वेषो विरोधो येन तथाभूतमपि राज्ञ उल्लास राजोल्लास चन्द्रोल्लासम् आदधान कुर्वाणमिति विरोध यच्चन्द्रद्वेषि तदेव चन्द्रोल्लासि कथ भवेदिति भाव, परिहारपक्षे राज्ञो नृपस्य पत्युरुल्लासमादधानम्, 'राजा प्रभौ नृपे चन्द्रे यक्षे क्षत्रियशक्रयो ' इति विश्व । तदेव मुखकमल भोगाय हितमपि भोगाय हित न भवतीति नभोगहितमिति विरोध, परिहारपक्षे नभसि गच्छतीति नभोगोऽतिबलविद्याधरस्तस्मै हितम्, विरराज शुशुभे ॥ सर्वत्र श्लेषानुप्राणितो विरोधाभासालकार । अथ तयो पुत्र वर्णयितुमाह—§ २७) महाबलेति—सा च स चेति तौ तयो मनोहरातिबलयो महोदयो महावैभवशाली सर्वकलासु निखिलचातुरीषु कोविदो विद्वान् 'विद्वान् विपश्चिद्दोषज्ञ सन्सुधी कोविदो बुध ' इत्यमर । महाबलख्यातसुतो महाबलाभिधान पुत्र अभूत् । भिन्नेषु अन्येषु सुतेषु सत्स्वपि यन्मयी यत्सबन्धिनी महीपते राज्ञ प्रमोदवल्ली हर्षलता ववृधे वृद्धिगता । वशस्थवृत्तम् ॥२३॥ § २८) कलासरणीति—कलासरणिरेव वैदग्धीसततिरेव लासिका नर्तकी तस्या विविधलास्याना नानानृत्याना रङ्गस्थली रङ्गभूमिस्तस्या निकाश सदृशो रसनाञ्चलो जिह्वाग्र-

---

होने पर भी पल्लव—यावकको तिरस्कृत करनेवाला था (परिहार पक्षमे बहुतभारी यावकसे रंगा हुआ होकर भी पल्लव—वृक्षकी नवीन कोंपलको तिरस्कृत करनेवाला था अर्थात् उससे भी कहीं अधिक लाल था) । तथा नवसुधारसोज्ज्वल—वसुधारस—यावकरस—लालरंगसे उज्ज्वल न होकर भी वसुधारससे उज्ज्वल था (परिहार पक्षमे नवसुधारस—नूतन अमृतके समान रससे उज्ज्वल होकर भी वसुधारस—यावक—लालरंगसे उज्ज्वल था। उसके दीर्घनेत्रोंका युगल कर्ण प्रणय—राधाके पुत्र—अंगदेशके राजा कर्णके स्नेहसे सहित होकर भी कृष्णार्जुनरुचि—श्रीकृष्ण तथा अर्जुनकी प्रीतिसे सहित था (परिहार पक्षमे कर्णप्रणय कानोंकी प्राप्तिसे सहित थे अर्थात् कानों तक लम्बे थे और कृष्ण—काली तथा अर्जुन—सफेद रुचि—कान्तिसे सहित था) । तथा उसका मुखकमल कृतराजविद्वेष—राजा अर्थात् चन्द्रमाके साथ द्वेष करनेवाला होकर भी राजोल्लास—चन्द्रमाके उल्लासको धारण करनेवाला था (परिहार पक्षमे सौन्दर्यसे चन्द्रमाके साथ द्वेष करता हुआ भी राजा—पति अतिबल राजाके उल्लास—आनन्दको धारण करनेवाला था) और भोगहित—भोगके लिए हितकारक होकर भी नभोगहित—भोगके लिए हितकारक नहीं था (परिहार पक्षमे भोगके लिए हितकारक होकर भी नभोगहित—आकाशगामी राजा अतिबल विद्याधरके लिए हितकारी था) । § २७) महाबलेति—उन अतिबल और मनोहराके महावैभवशाली तथा समस्त कलाओंमे निपुण महाबल नामका पुत्र हुआ। अन्य पुत्रोंके रहने पर भी जिससे सम्बन्ध रखने वाली राजाकी हर्षरूपी लता ऋद्धिको प्राप्त हुई थी ॥२३॥ § २८) कलासरणीति—कलाओंकी सन्ततिरूपी नृत्यकारिणीके नाना प्रकारके नृत्योंकी रगभूमिके समान जिसकी जिह्वाका अग्रभाग था, जो समस्त विद्वानोंको आनन्दित करनेवाला

यशःकुसुममाधुरीप्रमुदितामरीबम्भरी-
स्वरप्रसरपूरितत्रिभुवनः कुमारो बभौ ॥२४॥

§ २९) कलाविलाससदनं कान्तिकेलिनिकेतनम् ।
महाबल इति ख्यातं मूर्तं तेजो व्यजृम्भत ॥२५॥

§ ३०) नभश्चरधरापतिस्तदनु यौवराज्ये पदे
कुमारमिममादिशत्कमलबन्धुकल्पप्रभम् ।
नृपे नृपसुते तदा पृथगवस्थिता श्रीर्बभौ
हिमाद्रिकटके पयोनिधिजले च गङ्गा यथा ॥२६॥

§ ३१) अथ कदाचन व्योमचरवसुधाधिपतिः ससारविषयसजातनिर्वेगः अनादिप्रस्थित-कर्मबीजप्ररोहप्ररूढकाण्डा, जननादिकुसुमकोरकिता, व्यसनफलविलसितामसुभृत्कदम्बलोलम्ब-

---

भागो यस्य तथाभूत , निखिलकोविदाना समग्रविदुषामुल्लासको हर्षको निखिलविद्वन्मोदक इत्यर्थ , यशःकुसुमस्य कीर्तिपुष्पस्य माधुर्या मधुरसेन प्रमुदिता प्रसन्ना या अमर्यो देवाङ्गनास्ता एव बम्भर्यो भ्रमर्यस्तासा स्वरप्रसरेण स्वरसमूहेन पूरित त्रिभुवन येन स , कुमारो महाबल , बभौ शुशुभे । रूपकालंकार । पृथिवीछन्द ॥२४॥ § २९) कलेति—कलाना हस्त्यश्वारोहणविज्ञानप्रभृतिनानाविधवैदग्धीना विलाससदन क्रीडाभवन, कान्त्या दीप्तेः केलिनिकेतन क्रीडाभवन, महाबल इति ख्यात प्रसिद्धं मूर्तं सशरीरं तेज प्रतापं व्यजृम्भत । रूपकालकारः ॥२५॥ § ३०) नभश्चरेति—तदनु तत्पश्चात् नभश्चराणा विद्याधराणा धरापतिर्नभश्चरधरापति. अतिबल-नृपति. कमलबन्धुकल्पप्रभ सूर्यसमतेजसम् इम कुमार महाबल युवा चासौ राजा च युवराजस्तस्य भाव कर्म वा यौवराज्यं तद्रूपे पदे, आदिशत् नियोजयामास । तदा नृपेऽतिबलमहाराजे नृपसुते महाबलयुवराजे च पृथग् भिन्नरूपेण अवस्थिता विद्यमाना श्री राजलक्ष्मी हिमाद्रिकटके हिमाचलकटके पयोनिधिजले च सागरसलिले च अवस्थिता गङ्गा यथा भागीरथीव बभौ शुशुभे । उपमालंकार. । पृथिवीछन्दः ॥२६॥ § ३१) अथेति—अथ महाबलाय युवराजपददानानन्तर कदाचन जातुचित् व्योमचरवसुधाधिपतिः खगधराधीशितातिबल', ससारविषये सजात समुत्पन्नो निर्वेगो वैराग्य यस्य तथाभूत. सन्, अनादिप्रस्थितानि अनाद्यायातानि कर्माणि ज्ञानावरणप्रभृतीन्येव बीजप्ररोहाबीजाङ्कुरास्तेभ्य' प्ररूढ' समुत्पन्न' काण्डः स्कन्धो यस्यास्ता 'काण्ड. स्तम्बे तरुस्कन्धे' इति मेदिनी । जननादीन्येत्र जन्ममरणादीन्येव कुसुमकोरकाणि पुष्पकुड्मलानि तानि सजातानि यस्या ता, व्यसनानि दु खान्येव फलानि तैर्विलसिता शोभिताम्, असुभृत्कदम्बकानि प्राणिसमूहा एव लोलम्बा भ्रमरा-

---

था तथा यशरूपी पुष्पोंकी मिठाससे प्रसन्न देवीरूपी भ्रमरियोंके स्वरसमूहसे जिसने तीनों लोकोंको व्याप्त कर दिया था ऐसा वह महाबलकुमार अतिशय शोभायमान होता था ॥२४॥ § २९) कलाविलासेति—कलाओंका विलासभवन और कान्तिका क्रीड़ाभवन महाबल इस नामसे प्रसिद्ध मूर्तिक तेज वृद्धिको प्राप्त होने लगा ॥२५॥ § ३०) नभश्चरेति—तदनन्तर विद्याधरोंके राजा अतिबलने सूर्यके समान तेजस्वी इस महाबल कुमार को युवराज पद पर नियुक्त कर दिया । उस समय राजा और राजपुत्रमें पृथग् पृथग् रूप से अवस्थित राजलक्ष्मी हिमाचलके कटक और समुद्रके जलमें स्थित गंगा नदीके समान सुशोभित हो रही थी ॥२६॥ § ३१) अथेति—तदनन्तर किसी समय जिसे संसारके विषयमे वैराग्य उत्पन्न हो गया था ऐसा विद्याधरराजा अतिबल, अनादिकालसे आये हुए कर्मरूपी बीजांकुरोंसे जिसका स्कन्ध उत्पन्न हुआ है, जो जन्ममरणादिरूप फूलोंकी बोंडियोंसे व्याप्त है, दुःखरूपी फलोंसे सुशोभित

चुम्बिता ससारवल्लरी ध्यानकुठारेण निर्मूलयितुकामः, कामपि चिन्ता मनसा गाहमान , तत्क्षणमेव महामन्त्रिमण्डलसामन्तसन्दोहशुद्धान्तमुख्यजनेभ्यो निवेदितनिजोदन्त' समस्तदिगन्तविकसितललितयशोविलसितलतान्ताय प्रकृतिजनमन'कुमुदकुमुदिनीकान्ताय सकललोकलोचनानन्दाय महावलायाभिषेकपुर सर प्रतिपादितराज्यभारो व्यपेतवन्धन इव गन्धसिन्धुर क्रमेण निजमन्दिरान्निर्गत्य विद्याधरवसुमतीवल्लभैरनुगम्यमान' ससारदु खशमनदक्षा जैनी दीक्षामासाद्य सुचिर तपश्चचार ।

§ ३२) ततो धीरोदारः सकलखगभूमीशमकुटी—
तटीप्रोद्यद्रत्नप्रतिफलितपादाम्वुजयुग. ।
दधे दोष्णा राज्यश्रियमतिवलस्यात्मजवर
प्रजारक्षादक्ष सकलगुणसकेतसदनम् ॥२७॥

स्तैश्चुम्बिता ससारवल्लरी भवलता ध्यानकुठारेण ध्यानपरशुना निर्मूलयितुकाम उत्पाटयितुमना 'तु काममनसोरपि' इति मकारलोप , कामपि रचनागोचरा चिन्ता विचारसर्रांत मनसा चेतसा गाहमान प्रविशन्, तत्क्षणमेव तत्कालमेव महामन्त्रिमण्डल च सामन्तसदोहश्च शुद्धान्तमुख्यजनाश्च तेभ्य , निवेदित सूचितो निजोदन्त स्ववृत्तान्तो येन तथाभूत 'वार्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्त उदन्त स्यात्' इत्यमर , समस्तदिगन्तेपु निखिलकाष्ठान्तेपु विकसित प्रफुल्ल ललितयश कमनीयकीर्तिरेव विलसितलतान्त सुन्दर पुष्प यस्य तस्मै, प्रकृतिजनानाममात्यादीना मनास्येव कुमुदानि तेषा कुमुदिनीकान्तश्चन्द्रस्तस्मै, सकललोकलोचनानन्दाय निखिलनरनयनानन्दाय महावलाय तन्नामयुवराजाय अभिषेकपुर सर यथा स्यात्तथा प्रतिपादितो राज्यभारो येन तथाभूतः सन् व्यपेत वन्धन यस्य तथाभूतो गन्धसिन्धुर इव मत्तमतङ्गज इव क्रमेण निजमन्दिरात् स्वभवनात्, निर्गत्य, विद्याधरवसुमतीवल्लभै खेचरराजै- अनुगम्यमान , ससारदु खस्य शमने दक्षा ता भवव्यसनशमीकरणसमर्था जैनी दीक्षा प्रव्रज्यामासाद्य गृहीत्वा सुचिर दीर्घकालपर्यन्त तपश्चचार तपस्या कृतवान् । § ३२) तत इति— तत पितुर्दीक्षाग्रहणानन्तर धीरश्चासावुदारश्चेति धीरोदारो गभीरो दाता च, सकला समस्ता ये खगभूमीशा विद्याधरधरावल्लभास्तेषा मकुटीतटीपु मौल्यग्रभागेषु प्रोद्यन्ति देदीप्यमानानि यानि रत्नानि तेपु प्रतिफलित प्रतिविम्वित पदाम्वुजयुग चरणयुगल यस्य तथाभूत , प्रजाया रक्षाया दक्षो निपुण प्रजारक्षादक्ष., सकलगुणानां निखिलगुणाना सकेतसदन सकेतभवनम्, अतिवलस्यात्मजवरो महावल , दोष्णा भुजेन 'दोर्दोषा च भुजो वाहु '

है तथा प्राणिसमूह रूप भ्रमरोंसे चुम्बित है ऐसी संसाररूपी लताको ध्यानरूपी कुठारके द्वारा निर्मूल करने की इच्छा करता हुआ मनसे किसी विचारसरणिमे मग्न हो गया। उसने उसी समय महामन्त्रिमण्डल सामन्तोंका समूह तथा अन्तःपुरके मुख्य जनोंके लिए अपना वृत्तान्त सूचित किया और समस्त दिशाओंके अन्त तक जिसका मनोहर यशरूपी कुसुम सुशोभित हो रहा था, जो मन्त्री आदि प्रजाजनोंके मनरूपी कुमुदोंको विकसित करनेके लिये चन्द्रमाके समान था तथा समस्त मनुष्योंके नेत्रोंको आनन्द देने वाला था ऐसे महाबलके लिए अभिषेकपूर्वक राज्यका भार समर्पित किया। तदनन्तर बन्धन रहित मत्तहाथीके समान निज भवनसे निकलकर अनेक विद्याधर राजाओंके साथ उसने संसारका दुःख शमन करनेमें समर्थ जिन दीक्षा प्राप्त कर दीर्घकाल तक तपश्चरण किया। § ३२ तत इति— पिताके दीक्षा लेनेके बाद, जो अत्यन्त धैर्यशाली तथा उदार था, समस्त विद्याधर राजाओंके मुकुट तटोंमे लगे हुए रत्नोंमे जिसके चरणकमलोंके युगल प्रतिबिम्बित हो रहे थे, जो प्रजाकी रक्षामे समर्थ था तथा जो समस्त गुणोंका सकेतभवन—एकत्र मिलनेका स्थान था ऐसे

§ ३३) यस्मिन्महीपाले महीलोकलोकोत्तरप्रासादशातकुम्भमयस्तम्भायमानेन निजभुजेन धरणीमङ्गदनिर्विशेषमाबिभ्राणे, बन्धनस्थितिः कुसुमेषु चित्रकाव्येषु च, अलकाराश्रयता महाकविकाव्येषु कामिनीजनेषु च, घनमलिनाम्बरता प्रावृषेण्यदिवसेषु कृष्णपक्षनिशासु च, परमोहप्रतिपादन प्रमाणशास्त्रेषु युवतिजनमनोहराङ्गेषु च, शुभकरवालशून्यता कोदण्डधारिषु कच्छपेषु च परं व्यवतिष्ठत ।

इत्यमर ,, राज्यश्रिय राज्यलक्ष्मी दधे बभार । शिखरिणीच्छन्दः ॥२७॥ § ३३) यस्मिन्निति—यस्मिन्महीपाले यस्मिन् राजनि महीलोक पृथिवीलोक एव लोकोत्तरप्रासाद सर्वश्रेष्ठभवन तस्य शातकुम्भमयस्तम्भ इवाचरतीति शातकुम्भमयस्तम्भायमानस्तेन सौवर्णस्तम्भायमानेन निजभुजेन स्वबाहुना धरणी वसुन्धराम् अङ्गदनिर्विशेषं केयूरतुल्यम् अनायासेनेति भाव आबिभ्राणे धृतवति सति, बन्धनस्थिति वृन्तस्थिति मालादिरूपेण सूत्रबन्धनस्थितिश्च कुसुमेषु पुष्पेषु बन्धनस्थिति चक्रहारादिबन्धनस्थितिश्च चित्रकाव्येषु च व्यवतिष्ठत न तु तत्रत्यमनुष्येषु रज्ज्वादिबन्धन व्यवतिष्ठत, अलकाराश्रयता रूपकोपमाद्यलकाराणामाश्रयता महाकविकाव्येषु कटककुण्डलाद्यलकाराणामाश्रयता कामिनीजनेषु वनितावृन्देषु च व्यवतिष्ठत, न तु तत्रत्यमनुष्येषु अलमत्यन्तं काराश्रयता वन्दीगृहाश्रयता व्यवतिष्ठत । घनमलिनाम्बरता घनैर्मेघैर्मलिनमम्बर नभो येषु घनमलिनाम्बरास्तेषा भावो घनमलिनाम्बरता मेघमलीमसगगनता प्रावृषेण्यदिवसेषु वर्षाकालवासरेषु घनमत्यन्त मलिन तिमिराक्रान्तत्वेन कृष्णमम्बरं गगन यासु ता घनमलिनाम्बरास्तासा भाव अतिकृष्णगमनता कृष्णपक्षनिशासु बहुलपक्षरजनीषु च व्यवतिष्ठत न तु तत्रत्यमनुष्येषु घनानि निविडानि मलिनानि मलदूषितानि अम्बराणि वस्त्राणि येषा तेषा भावस्तथाभूतता व्यवतिष्ठत, 'अम्बर व्योम्नि वाससि' इत्यमर । परमोहप्रतिपादन परमश्चासावूहश्च परमोह श्रेष्ठतर्कस्तस्य प्रतिपादन निरूपणं प्रमाणशास्त्रेषु न्यायशास्त्रेषु, परेषा मोह परमोहस्तस्य प्रतिपादनम् अन्यजनमनोविभ्रमकारिता युवतिजनमनोहराङ्गेषु ललनाजनललितकलेवरेषु च व्यवतिष्ठत न तु तत्रत्यमनुष्येषु पर. सातिशयो यो मोहो वैचित्य तस्य प्रतिपादन व्यवतिष्ठत, शुभकरवालशून्यता शुभश्चासौ करवालश्च शुभकरवाल शुभकृपाणस्तस्य शून्यता रिक्तता कोदण्डधारिषु चापधारिषु शुभकरा श्रेयस्करा ये वाला केशास्तेषा शून्यता कच्छपेषु कूर्मेषु च व्यवतिष्ठत न तु तत्रत्यमनुष्येषु शुभकरा कल्याणकरा ये वाला श्लेषे बवयोरभेदाद् वाला शिशवस्तेषा शून्यता व्यवतिष्ठत । 'यमकादौ भवेदैक्य डलोर्बवो रलोस्तथा' इत्या-

---

महाबलने अपनी भुजासे राज्यलक्ष्मीको धारण किया था ॥२७॥ § ३३) यस्मिन्निति—जिस राजा महाबलके पृथिवीलोक रूपी श्रेष्ठ भवनके सुवर्णमय स्तम्भके समान आचरण करनेवाली अपनी भुजासे पृथिवीको बाजूबन्दके समान किसी आयासके बिना ही धारण करनेपर बन्धनस्थिति—बोंडी रूप बन्धनकी स्थिति फूलोंमें ही थी और चक्र तथा हार आदि बन्धोंकी स्थिति चित्रकाव्योंमे ही थी वहाँके मनुष्योंमे रस्सी आदिके बन्धनकी स्थिति नहीं थी अर्थात् वहाँके मनुष्य कभी किसी बन्धनमे नहीं पड़ते थे। अलकाराश्रयता—उपमा रूपक आदि अलकारोंकी आधारता महाकवियोंके काव्योंमें ही थी और कटक कुण्डल आदि आभूषणोंकी सत्ता स्त्रीजनोंमें ही थी वहाँके मनुष्योंमे अतिशय रूपसे वन्दीगृहोंकी आधारता नहीं थी अर्थात् वहाँके मनुष्योंको कभी वन्दीगृहोंमें निवास नहीं करना पड़ता था। घनमलिनाम्बरता—मेघोंसे मलिन आकाशकी सत्ता वर्षाऋतुके दिनोंमे ही थी और अत्यन्त मलिन आकाशकी स्थिति कृष्णपक्षकी रात्रियोंमें ही थी वहाँके मनुष्योंमे मोटे और मलिन वस्त्रोंकी सत्ता नहीं थी अर्थात् वहाँके मनुष्य सदा महीन और उज्ज्वल वस्त्र ही पहिनते थे। परमोहप्रतिपादन—परमा ऊह अर्थात् श्रेष्ठ तर्कका निरूपण न्यायशास्त्रोंमे ही था और अन्य तरुणजनोंको मोह—विभ्रम उत्पन्न करना तरुण स्त्रियोंके मनोहर अगोंमे ही था वहाँके मनुष्योंमे पर—अत्यधिक मोहका प्रतिपादन नहीं था। और शुभकरवालशून्यता—उत्तम

§ ३४) येन पाणौ गृहीतापि समरे समरेखिका ।
परेषामादधे चित्रं कण्ठालिङ्गनमङ्गलम् ॥२८॥

§ ३५) नृत्यन्त्या यस्य हस्ताब्दे समरे खड्गविद्युति ।
शत्रुस्त्रीनयनान्तेषु चित्रं वृष्टिरजायत ॥२९॥

§ ३६) तदनु सकलदिक्सुन्दरीसंदोहमणिमुकुरायमाणप्रतापदिनकरोदयपूर्वशिखरिशिखरायमाणभुजदण्डस्य बलोद्दण्डस्य महाबलमहीपालप्रकाण्डस्य पीयूषरस इव सागरस्य, चन्द्रोदय इव प्रदोषस्य, वसन्तसमय इव कुसुमारामस्य, सुरचापोद्गम इव जलधरसमयस्य, कुसुमप्रसव इव कल्पपादपस्य, सूर्योदय इव सारसवनस्य, कलाप इव कलापितरुणस्य, यौवनारम्भः प्रादुरास ।

लङ्कारिकाणामुक्तिः । श्लेषानुप्राणित परिसंख्यालंकारः । § ३४) येनेति—समरे युद्धे येन महाबलनृपेण पाणौ गृहीतापि विवाहितापि पक्षे हस्ते धृतापि समरेखिका काचित् नायिका कृपाणिका च परेषामन्येषां कण्ठालिङ्गनमङ्गलं कण्ठस्यालिङ्गनमेव मङ्गलं कण्ठालिङ्गनमङ्गलम् आदधे कृतवतीति इति चित्रं परिहारपक्षे येन पाणौ धृता कृपाणिका परेषां शत्रूणां कण्ठालिङ्गनं कण्ठच्छेदनं चकार । विरोधः ॥२८॥ § ३५) नृत्यन्त्यामिति—समरे रणे यस्य महाबलस्य हस्ताब्दे पाणिपयोदे खड्गविद्युति कृपाणसौदामन्यां नृत्यन्त्यां नटन्त्यां सत्यां वृष्टिः शत्रुस्त्रीनयनान्तेषु वैरिवनितादृगन्तेषु अजायत, इति चित्रं यत्र विद्युत् विद्योतते तत्रैव वृष्टिरुचिता परिहारपक्षे शत्रवो मारितास्तेन तदीयवनितानयनोपान्तेषु वृष्टिरभूत् अश्रुवर्षणं बभूवेति भावः । रूपकोत्थापितासंगतिरलंकारः ॥२९॥ § ३६) तदन्विति—तदनु तदनन्तरं सकलदिक्सुन्दरीणां निखिलकाष्ठाकामिनीनां यः संदोहः समूहस्तस्य मणिमुकुरायमाणो रत्नदर्पणायमानो यः प्रतापदिनकरस्तेजस्तपनस्तस्योदयाय पूर्वशिखरिणः पूर्वाचलस्य शिखरायमाणः शृङ्गोपमो भुजदण्डो बाहुदण्डो यस्य तस्य, बलेन पराक्रमेण सैन्येन वोद्दण्डस्तस्य, महाबलमहीपालप्रकाण्डस्य महाबलश्रेष्ठनृपतेः यौवनारम्भस्तारुण्यारम्भः प्रादुरास प्रकटीबभूवेति कर्तृक्रियासंबन्धः । अथ तस्यैवोपमानमाह—सागरस्य सिन्धोः पीयूषरस इव सुधारस इव, प्रदोषस्य रजनीमुखस्य चन्द्रोदय इव, कुसुमारामस्य पुष्पोद्यानस्य वसन्तसमय इव सुरभिकाल इव, जलधरसमयस्य वर्षर्तोः सुरचापोद्गम इव शक्रशरासनप्रादुर्भाव इव, कल्पपादपस्य सुरतरोः कुसुमप्रसव इव पुष्पोद्भूतिरिव, सारसवनस्य कमलकाननस्य सूर्योदय इव भानूद्भव इव, कलापितरुणस्य मयूरतरुणस्य कलाप इव बर्हमिव ।

तलवारका अभाव धनुर्धारियोंमें ही था तथा उत्तम केशोंका अभाव कच्छपोंमें ही था वहाँके मनुष्योंमें कल्याणकारी बालकोंका अभाव नहीं था । § ३४) येनेति—युद्धमें जिस महाबलके द्वारा विवाही हुई स्त्री दूसरे पुरुषोंका कण्ठालिंगन करती थी यह आश्चर्यकी बात थी (परिहार पक्षमें युद्धमें जिसके द्वारा हाथमें धारण की हुई तलवार शत्रुओंका कण्ठालिंगन करती थी अर्थात् शत्रुओंका कण्ठच्छेदन करती थी) ॥२८॥ § ३५ नृत्यन्त्यामिति—युद्धमें जिस महाबलके हाथरूपी मेघमें तलवाररूपी बिजली नृत्य करती थी और वृष्टि शत्रुस्त्रियोंके नयनान्तमें होती थी यह आश्चर्यकी बात थी (परिहार पक्षमें जब महाबल हाथमें तलवार लेकर उसे लपलपाता था तब शत्रुस्त्रियोंके नयनान्तमें अश्रुवृष्टि होने लगती थी ।) ॥२९॥ § ३६) तदन्विति—तदनन्तर समस्त दिशारूप सुन्दरियोंके समूह सम्बन्धी मणिमयदर्पणके समान आचरण करने वाले प्रताप रूपी सूर्यके उदयके लिए जिसका भुजदण्ड पूर्वाचलके शिखरके समान था तथा जो पराक्रम अथवा सेनासे अत्यन्त उद्दण्ड था ऐसे महाबल नामक श्रेष्ठराजाका यौवनारम्भ उस तरह प्रकट हुआ जिस तरह कि समुद्रके अमृतरस, रात्रिके प्रारम्भ भागके चन्द्रोदय, पुष्पोपवनके वसन्तसमय, वर्षाकालके इन्द्रधनुष, कल्पवृक्षके पुष्पोत्पत्ति,

§ ३७) तदा तादृग्रूपं प्रकटमभवत्खेचरपते-
यँदालोक्य व्रीलैस्तनुमसमबाणोऽपि विजहौ ।
नभोगस्त्रीनेत्रभ्रमरनिकराकर्षणकला-
धुरीणं यत्प्रोद्यत्तरुणिमसुमामोदसुरभिः ॥३०॥

§ ३८) खेचरीचित्तलोहानामयस्कान्तशलाकिका ।
तस्य प्रजाभागधेयं रूपधेयमजृम्भत ॥३१॥

§ ३९) तस्य च राज्ञो निखिलकलावगाहगम्भीरबुद्धयो, नीतिशास्त्रपारावारपारदृश्वानः, सकलभुवनराज्यभारार्णवकर्णधाराः, कृच्छ्रेष्वपि कार्यसंकटेषु प्रसन्नमतिविभवाः धामानि धैर्यस्य, स्थानानि स्थैर्यस्य, सेतवः सत्यस्य, प्रवाहाः करुणारसस्य, विहारसदनानि राजभक्तेः, सागराः प्रजासंतोषामृतस्य, निर्भरमुपरूढप्रेमरसा, महामति-सभिन्नमति-शतमति-स्वयबुद्धनामानश्चत्वारः सचिवाः सबभूवुः ।

मालोपमालंकारः । § ३७) तदेति—तदा यौवनारम्भे खेचरपतेर्विद्याधरराजस्य महाबलस्य तादृक् तादृश रूपं सौन्दर्यं प्रकटमभवत् । यद् रूपम् आलोक्य दृष्ट्वा असमबाणोऽपि कामोऽपि व्रीलन् लज्जितोभवन् तनु शरीर विजहौ तत्याज । यच्च रूप नभोगस्त्रीणा विद्याधरीणा नेत्राण्येव भ्रमरा मिलिन्दास्तेषा निकर. समूह-स्तस्याकर्षणकलाया वशीकरणवैदग्ध्या धुरीण निपुणम्, यच्च रूपं प्रोद्यत्तरुणिमैव प्रकटीभवत्तारुण्यमेव सुम पुष्प तस्यामोदेन गन्धेन सुरभि मनोज्ञं च बभूवेति शेष । रूपकोत्प्रेक्षालंकार । शिखरिणीछन्द ॥३०॥ § ३८) खेचरीति—खेचरीणा विद्याधरीणा चित्तान्येव लोहास्तेषाम् अयस्कान्तशलाकिका चुम्बकमणिसूची, प्रजाभागधेय प्रजाभाग्य तस्य महाबलस्य रूपधेय सौन्दर्यम् । अजृम्भत अहर्निश वृद्धिगतमभूत् । रूपकालंकार ॥३१॥ § ३९) तस्य चेति—तस्य च महाबलस्य राज्ञ महामति-सभिन्नमति-शतमति-स्वयबुद्धनामान चत्वारः सचिवा अमात्याः सबभूवुरिति कर्तृक्रियासबन्ध । अथ तेषा विशेषणान्याह–निखिलकलासु सर्वविधवैदग्धीषु अवगाहेन प्रवेशेन गम्भीरा प्रगल्भा बुद्धिर्येषा ते, नीतिशास्त्रमेव पारावार सागरस्तस्य पार दृष्टवन्त इति नीतिशास्त्रपारावारपारदृश्वान , सकलभुवनस्य निखिललोकस्य राज्यभार एवार्णव सागरस्तत्र कर्णधारा , कृच्छ्रेष्वपि कठिनेष्वपि कार्यसकटेषु प्रसन्नो निर्मलो मतिविभवो बुद्धिसामर्थ्यं येषा तथाभूता , धैर्यस्य धामानि, स्थैर्यस्य स्थानानि, सत्यस्य तथ्यस्य सेतव पुलिनानि, करुणारसस्य दयारसस्य प्रवाहा निर्झरा., राजभक्ते विहारसदनानि क्रीडाभवनानि, प्रजासतोषामृतस्य प्रजासतोष एवामृत पीयूष तस्य सागराः, निर्भर यथा

कमलवनके सूर्योदय, और तरुणमयूरके पिच्छ प्रकट होता है। § ३७ तदेति—उस समय विद्याधरोंके राजा महाबलका वैसा रूप प्रकट हुआ था कि जिसे देखकर लज्जित होते हुए कामदेवने भी शरीर छोड़ दिया था। जो रूप विद्याधरियोंके नेत्र रूपी भ्रमरसमूहको आकृष्ट करने की कलामे निपुण था, तथा प्रकट होते हुए तारुण्यरूपी पुष्पोंकी सुगन्धिसे मनोहर था ॥३०॥ § ३८) खेचरीति—जो विद्याधरियोंके चित्त रूपी लोहोंको खींचनेके लिए चुम्बकमणि सलाईके समान था तथा प्रजाके भाग्य स्वरूप था ऐसा उसका वह रूप निरन्तर वृद्धिको प्राप्त हो रहा था ॥३१॥ § ३९ तस्य चेति—उस राजा महाबलके महामति, संभिन्नमति, शतमति और स्वयंबुद्ध नामके चार मन्त्री थे। वे मन्त्री सकल कलाओंमें अवगाहन करनेसे गम्भीर बुद्धि वाले थे, नीतिशास्त्र रूपी समुद्रके पारदर्शी थे, समस्त संसारके राज्यभार रूपी समुद्रके खेवटिया थे, कठिनसे कठिन कार्योंके संकटोंमें निर्मलबुद्धिके धारक थे, धैर्यके धाम थे, स्थिरताके स्थान थे, सत्यके सेतु थे, दयारसके प्रवाह थे, राजभक्तिके क्रीडाभवन थे,

§ ४०) समस्तशास्त्ररत्नाना निस्तुल्यनिकषोपलः ।
स्वयबुद्धोऽभवत्तेषु सम्यग्दर्शनशुद्धधीः ॥३२॥

§ ४१) खगाना राजापि प्रशमितविपक्षव्रजतया
गताशङ्कातङ्कः सकलखचरश्लाघ्यमहिमा ।
अमात्येषु न्यस्तक्षितिवलयभारोऽनुबुभुजे
निजस्त्रीभि साक खगसमुचितान्भोगविभवान् ॥३३॥

§ ४२) अबलाढ्योऽपि भूपालो दिक्षु ख्यातमहाबल ।
न भोगोऽपि स्वय भोगान्विविधान्बुभुजे चिरम् ॥३४॥

§ ४३) तथाहि कदाचिदसौ महाबलमहीपालो मन्देतरवनवाटीपर्यटनसुरभिलमन्दानिल-

---

स्यात्तथा उपरूढो प्रेमरसो येषु तथाभूता । § ४०) समस्तेति—तेषु सचिवेषु स्वयबुद्ध एतन्नामधेय सचिव समस्तशास्त्राण्येव रत्नानि तेषा निखिलागमरत्नाना निस्तुल्यश्चासौ निकषोपलश्चेति निस्तुल्यनिकषोपलो निरुपमनिकषप्रस्तर, सम्यग्दर्शनेन शुद्धा धीर्यस्य तथाभूत सम्यक्त्वपूताधिषण अभवत् । रूपकालकार ॥३२॥ § ४१) खगानामिति—खगाना विद्याधराणा राजापि नृपतिरपि महाबल. प्रशमितविपक्षव्रजतया प्रशमितशत्रुसमूहतया गतो नष्ट आशङ्कातङ्को भयरोगो यस्य तथाभूत, सकलखचरेषु निखिलविद्याधरेषु श्लाघ्यो महिमा यस्य तादृश, अमात्येषु सचिवेषु, न्यस्त स्थापित क्षितिवलयभारो येन तथाभूत सन् निजस्त्रीभि साक निजवनिताभि सह खगसमुचितान् विद्याधरयोग्यान् भोगविभवान् भोगैश्वर्यान् अनुबुभुजेऽनुभुङ्क्ते स्म । अत्र महाबलमहीपाल खगाना पक्षिणा राजापि भूत्वा प्रशमितविपक्षव्रजतया प्रणाशितपक्षिपक्षसमूहतया गताशङ्कातङ्क प्रणष्टभयरोगोऽभूदिति विरोधो ध्वन्यते । शिखरिणीछन्द ॥३३॥ § ४२) अबलेति—बलेन पराक्रमेण सैन्येन वा आढ्य सहितो बलाढ्य, न बलाढ्य अबलाढ्यस्तथाभूतोऽपि सन् दिक्षु काष्ठासु ख्यात महाबल महापराक्रमो महासैन्य वा यस्य स ख्यातमहाबल इति विरोध, परिहारपक्षे अबलाभि. स्त्रीभिराढ्य सहितोऽपि दिक्षु महाबलनाम्ना प्रसिद्धो भूपाल, नभोगोऽपि सन् भोगरहितोऽपि सन् स्वय चिर दीर्घकालपर्यन्त विविधान् नैकविधान् भोगान् विलासान् स्वय बुभुजे भुक्तवानिति विरोध । परिहारपक्षे नभसि गगने गच्छतीति नभोगोऽपि खेचरोऽपि सन् । विरोधाभासालकार ॥३४॥ § ४३) अथ तमेव भोगानुभव वर्णयितुमाह—तथाहीति—असौ महाबलमहीपाल कदाचित् मन्देतरा विशाला या वनवाटी समुद्यानवीथी

प्रजाके सन्तोषरूपी अमृतके सागर थे तथा परस्पर अत्यन्त प्रेमरससे युक्त थे । § ४०) समस्तेति—उन मन्त्रियोंमें स्वयबुद्धमन्त्री समस्त शास्त्ररूपी रत्नोंकी परीक्षा करनेके लिए अनुपम कसौटी था तथा सम्यग्दर्शनसे विशुद्ध बुद्धिका धारक था ॥३२॥ § ४१) खगानामिति—समस्त विद्याधरोंमें प्रशसनीय महिमासे युक्त, विद्याधरोंका राजा महाबल भी शत्रुसमूहको नष्ट कर निःशङ्क हो मन्त्रियोंपर पृथिवीमण्डलका भार रख अपनी स्त्रियोंके साथ विद्याधरोंके योग्य भोगोंके वैभवका उपभोग करने लगा ॥३३॥ § ४२ अबलाढ्योऽपि—वह राजा यद्यपि अबलाढ्य था—पराक्रम अथवा सेनासे सहित नहीं था तो भी दिशाओंमे महाबल—महान् पराक्रम अथवा बडी भारी सेनासे सहित प्रसिद्ध था (परिहार पक्षमे अबलाढ्य—अबलाओं—स्त्रियोंसे सहित था और दिशाओंमे महाबल नामसे प्रसिद्ध था)। तथा नभोग—भोगोंसे रहित होकर भी विविध भोगोंको चिरकाल तक भोग करता था (परिहार पक्षमें नभोग— आकाशगामी विद्याधर होकर भी चिरकाल तक विविध भोगोंको भोग करता था) ॥३४॥ § ४३ तथाहि—उन्हीं भोगोंका कुछ वर्णन इस प्रकार है—वह महाबल राजा, कभी तो कल्पवृक्षोंकी विशाल वनवीथियोंमे भ्रमण करनेसे सुगन्धित मन्द-मन्द वायु-

चलितस्तनशाटीना वधूटीनां चन्दनरसच्छटाभिरिव स्मितसुधाकान्तिझरीभिरभिषिच्यमान, कर्णपूरीकृतनीलोत्पलैरिव नयननिर्गलद्रोचिर्वीचिभिस्ताडयमानः, कुङ्कुमवासधूलिभिरिव मणिभूषणगणकमनीयकान्तिकल्लोलैः पल्लविताङ्ग., कोमलकुसुमकुलैरिव नखमयूखजालकैरवकीर्यमाण चम्पकदामभिरिव भुजलताभिराबध्यमानश्चिर रजतमहीधरे महारजतमहीध्र इवामर्त्यपतिर्विजहार।

§ ४४) विचित्रनानावादित्रनादनादितदिक्तटः।
जातुचित्तस्य ववृधे वर्षवृद्धिमहोत्सवः ॥३५॥

§ ४५) तदानीं खलु निखिलगगनचरमणिमकुटमकरिकानिकषणरेखाविलसितपदकमलयुगलं, अनेकरत्नाभरणकिरणजालकान्तरितावयव, इन्द्रायुधसहस्रसछादितमिव कनकशिखरिण,

---

तस्या पर्यटनेन परिभ्रमणेन सुरभिल. सुगन्धितो यो मन्दानिलो मन्थरसमीरस्तेन चलिता कम्पिता स्तनशाटी यासा तासा वधूटीना युवतीना चन्दनरसच्छटाभिरिव मलयजरससततिभिरिव स्मितमेव मन्दहसितमेव सुधा पीयूष तस्या. कान्तिझरीभिः कान्तिप्रवाहै अभिषिच्यमानोऽभिषव प्राप्नुवान, कर्णपूरीकृतानि कर्णाभरणत्वेन धृतानि यानि नीलोत्पलानि नीलारविन्दानि तैरिव नयनेभ्यो निर्गलन्त्यो निष्पतन्त्यो या रोचिर्वीचय कान्तिपरम्परास्ताभि ताडयमान, कङ्कुमवासधूलिभिरिव काश्मीरसुगन्धिचूर्णैरिव मणिभूषणगणस्य रत्नालकारराजे कान्तिकल्लोलैर्दीप्तिभङ्गै. पल्लविताङ्ग. किसलयितकलेवर, कोमलानि च तानि कुसुमकुलानि च तैरिव मृदुलतान्तसमूहै नखमयूखजालकैर्नखरकिरणकलापै अवकीर्यमाण आच्छाद्यमानः, चम्पकदामभिरिव चाम्पेयस्रग्भिरिव भुजलताभिर्बाहुवल्लरीभि आबध्यमान आलिङ्ग्यमान चिर चिरकालपर्यन्त महारजतमहीध्रे सुवर्णशैले सुमेरौ अमर्त्यपतिरिव देवेन्द्र इव रजतमहीधरे विजयार्धगिरौ विजहार विहरति स्म चिक्रीडेत्यर्थ। § ४४) विचित्रेति—जातुचित् कदाचित् तस्य महाबलमहीपालस्य विचित्राणा विविधाना वादित्राणा वाद्याना नादेन शब्देन नादितानि शब्दितानि दिक्तटानि यस्मिंस्तथाभूतो वर्षवृद्धिमहोत्सवो जन्मोत्सवो ववृधे वर्धते स्म ॥३५॥ § ४५) तदानीमिति—तदानी वर्षवृद्धिमहोत्सवे महाबलक्षितिपति महाबलभूपालम् अवलोक्य स्वयंबुद्धसचिव प्रस्तावित प्रारब्धो धर्मकथाना प्रस्तावोऽवसरो येन तथाभूत सन् तस्य धर्मकथाप्रस्तावस्य प्रतिष्ठापनाय दृढीकरणाय, दृष्टश्च श्रुतश्च अनुभूतश्चेति दृष्टश्रुतानुभूता ते च तेऽर्थाश्च तेषा सबन्धिनीम् इमा वक्ष्यमाणा कथा व्याजहार कथयामासेति कर्तृक्रियासबन्ध। अथ महाबलक्षितिपतेर्विशेषणान्याह—निखिलेति—निखिलगगनचराणा समस्तविद्याधराणा मणिमकुटमकरिकासु रत्नमौल्यग्रपीठेषु निकषणेन सघर्षणेन या रेखा लेखास्ताभिर्विलसित शोभित पदकमलयुगल चरणाब्जयुग यस्य तम्, अनेकेति—अनेकानि विविधानि

से जिनके स्तनोंपरकी साड़ियाँ हिल रही थीं ऐसी तरुण स्त्रियोंकी चन्दनरसकी छटाओंके समान मन्दमुसकान रूपी अमृतके कान्तिप्रवाहसे अभिषेकको प्राप्त होता था, कभी कानोंके अलंकाररूपसे धारण किये हुए नील कमलोंके समान नेत्रोंसे निकलती हुई कान्तिकी परम्परासे ताड़ित होता था, कभी केशरके सुगन्धित चूर्णके समान मणिमय भूषण समूहकी सुन्दर कान्तिकी तरंगोंसे पल्लवोंसे युक्त जैसा शरीरका धारक होता था, कभी कोमल फूलोंके समूहके समान नखोंकी किरणोंके समूहसे आच्छादित होता था, और कभी चम्पाकी मालाओंके समान उन तरुणस्त्रियोंकी भुजरूपी लताओंसे बन्धनको प्राप्त होता था। इस तरह वह सुमेरुपर्वतपर इन्द्रके समान, विजयार्धपर्वतपर चिरकाल तक विहार करता रहा। § ४४) विचित्रेति—किसी समय नाना प्रकारके अनेक बाजोंके शब्दोंसे जिसमें दिशाओंके तट शब्दायमान हो रहे थे ऐसा राजा महाबलका वर्षगांठका महोत्सव वृद्धिको प्राप्त हो रहा था ॥३५॥ § ४५) तदानीमिति—उस समय निश्चयसे समस्त विद्याधरोंके मणिमय मुकुटोंकी कलगीके संघर्षणकी रेखाओंसे जिनके चरणकमलके युगल सुशोभित हो रहे थे,

धैर्यगुणविजिते सेवार्थमागत इव हेमाचलशृङ्गे तुङ्गतममङ्गलसिंहासने समासीनं, निजवदनवारिजविजयपराभवप्रणत इव शशिबिम्बे स्फटिकमणिपीठे विन्यस्तवामपादम्, अम्बरचराङ्गनाकरपल्लवोल्लासितहेमचामरपवनविलोलविमलदुकूलाञ्चलम्, अतिप्रचण्डमाण्डलिकमहासामन्तप्रधानमन्त्रिपुरोहितान्तर्वंशिकादिपरिवारपरिवृतम्, आस्थानमण्डपगतं प्रीत महाबलक्षितिपतिमवलोक्य स्वयंबुद्धसचिवः प्रस्तावितधर्मकथाप्रस्तावस्तत्प्रतिष्ठापनाय दृष्टश्रुतानुभूतार्थसंबन्धिनीमिमां कथां व्याजहार।

४६ §) राजन् राजसमानवक्त्र भवतो वंशे विशाले पुरा
खेन्द्रोऽभूदरविन्दनामविदित. प्रत्यर्थिदावानलः।
शास्तैतस्य पुरस्य तस्य विजयादेवी बभूव प्रिया
कान्त्या कोमलया निराकृतरती राकेन्दुबिम्बानना ॥२६॥

यानि रत्नाभरणानि मणिमयभूषणानि तेषां किरणजालकेन रश्मिसमूहेनान्तरितास्तिरोहिता अवयवा अङ्गानि यस्य त, अतएव इन्द्रायुधानां शक्रशरासनानां सहस्रेण समाच्छादितं तथाभूत कनकशिखरिणमिव सुवर्णशैलमिव, धैर्यगुणविजिते धैर्यमेव गुणस्तेन विजिते पराजिते अतएव सेवार्थं शुश्रूषार्थमागते हेमाचलशृङ्ग इव सुमेरुशिखर इव तुङ्गतममत्युन्नत यन्मङ्गलसिंहासनं तस्मिन् समासीनमधिष्ठितम्, निजवदनेति—निजवदनवारिजस्य निजास्यसरोरुहस्य विजयस्तेन पराभवोऽनादरस्तेन प्रणत इव नम्रीभूते शशिबिम्ब इव चन्द्रमण्डल इव स्फटिकमणिपीठे स्फटिकोपलपीठे विन्यस्तवामपद निक्षिप्तसव्यचरणम्, अम्बरेति—अम्बरचराणां विद्याधराणां या अङ्गनास्तासां करपल्लवैः पाणिपल्लवैरुल्लासिता. समुत्क्षिप्ता ये हेमचामरा. सुवर्णप्रकीर्णकास्तेषां पवनेन समीरेण विलोल चञ्चल विमलदुकूलाञ्चलं निर्मलक्षौमाञ्चल यस्य तथाभूत, अतिप्रचण्डेति—अतिप्रचण्डा. प्रभूतपराक्रमशालिनो ये माण्डलिका मण्डलेश्वरा महासामन्ता प्रधानमन्त्रिण पुरोहिता अन्तर्वंशिकादयश्च तेषां परिवारेण समूहेन परिवृत वेष्टितम्, आस्थानमण्डपगतं सभामण्डपस्थित, प्रीत प्रसन्नम्। § ४६) रौद्रध्यानफलं निरूपयितुमाह—राजन्निति—राजसमान चन्द्रतुल्य वक्त्र मुख यस्य तत्सम्बुद्धौ हे राजसमानवक्त्र, राजन् महीपते, पुरा पूर्व भवतस्तव विशाले विपुले वंशेऽन्वये अरविन्दनाम्ना विदित प्रख्यात, प्रत्यर्थिनां शत्रूणां दावानलो वनाग्नि खेन्द्रो विद्याधर, एतस्य पुरस्यालकानगर्याः शास्ता रक्षकोऽभूत्। तस्य कोमलया मृदुलया कान्त्या दीप्त्या निराकृता तिरस्कृता रति. कामकामिनी यया सा, राकेन्दुबिम्बमिव पूर्णिमाशशिमण्डलमिवानन मुख यस्यास्तथाभूता

अनेक रत्नोंके आभूषणों सम्बन्धी किरणोंके समूहसे जिसके अवयव आच्छादित हो रहे थे और इस कारण जो हजारों इन्द्रधनुषोंसे आच्छादित सुमेरु पर्वतके समान जान पड़ता था, जो धैर्यगुणसे पराजित होनेके कारण सेवाके लिए आये हुए सुमेरुपर्वतके शिखरके समान अत्यन्त ऊँचे मंगलमय सिंहासनपर बैठा हुआ था, अपने मुखकमलकी जीतसे उत्पन्न पराभवके कारण नम्रीभूत चन्द्रबिम्बके समान स्फटिक मणिकी चौकी पर जो बायाँ पैर रखे हुआ था, विद्याधरियोंके करकिसलयोंसे ढोरे जाने वाले सुवर्णमय चामरोंकी वायुसे जिसके निर्मल रेशमी वस्त्रोंका अंचल हिल रहा था, जो अत्यन्त शक्तिशाली मण्डलेश्वर महासामन्त, प्रधानमन्त्री, पुरोहित तथा कुटुम्बके अन्य सदस्यों आदिके समूहसे घिरा हुआ था, और जो सभामण्डपमें स्थित था ऐसे प्रसन्नचित्त महाबल राजाको देखकर स्वयंबुद्ध मन्त्रीने धर्मकथाओंका प्रसंग छेड़ा और उसके समर्थनके लिए देखे-सुने तथा अनुभवमें आये हुए पदार्थोंसे सम्बन्ध रखनेवाली यह कथा कही। § ४६) राजन्निति—हे चन्द्रमाके समान मुखवाले राजन्! पहले आपके विशालवंशमें अरविन्द नामसे प्रसिद्ध तथा शत्रुरूपी वनको भस्म करनेके लिए अग्निस्वरूप विद्याधर इस नगरका शासक था। उसकी विजया देवी नामकी

§ ४७) तयोर्बभूवतुः पुत्रौ विद्यावैशद्यशोभितौ ।
आदिमो हरिचन्द्रश्च कुरुविन्दस्ततोऽपरः ॥३७॥

§ ४८) स खलु कदाचन खेचरकुम्भिनीपतिर्बह्वारम्भसंरम्भविजृम्भितरौद्रध्यानाभिसंधानसंदानितनरकायुष्यः प्रत्यासन्नमृतिर्दावपावकज्वालानिकाशदाहज्वरबाधां सोढुमक्षमतया पुण्यक्षयपरिणतनिजविद्यावैमुख्येन च दमितमदशक्तिर्दन्तावल इवातिदीनदशामापन्नः, सीतातरङ्गिणीतरङ्गालिङ्गितलतालतान्तसुरभितमन्दारतरुसंदोहस्पन्दमानमन्दपवमानसुखोत्तरकुरुवनोद्देशविहरणाय स्पृहयालुः, निजाज्ञापरिपालननिस्तन्द्रेण हरिचन्द्रेण तद्वनोद्देशप्रापणाय प्रेषितायां गगनगामिनीविद्यायामपुण्यवशेनानुपकारिण्यां दुर्वारदुःसहसतापसपन्नदेहः, कदाचित्कलिविश्लिष्ट-

---

विजयादेवी तन्नाम्नी प्रिया वल्लभा बभूव । शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः ॥३६॥ § ४७) तयोरिति—सा च स चेति तौ तयोः, विद्याया वैशद्येन नैर्मल्येन शोभितौ पुत्रौ बभूवतुः । आदौ भव आदिम आद्यो हरिचन्द्रः, ततोऽपरस्तस्मादन्यः कुरुविन्दः ॥३७॥ § ४८) स खल्विति—कदाचन जातुचित् बहूनामारम्भाणां सरम्भेण समायोजनेन विजृम्भितं वृद्धिंगतं यद् रौद्रध्यानं तस्याभिसधानेन धारणेन सदानितं सबद्धं नरकायुष्यं येन तथाभूतः, प्रत्यासन्ना निकटवर्तिनी मृतिर्मृत्युर्यस्य सः खेचरकुम्भिनीपतिर्विद्याधरधरावल्लभः, खलु निश्चयेन दावपावकस्य वनाग्नेर्ज्वालाभिरर्चिभिर्निकाशा सदृशी या दाहज्वरस्य बाधा पीडा तां सोढुमक्षमतयासामर्थ्येन पुण्यक्षयेण सुकृतहान्या परिणतं प्राप्तं यन्निजविद्यायाः स्वाकाशगामिनीविद्याया वैमुख्यं पराङ्मुखत्वं तेन च दमिता नष्टा मदशक्तिर्यस्य तथाभूतो दन्तावल इव करीव अतिदीनदशां प्रभूतहीनावस्थामापन्नः प्राप्तः, सीतातरङ्गिण्या विदेहक्षेत्रस्थसीतानामकनद्यास्तरङ्गैर्भङ्गैरालिङ्गितः आश्लिष्टः शीत इत्यर्थः, लतालतान्तैर्वल्लीकुसुमैः सुरभितः सुगन्धितः, मन्दारतरूणां कल्पवृक्षाणां संदोहे समूहे स्पन्दमानश्चलश्च यो मन्दपवमानो मन्थरसमीरस्तेन सुखाः सुखकरा ये उत्तरकुरुवनोद्देशा मेरूत्तरदिक्स्थितोत्तमभोगभूमिकाननप्रदेशास्तेषु विहरणाय भ्रमणाय स्पृहयालुरिच्छायुक्तः, निजाज्ञायाः परिपालने निस्तन्द्रेण निरलसेन हरिचन्द्रेण ज्येष्ठपुत्रेण तस्य वनस्योद्देशेषु प्रदेशेषु प्रापणं प्राप्तिस्तस्मै प्रेषितायां गगनगामिनीविद्यायाम् अपुण्यवशेन पापाधीनत्वेन अनुपकारिण्यां सत्यां दुर्वारेण दुःसहसतापेन सपन्नो युक्तो देहो यस्य तथाभूतः सन्, कदाचित् कलिना कलहेन विश्लिष्टा त्रुटित्वा पतिता या

प्रिया थी। उस विजयाने कोमल कान्तिसे रतिको पराजित कर दिया था तथा पूर्णचन्द्रमण्डलके समान उसका मुख था ॥३६॥ § ४७) तयोरिति—उन दोनोंके विद्याकी निर्मलतासे सुशोभित दो पुत्र हुए। पहला हरिचन्द्र और दूसरा कुरुविन्द ॥३७॥ § ४८) स खल्विति—अनेक आरम्भोंके आयोजनसे बढ़े हुए रौद्रध्यानको धारण करनेके कारण जिसे नरकायुका बन्ध पड चुका था तथा जिसकी मृत्यु अत्यन्त निकट थी ऐसा वह अरविन्द नामका विद्याधर राजा किसी समय बीमार पडा सो दावानलकी ज्वालाओंके समान दाहज्वरकी पीडा सहन करनेके लिए असमर्थ हो गया, उसी समय पुण्यका क्षय हो जानेसे उसकी विद्याएँ भी उससे विमुख हो गयीं। इन सब कारणोंसे वह मदशक्तिसे रहित हाथीके समान अत्यन्त दीन दशाको प्राप्त हो गया। वह चाहता था कि मैं सीता नदीकी लहरोंसे आलिंगित, लताओंके फूलोंसे सुगन्धित, तथा कल्पवृक्षोंके समूहमें विचरण करने वाली मन्दमन्द वायुसे सुखदायक उत्तरकुरुके वनप्रदेशोंमें विहार करूँ। अपनी आज्ञाके पालन करनेमे सावधान हरिचन्द्र नामक पुत्रने उत्तरकुरुके वनप्रदेशोंमें पहुँचानेके लिए अपनी आकाशगामिनी विद्याको भेजा परन्तु पुण्य क्षीण हो जानेसे उसकी वह विद्या भी कुछ उपकार न कर सकी। इस दशामें उसका शरीर दुर्वार तथा दुःखसे सहन करने योग्य संतापसे संतप्त हो रहा था। किसी

[१]गोधिकाबालधीविगलितशोणितबिन्दुसंदोहसंपर्कशान्तसंतापः, पापवशेन रुधिरवापीमज्जनमेव परमौषधं मन्यमानः, तद्वापीकरणाय समाज्ञप्तेन कुरुविन्देन पापोद्विग्नस्वान्तेन कारितायां कृत्रिमक्षतजवापिकायामतिसंतोषेण विहरमाणः, कृतगण्डूषो, विज्ञातरुधिरकृतकभावः, क्रोधेन कुरुविन्दवधाय धावमानो वीतवेगस्तरसा मध्ये निपत्य निजासिधेनुकाविदीर्णहृदयो मृतिमाससाद।

§ ४९) एवं पापविपाकेन दुर्मृतिप्राप्तदुर्गतिः।
एष इत्यधुनाप्यत्र कथेयं स्मर्यते जनैः ॥३८॥

§ ५०) तथा भवद्वंशाकाशचण्डभानुर्दण्डितारातिमण्डलः प्रचण्डतरभुजदण्डो दण्डो नाम व्योमचरपतिर्मणिमालिनामधेयं निजनन्दनं यौवराज्ये नियोज्य निरन्तरं विविधान्भोगाननुभुञ्जानो-

गोधिकाया गृहमुसल्या 'छिपकुली' इति हिन्दीभाषायां प्रसिद्धायाः वालधी पुच्छं तस्याः विगलितानां पतितानां शोणितबिन्दूनां रुधिरपृषतां संदोहः समूहस्तस्य संपर्केण संबन्धेन शान्तः संतापो दाहो यस्य तथाभूतः, पापवशेन दुरिताधीन्येन रुधिरवाप्यां लोहितदीर्घिकायां मज्जनं समवगाहनमेव परमौषधमुत्कृष्टभैषज्यं मन्यमानः, तद्वापीकरणाय रुधिरवापीनिर्माणाय समाज्ञप्तेन निर्दिष्टेन पापाद्दुरितादुद्विग्नं भीतं स्वान्तं चित्तं यस्य तेन कुरुविन्देन द्वितीयपुत्रेण कारितायां निर्मापितायां कृत्रिमक्षतजस्य कृत्रिमरुधिरस्य वापिकायाम् अतिसंतोषेण परमनिर्वृत्या विहरमाणः क्रीडन् कृतगण्डूषः कृतकुरलकः, विज्ञातो विदितो रुधिरस्य रक्तस्य कृतकभावः कृत्रिमत्वं येन तथाभूतः सन्, क्रोधेन रुषा कुरुविन्दवधाय कुरुविन्दहिंसनाय, धावमानो वेगेन गच्छन् वीतवेगो क्षीणत्वेन नष्टरयः, तरसा बलेन मध्ये निपत्य निजासिधेनुकया स्वक्षुरिकया विदीर्णं खण्डितं हृदयं यस्य तथाभूतः सन्मृतिं मृत्युम् आससाद प्राप। § ४९) एवमिति—अनेन प्रकारेण पापविपाकेन दुरितोदयेन दुर्मृत्या कुमरणेन प्राप्ता दुर्गतिर्नरकगतिर्येन तथाभूतः एषोऽरविन्दविद्याधरोऽभूद्। इतीत्थम्, इयं कथा अधुनापि साम्प्रतमपि जनैः स्मर्यते स्मृतिविषयीक्रियते ॥३८॥ § ५०) अथार्तध्यानस्य फलं निरूपयितुमाह—तथेति—भवद्वंश एवाकाशस्तस्मिन् चण्डभानुः सूर्यः, दण्डितं पराजितमरातिमण्डलं शत्रुसमूहो येन सः, प्रचण्डतरौ शक्तिसंपन्नौ भुजदण्डौ यस्य तथाभूतो दण्डो नाम व्योमचरपतिर्विद्याधरनरेन्द्रो मणिमालिनामधेयं निजनन्दनं स्वसुतं यौवराज्ये युवराजपदे नियोज्य नियुक्तं विधाय, निरन्तरं शश्वत् विविधान् नानाप्रकारान् भोगान् पञ्चेन्द्रिय-

समय कलशसे टूटकर गिरी हुई छिपकुलीकी पूँछसे निकली हुई खूनकी बूँदोंके संयोगसे उसका संताप कुछ शान्त पड़ा। पापके कारण उसने समझा कि मेरे रोगकी सर्वोत्कृष्ट औषध खूनकी वापिकामें अवगाहन करना ही है। फलस्वरूप खूनकी वापिका बनवानेके लिए उसने कुरुविन्द नामक द्वितीय पुत्रको आज्ञा दी। कुरुविन्दका चित्त पापसे भयभीत था इसलिए उसने कृत्रिम खूनकी वापिका बनवायी। उस वापिकामें वह विद्याधर राजा अत्यधिक सन्तोषसे क्रीडा करने लगा। क्रीडा करते-करते जब उसने कुरला किया तब उसे खूनकी कृत्रिमताका पता चल गया। वह क्रोधवश कुरुविन्दको मारनेके लिए दौड़ा परन्तु वेग नष्ट हो जानेसे बीचमें ही गिर पड़ा और अपनी ही छुरीसे उसका हृदय विदीर्ण हो गया जिससे मृत्युको प्राप्त हुआ। § ४९) एवमिति—इस प्रकार पापके वशसे यह राजा अरविन्द कुमरणसे मरकर दुर्गतिको प्राप्त हुआ यह कथा आज भी लोगोंको याद है ॥३८॥ § ५०) तथेति—इसी प्रकार आपके वंशरूपी आकाशमें सूर्यके समान, शत्रुओंके समूहको दण्डित करनेवाला तथा अत्यन्त शक्तिसम्पन्न भुजदण्डसे युक्त दण्ड नामका विद्याधर राजा हो गया है। वह मणिमाली नामक अपने पुत्रको युवराजपदपर नियुक्तकर निरन्तर नाना

१ गृहकोकिल क०।

ऽपि तृप्तिमलभमान', तीव्रसक्लेशपरिणामसकल्पिततिर्यगायुः, जीवितान्तकालिकदुर्ध्यानवैभवविजृम्भितदुर्मरणो निजभाण्डागारे समजायत महानजगरः।

§ ५१) भवस्मरणसंभूतभाण्डागारमहादरः।
सोऽनुमेने निजं सूनु तत्प्रवेशे न चापरम् ॥३९॥

§ ५२) अन्येद्युरसौ मणिमालिनामा खेचरपतिरवधिज्ञानलोचनान्मुनिविकर्तनाद्विज्ञाताजगरोदन्तः, पितृभक्त्या शयु पुरोधाय 'भवान् विषयासङ्गदोषविशेषेण कुयोनिं प्राप्तस्तद्विषयामिषमिदं किंपाकफलसकाशं, ताम्बूलमिव सयोगाधीनरागसपादकम्, अन्धकारमिव सन्मार्गनिरोधन,

---

विषयान् अनुभुञ्जानोऽपि तृप्ति सतोषम् अलभमानोऽप्राप्नुवन् तीव्रसक्लेशपरिणामेन संक्लिष्टतरभावेन सकल्पितं निश्चितं तिर्यगायुर्यस्य तथाभूत., जीवितान्तकालिकं जीवान्तसमयसमुत्पन्नं यद् दुर्ध्यानमार्तध्यान तस्य वैभवेन सामर्थ्येन विजृम्भित प्राप्त दुर्मरण यस्य तथाभूत सन्, निजभाण्डागारे स्वकीयभाण्डारगृहे महान् अजगरो विशालकाय शयु समजायत समुदभूत्। § ५१) भवेति—भवस्य पूर्वपर्यायस्य स्मरणेन ध्यानेन सभूत. समुत्पन्नो भाण्डागारे महान् आदर प्रीतिर्यस्य तथाभूत स शयु तस्मिन् भाण्डागारे प्रवेशस्तस्मिन्,-निज सूनु स्वकीय पुत्र मणिमालिनम् अनुमेनेऽनुमन्यते स्म न चापरं तदितर नानुमन्यते स्म ॥३९॥ § ५२) अन्येद्युरिति—अन्यस्मिन् दिवसे, असौ मणिमालिनामा विद्याधरधरावल्लभ, अवधिज्ञानमेव लोचनं नेत्र यस्य तस्मात् मुनिविकर्तनान्मुनिषु विकर्तन इव सूर्य इव तस्मान्मुनिश्रेष्ठात्, विज्ञातो विदितोऽजगरोदन्त. शयुवृत्तान्तो येन तथाभूत, सन् पितृभक्त्या जनकानुरागेण शयुमजगरं पुरोधायाग्रे स्थापयित्वा, इतीत्थं बोधयामासेति कर्तृक्रियासबन्ध। किं बोधयामासेत्युच्यते भवान् विषयेष्वासङ्ग आसक्ति. स एव दोषविशेषस्तेन कुयोनिं कुत्सितपर्याय प्राप्त, तत्तस्मात्कारणात्, इदं विषयामिष विषय एवामिषं भोग्यवस्तु तत्, किंपाकफलसकाश विषफलसदृशम्, ताम्बूलमिव नागवल्लीदलमिव संयोगाधीनस्य पुत्रकलत्रादिससर्गायत्तस्य पक्षे चूर्णखदिरक्रमुकादिसयोगाधीनस्य रागस्य प्रेम्ण. पक्षे लौहित्यस्य संपादक कारकम्, अन्धकारमिव ध्वान्तमिव सन्मार्गस्य

प्रकारके भोग भोगने लगा फिर भी सन्तोषको प्राप्त नहीं हुआ। फलस्वरूप उसने तीव्र संक्लेश परिणामोंके कारण तिर्यंच आयुका बन्ध किया और जीवनके अन्तमें होने वाले खोटे ध्यान की सामर्थ्यसे कुमरण प्राप्तकर वह अपने ही भाण्डारमें बड़ा भारी अजगर हुआ। § ५१) भवेति—पूर्वभवके स्मरणसे जिसे भाण्डागारमें बहुत भारी आदर उत्पन्न हुआ था ऐसा वह अजगर उसमें प्रवेश करनेके लिए अपने पुत्रको ही आज्ञा देता था अन्य किसीको नहीं ॥३९॥ § ५२) अन्येद्यु—किसी अन्य दिन मणिमाली नामका विद्याधर राजा, अवधिज्ञानी श्रेष्ठमुनिराजसे अजगरका वृत्तान्त जानकर पितृभक्तिसे उसे आगे कर इस प्रकार समझाने लगा—'आप विषयासक्तिरूप दोषकी विशेषतासे खोटी योनिको प्राप्त हुए हो इसलिए यह विषयरूपी भोग्यवस्तु किंपाक फलके समान है, पानके समान स्त्रीपुत्रादिके संयोगाधीन राग—प्रेमको उत्पन्न करनेवाला है (पक्षमें चूना खैर आदिके संयोगाधीन राग—लालिमाको उत्पन्न करनेवाला है) अन्धकारके समान सन्मार्ग—मोक्षमार्गको रोकनेवाला है (पक्षमे कण्टकादिसे रहित मार्ग अथवा सन्मार्ग—नक्षत्रोंका मार्ग—आकाशको रोकनेवाला

---

१ गद्यमिदं महापुराणे जिनसेनाचार्योक्तिमिमामनुजीवति—ताम्बूलमिव सयोगादिदं रागविवर्धनम्। अन्धकारमिवोत्सर्पत्सन्मार्गस्य विरोधनम् ॥ जैन मतमिव प्राय परिभूतमतान्तरम्। तडिल्लसितवल्लोलं विचित्र सुरचापवत् ॥

स्याद्वादमतमिव परिहृतमतान्तरं, तडिल्लताविलसितमिव चलाचलं, सुरशरासनमिव विचित्रं, दुस्त्याज्यमपि त्याज्यमेवेति' बोधयामास ।

§ ५३) ततस्तनयवाङ्मयप्रचुरशर्मधर्मामृतै-
निरस्तविषयस्पृहः स खलु जीवितान्ते पुनः ।
समाधिमरणं व्रजन् दिविजभूयमायातवान्
महर्द्धिपरिमण्डितो महितदिव्यदेहोज्ज्वलः ॥४०॥

§ ५४) अवधिज्ञानविज्ञातप्राग्भवः सुर आगतः ।
प्रादान्मणिमयीं मालां प्रपूज्य मणिमालिनम्[1] ॥४१॥

§ ५५) सेयं माला मणिगणलसत्कान्तिकल्लोलजाल-
व्याप्तप्रान्ता विलसति भवद्वक्षसि श्रीनितान्ते ।
प्रालेयाद्रेः कटकनिकटे सपतन्तीव गङ्गा
लक्ष्म्या लीलाहसितरुचिवत्कीर्तिबीजालिवच्च ॥४२॥

मोक्षमार्गस्य पक्षे कण्टकादिरहितप्रशस्तपथस्य निरोधनं प्रतिबन्धकं, स्याद्वादमतमिवानेकान्तसिद्धान्तमिव परिहृतं त्यक्तं मतान्तरं सांख्यादिसिद्धान्तः पक्षे गुरुजनहितोपदेशो येन तत्, तडिल्लताविलसितमिव विद्युद्वल्लीस्फुरणमिव चलाचलमतिशयचपलं, सुरशरासनमिव इन्द्रधनुरिव विचित्रं विविधस्वरूपं पक्षे विविधवर्णं, दुस्त्याज्यमपि दुःखेन त्यक्तुमर्हमपि त्याज्यमेव त्यक्तुमर्हमेव । § ५३) तत इति—ततस्तदनन्तरं तनयस्य मणिमालिनो वाङ्मयेन वचनजालेन प्रचुरशर्माणि प्रभूतसुखानि यानि धर्मामृतानि धर्मपीयूषाणि तैः निरस्ता दूरीकृता विषयस्पृहा भोगाकाङ्क्षा यस्य तथाभूतः सोऽजगरः खलु निश्चयेन पुनः जीवितान्ते जीवनान्ते समाधिमरणं सल्लेखनामरणं व्रजन् प्राप्नुवन् महर्द्धिभिर्विपुलर्द्धिभिः परिमण्डितः शोभितः महितेन प्रशस्तेन दिव्यदेहेन वैक्रियिकशरीरेणोज्ज्वलो निर्मलः सन् दिविजभूयं देवत्वं देवपर्यायमित्यर्थः आयातवान् प्राप्तवान् । पृथिवीछन्दः ॥४०॥ § ५४) अवधिज्ञानेति—अवधिज्ञानेन विज्ञातो विदितः प्राग्भवः पूर्वपर्यायो येन स तथाभूतः सुरो देवः आगतः सन् मणिमालिनं तन्नामधेयं स्वसुतं प्रपूज्य सत्कृत्य मणीनां विकार इति मणिमयीं तां मालां दाम प्रादात् ददातिस्म ॥४१॥ § ५५) सेयमिति—मणिगणस्य रत्नसमूहस्य लसता शोभमानेन कान्तिकल्लोलजालेन दीप्तिसततिसमूहेन व्याप्तः प्रान्तः समीपप्रदेशो यया तथाभूता इयं सा माला श्रिया नितान्ते लक्ष्म्युत्कटे भवद्वक्षसि भवदुरसि प्रालेयाद्रेर्हिमगिरेः कटकनिकटे मध्यभागसमीपे सपतन्ती गङ्गेव भागीरथीव

है), स्याद्वाद मतके समान अन्य मतोंका निराकरण करनेवाला है (पक्षमें गुरुजनोंके हितावह उपदेशको उपेक्षित करनेवाला है) विद्युल्लताकी कौंधके समान अत्यन्त चंचल है, इन्द्र-धनुषके समान विचित्र—विलक्षण है (पक्षमें अनेक रंगका है) और दुःखसे छोड़ने योग्य होनेपर भी छोड़ने योग्य ही है ।' § ५३) तत इति—तदनन्तर पुत्रके वचनसमूहसे उत्पन्न प्रभूत सुखदायक धर्मरूप अमृतके द्वारा जिसकी विषयाकांक्षा नष्ट हो गयी थी ऐसा वह अजगर आयुके अन्तमें समाधिमरणको प्राप्त होता हुआ बड़ी-बड़ी ऋद्धियोंसे युक्त तथा उत्तम वैक्रियिक शरीरसे देदीप्यमान होता हुआ देव पर्यायको प्राप्त हुआ ॥४०॥ § ५४) अवधिज्ञानेति—अवधिज्ञानसे जिसने पूर्व भव जान लिये ऐसे उस देवने आकर मणिमालीकी पूजा की तथा उसे मणिमयी माला प्रदान की ॥४१॥ § ५५) सेयमिति—मणिसमूहकी शोभायमान कान्ति सन्ततिके जालसे समीपवर्ती प्रदेशको व्याप्त करनेवाली यह वही माला, लक्ष्मीसे उत्कट आपके वक्षःस्थल पर हिमालयके कटकके निकट पड़ती हुई गंगाके समान लक्ष्मीके क्रीडाहास्यकी कान्तिके समान

---

१ मणिमालिने क० ।

§ ५६) एवं पुरा भवदीयपितामहः शतबलो नाम विद्याधरक्षोणीवल्लभो राज्यलक्ष्मी सुचिरमनुभवन्भवत्पितरि विन्यस्तसमस्तराज्यभारः सम्यग्दर्शनादिसपन्न सुध्यानेन त्यक्ततनुर्महेन्द्रकल्पे सुराग्रणी संजात.। स कदाचन काञ्चनशिखरिशिखरे नन्दनवने मया सह खेलन्तं भवन्तं समीक्ष्यापारस्नेहपूरितमानसो 'जैनधर्मं लोकोत्तराभ्युदयसाधन कदापि न विस्मरेति' समादिदेश ।

§ ५७) तथा भवत्पितृपितामहोऽपि निखिलखेचरमुकु[१]टराजिनीराजितचरणनीरेज. सहस्रबलः शतबले सुते निक्षिप्तराज्यभारो जैनी दीक्षामासाद्य तपोऽशुप्रकाशप्रकाशितमहीवलयः क्रमेणोत्पन्नकेवलज्ञानः समागतसुरासुरादिभिरभ्यर्चित' शाश्वत पदमुपजगाम ।

लक्ष्म्या श्रिया लीलाहसितस्य क्रीडाहासस्य रुचिवत्कान्तिवत् कीर्तेर्यशसो वीजालिवच्च बीजपङ्क्तिरिव च विलसते शोभते । उपमालकार , मन्दाक्रान्ता छन्द' ॥४२॥ § ५६) अथ धर्मध्यानस्य फल निरूपयितुमाह—एवमिति—एव पुरा पूर्वं भवदीयश्चासौ पितामहश्चेति भवदीयपितामहो भवत्पितृपिता शतबलो नाम विद्याधरक्षोणीवल्लभो गगनेचरराज सुचिरं दीर्घकालपर्यन्त राज्यलक्ष्मी राज्यश्रियम् अनुभवन् भवत्पितरि भवदीयजनकेऽतिबलमहाराजे विन्यस्तो विनिक्षिप्त समस्तो राज्यभारो येन तथाभूत , सम्यग्दर्शनादिभि सम्यक्त्वप्रभृतिभि. सपन्न सहित' सुध्यानेन धर्म्याभिधानेन प्रशस्तध्यानेन त्यक्ततनुस्त्यक्तशरीरो मृत सन् महेन्द्रकल्पे महेन्द्रस्वर्गे सुराग्रणी प्रधानदेव सजात । स देव कदाचन जातुचित् काञ्चनशिखरिण सुवर्णशैलस्य शिखरे शृङ्गे नन्दनवने मेरुस्थितोद्यानविशेषे मया स्वयबुद्धेन सह खेलन्त क्रीडन्त भवन्तं समीक्ष्य सम्यग्दृष्ट्वा अपारस्नेहेन प्रचुरप्रेम्णा पूरित मानस चित्त यस्य तथाभूत सन् लोकोत्तराश्च तेऽभ्युदयाश्चेति लोकोत्तराभ्युदयास्तेषा साधनं निमित्त जैनधर्मं जिनमत कदापि जात्वपि न विस्मर इति समादिदेश समादिष्टवान् । § ५७) अथ शुक्लध्यानस्य फल निरूपयितुमाह—तथेति—पितु' पिता पितामह , भवत्पितु. पितामह इति भवत्पितृपितामह सोऽपि निखिलखेचराणा समग्रविद्याधराणा मुकुटराजिभिर्मौलिपङ्क्तिभिर्नीराजिते कृतारार्तिके चरणनीरेजे यस्य स , सहस्रबल एतन्नामा राजा शतबले सुते एतदभिधाने पुत्रे निक्षिप्त स्थापितो राज्यभारो येन तादृशः सन् जैनी दैगम्बरी दीक्षा प्रव्रज्याम् आसाद्य प्राप्य तपोऽशूना तप किरणाना प्रकाशेन प्रकाशित शोभित महीवलयं भूमण्डल येन तथाभूत क्रमेण क्रमश उत्पन्नं केवलज्ञान यस्य तथाभूत , सन्, समागता समायाता ये सुरासुरादयः देवधरणीन्द्रा ते आदौ येषा तैः, अभ्यर्चित' पूजित. सन् शाश्वत पदं मोक्षम् उपजगाम प्राप ।

अथवा कीर्तिरूपी लताके बीजोंकी पंक्तिके समान सुशोभित हो रही है ॥४२॥ § ५६) **एवमिति**—इसी प्रकार पहले आपके पितामह शतबल नामके विद्याधर धरापति चिरकाल तक राज्यलक्ष्मीका उपभोग करते हुए, आपके पितापर समस्त राज्यभार रख सम्यग्दर्शनादिसे युक्त हो धर्म्यध्यानसे शरीर छोडकर महेन्द्र स्वर्गमे श्रेष्ठ देव हुए थे। किसी समय सुमेरुपर्वतके शिखरपर मेरे साथ खेलते हुए आपको देखकर उनका हृदय अपार स्नेहसे भर गया था। उस समय उन्होंने आपको आज्ञा दी थी कि सर्वश्रेष्ठ अभ्युदय—सासारिक सुखोंके निमित्तभूत जैनधर्मको कभी नहीं भूलना । § ५७) **तथेति**—इसी तरह समस्त विद्याधरोंके मुकुटोंकी पंक्तियोंसे जिनके चरणकमलोंकी आरती की जाती थी ऐसे आपके पिताके पितामह सहस्रबल भी, शतबल नामक पुत्रपर राज्यका भार रख दैगम्बरी दीक्षाको प्राप्त हो तपकी किरणोंके प्रकाशसे भूमण्डलको प्रकाशित करते, क्रमसे केवलज्ञान प्राप्त करते तथा समस्त देव और

---

१. मकुट क० ।

§ ५८) तथा भवत्पिता धीरस्त्वयि व्यस्तमहीभरः ।
प्रव्रज्यामाश्रितः श्रीमान्प्राप्तवैराग्यवैभव ॥४३॥

§ ५९) भवानपि महाधीरो भवद्वंशनराधिपैः ।
साकं तपश्चरन्नेष मोक्षलक्ष्मी जिघृक्षति ॥४४॥

§ ६०) धरापते ! ध्यानचतुष्टयस्य फलं विनिर्दिष्टमवेहि तत्र ।
पूर्वद्वय पापफल प्रतीतं परद्वय प्राप्तशुभप्रवाहम् ॥४५॥

§ ६१) इति जिनाधीशदर्शितधर्मदेशनाप्रकाशबद्धादर प्रवादिमदकण्डूलवनशुण्डालपञ्चानन स्वयबुद्ध तद्वचनमधुधारामधुकरायमाणसप्रीतान्त करणेन धरारमणेन परिष्कृता परमास्तिक्यमास्थिता सभा सभा सभाजयामास ।

§ ६२) वाणी श्रुत्वा खगाधीशो द्रोणी ससारवारिधेः ।
स्वय सपूजयामास स्वयबुद्ध महाधियम् ॥४६॥

---

§ ५८) तथेति—तथा धीरो धिय बुद्धिमीरयति प्रेरयतीति धीरो विद्वान् गभीरो वा, त्वयि न्यस्तो निक्षिप्तो महीभर पृथिवीभारो येन स , श्रीमान् राज्यश्रीयुक्त भवत्पिता त्वदीयजनकोऽतिबलमहाराज प्राप्त वैराग्यस्य वैभव येन तथाभूत प्राप्तनिर्वेदपरमावधि सन् प्रव्रज्या जिनदीक्षाम् आश्रित प्राप्त ॥४३॥ § ५९) भवानपीति—महांश्चासौ वीरश्चेति महाधीरो महाबुद्धिमान् परमगभीरो वा, एष पुरोवर्तमानो भवानपि भवद्वंशस्य निजान्वयस्य नराधिपा राजानस्तै साक तपश्चरन् तपस्या कुर्वन् मोक्षलक्ष्मीमपवर्गश्रियम्, जिघृक्षति ग्रहीतुमिच्छति ॥४४॥ § ६०) धरापते इति—हे धरापते ! हे भूवल्लभ ! इत्थ ध्यानचतुष्टयस्य रौद्रार्तधर्म्यशुक्लात्मकस्य फल साध्य विनिर्दिष्ट कथितम् अवेहि जानीहि । तत्र तेषु पूर्वद्वय रौद्रार्तरूप पाप फल यस्य तथाभूत परद्वय धर्म्यशुक्लरूप च प्राप्तो लब्ध शुभप्रवाहो पुण्यसततिर्यस्य तथाभूत प्रतीत प्रसिद्धम् ॥४५॥ § ६१) इतीति—इतीत्थ जिनाधीशेन जिनेन्द्रेण दर्शितो दिव्यध्वनिना प्ररूपितो यो धर्मस्तस्य देशनाया उपदेशस्य प्रकाशे प्रकटने बद्ध आदरो येन त, प्रवादिनो मिथ्यावादिन एव मदकण्डूला गर्वकण्डूयुक्ता वनशुण्डालाः कानननकरिणस्तेषा पञ्चानन सिंह, स्वयबुद्धमेतन्नामामात्य तद्वचन स्वयंबुद्धवचनमेव मधुधारा मकरन्दक्षरी तस्या मधुकरायमाण भृङ्गायमान सप्रीत प्रसन्नमन्त करण मानस यस्य तथाभूतेन धरारमणेन भूपतिना परिष्कृता शोभिता परमास्तिक्यमुत्कृष्टश्रद्धाभावम् आस्थिता प्राप्ता, भया कान्त्या सहिता सभा, सभा परिषत्, सभाजयामास सच्चकार । § ६२) वाणीमिति—खगाधीशो विद्याधरधरावल्लभो महाबल , ससारवारिधेर्भवार्ण-

---

धरणेन्द्रोंसे पूजित होते हुए मोक्षपदको प्राप्त हुए थे । § ५८) तथेति—तथा धीरवीर श्रीमान् आपके पिता अतिबल महाराज, वैराग्यकी परम सीमाको प्राप्त हो आपके ऊपर पृथिवीका भार रख जिनदीक्षाको प्राप्त हुए थे ॥४३॥ § ५९) भवानपीति—और अतिशय धीर-वीर आप भी अपने वंशके राजाओंके साथ तपश्चरण करते हुए मोक्षलक्ष्मीको ग्रहण करना चाहते हैं ॥४४॥ § ६०) धरापते इति—हे राजन् ! इस तरह चार ध्यानोंका फल कहा गया है यह जानो । उनमे पहलेके दो ध्यान–रौद्र और आर्तध्यान पापरूप फलसे सहित हैं और आगेके दो ध्यान–धर्म्य और शुक्लध्यान पुण्यके प्रवाहको प्राप्त करानेवाले हैं ॥४५॥ § ६१) इतीति—इस प्रकार जिनेन्द्र भगवानके द्वारा दिखलाये हुए धर्म सम्बन्धी उपदेशके प्रकट करनेमे जिसने आदर लगाया है तथा जो मिथ्यावादीरूपी अभिमानी जगली हाथियोंको नष्ट करनेके लिए सिंहके समान है ऐसे स्वयंबुद्ध मन्त्रीको, उसके वचनरूपी मधुकी धारापर भ्रमरके समान आचरण करनेवाले प्रसन्न अन्तःकरणसे युक्त राजाके द्वारा सुशोभित, परम श्रद्धाभावको प्राप्त तथा कान्तिसे सहित सभाने अच्छी तरह सम्मानित किया । § ६२) वाणीमिति—विद्याधरोंके राजा

§ ६३) स्वयबुद्धः सोऽयं सकलगुणमालाविलसित·
कदाचित्सद्भक्त्या जिनपतिगृहान्वन्दितुमना· ।
ययौ कल्याणाद्रिं कनकरुचिलीलाकपिशिता-
म्बराभोगं शृङ्गोल्लिखितसुरलोकं सुरुचिरम् ॥४७॥

§ ६४) यः किल पिहिताम्बरोऽपि विलसदंशुकः मेरुरपि समाश्रितनमेरु·, सतामरसंपदं दधानोऽपि नतामरसपद दधान, बहुलतागहनोऽपि निरस्ततमोभरः, मरालीमहितनन्दवनोऽपि

वस्य द्रोणी नौका वाणी भारती श्रुत्वा महाधिय महाबुद्धिमन्त स्वयबुद्धं स्वय स्वत संपूजयामास सच्चकार ॥४६॥ § ६३) स्वयंबुद्ध इति—सकलगुणाना सम्यग्दर्शनादिनिखिलगुणाना मालया सतत्या विलसित. शोभित· सोऽयं पूर्वोक्तमहिममहितः स्वयबुद्ध कदाचित् सद्भक्त्या समीचीनभक्त्या जिनपतिगृहान् जिनेन्द्रमन्दिराणि 'गृहा पुसि च भूम्न्येव' इत्यमरवचनाद् गृहशब्दस्य बहुवचन एव पुसि प्रयोगः, वन्दितुमना वन्दितुकाम 'तु काममनसोरपि' इति वचनात्तुमनो मकारस्य लोप, कनकरुचीना सुवर्णकान्तीना लीलया कपिशित. पिङ्गलीकृतोऽम्बराभोगो गगनविस्तारो येन त, शृङ्गेण शिखरेणोल्लिखित सघृष्ट सुरलोक. स्वर्गो येन तं, सुरुचिर मनोहर कल्याणाद्रिं सुमेरुपर्वत ययौ जगाम। § ६४ अथ सुमेरुं वर्णयितुमाह—य किलेति—य किल कल्याणाद्रि., पिहितमाच्छादितमम्बरं वस्त्रं येन तथाभूतोऽपि तिरोहितवस्त्रोऽपि विलसच्छोभमानमशुकं वस्त्र यस्य तथेति विरोध· परिहारपक्षे पिहितमाच्छादितमम्बरं गगन येन तथाभूतोऽपि सन् विलसन्त· शोभमाना अंशवो रश्मयो यस्य तथाभूत । मेरुरपि मेरुनामकोऽपि समाश्रिताना समागतजनाना मेरुर्न भवतीति नमेरुरिति विरोध परिहारपक्षे मेरुरपि समाश्रिता समधिष्ठिता नमेरव छायावृक्षा यत्र तथाभूत, तामरसैः कमलै सहित सतामरस पद स्थान दधानोऽपि न विद्यन्ते तामरसानि कमलानि यत्र तत् एवभूत पद स्थान दधान इति विरोध परिहारपक्षे सतामरसपद दधानोऽपि नतामराणा नम्रीभूतदेवाना सपद सपत्ति दधान । बहुलतागहनोऽपि कृष्णपक्षगहनोऽपि निरस्तो दूरीकृतस्तमोभरस्तिमिरसमूहो येन तथाभूत इति विरोध परिहारपक्षे बहुलताभि. प्रभूतवल्लीभिरुपलक्षितानि गहनानि वनानि यस्मिन् स । मरालीभिर्हंसपङ्क्तिभिर्म-

---

महाबलने संसाररूपी समुद्रसे पार करनेवाली नौकाके समान वाणी सुनकर महाबुद्धिमान् स्वयंबुद्धका स्वयं अच्छा सत्कार किया ॥४६॥ § ६३) स्वयंबुद्ध इति—समस्त गुणोंके समूहसे सुशोभित वह स्वयंबुद्ध, किसी समय समीचीन भक्तिसे जिनमन्दिरोंकी वन्दना करनेके लिए उत्सुक होता हुआ, सुवर्ण किरणोंकी लीलासे आकाशके विस्तारको पीला करनेवाले, शिखरसे स्वर्गलोकको छूनेवाले तथा अतिशय सुन्दर सुमेरु पर्वत पर गया ॥४७॥ § ६४) यः किलेति—जो सुमेरु पर्वत पिहिताम्बर—वस्त्रोंको आच्छादित करनेवाला होकर भी विलसदंशुक—वस्त्रोंसे सुशोभित था यह विरुद्ध बात है (परिहार पक्षमें पिहिताम्बर—आकाशको आच्छादित करनेवाला होकर भी विलसदंशुक—शोभमान किरणोंसे सहित था)। मेरु होकर भी समाश्रितनमेरु—आये हुए मनुष्योंके लिए मेरु नहीं था यह विरुद्ध बात है (परिहार पक्षमे मेरु होकर भी नमेरु छायावृक्षोसे सहित था)। सतामरसं पद—कमलोंसे सहित पदको—सरोवरको धारण करनेवाला होकर भी नतामरस पदं—कमलरहित पदको धारण करनेवाला था यह विरुद्ध बात है (परिहारपक्षमें कमलसहित सरोवरको धारण करनेवाला होकर भी नतामरसं पदं—नम्रीभूत देवोंको सम्पत्तिको धारण करनेवाला था)। बहुलतागहन—कृष्णपक्षसे सान्द्र होनेपर भी निरस्ततमोभर—अन्धकारके समूहको दूर करनेवाला था यह विरुद्ध बात है (परिहारपक्षमे अनेक लताओंसे युक्त वनोंसे सहित होने पर भी अन्धकारके समूहको दूर करनेवाला था)। मरालीमहितनन्दनवन—हंसियोंसे सुशोभित नन्दनवनसे

अमरालीमहितनन्दनवन , रजस्फुरणपरिशोभितोऽपि नीरजस्फुरणपरिशोभितः, सततमगमहितोऽपि नागमहितो विराजते ।

§ ६५) त्रिदशोपसेवितो यः प्राज्यविराजितरुचिर्महामेरुः ।
लक्ष्मीविलासगेहे जम्बूद्वीपे विभाति दीप इव ॥४८॥

§ ६६) तत्र किल विचित्रचिरंतनरत्नखचितानेकरसभङ्गीसगतसुराङ्गनासचरणसचलत्कनककिङ्किणीमृदुनिनादमनोहरान्नित्यालोकानकृत्रिमचैत्यालयान्यथाक्रममासाद्यानम्य च प्रमोद-

---

हित शोभित नन्दनवन यस्मिन् तथाभूतोऽपि अमरालीमहितनन्दनवन', न मरालीभिर्महित नन्दनवन यस्मिन्निति विरोध परिहारपक्षे अमराणा देवानामाल्य पङ्क्तयस्ताभिर्महित नन्दनवन यस्मिन् स । रजस' स्फुरण रजस्फुरण 'खर्परे शरि विसर्गलोपो वा वक्तव्य ' इति वार्तिकेन विसर्गस्य लोप । परागसचारस्तेन परिशोभितो समलकृतोऽपि नीरजस्फुरणपरिशोभित' निर्गत यद् रज'स्फुरण तेन परिशोभित इति विरोध परिहारपक्षे नीरजाना कमलाना स्फुरणेन परिशोभित । सतत सर्वदा अगमहितोऽपि अगेषु पर्वतेषु महित. प्रशस्तोऽपि नागमहित अगमहितो न भवतीति नागमहित पर्वतप्रशस्तो न भवतीति विरोध परिहारपक्षे नागै सुरगजै नागकुमारदेवैर्वा महितो मान्य इति । श्लेषानुप्राणितो विरोधाभासालकार । § ६५) त्रिदशेति—यो महामेरु लक्ष्म्या श्रिया विलासगेहे क्रीडागारे जम्बूद्वीपे दीप इव विभाति शोभते । अथोभयो सादृश्यमाह—त्रिदशेति—त्रिदशैर्देवैरुपसेवित सहितो महामेरु , दीपपक्षे तिस्रो दशा वर्तिका इति त्रिदशास्ताभिरुपसेवित सहित , प्राज्येति—प्राज्य प्रकृष्ट यथा स्यात्तथा विराजिता शोभिता रुचि कान्तिर्यस्य तथाभूतो महामेरु , दीपपक्षे प्राज्यस्य प्रकृष्टघृतस्य विराजिता रुचि कान्तिर्यस्मिस्तथाभूत । रूपकोपमालकारो आर्यावृत्तम् ॥४८॥ § ६६) तत्रेति—तत्र किल सुमेरुपर्वते विचित्राणि नानाप्रकाराणि चिरतनानि शाश्वतानि यानि रत्नानि तै खचितान् जटितान् अनेकरसभङ्गीभिर्नानारससततिभि. सगताना सहिताना सुराङ्गनाना देवीना सचरणेन परिभ्रमणेन सचलन्त्यो या कनककिङ्किण्य सुवर्णक्षुद्रघण्टिकास्तासा मृदुनिनादेन कोमलशब्देन मनोहरा अभिरामास्तान् नित्यालोकान् शाश्वतप्रकाशान् नित्यालोकनामधेयान्वा अकृत्रिमचैत्यालयानकृत्रिमजिनमन्दिराणि यथाक्रम क्रमश आसाद्य प्राप्य आनम्य नमस्कृत्य च प्रमोदलहरीणामानन्दतरङ्गाणा

युक्त होकर भी अमरालीमहितनन्दनवन—हंसियोंसे रहित नन्दनवनसे युक्त था यह विरुद्ध बात है (परिहारपक्षमे हंसियोंसे सहित नन्दनवनसे युक्त होकर भी अमराली—देवोंकी पंक्तियोंसे सहित नन्दनवनसे युक्त था)। रज स्फुरण—परागके सचारसे सुशोभित होकर भी नीरजस्फुरण—परागके सचारसे सुशोभित नहीं था यह विरुद्ध बात है, (परिहारपक्षमें रजस्फुरणसे सुशोभित होकर भी नीरजस्फुरण—कमलोंके विकाससे सुशोभित था)। और सदा अगमहित—पर्वतोंमें श्रेष्ठ होकर भी नागमहित—पर्वतोंमें श्रेष्ठ नहीं था यह विरुद्ध बात है (परिहारपक्षमें पर्वतोंमे श्रेष्ठ होकर भी नागमहित—हाथियों अथवा नागकुमार देवोंसे महित–श्रेष्ठ था)। § ६५ त्रिदशेति—जो महामेरु लक्ष्मीके विलासगृहस्वरूप जम्बूद्वीपमें दीपकके समान सुशोभित हो रहा था क्योंकि जिस प्रकार दीपक त्रिदशोपसेवित—तीन-बत्तियोंसे सुशोभित होता है उसी प्रकार महामेरु भी त्रिदशोपसेवित—देवोंसे सुशोभित था और जिस प्रकार दीपक प्राज्य विराजितरुचि—श्रेष्ठ घीसे सुशोभित कान्तिसे युक्त होता है उसी प्रकार महामेरु भी प्राज्य विराजितरुचि—अत्यन्त सुशोभित कान्तिसे युक्त था ॥४८॥ § ६६) तत्रेति—उस मेरु पर्वत पर, जो नाना प्रकारके रत्नोंसे जड़े हुए थे, जो अनेकरत्नोंकी सन्ततिसे युक्त देवांगनाओंके संचार से हिलती हुई सुवर्णमय क्षुद्रघण्टिकाओंके कोमल शब्दसे मनोहर थे तथा जिनमे निरन्तर प्रकाश विद्यमान रहता था अथवा जो नित्यालोक नामको धारण करने वाले थे ऐसे अकृत्रिम चैत्यालयोंको क्रम-क्रमसे प्राप्तकर तथा नमस्कार कर

लहरी परीवाहप्लावितान्तःकरणः सौमनसवनपौरस्त्यदिग्भागभासमाने जिनभवने कृतभगवत्सपर्याचर्यः पर्याप्तभाग्यः क्षणं निषसाद ।

§ ६७) अथागतौ पूर्वविदेहरम्यकच्छाख्यदेशान्नगरादरिष्टात् ।

ऐक्षिष्ट सोऽयं धुरि चारणौ द्वौ मुनीश्वरौ मान्यगुणाभिरामौ ॥४९॥

§ ६८) तौ किल प्रवाहौ करुणारसस्य, सेतू संसाराम्बुधेः, महामन्त्रौ क्रोधभुजगस्य, दिवसकरौ मोहान्धकारस्य, आलवालदेशौ जिनभक्तिवल्ल्या, राजहंसौ युगंधरमहातीर्थसरस्याः, पूर्वाचलाववधिज्ञानदिनकरोदयस्य, मुनिपुङ्गवावादित्यगत्यरिंजयनामधेयावभ्येत्याभ्यर्च्य च मुहुर्मुहुः प्रणम्य सुखासीनः स्वयंबुद्ध एव पृच्छाचक्रे ।

§ ६९) महाबल इतीरितः सकलखेचराधीश्वरः

पुरे वसति नः प्रभुः स किल भव्य एवाथवा ।

परीवाहेण प्लावितं निमग्नं अन्तःकरणं मनो यस्य तथाभूतः स्वयंबुद्धः सौमनसवनस्य तन्नामसुमेरूद्यानस्य पौरस्त्यदिग्भागे पूर्वदिग्भागे भासमाने शोभमाने तस्मिन् जिनभवने जिनेन्द्रभवने कृता विहिता भगवतां जिनेन्द्राणां सपर्याचर्या पूजाविधिर्येन सः पर्याप्तं भाग्यं यस्य तथाभूतः स्वं पर्याप्तभाग्यशालिनं मन्यमान इत्यर्थः क्षणं निषसाद स्थितोऽभूत् । § ६७) अथेति—अथोपवेशनानन्तरम् सोऽयं स्वयंबुद्धः पूर्वविदेहे पूर्वविदेहक्षेत्रे रम्यो मनोहरो यः कच्छाख्यदेशः एतन्नामदेशविशेषस्तस्मात्, अरिष्टात् एतन्नामधेयात् नगरात् आगतौ आयातौ, चारणौ चारणर्द्धिसहितौ गगनगामिनावित्यर्थः, मान्यगुणैः प्रशस्यगुणैरभिरामौ मनोहरौ द्वौ मुनीश्वरौ मुनिराजौ धुरि अग्रे ऐक्षिष्ट ददर्श । उपजातिवृत्तम् ॥४९॥ § ६८) तौ किलेति—तौ किल मुनीश्वरौ करुणारसस्य दयारसस्य प्रवाहौ निर्झरौ, संसारसागरस्य पुलिनौ, क्रोधनागस्य महामन्त्रौ मोह एवान्धकारस्तस्य मिथ्यात्वतिमिरस्य दिवसकरौ सूर्यौ, जिनभक्तिरेव वल्ली तस्या जिनभक्तिलतायाः आलवालदेशौ आवापदेशौ युगंधरो विदेहक्षेत्रस्य तीर्थकरस्तस्य महातीर्थमेव सरसी कासारस्तस्य राजहंसौ हंसविशेषौ 'राजहंसास्तु ते चञ्चूचरणैर्लोहितैः सिताः' इत्यमरः, अवधिज्ञानमेव दिनकरः सूर्यस्तस्योदयस्य पूर्वाचलावुदयाचलौ, आदित्यगतिश्च अरिंजयश्चेत्यादित्यगत्यरिंजयौ तौ नामधेये ययोस्तौ मुनिपुङ्गवौ मुनिश्रेष्ठौ, अभ्येत्य तयोः संमुखं गत्वा अभ्यर्च्य च पूजयित्वा च मुहुर्मुहुः भूयोभूयः प्रणम्य सुखासीनः सुखोपविष्टः स्वयंबुद्ध एव पृच्छाचक्रे पप्रच्छ । रूपकालंकारः । § ६९) महाबल इति—क्षमागुण एव मणिस्तस्य खनी आकरौ मुनियुगलस्य संबोधनम् । नोऽस्माकं पुरे नगरे प्रभुः स्वामी सकलखेचराणां निखिलविद्याधराणामधीश्वरः

हर्षकी तरंगोंके प्रवाहसे जिसका अन्तःकरण निमग्न हो रहा था, सौमनस वनकी पूर्व दिशामें शोभायमान जिनमन्दिरमें जिसने भगवान्‌की पूजा की थी तथा इस क्रियासे जो अपने आपको पर्याप्त भाग्यशाली मानता था ऐसा स्वयंबुद्ध मन्त्री वहाँ क्षण भरके लिए बैठ गया । § ६७) अथेति—तदनन्तर स्वयंबुद्ध मन्त्रीने पूर्व विदेह क्षेत्रमें सुशोभित कच्छ नामक देशके अरिष्ट नगरसे आये हुए चरण ऋद्धिके धारक तथा माननीय गुणोंसे मनोहर दो मुनिराजोंको अपने आगे देखा ॥४९॥ § ६८ तौ किलेति—वे मुनिराज करुणारसके प्रवाह थे, संसाररूपी समुद्रके पुल थे, क्रोधरूपी सर्पके लिए महामन्त्र थे, मोहरूपी अन्धकारको नष्ट करनेके लिए सूर्य थे, जिनभक्तिरूपी लताके लिए क्यारी थे, युगन्धर तीर्थंकरके तीर्थरूपी सरोवरके राजहंस थे, अवधिज्ञानरूपी सूर्यके उदयके लिए उदयाचल थे तथा आदित्यगति और अरिंजय इनके नाम थे । उनके सम्मुख जाकर, पूजा कर बार-बार प्रणाम कर सुखसे बैठे हुए स्वयंबुद्ध मन्त्रीने उनसे इस प्रकार पूछा । § ६९) महाबल इति—हे समस्त गुणरूपी मणियोंकी खान ! हमारे नगरमें हमारा स्वामी महाबल नामसे प्रसिद्ध समस्त विद्याधरोंका

अभव्य इति सशयो मम हृदालये खेलति
क्षमागुणमणे खनी ! सह तदीयजिज्ञासया ॥५०॥

§ ७०) प्रश्नाभिध मधु निगीर्य निरुक्तरीत्या
तस्याथ मीलदधरोष्ठदले मुखाब्जे ।
आदित्यगत्यभिध एष मुनिर्मुखाब्ज-
हर्षाय सूक्तिकिरणान्प्रकटीचकार ॥५१॥

§ ७१) भो सचिवोत्तस ! असौ भवत्स्वामी भव्यो, भव्य एव भवद्वचनशैली प्रत्येष्यति, प्राप्स्यति च दशमजन्मन्यस्मिञ्जम्बूद्वीपस्यालङ्कारभूते भारतखण्डे युगारम्भे प्रचुरागण्यपुण्यवशेन तीर्थंकराग्रगण्यता सकलसक्रन्दनप्रमुखवृन्दारक सदोहवन्दनीयता च ।

§ ७२) अतीतभवमेतस्य प्रतीतयशस शृणु ।
धर्मबीज हि यत्रोप्त शर्मभोगेच्छयामुना ॥५२॥

महाबल इतीरित महाबल नाम्ना प्रसिद्ध वसति, स किल भव्य एव रत्नत्रयप्राप्तियोग्य एव अथवा अभव्यो रत्नत्रयप्राप्त्ययोग्य इतीत्थ सशयो विचिकित्सा मम स्वयबुद्धस्य हृदालये मनोमन्दिरे तदीया चासौ जिज्ञासा च ज्ञातुमिच्छा च तया सह खेलति क्रीडति रूपकालकार पृथिवीवृत्तम् ॥५०॥ § ७०) प्रश्नाभिधमिति— अथानन्तर तस्य स्वयबुद्धस्य मुखमेवाब्ज तस्मिन् वदनवारिजे निरुक्तरीत्या पूर्वोक्तप्रकारेण प्रश्नाभिध प्रश्ननामधेय मधु मकरन्द विगीर्य प्रकटयित्वा मीलती अधरोष्ठदले यस्य तथाभूते निमीलदधरोष्ठपत्रे सति आदित्यगतिरभिधा यस्य तथाभूत आदित्यगतिनामधेय सूर्यतुल्य इत्यर्थ, एषोऽय मुनि, मुखाब्जहर्षाय स्वयबुद्धमुखकमलविकासाय सूक्तय एव किरणास्तान् सुभाषितरश्मीन् प्रकटीचकार प्रकटयामास । रूपकालकार । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥५१॥ § ७१) भो सचिवोत्तसेति—हे अमात्यभूषण ! असौ भवत्स्वामी भवत्प्रभु भव्यो रत्नत्रयप्राप्त्यर्ह एवास्तीति शेष, यत. भव्य एव भवद्वचनशैली भवदुपदेशप्रकार प्रत्येष्यति श्रद्धास्यति, दशमजन्मनि दशमभवे जम्बूद्वीपस्य प्रथमद्वीपस्यालकारभूते भूषणस्वरूपेऽस्मिन् भारतखण्डे भरतक्षेत्रे युगारम्भेऽवसर्पिणीकालान्तर्गतकर्मभूमिप्रारम्भे प्रचुर प्रभूतमगण्यमपरिमित च यत्पुण्य सुकृत तस्य वशेन तीर्थंकरेषु चतुर्विंशतिधर्मप्रवर्तकेषु अग्रगण्यता प्रथमता सकला समस्ता संक्रन्दनप्रमुखा इन्द्रप्रधाना ये वृन्दारका देवास्तेषा सदोहेन समूहेन वन्दनीयता नमस्करणीयता च प्राप्स्यति लप्स्यते च । § ७२) प्रतीतेति—प्रतीत प्रसिद्ध यशो यस्य तथाभूतस्य, एतस्य महाबलस्य अतीतभव पूर्वपर्याय शृणु समाकर्णय, यत्र यस्मिन्, अमुनानेन शर्मभोगेच्छया सुखानुभववाञ्छया धर्मबीजं उप्त निक्षिप्त कृतवापमिति यावत् ॥५२॥

राजा रहता है सो वह भव्य ही है अथवा अभव्य, यह सशय हमारे मनरूपी मन्दिरमें उसकी जिज्ञासाके साथ क्रीड़ा किया करता है ॥५०॥ § ७०) प्रश्नाभिधमिति—तदनन्तर जब स्वयबुद्धका मुखकमल पूर्वोक्त प्रकारसे प्रश्ननामक मकरन्दको प्रकट कर अधरोष्ठरूपी दलोंको बन्द कर चुका तब आदित्यगति नामके मुनिराज इसके मुखकमलको विकसित करनेके लिए सूक्तिरूपी किरणोंको प्रकट करने लगे ॥५१॥ § ७१) भो सचिवोत्तसेति—हे अमात्याभरण ! यह आपका स्वामी भव्य है क्योंकि भव्य ही आपकी वचन शैलीपर प्रतीति करेगा और दशवें भवमे जम्बूद्वीपके अलंकारस्वरूप इस भरतक्षेत्रमे कर्मभूमि रूप युगका प्रारम्भ होनेपर बहुत भारी पुण्यके वशसे तीर्थंकरोंमे अग्रगण्यता तथा इन्द्रादि समस्त देव समूहके द्वारा वन्दनीयताको प्राप्त करेगा ॥ § ७२) अतीतेति—प्रसिद्ध यशके धारक पूइसका वं भव सुनो

§ ७३) विख्यातपश्चिमविदेहविराजमान-
श्रीगन्धिलोल्लसितसिंहपुरे व्यराजत् ।
श्रीषेणनामधरणीरमणः प्रियास्य
श्रीसुन्दरीति विदिता भुवनैकरम्या ॥५३॥

§ ७४) जयवर्मेति विख्यातो ज्यायान्पुत्रस्तयोरभूत् ।
श्रीवर्मेति कनीयाश्च समस्तजनताप्रिय· ॥५४॥

§ ७५) तदनु श्रीषेणभूपाले जनानुरागमुत्साह च समीक्ष्य कनीयसि[1] राज्यपट्टमातन्वाने, खर्वेतरनिर्वेदो जयवर्मा स्वयप्रभगुरो· पार्श्वे गृहीतदीक्षो नवसयत एव, अपरमिव सूर्यमधिनभः-स्थलमायान्त महर्द्धिसमेत व्योमचराधिपतिमुच्चक्षुर्वीक्षमाणस्तद्भोगप्राप्तिचिन्तादन्तुरितस्वान्त , वल्मीकविलनिर्गतदंदशूकनिर्दष्टतनुर्भोगचिन्तयैव सत्यक्तासुः सप्राप्तमहाबलभव. सतत भोगेष्वेव चिरतरमरज्यत ।

---

§ ७३) विख्यातेति—विख्यातश्चासौ पश्चिमविदेहश्चेति विख्यातपश्चिमविदेह प्रसिद्धपश्चिमविदेहक्षेत्रं तस्मिन् विराजमान शोभमान श्रीगन्धिलेत्युल्लसित शोभित यत् सिंहपुर तन्नामधेय नगर तस्मिन् श्रीषेणनाम-धरणीरमण श्रीषेणाभिधानभूपति व्यराजत् शुशुभे । अस्य श्रीषेणस्य भुवनैकरम्या जगदेकसुन्दरी श्रीसुन्दरी-ति एतन्नामधेया विदिता प्रसिद्धा प्रिया वल्लभा चासीदिति शेष ॥५३॥ § ७४) जयवर्मेति—सा च स चेति तौ तयो श्रीषेणश्रीसुन्दर्यो । जयवर्मेति विख्यात. प्रथित ज्यायान् ज्येष्ठ श्रीवर्मेति विख्यात कनीयान् लघुः पुत्रोऽभूत् तयो कनीयान् पुत्र. समस्तजनताया निखिलजनसमूहस्य प्रियो वल्लभ आसीत् ॥५४॥ § ७५) तदन्विति—तदनन्तर श्रीषेणभूपाले श्रीषेणमहाराजे जनानुराग लोकप्रीतिम् उत्साह प्रजापालनदक्षता च श्रीवर्मण इति शेष· समीक्ष्य विचार्य कनीयसि लघुपुत्रे राज्यपट्टम् आतन्वाने बध्नति सति खर्वेतरो महान् निर्वेदो वैराग्य यस्य तथाभूतो जयवर्मा स्वयप्रभगुरोरेतन्नामधेयमुने पार्श्वे गृहीता दीक्षा येन स स्वीकृतप्रव्रज्य., नवसयत एवाभिनवदीक्षित एव नभ स्थल इत्यधिनभस्थल गगने अपर द्वितीय सूर्यमिव आयान्त महर्द्धिसमेत विपुलर्द्धिसगतं व्योमचराधिपतिं कंचिद्विद्याधरराजम् उद्गते चक्षुषी यस्य तथाभूत उन्नमितनेत्रः वीक्षमाणो विलोकयन् तस्य व्योमचराधिपतेर्भोगाना प्राप्तेश्चिन्तया दन्तुरित व्याप्त स्वान्त यस्य स , वल्मीकस्य विलात् निर्गतेन दंदशूकेन सर्पेण निर्दष्टा सातिशय दष्टा तनुर्यस्य तथाभूत , भोगचिन्तयैव भोगप्राप्तीच्छयैव सत्यक्ता

जिसमें कि इसने सुखभोगकी इच्छासे धर्मका बीज बोया था ॥५२॥ § ७३) विख्यातेति—अतिशय प्रसिद्ध पश्चिम विदेहक्षेत्रमे सुशोभित श्रीगन्धिला देशके सिंहपुर नगरमें श्रीषेण नामका राजा सुशोभित था। उस श्रीषेणकी श्रीसुन्दरी नामसे प्रसिद्ध अत्यन्त सुन्दर प्रिया थी ॥५३॥ § ७४) जयवर्मेति—उन दोनोंके जयवर्मा नामका बड़ा और श्रीवर्मा नामका छोटा पुत्र था। उनमे छोटा पुत्र समस्त जनताको प्यारा था ॥५४॥ § ७५) तदन्विति—तदनन्तर श्रीषेण राजाने जब जनताके अनुराग और श्रीवर्माकी सामर्थ्यको देखकर छोटे पुत्र (श्रीवर्मा) पर राज्यपट्ट बाँध दिया तब बहुत भारी वैराग्यसे युक्त हो जयवर्माने स्वयंप्रभ गुरुके पास दीक्षा ले ली। अभी वह नवीन दीक्षित ही था कि आकाशमे दूसरे सूर्यके समान बहुत भारी सम्पदासे सहित एक विद्याधर राजा आ रहा था उसे उसने ऊपरकी ओर आँख उठाकर देखा, देखते ही साथ उसके भोगोंकी प्राप्तिकी चिन्तासे उसका हृदय व्याप्त हो गया—उसे लगा कि ऐसा वैभव मुझे भी प्राप्त होता। उसी समय वामीके छिद्रसे निकले हुए साँपने उसके

---

१. कनीयसे क० ।

§ ७६) इदानी खलु निशाया विशापति स्वप्ने त्रिभिर्मन्त्रिभिर्दुष्पङ्के बलान्निमज्ज्यमानमात्मानं ततस्त्वया दुष्टास्तान्निर्भर्त्स्यं पङ्कादुद्धृत्य, हरिविष्टरे विमलतरसलिलैरभिषिक्तं काचन काञ्चनसूत्रपिण्डसच्छविं सौदामिनीलतामिवातिलोलामनुक्षणं क्षीयमाणा दीपज्वाला च क्षणदाक्षये विलोकयामास ।

§ ७७) स्वप्नाविमौ खेचरभूमिपालो दृष्ट्वा भवन्त प्रतिपादयन् स' ।
आस्ते त्वमेवाशु समेत्य पूर्वं स्वप्नद्वय बोधय साधुबुद्धे ।।५५।।

§ ७८) आद्यस्वप्नमवेहि त्व साध्यपुण्यर्द्धिसूचकम् ।
आह द्वितीयस्वप्नस्तदायुर्मासावशिष्टताम् ।।५६।।

§ ७९) [1]एष किल मुक्तिमानिनीदूत्येव काललब्ध्या प्रबोधितः पृथ्वीपतिस्तृषितचातकपोत

असव प्राणा येन स , सप्राप्तो महाबलभवो येन तथाभूत. सन् भोगेष्वेव पञ्चेन्द्रियविषयेष्वेव चिरतर दीर्घकालपर्यन्तम् अरज्यत रक्तोऽभवत् । § ७६) इदानीमिति—इदानी खलु साप्रत निशाया रजन्या विशापतिर्महावलमहीपति स्वप्ने त्रिभिर्मन्त्रिभि दुष्पङ्के दुस्तरकर्दमे बलाद् हठात् निमज्ज्यत इति निमज्ज्यमानस्त आत्मान स्व ततस्तदनन्तर तान् दुष्टान् त्रिमन्त्रिणो *निर्भर्त्स्य तिरस्कृत्य* पङ्कात् कर्दमात् उद्धृत्य *नि सार्य* हरिविष्टरे सिंहासने विमलतराणि च तानि सलिलानि तैर्निर्मलतरनीरै अभिषिक्त प्राप्ताभिषेक, काचन कामपि, काञ्चनसूत्रपिण्डस्य सुवर्णतन्तुसमूहस्य छविरिव छविर्यस्यास्ता सौदामिनीलतामिव विद्युद्वल्लीमिव अतिलोला चपलतराम् अनुक्षण प्रतिक्षण क्षीयमाणा नाशोन्मुखी दीपज्वाला च प्रदीपज्योतिश्च क्षणदाक्षये रात्र्यन्तभागे विलोकयामास । § ७७) स्वप्नाविति—स पूर्वोक्त खेचरभूमिपालो विद्याधरनृप , इमौ पूर्वोक्तौ स्वप्नौ दृष्ट्वा भवन्त प्रतिपादयन् निवेदयन् *आस्ते भवन्त प्रतीक्षमाणस्तिष्ठतीत्यर्थ । त्वमेव आशु शीघ्र समेत्य गत्वा पूर्वं तत्प्रश्नात्प्रागेव* हे साधुबुद्धे हे सुधी स्वप्नद्वय बोधय ज्ञापय तत्फल सूचय ।।५५।। § ७८) आद्येति—स्पष्टम् ।।५६।। § ७९) एषेति—मुक्तिरेव मानिनी मनस्विनी महिला तस्या दूत्येव काललब्ध्या प्रबोधित सबोधित एष पृथिवीपति

शरीरको बहुत जोरसे डस लिया, जिससे भोगोंकी चिन्ता करते-करते उसका शरीर छूट गया और फलस्वरूप महाबलकी पर्याय प्राप्त कर वह सदा भोगोंमे ही अनुरक्त रहने लगा। § ७६) इदानीमिती—आज रात्रिके समय राजाने स्वप्नमें देखा है कि मुझे तीन मन्त्री बलपूर्वक भारी कीचडमे निमग्न कर रहे हैं तथा स्वयंबुद्ध मन्त्रीने उन सबको डाँटकर, कीचडसे निकाल सिंहासनपर बैठा अत्यन्त निर्मल जलसे मेरा अभिषेक किया है। इसके सिवाय सुवर्णकी लडीके समान समीचीन कान्तिसे युक्त तथा बिजलीरूपी लताके समान अत्यन्त चचल क्षण-क्षणमे ह्रासको प्राप्त होती हुई दीपककी ज्वालाको भी देखा है। ये दोनों स्वप्न उसने रात्रिके अन्तभागमे देखे हैं। § ७७) स्वप्नाविति—इन दोनों स्वप्नोंको देखकर वह विद्याधर राजा आपको प्रकट करता हुआ बैठा है सो हे समीचीन बुद्धिके धारक! तुम्हीं शीघ्र जाकर उसके पूछनेके पहले दोनों स्वप्नोंको बतला दो ।।५५।। § ७८) आद्येति—तुम पहले स्वप्नको प्राप्त होने योग्य पुण्य ऋद्धियोंका सूचक जानो और दूसरा स्वप्न कह रहा है कि उसकी आयु एक माहकी शेष रह गयी है ।।५६।। § ७९) एषेति—मुक्तिरूपी मानिनीकी दूतीके समान काललब्धिके द्वारा प्रबोधको प्राप्त हुआ यह राजा, आपके द्वारा उपदिष्ट समीचीन धर्ममें उस

---

१ गद्यमिद महापुराणस्य निम्नाङ्कित श्लोकद्वयमनुसरति—तृषित पयसीवाब्दात्पतिते चातकोऽधिकम् । जनुपान्ध इवानन्यकरणे परमौषधे ।। रुचिमेष्यति सद्धर्मे त्वत्त सोऽद्य प्रवुद्धधी । दूत्येव मुक्तिकामिन्या काललब्ध्या प्रचोदित ।।

इव वलाहककुलविगलितजलबिन्दुसदोहे, जात्यन्ध इवानन्धकरणचणपरमौषधे, दुर्गत इव निरवधिकनिधिनिधाने भवतोपदिष्टे सद्धर्मे परमा श्रद्धा विधास्यति ।

§ ८०) इति निगद्य सुधामधुरा गिर मुनियुगे गगनस्थलमुद्गते ।
सचिव एष जवेन महावल प्रति जगाम युगायतसद्भुजम् ।।५७।।

§ ८१) समासाद्य भूप समाचष्ट सर्वं स्वयबुद्ध एष स्वयं योगिवाक्यम् ।
जिनेन्द्रोक्तधर्मं मुनीन्द्रोपलाल्यं कुरु क्षेमवृद्धयै क्षितीशेति चाह ।।५८।।

§ ८२) तदनु स्वयबुद्धवचनगुम्फविस्रम्भविजृम्भितस्वायुःक्षयनिश्चयो विपश्चिदग्रगण्यः खचरपतिर्यथाविवितनुत्याग विधातुमना, मनागितरमनोहरनिजमन्दिरारामसुन्दरजिनचन्दिरशुभमन्दिरकन्दलिताष्टाह्निकमहोत्सव., सकलनयनसतोषकल्पभुजाय निजतनूजाय प्रजाभागधेयाया-

---

महाबलोऽय नृप, वलाहककुलान्मेघमण्डलाद् विगलिताना पतिताना जलबिन्दूना पय पृषता सदोहे समूहे तृषितचातकपोत इव पिपासातुरसारङ्गशावक इव, अनन्धकरणेन दृष्टिप्रदानेन वित्तमनन्धकरणचण तथाभूत यत्परमौपध श्रेष्ठभैपज्य तस्मिन्, जात्यन्ध इव जन्मान्ध इव, निरवधिकाना सीमातीताना निधीना निधान भाण्डागार तस्मिन् दुर्गत इव दरिद्र इव, भवता त्वया, उपदिष्टे प्रदर्शिते सद्धर्मे समीचीनधर्मे परमा श्रेष्ठा श्रद्धा प्रतीतिं विधास्यति करिष्यति । § ८०) इतीति—इतीत्थ सुधेव मधुरा ता पीयूपमिष्टा गिर भारती निगद्य समुच्चार्य मुनियुगे यतियुगले गगनस्थल नभस्थलम् उद्गते समुत्पतिते सति, एप सचिवोऽमात्य, जवेन वेगेन युगवदायतौ दीर्घौ सद्भुजौ यस्य तथाभूत महाबल प्रति विद्याधरधरावल्लभ प्रति जगाम । द्रुतविलम्बित छन्द. ।।५७।। § ८१) समासाद्येति—एपोऽय स्वयबुद्धो भूप समासाद्य प्राप्य सर्वं निखिल योगिवाक्य मुनीन्द्रवचन स्वय स्वमुखेन समाचष्ट जगाद । हे क्षितीश ! हे राजन् ! क्षेमवृद्धयै कल्याणवृद्धयै मुनीन्द्रैर्मुनिराजैरुपलाल्य धारणीय जिनेन्द्रोक्तधर्मं जिनराजप्रणीतधर्मं कुरु विधेहि । इति चाह कथयामास । भुजङ्गप्रयात छन्द । § ८२) तदन्विति—तदनन्तर स्वयबुद्धस्य वचनगुम्फे वाग्रचनाया विस्रम्भेन विश्वासेन विजृम्भितो वर्धित. स्वायुप स्वजीवितस्य क्षयनिश्चयो विनाशनिर्णयो यस्य तथाभूत विपश्चित्सु विद्वत्सु अग्रगण्य प्रधान, खचरपतिर्विद्याधरराजो महाबलो यथाविधि विधिमनतिक्रम्य तनुत्यागं समाधिमरण विधातुमना. कर्तुकाम, मनागितरमनोहरमतिसुन्दर निजमन्दिरारामसुन्दर स्वभवनोद्यानविशोभित यत् जिनचन्दिरस्य जिनचन्द्रस्य शुभमन्दिर पुण्यमन्दिर तस्मिन् कन्दलित कृत आष्टाह्निकमहोत्सवो नन्दीश्वरपर्वमहोत्सवो येन तथाभूत सन्,

---

तरह परम श्रद्धा करेगा जिस तरह कि मेघसमूहसे च्युत जलकी बूँदोंके समूहमे प्यासा चातकका शिशु, दृष्टि प्रदान करनेवाली श्रेष्ठ औषधमें जन्मान्ध मनुष्य और असीमनिधियोंके भण्डारमे दरिद्र पुरुष श्रद्धा करता है । § ८०) इतीति—इस प्रकार अमृतके समान मिष्ट वाणी कहकर जब दोनों मुनिराज गगनतलमे उड़ गये तब यह मन्त्री वेगसे युगके समान लम्बी तथा श्रेष्ठ भुजोंको धारण करनेवाले राजा महाबलकी ओर गया ।।५७।। § ८१) समासाद्येति—इस स्वयंबुद्धने राजा महाबलको प्राप्त कर मुनिराजके समस्त वचन स्वय कहे और साथ ही यह भी कहा कि हे राजन् ! तुम कल्याणकी वृद्धिके लिए बड़े-बड़े मुनियोंके द्वारा धारण करने योग्य जिन प्रणीत धर्मको धारण करो ।।५८।। § ८२) तदन्विति—तदनन्तर स्वयबुद्ध मन्त्रीकी वचन रचनामे विश्वास होनेसे जिसे अपनी आयुके क्षयका निश्चय हो गया था ऐसे विद्वानोंमे अग्रसर महाबलने विधिपूर्वक शरीर त्याग करनेका मन किया । प्रथम ही उसने अत्यन्त मनोहर अपने भवनके उद्यानमे सुशोभित जिनेन्द्र भगवान्के शुभ मन्दिरमे आष्टाह्निक महोत्सव किया तत्पश्चात् समस्त मनुष्योंके नेत्रोंको सन्तोष उत्पन्न

---

१. गुम्फ—। २. विधातु मनागितर क० ।

तिवलनामधेयाय प्रतिपादितराज्यभार., सिद्धकूटमुपेत्य सिद्धार्चनपुरःसरं द्वाविंशतिदिनानि सल्लेखनाविधिमुल्लासयामास ।

§ ८३) आराधनानावमुपेत्य भूपो भवाम्बुराशिं सहसा तितीर्षुः ।
सत्यक्तबाह्यान्तरसग्रहस्तन्निर्यापकं मन्त्रिवर न्ययच्छत् ॥५९॥

§ ८४) तपस्यतस्तस्य शरीरवल्ली यथायथैव तनिमानमागात् ।
तथा तथावर्धत कान्तिभूमा प्रकाशिताशेषदिगन्तसीमा ॥६०॥

§ ८५) तदानीमुदारतपा महाबल शारदनीरद इवारूढकार्श्यस्तादात्विकमरणारम्भव्रतमालोक्य क्वापि लीनाभ्यां लोचनाभ्यां विराजमान , क्षीणशोणितमासचर्मभ्यामप्यपरित्यक्तकान्तिकन्दलाभ्यां कपोलाभ्यां विलसित , पूर्वं नितान्तपीवराभ्यां मणिकेयूरकिणकर्कशाभ्यामधुना तदीय-

---

सकलनयनानां निखिलनरनेत्राणां सतोपस्तृप्तिस्तस्य कल्पभूजाय कल्पवृक्षाय निजतनूजाय स्वसुताय प्रजाया भागधेयं भाग्यं तस्मै, अतिबलो नामधेयं यस्य तस्मै, प्रतिपादित प्रदत्तो राज्यभारो येन तथा भूत सन्, सिद्धकूट विजयार्धस्य कूटविशेषम् उपेत्य प्राप्य सिद्धार्चनपुर.सर सिद्धपरमेष्ठिपूजासहितं द्वाविंशतिदिनानि यावत् 'कालाध्वनोरत्यन्तसयोगे' इति द्वितीया, सल्लेखनाया विधिस्त समाधिमरणविधिम्, उल्लासयामास सपादयामास । § ८३) आराधनेति—आराधना सल्लेखनैव नौस्तरिस्ताम् उपेत्य प्राप्य सहसा झगिति भवाम्बुराशिं ससारसागर तितीर्षुस्तरितुमिच्छु भूपो महाबलराज सत्यक्तौ सम्यक्प्रकारेण त्यक्तौ बाह्यान्तरसग्रहौ बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहौ येन तथाभूत सन् मन्त्रिवर स्वयबुद्ध तस्या आराधनानावो निर्यापक कर्णधार पक्षे आराधनाविधिविधातार न्ययच्छत् नियुक्तवान् । उपजातिवृत्तम् ॥५९॥ § ८४) तपस्यत इति—तपस्यतस्तपांसि कुर्वतस्तस्य विद्याधरराजस्य इय शरीरवल्ली तनुलता यथा यथा येन येन प्रकारेण तनिमान कृशताम् आगात् प्रापत् तथा तथा तेन तेन प्रकारेण प्रकाशिता अशेषदिगन्तसीमा येन तथाभूत कान्तिभूमा कान्तिबाहुल्यम् अवर्धत वर्धते स्म । उपेन्द्रवज्रावृत्तम् ॥६०॥ § ८५) तदानीमिति—तदानीं सल्लेखनाकाले, उदारतपा महातपा महाबलो विद्याधरधरापति, शारदनीरद इव शरदृतुवारिद इव आरूढकार्श्यो धृतकृशत्व , तादात्विकं तत्कालभवं यन्मरणारम्भव्रत समाधिमरणव्रत तत्, आलोक्य क्वापि कुत्रापि लीनाभ्यामन्तर्हिताभ्यां लोचनाभ्यां विराजमान शोभमान, क्षीण ह्रसित शोणितमास रुधिरपल यस्य तथाभूत चर्म त्वक् ययोस्तथाभूताभ्यामपि अपरित्यक्तकान्तिकन्दलाभ्यामत्यक्तदीप्तिकन्दलाभ्या कपोलाभ्यां गण्डाभ्यां विलसित. शोभित पूर्वं सल्लेखनाया प्राग् नितान्तपीवराभ्यामतिशयस्थूलाभ्यां मणिकेयूराणां

करनेके लिए कल्पवृक्ष तथा प्रजाके भाग्यस्वरूप अतिबल नामक अपने पुत्रके लिए राज्यका भार सौंपा फिर सिद्धकूटमें जाकर सिद्धभगवान्‌की पूजाके साथ बाईस दिन तक सल्लेखनाकी विधिको सम्पादित किया । § ८३) आराधनेति—आराधनारूपी नावको पाकर शीघ्र ही ससाररूपी समुद्रको पार करनेके इच्छुक राजा महाबलने बाह्य और अन्तरंग दोनों प्रकारके परिग्रहोंका त्याग किया और स्वयबुद्ध मन्त्रीको उस सल्लेखनारूपी नावका कर्णधार (पक्षमें विधि करानेवाला) बनाया ॥५९॥ § ८४) तपस्यत इति—तपस्या करते हुए महाबल राजाकी यह शरीररूपी लता जैसे-जैसे कृशताको प्राप्त होती थी वैसे-वैसे ही समस्त दिशाओंको अन्तिम सीमाको प्रकाशित करती हुई कान्तिकी अधिकता बढ़ती जाती थी ॥६०॥ § ८५) तदानीमिति—उस समय महान् तपको धारण करनेवाला महाबल शरदृऋतुके मेघके समान अत्यन्त कृश हो गया था। वह भीतर घुसे हुए नेत्रोंसे ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो वे नेत्र उस समय होनेवाले मरणारम्भके व्रतको देखकर कहीं छिप गये थे । वह जिन कपोलोंसे सुशोभित हो रहा था उनका खून और मांस नष्ट होकर यद्यपि चमड़ा ही शेष रह

मानसमार्दवमालोक्येव समाश्रितमार्दवाभ्यामंसाभ्यां संभावितः, त्रिवलीभङ्गसङ्गविरहितमाभुग्न निर्वातनिस्तरङ्गसरोवरसंकाशमुदरप्रदेशमाबिभ्राणः, क्रमेण ललाटतटविन्यस्तकराम्बुजकुड्मलः मङ्गलानि नमस्कारपदान्यन्तर्जल्पेन जपन्नेव स्वयबुद्धसमक्षं प्राणास्तत्याज ।

§ ८६) आसाद्यैशानकल्प तदनु स हि शुभे श्रीप्रभे व्योमयाने
राजद्रम्योपपादामलशयनतलेऽजायतासौ सुराग्र्यः[1] ।
तत्र प्रत्यग्रशोभा सपदि तनुलता वैक्रियिक्याविरासीद्
व्योमाभोगे निरभ्रे तडिदिव सुचिरादेकशुभ्राभ्रलग्ना ॥६१॥

§ ८७) तारुण्यलक्ष्मीकमनीयरूपस्तदा व्यलासील्ललिताङ्गदेवः ।
सुप्तोत्थवद्दिव्यदुकूलचेल स्रग्वी लसद्भूषणभूषिताङ्गः ॥६२॥

रत्नाङ्गदाना किणेन चिह्नविशेषेण कर्कशाभ्या कठिनस्पर्शाभ्याम् अधुना सल्लेखनावसरे तदीयमानसमार्दव तदीयचेत कोमलत्वम् आलोक्येव दृष्ट्वेव समाश्रितमार्दवाभ्या प्राप्तकोमलत्वाभ्याम् असाभ्या बाहुशिरोभ्या सभावित शोभित, त्रिवलीभङ्गस्य वलित्रयरचनाया सङ्ग सबन्धस्तेन विरहित शून्यम् आभुग्न- मानम्र वातस्याभावो निर्वात तेन निस्तरङ्ग कल्लोलरहितो य. सरोवर कासारस्तस्य सकाश सदृशम्, उदरप्रदेश जठरप्रदेशम् आबिभ्राणो दधान, क्रमेण ललाटतटे निटिलतटे विन्यस्तं स्थापित कराम्बुजकुड्मलं करकमलकुट्मल येन तथाभूत, मङ्गलानि श्रेयोरूपाणि, नमस्कारपदानि णमो अरहंताणं—इत्यादिमन्त्रपदानि, अन्तर्जल्पेन जपन्नेव स्वयबुद्धसमक्षं स्वयबुद्धाग्रे प्राणानसून् तत्याज मुमोच । § ८६) आसाद्येति– तदनु प्राण- त्यागानन्तर स महाबल, ऐशानकल्प द्वितीयस्वर्गम् आसाद्य प्राप्य शुभे श्रेयोरूपे श्रीप्रभे एतन्नामधेये व्योमयाने विमाने राजच्छुम्भद् रम्य मनोहरं यदुपपादामलशयनतल तस्मिन् उपपादाख्यविमलशय्यापृष्ठे, असौ प्रसिद्ध सुराग्र्य श्रेष्ठदेव अजायत समुदपद्यत । तत्रोपपादशय्यातले सपदि शीघ्र, प्रत्यग्राभिनवा शोभा श्रीर्यस्यास्तथाभूता 'प्रत्यग्रोऽभिनवो नव्यो नवीनो नूतनो नव ' इत्यमर । निरभ्रे निर्मेघे व्योमाभोगे गगनाङ्गणे सुचिराद्दीर्घकाल- पर्यन्तम्, एकशुभ्राभ्रे एकधवलवलाहके लग्ना ससक्ता तडिदिव विद्युदिव 'तडित्सौदामिनी विद्युच्चञ्चला चपला अपि' इत्यमर, वैक्रियिकी विक्रियाशक्तियुक्ता वैक्रियिकीनामधेया च तनुलता देहवल्ली, आविरासीत् प्रकटी- बभूव । उपमालकार । स्रग्धरा छन्द. ॥६१॥ § ८७) तारुण्येति—तदा तस्मिन् काले तारुण्यलक्ष्म्या यौवन- श्रिया कमनीय रम्यं रूप यस्य तथाभूत, दिव्य स्वर्ग्यं दुकूलचेल क्षौमवस्त्र यस्य तथा, स्रग्वी मालायुत,

---

गया था फिर भी उन्होंने कान्तिकी सन्ततिको नहीं छोडा था। वह जिन कन्धोंसे सुशोभित था वे यद्यपि सल्लेखना धारण करनेके पहले खूब मोटे थे और मणिमय बाजूबन्दोंसे उत्पन्न भट्टोंसे कठोर थे तो भी उसके हृदयकी कोमलताको देखकर ही मानो कोमल हो गये थे। वह जिस पेटको धारण कर रहा था वह त्रिवलिरचनाके संगसे रहित होकर एकदम झुक गया था और वायुके अभावमें तरंगरहित तालाबके समान जान पडता था। उसने हस्तकमलरूपी कुड्मल (कमलकी बोंड़ी) को ललाट तटपर लगा रखा था। इस तरह मंगलस्वरूप पंच नमस्कार मन्त्रका भीतर ही भीतर जाप करते हुए उसने स्वयबुद्धके सामने प्राण छोड़े। § ८६ आसाद्येति—तदनन्तर वह महाबल ऐशान स्वर्गको प्राप्तकर वहाँके श्रीप्रभनामक शुभ- विमानमें सुशोभित होती हुई सुन्दर उपपाद शय्या नामक निर्मल शय्यापर श्रेष्ठदेव हुआ। वहाँ उसके शीघ्र ही मेघरहित आकाशमें चिरकाल तक एक सफेद मेघ खण्डमें लगी हुई बिजलीके समान नवीन शोभाको धारण करनेवाली वैक्रियिक शरीररूपी लता प्रकट हुई ॥६१॥ § ८७) तारुण्येति—उस समय, जिसका रूप यौवन रूपी लक्ष्मीसे अत्यन्त सुन्दर था, जो

---

१ राजद्द्रव्योपपादा–क० ।

§ ८८) ललिताङ्ग एष ललिताङ्गसपदा
तुलिताङ्गजोऽथ कलिताङ्गदोज्ज्वलः ।
अरुणाब्जशोभिचरणाञ्चितो बभौ
तरुणेन्दुकान्तिहरणोल्लसन्मुखः ॥६३॥

§ ८९) तद्वक्त्राब्जरुचिप्रवाहजलधौ श्रीकुन्तलालीमिल-
च्छैवाले भ्रकुटीतरङ्गतरले बिम्बोष्ठसद्विद्रुमे ।
दन्तोदञ्चितमौक्तिके समतनोन्निष्कम्पमीनश्रियं
नेत्रद्वन्द्वमिद निमेषरहित निःसीमकान्त्युज्ज्वलम् ॥६४॥

§ ९०) मन्दस्मितप्रसरकुन्दसुमाभिलाषात्
कर्णावतसगलित किल भृङ्गयुग्मम् ।
नासाख्यचम्पकनिरीक्षणनष्टचेष्ट
नेत्रद्वय सुरवरस्य तदा विरेजे ॥६५॥

लसद्भि शोभमानैर्भूपणैर्भूपित समलकृतमङ्ग शरीर यस्य तथाभूतो ललिताङ्गदेव एतन्नामामर आदौ सुप्त. पश्चादुत्थ सुप्तोत्थस्तद्वत् व्यलासीत् शुशुभे । उपजातिवृत्तम् ॥६२॥ § ८८) ललिताङ्ग इति—अथानन्तर ललिता मनोहरा याङ्गसपद् शरीरसपत्तिस्तया, तुलित उपमितोऽङ्गजो मदनो येन स , कलितेन धृतेन अङ्गदेन केयूरेणभेज्ज्वलो देदीप्यमान , अरुणाब्जवद् रक्तारविन्दवत् शोभिनौ यौ चरणौ पादौ ताभ्यामञ्चित शोभित , तरुणेन्दोर्निशीथनिशाकरस्य कान्त्या दीप्त्या हरणेनोल्लसच्छोभमान मुख वदन यस्य तथाभूत. एष ललिताङ्गो महाबलचरो देवविशेप , बभौ शुशुभे । अनुप्रासोपमयो ससृष्टि । मञ्जुभापिणी छन्द 'सजसा जगौ भवति मञ्जुभापिणी' इति लक्षणात् ॥६३॥ § ८९) तद्वक्त्राब्जेति—श्रीकुन्तलाना विलसच्चूर्णकुन्तलानामाली पङ्क्तिरेव मिलन् एकत्रीभवन् शैवालो जलनीली यस्मिन् तस्मिन्, भ्रकुट्यामेव तरङ्गौ भ्रूभङ्गौ ताभ्या तरले चपले, बिम्बोष्ठ एव सद्विद्रुम सत्प्रवालो यस्मिन् तस्मिन्, दन्ता एव उदञ्चितानि प्रकटितानि मौक्तिकानि मुक्ताफलानि यस्मिन् तस्मिन्, तद्वक्त्राब्जस्य तदीयमुखकमलस्य रुचिप्रवाह कान्तिप्रवाह एव जलधिस्तस्मिन्, निमेपरहित पक्षपातरहित, नि सीमकान्त्या निरवधिरुच्या उज्ज्वल रुचिरम्, इद नेत्रद्वन्द्व नयनयुग निष्कम्पमीनयोर्निश्चलपाठीनयो श्रिय शोभा समतनोत् विस्तारयामास । रूपकोपमालकारौ शार्दूलविक्रीडितच्छन्द ॥६४॥ § ९०) मन्देति—तदा तस्मिन् काले सुरवरस्य ललिताङ्गस्य नेत्रद्वय नयनयुगलं, मन्दस्मितस्य मन्दहसितस्य प्रसर समूह एव कुन्दसुम माघ्यकुसुम तस्याभिलापात् वाञ्छाया , कर्णावतसाभ्या

दिव्य वस्त्रोंसे युक्त था, मालाओंसे सहित था और जिसका शरीर चमकते हुए आभूषणोंसे सुशोभित हो रहा था ऐसा ललितागदेव सोयेसे उठे हुएके समान जान पड़ता था ॥६२॥ § ८८) ललिताङ्ग इति—सुन्दर शरीररूप सम्पत्तिके द्वारा जो कामदेवकी तुलना कर रहा था, धारण किये हुए बाजूबन्दोंसे जो सुशोभित था, लाल कमलोंके समान शोभायमान चरणोंसे युक्त था तथा जिसका मुख तरुण चन्द्रमाकी कान्तिका अपहरण करनेसे सुशोभित हो रहा था ऐसा वह ललितागदेव बहुत भला जान पड़ता था ॥६३॥ § ८९) तद्वक्त्राब्जेति—जिसमें सुशोभित केश ही शैवाल थे, जो भौंहरूपी तरगोंसे चंचल था, बिम्बीफलके समान लाल लाल ओठ ही जिसमें मूंगा थे, और दन्त ही जिसमें उत्कृष्ट मोती थे, ऐसे उस ललितांगदेव के मुखकमलकी कान्तिके प्रवाह रूप समुद्रमें टिमकारसे रहित तथा अपरिमित कान्तिसे उज्ज्वल यह नेत्रोंका युगल निश्चल मछलियोंकी शोभाको बढ़ा रहा था ॥६४॥ § ९०) मन्दस्मितेति—उस समय उस श्रेष्ठदेव ललितांगका नेत्रयुगल ऐसा सुशोभित हो रहा था

§ ९१) तदनु, कल्पद्रुमवृष्टकुसुमकुलगलितमाध्वीकधारालोलल्लोलम्बनिकुरम्बझङ्कार-निर्भरेण, मन्दारवनमन्दमन्दस्पन्दमानसमीरकिशोरचलितस्तनशाटीविलसदमरवधूटीनर्तन-चलत्तुलाकोटीमधुररवपरिपाटीप्रचुरेण, सकलजनचित्तचलनावहसुरललनाजनकलनादगीतमनो-हरेण, स्वयमेव विजृम्भितमन्देतरसुरदुन्दुभिस्तनितेन मुखरितदिगन्तरे विमानान्तरे ललिताङ्गदेवः किंचिद्वलिता दृशं समन्तादानमदमरमुकुटतटघटितमणिघृणिकलितप्रकाशासु निखिलाशासु व्यापारयन्नहो किमिद, क्वायात., कोऽहमित्यादि विस्मयविस्तारितचित्तस्तत्क्षणविलसितावधि-विलोचनविलोकितपूर्वभवपरिचितस्वयबुद्धादिवृत्तान्त' कल्पतरुपरिशोभमान विमानमिद, इमे प्रणामतत्पराः सुरा., लास्यलीलाकरोऽयमप्सरःपरिवार इत्यादिक्रमेण सर्वमबुध्यत ।

श्रोत्राभरणनीलोत्पलाभ्या गलित पतित किन्तु नासाख्यस्य घ्राणाभिधानस्य चम्पकस्य चाम्पेयपुष्पस्य निरीक्षणेनावलोकनेन नष्टा चेष्टा यस्य तथाभूत भृङ्गयुग्म भ्रमरयुगल विरेजे बभौ किलेति प्रसिद्धिः । चाम्पेयस्य गन्धो भ्रमरस्य नेष्ट इति सप्रदाय । रूपकोत्प्रेक्षा वसन्ततिलकाछन्द ॥६५॥ § ९१) तदन्विति—तदनु तदनन्तरं कल्पद्रुमेभ्य सुरतरुभ्यो वृष्टानि पतितानि यानि कुसुमकुलानि पुष्पप्रसरास्तेभ्यो गलिता नि सृता या माध्वीकधारा मधुझरी तस्या लोलन्त सतृष्णीभवन्तो ये लोलम्बा भृङ्गास्तेषा निकुरम्बस्य समूहस्य यो झङ्कारोऽव्यक्तध्वनिविशेषस्तेन निर्भरेण सातिशय भृतेन, मन्दारवने पारिजातोपवने मन्दमन्द शनै शनैर्यथा स्यात्तथा स्पन्दमानो वहमानो य समीरकिशोर पवनपोतो मन्दवायुरित्यर्थस्तेन चलिताभि कम्पिताभि स्तनशाटीभिर्वक्षोजशाटीभिर्विलसन्त्य शोभमाना या अमरवधूटय सुरयुवतयस्तासा नर्तनेन लास्येन चलन्त्यो यास्तुलाकोटचो नूपुराणि तासा मधुररवस्य सुन्दरशब्दस्य परिपाटचा परम्परया प्रचुरेण व्याप्तेन, सकलजनस्य निखिललोकस्य चित्तानि चेतासि तेषा चलनावहं चपलतोत्पादकं यत् सुरललनाजनस्य देवीसमूहस्य कलनादगीत मधुररवगानं तेन मनोहरेण सुन्दरेण, स्वयमेव स्वत एव विजृम्भित वृद्धिगत यत् मन्देतरसुरदुन्दुभिस्तनित विशालदेवानकशब्दस्तेन मुखरितानि वाचालितानि दिगन्तराणि काष्ठान्तराणि यस्मिन् तस्मिन् विमानान्तरे श्रीप्रभविमानमध्ये, ललिताङ्गदेवो महाबलचरामर किंचिद्वलिता मनाग् घूर्णिता दृश दृष्टि समन्तात् परित आनमता प्रह्वीभवताममरमुकुटाना निलिम्पमौलीना तटेषु तीरेषु घटिता खचिता ये मणयस्तेपा घृणिभि किरणै कलित कृत. प्रकाशो यासु तासु निखिलाशासु समस्तकाष्ठासु व्यापारयन् चलयन्, 'अहो किमिद, क्व कुत्रायात', कोऽहम्'

मानो मन्द मुसकानके समूह रूपी कुन्दपुष्पकी अभिलाषासे कानोंके नीलोत्पल पर बैठा हुआ भ्रमर युगल नीचेकी ओर आया परन्तु नासारूपी चम्पाका फूल देखनेसे उसकी चेष्टा बीचमें ही नष्ट हो गयी ॥६५॥ § ९१) तदन्विति—तदनन्तर कल्पवृक्षोंसे बरसे हुए फूलोंके समूहसे पतित मकरन्दकी धारामें सतृष्ण भ्रमरोंकी झाकारसे भरे हुए, कल्पवृक्षोंके वनमे मन्दमन्द चलती हुई मन्द वायुसे हिलते हुए स्तनवस्त्रोंसे सुशोभित देवागनाओंके नृत्यके समय चंचल नूपुरोंके मनोहर शब्दोंसे व्याप्त, और समस्त मनुष्योके चित्तको चंचल करनेवाले देवागनाओं-के मधुर गीतोंसे मनोहर अपने आप बढते हुए देवदुन्दुभियोंकी बहुत बडी गर्जनासे जिसके दिगन्तराल शब्दायमान हो रहे थे ऐसे उस श्रीप्रभविमानके मध्यमें ललितांगदेव कुछ मुडी हुई अपनी दृष्टिको सब ओरसे नमस्कार करते हुए देवोंके मुकुटतटोंमें लगे रत्नोंकी किरणोंसे प्रकाशित समस्त दिशाओमें चलाता हुआ विचार करने लगा कि अहो यह क्या है ? मैं कहाँ आ गया हूँ ? मैं कौन हूँ ? इस प्रकारके विस्मयसे उसका चित्त भर गया परन्तु उसी क्षण उसे अवधिज्ञान रूपी नेत्रकी प्राप्ति हो गयी उससे उसने पूर्वभवके परिचित स्वयंबुद्ध आदिका वृत्तान्त जान लिया। उसने क्रमक्रमसे सब समझ लिया कि यह कल्पवृक्षोंसे सुशोभित विमान है, ये प्रणाम करनेमे तत्पर देव हैं, और यह नृत्यकी लीलाको करनेवाला

§ ९२) जयेश नन्देति गभीरवाचः सुरास्तदानीं नतमौलिमालाः ।
विज्ञापयामासुरिदं समेत्य प्रज्ञापयोधिं ललिताङ्गदेवम् ॥६६॥

§ ९३) आदौ मङ्गलमज्जनं विरचयन्पश्चाज्जिनेन्द्रार्चनां
भक्त्या कल्पय देव मोक्षपदवीप्रासादनिश्रेणिकाम् ।
श्रीमत्पुण्यबलार्जितं बलमिदं दृष्टया समालोकय
प्रेक्षस्वाथ मनोज्ञनर्तनकलां स्वर्लासिकोल्लासिताम् ॥६७॥

§ ९४) सौदामिनीसमानाङ्गीर्देवीस्तदनु लालय ।
पञ्चेषुपट्टकरणीः शृङ्गाररसधोरणीः ॥६८॥

§ ९५) इति तद्वचनात्सर्वं चकारामरवल्लभः ।
निसर्गवस्त्राभरणो निष्टप्तकनकच्छविः ॥६९॥

इत्यादिविस्मयेन विस्तारितं चित्तं यस्य तथाभूत , तत्क्षणं तत्कालं विलसितेन अवधिविलोचनेनावधिज्ञाननेत्रेण विलोकितो दृष्ट पूर्वभवपरिचिताना स्वयंबुद्धादीनां वृत्तान्तो येन तथाभूत सन्, कल्पतरुभि कल्पवृक्षै परिशोभमानम् इदं विमानम्, इमे प्रणामतत्परा नमस्काराभिमुखा सुरा अमरा , अयमेष लास्यलीलाकरो नृत्यक्रीडाकर अप्सर परिवार' अप्सरसा समूह , इत्यादिक्रमेण सर्वम् अबुध्यत ज्ञातवान् । § ९२) जयेशेति— तदानीं तस्मिन् काले हे ईश जय सर्वोत्कर्षेण वर्तस्व, नन्द समृद्धिमान्भव, इति गभीरवाच प्रगल्भभारतीका नता प्रह्वा मौलिमाला मुकुटसततिर्येषा तथाभूता सुरा देवा समेत्यागत्य प्रज्ञापयोधिं प्रतिभापाथोधिं ललिताङ्गदेवम् इदं वक्ष्यमाणं विज्ञापयामासुर्निवेदयामासु । उपजातिछन्द ॥६६॥ § ९३) आदाविति—हे देव ! आदौ सर्वत प्राक् मङ्गलमज्जनं मङ्गलस्नानं विरचयन् कुर्वन् पश्चात्तदनु भक्त्यानुरागातिशयेन मोक्षपदवी मोक्षमार्ग एव प्रासादो भवनं तस्य निश्रेणिका सोपानं जिनेन्द्रार्चना जिनपूजा कल्पय कुरु, पुण्यबलेन सुकृतमहिम्नार्जितं प्राप्त श्रीमत् लक्ष्मीयुतम् इदं बलं देवसैन्य दृष्टया समालोकय पश्य, अथ तदनन्तरं च स्वर्लासिकाभिस्त्रिदिवनर्तकीभिरुल्लासिता कृता मनोज्ञा चासौ नर्तनकला च ता ललितलास्यलीला प्रेक्षस्वावलोकय ॥६७॥ § ९४) सौदामिनीति—तदनु तत्पश्चात् सौदामिन्या विद्युता समानमङ्ग यासा तास्तथाभूता , पञ्चेषुपट्टकरणीर्मदनोत्तेजनकारिणी , शृङ्गाररसधोरणी शृङ्गाररसकृत्रिमनदी , देवी लालय प्रीणय ॥६८॥ § ९५) इतीति—इतीत्थं तद्वचनाद् देवकथनात् निसर्गवस्त्राभरण स्वाभाविकाम्बरालंकार , निष्टप्तं सतप्तं यत्कनकं स्वर्णं तस्य छविरिव छविर्यस्य स , अमरवल्लभ सुरप्रियो ललिताङ्ग सर्वं वापीमज्जनजिनपूजनादिकं

अप्सराओंका परिवार है। § ९२) जयेशेति—उसी समय जो हे ईश ! जयवन्त होओ, समृद्धिमान् होओ इस प्रकारके गम्भीर वचन बोल रहे थे तथा जिनके मुकुटोंकी मालाएँ नम्रीभूत थीं ऐसे देवोंने आकर बुद्धिके सागर स्वरूप ललितांगदेवसे यह कहा ॥६६॥ § ९३) आदाविति—सबसे पहले मंगलस्नान कर पीछे मोक्षमार्ग रूपी भवनकी सीढी स्वरूप जिनपूजाको भक्तिपूर्वक करो, फिर पुण्यकी सामर्थ्यसे प्राप्त, लक्ष्मीसे युक्त इस देवोंकी सेनाको दृष्टिसे देखो और तदनन्तर स्वर्गकी नर्तकियोंके द्वारा की हुई सुन्दर नृत्यकलाका अवलोकन करो ॥६७॥ § ९४) सौदामिनीति—इसके पश्चात् बिजलीके समान देदीप्यमान शरीरसे युक्त, कामको उत्तेजित करनेवाली तथा शृंगाररसकी लहर स्वरूप देवियोंको प्रसन्न करो—उनसे प्रेम करो ॥६८॥ § ९५) इतीति—इस प्रकार उन देवोंके कहनेसे स्वाभाविक वस्त्राभूषणोंसे सहित तथा अत्यन्त तप्त सुवर्णके समान कान्तिसे युक्त ललितांग-

§ ९६) ततश्चाणिमादिगुणमणिगणरोहणायमान, समान. समासहस्रेण समासादितमानसाहार., पक्षेणैकेन लक्षितसुगन्धबन्धुरनिश्वाससुरभितसविधप्रदेश', शरत्काल इव विधूतविमलाम्बरः, महाकविवचनोल्लास इव सरसशोभाविभासित., अङ्गदमनोज्ञविलासोऽप्यनङ्गमनोज्ञविलासः, अय ललिताङ्गदेवो देवीचतुःसहस्रपरिग्रहो[1]ऽनवरतोल्लासिताभिरपि नवरतोल्लासिताभि. स्वयप्रभा-कनकप्रभा-कनकलता-विद्युल्लता-नामधेयाभी रतिरूपसुभागधेयाभिर्विलासविजितरतिदेवीभिश्चतसृभिर्महादेवीभिर्विविधान्भोगाननुभुञ्जानः कालमनल्पमतिवाहयाचक्रे ।

सर्वं चकार कृतवान् ॥६९॥ § ९६) तत इति—ततश्च तदनन्तर च, अणिमादिगुणा एव मणयस्तेषा गणस्य समूहस्य रोहणायमानो रोहणगिरिवदाचरन् तथाभूत, रोहणो नाम कश्चित्पर्वत कविसप्रदाये प्रसिद्धो यत्र बाहुल्येन मणयो वर्तन्ते । मानेन सहित समान, समासहस्रेण वर्षसहस्रेण 'हायनोऽस्त्री शरत्समा' इत्यमर', समासादित प्राप्तो मानसाहारो येन स', एकेन पक्षेण पञ्चदशदिवसात्मकेन लक्षित प्रकटितो य' सुगन्धबन्धुरनिश्वास सुगन्धितश्वासोच्छ्वासस्तेन सुरभित सुगन्धित सविधप्रदेश समीपप्रदेशो येन स, शरत्काल इव जलदान्तकाल इव विधूत विमल निरभ्रत्वेन निर्मलमम्बर गगनं येन स पक्षे विधूत विमल स्वच्छमम्बर वस्त्रं येन स', महाकविवचनोल्लास इव सरसा शृङ्गारादिरसै सहिता या शोभा काव्यस्य विच्छित्तिविशेषस्तया शोभित' पक्षे सरसा सानुरागा या शोभा सुषमा तया विभासित समलकृत, अङ्ग ददातीत्यङ्गदस्तथाभूतो मनोज्ञो मनोहरो विलासो यस्य स एवभूतोऽपि अङ्ग न ददातीत्यनङ्गदस्तथाभूतो मनोज्ञो विलासो यस्येति विरोध यस्य मनोज्ञविलासोऽङ्गदस्तस्य मनोज्ञविलास कथमनङ्गद स्यादिति भाव । परिहारपक्षे अङ्गदेन केयूरेण मनोज्ञो विलासो लीला यस्य तथाभूत सन्नपि अनङ्गद कामप्रदो मनोज्ञो विलासो हावो यस्य स. 'विलासो हावलीलयो' इति विश्वलोचन, देवीना चतु सहस्राणि परिग्रहो यस्य स. चतु सहस्रपरिमितदेवीसहित, अय ललिताङ्गदेवो महाबलजीव, न नवरतेन नूतनसुरतेन उल्लासिता. प्रहर्षिता इति अनवरतोल्लासितास्ताभिस्तथाभूताभिरपि नवरतेन नूतनसुरतेनोल्लासिता. प्रहर्षितास्ताभिरिति विरोध । परिहारपक्षे अनवरत निरन्तरमुल्लासिता. प्रहर्षितास्ताभि, स्वयप्रभा कनकप्रभा कनकलता विद्युल्लतेति नामधेयं यासा ताभि., रते.

देवने यह सब किया ॥६९॥ § ९६) ततश्चेति—तदनन्तर जो अणिमा आदि गुण रूपी मणियोंके समूहके लिए रोहणगिरिके समान था, मानसे सहित था, एक हजार वर्षमें जो मानसिक आहार प्राप्त करता था, एक पक्षमे प्रकट होनेवाली सुगन्धित श्वाससे जो समीपके प्रदेशको सुगन्धित किया करता था, जो शरत्कालके समान विधूतविमलाम्बर—निर्मल आकाशको धारण करनेवाला (पक्षमें निर्मल वस्त्रोंको धारण करनेवाला) था, महाकवियोंकी वचन रचनाके समान सरसशोभाविभासित—शृगारादिरस सहित चमत्कारविशेषसे सुशोभित (पक्षमे अनुरागसहित शोभासे सुशोभित) था, अंगदमनोज्ञविलास—अंगको देनेवाले मनोहर विलाससे सहित होकर भी अनंगदमनोज्ञविलास—अगको न देनेवाले मनोहर विलाससे सहित था (परिहारपक्षमे बाजूबन्धोंसे मनोहर लीलाको धारण करनेवाला होकर भी अनंगद—कामको देनेवाले मनोज्ञ हावभावसे सहित था) और जो चार हजार देवियोंके परिग्रहसे युक्त था ऐसा यह ललितांगदेव, जो अनवरतोल्लासिता—नूतन रतसे प्रहर्षित न होनेपर भी नवरतोल्लासिता—नूतनरससे प्रहर्षित थी (पक्षमें अनवरत—निरन्तर प्रहर्षित होनेपर भी नवरत—नूतनरतसे प्रहर्षित) थीं, रतिके समान जिनका रूप तथा भाग्य था, और जिन्होंने अपने विलासोंसे रतिदेवीको जीत लिया था ऐसी स्वयंप्रभा, कनकप्रभा, कनकलता और विद्यूल्लता नामकी चार महादेवियोके साथ नाना प्रकारके भोग भोगता

---

१. नवरतोल्लासिताभिरप्यनवरतोल्लासिताभि. क० ।

§ ९७) तदायुर्जलधेर्मध्ये तरला इव वीचय. ।
भूयो देव्यो व्यलीयन्त हृतायुष्यतया तदा ॥७०॥

§ ९८) एव पल्योपमपृथक्त्वावशिष्टे तस्यायुषि, मूर्तिमतीवामरसाम्राज्यलक्ष्मी, सचरन्तीव कल्पलता, साकारेव शशिलेखा, स्थिरतामुपगतेव सौदामिनीलता, पुञ्जीभूतेव सकलसौन्दर्यलहरी, चित्रलेखेव ससारमहाभित्तेः, ललामवल्लीव त्रैलोक्यस्य, सकेतभूमिरिव लावण्यस्य, लास्यसदनमिव तारुण्यलक्ष्म्याः, उत्पत्तिस्थानमिव कान्तेः, आकर्षणमन्त्रसिद्धिरिव सकलनयनाना, महौषधसिद्धिरिव मदनमहेन्द्रजालिकस्य, निवासशालेव शृङ्गारस्य, नाटचशालेव सगीतविद्याना स्वयप्रभानाम देवी समजायत । तस्याः किमिति वर्ण्यते सौन्दर्यगरिमा ।[1] तथाहि—

कामकामिन्या इव रूपसुभागधेये सौन्दर्यभाग्ये यासा ताभि , विलासैर्हावैर्विजिता पराजिता रतिदेवी याभिस्ताभि चतसृभिर्महादेवीभि प्रधानाङ्गनाभि , विविधान् नानाविधान् भोगान् पञ्चेन्द्रियविषयान्, अनुभुञ्जान सन् अनल्प विपुलम् एकसागरप्रमितमित्यर्थ कालम् अतिवाहयाचक्रे व्यपगमयामास । उपमाविरोधाभासयमकालकारा । § ९७) तदायुरिति—तदा तस्मिन् काले तस्यायुरेव जलधि सागरस्तस्य मध्ये हृत क्षिप्र क्षिप्र विनष्टमायुष्य यासा तासा भावस्तया तरलाश्चञ्चला वीचयस्तरङ्गा इव भूयोदेव्यो बहुदेव्य , व्यलीयन्त विलीना बभूवु ॥७०॥ § ९८) एवमिति—एवमनेन प्रकारेण तस्य ललिताङ्गस्य, आयुषि पल्योपमाना पृथक्त्व तेनावशिष्टे सति त्रिम्य उपरि नवम्य प्राक् सख्या पृथक्त्वपदेनाख्यायते । स्वयप्रभा नाम देवी अजायत समुदपद्यत । कथभूता सा स्वयप्रभा । इत्याह—मूर्तिमती शरीरधारिणी अमरसाम्राज्यलक्ष्मीरिव सुरसाम्राज्यश्रीरिव, सचरन्ती सचरणशीला कल्पलतेव, साकारा शशिलेखेव चन्द्रकलेव, स्थिरतामुपगता प्राप्ता सौदामिनीलतेव विद्युद्वल्लीव, पुञ्जीभूता राशीभूता सकलसौन्दर्यलहरी समग्रसौन्दर्यवीचिरिव, ससार एव महाभित्तिस्तस्या आजवजवमहाकुडयस्य चित्रलेखेव आलेख्यरेखेव, त्रैलोक्यस्य त्रिभुवनस्य ललामवल्लीव भूषणलतेव, लावण्यस्य सौन्दर्यस्य सकेतभूमिरिव मेलनस्थानमिव, तारुण्यलक्ष्म्या यौवनश्रिया लास्यसदनमिव नृत्यभवनमिव, कान्तेर्दीप्ते उत्पत्तिस्थानमिव, सकलनयनाना निखिलनेत्राणाम् आकर्पणमन्त्रसिद्धिरिव वशीकरणमन्त्रसिद्धिरिव, मदन एव महेन्द्रजालिकस्तस्य काममहेन्द्रजालिकस्य महौषधसिद्धिरिव गुटिकासिद्धिरिव, शृङ्गारस्य निवासशालेव, सगीतविद्याना नाटचशालेव । तस्या स्वयंप्रभाया सौन्दर्यस्य गरिमा किंचित्

हुआ बहुत भारी काल व्यतीत करने लगा। § ९७) **तदायुरिति**—उस समय उस ललितांगदेवकी आयुरूपी समुद्रके बीच आयु क्षीण हो जानेसे बहुत सी देवियाँ चचल तरगोंके समान उत्पन्न होकर विलीन हो गयीं ॥७०॥ § ९८) **एवमिति**—इस प्रकार उस ललितांगकी आयु जब पृथक्त्वपल्यप्रमाण (सात आठ पल्य प्रमाण) बाकी रह गयी तब उसकी स्वयप्रभा नामकी देवी उत्पन्न हुई। वह स्वयंप्रभा क्या थी मानो शरीरधारिणी देवोंके साम्राज्यकी लक्ष्मी ही थी, चलती-फिरती कल्पलता थी, आकारसहित चन्द्रमाकी कला थी, स्थिरताको प्राप्त हुई विजलीरूपी लता थी, इकट्ठी हुई समस्त सौन्दर्यकी लहर थी, ससाररूपी लम्बी-चौडी दीवालकी चित्ररेखा थी, तीन लोकके आभूषणोंकी लता थी, लावण्यकी मिलनभूमि थी, यौवनरूपी लक्ष्मीका नृत्यगृह थी, कान्तिका उत्पत्ति स्थान थी, समस्त नेत्रोंके आकर्पणमन्त्रकी सिद्धि थी, काम रूपी जादूगरकी महौषधकी सिद्धि थी, शृंगाररसकी निवासशाला थी और संगीतविद्याओंकी नाट्यशाला थी। उस स्वयंप्रभाके सौन्दर्यकी गरिमाका कुछ तो भी वर्णन

---

१. क प्रतौ 'तथाहि' नास्ति ।

§ ९९) तस्या नेत्रं स्मित चासीदुच्चकोरकसन्निभम् ।
अधरश्चरणश्चापि प्रवालश्रीविशोभित ॥७१॥

§ १००) अस्या ओष्ठतल पयोधरयुगं चित्तं च नाकाधिप-
क्रीडोद्यानमिवाबभौ मृगदृशश्चञ्चत्सुरागोज्ज्वलम् ।
केशाना वलय वचश्च सुमनोजातेन लाल्य वयो
रूप चेति तदङ्गवर्णनकला पार गिरा गाहते ॥७२॥

वर्ण्यते ।तथा हि § ९९) तस्या इति—तस्या स्वयप्रभाया नेत्र नयनं स्मित मन्दहास्य च उच्चकोरकसंनिभम् आसीत् तत्र नेत्रपक्षे उत्कृष्टा ये चकोरकाश्चकोरपक्षिणस्तेषा सनिभ सदृश नेत्राणा चकोरोपमा दीयते कविभि । चकोरा एव चकोरका इत्यत्र स्वार्थे कप्रत्यय । स्मितपक्षे उच्चा उन्नता ये कोरका॰ कुसुमकुड्मलास्तेषा सनिभ सदृशम् । तस्या स्वयप्रभाया अधरो दशनच्छद चरणश्चापि पादश्चापि प्रवालश्रीविशोभित आसीत् । तत्राधरपक्षे प्रवाल किसलयस्तस्येव श्री शोभा तया विशोभित समलकृत , चरणपक्षे प्रवालो विद्रुम॰ 'मूगा' इति हिन्दीभाषाया तस्येव श्री शोभा तया विशोभित । श्लेषोपमा ॥७१॥ § १००) अस्या इति—अस्या मृगदृश कुरङ्गलोचनाया स्वयप्रभाया ओष्ठतल पयोधरयुग कुचयुगल चित्त हृदय च नाकाधिपस्य पुरन्दरस्य क्रीडोद्यानमिव केल्युपवनमिव आबभौ । अथ तेपा सादृश्यमाह—सुरागोज्ज्वलम् अस्य चतुर्णां पक्षे व्याख्यान तत्र ओष्ठतलस्य पक्षे सुष्ठु राग सुराग सुन्दरलौहित्य तेनोज्ज्वल देदीप्यमानम्, पयोधरयुगस्य पक्षे सुराणा देवानामग॰ पर्वत॰ सुमेरुरित्यर्थस्तद्वदुज्ज्वलम्, सुवर्णवर्णत्वेन कठिनत्वेन तुङ्गत्वेन वा सुमेरुसादृश्यम्, चित्तस्य पक्षे सुष्ठु राग सुराग सुप्रीतिस्तेनोज्ज्वल शोभमानम्, नाकाधिपक्रीडोद्यानपक्षे सुराणा देवानामगा वृक्षा कल्पवृक्षास्तैरुज्ज्वल शोभितम् । केशाना कचाना वलय समूह वचो वचनं वयोऽवस्था रूप च सौन्दर्यं च सुमनोजातेन लाल्य प्रशस्तम् । अस्यापि चतुर्णां पक्षे व्याख्यान तत्र केशाना वलयस्य पक्षे सुमनोजातेन सुमनसा पुष्पाणा जातेन समूहेन लाल्य, वचस पक्षे सुमनोजातेन विद्वत्समूहेन लाल्यं, वयस पक्षे सुष्ठु मनोजात सुमनोजातस्तेन सुकामेन लाल्यं, रूपस्य पक्षे सुमनोजातेन देवसमूहेन लाल्य प्रशसनीयम् आबभौ । इतीत्थ तदङ्गाना वर्णनकला तत्प्रतीकनिरूपणचातुरी गिरा वाचा पारमवसान गाहते प्राप्नोति । तदङ्गवर्णनविधौ वाच समाप्ता भवन्तीति भाव॰ । श्लेषोपमालकार शार्दूलविक्रीडित छन्द ॥७२॥

किया जाता है । § ९९) तस्या इति—उस स्वयंप्रभा देवीका नेत्र तथा मन्दहास्य उच्चकोरकसन्निभ था अर्थात् नेत्र उत्कृष्ट चकोर पक्षीके समान था और मन्दहास्य उत्कृष्टफूलोंकी बोंड़ियोंके समान था । इसी प्रकार अधरोष्ठ और चरणप्रवाल श्रीविशोभित था अर्थात् अधरोष्ठ प्रवाल—किसलयकी शोभासे सुशोभित था और चरणप्रवाल मूँगाकी शोभासे विभूषित था ॥७१॥ § १००) अस्या इति—इस मृगनयनी स्वयंप्रभाका ओष्ठतल, स्तनयुगल और चित्त इन्द्रके क्रीडोद्यानके समान सुशोभित हो रहा था क्योंकि जिस प्रकार इन्द्रका क्रीडोद्यान चञ्चत्सुरागोज्ज्वलं—शोभायमान कल्पवृक्षोंसे उज्ज्वल होता है उसी प्रकार इसका ओष्ठतल भी चञ्चत्सुरागोज्ज्वलं—शोभायमान सुन्दर लालिमासे उज्ज्वल था । स्तनयुगल भी चञ्चत्सुरागोज्ज्वलं—शोभायमान सुमेरुपर्वतके समान उज्ज्वल था, और चित्त भी चञ्चत्सुरागोज्ज्वलं—शोभायमान सुन्दर प्रीतिसे उज्ज्वल था । इसका केशसमूह, वचन, अवस्था और सौन्दर्य सुमनोजातेन लाल्य था अर्थात् केशोंका समूह सुमनोजात—फूलोंके समूहसे सुशोभित था । वचन, सुमनोजात—विद्वानोंके समूहसे प्रशंसनीय था । अवस्था, सुमनोजात—सुन्दर कामदेवसे प्रशस्त थी, और सौन्दर्य, सुमनोजात—देव समूहके द्वारा प्रशंसनीय था । इस प्रकार उसके शरीरकी वर्णनकला वाणीके पारको प्राप्त थी—वाणीके द्वारा उसके शरीरकी सुन्दरताका वर्णन नहीं हो सकता था ॥७२॥

§ १०१) ततश्च निजमनोभृङ्गसचरणोद्यानवाटिकया तया वधूटिकया सह ललिताङ्गदेवो वशयेव वशावल्लभः, शचीदेव्येव पुरन्दरः, सुन्दरमन्दरोद्यानवीथिकासु कोकिलकुलकलरववाचालासु, युवतिष्विव सद्रूपशोभितासु, गणिकास्विव विटपालम्बिताम्बरासु, सुन्दरीजनवदनतटीष्विव सुपर्वराजमनोहरासु, अन्येषु च नीलाचलखचराचलप्रभृतिवनोद्देशेषु चिरतरमरमत।

§ १०२) स्वयप्रभासङ्गमलाभसौख्यपयोनिधौ मज्जनमाचरन् सः।
उदीतमात्मन्यनिमेषशब्दमन्वर्थतामेष निनाय देवः ॥७३॥

---

§ १०१) ततश्चेति—ततश्च तदनन्तर च निजमनोभृङ्गस्य स्वस्वान्तपट्पदस्य सचरण भ्रमण तस्योद्यानवाटिकोपवनवीथिका तथाभूतया तया पूर्वोक्तया वधूटिकया तरुण्या स्वयप्रभदेव्या सह ललिताङ्गदेवो वशया करिण्या सह वशावल्लभ करीव 'करिणी धेनुका वशा' इत्यमर। शचीदेव्या पुलोमजया 'पुलोमजा शचीन्द्राणी' इत्यमर सह पुरन्दर इव इन्द्र इव, कोकिलकुलस्य पिकसमूहस्य कलरवेणाव्यक्तमधुरशब्देन वाचाला मुखरितास्तासु युवतिष्विव तरुणीष्विव सद्रूपशोभितासु सच्च तद्रूप च सद्रूप प्रशस्तसौन्दर्यं तेन शोभितास्तासु, पक्षे सन्तश्च ते द्रवश्चेति सद्द्रव प्रशस्तपादपास्तै शोभिता समलंकृतास्तासु, गणिकास्विव रूपाजीवास्विव विटपालम्बिताम्बरासु विटपैर्विटपुरुषैरालम्बित सधृतमम्बर वस्त्र यासा तासु पक्षे विटपै शाखाभि पल्लवैर्वालम्बित स्पृष्टमम्बर याभिस्तासु, सुन्दरीजनवदनतटीष्विव ललनाजनलपनतटीष्विव सुपर्वराजमनोहरासु सुपर्वण पौर्णमास्या राजा चन्द्र सुपर्वराजस्तद्वन्मनोहरासु रम्यासु पक्षे सुपर्वणा देवाना राजा सुपर्वराज इन्द्रस्तस्य मनोहरासु चित्ताकर्षिकासु सुन्दरमन्दरोद्यानाना सुभगसुमेरूपवनाना वीथिकास्तासु अन्येषु च नीलाचलखचराचलौ प्रभृती येषा तथाभूता ये वनोद्देशास्तेषु चिरतर दीर्घकालपर्यन्तम् अरमताक्रीडत। § १०२) स्वयमिति—स एष देवो ललिताङ्ग स्वयप्रभाया सगमाल्लाभो यस्य तथाभूत यत्सौख्य तदेव पयोनिधि सागरस्तस्मिन् मज्जन समवगाहनम् आचरन् कुर्वन् आत्मनि स्वविषये उदीत प्रकटितम् अनिमेषशब्द अनिमेषो देवो मत्स्यश्च तच्छब्दम् अन्वर्थता सार्थकता निनाय यथानिमेषो मत्स्य पयोनिधौ मज्जन करोति तथायमपि ललिताङ्गो देव स्वयप्रभासगमजनितसुखपयोनिधौ मज्जन कुर्वन्ननिमेषशब्द सार्थक चकारेति भाव 'सुरे मत्स्येऽप्यनिमेष' सुरे

---

§ १०१) ततश्चेति—तदनन्तर अपने मनरूपी भ्रमरके भ्रमणके लिए उपवनकी वीथीके समान उस प्रगाढयुवति स्वयप्रभाके साथ ललितांगदेव हस्तिनीके साथ हाथीके समान और इन्द्राणीके साथ इन्द्रके समान सुमेरुपर्वतके सुन्दर उपवनोंकी उन मनोहर गलियोंमें जो कि कोयलोंके समूहके मनोहर शब्दोंसे मुखरित थीं, युवतियोंके समान सद्रूप-शोभिता—समीचीन रूपसे सुशोभित थीं। (पक्षमे उत्तम वृक्षोंसे सुशोभित थीं,) वेश्याओंके समान विटपालम्बिताम्बरा—विटपुरुषोंसे खींचे गये वस्त्रोंसे सहित थीं (पक्षमे शाखाओंसे आकाशको छूनेवाली थीं,) और सुन्दरी स्त्रियों की मुखतटीके समान—सुपर्वराजमनोहरा—पूर्णचन्द्रके समान सुन्दर (पक्षमें इन्द्रके मनको हरनेवाली) थीं, तथा नीलगिरि एव विजयार्धपर्वत आदिके वन प्रदेशोंमे चिरकाल तक क्रीडा करता रहा। § १०२) स्वयमिति—वह ललितागदेव स्वयंप्रभाके संगमसे प्राप्त होनेवाले सुखरूपी सागरमें अवगाहन करता हुआ अपने आपके विषयमे प्राप्त अनिमेष शब्दको सार्थक कर रहा था। भावार्थ—अनिमेषका अर्थ देव और मत्स्य है जिस प्रकार मत्स्य समुद्रमे अवगाहन करता है उसी प्रकार ललिताग देव भी स्वयप्रभाके सगमसे उत्पन्न सुखरूपी सागरमे अवगाहन करता था ॥ ७३ ॥

---

१५ १. मृग क०

§ १०३) अर्हद्दासहृदालवालवलयाज्जातो बुधैः संनुतः
प्रोन्मीलत्स्तवकोल्लसन्नवरसैरानन्दमुद्वेलयन् ।
मान्यश्रीपुरुदेवचम्पुविदितः कल्पद्रुमोऽनल्पकं
नॄणामाश्रयिणा फलं वितनुतामाचन्द्रताराविधि ॥७४॥

इति श्रीमर्हद्दासकृतौ पुरुदेवचम्पुप्रबन्धे प्रथमस्तबकः ।

मत्स्येऽनिमेषवत्' इति विश्वलोचन. । रूपकश्लेषौ । उपजातिच्छन्द' ॥७३॥ § १०३) अर्हद्दासेति—अर्हद्दासस्य हृदेव हृदयमेवालवालवलय आवापमण्डल तस्मात् जात समुत्पन्न., बुधैर्विद्वद्भि सनुत सस्तुत , प्रोन्मीलन्तो विकसन्तो ये स्तबका गुच्छका अध्यायाश्च तेषूल्लसन्त शोभमाना ये नवरसा शृङ्गारहास्यकरुणादिनवरसा पक्षे नूतनमकरन्दास्तै , आनन्दं हर्षम्, उद्वेलयन् वर्धयन्, मान्यश्रीपुरुदेवचम्पुविदित एतन्नामप्रसिद्ध , कल्पद्रुम कल्पवृक्ष आश्रयिणामध्येतॄणा विश्राम कुर्वता च नॄणा पुंसाम् आचन्द्रतारावधि शशिनक्षत्रावस्थानपर्यन्त, अनल्पक विपुल फल वितनुताद् विस्तारयतु । रूपकालकार । शार्दूलविक्रीडितच्छन्द ।

इत्यर्हद्दासकृते पुरुदेवचम्पूप्रबन्धस्यवासन्ती समाख्याया सस्कृत-
व्याख्याया प्रथमः स्तबक समाप्त' ।

---

§ १०३) अर्हद्दासेति—जो अर्हद्दास कविके हृदयरूपी क्यारीसे उत्पन्न हुआ है, विद्वानोंके द्वारा जिसकी अच्छी तरह स्तुति की जाती है तथा खिले हुए स्तवकों—पुष्पगुच्छोंसे सुशोभित नवीन रसोंसे (पक्षमें स्तवक नामक अध्यायोंमे सुशोभित शृंगारादि नवरसोंसे) जो आनन्दको बढ़ा रहा है, ऐसा यह पुरुदेवचम्पु नामसे प्रसिद्ध कल्पवृक्ष—आश्रय करनेवाले—इसका पठन पाठन करनेवाले मनुष्योंके लिए जब तक चन्द्रमा और नक्षत्र हैं तब तक बहुत भारी फल प्रदान करता रहे ।

इस प्रकार श्रीमान् अर्हद्दास रचित पुरुदेवचम्पु प्रबन्धमें प्रथम स्तबक समाप्त हुआ ।

---

१. स्थिति क० ।

द्वितीयः स्तवकः

§ १) अथ कदाचिदस्य देवस्य भूषणमहितमसृणमणिगणेषु पूर्ववन्निशान्तदीपस्वरूपेषु, सहजविशालवक्षःस्थलसगतमालाया विद्युतीव पूर्ववृत्तान्ताया, विशङ्कटवदनतटे पूर्ववत्प्रभाताब्जसकाशे, तत्कल्पवास्तव्यतत्परिचारकत्रिदशेषु पूर्ववद्दिनविजृम्भितखद्योतसदृशेषु तद्वियोगवातधूत इव कम्पमाने तदावाससबन्धिकल्पपादपे, जन्मप्रभृत्यनुभूतसमस्तसुखेष्वपि पिण्डीभूय दुःखात्मतामुपगतेष्विव दुःसहेषु, समागततत्सामानिकदेवसान्त्ववचनसमासादितधैर्यप्रकाशनसूर्यं सोऽय ललिताङ्गसुरवर्यः सकलभुवनविलसितजिनभवनानि मासार्धेन सपूज्य, अच्युतकल्पावलम्बितरवि-

---

§ १) अथेति—अथानन्तर कदाचित् जातुचित् अस्य देवस्य ललिताङ्गाभिधानस्य भूषणेष्वाभरणेषु महिता शोभिता मसृणाः स्निग्धाश्चाकचक्येन समुपेता इत्यर्थः ये मणयो रत्नानि तेषा गणेषु समूहेषु पूर्ववत् तद्विमानोद्भूतान्यदेवसबन्धिपुरावृत्तान्तवत् निशान्तदीप इव प्रभातदीप इव स्वरूप येषा तथाभूतेषु निष्प्रभेषु सत्सु, सहजविशाल निसर्गविस्तृत यद् वक्षःस्थलमुरःस्थल तत्र सगता या माला तस्या विद्युतीव तडितीव पूर्वोवृत्तान्तो यस्यास्तथाभूताया निष्प्रभाया सत्याम्, विशङ्कटवदनतटे विशालास्यतटे पूर्ववत् प्रभाताब्ज प्रातश्चन्द्रस्तस्य सकाशे सदृशे 'अब्जे धन्वन्तरौ चन्द्रे निचुले क्लीवमम्बुजे' इति विश्वलोचन तत्कल्पवास्तव्यास्तत्स्वर्गनिवासिनो ये तत्परिचारकत्रिदशास्तत्सेवकसुरास्तेषु पूर्ववत् दिने दिवसे विजृम्भिता वृद्धिगता ये खद्योता ज्योतिरिङ्गणास्तेषा सदृशेषु समानेषु प्रभारहितेषु सत्सु, तदावाससबन्धी तत्स्वर्गसबन्धी य कल्पपादपस्तस्मिन् तद्वियोगो ललिताङ्गामरविरह एव वातो वायुस्तेन धूत इव कम्पित इव कम्पमाने सति, जन्मप्रभृति जनुरारभ्य अनुभूतानि भुक्तानि यानि समस्तसुखानि निखिलसातानि तेष्वपि पिण्डीभूय राशीभूय दुःखात्मता दुःखस्वरूपतामुपगतेष्विव प्राप्तेष्विव दुःसहेषु दुःखेन सोढु शक्येषु सत्सु, समागता समायाता ये तस्य सामानिकदेवा मातृपितृस्थानीया देवविशेषास्तेषा सान्त्ववचनेन शान्तिकरोपदेशेन समासादित प्राप्तो धैर्यमेव प्रकाशनसूर्यो यस्य तथाभूत सोऽय ललिताङ्गसुरवर्य एतन्नामनिलिम्पश्रेष्ठ , सकलभुवनेषु निखिललोकेषु विलसितानि

---

§ १) अथेति—तदनन्तर किसी समय इस देवके आभूषणोंमे सुशोभित चमकीले मणियोंके समूह जब पूर्वमे उत्पन्न हुए अन्य देवोंके समान प्रातःकालके दीपकोंके समान निष्प्रभ पड़ गये, इसके स्वभावसे ही विशाल वक्षःस्थल पर पडी हुई माला जब बिजलीकी तरह विलीन हो गयी, इसका विशालमुख तट जब पहलेकी तरह प्रातःकालके चन्द्रमाके समान हो गया, उस स्वर्गमें रहनेवाले जब उसके सेवकदेव पहलेके समान दिनमे प्रकट हुए पटबीजनाओंके समान कान्तिहीन हो गये, उस स्वर्गका कल्पवृक्ष जब उस देवके वियोगरूपी पवनसे कम्पित होकर ही मानो काँपने लगा था, और जन्मसे लेकर जितने सुखोंका अनुभव किया था वे सभी सुख जब एकत्रित होकर दुःखस्वरूपताको प्राप्त हुएके समान असह्य हो गये तब आये हुए उसके सामानिक जातिके देवोंके सान्त्वनामय वचनोंसे जिसे धैर्यरूपी प्रकाशमान सूर्य प्राप्त हुआ था ऐसा यह ललितांग नामका श्रेष्ठ देव एकपक्षमे समस्तलोकमें

---

१ समासाधित क० ।

बिम्बनिकाशजिनबिम्बानि पूजयन्सनिहितायुरन्तःसमाहितस्वान्त', किरीटतटविन्यस्तकरकुड्मल, नमस्कारपदान्युच्चैरनुध्यायन्, शारदसमयसमुदितनीरद इवादृश्यतामाससाद।

§ २) जम्बूद्वीपे सुरशिखरिण' पूर्वदिक्स्थे विदेहे
रम्या भूमिर्विलसतितरा पुष्कलावत्यभिख्या।
चित्रा तत्र त्रिदिवसदृशी सौधराजत्पताका-
वातानीतामरतरुसुमामोदिनी राजधानी ॥१॥

§ ३) एतामुत्पलखेटनामनगरी तामावसद्भूपतिः
प्रख्यातो भुवि वज्रबाहुरिति यो वज्रीव सद्वैभवः।
कान्ता तस्य वसुन्धरा शशिमुखी देव' स नाकाच्च्युत'
पुत्रस्तत्र तयोरभूत्प्रकटयन्स्वा वज्रजङ्घाभिधाम् ॥२॥

शोभितानि यानि जिनभवनानि जिनमन्दिराणि तानि मासार्धेन पक्षेण सपूज्य समर्च्य, अच्युतकल्पावलम्बितानि षोडशस्वर्गस्थितानि रविबिम्बनिकाशानि सूर्यबिम्बसदृशानि यानि जिनबिम्बानि तानि पूजयन् समर्चयन् सनिहित निकटस्थितमायुर्यस्य तथाभूत, अन्त समाहितमन्त स्थापित स्वान्त चेतो येन तथाभूत, किरीटतटे मौलितटे विन्यस्त स्थापित करकुड्मल पाणिकोरक येन स, नमस्कारपदानि णमो अरहताण—इत्यादि मन्त्रपदानि, उच्चैरुत्कृष्टतया अनुध्यायन् चिन्तयन् शारदसमये समुदितः समुद्भूतो यो नीरदो मेघस्तद्वत् अदृश्यतामन्तर्हितावस्थाम् आससाद प्राप मृत इत्यर्थ । § २) जम्बूद्वीप इति—जम्बूद्वीपे प्रथमद्वीपे सुरशिखरिण सुमेरुपर्वतस्य पूर्वस्या दिशि तिष्ठतीति पूर्वदिक्स्थस्तस्मिन् विदेहे विदेहक्षेत्रे पुष्कलावती अभिख्या यस्यास्तथाभूता पुष्कलावतीनामधेया रम्या मनोहारिणी भूमिर्देशो विलसतितराम् अतिशयेन शोभते। तत्र पुष्कलावतीदेशे चित्रा विस्मयकरी त्रिदिवसदृशी स्वर्गतुल्या सौधेषु भवनेषु राजन्त्य. शोभमाना या पताका वैजयन्त्यस्तासा वातेन पवनेन आनीत प्रापितोऽमरतरुसुमाना कल्पवृक्षकुसुमाना य आमोद सुगन्धि स विद्यते यस्या तथाभूता राजधानी राजवसति, अस्तीति शेष.। मन्दाक्रान्ता छन्द ॥१॥ § ३) एतामिति—एता ता प्रसिद्धाम्, उत्पलखेटनामनगरी स भूपतिर्नृपति आवसत् न्यवात्सीत् यो भुवि पृथिव्या वज्रबाहुरिति प्रख्यात. प्रसिद्धः, यश्च वज्रीव इन्द्र इव सद्वैभवः समीचीनवैभवसहित आसीत्। तस्य वज्रबाहो शशिमुखी चन्द्रवदना वसुधरा नाम कान्ता प्रणयिनी अभूत्। तत्रोत्पलखेटनगर्याम्, स ललिताङ्गो देव. नाकात् न विद्यतेऽक दु ख यस्मिन् स नाकस्तस्मात् स्वर्गात् च्युतः सन् तयोर्वज्रबाहुवसुधरयो स्वा स्वकीया वज्रजङ्घाभिधा वज्रजङ्घेति

सुशोभित जिनमन्दिरोंकी पूजा कर अच्युतस्वर्गमे स्थित सूर्यबिम्बके समान जिन प्रतिमाओंकी अर्चा करता हुआ स्थित था। जब आयु अत्यन्त निकट रह गयी तब उसने अपना हृदय अन्तरंगमें स्थापित किया अर्थात् मनके अन्य विकल्प समाप्त किये, हाथ जोड़कर मुकुटतटसे लगाये। अन्तमे पंचनमस्कार मन्त्रके पदोंका उत्कृष्ट रूपसे ध्यान करता हुआ वह शरदृऋतुके मेघके समान अदृश्यताको प्राप्त हो गया। § २) जम्बूद्वीप इति—जम्बूद्वीपमें सुमेरुपर्वतकी पूर्वदिशामे स्थित विदेहक्षेत्रमे पुष्कलावती नामकी भूमि अतिशय रूपसे सुशोभित है। उसमें आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली, स्वर्गके तुल्य उत्पलखेट नामकी राजधानी है। यह राजधानी भवनों पर फहराती हुई पताकाओंकी वायुसे लायी हुई कल्पवृक्षोंके फूलोंकी सुगन्धिसे सदा महकती रहती है ॥१॥ § ३) एतामिति—इस उत्पलखेट नामकी नगरीमे वह राजा रहता था जो पृथिवी पर वज्रबाहु इस नामसे प्रसिद्ध था तथा इन्द्रके समान समीचीन वैभवसे युक्त था। वज्रबाहुकी वसुन्धरा नामकी चन्द्रमुखी स्त्री थी। वह ललितांगदेव स्वर्गसे च्युत होकर उस उत्पलखेट नगरीमे राजा वज्रबाहु और रानी वसुन्धराके अपना वज्रजंघ नाम

§ ४) स्वजनकुमुदानन्दी संशीलयन्विविधाः कलाः
सकलविमतान्पद्मान्सकोचयश्च समन्ततः ।
स किल ववृधे श्रीमान्बालेन्दुरुज्ज्वलमण्डलः
कुसुमसुकुमाराङ्ग' कुन्दोज्ज्वलस्मितचन्द्रिक ॥३॥

§ ५) तदनु राकाशशीव शरच्चन्द्रिकया तारुण्यलक्ष्म्या भासुरशरीरो वज्रजङ्घकुमार. सुधावदाताभिरपि निजगुणश्लाघाभि. समस्तजनान् रक्तानातन्वन्, पूर्वभवपरिशीलितस्वयप्रभानुरागेण लोलाक्षीषु नि स्पृहतामुपगतोऽपि सरस्वतीकीर्तिलक्ष्मीभिः सतत चिक्रीड ।

§ ६) तत' स्वयप्रभादेवी च ललिताङ्गदेववियोगेन प्रियविप्रयुक्ता चक्राह्वीव बहुदीनदशा-

---

नामधेय प्रकटयन् पुत्रोऽभूत् । शार्दूलविक्रीडितच्छन्द ॥२॥ § ४) स्वजनेति—स्वजना' कुटुम्बिजना एव कुमुदानि कैरवाणि तान्यानन्दयति विकासयतीत्येवशील, विविधा अनेका कलाश्चातुरीः षोडशभागाश्च सशीलयत् लभमान, सकलविमतान् निखिलशत्रून् पद्मान् कमलानि 'वा पुसि पद्म नलिनम्' इत्यमरोक्ते पद्मशब्दस्य पुस्यपि प्रयोग सिद्ध, समन्तत. परित सकोचयन् निमीलयन्, श्रीमान् लक्ष्मीयुत पक्षे शोभासहितश्च, उज्ज्वल देदीप्यमान मण्डल देशो यस्य स पक्षे उज्ज्वल मण्डल बिम्ब यस्य स' 'बिम्बेषु त्रिषु मण्डलम् । मण्डल निकुरम्बेऽपि देशे द्वादशराजके' इति विश्वलोचन, कुसुममिव सुकुमार मृदुलमङ्ग शरीर यस्य स, कुन्द माघ्यकुसुममिवोज्ज्वल सित यत् स्मित मन्दहसित तदेव चन्द्रिका ज्योत्स्ना यस्य तथाभूत स बाल एवेन्दुर्बालेन्दु वज्रजङ्घचन्द्र ववृधे वृद्धि जगाम किलेति वाक्यालकारे । रूपकालकारो हरिणीछन्द ॥३॥ § ५) तदन्विति—तदनु तदनन्तर शरच्चन्द्रिकया जलदान्तकालज्योत्स्नया राकाशशीव पौर्णमासीन्दुरिव तारुण्यलक्ष्म्या यौवनश्रिया भासुर शरीर यस्य तथाभूतो देदीप्यमानदेह, वज्रजङ्घकुमार, सुधावत् चूर्णकवत् अवदाताभिर्धवलाभिरपि पक्षे निर्मलाभि निजगुणश्लाघाभि स्वकीयगुणप्रशसाभि समस्तजनान् निखिलनरान् रक्तान् लोहितवर्णान् आतन्वन् कुर्वन् शुक्लवर्णाभिर्गुणश्लाघाभि समस्तजनाना रक्तीकरण विरुद्धमन परिहारपक्षे रक्तान् अनुरागयुक्तान् कुर्वन्निति योज्यम्, पूर्वभवे ललिताङ्गनिलिम्पपर्याये परिशीलितः समनुभूतो य स्वयप्रभाया अनुरागस्तेन लोलाक्षीषु ललनासु नि स्पृहतामुदासीनतामुपगतोऽपि प्राप्तोऽपि सरस्वती च कीर्तिश्च लक्ष्मीश्चेति सरस्वतीकीर्तिलक्ष्म्यस्ताभि शारदासमज्ञापद्माभि सतत निरन्तर चिक्रीड क्रीडति स्म । § ६) तत इति—ततो ललिताङ्गस्य नाकाच्च्यवनानन्तर स्वयप्रभादेवी च ललिताङ्गदेवस्य वियोगो विप्रलम्भस्तेन प्रियविप्रयुक्ता

प्रकट करता हुआ पुत्र उत्पन्न हुआ ॥२॥ § ४) स्वजनेति—जो कुटुम्बीजनरूपी कुमुदोंको विकसित कर रहा था, नाना प्रकारकी कलाओं—चतुराइयों (पक्षमे षोडशभागों) को प्राप्त कर रहा था, समस्त शत्रुरूपी कमलोंको सब ओरसे संकुचित कर रहा था, श्रीमान्—लक्ष्मीमान् (पक्षमे शोभासे सहित) था, देदीप्यमानमण्डल—देश (पक्षमे बिम्ब) से सहित था, फूलके समान सुकोमल शरीरका धारक था तथा कुन्दके समान उज्ज्वल मुसक्यानरूपी चाँदनीसे सहित था ऐसा वह बालकरूपी चन्द्रमा वृद्धिको प्राप्त हो रहा था ॥३॥ § ५) तदन्विति—तदनन्तर शरद् ऋतुकी चाँदनीसे पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान यौवनकी लक्ष्मीसे जिसका शरीर अत्यन्त सुशोभित हो रहा था ऐसा वज्रजंघकुमार, चूनाके समान उज्ज्वल—सफेद (पक्षमें निर्मल) स्वकीय गुणोंकी प्रशसासे सब लोगोंको रक्त—लालवर्ण (पक्षमे अनुरागसे युक्त) करता हुआ, पूर्वभवमें अनुभूत स्वयप्रभाके अनुरागके कारण यद्यपि अन्य स्त्रियोंमें उदासीनताको प्राप्त था तो भी सरस्वती कीर्ति और लक्ष्मीके साथ निरन्तर क्रीडा करता रहता था । § ६) तत इति—तदनन्तर स्वयंप्रभादेवी भी ललितांगदेवके वियोगसे पतिविरहित चकवीके समान अत्यन्त दीन दशाको प्राप्त हो गयी । वर्षाकालमे जिसने मधुर

मापन्ना, जलदकालसमुज्झितकलालापा कोकिलेव विविधसंतापसतप्तस्वान्ता, तत्कालोचितसान्त्ववचनोद्यतेनान्तःपरिषद्गतेन दृढवर्मदेवेन प्रचोदितसन्मार्गान् षण्मासाञ्जिनपूजा विधाय सौमनसोद्यानशोभितचैत्यतरुमूले गुरुपञ्चक मनसा ध्यायन्ती सहसा निशापगमे तारकेवादृश्यतामाटिटीके।

§ ७) पूर्वोक्ते प्राग्विदेहेऽस्ति पुरी सा पुण्डरीकिणी।
यत्र सौधास्तरुण्यश्च वियन्मध्यविराजिताः ॥४॥

§ ८) वज्रदन्त इति विश्रुतो नृपस्ता शशास तुलितामराधिपः।
यो जिगाय परलोकमद्भुत मार्गणानविजहद्गुणैः परम् ॥५॥

वल्लभविरहिता चक्राह्वीव रथाङ्गीव बहुदीनदशामतिदीनावस्थाम् आपन्ना प्राप्ता, जलदकाले वर्षाकाले समुज्झितस्त्यक्त कलालापो मधुरालापो यया तथाभूता कोकिलेव पिकीव विविधसतापेन नानादुःखानलेन सतप्त स्वान्तं चित्त यस्यास्तथाभूता, तत्कालोचितेषु तदवसरार्हेषु सान्त्ववचनेषु समाश्वासनोपदेशेषु उद्यतस्तत्परस्तेन, अन्त.परिषद्गतेन अन्तरङ्गसमितिसदस्येन दृढवर्मदेवेन प्रचोदित प्ररूपित सन्मार्गो येषु तान् षण्मासान् 'कालाध्वनोरत्यन्तसयोगे' इति द्वितीया, जिनपूजा जिनेन्द्रार्चां विधाय कृत्वा सौमनसोद्याने मेरुस्थितसौमनसवने शोभितो यश्चैत्यतरुश्चैत्यवृक्षस्तस्य मूले तले गुरुपञ्चक पञ्चपरमेष्ठिनो मनसा हृदयेन ध्यायन्ती चिन्तयन्ती सहसा निशापगमे रजन्यवसाने प्रातःकाल इत्यर्थः, तारकेव अदृश्यताम् आटिटीके प्राप 'टीकृ गतौ' इत्यस्य लिटि रूपम्। § ७) पूर्वोक्त इति—पूर्वोक्ते प्रागुदिते प्राग्विदेहे पूर्वविदेहक्षेत्रे पुण्डरीकिणीनामधेया सा पुरी अस्ति यत्र सुधया चूर्णकेन निर्वृत्ता सौधा प्रासादा तरुण्यश्च युवतयश्च वियन्मध्यविराजिता सौधपक्षे वियतो गगनस्य मध्ये विराजिता' शोभिता उत्तुङ्गत्वादिति भाव., युवतिपक्षे वियदिव गगनमिव शून्य कृशतर मध्य कटिस्तेन विराजिता' शोभिता। श्लेषोपमा ॥४॥ § ८) वज्रदन्त इति—वज्रदन्त इति विश्रुत प्रसिद्ध, तुलित उपमितोऽमराधिप पुरदरो येन तथाभूत. शक्रसदृश स नृप' ता पुण्डरीकिणीपुरो शशास यो गुणै प्रत्यञ्चाभि. मार्गणान् बाणान् अविजहद् अत्यजन् परलोक शत्रुसमूह जिगाय जितवान् इति परमत्यन्तमद्भुतमाश्चर्यकरम् प्रभावेणैवानेन शत्रव' पराजिता इति भाव. पक्षे गुणै. सम्यग्दर्शनादिभिः मार्गणान् गतीन्द्रियादिचतुर्दशमार्गणान्, अत्यजन् तेषा श्रद्धा कुर्वन्नित्यर्थ परलोक नरकादिगतिं जिगाय। विरोधाभासा-

---

बोली छोड़ दी है ऐसी कोयलके समान उसका चित्त नाना प्रकारके सन्तापसे सन्तप्त रहने लगा। उसकी अन्तःपरिषद्का सदस्य एक दृढवर्म नामका देव था वह उसे उस अवसरके योग्य सान्त्वना वचन कहता रहता था। उस दृढवर्म देवके द्वारा जिनमें समीचीन मार्गका उपदेश दिया जाता रहा ऐसे छह माह तक लगातार स्वयंप्रभा जिनेन्द्रभगवान्की पूजा करती रही। अन्तमें सौमनसवनमें सुशोभित चैत्यवृक्षके नीचे हृदयसे पंचपरमेष्ठियोंका ध्यान करती हुई वह स्वयंप्रभा प्रातःकालके समय तारकाके समान सहसा अदृश्यताको प्राप्त हो गयी। § ७) पूर्वोक्त इति—पहले कहे हुए पूर्वविदेह क्षेत्रमें पुण्डरीकिणी नामकी वह नगरी है जिसमें भवन और तरुण स्त्रियाँ वियन्मध्यविराजित हैं—भवन तो आकाशके मध्य तक सुशोभित है और तरुण स्त्रियाँ आकाशके समान अत्यन्त कृश कमरसे सुशोभित हैं ॥४॥ § ८) वज्रदन्त इति—वज्रदन्त इस नामसे प्रसिद्ध तथा इन्द्रकी तुलना करनेवाला वह राजा उस पुण्डरीकिणी नगरका पालन करता था जो डोरीसे बाणोंको छोड़े बिना ही शत्रुओंके समूहको जीत लेता था यह अत्यन्त आश्चर्यकी बात थी (पक्षमें जो सम्यग्दर्शनादि गुणोंसे गति आदि मार्गणाओंको छोड़े बिना अर्थात् उनकी श्रद्धा रखता हुआ नरकादि-

§ ९) लक्ष्मीरिवापरा तस्य लक्ष्मीमतिरभूत्प्रिया ।
कचस्फूर्तिश्च मूर्तिश्च यस्याः सज्जघनोज्ज्वला ॥६॥

§ १०) एषा किल सुरयोषा श्रीमती नाम्ना तयोः पुत्री सजाता, क्रमेण मञ्जुलतारुण्यमञ्जरीसुरभिततनुलता, सचारिणीव मदनराज्यस्य लक्ष्मी, प्रत्यादेश इव रतिदेव्याः, प्रतिकृतिरिव लक्ष्म्याः, प्रतिबिम्बमिव सरस्वत्याः, कलशप्रतिष्ठेव विधातृसृष्टेः, तरङ्गपरम्परेव शृङ्गारसागरस्य, पुनरुक्तिरिव सौभाग्यस्य, अधिदेवतेव कान्तिकल्लोलस्य, मीनकेतनमहीकमनभद्रपीठेनेव, मणिभूषणकान्तिनिम्नगारुचिरसैकतमण्डलेनेव, यौवनमदहस्तिमस्तकेनेव, पृथुलजघनवलयेन विलसिता, नाभितलालवालसमुद्गतरोमराजिलताफलाभ्यामिव, हृदयतटतटाककमल-

---

लकार । रथोद्धताच्छन्द ॥५॥ § ९) लक्ष्मीरिति—तस्य वज्रदन्तस्य अपरा लक्ष्मीरिव लक्ष्मीमति प्रिया वल्लभा अभूत् । यस्या लक्ष्मीमत्या कचाना केशाना स्फूर्ति शोभा कचस्फूर्ति मूर्तिश्च तनुश्च सज्जघनोज्ज्वला बभूवेति शेष । कचस्फूर्तिपक्षे सज्जा सजला ये घना मेघास्तद्वदुज्ज्वला शोभमाना श्यामवर्णेति भाव, मूर्तिपक्षे सत् प्रशस्त यत् जघन नितम्ब तेनोज्ज्वला शोभमाना । श्लेष ॥६॥ § १०) एषेति—एषा किल सुरयोषा स्वयप्रभा देवी तयोर्वज्रदन्तलक्ष्मीमत्यो नाम्ना नामधेयेन श्रीमती पुत्री सजाता समुद्भूता सती क्रमेण मञ्जुल मनोहर यत्तारुण्य यौवन तदेव मञ्जरी पुष्पश्रेणिस्तया सुरभिता सुगन्धिता तनुलता शरीरवल्ली यस्या सा, मदनराज्यस्य कामसाम्राज्यस्य संचारिणी सचरणशीला लक्ष्मीरिव, रतिदेव्या कामकामिन्या प्रत्यादेश इव प्रतिनिधिरिव, लक्ष्म्या श्रिया प्रतिकृतिरिव प्रतिबिम्बमिव, सरस्वत्या शारदाया प्रतिबिम्बमिव प्रतियातनेव 'प्रतिमान प्रतिबिम्बं प्रतिमा प्रतियातना प्रतिच्छाया । प्रतिकृतिरर्चा पुसि प्रतिनिधिरुपमोपमान स्यात् ॥' इत्यमर । विधातृसृष्टे ब्रह्मसृष्टे कलशप्रतिष्ठेव कलशारोपणमिव, शृङ्गारसागरस्य शृङ्गारसिन्धो तरङ्गपरम्परेव कल्लोलमालेव, सुभगाया भाव सौभाग्य तस्य पतिप्रेम्ण पुनरुक्तिरिव द्विरुक्तिरिव, कान्तिकल्लोलस्य दीप्तिलहर्या. अधिदेवतेव अधिष्ठात्री देवीव, मीनकेतनो मदन स एव महीकमनो भूपतिस्तस्य भद्रपीठेनेव प्रशस्तसिंहासनेनेव, मणिभूषणाना रत्नाभरणाना कान्तिरेव निम्नगा नदी तस्या रुचिरं मनोहर यत्सैकतमण्डल पुलिनचक्रवाल तेनेव, यौवनमेव मदहस्ती मत्तमातङ्गस्तस्य मस्तकेनेव कुम्भेनेव, पृथुल पीवर यज्जघनवलय नितम्बमण्डल तेन विलसिता शोभिता, नाभितलमेवालवालमावापस्तस्मात्समुद्गता समुत्पन्ना या रोमराजि सैव लता वल्ली

गतियोंको जीतता था ॥५॥ § ९) लक्ष्मीरिति—उस राजा वज्रदन्तकी दूसरी लक्ष्मीके समान लक्ष्मीमति नामकी वह प्रिया थी जिसकी केशोंकी शोभा तथा मूर्ति (शरीर) सज्जघनोज्ज्वला थी। अर्थात् केशोंकी शोभा सज्जघन-उज्ज्वला—सजल मेघोंके समान सुशोभित थी और मूर्ति सत्-जघन-उज्ज्वला-उत्तम नितम्बसे सुशोभित थी ॥६॥ § १०) एषेति—यह स्वयंप्रभा देवी उन वज्रदन्त और लक्ष्मीमतिकी श्रीमती नामसे प्रसिद्ध पुत्री हुई। क्रम-क्रमसे जब इसकी शरीररूपी लता मनोहर यौवनरूपी पुष्पमंजरीसे सुगन्धित हो गयी तब वह ऐसी जान पड़ने लगी मानो कामदेवके राज्यकी चलती-फिरती लक्ष्मी ही हो, रतिदेवीकी मानो प्रतिनिधि ही हो, लक्ष्मीकी मानो प्रतिकृति ही हो, सरस्वतीका मानो प्रतिबिम्ब ही हो, विधाताकी सृष्टिकी मानो कलशप्रतिष्ठा ही हो, शृंगाररूपी सागरकी मानो लहरोंकी सन्तति ही हो, सौभाग्यकी मानो पुनरुक्ति ही हो, और कान्तिरूपी तरंगकी मानो अधिष्ठात्री देवी ही हो। वह जिस स्थूल नितम्बमण्डलसे सुशोभित थी वह कामदेवरूपी राजाके सुन्दर सिंहासनके समान जान पड़ता था, मणिमय आभूषणोंकी कान्तिरूपी नदीके सुन्दर पुलिनके समान प्रतिभासित होता था अथवा यौवनरूपी मदोन्मत्त हाथीके मस्तकके समान मालूम पड़ता था। वह जिन स्तनोंसे सुशोभित थी वे नाभितलरूपी क्यारीसे उत्पन्न रोमराजिरूपी

मुकुलामिव, चूचुकमुद्रामुद्रिताभ्यामिव शृङ्गाररसपूर्णशातकुम्भकुम्भाभ्यामिव वक्षोरुहाभ्या विराजमाना, शुभतरलाक्षेण अब्जमदनिर्मूलननिदानेन पदेन वदनेन च विराजमाना, भ्रमराजितेन कचनिचयेन नाभिपुटेन च लसमाना, जलदकाललक्ष्मीरिवोल्लसद्धारपयोधरा सज्जघनाभिरामा च, निद्रेव सकललोचनग्राहिणी चकासामास ।

§ ११) कदाचित्सौधाग्रे मृदुलतमहंसांसमृदुले
विराजत्पर्यङ्के विविधमणिकान्त्या कवचिते ।

तस्या. फलाभ्यामिव, हृदयतटमेव तटाक. सरोवरस्तस्य कमलमुकुलाभ्यामिव पद्मकोरकाभ्यामिव चूचुकमुद्रया स्तनाग्रमुद्रया मुद्रिताभ्या चिह्निताभ्या शृङ्गाररसेन पूर्णौ सभृतौ यौ शातकुम्भकुम्भौ सुवर्णकलशौ ताभ्यामिव वक्षोरुहाभ्या कुचाभ्या विराजमाना शोभमाना, शुभतरा लाक्षाजतुरसोऽलक्तकरागो यस्मिन् तेन पदेन चरणेन, शुभे तरले च अक्षिणी यस्मिन् तेन वदनेन मुखेन, अब्जस्य कमलस्य यो मद सौन्दर्यदर्पस्तस्य निर्मूलन निराकरण तस्य निदानेनादिकारणेन पदेन, अब्जस्य चन्द्रस्य यो मदस्तस्य निर्मूलन तस्य निदानेन वदनेन च विराजमाना शोभमाना, भ्रमरैरलिभिरजितोऽपराजितस्तेन भ्रमरादप्यतिकृष्णेनेति यावत् कचनिचयेन केशसमूहेन भ्रम इवावर्त इव राजितेन शोभितेन नाभिपुटेन च तुन्दिपुटेन च लसमाना शोभमाना, जलदकाललक्ष्मीरिव प्रावृट्श्रीरिव उल्लसन्ती प्रकटीभवन्ती धारा येषा उल्लसद्धारास्तथाभूता. पयोधरा मेघा यस्या सा जलदकाललक्ष्मी उल्लसन् शोभमानो हारो मणियष्टिर्ययोस्तावुल्लसद्धारौ तथाभूतौ पयोधरौ स्तनौ यस्यास्तथाभूता श्रीमती, सज्जा सजला ये घना मेघास्तैरभिरामा मनोहरा जलदकाललक्ष्मी , सत् प्रशस्त यत् जघन नितम्बं तेन अभिरामा मनोहारिणी श्रीमती, निद्रेव सकललोचनग्राहिणी निखिलनरनयनवशीकारिणी श्रीमती निखिलजननयनस्थायिनी निद्रा च, चकासामास शुशुभे ॥ श्लेषोपमालंकारो । § ११) कदाचिदिति—त्रिभुवनवशी लोकत्रयवशकारिणी, हेमलतिका काञ्चनवल्ली सुदृग् सुलोचना इय श्रीमती, कदाचित् जातुचित् सौधाग्रे प्रासादपृष्ठे मृदुलतमेनातिकोमलेन हसासेन तूलेन मृदुले कोमले, विविधाना नानाप्रकाराणा मणीना रत्नाना

लताके फलोंके समान जान पडते थे, अथवा हृदयतटरूपी तालाबमे उत्पन्न हुए कमलकी बोंड़ियोंके समान मालूम होते थे अथवा चूचुकरूपी मुहरसे लांछित शृंगाररससे भरे हुए सुवर्णमय कलशोंके समान प्रतिभासित होते थे । वह जिस चरण और मुखसे सुशोभित थी वे दोनों ही शुभतर लाक्ष और अब्जमदनिर्मूलन निदान थे (चरण अत्यन्त शुभ महावरसे युक्त और कमलके गर्वको दूर करनेके प्रमुख कारण थे तथा मुख, शुभ और चंचल नेत्रोंसे सहित तथा चन्द्रमाका मद दूर करनेका प्रमुख कारण था) वह जिस केशकलाप और नाभिपुटसे अलंकृत थी वे दोनों ही भ्रमराजित थे—केशकलाप भ्रमरोंसे अपराजित था अर्थात् भ्रमरोंसे भी कहीं अधिक काला था और नाभिपुट भ्रम-जलकी भँवरके समान सुशोभित था। वह श्रीमती वर्षाकालकी लक्ष्मीके समान थी क्योंकि जिस प्रकार वर्षाकालकी लक्ष्मी उल्लसद्धारपयोधरा—धारास्रावी मेघोंसे युक्त होती है उसी प्रकार वह श्रीमती भी उल्लसद्धारपयोधरा—हारसे सुशोभित स्तनोंसे युक्त थी और वर्षाकालकी लक्ष्मी जिस प्रकार सज्जघनाभिरामा—सजल मेघोंसे रमणीय होती है उसी प्रकार वह श्रीमती भी सज्जघनाभिरामा-समीचीन नितम्बमण्डलसे सुशोभित थी। वह श्रीमती निद्राके समान सुशोभित हो रही थी क्योंकि जिस प्रकार निद्रा सकललोचनग्राहिणी—सबके नेत्रोंपर असर करनेवाली होती है उसी प्रकार वह श्रीमती भी सकललोचनग्राहिणी—अपनी सुन्दरतासे सबके नेत्रोंको वश करनेवाली थी। § ११) कदाचिदिति—त्रिभुवनको वश करनेवाली सुवर्णलता स्वरूप यह सुलोचना श्रीमती किसी समय महलकी छतपर अत्यन्त कोमल रुईसे मृदुल तथा

मरालीवोन्मीलत्सितजलजषण्डे सुदृगियं
यथौ निद्रामुद्रां त्रिभुवनवशी हेमलतिका ॥७॥

§ १२) तदानीं तत्पुरमनोहरोद्यानमध्यासीनमतिमानमहिमानमुत्पन्नकेवलज्ञानं विशालतपसं यशोधरगुरुमर्चितुमधिनभःस्थलमुच्चलितानाममराणाममन्दसमर्दसंवर्धितकलकलेन निशाकरदृढालिङ्गितव्योमलक्ष्मीवक्षःस्थलत्रुटितविगलितमुक्तादाममणिपङ्क्त्येव, जिनराजदर्शनकुतूहलिन्या स्वर्गलक्ष्म्या प्रहितकटाक्षपरम्परयेव, सौरभ्यसंरुद्धदिशावकाशया पतन्त्या पुष्पवृष्ट्या समाकृष्टमदतुङ्गभृङ्गसङ्घझङ्कारेण, सुरदुन्दुभिनिःसरदमन्दनिध्वानेन च प्रबुद्धा सा तन्वङ्गी, चक्राङ्गीव पर्जन्यनिःस्वनेन सन्त्रस्ता, देवागमनिरीक्षणक्षणजनितपूर्वभवस्मृतिः, स्मृतिजातसुन्दराङ्गं ललिताङ्गं स्मृत्वा, हा रूपविचित्राङ्ग ! सुराङ्गनावदनाम्बुजभृङ्गकरणापाङ्ग ! देव

कान्त्या दीप्त्या कवचिते व्याप्ते विराजत्पर्यङ्के शोभमानशयने उन्मीलता विकसता सितजलजानां पुण्डरीकाणां षण्डे समूहे मरालीव हंसीव निद्रामुद्रां शयनावस्थां ययौ प्राप । रूपकोपमा । शिखरिणीच्छन्दः ॥७॥ § १२) तदानीमिति—तदानीं शयनकाले तत्पुरस्य पुण्डरीकिणीनगर्या यन्मनोहरोद्यानं मनोहरनामोपवनं तत् अध्यासीनम् अधिष्ठितम्, अतिमानो निरतिशयो महिमा यस्य तम्, उत्पन्नं प्रादुर्भूतं केवलज्ञानं यस्य तं, विशालतपसं प्रकृष्टतपस्विनं यशोधरगुरुं यशोधरमुनिराजम्, अर्चितुं पूजयितुम् अधिनभःस्थलमधिगगनतलम्, उच्चलितानामुद्गतानाम् अमराणां देवानाम्, अमन्दसमर्देन विपुलसंघट्टनेन संवर्धितो वृद्धिं प्राप्तो यः कलकलोऽव्यक्तशब्दस्तेन, निशाकरेण चन्द्रेण दृढं गाढं यथा स्यात्तथालिङ्गितं समाश्लिष्टं यद् व्योमलक्ष्म्या गगनश्रिया वक्षःस्थलं तस्मादादौ त्रुटिता पश्चाद् विगलिता ये मुक्तादाममणयो मौक्तिकयष्टिमणयस्तेषां पङ्क्त्येव सतत्येव, जिनराजदर्शनस्य कुतूहलं जिनराजदर्शनकुतूहलं तद् विद्यते यस्यास्तथाभूतया स्वर्गलक्ष्म्या त्रिदिवश्रिया प्रहिता प्रेरिता या कटाक्षाणां केकराणां परम्परा तयेव, सौरभ्येण सौगन्ध्येन संरुद्धो दिशानामवकाशो यया तया पतन्त्या वर्षन्त्या पुष्पवृष्ट्या कुसुमवृष्ट्या समाकृष्टो बलादानीतो यो मदतुङ्गभृङ्गानां मदोन्मत्तभ्रमराणां सङ्घः समूहस्तस्य झङ्कारेणाव्यक्तशब्दविशेषेण, सुरदुन्दुभिभ्यो देवानकेभ्यो निःसरन् निर्गच्छन् योऽमन्दनिध्वानो विशालशब्दस्तेन च प्रबुद्धा जागृता सा तन्वङ्गी कृशाङ्गी श्रीमती, पर्जन्यनिःस्वनेन मेघगर्जनेन सन्त्रस्ता समीता चक्राङ्गीव हंसीव, देवागमनिरीक्षणस्य सुरागमावलोकनस्य क्षणेऽवसरे जनिता समुत्पन्ना पूर्वभवस्य स्वयंप्रभापर्यायस्य स्मृतिर्यस्याः सा, स्मृतावाध्याने जातं समुत्पन्नं सुन्दराङ्गं कमनीयकलेवरं यस्य तं, ललिताङ्गं तन्नामदेवं

नाना प्रकारके मणियोंकी कान्तिसे व्याप्त सुन्दर पलंगपर खिलते हुए सफेद कमलोंके समूहपर हंसीके समान निद्रावस्थाको व्याप्त थी ॥७॥ § १२) तदानीमिति—उस समय उस पुण्डरीकिणी पुरीके मनोहर उद्यानमें स्थित, अतिशय महिमाशाली तथा विशाल तपस्वी यशोधर गुरुको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था अतः उनकी पूजाके लिए आकाशमें चलते हुए देवोंकी बहुत भारी धक्का-धूमीसे वृद्धिको प्राप्त कल-कल शब्दसे, चन्द्रमारूपी नायकके द्वारा जोरसे आलिंगित आकाशलक्ष्मीरूपी स्त्रीके वक्षःस्थलसे टूटकर गिरते हुए मुक्तामालाके मणियोंकी पंक्तिके समान अथवा जिनेन्द्रदेवके दर्शनके कुतूहलसे युक्त स्वर्गलक्ष्मीके द्वारा छोड़े हुए कटाक्षोंकी परम्पराके समान, तथा सुगन्धिसे दिशाओंके अवकाशको व्याप्त करनेवाली पुष्पवृष्टिके द्वारा खिंचे हुए मदोन्मत्त भ्रमर समूहकी झंकारसे और देवदुन्दुभियोंसे निकलते हुए विशाल शब्दसे वह कृशांगी श्रीमती उस तरह जाग गयी जिस तरह कि मेघोंकी गर्जनासे भयभीत हंसी जाग पड़ती है। देवोंके आगमनको देखते ही उसे पूर्वभवका स्मरण हो गया। स्मृतिमें जिसका सुन्दर शरीर उत्पन्न हो गया था ऐसे ललितांगदेवका स्मरण कर वह चिल्लाने लगी कि:हे सौन्दर्यसे आश्चर्यकारी शरीरके धारक, हे देवांगनाओंके मुखकमलोंपर

ललिताङ्ग ! क्वासि क्वासि, मनसि मे कीलित इव ते विलासो विलसतीति प्रलपन्ती श्रीमती मूर्च्छामुपाजगाम ।

§ १३) मलयजघनसारासारसेकैर्मृणाली-
मृदुलकुलनिधानैः पुष्पशय्याधिरोहैः ।
व्यजनपवनपोतैर्मन्दमाश्वास्य नीता
सुदृगियमथ संज्ञां सादराभिः सखीभि ॥८॥

§ १४) चकोराक्षी सेयं मनसि खचितं त सुरवरं
पुरः पश्चात्पार्श्वेऽप्युपरि किल पश्यन्त्यनुकलम् ।
सखीभिः साशङ्क सपदि परिपृष्टापि बहुधा
पिकीव ग्रीष्मर्तौ समतनुत मौनव्रतकलाम् ॥९॥

§ १५) तदनु पर्याकुलाभिरालीभिर्निवेदितोदन्तौ लक्ष्मीमतीवज्रदन्तौ मातापितरौ

पूर्वभवपतिमित्यर्थ. स्मृत्वा ध्यात्वा, हा रूपेण विचित्रं विस्मयकरमङ्ग शरीरं तत्सम्बुद्धौ, सुराङ्गनाना देवीना वदनाम्बुजेषु भृङ्गकरणं भ्रमरायमाणमपाङ्गं कटाक्षो यस्य तत्सम्बुद्धौ, देव ललिताङ्ग ! क्वासि क्वासि वीप्साया द्वित्वम्, ये मम मनसि चेतसि कीलित इवाङ्कित इव ते तव विलासो विभ्रमो विलसति शोभते इति प्रलपन्ती श्रीमती मूर्च्छां नि सज्ञताम् उपाजगाम प्राप । § १३) मलयजेति—अथानन्तरं सादराभि सखीभि सहचरीभि, इय सुदृग् श्रीमती मलयश्च घनसारश्चेति मलयजघनसारौ चन्दनकर्पूरौ तेषामासारेण सपातेन सेका सेचनानि तै, मृणालीना विसाना मृदुलकुलस्य कोमलसमूहस्य निधानानि उपधानानि तै, पुष्पशय्यासु कुसुमविष्टरेष्वधिरोहा अधिष्ठापनानि तै, व्यजनाना तालवृन्ताना पवनपोतैर्मन्दमरुद्भि, मन्दं शनैर्यथा स्यात्तथा, आश्वास्य सबोध्य सज्ञा चेतना नीता प्रापिता । मालिनीच्छन्द ॥८॥ § १४) चकोराक्षीति—मनसि चेतसि खचित निखात तं पूर्वोक्त सुरवर ललिताङ्ग पुरोऽग्रे पश्चात्पृष्ठे पार्श्वे समीपे उपर्यपि ऊर्ध्वमपि अनुकलं प्रतिसमय पश्यन्ती अवलोकयन्ती इय सा चकोराक्षी चकोरलोचना श्रीमती सखीभिरालीभि साशङ्कं यथा स्यात्तथा सपदि शीघ्रं बहुधा नानाप्रकारेण परिपृष्टापि अनुयुक्तापि ग्रीष्मर्तौ निदाघे पिकीव कोकिलेव मौनव्रतकला तूष्णीभाव समतनुत विस्तारयामास । उपमालंकार । शिखरिणीच्छन्द ॥९॥ § १५) तदन्विति—तदनु तदनन्तर पर्याकुलाभिर्व्यग्राभि, आलीभि सखीभि निवेदित कथित उदन्तो वृत्तान्तो ययोस्तौ, लक्ष्मीमति-वज्रदन्तौ तन्नामानौ मातापितरौ मातरपितरौ 'मातापितरौ पितरौ मातरपितरौ स्वसू जनयितारौ' इत्यमर,

---

भ्रमरोंके समान कटाक्षोंको चलानेवाले, ललितांगदेव ! कहाँ हो, कहाँ हो, तुम्हारा हाव-भाव मेरे मनमें कीलित हुएकी तरह सुशोभित हो रहा है। इस तरह चिल्लाती हुई वह श्रीमती मूर्च्छाको प्राप्त हो गयी। § १३) मलयजेति—तदनन्तर आदर सहित सखियोंने इस सुलोचनाको धीरे-धीरे समझाते हुए चन्दन और कपूरके धाराबद्ध सेचनसे, मृणालोंके कोमल समूहसे बनी हुई तकियोंसे, फूलोंकी शय्यापर लेटानेसे तथा पखोंकी मन्द-मन्द वायुसे चेतनाको प्राप्त कराया ॥८॥ § १४) चकोराक्षीति—मनमें खचित उस ललितागदेवको आगे, पीछे, पासमें तथा ऊपरकी ओर प्रत्येक समय देखनेवाली इस चकोरलोचना श्रीमतीसे उसकी सखियोंने आशंकासहित शीघ्र ही अनेक बार पूछा परन्तु उसने ग्रीष्मऋतुमें कोयलके समान मौनव्रतकी कलाको ही विस्तृत किया अर्थात् कुछ भी उत्तर नहीं दिया ॥९॥ § १५) तदन्विति—तदनन्तर घबडायी हुई सखियोंने जिन्हें सब समाचार सुनाया था ऐसे लक्ष्मीमती वज्रदन्त

§ १९) तदनु किमत्र प्रथम कर्तव्यमिति क्षण चिन्ताकुलो वसुधापतिर्धर्मार्थकार्ययोर्मध्ये धर्मकार्यमेव मुख्यमिति निश्चित्य, भगवतो यशोधरगुरोः पूजा विधातुं पृतनया सार्धमुपसृत्य जगद्गुरोः सुराञ्चितमपि असुराञ्चित, वनीपकजनमनीषितपूरकमपि अवनीपकजनमनीषितपूरक, खरांशुकान्तमपि नखरांशुकान्त पदयुगलं पूजयामास।

§ २०) तत्पादौ प्रणमन्नसौ नरपतिर्लब्धावधि[१] शुद्धधीः
स्वस्यैवाच्युतकल्पवासवपदं पुण्यार्जितं प्राग्भवे।

उपजातिवृत्तम् ॥११॥ § १९) तदन्विति—तदनु तदनन्तरम् अत्र द्वयो कार्ययोः प्रथम किं कर्तव्यं करणीयमिति क्षणमल्पकालपर्यन्त चिन्ताकुलो विचारव्यग्रो वसुधापतिर्वज्रदन्त. धर्मार्थकार्ययोर्मध्ये धर्मकार्यमेव मुख्यं प्रथम करणीयमिति निश्चित्य भगवतोऽष्टप्रातिहार्यरूपैश्वर्यसहितस्य यशोधरगुरो पूजा कैवल्यमहोत्सवसपर्यां विधातु कर्तुं पृतनया सेनया सार्धं साकमुपसृत्य जगद्गुरोर्यशोधरमहाराजस्य पदयुगलं चरणयुग पूजयामास। अथ पदयुग विशिनष्टि—सुराञ्चितमपि देवपूजितमपि असुराञ्चित देवपूजितं न भवतीति विरोध परिहारस्तु सुराञ्चितमपि असुरैर्धरणेन्द्रादिभिरञ्चित पूजित, वनीपकजनाना याचकजनाना मनोषितस्याभिलषितस्य पूरकमपि वनीपकजनमनीषितपूरक न भवतीति अवनीपकजनमनीषितपूरकमिति विरोध परिहारस्तु अवनी पृथिवी पान्ति रक्षन्तीति अवनीपा अवनीपा एव अवनीपका राजान ते च ते जनाश्च तेषा मनीषितस्य पूरक, भूमि. भूमी, अवनि, अवनी, श्रेणि, श्रेणी इत्यादय शब्दा इकारान्ता ईकारान्ताश्च द्विरूपकोशे प्रयुक्ताः। 'वनीपको याचनको मार्गणो याचकार्थिनौ' इत्यमर। खरास्तीक्ष्णा अंशवो रश्मयो यस्य खरांशु सूर्यस्तद्वत् कान्तमपि मनोहरमपि न खरांशुकान्तमिति नखरांशुकान्तमिति विरोध परिहारस्तु नखराणा नखानामंशुभि[१] किरणै कान्तमिति विरोधाभासोऽलकार। § २०) तत्पादाविति—शुद्धा धीर्यस्य विशुद्धबुद्धिक, उद्वेलो मर्यादातीत पुण्योदयो यस्य तथाभूत, असौ नरपति तत्पादौ यशोधरगुरुचरणौ प्रणमन् नमस्कुर्वन् लब्धावधि. प्राप्तावधिज्ञान सन् प्राग्भवे पूर्वपर्याये, स्वस्यैवात्मन एव पुण्यार्जितं सुकृतोत्पादितम् अच्युतकल्पे

हुए दो कार्य उपस्थित होनेपर राजाकी मनोवृत्ति दो भागोंमें विभक्त हो गयी ॥११॥ § १९) **तदन्विति**—तदनन्तर इन दोनों कार्योंमें पहले क्या करना चाहिए ? इस प्रकारकी चिन्तासे राजा क्षणभरके लिए व्याकुल हुए परन्तु थोडी ही देरमे उन्होंने निश्चय कर लिया कि धर्मकार्य और अर्थकार्यके मध्यमे धर्मकार्य ही मुख्य है। इस प्रकार निश्चय कर राजा वज्रदन्त भगवान् यशोधरगुरुकी पूजा करनेके लिए सेनाके साथ उनके पास पहुँचे और वहाँ जाकर उन्होंने यशोधरगुरुके उस चरणयुगलकी पूजा की जो सुराचित—देवोंसे पूजित होनेपर भी असुराचित—देवोंसे पूजित नहीं था (परिहारपक्षमे असुरों—धरणेन्द्र आदि देवोंसे पूजित था) वनीपकजनमनीषितपूरक—याचकजनोंकी अभिलाषाका पूरक होकर भी अवनीपकजनमनीषितपूरक—याचकजनोंकी अभिलाषाका पूरक नहीं था। (परिहारपक्षमे राजाओंकी अभिलाषाका पूरक था) तथा खरांशुकान्त—सूर्यके समान सुन्दर होकर भी नखरांशुकान्त—सूर्यके समान सुन्दर नहीं था (परिहारपक्षमे नाखूनोंकी कान्तिसे सुन्दर था)। § २०) **तत्पादाविति**—जिसकी बुद्धि विशुद्ध थी तथा जिसको असीम पुण्यका उदय था ऐसे राजा वज्रदन्तने यशोधरगुरुके चरणयुगलको प्रणाम करते ही अवधिज्ञान प्राप्त कर लिया उस अवधिज्ञानके द्वारा उसने यह सब वृत्तान्त अत्यन्त स्पष्टरूपसे जान लिया कि पूर्वभवमे मैंने

---

१. पाद–क०।

श्रीमत्या ललिताङ्गदेवविलसत्कान्तार्थमन्यच्च तद्-
वृत्तं सर्वमतिस्फुटं विदितवानुत्कृष्टपुण्योदयः ॥१२॥

§ २१) तदनु वन्दितभगवच्चरणो धरणीरमणो तदारामान्निर्गत्य स्वपुरमागत्य च, निर्वर्त्य चक्रपूजां तनूजां पण्डितावशे विधाय, षडङ्गबलेन बलेन दिग्जयाय प्रस्थितवति, पण्डितापि तमालमञ्जुला कृतमालमञ्जुला सालशोभिता रसालशोभिता, नीपविराजिता वनीपविराजिता शुकराजिरमणीया किंशुकराजिरमणीया, नरवृन्दानन्ददायिनी किंनरवृन्दानन्ददायिनी, नीरजातविलसिता वानीरजातविलसिता, सरस्थितिमनोरमा केसरस्थितिमनोरमा, पेयतरुमण्डिता[1] चाम्पेयतरुमण्डलमण्डिता, तालबन्धुरा हिन्तालबन्धुरा, रसोज्ज्वलेन सारसोज्ज्वलेन, सकलचित्त-

षोडशस्वर्गे प्राप्तवपदमिन्द्रपदं, श्रीमत्याः स्वपुत्र्याः ललिताङ्गदेवस्य विलसत्कान्तार्थं शोभमानवल्लभत्वम् अन्यच्च तद्वृत्तं तच्चरितं सर्वं निखिलम् अतिस्फुटं यथा स्यात्तथा विदितवान् ज्ञातवान् । शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः ॥१२॥ § २१) तदन्विति—तदनु तदनन्तरं वन्दितौ भगवच्चरणौ येन तथाभूतो धरणीरमणो नृपतिः तदारामात् यशोधरगुरुनिशोभितमनोहरोद्यानात् निर्गत्य स्वपुरं पुण्डरीकिणीपुरम् आगत्य च चक्रपूजां चक्ररत्नार्चां निर्वर्त्य रचयित्वा तनूजां पुत्रीं श्रीमतीमिति यावत् पण्डितावशे पण्डिताधात्र्यधीने विधाय कृत्वा, षडङ्गानां हस्त्यश्वादिषडङ्गानां बलं पराक्रमो यस्मिन् तथाभूतेन बलेन सैन्येन दिग्जयाय दिशां जेतुं प्रस्थितवति प्रयातवति सति, पण्डितापि तन्नामधात्र्यपि, तमालमञ्जुला तापिच्छवृक्षमनोहरा, कृतमालमञ्जुला चिरबिल्ववृक्षमनोहरा, सालशोभिता सर्जवृक्षविराजिता रसालशोभिताम् आम्रवृक्षशोभिता, नीपविराजिता कदम्बवृक्षशोभिता वनीपविराजिता वेतसतरुशोभिता, शुकराजिरमणीयां कीरपतत्रिपङ्क्तिमनोहरा कुत्सिताः शुकाः किंशुकास्तेषां राजिः पङ्क्तिस्तया रमणीया पक्षे किंशुकानां पलाशवृक्षाणां राजिः पङ्क्तिस्तया रमणीयाम्, नरवृन्दस्य श्रेष्ठनरसमूहस्यानन्दं हर्षं सददातीत्येवंशीला तां नरवृन्दानन्ददायिनीं, कुत्सिता नराः किन्नरास्तेषां वृन्दस्य समूहस्यानन्दं सददातीत्येवंशीला ताम्, पक्षे किन्नरा देवविशेषास्तेषां वृन्दस्यानन्दं सददातीत्येवंशीला, नीरजातैः कमलैर्विलसिता तां नीरजातविलसितां वानीरजातैर्वेतसतरुभिर्विलसिता, सरस्थितिमनोरमा तडागस्थितिरमणीया केसरस्थितिमनोरमा बकुलवृक्षस्थितिमनोहरा, पेयतरुमण्डिता नारिकेलवृक्षशोभिता चाम्पेयतरु-

पुण्योदयस्वरूप अच्युतस्वर्गमें इन्द्रपद प्राप्त किया था, और ललितांगदेव श्रीमतीका पति था। उसने श्रीमती और ललितांगदेव सम्बन्धी और भी सब वृत्तान्त स्पष्ट जान लिया था ॥१२॥ § २१) तदन्विति—तदनन्तर राजा वज्रदन्त, भगवान्‌के चरणोंकी वन्दना कर उस उद्यानसे बाहर निकले तथा अपने नगरमें आकर चक्ररत्नकी पूजा कर तथा पुत्री श्रीमतीको पण्डिताधायके आधीन कर छह अंगोंकी शक्तिसे युक्त सेनाके साथ उन्होंने दिग्विजयके लिए प्रस्थान किया। उनके प्रस्थान कर चुकनेपर पण्डिताधाय शोकाकुलित बुद्धिवाली श्रीमतीके साथ उस अशोकवाटिकामें पहुँची जो तमाल वृक्षोंसे मनोहर थी, चिरोलके वृक्षोंसे मनोहर थी, सागौनके वृक्षोंसे सुशोभित थी, आमोंके वृक्षोंसे सुशोभित थी, कदम्बके वृक्षोंसे विराजित थी, [illegible] वृक्षोंसे विराजित थी, शुकोंकी पक्तिसे सुशोभित थी, पलाशवृक्षोंकी पक्तिसे सुशोभित थी, नरसमूहको आनन्द देनेवाली थी, किन्नरसमूहको आनन्द देनेवाली थी, कमलोंसे सुशोभित थी, वेतस वृक्षोंसे सुशोभित थी, सर—तालावकी स्थितिसे मनोरम थी, केशर—वकुलके वृक्षोंकी स्थितिसे मनोरम थी, नारियलके वृक्षोंसे मण्डित थी, चम्पक वृक्षोंके समूहसे मण्डित थी, तालवृक्षोंसे सुन्दर थी, हिंताल वृक्षोंसे सुन्दर थी और

१. पेयतरुमण्डलमण्डिता—क० ।

हारिणा कलहंसचित्तहारिणा, पद्माकरेण विराजितामशोकवनिका शोकाक्रान्तमत्या श्रीमत्या सम समासाद्य, तत्र किल विचित्रचन्द्रकान्तशिलातले निषण्णा, पाणिपल्लवेन सस्नेह तदङ्गानि संस्पृशन्ती, दशनरुचिविसरविमलसलिलैस्तदङ्गसताप निर्वापयन्तीव मधुरतरमिम व्याहारं विस्तारयामास।

§ २२) अहं सुदति ! पण्डिता निखिलकार्यलाभे ध्रुव
नवोत्पलदलेक्षणे ! ननु तवास्मि मात्रा समा ।
ततो वद पतिंवरे ! सपदि मौनहेतुं स्फुट
किमेष मदनोद्यमः किमथवा ग्रहप्रक्रमः ॥१३॥

§ २३) इति पृष्टा विशालाक्षी निशाया नतपङ्कजा ।
पद्मिनीवानतमुखी ह्रिया वचनमादधे ॥१४॥

मण्डिता चम्पकवृक्षशोभिता, तालबन्धुरा ताडवृक्षमनोहरा हिन्तालवृक्षमनोहरा, रसोज्ज्वलेन जलोज्ज्वलेन सारसोज्ज्वलेन कमलोज्ज्वलेन, सकलचित्तहारिणा निखिलजनमनोहारिणा कलहसचित्तहारिणा कादम्बपक्षिमनोहारिणा पद्माकरेण तडागेन विराजिता शोभिता, अशोकवनिकाम् अशोकवाटिकाम्, शोकेनाक्रान्ता मतिर्बुद्धिर्यस्यास्तया श्रीमत्या सम साकं समासाद्य प्राप्य, तत्राशोकवनिकाया किलेति वाक्यालकारे विचित्रं विस्मयकरं यच्चन्द्रकान्तशिलातल तस्मिन् निषण्णा समुपविष्टा, पाणिपल्लवेन करकिसलयेन तस्या श्रीमत्या अङ्गानि तदङ्गानि सस्पृशन्ती, दशनाना दन्ताना रुचिविसराः कान्तिसमूहा एव विमलसलिलानि निर्मलनीराणि तैं, तदङ्गसताप श्रीमतीशरीरसताप निर्वापयन्तीव दूरीकुर्वन्तीव मधुरतरमतिमिष्टम् इम वक्ष्यमाण व्याहार वचन विस्तारयामास आततान ॥ § २२) अहमिति—शोभना दन्ता यस्या सुदती 'वयसि दन्तस्य दतृ' इति दन्तस्य दत्रादेशस्तत्सबुद्धौ हे सुदशने ! हे नवोत्पलदले इवेक्षणे यस्यास्तत्सबुद्धौ हे नवनीलोत्पलदललोचने ! ध्रुवं निश्चयेन, अह पण्डितानामधात्री निखिलकार्यलाभे समस्तकार्यसिद्धौ पण्डिता विदुषी अस्मि, अथ च ननु निश्चयेन तव श्रीमत्या मात्रा समा जननीतुल्या अस्मि । ततस्तस्मात् हे पतिंवरे कन्ये ! सपदि शीघ्र स्फुट स्पष्टतया मौनहेतुं मौनस्य कारण वद कथय एषोऽयं किं मदनोद्यम कामोद्योग , अथवा पक्षान्तरे ग्रहाणा पिशाचाना शनैश्चरादीना वा प्रक्रम आक्रमण वर्तत इति शेष । पृथ्वी छन्द. ॥१३॥ § २३) इतीति—इतीत्य पृष्टा विशाले अक्षिणी यस्या सा विशालाक्षी दीर्घलोचना श्रीमती निशाया रात्रौ नतपङ्कजा नतकमला पद्मिनीव कमलिनीव ह्रिया त्रपया आनतमुखी नतवदना सती वचनमादधे उवाच । उपमा ॥१४॥

रस—जलसे उज्ज्वल, कमलोसे उज्ज्वल, सबके चित्तको हरनेवाले तथा कलहंस पक्षियों से सुन्दर सरोवरसे सुशोभित थी। अशोकवाटिकामे जाकर वह आश्चर्य उत्पन्न करने वाले चन्द्रकान्तमणिके शिलातलपर बैठ गयी, तथा अपने करपल्लवोंसे स्नेहपूर्वक श्रीमती के अंगोका स्पर्श करती और दाँतोंकी किरणोंके समूहरूप जलके द्वारा उसके शरीरके सन्तापको दूर करती हुई की तरह निम्नलिखित अत्यन्त मधुर वचन विस्तृत करने लगी। § २२) अहमिति—हे सुन्दर दाँतोंवाली! मैं निश्चित ही समस्त कार्योंकी सिद्धिमें निपुण पण्डिता हूँ तथा हे नवीन नील कमलके समान नेत्रोंवाली! तुम्हारी माताके समान हूँ इसलिए हे कन्ये, शीघ्र ही साफ-साफ अपने मौनका कारण कहो, क्या यह कामका उद्यम है अथवा किसी ग्रहका आक्रमण है ? ॥१३॥ § २३) इतीति—इस प्रकार पूछी हुई दीर्घलोचना श्रीमती रात्रिमे जिसके कमल नीचेकी ओर झुक गये हैं ऐसी कमलिनीके

§ २४) कथा प्राग्जन्मकलिता स्मृता देवागमेक्षणात् ।
लज्जायवनिकान्तस्था पुरो नटति ते सखि ! ॥१५॥

§ २५) पुरा खलु धातकीखण्डमण्डनायमाननन्दनवनसुन्दरपूर्वमन्दरापरविदेहाश्रितगन्धिलविषयाभिराम पाटलिग्राममधिवसतो नागदत्तवणिजः सुदतीविख्यातया कान्तया विराजमानस्य नन्द-नन्दिमित्र-नन्दिषेण-वरसेन-जयसेननामानः सकलगुणसीमानः पञ्चपुत्राः पुत्रिके च मदनकान्ता श्रीकान्तेत्यासन्, तयोरहं कनीयसी सजाता निर्नामिका नाम ।

§ २६) कदाचिच्चारणचरितविदितरम्यवनविलसदम्बरतिलकधराधरे विराजमान पिहितास्रवमुनिमानम्य, केन कर्मणास्मिन्दुर्गतकुले जातेत्यप्राक्षम् । इति मया पृष्टोऽसौ मुनिरिदमाचष्ट ।

§ २७) अत्र किल विषये पलालपर्वतग्रामे पूर्वं देवलाख्याद् ग्रामकूटात्सुमतेरुदरे जाता

---

§ २४) कथेति—प्राग्जन्मकलिता पूर्वभवघटिता देवागमेक्षणात् सुरागमदर्शनात् स्मृता स्मृतिपथमायाता कथा लज्जैव अपैव यवनिका नेपथ्य तस्या अन्तस्था मध्यस्थिता सती हे सखि ! ते पुरोऽग्रे नटति नृत्यति ॥१५॥ § २५) पुरेति—पुरा खलु पूर्वकाले धातकीखण्डस्य द्वितीयद्वीपस्य मण्डनायमान आभरणोपमानो नन्दनवनसुन्दरो नन्दनवनमनोहरो य पूर्वमन्दर पूर्वमेरुस्तस्यापरविदेहाश्रित पश्चिमविदेहस्थितो यो गन्धिलविषयो गन्धिलदेशस्तस्मिन्नभिराम मनोहर, पाटलिग्राम तन्नामनगरम्, अधिवसतो निवसत सुदतीविख्यातया सुदतीतिनामप्रसिद्धया कान्तया वल्लभया विराजमानस्य नागदत्तवणिजो नागदत्तवैश्यस्य सकलगुणसीमानो निखिलगुणप्रकृष्टावधयो नन्दादय पञ्चपुत्रा मदनकान्ता श्रीकान्ता चेति द्वे पुत्र्यौ च आसन्, तयो पुत्र्योरहं कनीयसी लघुपुत्री संजाता, निर्नामिकेति मम प्रचलित नामासीत् । § २६) कदाचिदिति—कदाचित् जातुचित् चारणाना चारणर्द्धिसपन्नतपोधनाना चरितेन विदित प्रसिद्ध चारणचरितनामधेयमिति यावत्, चारणचरितविदित यद् रम्यवन मनोहरकानन तेन विलसन् शोभमानो योऽम्बरतिलकधराधर एतन्नामपर्वतस्तस्मिन् विराजमान शोभमान पिहितास्रवमुनिं तन्नाममुनिराजम्, आनम्य नमस्कृत्य, केन कर्मणा अहम् अस्मिन् दुर्गतकुले दरिद्रकुले जाता समुत्पन्ना, इतीत्थम् अप्राक्षम् पृष्टवती । इत्येव मया निर्नामिकया पृष्टोऽनुयुक्तोऽसौ मुनि पिहितास्रव , इद वक्ष्यमाणम् आचष्ट कथयामास । § २७) अत्रेति—अत्र किल विषये अस्मिन्नेव देशे पलालपर्वतग्रामे तन्नामनिगमे पूर्वं पूर्वजन्मनि देवलाख्यात् देवलनामधेयात् ग्रामकूटाद् ग्रामस्वामिन सुमते

समान लज्जासे नम्रमुखी हो कहने लगी ॥१४॥ § २४) कथेति—हे सखि ! देवागमके देखनेसे स्मरणमें आयी हुई पूर्वजन्म सम्बन्धी कथा लज्जारूपी परदाके भीतर स्थिर होकर मेरे सामने नृत्य कर रही है ॥१५॥ § २५) पुरेति—निश्चयसे पहले धातकीखण्ड द्वीपके आभरण स्वरूप तथा नन्दनवनसे सुन्दर जो पूर्वमेरु है उससे पश्चिम दिशामें स्थित विदेह क्षेत्रमें एक गन्धिल देश है उसमें सुशोभित पाटलिनामक ग्राममें एक नागदत्त नामका वैश्य रहता था। वह नागदत्त सुदतीनामसे प्रसिद्ध स्त्रीसे सुशोभित था। उसके नन्द, नन्दिमित्र, नन्दिषेण, वरसेन और जयसेन नामके समस्तगुणोंकी सीमास्वरूप पाँच पुत्र और मदनकान्ता तथा श्रीकान्ता नामकी दो पुत्रियाँ थीं। उन पुत्रियोंमें मैं छोटी पुत्री थी तथा मेरा निर्नामिका नाम चालू था। § २६) कदाचिदिति—किसी समय चारणचरित नामसे प्रसिद्ध वनसे सुशोभित अम्बरतिलक पर्वतपर विराजमान पिहितास्रव नामक मुनिराजको नमस्कार कर मैंने पूछा कि मैं किस कर्मसे इस दरिद्र कुलमें उत्पन्न हुई हूँ। इस तरह मेरे द्वारा पूछे जानेपर उक्त मुनिराज यह कहने लगे। § २७) अत्रेति—इसी देशके पलाल पर्वत ग्राममें पहले तुम देवल नामक ग्रामपतिकी सुमति नामक स्त्रीसे उत्पन्न हुई थी। धनश्री तुम्हारा नाम था। किसी समय

धनश्रीरिति विश्रुता भवती कदाचित्परमागमपठनकर्मठस्य तावकविहारभूमिमाश्रितस्य[1] समाधिगुप्तस्य मुनिवरस्य समीपे पूतिगन्धबन्धुरं कुक्कुरकलेवरं निधाय, तत्कर्मणा विमनायमान प्रतिपादितकलुषवचनं तमेन भयभरेण प्रणम्य क्षमा ग्राहयामास।

§ २८) तेनोपशमभावेन स्तोकपुण्य समाश्रिता।
जगत्या [2]दुर्गतेऽत्यन्तं जाता मानुषजन्मनि ॥१६॥

§ २९) ततः कल्याणि ! कल्याण तपोऽनशनमाचर।
जिनेन्द्रगुणसपत्ति श्रुतज्ञानमपि क्रमात् ॥१७॥

§ ३०) षोडशतीर्थंकरभावनाश्चतुस्त्रिंशदतिशयानष्टमहाप्रतिहार्याणि पञ्चकल्याणकान्युद्दिश्य त्रिषष्टिदिवसै क्रियमाणमुपोषितव्रतं जिनगुणसपत्तिरिति जोघुष्यते।

§ ३१) अष्टाविंशतिमतिज्ञानभेदानेकादशाङ्गान्यष्टाशीतिसूत्राणि प्रथमानुयोग परिकर्मद्वय

सुमतिनाम्न्या स्त्रिया उदरे जठरे जाता धनश्रीरिति धनश्रीनाम्ना विश्रुता प्रसिद्धा भवती, कदाचिज्जातुचित् परमागमस्य जिनेन्द्रागमस्य पठनेऽध्ययने कर्मठो निपुणस्तस्य, तावकी चासौ विहारभूमिश्चेति तावकविहारभूमिस्ता त्वदीयोपवनस्थलीम् आश्रितस्याधिष्ठितस्य समाधिगुप्तस्य तन्नामकस्य मुनिवरस्य तपोधनस्य समीपे पार्श्वे पूतिगन्धबन्धुरं दुर्गन्धयुत कुक्कुरकलेवर मृतकुक्कुरशरीर निधाय स्थापयित्वा, तत्कर्मणा तेन कार्येण विमनायमान कुप्यन्त प्रतिपादितानि कथितानि कलुषवचनानि येन त कथिताक्रोशवचनं तमेन साधु भयभरेण भीत्या प्रणम्य नमस्कृत्य क्षमा ग्राहयामास क्षमयाचकार। § २८) तेनेति—तेन कथितेन उपशमभावेन क्षमाभावेन स्तोकपुण्यमल्पसुकृत समाश्रिता प्राप्ता जगत्या पृथिव्याम् अत्यन्त दुर्गतेऽतिदरिद्रे मनुष्यजन्मनि नरपर्याये जाता समुत्पन्ना ॥१६॥ § २९) तत इति—तत हे कल्याणि! त्व जिनेन्द्रगुणसपत्ति तन्नामधेय श्रुतज्ञान तन्नामधेयमपि अनशनतप क्रमात् आचर कुरु। उभयोर्व्रतयोर्लक्षणं मूले विनिर्दिष्टम् ॥१७॥ § ३०) षोडशेति—अथ जिनेन्द्रगुणसपत्तिव्रतस्य स्वरूपमुच्यते—दर्शनविशुद्धयादी षोडशतीर्थकरभावना, दश जन्मभवा दशकेवलज्ञानभवाश्चतुर्दशदेवकृताश्चेति चतुस्त्रिंशदतिशयान्, अशोकवृक्षप्रभृतान्यष्ट प्रातिहार्याणि, गर्भादीनि पञ्चकल्याणानि चोद्दिश्य त्रिषष्टिदिवसै क्रियमाण विधीयमानमुपोषितव्रतमनशनतपो जिनगुणसपत्तिरिति नाम्ना जोघुष्यते कथ्यते। § ३१) अष्टाविंशतीति—अथ श्रुतज्ञानव्रत कथ्यते—अष्टाविंशति-

---

परमागमके पाठ करनेमें समर्थ समाधिगुप्त नामक मुनिराज तुम्हारे उपवनकी भूमिमें आकर विराजमान हो गये सो तुमने उनके समीप दुर्गन्धसे युक्त मृत कुत्तेका कलेवर डलवा दिया। उस कार्यसे मुनिराजको रोष उत्पन्न हो गया तथा वे कलुषताके वचन कहने लगे। अन्तमें भयसे तुमने प्रणाम कर उन्हें क्षमा ग्रहण करायी अर्थात् क्षमा माँगकर शान्त किया। § २८) तेनेति—उस क्षमाभावसे तुम अत्यन्त अल्प पुण्यको प्राप्त हुई जिसके फलस्वरूप पृथिवीपर अत्यन्त दरिद्र मनुष्य जन्ममें उत्पन्न हुई हो ॥१६॥ § २९) तत इति—इसलिए हे कल्याणि! अब तुम क्रमसे जिनेन्द्रगुणसम्पत्ति और श्रुतज्ञान नामके उपवास तपका आचरण करो ॥१७॥ § ३०) षोडशेति—दर्शन विशुद्धि आदि सोलह तीर्थंकर भावनाएँ, चौंतीस अतिशय, आठ महाप्रातिहार्य और गर्भादिक पाँच कल्याणकोंको लक्ष्यकर त्रेसठ दिनोंके द्वारा किया जानेवाला अनशनव्रत जिनेन्द्रगुणसम्पत्तिव्रत कहलाता है। § ३१) अष्टाविंशतीत्यादि—अट्ठाईस मतिज्ञानके भेद, ग्यारह अग, अठासीसूत्र, प्रथमानुयोग, दो परिकर्म,

---

१. समाश्रितस्य क०। २. दुर्गतात्यन्त क०।

चतुर्दशपूर्वाणि पञ्चचूलिका' षडवधिज्ञान मन.पर्ययज्ञानद्वयं केवलज्ञानमेकमुद्दिश्याष्टपञ्चाशदधिकदिनशतेन क्रियमाणमनशनव्रत श्रुतज्ञानमिति श्रूयते ।

§ ३२) इति मुनिवरोद्दिष्ट धर्मं विधाय यथोचित
सुदति ! ललिताङ्गस्य ख्यातामरस्य सती प्रिया ।
त्रिदशभुवने भूत्वा गत्वा मुनिं तमपूजय
दिवि च सुभगान्भोगान्भुक्त्वेयमद्य बभूव च ॥१८॥

§ ३३) पुरः पश्चादूर्ध्वं दिशि दिशि च दिव्याम्बरधर
स्फुरद्रत्नप्रोद्यन्मुकुटविलसन्मस्तकतलम् ।
तमेन पश्यामि प्रकृतिकमनीय सुरवर
मनोगेहेऽप्येष स्फुरति सततं कीलित इव ॥१९॥

§ ३४) तदलाभे पुनर्मम तनुलता तदीयमध्यसाम्यं परिशीलयितुमिव क्षामता न जहाति,

---

मतिज्ञानभेदान्, एकादशाङ्गानि, अष्टाशीतिसूत्राणि, प्रथमानुयोग, परिकर्मद्वय, चतुर्दशपूर्वाणि, पञ्चचूलिका, अनुगाम्यादिभेदयुक्त षडवधिज्ञानम्, ऋजुमतिविपुलमतिभेदयुक्त द्विप्रकारं मन पर्ययज्ञान, एक केवलज्ञान च उद्दिश्य अष्टपञ्चाशदुत्तरदिनशतेन क्रियमाणमनशनतप श्रुतज्ञानमिति श्रूयते । § ३२) इतीति— इतीत्थ मुनिवरेण पिहितास्रवेणोद्दिष्ट कथित धर्मं जिनेन्द्रगुणे सपत्ति-श्रुतज्ञानव्रताचरणरूप यथोचित यथाविधि विधाय कृत्वा हे सुदति ! हे शोभनदन्ते पण्डिते ! त्रिदशभुवने स्वर्गे ललिताङ्गस्य एतन्नामधेयस्य ख्यातामरस्य प्रसिद्धदेवस्य सती पतिव्रता प्रिया वल्लभा भूत्वा गत्वा त मुनि पिहितास्रवम् अपूजय पूजयामास दिवि स्वर्गे च सुभगान्मनोहरान् भोगान् भुक्त्वानुभूय अद्यास्मिन् भवे इय श्रीमती बभूव । हरिणीच्छन्द ॥१८॥ § ३३) पुर इति—दिव्याम्बरधर दिव्यवस्त्रधारक स्फुरद्रत्नैर्भास्वन्मणिभि प्रोद्यद् देदीप्यमान यन्मुकुट मौलिस्तेन विलसत् शोभमान मस्तकतल यस्य तथाभूत प्रकृत्या स्वभावेन कमनीयो मनोहरस्तथाभूत एन त सुरवर देवश्रेष्ठ ललिताङ्ग पुरोऽग्रे पश्चात्पृष्ठे ऊर्ध्वमुपरि, दिशि दिशि च प्रत्येकदिशासु च पश्यामि सस्कारवशादवलोकयामि । एष देवो मनोगेहेऽपि हृदयमन्दिरेऽपि कीलित इव निखात इव सतत स्फुरति विलसति । शिखरिणीच्छन्द । § ३४) तदलाभ इति—तस्य ललिताङ्गस्यालाभेऽप्राप्तौ पुनर्मम श्रीमत्या स्वयप्रभाचर्या. तनुलता शरीरवल्ली तदीयमध्यस्य ललिताङ्गावलग्नस्य साम्य सादृश्य परिशीलयितु-

---

चौदहपूर्व, पाँच चूलिकाएँ, छह प्रकारका अवधिज्ञान, दो प्रकारका मन पर्ययज्ञान और एक प्रकारका केवलज्ञान इन सबको लक्ष्यकर एक सौ अट्ठावन दिनोंके द्वारा किया जानेवाला अनशनव्रत श्रुतज्ञानव्रत प्रसिद्ध है ॥ § ३२) इतीति—हे सुदशने ! इस प्रकार पिहितास्रव मुनिराजके द्वारा कहे हुए धर्मका विधिपूर्वक पालन कर मैं स्वर्गमे ललितांग नामक प्रसिद्ध देवकी पतिव्रता भार्या हुई । मैंने जाकर उन पिहितास्रव मुनि की पूजा की और फिर स्वर्गमें मनोहर भोग भोगकर अब यह श्रीमती हुई हूँ ॥१८॥ § ३३) पुर इति—जो दिव्यवस्त्रोंको धारण कर रहा है, जिसका मस्तक चमकीले रत्नोंसे देदीप्यमान मुकुटसे सुशोभित हो रहा है तथा जो स्वभावसे ही सुन्दर है ऐसे उस ललितांगदेवको मैं आगे, पीछे, ऊपर तथा समस्त दिशाओंमे देख रही हूँ । कीलित हुएके समान यह हमारे मनमन्दिरमे भी निरन्तर सुशोभित हो रहा है ॥१९॥ § ३४) तदलाभ इति—उस ललितांगकी प्राप्ति न होनेपर मेरी शरीरलता उसके मध्यभागकी सदृशताका अभ्यास करने के लिए ही मानो कृशताको नहीं छोड़ रही है

---

१. ललिताङ्गेति–क० ।

सततमश्रुबिन्दवो मामकीनदुःखं द्रष्टुमक्षमतया तमन्वेष्टुमुद्यता इव निर्यान्ति।

§ ३५) नभःस्थलगतो नवानुलेपनगतश्च चन्द्रो न शीतलः। कण्ठगता क्रीडोद्यानगता च मल्लीमाला मा नानन्दयति। समीपसंजात सरोरुहवनसंजातश्च प्रमदालिमधुरालापः परं दुःखयति। कविताविदग्धसखीजनक्लृप्ता दासीजनक्लृप्ता च कुसुममृदुलशय्या न हर्षमाददाति। हृद्गता कराङ्गुलिगता च समेधमानरुगूर्मिका कङ्कणं विजृम्भयितुमर्हति। स्मृतिपथगतः समीपदेशवहमानश्च दक्षिणमरुद्वरो ममाङ्गानि शोषयति।

मिव समभ्यस्तुमिव क्षामता कृशता न जहाति न त्यजति। सतत सर्वदा अश्रुबिन्दवो नयनजलपृषता मामकीनदु ख मदीयविरहवेदना द्रष्टुमवलोकयितुम् अक्षमतयाऽसमर्थतया त ललिताङ्गम् अन्वेष्टु मार्गयितुम् उद्यतास्तत्परा इव निर्यान्ति निर्गच्छन्ति। उत्प्रेक्षालकार । § ३५) नभ स्थलेति—नभ स्थलगतो गगनतलस्थितो नवानुलेपनगतश्च नूतनविलेपनपतितश्च चन्द्र सुधाशु कर्पूरश्च न शीतलो न शिशिर 'चन्द्र सुधाशुकर्पूरस्वर्णकपिल्लवारिषु' इति विश्वलोचन. । कण्ठगता ग्रीवास्थिता क्रीडोद्यानगता केल्युपवनस्थिता च मल्लीमाला मालतीस्रक् मा नानन्दयति नो हर्षयति। समीपसजात पार्श्वसमुत्पन्न सरोरुहवनसजातश्च कमलवनोत्पन्नश्च प्रमदालिमधुरालाप प्रमदेन हर्षेणोपलक्षिता आलय सख्य प्रमदालयस्तासा मधुरालापो मिष्टव्याहार पक्षे प्रकृष्ट मदो दर्पो येषा तथाभूता येऽलयो भ्रमरास्तेषा मधुरालापो मधुरगुञ्जनरव. 'अलिर्भृङ्गे सुरायां स्त्री स्यादालि पिण्डले स्त्रियाम्। सख्या पङ्क्तावपि स्यात्ता' इति विश्वलोचन । परमत्यन्त दु खयति पीडयति। कविताया काव्यरचनाया विदग्धाश्चतुरा ये सखीजनास्तै क्लृप्ता रचिता, दासीजनै क्लृप्ता रचिता च कुसुममृदुलशय्या कुसुमवन्मृदुला शय्या काव्यरचनाप्रकारविशेष पक्षे कुसुमाना पुष्पाणा मृदुलशय्या कोमलशयन हर्ष प्रमोद न आददाति नो वितरति। हृद्गता हृदयस्थिता कराङ्गुलिगता च करकरशाखास्थिता च समेधमानरुगूर्मिका समेधमाना वर्धमाना या रुक् 'रोगस्तस्या ऊर्मिका परम्परा पक्षे समेधमाना वर्धमाना रुक् कान्तिर्यस्यास्तथाभूता ऊर्मिका आङ्गुलीयक कङ्कण जलकण विजृम्भयितु वर्धयितुमर्हति योग्यास्ति हृद्गता वर्धमानरोगसततिर्मारयित्वा जलाञ्जलि दातु तत्परा वर्तत इत्यर्थ, कराङ्गुलिगत वर्धमानकान्तियुक्तमाङ्गुलीयक मणिबन्धस्य दौर्बल्यात्करकटक भवितुमर्हतीत्यर्थ.। स्मृतिपथगतो ध्यानमार्गागत समीपदेशवहमानश्च समीपे वहश्च दक्षिणमरुद्वरो दक्षिणश्चासौ मरुद्वरश्चेति दक्षिणमरुद्वर. सरलप्रकृतिको ललिताङ्गो देव पक्षे दक्षिणस्य मरुद्वरो दक्षिणमरुद्वरो दक्षिणदिगायात पवनोत्तमो मलयसमीर इति यावत्। मम श्रीमत्या अङ्गानि शोषयति। 'मरुत्पुसि सुरे वाते' इति

और आँसुओंकी बूँदें मेरा दुःख देखनेके लिए असमर्थ होनेके कारण उसे खोजनेके लिए ही मानो निरन्तर निकलती रहती हैं। § ३५) नभःस्थलेति—आकाशतलमें स्थित और नवीन विलेपनमें पड़ा हुआ चन्द्र (चन्द्रमा और कपूर) शीतल नहीं है। कण्ठमें पहिनी हुई तथा क्रीडाके उपवनमें स्थित मालतीकी माला मुझे आनन्दित नहीं करती। समीपमें उत्पन्न और कमलवनमें समुद्भूत प्रमदालिमधुरालाप (हर्षित सखियोंका मधुरभाषण और गर्वीले भ्रमरोंका मधुर गुंजार) अत्यन्त दु खी करता है। कवितामें निपुण सखीजनोंके द्वारा रचित तथा दासीजनोंके द्वारा निर्मित कुसुममृदुलशय्या (फूलोंके समान कोमल रचना और फूलोंकी कोमल सेज) हर्ष प्रदान नहीं करती। हृदयमें स्थित तथा हाथकी अंगुलीमें स्थित समेधमान रुगूर्मिका (बढ़ते हुए रोगोंकी परम्परा और बढ़ती हुई कान्तिसे युक्त अंगूठी) कंकण—जलकण बढानेके योग्य है अर्थात् मरण कराकर जलांजलि दिलानेके योग्य है—पक्षमें कलाई इतनी कृश हो गयी है कि हाथकी अंगूठी कंकण—हाथका कटक बन जानेके योग्य है। स्मृतिपथमें आया हुआ और समीप देशमें बहता हुआ दक्षिण मरुद्वर (सरल प्रकृतिसे युक्त ललितांग नामका उत्तमदेव और दक्षिण दिशासे आया हुआ मलयसमीर) मेरे अंगोंको सुखा रहा है।

§ ३६) शरान्वर्षति मारोऽय क्षणकालश्च वर्षति ।
श्यामाद्य तत्र रक्तापि धवला च भवाम्यहम् ॥२०॥

§ ३७) इत्युक्त्वा पुनरप्युवाच मधुरं सा श्रीमती ता सखी
सत्यां त्वय्यरविन्दनेत्रि ! मम किं दुःखस्य लेशो भवेत् ।
ज्योत्स्नाया कुमुदावलेरिव सखि ! त्वं पण्डिता मामके
कार्ये सत्यमरालकेशि ! सुगुणे ! मत्कार्यसिद्धि कुरु ॥२१॥

§ ३८) इद च मया विलिखित पूर्वभवचरितपट्टक महाकविकाव्यसगतव्यङ्ग्यवैभवमिव गूढागूढ, गणिकाजनवचनमिव धूर्तजनमन समोहकारणमादाय, अत्रत्यगूढार्थसकटे पतिब्रुवान् धूर्ततरान्पराकृत्य, कविमतिरिव सुश्लिष्टार्थं, लक्ष्मीरिवोद्योगशालिनं पुरुष, त सुरोत्तम मार्गमाणा प्रस्तुतकार्यं साधयेति ।

विश्वलोचन । श्लेषालकार । § ३६) शरानीति—अय मारो मदन 'मदनो मन्मथो मार' प्रद्युम्नो मीनकेतन' इत्यमर । शरान् वाणान् वर्षति, क्षणकालश्च वर्षति वर्षमिवाचरति, तद्विरहेऽल्पोऽपि समयो दीर्घकालायते । अद्येदानीम्, श्यामा श्यामवर्णा अह श्रीमती रक्तापि रक्तवर्णापि धवला शुक्लवर्णा भवामि, या श्यामा रक्ता च सा धवला कथ भवेदिति विरोध' परिहारस्तु श्यामा युवतिरह तत्र ललिताङ्गे रक्तापि प्राप्तानुरागापि तदीयविरहात्पाण्डुवर्णा भवामीति । श्लेषो विरोधाभासश्च ॥२०॥ § ३७) इत्युक्त्वेति—इतीत्थम् उक्त्वा सा श्रीमती ता सखी पण्डिता प्रति पुनरपि भूयोऽपि मधुर यथा स्यात्तथा उवाच जगाद । हे अरविन्दनेत्रि ! हे कमललोचने ! ज्योत्स्नाया कौमुद्या सत्या कुमुदावलेरिव कैरवपङ्क्तेरिव, त्वयि सत्या विद्यमानाया किं मम श्रीमत्या दु खस्य लेशो भवेत् । अपि तु न भवेत् । हे सखि ! त्व मामके कार्ये सत्य पण्डिता कुशला असि । हे अरालकेशि हे कुटिलकेशि ! 'स्यादराल पुमान्सर्जे मत्तेभे कुटिलेऽन्यवत्' इति विश्वलोचन । हे सुगुणे हे शोभनगुणयुक्ते ! मम कार्यस्य सिद्धिस्ता मत्कार्यसिद्धि कुरु । शार्दूलविक्रीडित छन्द ॥२१॥ § ३८) इदमिति—मया श्रीमत्या विलिखित रचित, महाकवीना काव्येषु सगतं स्थित यद् व्यङ्ग्यवैभव ध्वनिवैभव तदिव गूढागूढ यथा व्यङ्ग्यवैभव क्वचिद् गूढ प्रज्ञजनवेद्य क्वचिदगूढ सर्वजनवेद्य भवति तथेदमपि गूढागूढ, गणिकाजनवचनमिव रूपाजीवावचनमिव धूर्तजनाना मनस समोहस्य कारण तथाभूत पूर्वभवचरितपट्टक पूर्वभवोदन्तप्रख्यापकालेख्यपट्टकम् आदाय गृहीत्वा अत्रभवोऽत्रत्य स चासौ गूढार्थसकटश्च तस्मिन् अपतित्वेऽप्यात्मान पतिं ब्रुवन्तीति पतिब्रुवास्तान् धूर्ततरान् अतिशयधूर्तान् पराकृत्य तिरस्कृत्य सुश्लिष्टार्थं सगतमर्थं कविमतिरिव,

---

§ ३६) शरानिति—यह काम बाणोंकी वर्षा कर रहा है और क्षणकाल वर्षके समान जान पड़ता है । मैं श्यामा—श्यामवर्ण हूँ, रक्तापि—लालवर्ण भी हूँ परन्तु आज धवला—सफेद हो रही हूँ । (परिहार पक्षमें श्यामा—नवयौवनसे युक्त मैं उस ललितागदेवमे रक्ता—अनुरागसे सहित हूँ फिर भी उसके विरहके कारण आज सफेद-सफेद हो रही हूँ) ॥२०॥ § ३७) इत्युक्तेति—यह कहकर श्रीमतीने बडी मधुरताके साथ उस पण्डिता सखीसे यह और कहा कि हे कमलनेत्रि ! चाँदनीके रहते हुए कुमुदावलीके समान तुम्हारे रहते हुए मुझे क्या दुःखका लेश भी हो सकता है ? हे सखि ! तुम मेरे कार्यमें सचमुच ही पण्डिता-निपुण हो । हे कुटिलकेशि ! हे सुगुणे ! मेरे कार्यकी सिद्धि करो ॥२१॥ § ३८) इदमिति—मैंने यह पूर्वभवका चरितपट्ट लिखा है, यह महाकवियोंके काव्योंमे स्थित व्यग्यके वैभवके समान कहीं गूढ और कहीं अगूढ है, तथा वेश्याओंके वचनके समान धूर्त मनुष्योंके मनमें मोह उत्पन्न करनेवाला है । इसे लेकर तुम जाओ और अपनेआपको झूठ-मूठ ही पति कहनेवाले अत्यन्त धूर्त मनुष्योंको इसके गूढ अर्थके सकटमें परास्त कर जिस प्रकार कविकी बुद्धि सुस-

§ ३९) पण्डितापि तरलाक्षि तवेष्टं क्षिप्रमेव कलये तनुगात्रि ।
इत्युदीर्य सहसा निरगच्छत्पट्टकाञ्चितकरा दरकण्ठी ॥२२॥

§ ४०) गत्वा महापूतजिनालयं सा कृत्वा जिनेन्द्राङ्घ्रियुगप्रणामम् ।
तस्थौ ततः पट्टकशालिकाया परीक्षणार्थं लिखितं प्रसार्य ॥२३॥

§ ४१) यत्र च जिनभवने संध्यारागारुणा इव पद्मरागकुट्टिमेषु तरङ्गितनलिनपत्रसङ्गहरिता इव मरकतमणिमयभूमिषु, गगनतलप्रसृता इवेन्द्रनीलभित्तिषु, तिमिरपटलविघटनोद्यता इव कृष्णागुरुधूपधूमोद्गारिवातायनेषु प्रभातचन्द्रिकामध्यपतिता इव स्फटिकमणिभित्तिप्रभासु, गगनसिन्धुतरङ्गिण इव सितपताकांशुकेषु, राहुमुखकुहरप्रविष्टा इव जम्भारिमणिजृम्भितगवाक्षेषु,

---

उद्योगशालिन पुरुष लक्ष्मीरिव, त पूर्वोक्त सुरोत्तम ललिताङ्ग मार्गमाणा अन्वेषयन्ती प्रस्तुतकार्य प्रकृतकार्यं साधय, इति ता सखी प्रति पुनरप्युवाचेति सबन्ध । § ३९) पण्डितापीति—दरकण्ठी कम्बुकण्ठी पण्डितापि हे तरलाक्षि हे चपललोचने ! हे तनुगात्रि हे कृशकलेवरे ! तव इष्टं ललिताङ्गदेवान्वेषणात्मकं क्षिप्रमेव शीघ्रमेव कलये सपादयामीत्युदीर्य निगद्य पट्टकाञ्चितकरा चित्रफलकशोभितहस्ता सती सहसा झटिति निरगच्छत् बहिर्जगाम । स्वागतावृत्तम् ॥२२॥ § ४०) गत्वेति—सा पण्डिता महापूतजिनालयं तन्नामजिनमन्दिर गत्वा जिनेन्द्राङ्घ्रियुगप्रणाम जिनचरणयुगलप्रणाम कृत्वा विधाय ततस्तदनन्तर पट्टकशालिकाया चित्रशालाया लिखितं चरितपट्टक परीक्षणार्थं प्रसार्य विस्तार्य तस्थौ । उपजातिवृत्तम् ॥२३॥ § ४१) यत्र चेति—यत्र च महापूतख्याते जिनभवने जिनमन्दिरे, रविगभस्तय. सूर्यरश्मय पद्मरागाणा लोहितमणीना कुट्टिमेषु तलेषु सध्यारागेण सध्याकाललालिम्नारुणा रक्तास्तथाभूता इव, मरकतमणिमयभूमिषु हरितमणिनिर्मितावनिषु तरङ्गितनलिनपत्राणा स्पन्दितकमलपत्राणा सगेन हरिता हरिद्वर्णा इव, ते इन्द्रनीलभित्तिषु नीलमणिमयकुडयेषु गगनतलप्रसृता इव नभस्तलप्रसृता इव, कृष्णागुरुधूपस्य धूमोद्गारीणि यानि वातायनानि गवाक्षास्तेषु तिमिरपटलस्यान्धकारसमूहस्य विघटने दूरीकरणे उद्यता इव तत्परा इव, स्फटिकमणिभित्तिप्रभासु स्फटिकोपलकुडयकान्तिषु प्रभातचन्द्रिकाया प्रातर्ज्योत्स्नाया मध्ये पतिता इव, सितपताकांशुकेषु धवलवैजयन्तीवस्त्रेषु गगनसिन्धोर्नभ - सागरस्य तरङ्गा कल्लोला गगनसिन्धुतरङ्गास्ते सन्ति येषु तथाभूता इव जम्भारिमणिभिरिन्द्रनीलमणिभिर्जृम्भिता वृद्धिप्राप्ता ये गवाक्षा वातायनानि तेषु राहुमुखकुहरे विधुंतुदवदनविवरे प्रविष्टा इव, सूर्यकान्तोपलेषु

गत अर्थको और लक्ष्मी उद्योगशाली पुरुषको खोजती है उसी प्रकार उस श्रेष्ठ देवको खोजती हुई तुम प्रकृत कार्यको सिद्ध करो । § ३९) पण्डितापीति—शंखके समान कण्ठवाली पण्डिता भी हे चपललोचने ! हे तन्वगि ! मैं शीघ्र ही तुम्हारे मनोरथको सम्पन्न करती हूँ यह कहकर तथा चित्रपट हाथमें लेकर बाहर चली गयी ॥२२॥ § ४०) गत्वेति—वह पण्डिता महापूत जिनालयमें जाकर तथा जिनेन्द्र भगवान्‌के चरण युगलको प्रणाम कर उसके बाद वहाँकी चित्रशालामें परीक्षाके लिए अपना चित्रपट फैलाकर बैठ गयी ॥२३॥ § ४१) यत्र चेति—जिस महापूत जिनालयमें पद्मराग मणियोंके फर्शोंपर पडती हुई सूर्यकी किरणें ऐसी सुशोभित होती हैं मानो सन्ध्याकी लालिमासे लाल हो गयी हों, मरकतमणियोंकी भूमिपर ऐसी जान पडती हैं मानो हिलते हुए कमलपत्रोंके संगसे हरितवर्ण हो गयी हों, इन्द्रनीलकी दीवालोंपर ऐसी प्रतिभासित होती हैं मानो गगनतलमें फैली हों, कालागुरुको धूपके धुएँको प्रकट करनेवाले झरोखोंमें ऐसी सुशोभित होती हैं मानो अन्धकारके पटलको नष्ट करनेके लिए उद्यत हों, स्फटिक मणिकी दीवालोंकी प्रभापर ऐसी जान पडती हैं मानो प्रातःकालकी चाँदनीके बीचमें पड़ी हों, सफेद पताकाओंके वस्त्रोंपर ऐसी लगती हैं मानो आकाशरूपी समुद्रकी लहरोंसे युक्त हों, इन्द्रनीलमणिसे बढ़े हुए झरोखोंपर ऐसी सुशोभित होती हैं मानो राहुके मुखरूपी

पल्लविता इव सूर्यकान्तोपलेषु, निगीर्णा इव वन्दारुभव्यवृन्दारकसदोहमणिमुकुटमणिप्रभासु विराजन्ते रविगभस्तयः।

§ ४२) तत्रागतान्कुशलकोमलसूक्ष्मबुद्धीन्
सर्वान् किमेतदिति चित्रमवेक्षमाणान्।
सा पण्डिता समुचितैर्वचनप्रचारै-
र्गूढस्थलेषु कुशलान्कलयाबभूव ॥२४॥

§ ४३) तदनु कृतदिग्जयश्चक्रधरो नरविद्याधरसुरकिरीटमणिकोणशाणकषणनिर्मलीकृतचरणनखमणि, कृतकृत्योऽपि जिननन्दिनीविवाहसविधानचिन्तादन्तुरितस्वान्त, केतुजालविमलपटविगलितातपा निजराजधानी प्रविवेश।

§ ४४) चक्री तत समाहूय चिरमाधियुता सुताम्।
स्मिताशुसलिलै. सिञ्चन्निव व्याहारमादधे ॥२५॥

सूर्यकान्तमणिषु पल्लविता इव पल्लवा सजाता येषु तथाभूता इव, वन्दारूणा वन्दनशीलाना भव्यवृन्दारकाणा श्रेष्ठभव्याना ये सदोहा समूहास्तेषा मणिमुकुटाना रत्नमौलीना मणिप्रभासु रत्नदीप्तिषु निगीर्णा इव निलीना इव विराजन्ते शोभन्ते। उत्प्रेक्षालकार। § ४२) तत्रेति—तत्र महापूतजिनालयचित्रशालायाम् आगतान् कुशला कोमला सूक्ष्मा च बुद्धिर्येषा तथाभूतान्, एतत् किम्? इति चित्र श्रीमतीनिर्मितचित्रपट्टकम् अवेक्षमाणान् पश्यत सर्वान् जनान् सा पण्डिता समुचितैर्योग्यै वचनप्रचारै वाग्विस्तारै गूढस्थलेषु गुप्तस्थलेषु कुशलान् विचारनिमग्नान् कलयाबभूव कारयामास। वसन्ततिलकावृत्तम् ॥२४॥ § ४३) तदन्विति—तदनु तदनन्तर कृतो दिशा जयो येन कृतदिग्जय, चक्रधरो वज्रदन्त, नरविद्याधरसुराणा किरीटेषु मुकुटेषु ये मणयस्तेषा कोणा एव शाणा निकषोपलास्तेषु कषणेन निर्मलीकृताश्चरणनखमणयो यस्य तथाभूत, कृतकृत्योऽपि कृतार्थोऽपि निजनन्दिन्या स्वसुताया विवाहसविधानस्य पाणिग्रहणसस्कारकरणस्य या चिन्ता तया दन्तुरित व्याप्त स्वान्त चित्त यस्य तथाभूत सन् केतुजालस्य पताकासमूहस्य विमलपटै स्वच्छवस्त्रैर्विगलितो दूरीभूत आतपो यस्या ता निजराजधानी प्रविवेश। § ४४) चक्रीति—तत प्रवेशानन्तर चक्री वज्रदन्त चिरम् दीर्घकालेन आधियुता मानसव्यथासहिता सुता श्रीमतीम् आहूय आकार्य स्मितस्य मन्दहसितस्याशवो रश्मय एव सलिलानि जलानि

बिलमे घुस गयी हों, सूर्यकान्तमणियोंपर ऐसी प्रतिभासित होती हैं मानो पल्लवोंसे युक्त हों, और नमस्कार करनेवाले श्रेष्ठ भव्यसमूहके मणिनिर्मित मुकुटोंके मणियोंकी प्रभापर ऐसी जान पडती हैं मानो उनमे निलीन ही हो गयी हों। § ४२) तत्रेति—वहाँ आये हुए, कुशल कोमल और सूक्ष्मबुद्धिके धारक तथा 'यह क्या है ?' इस तरह चित्रको देखनेवाले सब लोगोंको उस पण्डिताने योग्य वचनोंके प्रचारसे गूढ स्थलोंमे विचार निमग्न कर दिया था ॥२४॥ § ४३) तदन्विति—तदनन्तर जो दिग्विजय कर चुके थे, मनुष्य विद्याधर और देवोंके मुकुटोंमें लगे हुए मणियोंके अग्रभागरूपी मसाणपर घिसनेसे जिसके चरणोंके नखरूपी मणि निर्मल हो गये हैं, तथा कृतकृत्य होनेपर भी अपनी पुत्रीके विवाह-सम्बन्धी चिन्तासे जिनका चित्त व्याप्त हो रहा था ऐसे चक्रवर्ती वज्रदन्तने पताकासमूहके निर्मल वस्त्रोसे जिसका घाम दूर हो गया था ऐसी अपनी राजधानी पुण्डरीकिणी नगरीमे प्रवेश किया। § ४४) चक्रीति—तत्पश्चात् चक्रवर्ती वज्रदन्तने चिरकालसे मानसिक व्यथासे युक्त पुत्रीको बुलाकर मन्दहास्यकी किरणरूपी जलसे उसे सींचते हुए की तरह निम्नलिखित वचन कहे

---

१ मकुट क०।

§ ४५) शोकं जहीहि शतपत्रविशालनेत्रे
स्नाहि प्रसाधनविधिं कुरु कोमलाङ्गि ।
मौन च सत्यज तवेष्टसमागमोऽद्य
क्षिप्रं भविष्यति कुमारि ! तमालकेशि ॥२६॥

§ ४६) यशोधरमहायोगिकैवल्यकलितावधिः ।
सर्वं जानाति तेऽस्माक त्वत्कान्तस्यापि वृत्तकम् ॥२७॥

§ ४७) शृणु वक्ष्यामि लोलाक्षि त्रयाणा वृत्तमुत्तमम् ।
पृथक्पयोजवदने भवान्तरविभावितम् ॥२८॥

§ ४८) पुरा खल्वित पञ्चमे भवे विभवजितसुरनगर्यामिहैव पुण्डरीकिणीनगर्याम्, अर्धचक्रिणस्तनूजश्चन्द्रकीर्तिनामधेयोऽह क्रमागतां राज्यलक्ष्मीमासाद्य, जयकीर्तिनाम्ना वयस्येन चिर रममाणो, गृहमेधिगृहीताणुव्रतः कालान्ते चन्द्रसेनाख्यं गुरुमाश्रित्य त्यक्ताहारशरीरः सन्यासविधि-

---

तैं सिञ्चन्निव व्याहार वक्ष्यमाणवचनम् आदधे धृतवान् उवाचेत्यर्थ । § ४५) शोकमिति—शतपत्रवत् कमलवद् विशाले नेत्रे यस्यास्तत्सबुद्धौ हे शतपत्रविशालनेत्रे ! शोक मनोव्यथा जहीहि त्यज । हे कोमलाङ्गि हे मृदुलशरीरे ! स्नाहि स्नानं कुरु प्रसाधनस्यालकरणस्य विधिं प्रसाधनविधिं कुरु, मौन तूष्णीभावं सत्यज, हे कुमारि ! हे तमालकेशि श्यामलशिरोरुहे ! अद्य क्षिप्रं शीघ्र तव इष्टेन समागम इष्टसमागम इष्टप्राप्ति भविष्यति । § ४६) यशोधरेति—यशोधरमहायोगिनो यशोधरभगवत कैवल्ये केवलज्ञानमहोत्सवे कलित प्राप्तोऽवधिरवधिज्ञान यस्य तथाभूतोऽह ते तव, अस्माक स्वस्य त्वत्कान्तस्यापि त्वद्वल्लभस्य ललिताङ्गामरस्यापि सर्वं वृत्तक निखिल वृत्तान्त जानामि वेद्मि ॥२७॥ § ४७) शृणु-इति—हे लोलाक्षि हे चपललोचने ! हे पयोजवदने हे कमलमुखि ! अह भवान्तरविभाषित जन्मान्तरानुभूत त्रयाणा तव स्वस्य ललिताङ्गस्य च उत्तम श्रेष्ठ वृत्तमुदन्तं पृथक् असकीर्णं यथा स्यात्तथा वक्ष्यामि कथयिष्यामि, शृणु निशामय ॥२८॥ § ४८) पुरेति—पुरा पूर्वकाले खलु निश्चयेन इतो वर्तमानभवात् पञ्चमे भवे विभवेन जिता पराभूता सुरनगरी स्वर्गपुरी यया तथाभूतायाम्, इहैव अस्यामेव पुण्डरीकिणीनगर्याम् अर्धचक्रिणो नारायणस्य तनूज पुत्र चन्द्रकीर्तिनामधेय अह क्रमागता वशपरम्पराप्राप्ता राज्यलक्ष्मी राज्यश्रियम् आसाद्य प्राप्य जयकीर्तिनाम्ना तन्नामधेयेन वयस्येन सख्या चिरं दीर्घकालपर्यन्त रममाण. क्रीडन् गृहमेधिना गृहस्थाना गृहीतानि प्राप्तानि अणुव्रतानि येन तथाभूतोऽह कालान्ते जीवितान्ते चन्द्रसेनाख्य तन्नामधेय गुरु तपोधनम् आश्रित्य प्राप्य त्यक्ता-

---

॥२५॥ § ४५) शोकमिति—हे कमलके समान विशालनेत्रोंवाली पुत्रि ! शोक छोडो, हे कोमलांगि ! स्नान करो और अलंकार धारण करो, मौन छोड़ो, हे कुमारि ! हे तमालकेशि ! आज शीघ्र ही तुम्हारा इष्टके साथ समागम होगा ॥२६॥ § ४६) यशोधरेति—यशोधर महाराजके केवलज्ञान महोत्सवके समय जिसे अवधिज्ञान हुआ है ऐसा मैं तुम्हारे पति ललितागदेवका सब वृत्तान्त जानता हूँ ॥२७॥ § ४७) शृण्विति—हे चपललोचने हे कमलवदने ! मैं भवान्तरमे अनुभूत तीनोंका उत्तम वृत्तान्त पृथक्-पृथक् कहता हूँ, सुनो ॥२८॥ § ४८) पुरेति—पूर्वकालमे इस भवसे पाँचवें भवमे मैं, वैभवसे देवनगरीके वैभवको जीतनेवाली इसी पुण्डरीकिणी नगरीमे अर्धचक्रवर्तीका चन्द्रकीर्ति नामका पुत्र था। क्रमसे प्राप्त राज्यलक्ष्मीको पाकर मै जयकीर्ति मित्रके साथ चिरकाल तक क्रीडा करता रहा। अन्तमे गृहस्थके अणुव्रत स्वीकृत कर चन्द्रसेन नामक मुनिराजका आश्रय पा मैंने आहार और

मालम्ब्य, माहेन्द्रकल्पे सप्तसागरायु स्थितिः सामानिकः सुरोऽस्मत्समानर्द्धिविभवेन जयकीर्तिना सह समभूवम् ।

§ ४९) तत कालान्ते प्रच्युतौ पुष्करद्वीपदीपायमानपूर्वमन्दरपौरस्त्यविदेहविशोभितमङ्गलावतीविषयसगतरत्नसचयनगरमधिवसत' श्रीधरमहीपालस्य मनोहरा मनोरमा इति विख्यातयोर्देव्योस्तनयौ नाम्ना श्रीवर्माविभीषणौ बलकेशवौ जातौ परिणताविव परस्परसौहार्दरसौ विलसमानौ, राज्यलक्ष्मी मयि ज्येष्ठे निक्षिप्य, तपसे प्रयाते ताते सुधर्मगुरुप्रतिपादितदीक्षे निरतिशयतपोदक्षे सिद्धपदमधितिष्ठमाने, मय्यतिमात्रवात्सल्येन स्थिताया मनोहराया च, चिराय सुधर्मगुरुनिर्दिष्टतपः समारचय्य ललिताङ्गपद प्राप्तायाम्, आवा चिर भोगाननुभवाव. स्म ।

§ ५०) तदनु विभीषणवियोगेन खिद्यमानमानसोऽह, पूर्ववात्सल्यप्रत्यासन्नेन मातृचर-

---

हारशरीरस्त्यक्ता ह्यारदेह सन्यासविधि सल्लेखनाविधिम् आलम्ब्य धृत्वा माहेन्द्रकल्पे चतुर्थस्वर्गे सप्तसागरायु-स्थिति' सप्तसागरप्रमितायुष्क सामानिक सामानिकजातिक सुरो देवो, अस्मत्समानर्द्धिविभवे मत्सदृशर्द्धिविभवेन जयकीर्तिना एतन्नामवयस्येन सह समभूवम् । § ४९) तत इति—कालान्ते जीवितान्ते ततो माहेन्द्रकल्पात् प्रच्युतौ पुष्करद्वीपस्य तृतीयद्वीपस्य दीपायमानो दीप इवाचरन्यो पूर्वमन्दर पूर्वमेरुस्तस्मात् पौरस्त्य पूर्वदिक्स्थितो यो विदेहो विदेहक्षेत्र तस्मिन् विशोभितो विभूषितो यो मङ्गलावतीविषयो मङ्गलावतीदेशस्तस्मिन् सगत यत् रत्नसचयनगर तत् अधिवसतस्तत्र कृतनिवासस्य श्रीधरमहीपालस्य मनोहरामनोरमेति प्रसिद्धयो राज्यो श्रीवर्माविभीषणनामधेयौ तनयौ बलभद्रनारायणौ जातौ, अह मनोहराया बलो जातो जयकीर्तिजीवश्च मनोरमाया केशवो जात इत्यर्थ । आवा परिपाक प्राप्तौ मिथ सौहार्दरसाविव व्यलसाव । ताते श्रीधरमहीपाले ज्येष्ठे मयि राज्यलक्ष्मी समर्प्य तपसे प्रयाते, सुधर्मगुरुणा प्रतिपादिता दत्ता दीक्षा प्रव्रज्या यस्य तथाभूते निरतिशयतपसि सर्वोत्कृष्टतपस्याया दक्षो निपुणस्तस्मिन् सिद्धपद मुक्ति प्राप्ते सति । मयि सातिशयस्नेहेन मदीया माता मनोहरा पूर्वं गृह एव स्थितासीत् पश्चात् सुधर्मगुरुणा निर्दिष्ट तपश्चिर चरित्वा ललिताङ्गपद प्राप्ता । आवा बलकेशवौ च चिर भोगानन्वभूव । § ५०) तदन्विति—तदनु तदनन्तर विभीषणस्य तन्नामकेशवस्य वियोगेन मरणेन खिद्यमान मानस यस्य तथाभूतोऽह पूर्ववात्सल्येन मनोहराभवसभूतस्नेहेन

शरीरका त्याग कर संन्यास मरण किया। उसके फलस्वरूप मैं माहेन्द्रस्वर्गमे सात सागरकी आयुवाला सामानिक जातिका देव हुआ। मेरा मित्र जयकीर्ति भी वहीं मेरे ही समान ऋद्धि तथा विभवको धारण करनेवाला सामानिक देव हुआ। § ४९) तत इति—आयुके अन्तमे हम दोनो माहेन्द्र स्वर्गसे च्युत होकर पुष्कर द्वीपके दीपकके समान आचरण करनेवाले पूर्वमेरुसे पूर्वकी ओर स्थित विदेह क्षेत्रमे सुशोभित मगलावती देशके रत्नसंचय नगरमे रहनेवाले श्रीधर राजाकी मनोहरा और मनोरमा नामसे प्रसिद्ध दो रानियोंके क्रमसे श्रीवर्मा और विभीषण नामके पुत्र हुए। हम बलभद्र और नारायण पदके धारक हुए तथा दोनोंमे इतना गाढ स्नेह था कि परिपाकको प्राप्त हुए परस्परके मैत्रीभावके समान सुशोभित होते थे। कुछ समय बाद पिता श्रीधर राजा मुझ ज्येष्ठ पुत्रके लिए राज्यलक्ष्मी देकर तपके लिए चले गये। सुधर्मगुरुने उन्हें दीक्षा दी तथा सर्वोत्कृष्ट तपमे समर्थ होकर वे सिद्धपदको प्राप्त हो गये। मेरी माता मनोहरा मुझमे अधिक स्नेह रखती थी इसलिए उसने गृहत्याग नहीं किया, घरमे ही रहती रही परन्तु अन्तमे सुधर्मगुरुके द्वारा उपदिष्ट धर्मका चिरकाल तक आचरण कर ललिताग पदको प्राप्त हो गयी। इस प्रकार पिता और माताके चले जानेपर हम दोनों भाई चिरकाल तक भोगोंका उपभोग करते रहे। § ५०) तदन्विति—तदनन्तर विभीषणके वियोगसे जिसका मन खेदखिन्न हो रहा था ऐसे मुझे पूर्वस्नेहके कारण निकट आये हुए

ललिताङ्गदेवेन वोधितस्त्यक्तशोक प्रसन्नमतिर्युगधरमहायोगिसमीपे जैनी दीक्षामासाद्य पञ्च-सहस्रैः पृथ्वीपतीना सम सिंहनिष्क्रीडित नाम दुश्चर तपस्तप्त्वा, महोदकं सर्वतोभद्रं च चरित्वा समासादितविज्ञानत्रयविमलालोकः सुखैकतानेऽच्युतकल्पविमाने द्वाविंशतिसागरजीवितः सुरेन्द्रो भूत्वा, तत्र दिव्यान्भोगाननुभुञ्जानो मातृवात्सल्येन ललिताङ्गदेवमागत्यारोप्य च मामकीन विमानमानीय चास्मत्कल्पमसकृत् सत्क्रिया विस्तारयामि स्म।

§ ५१) अथ सोऽपि ललिताङ्ग. सुचिर भोगाननुभुञ्जानो मुहुर्मुहुर्मया पूजितः, कालान्ते च्युतो जम्बूद्वीपपूर्वविदेहशोभितमङ्गलावतीविषयविराजितरजतमहीधरोदक्तटघटितगन्धर्वपुर-नाथस्य वासवस्य विद्याधरेन्द्रस्य प्रभावतीदेव्या महीधरो नाम सुतः सजातः। क्रमेण तस्मिन् वासवे महीधराय राज्य समर्प्यारविन्दनिकटे मुक्तावलिनामतपस्तप्त्वा मोक्षलक्ष्मीमाटीकमाने, प्रभावत्या

प्रत्यासन्नेन निकटवर्तिना मातृचरललिताङ्गदेवेन मातृजीवललिताङ्गदेवेन वोधितो वोध प्रापित. त्यक्तशोको दूरीकृतखेद प्रसन्नमति स्वच्छचेता सन् युगधरमहायोगिनस्तन्नामजिनेन्द्रस्य समीपे पार्श्वे जैनी जिनप्रोक्ता दीक्षा प्रव्रज्याम् आसाद्य प्राप्य पृथ्वीपतीना राज्ञा पञ्चसहस्रै सम सिंहनिष्क्रीडित नाम तन्नामधेय व्रतविशेष दुश्चर कठिन तपस्तप्त्वा महोदकं सर्वतोभद्र च तन्नामव्रतविशेष चरित्वा (व्रताना लक्षण परिशिष्टे द्रष्टव्यम्) समासादितो लब्धो विज्ञानत्रयमेव मतिश्रुतावधिज्ञानत्रिकमेव विमलालोको निर्मलप्रकाशो येन तथाभूत सन्, सुखस्य सातस्य एकतानो मुख्यविस्तारो यस्मिन् तस्मिन् अच्युतकल्पविमाने षोडशस्वर्गे द्वाविंशतिसागरप्रमित जीवित यस्य तथाभूत सुरेन्द्रो देवेन्द्रो भूत्वा तत्राच्युतकल्पविमाने दिवि भवा दिव्यास्तान् भोगान् पञ्चेन्द्रिय-विषयान् अनुभुञ्जानोऽनुभवन् मातृवात्सल्येन जननीस्नेहेन ललिताङ्गदेवम् आगत्य प्राप्य मामकीन स्वकीय विमान व्योमयानम् आरोप्य च अस्मत्कल्प षोडशस्वर्गमानीय च असकृत् अनेकश सत्क्रिया सत्कार विस्तार-यामि स्म। § ५१) अथेति—अथानन्तर सोऽपि मनोहरा मातृजीवो ललिताङ्गो देवो दीर्घकालपर्यन्त भोगाननुभवन् भूयोभूयो.मया पूजितो जीवितान्ते ततश्च्युत सन् जम्बूद्वीपस्य पूर्वविदेहे विशोभितो यो मङ्गलावतीदेशस्तस्मिन् विराजितस्य शोभितस्य रजतमहीधरस्य विजयार्धपर्वतस्य उदक्तटे उत्तरश्रेण्या घटित स्थित यद् गन्धर्वपुर तन्नाम नगर तस्य नाथस्य वासवस्य तन्नामनृपते. विद्याधरराजस्य प्रभावती प्रभावतीदेव्या महीधरो नाम सुत समजायत। क्रमेण च तस्मिन् वासवे महीधराय पुत्राय राज्य दत्त्वा अरविन्दनामनिकटे मुक्तावलिनाम तपस्तप्त्वा मोक्षलक्ष्मीम् आटिटीकमाने प्राप्तवति प्रभावत्या वासवविद्याधरस्य

माताके जीव ललितागने समझाया जिससे शोक छोडकर प्रसन्नचित्तसे मैंने युगन्धर जिनेन्द्रके समीप पॉच हजार राजाओके साथ जिनदीक्षा ले ली। सिंहनिष्क्रीडित, महोदक और सर्वतोभद्र नामके कठिन तप तप कर मैं मतिज्ञानादि तीन ज्ञानरूपी निर्मल प्रकाशको पा लिया तथा एक सुखका ही जहॉ विस्तार है ऐसे अच्युतकल्पके विमानमे बाईस सागर की आयुवाला इन्द्र हुआ। वहाँ दिव्य भोगोको भोगता रहा। माताके स्नेहके कारण मैं ललितांगदेवके पास आकर तथा उसे अपने विमानमे चढाकर कई वार अपने स्वर्गमे लाता रहा तथा उसका सत्कार करता रहा। § ५१) अथेति—तदनन्तर वह ललितांग भी चिरकाल तक भोगोको भोगता और मेरे द्वारा पूजित होता हुआ आयुके अन्तमे च्युत हुआ तथा जम्बूद्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमे विशोभित मंगलावती देशमे स्थित विजयार्ध पर्वतकी उत्तर-श्रेणिमे विद्यमान गन्धर्वपुरके राजा वासव विद्याधरेन्द्रकी प्रभावती देवीके महीधर नामका पुत्र हुआ। जब वासव राजा क्रमसे महीधर पुत्रको राज्य देकर तथा अरविन्द मुनिके

---

१. समासादित क०।

च रत्नावलिनामतपश्चिरं चरित्वाच्युतकल्पमासाद्य प्रतीन्द्रपद भजमानाया, सोऽय विद्याधरराज्य परिपालयन् सिद्धविद्यः, पुर्नर्विद्यापूजोद्यतो मन्दराचलनन्दनवनपूर्वदिगाश्रितचैत्यालयमधितिष्ठमानः, पुष्करार्धद्वीपपश्चिमभागपूर्वविदेहविलसितवत्सकावतीविषयप्रभाकरीपुरीमण्डनायमानस्य विनयधरयोगीन्द्रस्य निर्वाणपूजा निष्ठाप्य महामेरुमागतवता मया लोचनगोचरीकृत एव बोधितो बभूव।

§ ५२) मामच्युतेन्द्रमवगच्छ नभश्चरेन्द्र !
त्व पूर्वमाविरभवो ललिताङ्गदेव ।
स्नेहोऽस्ति ये भवति मातृचरे गरिष्ठ-
स्तद्भद्र सत्यज मुधा विषयाभिलापम् ॥२९॥

§ ५३) इत्युक्तमात्र एव निर्विण्णो नभश्चरेन्द्रो महीकम्पे ज्येष्ठसुते समर्पितराज्यभार, बहुभि खेचरेन्द्रै. साक जगन्नन्दनमुनिनिकटे कनकावलिनामतपस्तप्त्वा प्राणतेन्द्रपद प्राप्तो, विंशतिसागरस्थितिस्तत्रानुभूतविविधभोगस्ततश्च्युत्वा, धातकीखण्डद्वीपपूर्वाशाविशोभितपश्चिमविदेहगतगन्धिल-

राज्या च रत्नावलिनाम तपस्तप्त्वाच्युतस्वर्गं प्राप्य प्रतीन्द्रपद प्राप्ताया, सोऽय महीधरो विद्याधरराज्य परिपालयन् सिद्धा विद्या यस्य तथाभूत सन्, पुनरपि विद्याना पूजायामुद्यतस्तत्पर सन् मन्दराचलस्य सुमेरुपर्वतस्य नन्दनवने पूर्वदिगाश्रित पूर्वकाष्ठास्थित चैत्यालय अधितिष्ठमानस्तत्र विद्यमान , पुष्करार्धद्वीपस्य तृतीयद्वीपस्य पश्चिमभागे य पूर्वविदेहस्तस्मिन् विलसित शोभितो यो वत्सकावतीविषयस्तस्य प्रभाकरपुर्या मण्डनायमानस्य विनयधरयोगीन्द्रस्य तन्नामतीर्थंकरस्य निर्वाणपूजा मोक्षकल्याणकपूजा निष्ठाप्य समाप्य महामेरु जम्बूद्वीपमेरुम् आगतवता मयाच्युतेन्द्रेन लोचनगोचरीकृतो दृष्ट एवमनेन प्रकारेण बोधित समुपदिष्टो बभूव । § ५२) मामिति—हे नभश्चरेन्द्र हे विद्याधरराज ! मा पुरोवर्तमानम् अच्युतेन्द्र षोडशस्वर्गाधिपतिम् अवगच्छ जानीहि त्व पूर्व पूर्वभवे ललिताङ्गदेव आविरभवो भूत , मातृचरे मनोहरामातृजीवे भवति त्वयि मे गरिष्ठो गुरुतर स्नेहो रागोऽस्ति, तत्तस्मात् हे भद्र हे भव्य ! मुधा व्यर्थं विषयाभिलाप भोगेच्छा सत्यज सम्यक् प्रकारेण मुञ्च । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥२९॥ § ५३) इतीति—इतीत्थम् उक्तमात्र एव कथितमात्र एव निर्विण्ण विरक्तो नभश्चरेन्द्रो महीधरो महीकम्पे नाम ज्येष्ठपुत्रे समर्पितो निक्षिप्तो राज्यभारो येन तथा सन् बहुभिरनेकै खेचरेन्द्रै खगराजै साक जगन्नन्दनमुनिनिकटे कनकावलिनाम तपोऽनशनव्रतविशेष तप्त्वा प्राणतेन्द्रपद द्वादशस्वर्गाधिपतित्व प्राप्त , विंशतिसागरप्रमिता स्थितिर्यस्येति विंशतिसागरस्थिति तत्र प्राणतस्वर्गे अनुभूता

निकट मुक्तावलि नामका तप तप मोक्ष लक्ष्मीको प्राप्त हो गये और प्रभावती रानी रत्नावलि नामका तप चिरकाल तक तप कर अच्युत स्वर्गमे प्रतीन्द्रपदको प्राप्त हो गयी तक यह महीधर विद्याधर राज्यका परिपालन करने लगा, इसे विद्याधरोंके योग्य विद्याएँ सिद्ध हो गयीं। एक बार वह विद्याओंकी पुनः पूजा करनेके लिए उद्यत हुआ, मन्दरगिरिके नन्दनवनसम्बन्धी पूर्वदिशामें स्थित चैत्यालयमे स्थित था, उसी समय मैं पुष्कर द्वीपके पश्चिमार्ध सम्बन्धी पूर्व विदेहक्षेत्रमें सुशोभित वत्सकावती देशकी प्रभाकरपुरीके अलकार विनयन्धर तीर्थंकरकी निर्वाणपूजा समाप्त कर जम्बूद्वीपके मेरुपर्वतकी ओर आ रहा था सो मैंने उसे देखकर इस प्रकार समझाया था। § ५२) मामिति—हे विद्याधरराज ! तुम मुझे अच्युतेन्द्र समझो, तुम पहले भवमें ललिताङ्गदेव थे, तुम मेरी माता मनोहराके जीव हो अतः तुममे मेरा प्रगाढ स्नेह है इसलिए हे भद्र ! व्यर्थ ही विषयोंकी अभिलाषा छोडो ॥२९॥ § ५३) इतीति—इस प्रकार कहते ही विद्याधरोंका राजा महीधर विरक्त हो गया, उसने महीकम्प नामक बड़े पुत्रके लिए राज्यका भार सौंपा और स्वय बहुतसे विद्याधरराजाओंके साथ जगन्नन्दन नामक मुनिके निकट कनकावलि नामका तप तप कर प्राणतस्वर्गके इन्द्रपदको प्राप्त हुआ। वहाँ

विषयायोध्यानगराधिपतेर्जयवर्मण' सुप्रभायामजितंजयनामपुत्रः समजायत ।

§ ५४) ततश्च जयवर्मजगतीपाले राज्यलक्ष्मी निजनन्दने समर्प्याभिनन्दनपार्श्वे चिरमाचाम्लवर्धन नाम तपस्तप्त्वा शाश्वत पदमुपगते, सुप्रभाया च सुदर्शना गणिनीमासाद्य[1] रत्नावलिमुपोष्याच्युताधिपतिपद प्राप्ताया, सोऽयमजितजयोऽप्युदितचक्ररत्नोऽभिनन्दनजिनपदारविन्दं वन्दमानः, पापास्रवद्वारपिधानेन पिहितास्रव इत्यन्वर्थंनामधेयं दधानश्चिरकाल राज्यसुखमनुभुञ्जानो मदीयधर्मबोधनविजृम्भितवैराग्यभारो विंशतिसहस्रै नृपकुमाराणा सह मन्दरस्थविरमुनिसमीपे दीक्षामुपादाय, सजातावधिज्ञानसपन्नचारणर्द्धिरम्बरतिलकमहीधरे भवत्यै जिनगुणसपत्तिश्रुतज्ञानाख्यमनशनव्रतं स्वर्गसुखसाधन प्रतिपादयामास ।

उपभुक्ता विविधभोगा नैकविधविषया येन तथाभूत सन् तत प्राणतस्वर्गात् च्युत्वा धातकीखण्डद्वीपस्य द्वितीयद्वीपस्य पूर्वाशाया पूर्वदिशाया विशोभितो विराजितो य पश्चिमविदेहस्तत्र गतो यो गन्धिलविषयस्तस्यायोध्यानगरस्याधिपते. स्वामिनो जयवर्मण सुप्रभाया पत्न्याम् अजितजयनाम पुत्र समजायत समुत्पन्न. । § ५४) ततश्चेति—तदनन्तरश्च जयवर्मा चासौ जगतीपालश्च जयवर्मजगतीपालस्तस्मिन् निजनन्दने स्वसुते अजितजये राज्यलक्ष्मी राज्यश्रिय समर्प्य अभिनन्दनस्य तन्नामजिनेन्द्रस्य पार्श्वे समीपे चिर दीर्घकालपर्यन्तम् आचाम्लवर्धन नाम तप तन्नामानशनव्रतविशेष तप्त्वा शाश्वत पद मोक्षम् उपगते प्राप्ते सति, सुप्रभाया च तत्पत्न्या च सुदर्शना तन्नामधेया गणिनी प्रधानार्यिकाम् आसाद्य प्राप्य रत्नावलिम् उपोष्य तन्नामोपवासव्रत कृत्वा अच्युताधिपतिपद षोडशस्वर्गेन्द्रपद प्राप्ताया सत्या सोऽयम् अजितजयोऽपि उदित प्रकटित चक्ररत्न यस्य तथाभूत सन् अभिनन्दनजिनस्य तन्नामतीर्थंकरस्य पदारविन्द चरणकमल वन्दमानो नमस्कार कुर्वन् पापास्रवद्वारस्य पिधानेनाच्छादनेन पिहित आस्रवो येन स पिहितास्रव इतीत्थम् अन्वर्थनामधेय दधान , अजितजयचक्रधरस्यैव पिहितास्रव इति द्वितीय सार्थक नाम । चिरकाल राज्यसुखमनुभवन् मदीयधर्मबोधनेन मत्कृतधर्मोपदेशेन विजृम्भितो वर्धितो वैराग्यभारो यस्य तथाभूत सन् नृपकुमाराणा विंशतिसहस्रै. सह मन्दरस्थविरमुनिसमीपे प्रव्रज्याम् उपादाय, सजाता समुत्पन्नावधिज्ञानसपन्नाचारणर्द्धिर्यस्य तथाभूत. सन् अम्बरतिलकमहीधरे भवत्यै श्रीमतीपूर्वभवजीवाय जिनगुणसपत्तिश्रुतज्ञाननामधेयं स्वर्गसुखस्य साधनम्

उसकी बीस सागरकी स्थिति थी। नानाप्रकारके भोगोंको भोगकर वह वहाँसे च्युत हुआ और धातकीखण्डद्वीपकी पूर्वदिशामें सुशोभित पश्चिमविदेह क्षेत्र सम्बन्धी गन्धिल देशके अयोध्यानगरके राजा जयवर्माकी सुप्रभा नामक स्त्रीसे अजितंजय नामका पुत्र हुआ।

§ ५४) ततश्चेति—तदनन्तर जब जयवर्मा राजा अपने अजितंजय नामक पुत्रके लिए राज्यलक्ष्मी सौंपकर अभिनन्दन जिनेन्द्रके समीप चिरकाल तक आचाम्लवर्धन नामका तप तप कर मोक्ष चले गये और सुप्रभा सुदर्शना नामक गणिनीके पास जाकर तथा रत्नावलि नामका उपवास कर अच्युत स्वर्गमें इन्द्र पदको प्राप्त हो गयी तब यह अजितंजय भी चक्ररत्नके प्रकट होनेसे चक्रवर्ती हुआ। अजितंजयचक्रवर्ती अभिनन्दन जिनेन्द्रके चरणकमलोंकी वन्दना करता था तथा उसने पापास्रवके द्वार बन्द कर दिये थे इसलिए वह 'पिहितास्रव' इस सार्थक नामको धारण करता था अर्थात् उसका दूसरा नाम पिहितास्रव प्रचलित हो गया था। यह पिहितास्रव चिरकाल तक राज्यसुखका उपभोग करता रहा अन्तमें मेरे धर्मोपदेशसे उसके वैराग्यकी वृद्धि हुई और बीस हजार राजकुमारोंके साथ उसने मन्दरस्थविर मुनिके पास दीक्षा ले ली। उसे अवधिज्ञान तथा चारण ऋद्धिकी प्राप्ति हुई। इन्हीं पिहितास्रव मुनिने निर्नामिकाके भवमें तुम्हें अम्बरतिलक नामक पर्वतपर स्वर्गसुखके साधनभूत जिन-

---

१ गणी–क० ।

§ ५५) मालतीसुकुमाराङ्गि ! माननीयगुणे सुते !
ततोऽस्मद्गुरुरेवासीत्तवाप्यभ्यर्हितो गुरुः ॥३०॥

§ ५६) एवं गुरुस्नेहेन मया पूजितेषु द्वाविंशतिललिताङ्गेषु चरमस्तव भर्ता प्राग्भवे महाबलः स्वयंबुद्धोपदेशविलसितदेवभूयो ललिताङ्गस्त्रिदिवाच्च्युतः सोऽयमिदानीमस्माकं प्रत्यासन्नतमो बन्धुः संजातस्तव च भर्ता भविष्यति ।

§ ५७) अन्यद्वक्ष्याम्यभिज्ञानं कन्ये ! धन्यगुणे शृणु ।
यस्याः कचाः कटाक्षाश्च शिलीमुखमदापहाः ॥३१॥

§ ५८) पुरा किल युवाभ्यां दम्पतीभ्यां समन्वितोऽहं युगंधरतीर्थलब्धसम्यग्दर्शनाभ्यां ब्रह्मेन्द्रलान्तवाभ्यां तच्चरितं पृष्टः एवमवोचम् ।

अनशनव्रतं प्रतिपादयामास कथयामास । § ५५) मालतीति—मालतीवत् सुकुमारं मृदुलमङ्गं यस्यास्तत्सबुद्धौ हे मालतीसुकुमाराङ्गि ! माननीया आदरणीया गुणा यस्यास्तत्सबुद्धौ हे माननीयगुणे सुते ! पुत्रि ! ततस्तस्मात् कारणात्, अस्मद्गुरुरेव तवापि अभ्यर्हितः पूजितो गुरुरासीद् बभूव । § ५६) एवमिति—एवमनेन प्रकारेण गुरुस्नेहेन गुरुजनस्नेहेन मयाच्युतेन्द्रेण पूजितेषु सत्कृतेषु द्वाविंशतिललिताङ्गेषु, अच्युतेन्द्रस्य स्थितिर्द्वाविंशतिसागरप्रमिता बभूव ततस्तस्येन्द्रत्वे ऐशानस्वर्गे द्वाविंशतिललिताङ्गा अभूवन् सर्वेषां चाच्युतेन्द्रेण समानः सत्कारः कृत इत्यर्थः । तेषु द्वाविंशतिललिताङ्गेषु चरमो ललिताङ्गो देवस्तव वल्लभ आसीत् । सोऽयं प्राग्भवे महाबलोऽभूत् स्वयंबुद्धस्य तन्नामामात्यस्योपदेशेन विलसितं प्राप्तं देवभूयं देवत्वं यस्य तथाभूतो ललिताङ्गः त्रिदिवात् स्वर्गात् च्युतः सन् इदानीं सांप्रतम् अस्माकमतिशयेन प्रत्यासन्नो निकट इति प्रत्यासन्नतमो बन्धुः पितृष्वसृसुतः संजातः तव च भर्ता भविष्यति । § ५७) अन्यदिति—यस्यास्तव कचाः केशाः कटाक्षा अपाङ्गाश्च शिलीमुखानां भ्रमराणां बाणानां च मदापहा गर्वापहारकाः सन्ति, एवंभूते धन्यगुणे प्रशस्तगुणयुक्ते कन्ये ! अन्यदपि अभिज्ञानं परिचायकचिह्नं वक्ष्यामि कथयिष्यामि शृणु समाकर्णय । 'शिलीमुखो भवेद्भृङ्गे मार्गणे च शिलीमुखः' इति विश्वलोचनः ॥३१॥ § ५८) पुरेति—पुरा किल पूर्वस्मिन्काले युवाभ्यां स्वयंप्रभाकललिङ्गाभ्यां जाया च पतिश्चेति दम्पती ताभ्यां 'जायाया जम्भावो दम्भावश्च वा निपात्यते' इति वार्तिकेन जायास्थाने दम्भावो निपातितः, समन्वितः सहितोऽहमच्युतेन्द्रो युगंधरस्य तीर्थे लब्धं सम्यग्दर्शनं याभ्यां ताभ्यां ब्रह्मेन्द्रलान्तवाभ्यां ब्रह्मेन्द्रलान्तवेन्द्राभ्यां तच्चरितं युगंधरजिनेन्द्रचरितं पृष्टः सन् एवमनेन

गुणसम्पत्ति और श्रुतज्ञान नामके अनशनव्रत दिये थे । § ५५) मालतीति—मालतीके समान कोमल शरीर वाली ! तथा माननीयगुणोंसे युक्त हे पुत्रि ! इस तरह जो हमारे गुरु थे वही तुम्हारे भी पूजनीय गुरु हुए ॥३०॥ § ५६) एवमिति—इस प्रकार गुरुके स्नेहसे मेरे द्वारा सम्मानको प्राप्त हुए बाईस ललितांग देवोंमें अन्तिम ललितांग तुम्हारा पति था । यह पूर्वभवमें महाबल था, स्वयंबुद्ध मन्त्रीके उपदेशसे उसे देवपर्याय मिली थी । वह ललितांग स्वर्गसे च्युत होकर इस समय हमारा अत्यन्त निकटका भाई हुआ है वही तुम्हारा पति होगा । § ५७) अन्यदिति—हे प्रशंसनीयगुणोंसे युक्त बेटी ! सुन, एक दूसरी पहचान और कहता हूँ । तेरे केश और कटाक्ष दोनों ही शिलीमुखोंका गर्व नष्ट करने वाले हैं अर्थात् केश तो शिलीमुख-भ्रमरका मद नष्ट करने वाले हैं अर्थात् उससे भी अधिक काले हैं और कटाक्ष शिलीमुख-बाणका गर्व नष्ट करनेवाले हैं अर्थात् बाणसे भी अधिक गहरा आघात करनेवाले हैं ॥३१॥ § ५८) पुरेति—पहले कभी मैं आप दोनों दम्पतियों (ललितांग और स्वयंप्रभा) के साथ था उस समय युगन्धर महाराजके तीर्थमें जिन्हें सम्यग्दर्शन प्राप्त हुआ था ऐसे ब्रह्मेन्द्रलान्तवेन्द्रने मुझसे युगन्धर महाराजका चरित पूछा था, तब उनका चरित मैंने इस

§ ५९) जम्बूद्वीपपूर्वविदेहविलसितवत्सकावतीमण्डलमण्डनायमानसुसीमानगराधिपतेरजितजयनामधेयस्य सचिववरिष्ठादमृतमतिनाम्नः सत्यभामाया जात प्रहसितस्तत्सखश्च विकसितः। तावेतौ सदा सहचारिणौ तर्कपारावारतलस्पर्शिधिषणौ वादकलाप्रवीणौ कदाचिन्मतिसागरनाममुनिवरमुपागतेन नरपतिना सह समागतौ सकलनिजशङ्काकलङ्कनिकारगभीरया गिरा जीवतत्त्वनिरूपण कुर्वाण मुनिपूषणमानम्य गृहीतसयमौ सुदर्शनमाचाम्लवर्धनं चोपोष्य, विधाय च निदान बलदेववासुदेवयो' कालान्ते महाशुक्रे षोडशसागरोपमस्थितिसहिताविन्द्रप्रतीन्द्रौ सजातौ, चिरममरसपदमनुभूय स्वायुरन्ते च्युतौ, धातकीखण्डसुन्दरपश्चिममन्दरपूर्वविदेहविराजितपुष्कलावतीविषयमण्डितपुण्डरीकिणीपुरी पालयतो धनजयभूपालस्य जयन्तायशस्वतीदेव्योस्तनयौ महाबलातिबलनामधेयौ बलकेशवावजायेताम् ।

प्रकारेण अवोच जगाद । § ५९) जम्बू द्वीपेति—जम्बूद्वीपस्य प्रथमद्वीपस्य पूर्वविदेहे विलसित शोभित यद् वत्सकावतीमण्डल वत्सकावतीदेशस्तस्य मण्डनायमान यत् सुसीमानगर तस्याधिपते स्वामिन अजितजयनामधेयस्य सचिववरिष्ठात् मन्त्रिश्रेष्ठात् अमृतमतिनाम्न सत्यभामाया भामाया जात समुत्पन्न प्रहसित तस्य सखा तत्सखस्तदीयसुहृद् विकसितश्च । तावेतौ प्रहसितविकसितौ सदा निरन्तर सहचारिणौ सहगामिनौ तर्कपारावारस्य न्यायशास्त्राम्बुधेस्तलस्पर्शिणी धिषणा बुद्धिर्ययोस्तौ तथाभूतौ वादकलाया शास्त्रार्थवैदग्ध्या प्रवीणौ निपुणौ कदाचित् मतिसागरनाममुनिवरम् उपागतेन वन्दितु प्राप्तेन नरपतिनाजितजयेन राज्ञा सह समागतौ समायातौ, सकला समस्ता या निजशङ्का स्वकीयारेकास्ता एव कलङ्कस्तस्य निकारे तिरस्कारे दूरीकरण इत्यर्थ गभीरया निपुणया गिरा वाण्या जीवतत्त्वस्य निरूपण प्रतिपादन कुर्वाण मुनि पूषा इव त मुनिसूर्यम् आनम्य नमस्कृत्य गृहीतसयमौ धृतचारित्रौ सुदर्शन तन्नामधेयम् आचाम्लवर्धन च तन्नामधेय व्रत च उपोष्य उपवास कृत्वा, बलदेववासुदेवयोर्बलभद्रनारायणयोर्निदान च निदानबन्ध च विधाय कृत्वा कालान्ते आयुरन्ते महाशुक्रे दशमस्वर्गे षोडशसागरोपमस्थितिसहितौ इन्द्रश्च प्रतीन्द्रश्चेति इन्द्रप्रतीन्द्रौ सजातौ सभूतौ चिर षोडशसागरपर्यन्तम् अमरसपदम् देवसपत्तिम् अनुभूय समुपभुज्य स्वायुषो स्वजीवितस्यान्ते च्युतौ, धातकीखण्डे द्वितीयद्वीपे सुन्दर' शोभमानो य पश्चिममन्दर पश्चिमदिक्स्थितमेरुस्तस्य पूर्वविदेहे विराजितो विशोभितो य पुष्कलावतीविषयस्तस्मिन् मण्डिता शोभिता या पुण्डरीकिणीपुरी ता पालयतो रक्षतो धनजय-

---

प्रकार कहा था। § ५९) जम्बूद्वीपेति—जम्बूद्वीपके पूर्वविदेह क्षेत्रमें सुशोभित वत्सकावतीदेशके आभरणस्वरूप सुसीमा नगरके राजा अजितंजयके प्रधानमन्त्री अमृतमतिसे उनकी सत्यभामा नामक स्त्रीसे उत्पन्न हुआ एक प्रहसित नामका पुत्र था तथा प्रहसितका विकसित नामका एक मित्र था। ये दोनों सदा साथ रहते थे, इनकी बुद्धि न्यायशास्त्ररूपी समुद्रके तलका स्पर्श करनेवाली थी तथा शास्त्रार्थकी कलामें दोनों चतुर थे। किसी समय ये दोनों, मतिसागर नामक मुनिराजके पास गये हुए राजाके साथ आये थे, वहाँ अपनी समस्तशंकाओंरूपी कलकको दूर करनेमें निपुण वाणीके द्वारा जीवतत्त्वका निरूपण करनेवाले श्रेष्ठ मुनिराजरूपी सूर्यको नमस्कार कर दोनोंने संयम ग्रहण कर लिया अर्थात् मुनिदीक्षा ले ली तथा सुदर्शन और आचाम्लवर्धन नामक व्रतके उपवास किये एव हम बलभद्र और नारायण बनें ऐसा निदानबन्ध किया। आयुके अन्तमें दोनों महाशुक्र नामक दशवें स्वर्गमें सोलहसागरकी आयुवाले इन्द्र और प्रतीन्द्र हुए। वहाँ चिरकाल तक देवोंकी सम्पदाका उपभोग कर आयुके अन्तमें वहाँसे च्युत हुए और धातकीखण्डमें सुशोभित पश्चिममेरु पर्वतके पूर्वविदेह क्षेत्रमें सुशोभित पुष्कलावती देशकी शोभायमान पुण्डरीकिणीपुरीको रक्षा

§ ६०) तदनु, राज्य परिपालयन्महाबलः केशवस्यातिबलस्य वियोगेन सजातवैराग्य समाधिगुप्तमहामुनिपार्श्वे तपस्तप्त्वा प्राणतेन्द्रपद प्राप्तस्तत्र विंशतिसागरोपमस्थितिरमरलक्ष्मीमनुभूय, धातकीखण्डपश्चिममन्दरपूर्वविदेहवत्सकावतीविषयप्रभाकरीपुरीनाथस्य महासेनमहीपालस्य वसुधरादेव्या जयसेनाह्वय पुत्र. सजातः, क्रमेणोद्भूतचक्ररत्न सुचिर पालितमहीवलय सीमधरजिनपादपयोजमूले जैनी दीक्षामासाद्य भावितषोडशभावनः कलितनिरतिशयतपसा ग्रैवेयकेषूर्ध्वमध्यमे प्राप्याहमिन्द्रपद, तत्र त्रिंशत्सागरोपमस्थितिर्दिव्यान् भोगाननुभूय ततोऽवतीर्य, पुष्करार्धद्वीपपूर्वमन्दरपूर्वविदेहसगतमङ्गलावतीविषयविशोभितरत्नसचयराजधानीमधिवसतोऽजितजयभूपालस्य वसुमतीनामदेव्या युगधर· समजायत ।

भूपालस्य जयन्तायशस्वतीदेव्योर्जयन्तायशस्वतीनामराज्ञ्योस्तनयौ महाबलातिबलनामधेयौ बलकेशवौ बलभद्रनारायणौ अजायेता सभूतौ । § ६०) तदन्विति—तदनन्तर राज्य परिपालयन् महाबलो बलभद्र केशवस्य नारायणस्यातिबलस्य वियोगेन मृत्युना सजात समुत्पन्न वैराग्य यस्य तथाभूत सन् समाधिगुप्तश्चासौ महामुनिश्च समाधिगुप्तमहामुनिस्तस्य पार्श्वे तपस्तप्त्वा प्राणतेन्द्रपद चतुर्दशस्वर्गाधिपतिपद प्राप्त , तत्र विंशतिसागरोपमा स्थितिर्यस्य तथाभूत सन् अमरलक्ष्मी देवश्रियम् अनुभूय समुपभुज्य धातकीखण्डे द्वितीयद्वीपे पश्चिममन्दरात् पश्चिमदिक्स्थमेरो पूर्वविदेहे यो वत्सकावतीविषयस्तस्य प्रभाकरीपुर्या नाथ परिवृढस्तस्य, महासेनमहीपालस्य वसुधरादेव्या तन्नामराज्ञ्या जयसेनाह्वो जयसेननामधेय पुत्र सजात , क्रमेण उद्भूत प्रकटित चक्ररत्न यस्य तथाभूत सुचिर दीर्घकालपर्यन्त पालितमहीवलयो रक्षितभूचक्रवाल सीमधरजिनस्य पादपयोजमूले चरणकमलमूले जैनी जिनोक्ता दीक्षा प्रव्रज्याम् आसाद्य प्राप्य भाविता अनुचिन्तिता षोडशभावना दर्शनविशुद्धयादयो येन तथाभूत सन् कलित कृत यत् निरतिशयतप सर्वोत्कृष्टतपश्चरण तेन ग्रैवेयकेषु ऊर्ध्वमध्यमेऽष्टमग्रैवेयक इत्यर्थ अहमिन्द्रपद प्राप्य तत्र त्रिंशत्सागरोपमा स्थितिर्यस्य तादृश दिव्यान् मनोहरान् स्वर्गसबन्धिनो भोगान् पञ्चेन्द्रियविषयान् अनुभूय ततोऽष्टमग्रैवेयकात् अवतीर्य च्युत्वा पुष्करार्द्धद्वीपस्य पूर्वमन्दरात् पूर्वविदेहे सगत स्थितो यो मङ्गलावतीविषयस्तस्मिन् विशोभिता विराजिता या रत्नसचयराजधानी ताम् अधिवसत तत्र कृतनिवासस्य अजितजयभूपालस्य तन्नामनृपते वसुमतीनामदेव्या युगधर समजायत सभूत ।

करनेवाले धनजय राजाकी जयन्ता और यशस्वती नामकी रानियोंके महाबल तथा अतिबल नामसे सहित बलभद्र और नारायण पदके धारक पुत्र हुए। § ६०) तदन्विति—तदनन्तर राज्यका पालन करता हुआ महाबल, अतिबल नारायणके मरणसे विरक्त हो गया। फलस्वरूप समाधिगुप्त नामक महामुनिके पास तप तपकर उसने प्राणत स्वर्गमे इन्द्रका पद प्राप्त किया। वहाँ बीस सागरकी उसकी स्थिति थी। उतने समय तक देवोंकी लक्ष्मीका उपभोग कर धातकीखण्डके पश्चिम मेरुसे पूर्व विदेहक्षेत्रमे स्थित वत्सकावती देशकी प्रभाकरी नगरीके स्वामी महासेन राजाकी वसुन्धरा रानीमे जयसेन नामका पुत्र हुआ। क्रमसे उसके चक्ररत्न प्रकट हुआ, चक्रवर्ती होकर वह दीर्घकाल तक पृथिवीमण्डलकी रक्षा करता रहा। अन्तमे सीमन्धर तीर्थंकरके चरणकमलोंके मूलमे जिनदीक्षा प्राप्तकर उसने सोलह कारण भावनाओंका चिन्तवन किया तथा किये हुए सर्वोत्कृष्ट तपके द्वारा आठवें ग्रैवेयकमे अहमिन्द्र पदको प्राप्त किया। वहाँ तीस सागरकी स्थिति प्राप्तकर दिव्यभोगोंका उपभोग करता रहा। अन्तमे वहाँसे च्युत हो पुष्करार्ध द्वीप सम्बन्धी पूर्वमेरुके पूर्वविदेह क्षेत्रमे स्थित मंगलावती देशमें सुशोभित रत्नसचय नामकी राजधानीमें रहनेवाले अजितजय

§ ६१) सोऽय युगंधरजिन सुरमौलिराजी-
नीराजिताङ्घ्रियुगलः सकलाभिवन्द्यः ।
कैवल्यसपदमुपेत्य महीयतेऽद्य
भव्याम्बुजातवनमण्डलचण्डभानु ॥३२॥

§ ६२) तदेति मद्वचः श्रुत्वा बह्वो दर्शनं श्रिताः ।
युवा च धर्मसंवेगौ[1] परमं समुपागतौ ॥३३॥

§ ६३) हरिणाङ्कगर्वहरणाननाम्बुजे
पिहितास्रवस्य महितामराञ्चितम् ।
अयि केवलोदयमहं महागुणे !
सममागता वयमपि स्मरस्यद ॥३४॥

§ ६४) सुते स्मरसि किं भद्रे स्वयभूरमणोदधिम् ।
क्रीडाहेतोर्व्रजिष्यामो गिरिं चाञ्जनसञ्ज्ञकम् ॥३५॥

---

§ ६१) सोऽयमिति—सुराणा या मौलिराजी मुकुटपङ्क्तिस्तया नीराजितं कृतारार्तिकम् अङ्घ्रियुगल चरणकमल यस्य तथाभूत , सकलैर्निखिलसुरासुरलोकैरभिनन्द्य स्तवनीय , भव्या भव्यजीवा एवाम्बुजातवनमण्डल कमलवनसमूहस्तस्य चण्डभानु सूर्य सोऽय युगधरजिनोऽजितजयवसुमत्योरङ्गज अद्य कैवल्यसपद केवलज्ञानसपत्तिम् उपेत्य लब्ध्वा महीयते पूज्यते । रूपकालकार । वसन्ततिलकाच्छन्द ॥३२॥ § ६२) तदेतीति—तदा तस्मिन् काले इति पूर्वोक्तप्रकार मद्वचोऽस्मद्वाणी श्रुत्वा समाकर्ण्य बह्वो भूयासो जना दर्शनं सम्यक्त्व श्रिता प्राप्ता । युवा च स्वयप्रभाललिताङ्गौ परम समुत्कृष्ट यथा स्यात्तथा धर्मश्च सवेगश्चेति धर्मसवेगौ धर्मनिर्वेदौ समुपागतौ प्राप्तौ ॥३३॥ § ६३) हरिणाङ्केति—हरिणाङ्कश्चन्द्रस्तस्य गर्वहरण दर्पापहारकमाननाम्बुज मुखकमलं यस्यास्तत्सबुद्धौ, महान्तो गुणा यस्यास्तत्सबुद्धौ एवभूते अयि पुत्रि ! पिहितास्रवस्याजितजयापरनाम्नस्तपोधनस्य, महितामरै पूजितदेवैरञ्चित पूजित केवलोदयमह केवलज्ञानप्राप्तिमहोत्सवम्, वयमपि अच्युतेन्द्रस्वयप्रभाललिताङ्गादय सम सार्धम् आगता समायाता अद एतत् स्मरसि । मञ्जुभाषिणीच्छन्द ॥३४॥ § ६४) सुत इति—हे भद्रे कल्याणि ! सुते पुत्रि !, वय क्रीडाहेतो केलिनिमित्तात् स्वयभूरमणोदधि स्वयभूरमणनामानमन्तिमजलनिधिम्, अञ्जनसञ्ज्ञक तन्नामधेयं गिरिं च पर्वत च व्रजिष्यामोऽगच्छन् 'अभिज्ञावचने

राजाकी वसुमती रानीसे युगन्धर नामका पुत्र हुआ । § ६१) सोऽयमिति—देवोंकी मुकुटपंक्तिके द्वारा जिनके चरणयुगलकी आरती की गयी है, जो सबके द्वारा स्तुत्य है तथा भव्यजीवरूपी कमलवनके समूहको विकसित करनेके लिए सूर्य हैं ऐसे यह युगन्धर जिनराज आज केवलज्ञानरूपी सम्पदाको पाकर पूजित हो रहे हैं ॥३२॥ § ६२) तदेति—उस समय इस प्रकारके मेरे वचन सुनकर अनेक जीव सम्यक्त्वको प्राप्त हुए तथा तुम दोनों—स्वयप्रभा और ललिताग उत्कृष्ट रूपसे धर्म तथा संवेगको प्राप्त हुए थे ॥३३॥ § ६३) हरिणाङ्केति—जिसका मुखकमल चन्द्रमाके गर्वको हरनेवाला है तथा जो बहुत भारी गुणोंसे सहित है ऐसी हे बेटी ! तुझे स्मरण होगा कि हमलोग पिहितास्रव मुनिराजके उत्तमदेवोंसे पूजित केवलज्ञान प्राप्तिके महोत्सवमें साथ-साथ ही आये थे ॥३४॥ § ६४) सुत इति—हे कल्याणवती पुत्री ! तुझे यह भी स्मरण होगा कि हमलोग क्रीडाके लिए स्वयंभूरमण समुद्र और

---

१. धर्मसवेग क० ।

§ ६५) इति कर्णरसायनं पितृवचनमाकर्ण्य युष्मत्प्रसादविभवेनैतत्सर्वं जानामि किंतु शिरीषकोमलाङ्गो ललिताङ्गः क्व जातो न ज्ञायते इति प्रतिपादितवतीं श्रीमतीं पुनश्चक्रधरः प्रत्युवाच। भद्रे! युवयोः स्वर्गस्थयोरेवाच्युतकल्पात्प्राक् प्रच्युतोऽहं यशोधरमहीपतेर्वसुधरायाः देव्या वज्रदन्तः संजातः। युवां च स्वर्गाच्च्युतौ यथायोग्यं राजपुत्रौ जातौ।

§ ६६) ललिताङ्गि! तृतीयेऽह्नि ललिताङ्गचरेण ते।
संगमो भविताद्यैव तद्वार्तां वक्ति पण्डिता ॥३६॥

§ ६७) पैतृष्वस्रीय एवायं तव भर्ता भविष्यति।
अपाङ्गसुन्दरो यस्त्वन्नेत्रान्त इव भासते ॥३७॥

§ ६८) इति प्रतिपाद्य समागच्छन्तीं तव मातुलानीं वयं प्रत्युद्गच्छाम इति [1]चक्रधरे

लृट्' इत्यभिज्ञाया भूतानद्यतने लृट्लकारः। इति किं स्मरसि ध्यायसि ॥३५॥ § ६५) इतीति— इतीत्थं कर्णरसायनं श्रोत्रानन्ददायकं पितृवचनं जनकवचः आकर्ण्य निशम्य युष्मत्प्रसादविभवेन भवत्प्रसादैश्वर्येण एतत्सर्वं जानामि किन्तु शिरीषवत्कोमलं सुकुमारमङ्गं शरीरं यस्य तथाभूतो ललिताङ्गः पूर्वभवपतिः क्व जातः कुत्रोत्पन्नः इति न ज्ञायते। इतीत्थं प्रतिपादितवतीं निगदितवतीं श्रीमतीं चक्रधरो वज्रदन्तः पुनरपि प्रत्युवाच प्रतिजगाद। भद्रे! कल्याणि! युवयोः स्वयंप्रभाललिताङ्गयोः स्वर्गस्थयोस्त्रिदिवस्थितयोरेव सतोः अच्युतकल्पात् षोडशस्वर्गात् प्राक्प्रच्युतोऽवतीर्णोऽहमच्युतेन्द्रः यशोधरमहीपतेर्वसुधरादेव्या वज्रदन्त इति नाम्ना संजातः समुत्पन्नः। युवां च स्वयंप्रभाललिताङ्गौ यथायोग्यं स्वकृतपुण्यानुसारं पुत्रश्च पुत्री चेति पुत्रौ 'पुमान् स्त्रिया' इति पुंशेषः राज्ञो पुत्रौ राजपुत्रौ जातौ समुत्पन्नौ। § ६६) ललिताङ्गीति—हे सुन्दराङ्गि! तृतीये दिवसे ते तव भूतपूर्वो ललिताङ्ग इति ललिताङ्गचरस्तेन ललिताङ्गजीवेन सह संगमो भविता भविष्यति, तद्वार्तां ललिताङ्गचरसमाचारम् अद्यैव पण्डिता तन्नामधात्री वक्ति कथयिष्यति वच् परिभाषणे 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा' इति लट् ॥३६॥ § ६७) पैतृष्वस्रीय—पितृष्वसुरपत्यं पुमान् पैतृष्वस्रीयो मम भगिनीपुत्र एवायं तव भर्ता पतिर्भविष्यति यो भर्ता त्वन्नेत्रान्त इव त्वदीयनेत्रकोण इव अपाङ्गसुन्दरः अपाङ्गैः कटाक्षैः सुन्दरः पक्षे अपाङ्ग इवानङ्ग इव सुन्दरो मनोहरः भासते शोभते। श्लेषोपमा ॥३७॥ § ६८) इतीति—इतीत्थं प्रतिपाद्य कथयित्वा, तव भवत्या मातुलानीं प्रियाम्बिकां 'मातुलानी प्रियाम्बिका' इति

अञ्जनगिरि पर्वत पर गये थे ॥३५॥ § ६५) इतीति—इस प्रकार कानोंके लिए आनन्ददायक पिताके वचन सुनकर आपके प्रसादसे यह सब जानती हूँ। किन्तु शिरीषके समान सुकुमार शरीरवाला ललितांग कहाँ उत्पन्न हुआ है यह नहीं ज्ञात हो रहा है इस प्रकार कहनेवाली श्रीमतीसे चक्रवर्ती वज्रदन्तने फिर कहा। हे भद्रे! जब तुम दोनों स्वर्गमें ही स्थित थे तब मैं अच्युतस्वर्गसे पहले च्युत होकर यशोधर महाराजकी वसुन्धरादेवीसे वज्रदन्त हुआ हूँ और तुम दोनों भी स्वर्गसे च्युत होकर यथायोग्य राजपुत्री तथा राजपुत्र हुए हो। § ६६) ललितांगीति—हे मनोहरांगि! तीसरे दिन तुम्हारा ललितांगके जीवके साथ समागम हो जावेगा यह बात आज ही पण्डिता कहेगी ॥३६॥ § ६७) पैतृष्वस्रीय—यह तेरी बुआका पुत्र ही तेरा भर्ता होगा जो कि तेरे नेत्रके कोणके समान अपांग सुन्दर है—कटाक्षोंसे मनोहर है (पक्षमें कामके समान सुन्दर है) ॥३७॥ § ६८) इतीति—इस प्रकार प्रतिपादन कर चक्रवर्ती वज्रदन्त तो यह कहकर चले गये कि हम तुम्हारी आती हुई मामीको लेनेके लिए

---

१ निर्गते चक्रधरे क०।

गतिधरे, तत्क्षणमखण्डितमति पण्डितापि समागत्य कार्यसिद्धिसतुष्टहृदयालवालसजातप्रीतिलता-पुष्पायमाणमन्दस्मितसुन्दरवदनारविन्दा प्रियतमोदन्तश्रवणकौतुकविलासवती श्रीमती प्रीतिमधुर-मेव कथयामास ।

§ ६९) कोमलाङ्गि ! कुसुमास्त्रपताके ! त्वन्मनोरथतरुः फलितोऽभूत् ।
सप्रपञ्चमरुणाधरबिम्बे ! व्याहरामि तदिद शृणु कन्ये ! ॥३८॥

§ ७०) इतः किल पट्टकमादाय महापूतजिनालयमासाद्य, तत्र विचित्रपट्टकशालाया पट्टक प्रसार्य, बहून्समागतान्पण्डितमानिनः पतिब्रुवान् गूढार्थसकटे प्रकटितमोहान्विदधानाया मयि स्थितवत्या, बिम्बाधरि ! तव कचवद् भ्रमरहित, भालवत्सुपर्वराजसुन्दर, कुचमण्डलवत् सर-

---

घनजय । वय प्रत्युद्गच्छाम , ता सत्कृत्यानेतु गच्छाम इतीत्थ कथयित्वा चक्रधरे वज्रदन्ते गतिवरे गते सति, तत्क्षण तत्कालम्, अखण्डिता मतिर्यस्यास्तथाभूता पूर्णप्रतिभाशालिनी कार्यस्य ललिताङ्गान्वेषरूपस्य सिद्ध्या सतुष्ट प्रीत हृदयमेवालवाल आवापस्तस्मिन् सजाता समुत्पन्ना या प्रीतिलता प्रीतिवल्ली तस्या पुष्पायमाणेन कुसुमवदाचरता मन्दस्मितेन मन्दहास्येन सुन्दर मनोहर वदनारविन्द मुखकमल यस्यास्तथाभूता पण्डितापि तन्नामधात्र्यपि प्रियतमस्य ललिताङ्गस्य य उदन्त समाचारस्तस्य श्रवणकौतुकेन समाकर्णनकुतूहलेन विलासवती विभ्रमशालिनी श्रीमती प्रीतिमधुर यथा स्यात्तथा एव वक्ष्यमाणप्रकारेण कथयाबभूव जगाद । § ६९) कोमलाङ्गीति—हे कोमलाङ्गि ! हे मृदुलशरीरे ! कुसुमास्त्र कामस्तस्य पताका वैजयन्ती तत्सबुद्धौ हे कुसुमास्त्रपताके ! अरुणो रक्तोऽधरबिम्बो यस्यास्तत्सबुद्धौ हे अरुणाधरबिम्बे ! तव मनोरथ एव तरुस्त्वन्मनोरथतरुस्त्वदीयाभिलाषपादप फलानि सजातानि यस्मिन् स फलित. फलयुक्त, अभूत् । हे कन्ये ! तदिद सप्रपञ्च सविस्तर व्याहरामि कथयामि शृणु समाकर्णय । स्वागताच्छन्द. ॥३८॥ § ७०) इत इति—इत किल त्वदीयपार्श्वात् पट्टक त्वद्रचित चित्रफलकम् आदाय गृहीत्वा महापूतजिनालय तन्नामजिनेन्द्रमन्दिरम् आसाद्य प्राप्य, तत्र जिनालये विचित्रा चासौ पट्टकशाला चेति विचित्रपट्टकशाला तस्या विस्मयोत्पादकचित्रशालाया पट्टक चित्रफलक प्रसार्य, समागतान् समायातान् आत्मान पण्डित मन्यन्त इति पण्डितमानिनस्तान् अपतित्वेऽपि आत्मान पति ब्रुवन्तीति पतिब्रुवास्तान् बहून् भूयसो जनान् गूढश्चासावर्थसकटश्च तस्मिन् गभीरार्थसकटस्थले प्रकटितो मोहो विभ्रमो येषा तथाभूतान् विदधानाया कुर्वाणाया मयि स्थितवत्या सत्या, निम्नमिवाधरो दशनच्छदो यस्यास्तत्सबुद्धौ हे बिम्बाधरि ! तत्र महापूतजिनालये तव श्वसुरस्यापत्य पुमान् श्वशुर्यो वल्लभो

जाते हैं और उसी क्षण अखण्ड प्रतिभाको धारण करनेवाली पण्डिता कार्यसिद्धिसे सन्तुष्ट हृदयरूपी क्यारीमें उत्पन्न प्रीतिरूपी लताके पुष्पके समान आचरण करनेवाली मन्द मुसकानसे सुन्दर मुखकमलसे सुशोभित होती हुई आ पहुँची और प्रियतम सम्बन्धी समाचारोंके सुननेके कौतुकसे प्रकट होनेवाली विलासोंसे युक्त श्रीमतीसे प्रेमपूर्वक इस प्रकार कहने लगी। § ६९) कोमलागीति—हे कोमलांगि ! हे सुकुमारशरीरे ! हे कामपताके ! हे लोहिताधरबिम्बे ! हे कन्ये ! तुम्हारा मनोरथरूपी वृक्ष फलीभूत हो गया है। यह सब समाचार मैं विस्तारसे कहती हूँ सुन ॥३८॥ § ७०) इतः किलेति—यहाँसे चित्रपट लेकर मैं महापूत जिनालय गयी और वहाँकी विचित्र चित्रशालामें चित्रपट फैलाकर बैठ गयी। वहाँ ऐसे बहुतसे मनुष्य आये जो अपने आपको पण्डित मानते थे तथा अपने आपको झूठ-मूठ ही तुम्हारा पति कहते थे। ऐसे लोगोंको मैं गूढ अर्थके संकटमें मोहयुक्त कर देती थी। हे बिम्बके समान लाल-लाल ओठों वाली ! इस प्रकार वहाँ बैठे-बैठे मुझे जब कुछ समय हो गया तब तुम्हारे श्वशुरका पुत्र वज्रजंघ जिनालयमें आया और भगवान् अर्हन्त देवकी पूजा कर चित्रशालामें पहुँचा। उसकी सुन्दरताके विषयमें क्या कहूँ ? वह तुम्हारे केशोंके

सहितवृत्तिः, भ्रूयुगलवद्धर्मोल्लसद्गुणः, आदिकन्द शृङ्गारपादपस्य, रोहणगिरिः सकलगुणमणिगणस्य, प्रभवशैल कदर्पकथाकल्लोलिनीना, वसन्तसमयो वैदग्ध्यसहकारस्य, आदर्शतल सौजन्यमुखस्य, आलवालतल विद्यालताना, स्वयवरपति सरस्वत्याः, सकेतसदन कीर्तिलक्ष्म्याः, कुलभवन शीलसपदा, कोशगृह सौन्दर्यधनस्य त्रिभुवनरमणीयाकृतिस्तव श्वसुर्यो वज्रजङ्घस्तत्र समागत्य भगवन्तमर्हन्तमभ्यर्च्य पट्टकशालामाससाद ।

§ ७१) निर्वर्ण्य पट्टकमिद निरवद्यरूप-
स्तत्पट्टके विलिखित स्फुटमाह सोऽयम् ।

वज्रजङ्घस्तन्नामधेय समागत्य भगवन्त प्रातिहार्योपेतम् अर्हन्त जिनेन्द्रम् अभ्यर्च्य पूजयित्वा पट्टकशालाम् आससाद प्राप । अथ वज्रजङ्घस्य विशेषणान्याह—तव श्रीमत्या कचवत् केशवत् भ्रमरहित. भ्रमेण भ्रान्त्या रहित कचपक्षे भ्रमरेभ्यो हित., भालवत् ललाटवत् सुपर्वराजसुन्दर सुपर्वणा देवाना राजा सुपर्वराज इन्द्रस्तद्वत्सुन्दर पक्षे सुपर्वण पौर्णमास्या राजा चन्द्रस्तद्वत्सुन्दर, कुचमण्डलवत् स्तनमण्डलवत् सरसहितवृत्ति सरसेभ्य सस्नेहेभ्यो हिता हितरूपा वृत्तिश्चेष्टा यस्य स पक्षे सरेण हारेण सहिता वृत्तिरवस्थान यस्य, भ्रूयुगलवत् भ्रकुटियुग्ममिव धर्मोल्लसद्गुण धर्मेण रत्नत्रयरूपेण उल्लसन्त शोभमाना गुणा दयादाक्षिण्यादयो यस्य स पक्षे धर्म इव धनुरिव उल्लसद्गुण शोभमानसौन्दर्य यस्य, शृङ्गारपादपस्य शृङ्गारमहीरुहस्य आदिकन्द मूलकन्द, सकलगुणमणिगणस्य सकला निखिला ये गुणमणयस्तेषा गणस्य समूहस्य रोहणगिरिर्विदूर्यो गिरि, कदर्पकथा कामकथा एव कल्लोलिन्यो नद्यस्तासा प्रभवशैल उत्पत्तिगिरि, वैदग्ध्य चातुर्यमेव सहकारोऽतिसौरभाम्रस्तस्य वसन्तसमयो मधुमास, सौजन्यमेव मुख तस्य सज्जनतावदनस्य आदर्शतल मुकुरतलम्, विद्या एव लता वल्लर्यस्तासाम् आलवालतलम् आवापप्रदेश, सरस्वत्या शारदाया स्वयवरपति स्वयस्वीकृतो वल्लभ, कीर्तिलक्ष्म्या यश श्रिया. सकेतसदन मेलनस्थान, शीलसपदा साधुत्वसपत्तीना कुलभवन, सौन्दर्यमेव धन तस्य कोशगृह कोषालय, त्रिभुवनात् त्रिलोक्या रमणीया मनोहरा आकृतिर्यस्य तथाभूत । श्लिष्टोपमाल्पकालकार । § ७१) निर्वर्ण्येति—अस्य मुख वदन राजान चन्द्रमस, प्रतापस्तेजो हस सूर्य 'हस पक्ष्यात्म-

---

समान था क्योंकि जिस प्रकार तुम्हारे केश भ्रमर-हित—भ्रमरोंके लिए हितकर हैं उसी प्रकार वह भी भ्रमरहित—भ्रान्तिसे रहित था। अथवा तुम्हारे ललाटके समान था क्योंकि जिस प्रकार तुम्हारा ललाट सुपर्वराजसुन्दर—पौर्णमासीके चन्द्रमाके समान सुन्दर है उसी प्रकार वह भी सुपर्वराजसुन्दर—इन्द्रके समान सुन्दर था। अथवा तुम्हारे कुचमण्डल—स्तनबिम्बके समान था क्योंकि जिस प्रकार कुचमण्डल सरसहितवृत्ति हारसे सहित वृत्तिवाला है उसी प्रकार वह भी सरसहितवृत्ति—सस्नेह जीवोंके लिए हितकारी वृत्तिसे युक्त था। अथवा तुम्हारी भौंहोंके युगलके समान था क्योंकि जिस प्रकार भौंहोंका युगल धर्मोल्लसद्गुण—धनुषके समान शोभायमान सौन्दर्यसे युक्त है उसी प्रकार वह भी रत्नत्रय रूप धर्मसे शोभायमान दया दाक्षिण्य आदि गुणोंसे युक्त था। वह शृंगाररूपी वृक्षका मूलकन्द था, समस्त गुणरूपी मणियोंके समूहके लिए रोहणगिरि था, कामकथारूपी नदियोंकी उत्पत्तिका पर्वत था, चातुर्यरूपी आम्रवृक्षके लिए वसन्तऋतु था, सज्जनतारूपी मुखके लिए दर्पणका तल था, विद्यारूपी लताओंकी क्यारी था, सरस्वतीका स्वय स्वीकृत किया हुआ पति था, कीर्तिरूपी लक्ष्मीका संकेतभवन—मिलनेका गुप्तस्थान था, शीलरूप सम्पत्तियोंका कुलभवन था, सौन्दर्यरूपी धनका खजाना था तथा उसकी आकृति तीनों लोकोंसे रमणीय थी। § ७१) निर्वर्ण्येति—जिसका मुख चन्द्रमाको, प्रताप सूर्यको और निर्मल यश राजहंस पक्षी-

---

१. आदिकन्द क० ।

राजानमुज्जयति यस्य मुख प्रतापो
हस यशश्च विमल किल राजहसम् ॥३९॥

§ ७२) यस्य चन्द्रनिभा कीर्तिर्हासहृद्य मुखाम्बुजम् ।
करश्च समरारम्भे चन्द्रहासमनोरमः ॥४०॥

§ ७३) सुमाभं यस्य हसित भ्रूयुग चापसनिभम् ।
राजते यः शरीरेण सुमचापमनोहरः ॥४१॥

§ ७४) यः काञ्चनश्रिय धत्ते यशो यस्याचल भुवि ।
यो धैर्येण महिम्ना च काञ्चनाचलसनिभः ॥४२॥

§ ७५) यस्याम्बरोज्ज्वलो देहो मणिभिश्च विराजितः ।
यश्चकास्ति प्रतापेन जिताम्बरमणि सदा ॥४३॥

§ ७६) प्रभया तुलयत्येप स्वर्णमब्ज करेण च ।
प्रभाकरेण तुलयन्प्रताप यो विराजते ॥४४॥

सूर्येपु' इत्यमर । विमल निर्मल यश कीर्ति राजहस मरालविशेषम् उज्जयति पराजयते, निरवद्यं निर्दुष्ट रूप सौन्दर्यं यस्य तथाभूत सोऽय वज्रजङ्घ इद पट्टक चित्रफलक त्वन्निर्मित निर्वर्ण्य दृष्ट्वा तत्पट्टके विलिखित समङ्कित स्फुट यथा स्यात्तथा आह जगाद । उपमा । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥३९॥ § ७२) यस्येति—यस्य वज्रजङ्घस्य कीर्ति समज्ञा चन्द्रविभा शशिसदृशी, मुखाम्बुज वदनारविन्द हासेन मन्दस्मितेन हृद्य मनोहरम्, करश्च हस्तश्च समरारम्भे युद्धारम्भे चन्द्रहासेन खड्गेन मनोरमो रमणीय आसीदिति शेष ॥४०॥ § ७३) सुमाभमिति—यस्य वज्रजङ्घस्य हसित हास्य सुमाभ पुष्पसदृश, भ्रूयुगं भ्रकुटियुगल चापसनिभ धनु सदृश, य स्वय च शरीरेण देहेन सुमचाप इव काम इव मनोहर कमनीय आसीत् ॥४१॥ § ७४) य इति—यो वज्रजङ्घ काञ्चनश्रिय सुवर्णशोभा धत्ते दधाति, यस्य वज्रजङ्घस्य यश कीर्ति. भुवि अचल स्थायि वर्तत इति शेष । यो वज्रजङ्घो धैर्येण स्थैर्येण महिम्ना च माहात्म्येन च काञ्चनाचल-सनिभ. सुवर्णशैलसदृश. अस्तीति योज्यम् ॥४२॥ § ७५) यस्येति—यस्य वज्रजङ्घस्य देह काय अम्बरै-र्वस्त्रैरुज्ज्वल' शोभमान, मणिभि. रत्नै विराजितश्च शोभितश्च अस्तीति शेष । यश्च प्रतापेन तेजसा जितोऽम्बरमणि सूर्यो येन तथाभूत. सन् सदा चकास्ति शोभते ॥४३॥ § ७६) प्रभयेति—एष वज्रजङ्घ. प्रभया कान्त्या स्वर्ण हेम तुलयति उपमिनोति करेण पाणिना अब्ज कमल च तुलयति । यश्च प्रताप तेजः

को जीतता है तथा जो निर्दोषरूपका धारक है ऐसा वह वज्रजघ इस चित्रपटको देखकर उसमे लिखी हुई बातोंको स्पष्ट रूपसे कहने लगा ॥३९॥ § ७२) यस्येति—जिसकी कीर्ति चन्द्रमाके समान है, मुख मन्दहास्यसे सुन्दर है और जिसका हाथ युद्धके प्रारम्भमे चन्द्र-हास—तलवारसे सुन्दर है ॥४०॥ § ७३) सुमाभमिति—जिसका हास्य फूलके समान है, भौहोंका युगल धनुषके समान है और जो स्वयं शरीरसे कामदेवके समान मनोहर है ॥४१॥ § ७४) य इति—जो वज्रजंघ सुवर्णकी शोभाको धारण करता है, जिसका यश पृथिवीपर स्थायी है तथा जो धैर्य और महिमाके द्वारा सुमेरुके समान है ॥४२॥ § ७५) यस्येति—जिसका शरीर वस्त्रोंसे देदीप्यमान है तथा मणियोंसे सुशोभित है और स्वय प्रतापसे सूर्यको जीतता हुआ सुशोभित रहता है ॥४३॥ § ७६) प्रभयेति—यह प्रभासे स्वर्णकी तथा हाथसे कमलकी तुलना करता है और जो प्रतापको सूर्यसे उपमित करता हुआ सुशोभित है ॥४४॥

§ ७७) इदं किल श्रीप्रभविमानम्, अयं च श्रीप्रभाधिपतिरहं ललिताङ्गः। इयं च तत्पार्श्वे सौन्दर्यसीमाभूमिः स्वयंप्रभा। अयमैशानकल्पः, इयमिन्दिदिरचुम्बितकुसुमसंदोहतुन्दिलमन्दरवीथी, इदं पद्मसरः, अयं कृतकाचलः, अत्र मन्दारवाटिकायां प्रणयकोपपराङ्मुखी राकाशशिमुखी स्वयंप्रभा समीरसमाहतकल्पलतेव विलिखिता। इयं चावयोः कनकाचलतटक्रीडा दर्शिता, इतः किल देदीप्यमानमणिप्रकाण्डमण्डलमण्डितकाण्डपटावृते शय्यागेहे निगूढप्रेमबन्धबन्धुरेर्ष्याविशेन मणिनूपुरझङ्कारमनोहरेण चरणेन मां बलात्ताडयन्ती, किङ्किणीकलकलवाचालेन काञ्चीकलापेन सान्त्ववचनपरेण सखीजनेनेव संरुद्धा, प्रणयकोपपरीतस्य मम पादे पतन्ती स्वयंप्रभा दर्शिता। अत्राच्युतेन्द्रसमायोगगुरुपूजादिकं विस्तरेण लिखितम्। अत्र किल चित्रमण्डपे प्रणयकोपकलित-

---

प्रभाकरेण सूर्येण तुलयन् विराजते शोभते ॥४४॥ § ७७) इदमिति—अथ वज्रजङ्घश्चित्रफलकरहस्यं प्रकटयति। इदमेतत् किल श्रीप्रभविमानम्, अयं च श्रीप्रभविमानाधिपतिः अहं ललिताङ्गः, इयं च तत्समीपे सौन्दर्यस्य सीमाभूमिरिति सौन्दर्यसीमाभूमिः सौन्दर्यस्य पराकाष्ठा स्वयंप्रभा ललिताङ्गामरस्य वल्लभा। अयम् ऐशानकल्पो द्वितीयस्वर्गः, इयमेषा इन्दिदिरैरलिभिश्चुम्बितेन कुसुमसंदोहेन पुष्पप्रचयेन तुन्दिला वृद्धिंगता मन्दारवीथी कल्पवृक्षवाटिका। इदं पद्मसरः कमलकासारः, अयं कृतकाचलः कृत्रिमशैलः अत्र मन्दारवाटिकायां कल्पवृक्षवन्यां प्रणयकोपेन कृत्रिमक्रोधेन पराङ्मुखी विमुखा, राकाशशीव पौर्णमासीन्दुरिव मुखं वक्त्रं यस्यास्तथाभूता स्वयंप्रभा ललिताङ्गप्रिया समीरेण प्रभञ्जनेन समाहता ताडिता या कल्पवल्ली कल्पलता तद्वत् विलिखिता चित्रिता इयं च आवयोः स्वयंप्रभाललिताङ्गयोः कनकाचलतटक्रीडा सुमेरुतटकेलिः दर्शिता प्रकटिता। इतः किल देदीप्यमाना अतिशयेन पुनः पुनश्च दीप्यन्त इति देदीप्यमाना ये मणिप्रकाण्डा रत्नश्रेष्ठास्तेषां मण्डलेन समूहेन मण्डितः शोभितो यः काण्डपटो यवनिकावस्त्रं तेन आवृते पिहिते शय्यागेहे मदनोत्सवागारे निगूढप्रेमबन्धेन गुप्तप्रीतिबन्धेन बन्धुरा सहिता, ईर्ष्याविशेन मत्सराधीनत्वेन मणिनूपुराणां रत्नतुलाकोटीनां झङ्कारेण मनोहरस्तेन चरणेन पादेन मां ललिताङ्गं बलात् हठात् ताडयन्ती, किङ्किणीनां क्षुद्रघण्टिकानां कलकलेनाव्यक्तशब्देन वाचालो मुखरस्तेन काञ्चीकलापेन कटिसूत्रसमूहेन सान्त्ववचनतत्परेण। प्रशमनवचनोद्यतेन सखीजनेनेव वयस्यासमूहेन संरुद्धा निषिद्धा, प्रणयकोपेन कृत्रिमक्रोधेन परीतस्य व्याप्तस्य मम ललिताङ्गस्य पादे चरणे पतन्ती स्वयंप्रभा दर्शिता प्रकटिता। अत्र अच्युतेन्द्रस्य समायोगे समेलने गुरुपूजादिकं गुरुसपर्याप्रभृति कार्यं

---

§ ७७) इदमिति—वज्रजंघ श्रीमती द्वारा रचित चित्रपटका रहस्य प्रकट करता हुआ कहता है कि यह श्रीप्रभविमान है और यह श्रीप्रभविमानका स्वामी मैं ललितांगदेव हूँ। यह उसके पासमें स्थित परम सुन्दरी स्वयंप्रभा है। यह ऐशान स्वर्ग है, यह भ्रमरोंसे चुम्बित फूलोंके समूहसे वृद्धिको प्राप्त हुई कल्पवृक्षोंकी वीथी है। यह कमलसरोवर है, यह कृत्रिम पर्वत है, इस कल्पवृक्षोंकी बगियामें बनावटी क्रोधसे मुख फेरकर बैठी हुई पूर्ण चन्द्रमुखी स्वयंप्रभा वायुसे ताडित कल्पवेलके समान लिखी गयी है। यह हम दोनोंकी सुमेरुपर्वतके तटपर होनेवाली क्रीडा दिखलायी गयी है। इधर चमकते हुए श्रेष्ठ मणियोंके समूहसे सुशोभित परदोंसे आच्छादित शयनागारमें अत्यन्त गूढप्रेमके बन्धसे सहित स्वयंप्रभा दिखलायी गयी है। यह ईर्ष्याके वशसे मणिमय नूपुरोंकी झनकारसे मनोहर चरणसे मुझे हठपूर्वक ताडित कर रही है। ताडित करते समय छोटी-छोटी घंटियोंके कल-कल शब्दसे शब्दायमान करधनीकी कड़ियाँ इसके पाँवमें लग गयी हैं उनसे ऐसी जान पड़ती है मानो शान्तिके वचन कहनेमें तत्पर सखियाँ इसे रोक ही रही हों। इधर जब मैं भी बनावटी क्रोधसे युक्त हो गया तब यह मेरे चरणोंमें पड़ने लगी। इधर अच्युतेन्द्रके साथ मिलाप होनेपर गुरुपूजा आदिके कार्य विस्तारसे लिखे गये हैं। इधर इस चित्रमण्डपमें दिखाया गया है—प्रणयकोपसे जिसका

स्वान्ताया. कान्तायाः पादयो. पतन् कर्णोत्पलेन ताड्यमानोऽहृ प्रदर्शितः। इतश्च तरुणकिसलयमनोरमचरणकलितलाक्षामुद्रया मदुरःस्थले विरचित लाञ्छन न प्रकटितम्। इह च कान्ताकपोलफलकयोर्विचित्रपत्राणि विलिखन्नहं न प्रकाशितः। इदं स्वयप्रभादेव्यैव विलिखितं स्यादथवा-स्मत्क्रीडासाक्षीभूतया रतिदेव्या, यद्वा तद्वृत्तान्त सर्वमनुभूतवत्या स्वर्गश्रियेति वितर्कयन् वज्रजङ्घः क्षण पर्याकुलो मूर्च्छामुपजगाम।

§ ७८) परिवारजनैः[१] कृतोपचारस्तरुणस्तत्र चिरेण लब्धसञ्ज्ञः।
कलशस्तनि! केन चित्रमेतल्लिखित स्यादिति मामपृच्छदेष ॥४५॥

§ ७९) एवं पृष्टाहमिदमवोचम्।

§ ८०) त्वन्मातुलान्यास्तनया तव स्त्री तडित्सवर्णा तरलायताक्षी।
सा श्रीमती यन्मुखमेव जातो नभोगता त्यक्तुमिवोडुराजः ॥४६॥

विस्तरेण लिखित दर्शितम्। अत्र किल चित्रमण्डपे प्रणयकोपेन कृत्रिमकोपेन कलित युक्त स्वान्त चित्त यस्यास्तस्या कान्ताया स्वयप्रभाया' पादयो पतन् कर्णोत्पलेन श्रवणावतसेन ताड्यमानोऽहृ प्रदर्शित प्रकाशित। इतश्च तरुणकिसलयवत् वालपल्लववत् मनोरमौ मनोहरौ यौ चरणौ तयो कलिता धृता या लाक्षामुद्रा जतुरसमुद्रा तया मदुर स्थले मदीयवक्ष स्थले विरचित कृत लाञ्छन चिह्न न प्रकटित न दर्शितम्। इह च कान्ताकपोलफलकयो वल्लभागल्लपट्टकयो विचित्रपत्राणि नानापत्राणि विलिखन् केशरकस्तूर्यादिद्रवेण रचयन् अह ललिताङ्गो न प्रकाशित। इदं चित्र स्वयप्रभदेव्यैव विलिखितं रचित स्यात् अथवा आवयो क्रीडाया साक्षीभूततया रतिदेव्या, यद्वा सर्वं निखिल तद्वृत्तान्त तत्समाचारम् अनुभूतवत्या स्वर्गश्रिया त्रिदिवलक्ष्म्या विलिखितं स्यात् इति वितर्कयन् विचारयन् वज्रजङ्घ क्षण पर्याकुलो व्यग्र सन् मूर्च्छाम् उपजगाम प्राप मूर्च्छितोऽभवदिति भाव.। § ७८) परिवारेति—तत्र चित्रशालाया परिवारजनै कुटुम्बिजनै कृतोपचारो विहितशिशिरोपचार चिरेण लब्धा प्राप्ता सञ्ज्ञा चेतना येन तथाभूत एष तरुणो युवा वज्रजङ्घ हे कलशस्तनि! कलशाविव स्तनौ यस्यास्तत्सम्बुद्धौ हे घटकुचे! एतत् चित्र केन लिखित स्यात् इति माम् अपृच्छत् ॥४५॥ § ७९) एवमिति—एवमनेन प्रकारेण पृष्टानुयुक्ता अह श्रीमती इद वक्ष्यमाणम् अवोचम् जगाद। § ८०) त्वदिति—यया एतत् चित्र लिखित सा त्वन्मातुलान्या त्वदीयप्रियाम्बिकाया तनया पुत्री तव भवत स्त्रीभूतपूर्वा वल्लभा भविष्यन्ती

चित्र व्याप्त है ऐसी वल्लभा-स्वयंप्रभाके चरणोंमें मैं नम्रीभूत हो रहा हूँ और यह कानोंके उत्पलसे मुझे ताड़ित कर रही है। इस ओर बाल-पल्लवोंके समान सुन्दर चरणोंमें लगे हुए लाखके महावरके रंगसे मेरे वक्षःस्थलमे एक चिह्न इसने बनाया था जो नहीं दिखाया गया है। इधर कान्ताके गालोंपर नाना प्रकारकी पत्ररचना करता हुआ मैं नहीं दिखाया गया हूँ। यह चित्रपट स्वयंप्रभा देवीके द्वारा ही रचा हुआ होना चाहिए अथवा हम दोनोंकी क्रीड़ाकी साक्षीभूत रतिदेवीके द्वारा अथवा उस समस्त वृत्तान्तका अनुभव करनेवाली स्वर्गकी लक्ष्मीके द्वारा रचा गया है। इस प्रकार विचार करता हुआ वज्रजघ क्षण एक व्याकुलताका अनुभव करता हुआ मूर्च्छाको प्राप्त हो गया। § ७८) परिवारेति—वहाँ परिवारके लोगोंके द्वारा जिसका उपचार किया गया था ऐसा यह युवा बहुत देर बाद सचेत होकर मुझसे पूछने लगा कि घटस्तनि! यह चित्र किसने लिखा है? ॥४५॥ § ७९) एवमिति—इस प्रकार पूछनेपर मैंने यह कहा। § ८० त्वदिति—जिसने यह चित्र लिखा है वह तुम्हारी मामीकी पुत्री है, तुम्हारी स्त्री है, विजलीके समान वर्णवाली है, चंचल तथा विशाल नेत्रों

---

१ परिचारिजनैः क०।

§ ८१) कुटिलभ्रूयुग तस्या धनुश्चेद्रमणीमणे. ।
न तिष्ठेत तदा कन्या मुखभागे मनोहरे ॥४७॥

§ ८२) आहोस्विद्युक्तमेवेदं सा कन्यापि ग्रहोज्ज्वला ।
तुला त्यजति लोलाक्षी कुसुमेषुपताकिका ॥४८॥

§ ८३) रोमराजिर्हरिनिभा तालहृद्य स्तनद्वयम् ।
तनुकान्तिश्च तन्वङ्ग्या हरितालमनोहरा ॥४९॥

§ ८४) तस्या· किल कुम्भीन्द्रकुम्भसंनिभ कुचकुम्भविम्बो, विम्वसहोदरोऽधरो, धरतुलित नितम्बवलय, वलयाञ्चित करकिसलय, सलयमधुरा गानकला, कलानिधिमदहर स्मितकुसुम, कुसुमचापतूणीरसकाश जङ्घायुग, युगायता भुजलता, लतान्तसुकुमारा तनुसपदिति ।

च, तडित्सवर्णा विद्युदाभा तरले आयते अक्षिणी नयने यस्यास्तथाभूता सा श्रीमती अस्ति । उडूना नक्षत्राणा राजा उडुराजश्चन्द्र. न विद्यन्ते भोगा यस्य नभोगस्तस्य भावस्ता भोगराहित्य पक्षे नभसि विहायसि गच्छतीति नभोगस्तस्य भावस्ता त्यक्तुमिव यस्या मुख यन्मुख यद्वक्त्रमेव जात , समुत्पन्न । श्लेषोत्प्रेक्षा। उपजातिवृत्तम् । § ८१) कुटिलेति—तस्या पूर्वोक्ताया रमणीमणेर्वनितारत्नस्य मनोहरे सुन्दरे मुखभागे वक्त्रप्रदेशे ललाट-इत्यर्थ , कुटिलभ्रूयुग वक्रभ्रूकुटियुगलं धनु कोदण्ड पक्षे ज्योतिपशास्त्रे प्रसिद्धा धनुराशि चेदस्ति तर्हि सा कन्याल्पवयस्का न तिष्ठेत पक्षे कन्याराशि न तिष्ठेत तरुण्या एव मुखे भ्रूयुग कुटिल भवति न तु वालाया इत्यर्थ । श्लेष ॥४७॥ § ८२) आहोस्विदिति—आहोस्वित् अथवा इद युक्तमेवोचितमेव यत् ग्रहवत् सूर्यादिवत् उज्ज्वला देदीप्यमाना, लोले अक्षिणी यस्यास्तथाभूता चपललोचना, कुसुमेषो कामस्य पताकिका वैजयन्ती सा श्रीमती कन्यापि कन्याराशिरपि पक्षे वालरूपापि तुला तुलाराशि पक्षे उपमा त्यजति । श्लेष ॥४८॥ § ८३) रोमेति—तन्वङ्ग्या कृशाङ्ग्या रोमराजि लोमलेखा हरिनिभा सर्पसदृशी 'हरिर्गोविन्द-वारीन्द्रचन्द्रवातेन्द्रभानुषु । यमाहिकपिभेकाश्वशुकेऽशोकान्तरे त्विषि' इति विश्वलोचन । स्तनद्वय कुचयुगल तालहृद्य तालफलमिव सुन्दर, तनुकान्तिश्च देहदीप्तिश्च हरितालमनोहरा हरितालवन्मनोहरा पीतेत्यर्थ ॥४९॥ § ८४) तस्या इति—तस्या श्रीमत्या किल कुचकुम्भविम्ब. स्तनकलशमण्डल कुम्भीन्द्रकुम्भसनिभ गज-राजगण्डस्थलसदृश अधरो दशनच्छद विम्वसहोदरो रुचकसदृश रक्तवर्ण इत्यर्थ , नितम्ववलय नितम्वमण्डल धरतुलित पर्वतोपमित, करकिसलय पाणिपल्लव वलयाञ्चित कटकशोभितम्, गानकला गीतवैदग्धी सलयमधुरा

से युक्त है, श्रीमती उसका नाम है। चन्द्रमा नभोगता—भोगोंके अभाव (पक्षमे आकाश-गामित्व) को छोड़नेके लिए ही मानो जिसका मुख हो गया है अर्थात् वह चन्द्रमुखी है ॥४६॥ § ८१ कुटिलेति—स्त्रियोंमे रत्नस्वरूप उस श्रीमतीके मनोहर मुखभाग—ललाटपर कुटिल भौंहोंका युगल यदि धनुष है (पक्षमे धनुष राशि है) तो वह कन्या नहीं रह सकती—अल्पवयस्का नहीं हो सकती अर्थात् तरुणी है (पक्षमे कन्याराशि नहीं हो सकती क्योंकि ज्योतिषमे धनुष और कन्या राशि पृथक्-पृथक् हैं) ॥४७॥ § ८२) आहोस्विदिति—अथवा यह उचित ही है कि ग्रहके समान देदीप्यमान, चचल नेत्रोंवाली तथा कामदेवकी पताका स्वरूप वह श्रीमती कन्या—अल्पवयस्का (पक्षमे कन्याराशि) होकर भी तुला—उपमा (पक्ष-मे तुलाराशि) को छोड़ती है ॥४८॥ § ८३) रोमराजीति—कृश शरीरवाली उस श्रीमतीकी रोमपक्ति हरि—सर्पके समान है, दोनों स्तन तालके समान सुन्दर हैं और शरीरकी कान्ति हरितालके समान मनोहर है—पीतवर्ण है ॥४९॥ § ८४) तस्या इति—उस श्रीमतीके स्तन-कलशका मण्डल गजराजके गण्डस्थलके समान है, अधरोष्ठ रुचक फलके समान है, नितम्व-मण्डल पर्वतके समान है, हस्तपल्लव कटकसे सुशोभित है, उसकी गानकला लयसे सहित

§ ८५) सा किल तरुणीमणिर्भवदीयवियोगहुतवहतान्ता कान्ता किंचिदप्यन्धो न पश्यतीति जले विषबुद्धि करोति, मदने मारमतिं तनुते, मन्दानिलेऽप्याशुगमनीषा वहति, मृदुलनलिनेषु विपजातधियं विधत्ते, मलयजरसे शुचिमतिं कुरुते, शीतकर सागरजात तनुते, परिवादध्वनिं न शृणोति, अलकाराभियोगः शत्रोरस्त्विति जल्पति, कुसुमकुलं परिशोभितरुज जानाति, लीलामराले हसबुद्धिमादधाति, उपवनमयूरेषु शिखिमतिमारचयति, क्रीडाशुके पतङ्गमनीपा विशेषयति ।

लयसहितत्वेन मधुरा मनोहारिणी, स्मितकुसुम मन्दहसितपुष्प कलानिधिमदहर चन्द्रदर्पहरं, जङ्घायुग प्रसृतायुगल कुसुमचापतूणीरसंकाशं कामेषुधिसदृश, भुजलता बाहुवल्ली युगायता युगवद्दीर्घा, तनुसंपत् शरीरसपत्ति लवान्तसुकुमारा पुष्पवत्सुकोमला । शृङ्खलायमकः । § ८५) सा किलेति—तरुणीषु मणिरिति तरुणीमणि. युवतिश्रेष्ठा, भवदीयवियोगो भवदीयविरह एव हुतवहो वह्निस्तेन तान्ता क्लान्ता, कान्ता मनोहारिणी सा श्रीमती, अन्धो जन किंचिदपि न पश्यतीति हेतो जले सलिले विषबुद्धि गरलबुद्धि पक्षे जलबुद्धि करोति विदधाति 'विप तु गरले जले' इति विश्वलोचन , मदने स्मरे मारमतिं मृत्युबुद्धि पक्षे स्मरबुद्धि तनुते विस्तारयति 'अक्षिभागेऽप्यथो मारो विघ्ने मृत्यौ स्मरे वृषे' इति विश्वलोचन । मन्दानिलेऽपि मन्दपवनेऽपि आशु शीघ्र गच्छतीति आशुग शीघ्रगामी तस्य मनोषा बुद्धि पक्षे आशुगस्य बाणस्य मनीपा वहति दधाति 'आशुगो बाणवातयो ' इति विश्वलोचन । मृदुलनलिनेषु कोमलकमलेषु विषाज्जात विषजातं गरलोत्पन्न तस्य धिय बुद्धि पक्षे विपात् जलात् जात कमल तस्य धिय विधत्ते कुरुते । मलयजरसे चन्दनरसे शुचिमतिं अग्निमतिं ग्रीष्मऋतुबुद्धि वा शीतलेऽपि दाहकबुद्धिमित्यर्थ कुरुते पक्षे शुचिरिति मति शुचिमति पवित्रबुद्धि 'शुचिर्ग्रीष्माग्निशृङ्गारेष्वाषाढे शुद्धमन्त्रिणि । ज्येष्ठे च पुसि धवले शुद्धेऽनुपहृते त्रिषु ॥' इति मेदिनी । शीतकर चन्द्र सागरजात सा इति पृथक्पद श्रीमत्या विशेषण गरजात विपोत्पन्न तनुते विस्तारयति पक्षे सागरात् समुद्राज्जातम् । परिवादध्वनिं वीणाशब्द परिवादध्वनिं निन्दाशब्दमिव मत्वा न शृणोति । अलकाराभियोगो भूषणसबन्ध शत्रोररातेरस्त्विति जल्पति कथयति पक्षे अलमत्यन्तं काराभियोगो वन्दीगृहसवन्ध. शत्रोरस्तु इति जल्पति । कुसुमकुल परिशोभिता रुजा रोगो यस्मात् तथाभूत जानाति पक्षे परिशोभिनश्च ते तरवश्चेति परिशोभितरव शोभमानवृक्षास्तेभ्यो जायते स्मेति परिशोभितरुजम् । लीलामराले क्रीडाहसे हसबुद्धि सूर्यबुद्धि पक्षे मरालबुद्धिम्

होनेके कारण मधुर है, मन्दमुसकानरूपी पुष्प चन्द्रमाके गर्वको हरनेवाला है, जंघाओंकी जोडी कामदेवके तरकशके समान है, भुजाओंका युगल युगके समान लम्बा है और शरीररूपी सम्पत्ति फूलके समान सुकुमार है। § ८५) सा किलेति—आपके वियोगरूपी अग्निसे झुलसी हुई वह युवतिश्रेष्ठा श्रीमती अन्धा मनुष्य कुछ भी नहीं देखता हैं यह सिद्ध करती हुई ही मानो जलमे विषबुद्धि (पक्षमे जलबुद्धि) करती है। काममे मारमति—हिंसकबुद्धि (पक्षमें काम-बुद्धि) विस्तृत करती है। मन्दवायुमे भी आशुगमनीषा—शीघ्र चलनेवाली इस प्रकारकी बुद्धि (पक्षमे बाणबुद्धि) धारण करती है। कोमल कमलोंमें विषजात—गरलसे उत्पन्न है ऐसी बुद्धि करती है (पक्षमे जलसे उत्पन्न है ऐसी बुद्धि करती है) चन्दनरसमे शुचि—अग्नि अथवा ग्रीष्मऋतुकी बुद्धि (पक्षमे पवित्र इस बुद्धि) को करती है। वह चन्द्रमाको गरजात—विषसे उत्पन्न (पक्षमे समुद्रसे उत्पन्न) जानती है। परिवाद—वीणाके शब्दको परिवाद—निन्दाका शब्द समझकर ही मानो नहीं सुनती है। अलकाराभियोग—आभूषणोंका सम्बन्ध (पक्षमे अत्यधिक वन्दीगृहका सम्बन्ध शत्रुको हो ऐसा कहती है) फूलोंके समूहको परिशोभितरुज—रोग बढानेवाला (पक्षमें शोभायमान वृक्षोंसे उत्पन्न) जानती है। क्रीड़ाहंसमे हंस बुद्धि—सूर्य बुद्धि (पक्षमे हस पक्षीकी बुद्धि) धारण करती है

§ ८६) अनङ्गराग हृदय मृगाक्ष्या अनङ्गद बाहुयुग विभाति ।
तारुण्यतस्त्वद्विरहाच्च[1] भद्र ! विहारहृद्य कुचकुम्भयुग्मम् ॥४९॥

§ ८७) इत्युक्तोऽय वज्रजङ्घो मृगाक्ष्या मज्जन्मोदाम्भोधिमध्ये चिराय ।
पाणौ कृत्वा पट्टक तावकीन प्रादादन्यत्पट्टक ते विचित्रम् ॥५०॥

§ ८८) तदनु, पण्डितया समर्पित पट्टकमादाय सा कुरङ्गशावलोचना निर्वर्ण्य चिरं, सतापसतप्ता चातकीव जलदकाल, मरालीव शरन्नदीपुलिन, भव्यावलीवाध्यात्मशास्त्र, कलकण्ठिकेव कुसुमितसहकारवन, निर्जरपरिषदिव नन्दीश्वरद्वीपं प्रीतेः परा काष्ठामाटिटीके ।

आदधाति 'हस पक्ष्यात्मसूर्येषु' इत्यमर । उपवनमयूरेपु उद्यानकेलिपु शिखिमतिम् अग्निवुद्धि पक्षे मयूरवुद्धिम् आदधाति 'शिखी केतुग्रहे वह्नौ मयूरे कुक्कुटे शरे' इति विश्वलोचन । क्रीडाशुके केलिकीरे पतङ्गमनीषा सूर्यबुद्धि पक्षे पक्षिबुद्धि विशेषयति । श्लेषोत्थापितो विरोधाभासोऽलकार । § ८६) अनङ्गरागमिति—हे भद्र ! हे भव्य ! तारुण्यतो यौवनात् त्वद्विरहाच्च त्वदीयवियोगाच्च मृगाक्ष्या कुरङ्गलोचनाया श्रीमत्या हृदय मनो वक्षश्च अनङ्गराग विभाति, तारुण्यपक्षे अनङ्गस्य कामस्य गण प्रीतिर्यस्मिन् तत्, त्वद्विरहपक्षे न विद्यतेऽङ्गरागो विलेपन यस्मिन् तत् । वाहुयुग भुजयुगलम् अनङ्गद विभाति । तारुण्यपक्षे अनङ्ग काम ददातीति अनङ्गद सौन्दर्येण कामोत्तेजकमित्यर्थ , त्वद्विरहपक्षे न विद्यतेऽङ्गद केयूर यस्मिन् तत् । कुचकुम्भयुग्म स्तनकलशयुगल विहारहृद्य विभाति । तारुण्यपक्षे विहारेण क्रीडया हृद्य सुन्दर त्वद्विरहपक्षे हारेण हृद्य न भवतीति विहारहृद्य हाररहितम् । श्लेष । उपजातिछन्द ॥४९॥ § ८७) इतीति—मृगाक्ष्या मृगलोचनाया तव विपये इतीत्थम् उक्त कथित अय वज्रजङ्घो ललिताङ्गचर मोदाम्भोधिमध्ये हर्षपारावारमध्ये चिराय दीर्घकालपर्यन्त मज्जन् समवगाहमान सन् तावकीन त्वदीय पट्टक चित्रफलक पाणौ कृत्वा हस्ते धृत्वा समादायेत्यर्थ , ते तुभ्यम् विचित्र विस्मयोत्पादकम् अन्यत् पट्टक प्रादात् दत्तवान् । शालिनी छन्द ॥५०॥ § ८८) तदन्विति—तदनु तदनन्तर पण्डितया तन्नामधाव्या समर्पित दत्त पट्टक चित्रफलकम् आदाय गृहीत्वा सा कुरङ्गशावस्य हरिणशिशोर्लोचने इव लोचने यस्यास्तथाभूता श्रीमती, चिर दीर्घकालपर्यन्त सतापेन ग्रीष्मर्तुजन्येन सतप्ता चातकी सारङ्गी जलदकाल प्रावृट्कालमिव, मराली हसी शरन्नद्या पुलिन तटमिव, भव्यावली भव्यपङ्क्ति अध्यात्मशास्त्रमिव शुद्धात्मस्वरूपप्रतिपादकग्रन्थमिव, कलकण्ठिका पिकी कुसुमितसहकारवनमिव

अर्थात् हसको सूर्यके समान सन्तापकारक मानती है। उपवनके मयूरोंमें शिखिमति—अग्निकी बुद्धि (पक्षमे मयूर बुद्धि) रचती है और क्रीडाशुकमे पतगमनीषा—सूर्य बुद्धि (पक्षमे पक्षिबुद्धि) को विशिष्ट करती है। § ८६) अनङ्गरागमिति—हे भव्य ! यौवनसे तथा तुम्हारे विरहसे उस मृगनयनीका हृदय अनगराग—कामके रागसे सहित (पक्षमे विलेपनसे रहित) हो रहा है। उसकी भुजाओंका युगल अनगद—कामको देनेवाला (पक्षमे बाजूबन्दसे रहित) हो रहा है और स्तनकलशोंका युगल विहारहृद्य—क्रीडासे मनोहर (पक्षमे हारसे रहित) हो रहा है ॥४९॥ § ८७) इतीति—तुझ मृगनयनीके विपयमे इस प्रकार कहा हुआ यह वज्रजघ चिरकाल तक हर्षरूपी समुद्रमें गोता लगाता रहा। अन्तमे तेरा चित्रपट तो उसने अपने हाथमे ले लिया और तुझे दूसरा विचित्र चित्रपट दिया है॥५०॥ § ८८) तदन्विति—तदनन्तर पण्डिताके द्वारा दिये हुए चित्रपटको लेकर वह बालमृगलोचना श्रीमती उसे चिरकाल तक इस तरह देखती रही जिस तरह कि सन्तापसे सन्तप्त चातकी वर्षाकालको, हसी शरद् ऋतुकी नदीके तटको, भव्यपक्ति अध्यात्मशास्त्रको, कोयल फूले हुए आम्रवनको और देवोंकी पंक्ति नन्दीश्वर द्वीपको देखती है। उसे देखकर वह प्रीति

[1] तद्विरहाच्च क० ।

§ ८९) चक्रधरोऽपि षडङ्गबलतरङ्गितसविधप्रदेशः समासाद्यार्धपथ, समागत भगिनीपतिं वज्रबाहु, भगिनी वसुंधरा, भागिनेय वज्रजङ्घं च विलोक्यातिमात्रप्रीत ,सदनमानीय सत्कृत्य च, कदाचिदतिसंतोषवशादिमां गिरमुदाजहार ।

§ ९०) उदारपुत्रोऽपि भवान्गृह मे यतः समागादनुदारपुत्र ।
तत्तो नृप ! प्रीतिनटी तनोति लास्य मनोरङ्गतले मदीये ॥५१॥

§ ९१) ममालये यदिष्ट ते महीरमण वर्तते ।
तद्गृहाण मयि प्रीतिर्यदि तेऽस्त्यनियन्त्रणा ॥५२॥

§ ९२) इति वज्रदन्तचक्रधरेणोक्ते वज्रबाहुनृपे 'देव ! तव प्रसादात् सर्वं ममास्त्येव किंतु कन्यारत्न वज्रजङ्घाय प्रतिपादनीयम्' इति वहुधा प्रार्थितवति, तत्प्रार्थनामङ्गीकुर्वाणो वसुधारमणस्तदानीमेव विवाहमण्डपारम्भाय महास्थपतिमादिदेश ।

पुष्पिताम्रवनमिव, निर्जरपरिषद् देवसमिति नन्दीश्वरद्वीपमिव द्वापञ्चाशज्जिनालयविराजिताष्टमद्वीपमिव निर्वर्ण्य पृष्ट्वा प्रीतेः प्रसन्नताया परा काष्ठा चरमावधिम् आटिटीके प्राप । § ८९) चक्रधरोऽपीति—चक्रधरो वज्रदन्तो चक्रवर्त्यपि षडङ्गबलेन षडङ्गसैन्येन तरङ्गित कल्लोलित सविधप्रदेशो येन तथाविध सन् अर्धपथ मार्गार्धं समासाद्य, समागत समायात भगिनीपतिमावुत्त वज्रबाहुम् उत्पलखेटनगरीनरेन्द्रम्, भगिनी स्वसार वसुन्धरा, भगिन्या अपत्य पुमान् भागिनेयस्त भगिनीज वज्रजङ्घ च विलोक्य दृष्ट्वा अतिमात्रप्रीत प्रीततर सदन भवनम् आनीय सत्कृत्य च कदाचित् अतिसतोषवशादिमा वक्ष्यमाणा गिर वाणीम् उदाजहार कथयामास । § ९०) उदारेति—उदारो महान् पुत्रो यस्य तथाभूतोऽपि अनुदार पुत्रो यस्य तथाभूतो उदारपुत्ररहित इति विरोध परिहारपक्षे दाराश्च पुत्रश्चेति दारपुत्रा अनुगता दारपुत्रा. स्त्रीसुता यमित्यनुदारपुत्र , भवान् यत कारणात् मे गृह समागत प्राप्त ततस्तस्मात् कारणात् हे नृप ! हे राजन् ! मदीये मामके मन एव रङ्गतल रङ्गभूमिस्तस्मिन् प्रीतिरेव नटी लासिका प्रीतिनटी लास्य नृत्य तनोति विस्तारयति । रूपकविरोधाभासौ । उपजातिछन्द ॥५१॥ § ९१) ममालय इति—हे महीरमण ! हे राजन् ! यदि ते मयि अनियन्त्रणा निर्बन्धरहिता प्रीति. अस्ति तर्हि मम वज्रदन्तस्य आलये गृहे ते तव इष्ट प्रिय वर्तते तद् गृहाण स्वीकुरु ॥५२॥ § ९२) इतीति—इतीत्थ वज्रदन्तचक्रधरेण उक्तेऽभिहिते वज्रबाहुनृपे 'हे देव ! हे राजेन्द्र ! तव भवत प्रसादात् सर्वं वस्तु ममास्त्येव किंतु कन्यैव रत्न कन्यारत्न वज्रजङ्घाय प्रतिपादनीय दातव्यम्' इति वहुधा-

---

की परम सीमाको प्राप्त हुई । § ८९) चक्रधरोऽपीति—इधर चक्रवर्ती वज्रदन्त भी षडंग-सेनाके द्वारा समीपवर्ती प्रदेशको तरंगित करते हुए अर्धमार्गमें जा पहुँचे और आये हुए बहनोई वज्रबाहुको, बहन वसुन्धराको और भानेज वज्रजंघको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। वे उन्हें घर लाये तथा उनका सत्कार कर किसी समय अत्यन्त सन्तोषके वश निम्न-लिखित वचन बोले। § ९०) उदारेति—हे राजन् ! जो उदारपुत्र होकर भी अनुदार पुत्र है (पक्षमें स्त्री और पुत्रसे सहित है) ऐसे आप चूँकि हमारे घर आये हुए हैं इसलिए मेरे मनरूपी रंगभूमिमें प्रीतिरूपी नटी नृत्य कर रही है—मुझे हार्दिक प्रसन्नता हो रही है ॥५१॥ § ९१) ममालय इति—हे राजन् ! यदि आपकी मुझमें रुकावट रहित प्रीति है तो मेरे घरमें जो वस्तु आपको इष्ट हो उसे ग्रहण कीजिए ॥५२॥ § ९२) इतीति—इस प्रकार वज्रदन्त चक्रवर्तीके द्वारा कहे हुए वज्रबाहु राजाने जब 'हे देव ! आपके प्रसादसे मेरे सब कुछ है ही किन्तु वज्रजंघके लिए कन्यारत्न दिया जावे' इस प्रकार अनेक वार प्रार्थना की तब

---

१. समासाद्य क० ।

§ ९३) महास्थपतिरातेने मङ्गल मणिमण्डपम् ।
यत्सपद विलोक्येव क्वापि लीन त्रिविष्टपम् ॥५३॥

§ ९४) सुमनोवृन्दवासिततया, निर्जरमनोहर्षकतया, सहस्रनेत्रानन्दसदायकतया, सदाखण्डलसद्वनिताजनमनोरमतया च त्रिविष्टपमिद मण्डप च तुल्यम् । किंतु तत्सर्वमनोज्ञम् इद त्रिदशजनमनोज्ञ, तत्सौधालयख्यातम् इद सुरालयख्यात तदिति न दृष्टान्तमर्हति ।

§ ९५) यत्किल पुरविराजित, गोपुरविराजित, रत्नशोभाञ्चित, चिरत्नशोभाञ्चितम्,

---

नैकधा प्राथितवति सति, तत्प्रार्थनामङ्गीकुर्वाण स्वीकुर्वाणो वसुधारमणो वज्रदन्त' तदानीमेव तत्क्षणमेव विवाहमण्डपारम्भाय महास्थपर्ति प्रधानतक्षकम् आदिदेश आज्ञातवान् । § ९३) महास्थपतिरिति—महास्थपति स्थपतिरत्न प्रधानतक्षक इत्यर्थ , मङ्गल मङ्गलकर तत् मणिमण्डप रत्नमण्डपम् आतेने रचयामास यत्सपद यत्सपत्ति विलोक्येव दृष्ट्वेव त्रिविष्टप स्वर्ग क्वापि लीनम् तिरोहितम् । उत्प्रेक्षा ॥५३॥ § ९४) सुमनोवृन्देति—त्रिविष्टप स्वर्ग इद मण्डप च तुल्य सदृशम् । केन तुल्यमिति चेदुच्यते—सुमनोवृन्दवासितया-त्रिविष्टपपक्षे सुमनसा देवाना वृन्देन समूहेन वासिततया कृतनिवासतया मण्डपपक्षे सुमनसा विदुषा वृन्देन समूहेन वासिततया, निर्जरमनोहर्षकतया निर्जरा देवास्तेषा मनोहर्षकतया पक्षे निर्जरास्तरुणास्तेषा मनोहर्षकतया, सहस्रनेत्रानन्दसदायकतया—सहस्रनेत्र इन्द्रस्तस्यानन्दस्य हर्षस्य सदायकतया पक्षे सहस्रस्य नेतॄणा नायकानामानन्दस्य सदायकतया, सदाखण्डलसद्वनिताजनमनोरमतया च सदा सर्वदा आखण्डलस्य सहस्राक्षस्य सद्वनिताजना प्रशस्ताङ्गनाजनास्तेषा मनोरमतया पक्षे सदा सर्वदा अखण्ड यथा स्यात्तथा लसन्त शोभमाना ये वनिताजना स्त्रीजनास्तेषा मनोरमतया च । इत्थ तयोस्तुल्यत्व प्रदर्श्य व्यतिरेक निरूपयति किंतु तत् मण्डप सर्वजनमनोज्ञ निखिलजनमनोहरम् इद त्रिविष्टप त्रिदशजनमनोज्ञ त्रिगुणिता दश त्रिदशास्ते च ते जनास्त्रिदशजना त्रिंशज्जनास्तेषा मनोज्ञ पक्षे त्रिदशा देवास्तेषा मनोज्ञम्, तत् मण्डप सौधालयख्यात सुधाया अय सौध अमृतसबन्धी, सौधश्चासावालयश्चेति सौधालयस्तेन ख्यात पीयूषागारत्वेन प्रसिद्ध, इद त्रिविष्टप सुरालयख्यात सुराया मदिराया आलयो गृह तेन ख्यात प्रसिद्ध पक्षे सुराणा देवानामालयो धाम तेन ख्यातम्, इतीत्थ तत् त्रिविष्टप न दृष्टान्तम् अर्हति मण्डपस्य सादृश्य प्राप्तु योग्यमस्ति । श्लेषव्यतिरेकौ । § ९५) यत्किलेति—यत् किल मण्डप पुरविराजित पुरे नगरे विराजित शोभित, गोपुरविराजित गोपुरै प्रधानद्वारैर्विराजित,

---

उनकी प्रार्थनाको स्वीकृत करते हुए चक्रवर्ती वज्रदन्तने उसी समय विवाह मण्डप बनानेके लिए प्रधान स्थपतिको आदेश दिया । § ९३) महास्थपतिरिति—प्रधान स्थपतिने मगलमय वह रत्नमय मण्डप बनाया कि जिसकी सम्पदाको देखकर ही मानो स्वर्ग कहीं जा छिपा था ॥५३॥ § ९४) सुमनोवृन्देति—स्वर्ग और मण्डप दोनों ही तुल्य थे क्योंकि जिस प्रकार स्वर्ग सुमनोवृन्दवासित है—देवोंके समूहसे वासित है उसी प्रकार मण्डप भी सुमनोवृन्दवासित था—विद्वानोंके समूहसे वासित था । जिस प्रकार स्वर्ग सहस्रानन्दसदायक है—इन्द्रको आनन्द देनेवाला है उसी प्रकार मण्डप भी सहस्रानन्द सदायक—हजारों नेताओंको आनन्द देनेवाला था और जिस प्रकार स्वर्ग सदाखण्डलसद्वनिताजनमनोरम है—सर्वदा इन्द्रकी समीचीन स्त्रियोंसे मनोरम है उसी प्रकार मण्डप भी सदाखण्डलसद्वनिताजनमनोरम—सदा अखण्ड रूपसे शोभायमान स्त्रियोंसे मनोरम था । किन्तु वह मण्डप सब लोगोंके लिए मनोज्ञ था ओर स्वर्ग मात्र तीस लोगोंको मनोज्ञ था (पक्षमे देवोंको मनोज्ञ था) वह मण्डप सौधालयख्यात—अमृतगृहके नामसे प्रसिद्ध था और स्वर्ग सुरालय ख्यात—मदिरालयके नामसे विख्यात था (पक्षमे देवधामसे विख्यात था) इसलिए स्वर्ग मण्डपका दृष्टान्त बननेके योग्य नहीं है । § ९५) यत्किलेति—जो मण्डप नगरमें सुशोभित था, बड़े-बड़े दरवाजोंसे सुशोभित था, रत्नोंकी शोभासे सहित था, प्राचीन सजावटसे विभूषित था,

करोति तथा चामरव्रजं धिक्करोति बन्धोऽस्य युक्त इतीव बन्धं विदधाना, परिशोभितमालोत्कर्षासहमपि तत्कचनिचयं परिशोभितमालोत्कर्षेण भूषयन्ती, निर्मलसरोवरे नीलोत्पलमिव, सिताम्बुजे लोलम्बमिव, सुधाकरे कलङ्कमिव, तन्मुखे मृगमदतिलकं परिकल्पयन्ती, नासातिलकुसुमाञ्चलोदञ्चिततुषारबिन्दुसुन्दरं मौक्तिकं नासाग्रभागे विदधाना, विवेकवार्तानभिज्ञस्य क्षमाधरकलितविद्वेषस्य सूर्यादराञ्चितं साधुचक्रं निन्दतः सततमूर्ध्वमेव पश्यतः कुचमण्डलस्य विमुक्ताहारता

मद्यपायिमित्रतां करोति, तथा च अमरव्रजं देवसमूहं धिक्करोति निन्दति अस्य कचभरस्य बन्धो बन्धनं युक्त उचितं इतीव हेतोर्बन्धं विदधाना कुर्वाणा अपराधिनो बन्धनं न्यायसिद्धमिति भावः। पक्षे अयं कचभरः सुदृङ्मौलिलालितोऽपि सुलोचनामस्तकधृतोऽपि मलिनस्वभावतया श्यामलस्वभावतया कुटिलस्वभावतया भङ्गुरनिसर्गतया च सदा जडभृद्रुचिं श्लेषे डलयोरभेदात् जलभृद्रुचिं मेघकान्तिं वहति, मधुपमैत्रीं भ्रमरमैत्रीं करोति तथा चामरव्रजं वालव्यजनसमूहं धिक्करोति तिरस्करोतीति अस्य कचभरस्य बन्धश्चूडाकरणं युक्तो योग्य इतीव हेतोर्बन्धं विदधाना, परिशोभितमालोत्कर्षासहमपि परिशोभिता समलंकृता या माला स्रजस्तासामुत्कर्षस्यासहस्तं तथाभूतमपि तस्याः कचनिचयस्तं तत्केशकलापं परिशोभितमालोत्कर्षेण परिशोभितानां मालानामुत्कर्षेण भूषयन्ती सज्जयन्तीति विरोधः परिहारपक्षे परिशोभी समन्तात् शोभमानो यस्तमालस्तापिच्छवृक्षस्तस्योत्कर्षस्यासहमपि तत्कचनिचयं परिशोभितानां मालानां स्रजामुत्कर्षेण भूषयन्ती अलंकुर्वन्ती, निर्मलसरोवरे स्वच्छकासारे नीलोत्पलं नीलारविन्दमिव, सिताम्बुजे श्वेतकमले लोलम्बं भ्रमरमिव, सुधाकरे चन्द्रमसि कलङ्कमिव लाञ्छनमिव, तन्मुखे श्रीमतीवदने मृगमदतिलकं कस्तूरीस्थासकं परिकल्पयन्ती रचयन्ती, नासाघ्राणमेव तिलकुसुमं क्षुरप्रपुष्पं तस्याञ्चले उदञ्चितो यस्तुषारबिन्दुर्हिमकणस्तद्वत् सुन्दरं मौक्तिकं मुक्ताफलं नासाग्रभागे घ्राणाग्रभागे विदधाना कुर्वाणा, विवेकवार्तया सदसज्ज्ञानचर्चायामनभिज्ञमपरिचितं तस्य, क्षमाधरैः क्षान्तिधारकैः सह कलितो विद्वेषो वैरं येन तस्य, सूर्यादराञ्चितं सूरिषु आचार्येषु आदरः सूर्यादरस्तेनाञ्चितं शोभितं साधुचक्रं साधूनां यतीनां चक्रं समूहं निन्दतः परिवदतः सततं सदा ऊर्ध्वमेव पश्यतो गर्वेणोन्नतस्येत्यर्थः, कुचमण्डलस्य स्तनमण्डलस्य विमुक्ताहारता मुक्तस्त्यक्त आहारो येन तन्मुक्ताहारं, न मुक्ताहारं विमुक्ताहारं गृहीताहारं तस्य भावो विमुक्ताहारता आहारग्राहिता न युक्ता नोचिता इतीत्थं मत्वा किल तत्र कुचमण्डले

करता है, मधुपमैत्री—मद्यपायी लोगोंके साथ मित्रता करता है तथा अमरव्रज—देवसमूहकी निन्दा करता है इसलिए इस विपरीत प्रवृत्ति करनेवालेका बन्धन ही उचित है। (पक्षमे यह केशोंका समूह सुदृग्मौलिलालित—सुलोचना स्त्रियोंके द्वारा अपने मस्तकपर धारण किये जानेपर भी स्वभावसे काले तथा घुँघराले होनेसे जलभृद्रुचि—मेघ जैसी कान्तिको धारण करता है, मधुपमैत्री—श्यामरंगकी अपेक्षा भ्रमरोंके साथ मित्रता करता है तथा सुकोमल और सूक्ष्मताकी अपेक्षा चामर व्रज-चमरोंके समूहका तिरस्कार करता है इसलिए ऐसे सुन्दर केशभारको सर्वप्रथम बाँधकर सजाना योग्य है यह विचार कर ही मानो उसने श्रीमतीके केशसमूहको बाँधा था)। यद्यपि उसका वह केशसमूह परिशोभितमालोत्कर्षासह—शोभायमान मालाओंके उत्कर्षको सहन करनेवाला नहीं था तो भी लक्ष्मीमतिने उसे परिशोभितमालाओंके उत्कर्षसे विभूषित किया था (पक्षमे उसका वह केशसमूह परिशोभितमालोत्कर्षासह—अत्यन्त शोभायमान तमालवृक्षके उत्कर्षको सहन करनेवाला नहीं था अर्थात् तमालवृक्षसे भी [illegible] था फिर भी वह उसे परिशोभितमालोत्कर्ष—सब ओरसे सुशोभित [illegible] के उत्कर्षसे विभूषित किया था)। लक्ष्मीमति ने श्रीमतीके मुखपर [illegible] था जो ऐसा जान पडता था मानो स्वच्छ सरोवरमे [illegible] ही बैठा हो, अथवा चन्द्रमामे काला- काल[illegible] हो [illegible] था जो ऐसा जान पड़ता था मानो

न युक्तेति मत्वा किल तत्र मुक्ताहार घटयन्ती, रतितन्त्ररहस्यप्रतिपादकमनोहरारावशोभिततया कामस्य रसनैवेय लेखनप्रमादेन 'रशना' जातेति कविजनैरुत्प्रेक्ष्यमाणा रशना मध्यदेशे तन्वाना, कुसुमशरसरः कलहसकौ हसकौ पदयुगले परिकल्पयन्ती चिराय तां मण्डयामास ।

§ ९९) महनीयप्रभापूरैर्महार्घमणिभूषणैः ।
पुत्रं सा भूषयामास वज्रजङ्घं वसुंधरा ॥५६॥

मुक्ताहारं त्यक्ताहारं भोजनाभावमित्यर्थं घटयन्ती कुर्वन्ती । पक्षे विवेकवार्तानभिज्ञस्य पीवरत्वाद्भेदचर्चापरिचितस्य, क्षमाधरकलितविद्वेषस्य काठिन्येन क्षमाधरेण पर्वतेन सह कलितो विद्वेषो येन तस्य, सूर्ये आदर सूर्यादरस्तेनाञ्चित सूर्यसन्मानसहित साधुचक्रं प्रशस्तचक्रवाक निन्दत. स्वसौन्दर्येण तिरस्कुर्वत , सतत शश्वत् उत्तुङ्गत्वेन ऊर्ध्वमेव पश्यत अपतितस्येति भाव , कुचमण्डलस्य विगतो मुक्ताहारो मौक्तिकसरो यस्य तस्य भावो विमुक्ताहारता मौक्तिकहाराभाव इत्यर्थ न युक्ता नोचितेति मत्वा किल तत्र कुचमण्डले मुक्ताहार मौक्तिकसर घटयन्ती स्थापयन्ती, रतितन्त्रस्य सुरतशास्त्रस्य यद् रहस्य गूढग्रन्थिस्तस्य प्रतिपादको निरूपको यो मनोहराराव सुन्दरशब्दस्तेन शोभिततया कामस्य मदनस्य रसनैवेय जिह्वैवेयं लेखनप्रमादेन लेखनस्यानवधानतया 'रशना' जातेति कविजनै कविसमूहैः उत्प्रेक्ष्यमाणा कल्प्यमाना रशना मेखला मध्यदेशे कटिप्रदेशे तन्वाना विस्तारयन्ती धारयन्तीत्यर्थ , कुसुमशरस्य कामस्य सरस कासारस्य कलहसकौ कादम्बौ हसकौ नूपुरौ पादकटकौ वा पदयुगले चरणयुगे परिकल्पयन्ती धारयन्ती चिराय दीर्घकालपर्यन्त ता श्रीमती मण्डयामास भूषयामास । श्लेषविरोधाभासोपमारूपकोत्प्रेक्षादयोऽलकारा । § ९९) महनीयेति—वसुधरा वज्रजङ्घजननी पुत्र वज्रजङ्घ महनीय श्लाघनीय प्रभापूरो येषा तै महार्घाणि महामूल्यानि यानि मणिभूषणानि रत्नालकार-

---

नाकरूपी तिलपुष्पके अंचलमें सुशोभित ओसकी एक बूँद ही हो। उसने उसके स्तनमण्डलपर मुक्ताहार—आहारका परित्याग यह विचारकर ही किया था कि यह स्तनमण्डल विवेकवार्तानभिज्ञ—अच्छे-बुरेके विवेकसे अपरिचित है, क्षमाधरकलितविद्वेष—शान्त मनुष्योंके साथ द्वेष करता है, सूर्यादराञ्चित—आचार्योंमें आदरसे युक्त साधुचक्र—साधुसमूहकी निन्दा करता है और गर्वसे सदा ऊपरको ही देखता है इसलिए इसकी विमुक्ताहारता—भोजनसे सहितता ठीक नहीं है (पक्ष में—यह स्तनमण्डल विवेकवार्तानभिज्ञ—स्थूलताके कारण भेद सम्बन्धी चर्चासे अपरिचित है अर्थात् दोनों स्तन एक-दूसरेसे सटे हुए हैं, कठोरताके कारण क्षमाधरकलितविद्वेष—पर्वतके साथ बैर करनेवाला है, अर्थात् पर्वतसे भी कहीं अधिक कड़ा है, सूर्यादराञ्चित—सूर्यमे प्रेम रखनेवाले साधुचक्र—उत्तम चकवाकी निन्दा करता है अर्थात् चकवासे भी कहीं अधिक सुन्दर है, और उत्तुंगताके कारण सदा ऊपरको ही देखता है अर्थात् अभी इसमें पतन प्रारम्भ नहीं हुआ है इसलिए इस सुन्दर स्तनमण्डलकी विमुक्ताहारता—मोतियोंके हारसे रहितता ठीक नहीं है यह विचारकर ही मानो उसने उसके स्तनमण्डलपर मुक्ताहार—मोतियोंके हारकी योजना की थी)। संभोगशास्त्रके रहस्य—गूढ अभिप्रायको प्रकट करनेवाले मनोहर शब्दसे सुशोभित यह कामदेवकी रसना—जिह्वा ही है लिखनेके प्रमादसे 'रशना' हो गयी है इस तरह कवि लोग जिसकी उत्प्रेक्षा कर रहे थे ऐसी रशना—करधनी उसके मध्यदेशमें पहिनायी थी, और कामदेवके सरोवरके कलहंस पक्षीके समान नूपुर अथवा पाद कटक दोनों पैरोंमें पहिनाये थे। इस तरह लक्ष्मीमतिने चिरकाल तक श्रीमतीको अलंकृत किया था। § ९९) महनीयेति—उधर वसुन्धराने अपने पुत्र वज्रजंघको प्रशंसनीय

§ १००) एव मण्डितविग्रहौ परिलसद्वाराङ्गनानर्तन-
व्यालोलन्मणिनूपुरारववरैः सपूरिते मण्डपे ।
नानावाद्यरवप्रकारमुखरे पृथ्वीश्वरैर्वेष्टिते
वेद्या तत्र निवेशितौ सपदि तौ मोद दृशा तेनतुः ॥५७॥

§ १०१) तदनु सरभसमितस्ततः प्रधावितस्य प्रतीहारजनस्य पादघट्टनजनितकुट्टिमध्वनिबन्धुरेण, वाराङ्गनाचरण[1]रणन्मणिनूपुररवमेदुरेण, प्रचलितान्तःपुरजनमणिमेखलाकलापमनोरमकलकलकमनीयेन, तत्पुरःसरकञ्चुकीजनकलितसमर्दनिवारणपरवचननिर्भरेण, मन्त्रविन्मुखकमलनिरर्गलनिर्गलद्गम्भीरशब्दपावनेन, विचित्रनानाविधवादित्ररवविराजितेन, विविधवन्दिसदोहपापठ्यमानविरुदप्रपञ्चकलितेन, पौरवधूकलगानमनोहरेणोत्सवकोलाहलेन मुखरितदिगन्तरे

णानि तै' भूषयामास समलचकार ॥५६॥ § १००) एवमिति—एवमनेन प्रकारेण मण्डित शोभितो विग्रह शरीर ययोस्तौ 'शरीर वर्ष्म विग्रह ' इत्यमर तौ वधूवरौ, परिलसत् समन्ताच्छोभमान यद् वाराङ्गनाना वेश्याना नर्तन नृत्य तेन व्यालोलन्तश्चलन्तो ये मणिनूपुरा मणिमञ्जरिकाणि तेषामारववरा श्रेष्ठशिञ्जानशब्दास्तै सपूरिते सभृते, नानावाद्याना नैकविधवादित्राणा रवप्रकारा शब्दभेदास्तैर्मुखरे वाचाले, पृथ्वीश्वरैर्भूपतिभि वेष्टिते परिवृते तत्र मण्डपे वेद्या परिष्कृतभूमौ निवेशितौ उपवेशितौ सन्तौ सपदि शीघ्र दृशा दृष्टीना मोद हर्ष तेनतुर्विस्तारयामासु' ॥५७॥ § १०१) तदन्विति—तदनु तदनन्तर सरभस सवेग यथा स्यात्तथा इतस्तत प्रधावितस्य वेगेनाक्राम्यत प्रतिहारजनस्य द्वारपालसमूहस्य पादघट्टनेन चरणाघातेन जनित समुत्पन्नो य कुट्टिमध्वनिस्तेन बन्धुरेण मनोहरेण, वाराङ्गनाचरणेषु वेश्याङ्घ्रिषु रणन्त शब्द कुर्वाणा ये मणिनूपुरास्तेषा रवेण शिञ्जानेन मेदुरो मिलितस्तेन, प्रचलितानामन्त पुरजनाना ये मेखला मणिकलापा रशना रत्नसमूहास्तेषा मनोरमकलकलेन सुन्दरशब्देन कमनीय सुन्दरस्तेन, तस्यान्त पुरजनस्य पुर सरा अग्रसरा ये कञ्चुकीजना सौविदल्लास्तै कलितानि कृतानि समर्दनिवारणपराणि समूहसपातदूरकरणतत्पराणि वचनानि तैर्निर्भरस्तेन, मन्त्रविदा मन्त्रज्ञाना मुखकमलेभ्यो वदनारविन्देभ्यो निरर्गल निष्प्रतिबन्ध यथा स्यात्तथा निर्गलन्तो नि.सरन्तो ये गम्भीरशब्दास्तै पावन पवित्रस्तेन, विचित्राणि विस्मयकराणि नानाविधानि नैकप्रकाराणि यानि वादित्राणि वाद्यानि तेषा रवेण शब्देन विराजित. शोभितस्तेन, विविधा नानाप्रकारा ये बन्दि-

---

कान्तिसे युक्त महामूल्यमणियोंके भूषणोंसे विभूषित किया था ॥५६॥ § १००) एवमिति—इस प्रकार जिनका शरीर सुशोभित था तथा जो सब ओर सुशोभित होनेवाले वेश्याओंके नृत्यसे चंचल मणिमय नूपुरोंकी श्रेष्ठ झंकारसे भरे, नानाप्रकारके बाजोंके विविध शब्दोंसे शब्दायमान तथा राजाओंसे घिरे हुए मण्डपमें वेदीपर बैठाये गये थे ऐसे वधू और वर शीघ्र ही दर्शकोंके नेत्रोंको हर्ष उत्पन्न करने लगे ॥५७॥ § १०१) तदन्विति—तदनन्तर वेगसहित इधर-उधर दौडते हुए द्वारपालोंके पैरोंके आघातसे उत्पन्न मणिमय फर्शोंके शब्दसे जो व्याप्त था, वेश्याओंके चरणोंमे रुणझुण शब्द करनेवाले मणिमय नूपुरोंके शब्दोंसे जो मिला हुआ था, चलती हुई अन्तःपुरकी स्त्रियोंकी मणिमय मेखलाओंके समूहके मनोहर कलकलसे जो सुन्दर था, उन स्त्रियोंके आगे-आगे चलनेवाले कचुकियोंके द्वारा किये हुए भीडको दूर करनेवाले वचनोंसे जो भरा हुआ था, मन्त्रज्ञ मनुष्योंके मुखकमलसे धारा प्रवाह निकलते हुए गम्भीर शब्दोंसे जो पवित्र था, आश्चर्यकारी नाना प्रकारके बाजोंके शब्दोंसे जो सुशोभित हो रहा था, नाना स्तुतिपाठकोंके समूह द्वारा बार-बार जोर जोरसे

---

१ चरणरणरणन्मणि–क० ।

तन्मण्डपान्तरे सिद्धस्नानाम्बुपूतमस्तक वधूवर नवरत्नखचितचामीकरपट्टके विधाय चक्रधर. शुभे मुहूर्ते कङ्केलिपल्लववेष्टितमुखभाग कनककरक करेण बभार ।

§ १०२) ततो न्यपाति क्षितिपेन तस्य कराम्बुजाते करकाम्बुधारा ।
दीर्घं भवन्तौ सुखजीविनौ स्तामिति ब्रुवाणेव सुदूरदीर्घा ।।५८।।

§ १०३) जग्राह पाणौ नरपालपुत्री कुरङ्गशावामललोलनेत्राम् ।
तस्या. करस्पर्शनसौख्यभारमीलद्दृगब्जः स हि वज्रजङ्घ' ।।५९।।

§ १०४) श्रीमती तत्करस्पर्शात्स्वेदबिन्दूनधारयत् ।
चन्द्रकान्तशिलापुत्री चन्द्राशुस्पर्शनादिव ।।६०।।

§ १०५) अपरेद्युरसौ वज्रजङ्घः करदीपिकासहस्रैर्दिवसायमाने प्रदोषे श्रीमत्यानुगम्यमानः

सदोहा: स्तुतिपाठकसमूहास्तै' पापठ्यमाना अतिशयेन भृश पठ्यमाना ये विरुदप्रपञ्चा स्तवनसमूहास्तेषा प्रपञ्चेन विस्तारेर्ण कलितस्तेन पौराणा नागरिकाणा वध्व स्त्रियस्तासा कलगानेन मधुरगीतेन मनोहरस्तेन उत्सवकोलाहलेन उद्भवकलकलरवेण मुखरितानि वाचालितानि दिगन्तराणि काष्ठान्तरालानि यस्मिंस्तस्मिन् तन्मण्डपान्तरे पूर्वोक्तमण्डपमध्ये सिद्धस्नानेन जिनेन्द्राभिषेकजलेन पूतं पवित्र मस्तक शिरो यस्य तथाभूत वधूवर नवरत्नैरभिनवमणिभि खचित जटित यत् चामीकरपट्टक सुवर्णपीठस्तस्मिन् विधाय कृत्वा निवेश्येत्यर्थ , चक्रधरो वज्रदन्त शुभे प्रशस्ते मुहूर्ते कङ्केलिपल्लवैरशोककिसलयैर्वेष्टितो मुखभागो यस्य त कनककरक सुवर्णभृङ्गारक करेण हस्तेन बभार दधार । § १०२) तत इति—ततस्तदनन्तर क्षितिपेन राज्ञा वज्रदन्तेन तस्य वज्रजङ्घस्य कराम्बुजाते करकमले भवती च भवाश्चेति भवन्तौ युवा दीर्घं दीर्घकालपर्यन्तं सुखेन जीवत इत्येवशीलौ सुखजीविनौ स्ता भवतामिति ब्रुवाणेव कथयन्तीव करकाम्बुधारा कलशसलिलधारा न्यपाति निपातिता । कर्मणि प्रयोग' । उत्प्रेक्षा । उपजातिछन्द ।।५८।। § १०३ जग्राहेति—तस्या श्रीमतया करस्पर्शनसौख्यभारेण मीलती दृगब्जे नयनकमले यस्य तथाभूत स हि वज्रजङ्घ कुरङ्गशावस्य हरिणशिशोरिवामललोले निर्मलचञ्चले नेत्रे यस्यास्ता नरपालपुत्री श्रीमती पाणौ हस्ते जग्राह स्वीचकार । उपजातिवृत्तम् ।।५९।। § १०४) श्रीमतीति—चन्द्राशुस्पर्शनात् चन्द्रकिरणस्पर्शात् चन्द्रकान्तशिलापुत्रीव चन्द्रकान्तमणिनिर्मितपुत्तलिकेव तत्करस्पर्शाद् वज्रजङ्घहस्ताभिमर्शात् स्वेदबिन्दून् स्वेदकणान् अधारयत् । उपमा । अत्र स्वेदो नाम सात्त्विकभावविशेष । तथाहि 'स्तम्भ. स्वेदोऽथ रोमाञ्चः स्वरभङ्गोऽथ वेपथु । वैवर्ण्यमश्रुप्रलय इत्यष्टौ सात्त्विका स्मृता.' ।।६०।। § १०५ अपरेद्युरिति—अपरेद्युरन्यस्मिन् दिवसे असौ वज्रजङ्घ करदीपिकाना

पढ़े जानेवाली विरुदावलीसे जो युक्त था, और नागरिकजनोंकी स्त्रियोंके मधुर गीतोंसे जो मनोहर था ऐसे उत्सव सम्बन्धी कोलाहलसे जिसमे दिशाएँ गूँज रही थीं ऐसे उस मण्डपके वीच जिनेन्द्रदेवके अभिषेक जलसे पवित्र मस्तकोंवाले वधू और वरको नवीन रत्नोंसे जड़े हुए सुवर्णपीठपर बैठाकर चक्रवर्ती वज्रदन्तने शुभ मूहूर्तमें अशोक दलसे वेष्टित मुखवाले सुवर्णमय कलशको हाथसे उठाया। § १०२) तत इति—तदनन्तर राजा वज्रदन्तने आप दोनों दीर्घकाल तक सुखसे जीवित रहिए यह कहती हुई की तरह अत्यन्त लम्बी सुवर्णकलशकी जलधारा वज्रजंघके हाथ पर छोडी ।।५८।। § १०३) जग्राह—श्रीमतीके हस्तस्पर्शसम्बन्धी सुखके समूहसे जिसके नेत्र निमीलित हो रहे थे ऐसे वज्रजंघने बालमृगके समान निर्मल तथा चंचल नेत्रोंवाली राजपुत्रीका पाणिग्रहण किया ।।५९।। § १०४) श्रीमती—जिस प्रकार चन्द्रमाकी किरणोंके स्पर्शसे चन्द्रकान्तमणिसे निर्मित पुतली जलकी बूँदोंको धारण करने लगती है उसी प्रकार श्रीमतीने वज्रजंघके हस्तस्पर्शसे पसीनाके बूँदोंको धारण किया ।।६०।। § १०५) अपरेद्युरिति—दूसरे दिन वह वज्रजघ, हजारों लालटेनोंके द्वारा दिन-

प्रभयेव पद्मबन्धुरागत्य मेरुमिव जिनालय प्रदक्षिणीकृत्य कृतेर्याशुद्धिर्जिनभवन प्रविश्य, तत्र गन्धकुटीमध्ये विलसन्त भगवन्तमभिषेकपुर.सर पूजयित्वा कृतार्चनस्तत्स्तोत्र प्रारेभे ।

§ १०६) भवभयनिशारम्भे निद्राजुषा निखिलात्मना
जिनवर ! भवान् धत्ते स्वापाङ्गमुज्ज्वलमौषधम् ।
वयमिह ततश्चित्र निर्णिद्रमीश भजामहे
परिहृतमहादु.खास्पृष्टाः प्रबोधमहो चिरम् ॥६१॥

§ १०७) पद तव जिनाधिप ! प्रथितबोधवारानिधे !
भजन् भजति जातुचिन्न विपद नरः साप्रतम् ।
इद तु परमाद्भुत शिरसि तत्पराग सदा
सुबिभ्रदपरागता व्रजति भव्यवर्गो भुवि ॥६२॥

सहस्राणि तैः दिवसायमाने दिनवदाचरति प्रदोषे रजनीमुखे श्रीमत्या अनुगम्यमान सन् प्रभयानुगम्यमान पद्मबन्धु सूर्य आगत्य मेरुमिव महापूतजिनालय तन्नामजिनमन्दिरम् आगत्य प्रदक्षिणीकृत्य परिक्रम्य, कृता विहिता ईर्याशुद्धिर्मार्गशुद्धिर्येन तथाभूत. सन् जिनभवनं जिनालय प्रविश्य तत्र जिनभवने गन्धकुटीमध्ये विलसन्त शोभमान भगवन्त जिनेन्द्रम् अभिषेकपुर सर स्नपनसहित पूजयित्वा कृतार्चन कृतपूज सन् तत्स्तोत्र तत्स्तवन प्रारेभे । § १०६) भवेति—हे जिनवर ! हे ईश ! भवान् भवभय ससारभीतिरेव निशा रजनी तस्या आरम्भे निद्राजुषा प्राप्तनिद्राणा निखिलात्मना सकलजीवाना स्वापाङ्ग स्वकीयकृपाकटाक्षरूपम् उज्ज्वल विमलम् औषध भैषज्य धत्ते तत कारणात् वयम् इहास्मिन् लोके निर्णिद्र निद्रारहित भवन्त चित्र यथा स्यात् भजामहे उपास्महे तेन परिहृत दूरीभूत यन्महादु ख तेनास्पृष्टा सन्त चिर प्रबोध जागृतिं प्रकृष्टबोध च भजामहे । रूपकालकार । हरिणीच्छन्द । § १०७) पदमिति—हे जिनाधिप ! हे जिनेन्द्र ! हे प्रथितबोध वारा निधे ! हे प्रसिद्धज्ञानसागर ! तव भवत पद चरण भजन् सेवमानो नरो जातुचित् विपद पदाभाव पक्षे विपत्तिं न भजति, इति साप्रत युक्तम् । इद वक्ष्यमाण तु परमत्यन्तम् अद्भुतमाश्चर्यकर यत् शिरसि मूर्ध्नि सदा सर्वदा तत्पराग पदरज सुबिभ्रद् सुदधत् भव्यवर्गो भव्यजनो भुवि पृथिव्याम् अपरागता परागाभावता व्रजति प्राप्नोति पक्षे अपगतो रागो यस्यापरागस्तस्य भावस्ता वीतरागता प्राप्नोति । विरोधाभासः । पृथ्वीछन्द

के समान आचरण करनेवाले रात्रिके प्रारम्भ भागमे जिस तरह प्रभासे अनुगम्यमान होता हुआ सूर्य सुमेरु पर्वतको प्राप्त कर उसकी प्रदक्षिणा करता है उसी प्रकार श्रीमतीसे अनुगम्यमान होता हुआ महापूत जिनालयको प्राप्त हुआ। उसकी प्रदक्षिणा दी, मार्गशुद्धिकी तदनन्तर जिनालयमे प्रवेश कर वहाँ गन्धकुटीके बीचमें शोभित हुए भगवान् जिनेन्द्र की उसने अभिषेकपूर्वक पूजा की और पूजा कर चुकनेपर भगवान्‌का स्तवन प्रारम्भ किया। § १०६) भवेति—हे जिनेन्द्र ! हे ईश ! आप ससारके भय रूपी रात्रिके प्रारम्भमें निद्रानिमग्न समस्त जन्तुओंके लिए अपने कटाक्षरूप उज्ज्वल औषधको धारण करते हैं इसलिए हम लोग इस संसारमें निद्रारहित आपकी उपासना करते हैं और उसके फलस्वरूप परित्यक्त दुःखोंसे अछूते रहते हुए हम चिरकाल तक प्रबोध—जागरण—प्रकृष्ट ज्ञानको प्राप्त होते हैं। § १०७) पदमिति—हे जिनेन्द्र ! हे प्रसिद्ध ज्ञानके सागर ! जो मनुष्य आपके पद—चरणकी सेवा करता है वह कभी विपद्—पदके अभाव (पक्षमे विपत्ति) को प्राप्त नहीं होता यह तो ठीक है किन्तु यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि जो भव्य समूह सदा उस पदकी पराग—रजको सिरपर धारण करता है वह पृथिवीपर अपरागता—परागके अभावको (पक्षमे वीत-

§ १०८) इति स्तुत्वा देवं विमलमुनिवृन्दं च विनमन्
अयं राजीवाक्ष्या सह पुरमगात्पुण्यचरितः ।
पुरे द्वात्रिंशच्छ्रीमुकुटधरसाहस्रकलित
मह विन्दन् भोगान्सुचिरमनुभुङ्क्ते स्म विविधान् ॥६३॥

§ १०९) कदाचिदय वज्रजङ्घ कदर्पवोधितकनकनाराचधाराभिरिव श्रीमतीशयकुशेशय-निर्गलिताभि कुङ्कुमजलधाराभिः पिञ्जरीक्रियमाणदेहो लाक्षारसच्छटाप्रहारपाटलितदुकूलो मृगमदजलविन्दुशवलचन्दनस्थासकः कनकयन्त्रधरश्चिक्रीड ।

§ ११०) कदाचन पुरंदर इव सुमनोमण्डितः सोऽयं श्रीमत्या सह ललिताप्सरः-कुलमसेवत ।

§ १११) पश्यतो मे हठान्नेत्र जहार मृगलोचना ।
इति मत्वेव सुरते जहार सुदृशोऽम्बरम् ॥६४॥

॥६२॥ § १०८) इतीति—इतीत्य देव जिनेन्द्र स्तुत्वा विमलमुनिवृन्द निर्दोपमुनिसमूह च विनमन् नमस्कुर्वन् पुण्यचरित. पवित्राचार, अय वज्रजङ्घो राजीवाक्ष्या कमललोचनया श्रीमत्या सह पुर नगरम् अगात् प्रापत् । 'इण् गतौ' इत्यस्य लुङि रूपम् । पुरे नगरे द्वात्रिंशच्छ्रीमुकुटधरसाहस्रकलित द्वात्रिंशतसहस्र-प्रमितमुकुटवद्धराजरचित महमुद्धव विन्दन् प्राप्नुवन् सुचिर सुदीर्घकाल यावत् विविधान् नैकविधान् भोगान् पञ्चेन्द्रियविपयान् अनुभुङ्क्ते स्म अन्वभवत् । शिखरिणीछन्द ॥६३॥ § १०९) कदाचिदिति—कदाचित् जातुचित् अय वज्रजङ्घ, कदर्पस्य कामस्य वोधिता प्रदीपिता या कनकनाराचधारा. सुवर्णवाणपङ्क्तयस्ताभिरिव, श्रीमत्या शयकुशेशयाभ्या करकमलाभ्या पाणिपद्माभ्या निर्गलिता नि सृतास्ताभि कुङ्कुमजलधाराभि. केशरसलिलधाराभि पिञ्जरीक्रियमाण पिङ्गलीक्रियमाणो देह. शरीर यस्य तथाभूत, लाक्षारसस्य जतुरसस्य छटाना प्रहारेण पाटलितं श्वेतरक्त दुकूल वस्त्र यस्य तादृश., मृगमदस्य कस्तूर्या जलविन्दुभि शवल मिश्रित यच्चन्दन तस्य स्थासकस्तिलको यस्य तथाभूत, कनकयन्त्रधर सन् चिक्रीड क्रीडति स्म । § ११०) कदाचनेति—कदाचन जातुचित् पुरन्दर इव सुमनोमण्डित सुमनोभिर्देवैर्मण्डित वज्रजङ्घपक्षे सुमनोभि' पुष्पैर्मण्डित' सोऽय वज्रजङ्घ. श्रीमत्या सह ललिताप्सर कुल ललिताना मनोहराणामप्सरसा स्वर्वेश्याना कुल समूह पक्षे ललितानि मनोहराणि यानि अप्सरासि जलकासारास्तेपा कुल समूहमसेवत भजति स्म । § १११) पश्यत इति—कविरत्र सभोगशृङ्गार वर्णयति—मृगस्येव लोचने यस्या. सा मृगलोचना हरिणाक्षी श्रीमती

रागताको) प्राप्त होता है ॥६२॥ § १०८) इतीति—इस प्रकार जिनेन्द्रदेवकी स्तुतिकर निर्दोप मुनि समूहको नमस्कार करता हुआ पवित्र आचारका धारक यह वज्रजंघ कमललोचना श्रीमतीके साथ नगरको वापस आया और वहाँ वत्तीस हजार मुकुटवद्ध राजाओंके द्वारा किये हुए उत्सवको प्राप्त होता हुआ चिर काल तक नाना प्रकारके भोग भोगता रहा ॥६३॥ § १०९) कदाचिदिति—किसी समय कामदेवके प्रदीप्त स्वर्णमय वाणोंकी सन्ततिके समान श्रीमतीके हस्तकमलसे छोड़ी हुई केशरके जलकी धाराओंसे जिसका शरीर पीला किया जा रहा है, लाखके रंगकी छटाओंके प्रहारसे जिसका वस्त्र पाटलवर्णका हो गया है तथा कस्तूरीके जल बूँदोंसे मिश्रित चन्दनका जिसने तिलक लगा रखा है ऐसा यह वज्रजंघ सुवर्णकी पिचकारी लेकर क्रीडा करता था । § ११०) कदाचनेति—और कभी इन्द्रके समान सुमनोमण्डित—फूलोंसे सुशोभित (पक्षमे देवोंसे अलंकृत) यह वज्रजंघ श्रीमतीके साथ ललिताप्सर.कुल—सुन्दरजलवाले तालावोंके समूहका—(पक्षमे सुन्दर अप्सराओंके समूह का) सेवन करता था । § १११) पश्यत इति—इस मृगाक्षीने इसकी ओर देखनेवाले मेरे नेत्र

§ ११२) अपूर्वपाणिग्रहणे प्रक्लृप्ते नृपेण देव्या किल केलिगेहे।
लाजायित मन्मथहव्यवाहे मर्दाद्गलन्मौक्तिकहारकेण ॥६५॥

§ ११३) [1]जायापत्योर्मेलने केलिगेहे शम्पावल्लीमेघयोर्यद्वदभ्रे।
आसीत्तत्रामेघसपातवृष्टिस्तस्या जज्ञे मानसस्य प्रहर्षः ॥६६॥

§ ११४) अरुणविलसद्बिम्ब ग्रस्तं तदा सहसा बला-
दहह पतित मेरोः शृङ्गाच्च तारगणैस्ततः।
तिमिरनिकरव्याप्तश्चन्द्रो बभूव नवोत्पल-
द्वितयमभवल्लीलालोल तयोः स्मरसङ्गरे ॥६७॥

पश्यतो विलोकयतो मे मम नेत्र हठाद् बलाद् जहार इति, मत्वेव स सुरते संभोगे सुष्ठु दृशौ यस्यास्तस्या सुनयनाया श्रीमत्या अम्बर वस्त्र जहार हरति स्म। उत्प्रेक्षा ॥६४॥ § ११२) अपूर्वेति—केलिगेहे क्रीडागारे देव्या श्रीमत्या नृपेण वज्रजङ्घेन अपूर्वपाणिग्रहणेऽभिनवविवाहे सर्वप्रथमकरग्रहणे च क्लृप्ते रचिते सति मर्दात् आलिङ्गनजन्यसमर्दात् गलन्मौक्तिकहारकेण त्रुटयत्पतन्मुक्तासरेण मन्मथहव्यवाहे कामाग्नौ लाजा इवाचरितमिति लाजायित लाजवर्पणमिवाचरितम् ॥ उपजातिछन्द ॥६५॥ § ११३) जायेति—अभ्रे वियति शम्पावल्लीमेघयोर्यद्वत् तडित्तडित्वतोरिव जायापत्योर्दम्पत्योर्मेलने सयोगे सति तत्र केलिगेहे न विद्यते मेघो वलाहको यस्या सा अमेधा, अमेघा चासौ संपातवृष्टिश्च धारावृष्टिश्चेत्यमेघसपातवृष्टि आसीत् तस्या वृष्टेश्च हेत्वर्थे पञ्चमी, मानसस्य चेतस तयोरिति शेष मानससरोवरस्य च प्रहर्ष. प्रमोदो वृद्धिश्च जज्ञे जायते स्म स्वेदवृष्टया दम्पत्योश्चेत प्रसत्तिरभूदिति भाव। उपमाश्लेषौ शालिनीछन्द ॥६६॥ § ११४) अरुणेति—तदा सभोगवेलाया तयो श्रीमतीवज्रजङ्घयो स्मरसगरे कामयुद्धे सहसा झटिति बलात् हठात् अरुणस्यार्कस्य विलसद्बिम्ब शोभमानमण्डल ग्रस्तम् आक्रान्त ततस्तदनन्तर मेरो सुमेरो शृङ्गात् शिखरात् तारगणै नक्षत्रगणै पतित भ्रष्टम् अहह इत्याश्चर्ये। चन्द्र शशी तिमिरनिकरेण ध्वान्तसमूहेन व्याप्त. समाच्छन्नो बभूव, नवोत्पलद्वितय च नूतननीलारविन्दयुगल च लीलालोल क्रीडाचपलम् अभवत्। अत्रातिशयोक्तिमहिम्नोपमेयो निगीर्ण

हठपूर्वक हर लिये है यह मान कर ही मानों वज्रजघने सुरत कालमें उस सुलोचनाका वस्त्र छीन लिया था ॥६४॥ § ११२) अपूर्व—क्रीडागृहमे राजाने जब देवीका अपूर्वपाणिग्रहण किया—अपूर्वविवाह किया अर्थात् सर्वप्रथम हस्तग्रहण कर आलिंगनके लिए जब उसे अपनी ओर खींचा तब एक ही झटकेमे हारके मोती टूट कर बिखर गये और उन बिखरे हुए मोतियोंने उस अपूर्व विवाहके समय कामरूप अग्निमे लाजवर्षाका काम किया ॥६५॥ § ११३) जायते—जिस प्रकार आकाशमे बिजली और मेघका सयोग होनेपर वर्षा होती है उसी प्रकार क्रीडागृहमे दम्पतियोंका सयोग होने पर विना मेघकी धारावद्ध वृष्टि होने लगी अर्थात् उनके शरीरसे स्वेदकणोंकी वर्षा होने लगी और उस वर्षासे उनके मनमे बहुत भारी हर्ष उत्पन्न हुआ ॥६६॥ § ११४) अरुणेति—उन दोनोंके कामयुद्धमे आश्चर्यजनक घटनाएँ हुई जैसे सूर्यका लालबिम्ब वलपूर्वक शीघ्र ही ग्रस्त हो गया, मेरुके शिखरसे ताराओंके समूह टूटकर नीचे गिरे, चन्द्रमा अन्धकारके समूहसे व्याप्त हो गया और नवीन नीलोत्पलोंका युगल लीलासे चचल हो उठा। (द्वितीय अर्थ संस्कृत टीकासे देखें) ॥६७॥

---

१ ६५-६६ श्लोकयोर्मध्ये क प्रतौ निम्नश्लोकोऽधिकोऽस्ति—क्रीडायुद्धे चकोराक्ष्या तया धूतायुधोऽप्यसौ। बभूव सहसा चित्र घनचापलतान्वित।

§ ११५) निरंजनत्व नयनाञ्चलेऽभूद्विरागताभून्नयने मृगाक्ष्याः।
नीव्या कवर्यामपि बन्धमुक्तिः पत्या समं दर्पककेलिकाले ॥६८॥

§ ११६) एवं जिनेन्द्रमहिमोत्सवपात्रदान-
पुत्रोद्भवादिविभवैः सरसस्य तस्य।
कान्तासखस्य कमनीयविशालकीर्तेः
कालो महानविदितो निरगाच्च तत्र ॥६९॥

§ ११७) वज्रबाहुरदात्कन्या वज्रजङ्घसहोदरीम्।
अनुन्दरी चक्रवर्तिसुतायामिततेजसे ॥७०॥

उपमानमेवावशिष्टं, श्रीमत्या अधरोष्ठ प्रातः सूर्यस्य बिम्बमिव लोहितमासीत् तच्च वज्रजङ्घेन बलात् पीत, श्रीमत्या स्तनयुगल सुमेरोः शृङ्गमिवोन्नत बभूव तत्र च शोभमाना हारमणयस्तारागणा इवासन् प्रगाढालिङ्गनवेलाया हारमणयस्त्रुटित्वा पतिता । श्रीमत्या मुख चन्द्र इव भास्वरमासीत् केशसमूहश्च तिमिरसमूह इव कृष्णोऽभवत् विपरीतरत्या पुंसायितक्रियायामिति यावत् श्रीमत्या मुख विकीर्णेन केशसमूहेन व्याप्तमभूत् । श्रीमत्या नेत्रद्वयं भवोत्पलमिव बभूव तच्च तदा लीलया चपलमभवत् 'अरुणोऽव्यक्तरागेऽर्के सध्यारागेऽर्कसारथौ' इति मेदिनी । हरिणीछन्द ॥७६॥ § ११५) निरंजनत्वमिति— मृगाक्ष्या कुरङ्गनेत्र्या पत्या सम दर्पककेलिकाले कामक्रीडासमये नयनाञ्चले नयनान्ते निरजनत्व पापरहितत्वमभूत्, विरागता वीतरागता च नयने लोचनेऽभूत् बन्धमुक्तिश्च बन्धान्मोक्षश्च नीव्यामधोवस्त्रग्रन्थ्या कवर्यामपि केशपाशेऽपि बभूवेति चित्रं यत्र पापाभावस्तत्रैव विरागता यत्र च विरागता तत्रैव बन्धमुक्तिरिति सगति अत्र तु निष्पापत्वमन्यत्र, विरागतान्यत्र, बन्धमुक्तिश्चान्यत्रेत्यसगति । परिहारपक्षे चुम्बनान्नयनकोणे निरञ्जनत्व नि कज्जलत्वमभवत्, विरागता कोपाभावात्तज्जनितारुण्यस्याभावो नयनेऽभूत्, वस्त्रापहरणार्थग्रन्थिमोचनं नीव्या करव्यापाराद् बन्धनमुक्तिश्च चूडायामभवदिति भाव । असगतिश्लेषौ । उपजातिवृत्तम् ॥६८॥ § ११६) एवमिति—एवमनेन प्रकारेण जिनेन्द्रस्य महिम्ना कल्याणानामुत्सव पात्रदान पुत्रोद्भवश्च ते आदौ येषा तथाभूता ये विभवास्तैः सरसस्य रसोपेतस्य, कान्ताया सखा तस्य कान्तासखस्य स्त्रीसहितस्य कमनीया मनोहरा विशाला विपुला च कीर्तिर्यस्य तथाभूतस्य तस्य वज्रजङ्घस्य महान् दीर्घ कालस्तत्र वज्रदन्तनगर्याम् अविदित एवाज्ञात एव निरगात् निर्जगाम । वसन्ततिलकाछन्द ॥६९॥ § ११७) वज्रेति—वज्रबाहु वज्रजङ्घस्य सहोदरी सगर्भाम् अनुन्दरी तन्नाम्नी कन्या चक्रिवर्तिसुताय वज्रदन्तपुत्राय अमिततेजसे अदात् ॥७०॥

---

§ ११५) निरंजनत्वमिति—पतिके साथ कामक्रीडाके समय मृगनयनी श्रीमतीके नयन कोणमे निरंजनत्व—पापका अभाव हुआ था, वीतरागता नेत्रमे हुई थी और बन्धसे मुक्ति नीवी तथा चोटीमें हुई थी (दूसरा अर्थ संस्कृत टीकासे देखें) ॥६८॥ § ११६) एवमिति—इस प्रकार जिनेन्द्र भगवान्के कल्याणकोंका उत्सव, पात्रदान तथा पुत्रोत्पत्ति आदि विभवसे सरस, स्त्रीसहित तथा मनोहर एवं विशाल यशके धारक वज्रजंघका बहुत भारी समय वहाँ विना जाने ही निकल गया ॥६९॥ § ११७) वज्रबाहुरिति—वज्रबाहुने चक्रवर्तीके पुत्र अमिततेजके लिए वज्रजघकी बहन अनुन्दरी नामकी कन्या दी ॥७०॥

---

१ नीरागता क० ।

§ ११८) चारुलक्षणसपन्नश्चक्रिसूनुस्तया बभौ ।
ज्योत्स्नयेव सुधासूति प्रभयेव च भास्करः ॥७१॥

इति श्रीमदर्हद्दासकृतौ पुरुदेवचम्पूप्रबन्धे द्वितीयस्तबक. ।

---

§ ११८) चार्विति—चारुलक्षणै प्रशस्तचिह्नै सपन्न सहित चक्रिसूनु वज्रदन्तपुत्र तया अनुन्दर्या ज्योत्स्नया चन्द्रिकया सुधासृतिश्चन्द्र इव प्रभया दीप्त्या च भास्कर इव सूर्य इव बभौ शुशुभे । उपमा ॥७१॥

इत्यर्हद्दासकृते पुरुदेवचम्पूप्रबन्धस्य वासन्तीसमाख्यायां संस्कृतव्याख्यायां द्वितीयः स्तबक. ।

---

§ ११८) चार्विति—सुन्दर लक्षणोंसे सहित चक्रवर्तीका पुत्र उस अनुन्दरीसे ऐसा सुशोभित हुआ जैसा कि चाँदनीसे चन्द्रमा और प्रभासे सूर्य सुशोभित होता है ॥७१॥

इस प्रकार अर्हद्दासकी कृति पुरुदेवचम्पूप्रबन्धमें दूसरा स्तबक समाप्त हुआ ।

तृतीयः स्तवकः

§ १) अथ कदाचिच्चक्रधरकलितपूजासत्कारपूजितश्चक्रिप्रतिपादिता महती सेना कोशदेशादिकं च प्रतिगृह्णानया श्रीमत्या पुरस्कृतः पित्रादिपरिवृतः, प्रस्थानससूचकभेरीभाङ्कारपूरितभुवनतलो वज्रजङ्घोऽनुव्रजितुमायातान्मन्त्रिपुरोहितपौरवर्गान्नातिदूरे विसृज्य पुरस्तरङ्गितचतुरङ्गबलेन सह स्वपुर प्रति निर्जगाम ।

§ २) महीतल तदा व्योमतल चोच्चकरेणुभिः ।
पुपूरे वज्रजङ्घस्य प्रयाणे परिजृम्भिते ॥१॥

§ ३) शङ्खास्तदानी पृतनाधिराजैरापूर्यमाणा द्वितय निभेदुः ।
श तद्वियोगासहसज्जनाना वयस्ययूना रभसेन खं च ॥२॥

---

§ १) अथेति—अथानन्तर कदाचित् चक्रधरेण वज्रदन्तेन कलित कृतो य. पूजासत्कारस्तेन पूजित , चक्रिणा पित्रा प्रतिपादिता दत्ता ता महती विशाला सेना पृतना कोशदेशादिक च निधिजनपदादिक च प्रतिगृह्णानया स्वीकुर्वाणया श्रीमत्या भार्यया पुरस्कृतोऽग्रेकृतः, पित्रादिभि तातप्रभृतिस्वपक्षीयजनै परिवृत परिवेष्टित प्रस्थानस्य प्रयाणस्य ससूचक प्रख्यापको यो भेरीभाङ्कारो दुन्दुभिनादस्तेन पूरित सभरित भुवनतल येन तथाभूतो वज्रजङ्घ , अनुव्रजितुमनुगन्तुम् आयातान् आगतान् मन्त्री च पुरोहितश्च पौरवर्गश्चेति द्वन्द्वस्तान् नातिदूरे किंचिद्दूरे विसृज्य प्रत्यावर्त्य पुरोऽग्रे तरङ्गित वृद्धिगतं यत् चतुरङ्गबल चतुरङ्गसैन्य हस्त्यश्वरथपदातिरूप तेन सह स्वपुर प्रति स्वकीयनगरमुत्पलखेटनगरी प्रति निर्जगाम निश्चक्राम । § २) महीतलमिति—तदा तस्मिन् काले वज्रजङ्घस्य प्रयाणे प्रस्थाने परिजृम्भिते वृद्धिगते सति महीतल पृथिवीतल व्योमतलं नभस्तल च उच्चकरेणुभि पुपूरे । महीतल उच्चा उत्तुङ्गा करेणवो हस्तिन्यस्ताभि पुपूरे व्योमतलम् उच्चका उत्थिता रेणवो धूलयस्तै पुपूरे । श्लेष. ॥१॥ § ३) शङ्खा इति—तदानी प्रयाणकाले पृतनाधिराजै सेनापतिभि आपूर्यमाणा आध्मायमाना शङ्खा कम्बवो द्वितय वस्तुद्वय निभेदु खण्डयामासु । किं तत् । तयो श्रीमतीवज्रजङ्घयोर्वियोगस्य विरहस्यासहा सोढुमसमर्था ये सज्जनास्तेपा वयस्ययूना

---

§ १) अथेति—तदनन्तर किसी समय जो चक्रवर्तीके द्वारा किये हुए सम्मान सत्कारसे पूजित था, चक्रवर्तीके द्वारा दी हुई विशाल सेना और खजाना तथा देश आदिको स्वीकृत करनेवाली श्रीमतीने जिसे आगे किया था, पिता आदि परिवारके लोगोंसे जो घिरा हुआ था और प्रस्थानको सूचित करनेवाली भेरियोंकी जोरदार ध्वनिसे जिसने भुवनतलको व्याप्त कर दिया था ऐसा वज्रजंघ पहुँचानेके लिए आये हुए मन्त्री पुरोहित तथा नागरिकोंके समूहको थोड़ी दूरीपर छोडकर सामने लहराती हुई चतुरंग सेनाके साथ अपने उत्पलखेट नगरकी ओर चल पडा । § २) महीतलमिति—उस समय जब वज्रजंघका प्रस्थान वृद्धिको प्राप्त हो रहा था तब पृथिवीतल और आकाशतल दोनों ही उच्च करेणुओंसे व्याप्त हो गये थे अर्थात् पृथिवीतल तो ऊँची-ऊँची हस्तिनियोंसे व्याप्त हो गया था और आकाश ऊँची उठी हुई धूलिसे भर गया था ॥१॥ § ३) शंखा इति—उस समय सेनापतियों द्वारा फूँके गये शखोंने दो वस्तुओंको खण्डित किया था । एक तो श्रीमती और वज्रजघके वियोगको सहन

§ ४) एवं प्रयाणपटुतरबलेन सह तोरणकेतुजालादिभिरलङ्कृतमुत्पलखेटक पुर समासाद्य तत्र गगनतलचुम्बिसौधसमाश्रितनितम्बिनीजनकरोन्मुक्तकुसुमलाजोपहारसुरभितसविधप्रदेशोनरपतिभवनमाससाद ।

§ ५) श्रीमती रमयामास वज्रजङ्घो विशालधीः ।
मातापितृवियोगेन खिन्ना कोशघनस्तनीम् ॥३॥

§ ६) सापि कुरङ्गलोचना सखीनामग्रगण्यया पण्डितया नृत्यगीतादिविनोदमनुभवन्ती क्रमेण पञ्चाशत यमान्पुत्रान्प्रासोष्ट ।

§ ७) अथ कदाचिन्मणिसौधाग्रविराजमानो वज्रबाहुमहीपति सुरापगाडिण्डीरखण्डमिव, व्योमलक्ष्मीहसितमिव, कचन शारदनीरद तत्क्षणविलीन विलोकमानो वैराग्यायत्तचित्तस्तनय-

---

तरुणमित्राणा श सुख, रभसेन वेगेन ख च गगन च । उपजातिछन्द ॥२॥ § ४) एवमिति – एवमित्थ प्रयाणे प्रगमने पटुतर दक्षतर यत् बल सैन्य तेन सह तोरणकेतुजालादिभिर्बहिर्द्वारपताकासमूहप्रभृतिभि. अलङ्कृत शोभितम् उत्पलखेटक पुर समासाद्य प्राप्य तत्र नगरे गगनतलचुम्बिसौधेषु समुत्तुङ्गप्रासादेपु समाश्रिताना समधिष्ठिताना नितम्बिनीजनाना वनिताजनाना कराभ्या हस्ताभ्यामुन्मुक्ता वर्षिता ये कुसुमलाजोपहारा पुष्पभर्जितधान्यलाजोपायनानि तै सुरभित सुगन्धित सविधप्रदेशो निकटप्रदेशो येन तथाभूत सन् नरपतिभवन राजप्रासादम् आससाद प्राप । § ५) श्रीमतीमिति—विशाला प्रत्येककार्ये दक्षा धीर्यस्य विशालधी. वज्रजङ्घ माता च पिता चेति मातापितरौ तयोर्वियोगेन विरहेण खिन्ना दु.खिता कोशाविव कुड्मलाविव घनौ स्तनौ यस्यास्ता कठिनकुचा श्रीमती रमयामास क्रीडयामास ॥३॥ § ६) सापीति—कुरङ्गस्य लोचने इव लोचने यस्यास्तथाभूता सापि श्रीमत्यपि सखीनामालीनाम् अग्रगण्यया प्रधानया पण्डितया तन्नामसख्या नृत्यगीतादिविनोद लास्यसगीतप्रभृतिमनोरञ्जनम् अनुभवन्ती क्रमेण पञ्चाशत यमान् युगलरूपेण समुत्पन्नान् पुत्रान् प्रासोष्ट जनयामास । § ७) अथेति—अथानन्तर कदाचित् मणिसौधस्य रत्ननिर्मितप्रासादस्याग्रे विराजमान शोभमानस्तथाभूतो वज्रबाहुमहीपति वज्रजङ्घस्य पिता, सुरापगाया आकाशगङ्गाया डिण्डीरखण्डमिव फेनशकलमिव, व्योमलक्ष्म्या गगनश्रिया हसितमिव, नभस्तरोराकाशमहीरुहस्य कुसुमपुञ्जमिव पुष्पसमूहमिव, गगनकानने नभोऽरण्ये विहरमाण परिभ्रमन् स्तम्बेरम ऐरावणस्तमिव, कचन कमपि शारदनीरद शरदृतुघनाघन

न करनेवाले सज्जनों तथा तरुण मित्रोंके सुखको और दूसरी, वेगसे आकाशको खण्डित किया था ॥२॥ § ४) एवमिति—इस प्रकार प्रयाण करनेमे अत्यन्त चतुर सेनाके साथ वज्रजंघ, तोरण तथा पताका समूह आदिसे अलकृत उत्पलखेटनगर जा पहुँचे वहाँ गगनचुम्बी भवनोंपर स्थित स्त्रियोंके हाथोंसे वर्षाये गये फूल तथा लाईके उपहारसे समीपवर्ती प्रदेशको सुगन्धित करते हुए राजमहलको प्राप्त हुए। § ५) श्रीमतीमिति—विशालबुद्धिके धारक वज्रजंघ माता-पिताके वियोगसे दुःखी तथा कठिन स्तनोंसे युक्त श्रीमतीको रमण कराने लगे ॥३॥ § ६) सापीति—सखियोमे अग्रगण्य पण्डिताके साथ नृत्य-गीत आदि विनोदका अनुभव करती हुई उस मृगनयनी श्रीमतीने भी क्रमसे पचास युगल पुत्रोंको उत्पन्न किया। § ७) अथेति—तदनन्तर किसी समय महाराज वज्रबाहु मणिमय महलके अग्रभागपर विराजमान थे। वहाँ उन्होंने आकाशगगाके फेनके खण्डके समान, आकाशलक्ष्मीके हास्यके समान, आकाशरूपी वृक्षके पुष्पसमूहके समान अथवा आकाश रूपी वनमे घूमते हुए ऐरावत हाथीके समान किसी शरदृऋतुके बादलको तत्काल विलीन होता हुआ देखा। देखते ही के साथ

समर्पितराज्यभार' पञ्चशतपृथ्वीपतिभिर्वीरप्रभृतिभिः श्रीमतीतनयैश्च साक जैनो दीक्षामुपादाय क्रमेण कैवल्यमुत्पाद्य पर धाममाससाद ।

§ ८) पैतृकी सपद प्राप्य प्रकृतीरनुरञ्जयन् ।
वज्रजङ्घोऽपि वसुधा पालयामास सादरम् ॥४॥

§ ९) अथ वज्रदन्तचक्रधरोऽपि स्वमिव सुरसभाव अतिदक्ष सभासनिवेशमासाद्य सद्वृत्तरत्नमण्डित सिंहासनमलकुर्वाणस्तत्र समागतेन वनपालेन समर्पित सामोद भ्रमरहित पद्ममाजिघ्रस्तद्गन्धमुग्धमधुकरं निशि तत्र संरुद्धं मृतं निरीक्ष्य भृश निर्विण्णो, विरतविषयाभिलाषस्तनयाय विदितनयायामिततेजोऽभिधानाय राजलक्ष्मी प्रतिपादयितुकामस्तस्मिन् सानुजे तपःसाम्राज्यमेव

तत्क्षण तत्काल विलीन नष्ट विलोकमान पश्यन् वैराग्यायत्त चित्त यस्य तथाभूतो विरक्तमना , तनयाय पुत्राय समर्पितो राज्यभारो *येन तादृश सन्* पञ्चशतपृथ्वीपतिभि पञ्चशतप्रमितमहीपालै वीरप्रभृतिभि श्रीमतीपुत्रै साक जैनी जैनेन्द्री दीक्षा प्रव्रज्याम् उपादाय गृहीत्वा क्रमेण कैवल्य केवलज्ञानम् उत्पाद्य परं धाम मोक्षम् आससाद प्राप । § ८) पैतृकीमिति—पैतृकी पितृसवन्धिनी सपद प्राप्य प्रकृती प्रजा अनुरञ्जयन् अनुरक्ता कुर्वन् वज्रजङ्घोऽपि सादर यथा स्यात्तथा वसुधा पृथिवी पालयामास ररक्ष ॥४॥ § ९) अथेति—अथानन्तरं वज्रदन्तचक्रधरोऽपि श्रीमतीजनकोऽपि स्वमिव स्वसदृश सुरसभाव सुष्ठु रसः सुरसस्तस्य भाव सत्त्व यस्मिन् त सुरसभाव पक्षे सुरसभा देवसभाम् अवति प्राप्नोतीति सुरसभावस्त, अतिदक्षम् अतिशयेन दक्षो विदग्धोऽतिदक्षस्त पक्षे अत्यधिका दक्षाश्चतुरनरा यस्मिस्त सभासनिवेश सभामण्डलम् आसाद्य, स्वमिव स्वसदृशमिति पुनरपि योज्य सद्वृत्तरत्नमण्डितं सद्वृत्तं सदाचार एव रत्न तेन मण्डितस्त पक्षे सन्ति प्रशस्तानि वृत्तानि वर्तुलानि यानि रत्नानि तैर्मण्डित शोभितं सिंहासनम् अलकुर्वाण , तत्र सभासनिवेशे समागतेन समायातेन वनपालेन समर्पित प्रदत्त स्वमिव स्वसदृशमिति पुनरपि योज्यं सामोद सहर्षं पक्षे सगन्ध भ्रमरहित सदेहरहित पक्षे षट्पदहित पद्म कमलम् आजिघ्रन् घ्राणविषयीकुर्वन् तस्य पद्मस्य गन्धे सुरभौ मुग्धो मूढो यो मधुकरो भ्रमरस्त, निशि रजन्या तत्र पद्मे सरुद्ध मृत निष्प्राण निरीक्ष्य भृशमत्यन्त निर्विण्णो विरक्त , विरतो दूरीभूतो *विषयाभिलाषो भोगस्पृहा यस्य तथाभूत सन् विदितो नयो येन तस्मै राजनीतिज्ञाय अमिततेजोऽभिधानाय*

उनका चित्त वैराग्यसे भर गया जिससे उन्होंने पुत्रके लिए राज्यभार सौंप कर पाँच सौ राजाओ तथा वीर आदि श्रीमतीके पुत्रोंके साथ जैनीदीक्षा धारण कर ली और क्रमसे केवलज्ञान उत्पन्न कर मोक्षको प्राप्त किया। § ८) पैतृकीमिति—पिताकी सम्पत्तिको पाकर प्रजाको प्रसन्न करते हुए वज्रजंघ भी आदरके साथ पृथिवीका पालन करने लगे ॥४॥ § ९) अथेति—तदनन्तर वज्रदन्त चक्रवर्ती भी अपने समान सुरसभाव—उत्तमरसके सद्भावसे सहित (पक्षमे देवसभाके तुल्य) तथा अतिदक्ष—अत्यन्त चतुर (पक्षमे अत्यधिक चतुर मनुष्योंसे सहित) सभामण्डपको प्राप्तकर, अपने ही समान सद्वृत्तमण्डित—सदाचार रूपी रत्नसे सुशोभित (पक्षमे उत्तम तथा गोल रत्नोंसे सुशोभित) सिंहासनको अलंकृत कर, वहाँ आये हुए वनपालके द्वारा प्रदत्त अपने ही समान सामोद—हर्षसे सहित (पक्षमे सुगन्धसे सहित) तथा भ्रमरहित—सन्देहरहित (पक्षमे भ्रमरोंके लिए हितकारी) कमलको सूँघने लगे। वहाँ कमलके लोभी भ्रमरको रात्रिमे उसी कमलमे रुककर मरा हुआ देख अत्यन्त खिन्न हुए तथा विषयाभिलाषासे विरत हो गये। वे राजनीतिके ज्ञाता अमिततेज नामक पुत्रके लिए राज्यलक्ष्मी देना चाहते थे परन्तु उसने और उसके छोटे भाई—दोनोंने तपके साम्राज्यको ही बहुत माना अर्थात् राज्यलक्ष्मीको लेना अस्वीकृत कर दिया। तब सुखसे

बहुमन्वाने, तत्सुताय पुण्डरीकाय वदनजितपुण्डरीकाय बालाय राज्यमर्पयित्वा षष्टिसहस्रैर्देवीना त्रिंशत्सहस्रैर्नरपालाना सहस्रेण सुतैः पण्डितया च परिवृतो यशोधरयोगीन्द्रशिष्य गुणधरनामान मुनिवरमासाद्य सत्वरमदीक्षिष्ट ।

§ १०) ततश्चक्रधरापायाल्लक्ष्मीमतिरगाच्छुचम् ।
अनुन्दर्या सहोष्णाशुवियोगान्नलिनी यथा ।।५।।

§ ११) बाले राज्यभरोऽर्पितः कथमय बालो मया रक्ष्यते
पुष्यत्पक्षबलादृते किमधुना कर्तव्यमित्युत्कटम् ।
चिन्ताक्रान्तमतिः खगाधिपसुतौ लक्ष्मीमतिः प्राहिणोत्
पत्रप्रोतकरण्डकौ कुशलिनौ श्रीवज्रजङ्घ प्रति ।।६।।

§ १२) तदनु करण्डकस्थितपत्रार्थज्ञानेन निश्चितसकलोदन्त किंचिच्चिन्ताक्रान्तस्वान्त

तनयाय पुत्राय राजलक्ष्मी राजश्रियं प्रतिपादयितुकाम प्रदातुमना , सानुजे लघुसहोदरसहिते तस्मिन् अमित-तेजसि तपस साम्राज्य तपःसाम्राज्य तदेव बहुमन्वाने राज्यमस्वीकुर्वाणे सति तत्सुताय अमिततेज पुत्राय वदनेन मुखेन जित पुण्डरीक श्वेतसरोरुह येन तस्मै वदनजितपुण्डरीकाय बालायाल्पवयस्काय पुण्डरीकाय पुण्डरीक-नाम्ने राज्यम् अर्पयित्वा प्रदाय देवीना राज्ञीना षष्टिसहस्रै., नरपालाना राज्ञा त्रिंशत्सहस्रै सहस्रेण सुतै पुत्रै पण्डितया श्रीमतीसख्या च परिवृतः परीत यशोधरयोगीन्द्रस्य यशोधरजिनराजस्य शिष्य गुणधरनामान मुनि-वर यतिश्रेष्ठम् आश्रित्य प्राप्य सत्वर शीघ्रम् अदीक्षिष्ट दीक्षितो बभूव । § १०) तत इति—ततस्तदनन्तरं चक्रधरस्य वज्रदन्तस्य अपायात् निर्गमनात् लक्ष्मीमतिश्चक्रवर्तिभार्या अनुन्दर्या पुत्रवध्वा सह उष्णांशुवियोगात् सूर्यविप्रलम्भात् नलिनी यथा कमलिनीव शुच शोकम् अगात् प्रापत् ॥५॥ § ११) बाल इति—राज्यभरो बालेऽल्पवयस्कपुण्डरीके अर्पितो निक्षिप्त , पुष्यत्पक्षस्य सबलसहायस्य बल समाश्रयस्तस्मात् ऋते विना मया स्त्रिया अय बाल पुण्डरीक. कथ रक्ष्यते त्रायते । अधुना साप्रत किं कर्तव्य करणीयम् इतीत्थम् उत्कटमत्य-धिक चिन्तया विचारसतत्या आक्रान्ता मतिर्यस्या तथाभूता लक्ष्मीमतिश्चक्रवर्तीपत्नी पत्रप्रोत पत्रसहित करण्डक ययोस्तौ कुशलिनौ चतुरौ खगाधिपसुतौ विद्याधरराजपुत्रौ श्रीवज्रजङ्घ प्रति जामातर प्रति प्राहिणोत् प्रेषयामास । शार्दूलविक्रीडितछन्द ।।६।। § १२) तदन्विति—तदनन्तर करण्डके पेटके स्थित निहित यत् पत्र तस्यार्थस्य ज्ञानेन निश्चितो निर्णीतः सकलोदन्तो निखिलसमाचारो येन तथाभूत , किंचिन्मनाग् चिन्तया-

---

कमलको जीतनेवाले, अमिततेजके पुत्र पुण्डरीकके लिए जो कि अत्यन्त बालक ही था राज्य देकर साठ हजार रानियों, तीस हजार राजाओं, एक हजार पुत्र और पण्डिता नामक श्रीमतीकी सखीसे परिवृत हो यशोधर जिनेन्द्रके शिष्य गुणधर नामक मुनिराजके पास जाकर शीघ्र ही दीक्षा ले ली । § १०) तत इति—तदनन्तर चक्रवर्तीके चले जानेसे लक्ष्मीमति अनुन्दरीके साथ, सूर्यके वियोगसे कमलिनीके समान शोकको प्राप्त हुई ।।५।। § ११) बाल इति—राज्यका भार बालकके ऊपर अर्पित किया गया है सो सबल सहायकके बलके बिना यह बालक मुझ अबलाके द्वारा किस प्रकार रक्षित किया जा सकता है। इस समय क्या करना चाहिए ? इस प्रकारकी चिन्तासे जिसकी बुद्धि आक्रान्त हो रही थी ऐसी लक्ष्मीमतिने पत्र सहित पिटारोंसे युक्त अतिशय चतुर विद्याधर राजाके दो पुत्रोंको भी वज्रजंघके प्रति भेजा ।।६।। § १२) तदन्विति—तदनन्तर पिटारेमें स्थित पत्रके अर्थका ज्ञान होनेसे जिन्होंने सब वृत्तान्तका निश्चय कर लिया था तथा जिनका चित्त कुछ चिन्तासे व्याप्त हो रहा था

काश्यपीकान्तः कान्तायै श्रीमत्यै यथानिश्चयं वृत्तमिदं निवेद्य, समाश्वास्य च समाकुलमानसा ता, कृतप्रमाणोद्यम पुरतो विसृज्य चिन्तागतिमनोगतिविख्यातौ दूतमुख्यौ, मतिवरानन्दधनमित्राकम्पननामधेयैर्महामन्त्रिपुरोहितश्रेष्ठिचमूपतिभिः परिवृतश्चलन्तमपरमिव जलधिं बलं पुरोधाय प्रस्थानभेरीरवपूरितभुवनोदरः प्रतस्थे ।

§ १३) रङ्गत्तुरङ्गमतरङ्गवती करीन्द्र—
यादःकुला बहुललोलकृपाणमत्स्या ।
श्वेतातपत्रघनफेनविराजमाना
सा वाहिनी नरपते प्रजव चचाल ॥७॥

§ १४) घोटाटोपस्फुटितवसुधाधूलिकापालिकाभिः
शोषं याते दिवि भुवि लसत्सिन्धुयुग्मे क्षणेन ।

क्रान्तं स्वान्त चित्त यस्य तादृश काश्यपीकान्तो महीपतिर्वज्रजङ्घ कान्तायै वल्लभायै श्रीमत्यै यथानिश्चय निश्चयानुसारम् इद वृत्त समाचारमेत निवेद्य कथयित्वा, समाकुलमानसा व्यग्रचेतस ता समाश्वास्य च सबोध्य च, कृतः प्रयाणे उद्यमो येन तथाभूत सन् पुरतोऽग्रे चिन्तागतिमनोगतिविख्यातौ दूतमुख्यौ प्रधानदूतौ विसृज्य मुक्त्वा प्रेष्येत्यर्थ । मतिवरानन्दधनमित्राकम्पननामधेयै महामन्त्रिपुरोहितश्रेष्ठिचमूपतिभि यथाक्रमेणान्वय , परिवृत परीत चलन्तम् अपर जलधिं सागरमिव बल सैन्य पुरोधाय अग्रे कृत्वा प्रस्थानभेरीणा प्रयाणदुन्दुभीना रवेण शब्देन पूरित' सभरितो भुवनोदरो लोकमध्यो येन तथाभूत सन् प्रतस्थे प्रययौ । § १३) रङ्गदिति—नरपतेर्वज्रजङ्घस्य सा प्रसिद्धा वाहिनी सेना पक्षे नदी च प्रकृष्टवेग यथा स्यात्तथा चचाल । अथ रूपकेणोभयो सादृश्यमाह—रङ्गन्त उच्चलन्तस्तुरङ्गमा अश्वा एव तरङ्गा कल्लोला इति रङ्गत्तुरङ्गमतरङ्गा , ते विद्यन्ते यस्या तथाभूता , करीन्द्रा गजेन्द्रा एव याद कुलानि जलजन्तुसमूहा यस्या सा, बहुललोला अतिशयचपला कृपाणा खड्गा एव मत्स्यास्तिमयो यस्या सा, श्वेतातपत्राणि शुभ्रच्छत्राण्येव घनफेना सान्द्रडिण्डीरास्तेन विराजमाना शोभमाना । रूपकालकार । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥७॥ § १४) घोटाटोपेति—दिवि गगने भुवि पृथिव्या च लसत् शोभमान यत् सिन्धुयुग्म नदीयुगल तस्मिन् घोटानामश्वाना टोपै खुरै स्फुटिता विदारिता या वसुधा भूमिस्तस्या धूलिका रेणवस्तासा पालिका पङ्क्तयस्ताभि क्षणेन अल्पेनैव कालेन शोष याते सति शुष्के सति, तदिदमुभय स्वर्णदीमहीनदीयुग्मम् अन्वर्थाख्यै सार्थकनामधेयै सिन्धुरन्ध्रै सिन्धुं

ऐसे राजा वज्रजघने निश्चयानुसार सब समाचार अपनी प्रिया श्रीमतीके लिए सुनाये और खिन्न चित्तवाली उस श्रीमतीको समझाकर प्रयाण के लिए उद्यत हुए। सबसे आगे उन्होंने चिन्तागति और मनोगति नामसे प्रसिद्ध दो मुख्य दूतोको भेजा। मतिवर, आनन्द, धनमित्र और अकम्पन नामवाले महामन्त्री, पुरोहित, श्रेष्ठी और सेनापतिसे परिवृत हो चलते हुए दूसरे समुद्रके समान सेनाको आगे कर प्रस्थान कालमें बजनेवाली भेरियोंके शब्दसे ससारके मध्यको व्याप्त करते हुए उन्होंने प्रस्थान किया। § १३) रङ्गत्तुरङ्गमेति—जो उछलते हुए घोडेरूपी तरङ्गोंसे सहित थी, गजेन्द्र ही जिसमें जलजन्तु थे, अत्यन्त चञ्चल तलवारें ही मच्छ थे, तथा जो सफेद छत्ररूपी सघन फेनसे सुशोभित थी ऐसी राजा वज्रजघकी सेनारूपी नदी बडी वेगसे चल रही थी ॥७॥ § १४) घोटाटोपेति—उस समय घोडोंकी टापोंसे खुदी हुई पृथिवी सम्बन्धी धूलिकी पङ्क्तियोंके द्वारा आकाश तथा भूमिपर शोभायमान—दोनों नदियोंके युगल क्षणभरमे सुखा दिये गये थे परन्तु सार्थक नामवाले सिन्धुरन्ध्र—हाथियोंने

शुण्डोद्गच्छज्जलकणभरैर्दानपूरैश्च वेगा-
दन्वर्थाख्यैस्तदिदमुभय पूरित सिन्धुरन्ध्रैः ॥८॥

§ १५) ततश्च विकचक सुमनिकरमत्युच्चतया तारागणमिव शिखरदेशलग्नमुद्वहद्भि: पादपैरुपशोभिता निजसेनामिव महिषीसमधिष्ठिता कञ्चुकीपरिवृता चमरजातविराजिता च वनवीथिमासाद्य, तत्र कस्यचित्सरसः समीपदेशे शीतलसुरभिलमन्दगन्धवहमधुरसलिलसनिवेशे नरपालः सेना परितो विधाय शिविरमाससाद ।

§ १६) कान्तारचर्यां सगीर्यं पर्यटन्तौ मुनीश्वरौ ।
ददर्श धरणीपाल स तत्राम्बरचारिणौ ॥९॥

रन्धयन्ति साधयन्ति—पूरयन्ति—इति सिन्धुरन्ध्रा तैर्गजै , शुण्डाभ्यो हस्तेभ्य उद्गच्छन्त उत्पतन्तो ये जलकणभरा वारिपृषतासमूहास्तै , दानपूरैश्च मदप्रवाहैश्च वेगात् झटिति पूरित सभरित शुण्डोद्गच्छज्जलकणभरै स्वर्णदीपूरितादानपूरैश्च महीनदीपूरितेति भाव । अतिशयोक्ति । मन्दाक्रान्ताच्छन्द ॥८॥ § १५) ततश्चेति—ततश्च तदनन्तर च, अत्युच्चतया अतितुङ्गतया शिखरदेशलग्न शृङ्गप्रदेशसक्त तारागणमिव नक्षत्रसमूहमिव विकचक प्रफुल्ल सुमनिकर पुष्पसमूहम् उद्वहद्भिर्दधद्भि पादपैस्तरुभि उपशोभिता समलङ्कृताम्, निजसेनामिव स्वकीयपृतनामिव महिषीसमधिष्ठिता सेनापक्षे महिष्यो राज्ञ्यस्ताभि समधिष्ठिता वनवीथिपक्षे महिष्यो देहिका महिषस्त्रिय इत्यर्थ 'महिषी नाम देहिका' इति धनजय ताभि समधिष्ठिता, कञ्चुकीपरिवृता सेनापक्षे कञ्चुकय अन्त पुरवृद्धप्रतीहारास्तै परिवृता परीता वनवीथीपक्षे कञ्चुकय. सर्पास्तै समधिष्ठिता, चमरजातविराजिता सेनापक्षे चमराणा वालव्यजनाना जातेन समूहेन विराजिता शोभिता वनवीथिपक्षे चमराणा मृगविशेषाणा जातेन समूहेन विराजिता च वनवीथि काननसरणिम् आसाद्य प्राप्य तत्र वनवीथ्या कस्यचित् सरस कासारस्य समीपदेशे निकटप्रदेशे, कथभूते निकटप्रदेशे । शीतल शिशिर सुरभिल सुगन्धित मन्दो मन्थरश्च यो गन्धवह पवनस्तेन मधुरो मनोहरसलिलसनिवेशो यस्मिन् तस्मिन् परित समन्तात् सेना ध्वजिनी विधाय निवेश्य शिविर सेनानिवेशस्थानम् आससाद प्राप । § १६) कान्तारेति—स धरणीपालो वज्रजङ्घ तत्र कान्तारचर्या कान्तारे वन एव चर्यामाहारार्थं भ्रमणं कान्तारचर्यां सगीर्य प्रतिज्ञाय यदि कान्तारमध्ये आहार प्राप्स्यामि तर्हि ग्रहीष्यामि नान्यथेति नियम कृत्वा पर्यटन्तौ भ्रमन्तौ अम्बरचारिणौ चारणर्द्धि-

---

सूँडोंसे उछलते हुए जलकणोंके समूहसे आकाश गङ्गाको और मदके प्रवाहसे भूमिकी नदीको भर दिया था ॥८॥ § १५) ततश्चेति—तदनन्तर जो अत्यन्त ऊंचाईके कारण शिखर देशमें लगे हुए तारागणके समान विकसित फूलोंके समूहको धारण करनेवाले वृक्षोंसे सुशोभित थी, तथा जो अपनी सेनाके समान महिषी समधिष्ठित—भैंसोंसे सहित (पक्षमे रानियोंसे सहित), कचुकी परिवृत—साँपोंसे घिरी हुई (पक्षमें अन्त.पुरके वृद्ध पहरेदारोंसे परिवृत) और चमरजातविराजित—चमरीमृगोंके समूहसे सुशोभित (पक्षमें चौरोंके समूहसे सुशोभित) थी ऐसी वनवीथि—वनमार्गको प्राप्त कर वहाँ किसी सरोवरके उस समीपवर्ती प्रदेशमें जहाँ शीतल, सुगन्धित और मन्द वायुसे मधुर जलका समावेश था, सेनाको सब ओर ठहराकर राजा वज्रजघ अपने शिविरमें पहुँचे । § १६) कान्तारेति—वहाँ राजाने यदि वनमे आहार मिलेगा तो लेंगे अन्यथा नहीं इस प्रकार कान्तारचर्या—वनचर्याका नियम

§ १७) उत्थाय वेगेन धराधिराज कृताञ्जलिर्भक्तिसमर्पितार्घः ।
प्रणम्य कान्तासहितो मुनीन्द्रौ प्रवेशयामास निज निकाय्यम् ॥१०॥

§ १८) तत्र विशुद्धमतिरसौ नरपतिर्दमधरसागरसेननाम्ने प्रथितमहिम्ने शिथिलितभवनिगलाय मुनियुगलाय तस्मै विधिवदाहार दत्त्वा, रत्नवृष्टिपुष्पवृष्टिगगनतरङ्गिणीतरङ्गवाहिमन्दमारुतदुन्दुभिध्वनिजयघोषणारूपाणि पञ्चाश्चर्याणि विलोकमान., प्रणम्य सपूज्य मुनिपुङ्गवौ विसृज्य विबुध्य च काञ्चुकीयात्कथनादिमौ चरमात्मतनुजौ, ससभ्रम श्रीमत्या सह सप्रीत पुनस्तन्निकटमासाद्य, प्रथम गृहस्थधर्मं स्वस्य श्रीमत्याश्च भवावलिं च श्रुत्वा सादरमेव पप्रच्छ ।

§ १९) स्वबन्धुनिर्विशेषा मे स्निग्धा मतिवरादय ।
मुनीश्वर ! भवानेषा मह्य ब्रूहि दयानिधे ! ॥११॥

सपन्नौ मुनीश्वरौ यतिराजौ ददर्श ॥९॥ § १७) उत्थायेति—कान्तासहित सभार्यः धराधिराजो वज्रजङ्घ. वेगेन रभसा उत्थाय कृताञ्जलिर्विहितकरसपुटः, भक्त्या समर्पितोऽर्घो येन तथाभूत सन् प्रणम्य नमस्कृत्य मुनीन्द्रौ यतिराजौ निज स्वकीय निकाय्य पटागार प्रवेशयामास । उपजातिछन्द ॥१०॥ § १८) तत्रेति—तत्र निजशिविरे विशुद्धा समीचीनश्रद्धोपेता मतिर्यस्य तथाभूतो नरपतिर्वज्रजङ्घ. दमधरश्च सागरसेनश्चेति दमधरसागरसेनौ तौ नाम यस्य तस्मै, प्रथित. प्रसिद्धो महिमा यस्य तस्मै, शिथिलित निर्बलीकृत भवनिगल ससारबन्धन यस्य तस्मै मुनियुगलाय तस्मै पूर्वोक्ताय, यथाविधि चरणानुयोगप्रतिपादितविध्यनुसारम् आहार दत्त्वा, रत्नवृष्टिश्च पुष्पवृष्टिश्च गगनतरङ्गिणीतरङ्गवाहिमन्दमारुतश्च दुन्दुभिध्वनिश्च जयघोषणा चेति द्वन्द्व , ता रूप येषा तानि पञ्चविशिष्टकार्याणि विलोकमान. पश्यन्, प्रणम्य नमस्कृत्य सपूज्य समर्च्य मुनिपुङ्गवौ दमधरसागरसेननामानौ विसृज्य विसृष्टौ कृत्वा काञ्चुकीयात् कञ्चुकीसबन्धिन कथनात् इमौ मुनीश्वरौ चरमौ च तावात्मतनुजाविति चरमात्मतनुजौ अन्तिमलघुपुत्रौ विबुध्य ज्ञात्वा च, ससभ्रम शीघ्र श्रीमत्या स्ववल्लभया सह सप्रीत. संप्रसन्न पुनर्भूय तन्निकट मुनियुगलाभ्यर्णम् आसाद्य, प्रथम प्राक् गृहस्थधर्मं गृहिधर्मस्वरूप स्वस्य श्रीमत्याश्च भवावलिं पूर्वभवसमूह श्रुत्वा सादर सविनयम् एव पप्रच्छ पृष्टवान् । § १९) स्वेति—हे मुनीश्वर ! हे यतिराज ! स्निग्धा स्नेहभाजो मतिवरादय महामन्त्रिपुरोहितश्रेष्ठिचमूपतय , मे मम स्वबन्धुनिर्विशेषा स्वसहोदरसदृशा. सन्ति । हे दयानिधे ! एषा मतिवरादीना भवान् पूर्वपर्यायान् मह्य ब्रूहि

लेकर भ्रमण करते हुए गगनविहारी दो मुनिराजोको देखा ॥९॥ § १७) उत्थायेति—राजाने स्त्रीसहित वेगसे उठकर हाथ जोडे, भक्तिपूर्वक अर्घ्य चढाया और नमस्कार कर उन्हें अपने डेरेमे प्रविष्ट कराया ॥१०॥ § १८) तत्रेति—वहाँ विशुद्ध बुद्धिके धारक राजाने प्रसिद्ध महिमासे युक्त तथा ससारकी वेडियोंको शिथिल करनेवाले दमधर और सागरसेन नामक युगल मुनियोंको विधिपूर्वक आहार देकर रत्नवृष्टि, पुष्पवृष्टि, आकाशगङ्गाकी तरङ्गोंको धारण करनेवाली मन्द वायु, दुन्दुभिनाद और जयघोषणा रूप पाँच आश्चर्योंको देखा, तदनन्तर दोनों मुनियोंको प्रणामकर पूजा करनेके बाद विदा किया। विदा करनेके बाद कञ्चुकीके कहनेसे यह जानकर कि ये हमारे ही अन्तिम दो पुत्र हैं राजाकी प्रसन्नताका पार नहीं रहा। वे शीघ्र ही पुनः उनके निकट गये। वहाँ जाकर उन्होंने पहले गृहस्थ धर्म, अपने और श्रीमतीके पूर्वभव सुने और उसके बाद आदरसहित इस प्रकार पूछा। § १९) स्वेति—हे मुनिराज ! स्नेहसे युक्त ये मतिवर आदिक मेरे अपने भाईके समान हैं इसलिए

§ २०) इति पृष्टो नरेन्द्रेण मुनीन्द्रस्तुष्टमानसः ।
अवधिस्पष्टनयन इदमाचष्ट सादरम् ॥१२॥

§ २१) अथ मतिवरो जम्बूद्वीपपूर्वविदेहवत्सकावतीविषयप्रभाकरीपुर्यामतिगृद्ध्रो नाम नरपालो जातस्तत्र बह्वारम्भपरिग्रहवैभवविजृम्भितनरकायुष्य. पङ्कप्रभानाम्नि नरके सजातनारकभावो दशसागरोपमस्थितिस्ततो निष्पत्य पूर्वोक्तनगरसमीपविलसिते निजधननिक्षेपपर्वते शार्दूलः समजायत ।

§ २२) कदाचिद्विजिगीषयाभ्युत्थित निजानुज निवर्त्य तन्महीधरमधिवसन्त सानुज प्रीतिवर्धन नाम महीरमण, पुरोधाय पुरोधा मेधावतामग्रणीरत्र मुनीश्वराहारदानेन तव महान् लाभो भवितेति प्रतिपाद्य मुनीश्वरसमागमोपायमप्येवं कथयाबभूव ।

§ २३) प्रकीर्यन्ता पुष्पैरलिकुलकलारावमुखरै
पयोभिः सिच्यन्ता घुसृणरसमिश्रैः सुरभिलैः ।

कथय ॥११॥ § २०) इतीति—इतीत्थ नरेन्द्रेण वज्रजङ्घेन सादरं सविनय पृष्टोऽनुयुक्त, तुष्टमानस सप्रीतहृदय अवधिरेव स्पष्टनयन यस्य तथाभूतोऽवधिज्ञाननेत्रविलसितो मुनीन्द्रः इदम् आचष्ट कथयामास ॥१२॥ § २१) अथमिति—अथ पुरोवर्तमानो मतिवरो महामन्त्री जम्बूद्वीपपूर्वविदेहस्य वत्सकावतीविषये विद्यमाना या प्रभाकरपुरी तस्याम् अतिगृद्ध्रो नाम नरपालो राजा जात । तत्रातिगृद्ध्रभवे बह्वारम्भपरिग्रहस्य वैभवेन सामर्थ्येन विजृम्भित बद्ध नरकायुष्य यस्य तथाभूत सन् पङ्कप्रभानाम्नि नरके चतुर्थनरके सजात समुत्पन्नो नारकभावो नारकपर्यायो यस्य तादृश, दशसागरोपमा स्थितिर्यस्य तथाभूत ततो नरकात् निष्पत्य निर्गत्य पूर्वोक्तनगरस्य प्रभाकरीपुर्या समीपे विलसिते शोभिते निजधनस्य स्वकीयवित्तस्य निक्षेपो निधान यस्मिन् तथाभूते पर्वते शार्दूलो व्याघ्र समजायत समुद्भूत । § २२) कदाचिदिति—कदाचित् जातुचित् विजेतुमिच्छा विजिगीषा तथापि उत्थित स्वविरोधे कृतोत्थान निजानुज स्वकनिष्ठसहोदर निवर्त्य प्रत्यावर्त्य तन्महीधर पूर्वोक्तपर्वतम् अधिवसन्त प्रीतिवर्धन नाम महीरमण राजान पुरोधायाग्रे कृत्वा मेधावतां बुद्धिमताम् अग्रणी प्रधान पुरोधा पुरोहित, *अत्र पर्वते मुनीश्वराय आहारदान तेन तव भवतो महान्* लाभो भविता भविष्यतीति प्रतिपाद्य कथयित्वा मुनीश्वरस्य समागम प्राप्तिस्तस्योपायमपि एवं कथयामास जगाद । § २३) प्रकीर्यन्तामिति—भो पौरा ! अथ पृथ्वीपतिर्भूपाल इतोऽस्मात्स्थानात् यास्यति गमिष्यति अत मुदा हर्षेण पुरीरथ्या नगरीमार्गा अलिकुलस्य भ्रमरसमूहस्य कलारावेण मधुरशब्देन मुखराणि शब्दायमानानि तैः

हे दयाके भाण्डार ! आप मेरे लिए इनके भव कहिए ॥११॥ § २०) इतीति—इस प्रकार आदरसहित राजाके द्वारा पूछे गये सतुष्ट चित्त अवधिज्ञानी मुनिराज यह कहने लगे ॥१२॥ § २१) अथमिति—यह मतिवर जम्बूद्वीपके पूर्व विदेह सम्बन्धी वत्सकावती देशकी प्रभाकरी नगरीमे पहले अतिगृद्ध्र नामका राजा था वहाँ बहुत आरम्भ और परिग्रहकी सामर्थ्यसे नरकायुका बन्ध कर यह पंकप्रभा नामके चौथे नरकमे दशसागरकी आयुवाला नारकी हुआ । वहाँसे निकलकर उसी प्रभाकरी नगरीके समीपमे शोभित उस पर्वतपर जिसमे कि इसका धन गडा हुआ था व्याघ्र हुआ । § २२) कदाचिदिति—किसी समय जीतनेकी इच्छासे भी उठे हुए अपने छोटे भाईको लौटाकर उस पर्वतपर ठहरे हुए छोटे भाईसहित प्रीतिवर्धन नामके राजाको आगेकर बुद्धिमानोंमे शिरोमणि पुरोहित बोला कि इस पर्वतपर मुनिराजको आहार दान देनेसे तुम्हें महान् लाभ होगा, यह कहकर उसने मुनीश्वरके समागमका उपाय भी इस प्रकार कहा । § २३) प्रकीर्यन्तामिति—हे पुरवासियो ! यहाँसे राजा जावेगा इसलिए हर्षसे नगरीकी सडकें भ्रमरसमूहके अव्यक्तमधुर शब्दोंसे शब्दायमान फूलोंसे

पुरीरथ्याः पृथ्वीपतिरयमितो यास्यति मुदा
ध्वजान्बद्ध्वा सौधेष्वपि तनुत भोस्तोरणगणान् ॥१३॥

§ २४) इति पुरे घोषणाया दत्ताया तथालङ्कृतं नगरमप्रासुकत्वेनात्मनो विहारायोग्यं मत्वा कान्तारचर्यां सगीर्यं मुनिवरो यास्यति।

§ २५) एवं पुरोधोवचनमङ्गीकृत्य धरारमणस्तथा कुर्वाणस्ततः क्रमेण समागताय पिहितास्रवनाममुनिवराय विधिवदाहारं दत्त्वा निलिम्पनिपातितां वसुधारां विलोकमानस्तदानीमये धरारमण! अस्मिन् महीधरे भवदीयदानवैभवविजृम्भितरत्नवृष्टिनिरीक्षणक्षणजनितजातिस्मृतिः सत्यक्तशरीराहारः कोऽपि शार्दूलः शिलातले निविष्टः सोऽयं त्वयोपचर्यताम्। अयं किल पुरुनन्दनो भूत्वा चक्रवर्तितामेत्य परं धाम व्रजिष्यति, इति मुनिवरव्यवहारविस्तृतविस्मयो मुनिना समं गत्वा शार्दूलस्य सपर्यां विस्तारयामास।

पुष्पैः प्रसूनैः प्रकीर्यन्तां प्रक्षिप्यन्ताम्, घुसृणरसमिश्रैः कुङ्कुमरसमिलितैः सुगन्धिभिः पयोभिर्जलैः सिच्यन्ताम्, सौधेष्वपि प्रासादेष्वपि ध्वजान् पताका बद्ध्वा तोरणगणान् बहिर्द्वारसमूहान् तनुत विस्तारयत। शिखरिणीछन्दः ॥१३॥ § २४) इतीति—इतीत्थं पुरे नगरे घोषणायां दत्तायां तथा सुगन्धिसलिलपुष्पादिभिरलंकृतं शोभितं नगरम् अप्रासुकत्वे सचित्तत्वेन आत्मनः स्वस्य विहारायोग्यं विहारस्यायोग्यमनर्हं मत्वा कान्तारचर्यां कान्तारे वने यदि आहारं प्राप्स्यामि तर्हि गृहीष्यामि अन्यथा नेति प्रतिज्ञा कान्तारचर्या कथ्यते। तां सगीर्यं प्रतिज्ञाय मुनिवरो यास्यति नगराद् बहिर्गमिष्यति। § २५) एवमिति—एवमित्थं पुरोधसो वचनं पुरोधोवचनं पुरोहितोक्तिम् अङ्गीकृत्य स्वीकृत्य धरारमणः प्रीतिवर्धनो राजा तथा कुर्वाणः पुरोहितोक्तविधिना नगरीरथ्या अलंकारयन् क्रमेण समागताय सम्प्राप्ताय पिहितास्रवनाममुनिवराय विधिवत् चरणानुयोगविहितविध्यनुसारम् आहारं दत्त्वा निलिम्पैर्देवैर्निपातिता निलिम्पनिपातिता वसुधारा मणिधारा 'वसु तोये धने मणौ' इत्यमरः विलोकमानः पश्यन् इदानीं तस्मिन् काले, अये धरारमण! भो राजन्! अस्मिन्महीधरे पर्वते भवदीयदानस्य वैभवेन सामर्थ्येन विजृम्भिता वृद्धिं प्राप्ता या रत्नवृष्टिस्तस्या निरीक्षणक्षणेऽवलोकनावसरे जनिता समुत्पन्ना जातिस्मृतिः पूर्वजन्मस्मरणं यस्य तथाभूतः, सत्यक्तो शरीराहारो येन तथाभूतः कोऽपि शार्दूलो व्याघ्रः शिलातले दृषत्तले निविष्टः स्थितः, सोऽयं शार्दूलस्त्वया राज्ञा उपचर्यतां सेव्यताम्। अयं किल शार्दूलः पुरो भगवतो वृषभदेवस्य नन्दनः पुत्रो भूत्वा चक्रवर्तितां चक्रधरतामेत्य प्राप्य परं धाम मोक्षं व्रजिष्यति गमिष्यति। इतीत्थं मुनिवरस्य पिहितास्रवमुनिराजस्य व्याहारेण वचनेन विस्तृतो विस्मयो यस्य तथाभूतः पृथ्वीपतिः प्राप्ति-

---

आच्छादित की जावें, केशरके रससे मिले हुए सुगन्धित जलसे सींची जावें तथा महलों पर ध्वजाएँ बाँधकर तोरणोंके समूहको विस्तृत करो अर्थात् तोरण द्वार बनाओ ॥१३॥ § २४) इतीति—नगरमें इस प्रकारकी घोषणाके किये जानेपर उस प्रकार अलङ्कृत किये हुए नगरको अप्रासुक होनेसे अपने विहारके अयोग्य मानकर कान्तारचर्याका नियम धारण कर मुनिराज प्राप्त होंगे। § २५) एवमिति—इस प्रकार पुरोहितके वचन स्वीकृत कर राजाने वैसा ही किया। तदनन्तर क्रमसे आये हुए पिहितास्रव नामक मुनिराजके लिए विधिपूर्वक आहार देकर देवोंके द्वारा गिरायी हुई रत्नोंकी धाराको देखने लगा। उस समय मुनिराजने कहा—हे राजन्! इस पर्वतपर आपके दानकी सामर्थ्यसे वृद्धिगत रत्नवृष्टिको देखनेके समय जिसे जातिस्मरण हो गया है ऐसा कोई व्याघ्र शरीर और आहार का त्यागकर शिलातलपर बैठा है सो तुम उसकी सेवा करो। यह भगवान् आदिनाथका पुत्र होकर चक्रवर्तीपदको प्राप्त होता हुआ मोक्ष जावेगा। मुनिराजके इन वचनोंसे विस्मयका आस्वाद

§ २६) तदनु तेन मुनिशार्दूलेन स्वर्गी भवेति कलितकर्णजापः शार्दूलोऽयमष्टादशदिवसैस्त्यक्ताहारपरिग्रहो दिवाकरप्रभविख्यातविमाने श्रीमदैशानकल्पे दिवाकरप्रभो नाम देवो बभूव।

§ २७) तदानीमुदारमिममाश्चर्यं दृष्ट्वा तस्य नरपालस्य चमूपतिसचिवपुरोधसः परामुपशान्तिमुपागता नृपदानानुमोदेन कुरुष्वार्या सजाताः कालान्तेन गत्वैशानकल्प प्रभाकाञ्चनरूपिताख्येषु विमानेषु प्रभाकरकनकाभप्रभञ्जननामधेया सुरा. समजायन्त ।

§ २८) ललिताङ्गभवे युष्मत्परिवारामरानिमान् ।
चतुरश्चतुरान्धीरान्धुरीणानवधारय ॥१४॥

§ २९) तत प्रच्युत्य शार्दूलचरः सुर श्रीमतीसागरयो' सुतस्तव मन्त्री मतिवर समजायत । प्रभाकरश्च नाकात्प्रच्युत्य आजीवापराजितसेनान्योर्नन्दनोऽयमकम्पनो बभूव। कनकप्रभस्तु तस्मात्प्रच्युतोऽनन्तमतिश्रुतकीर्त्योः सुतोऽयमानन्दस्तव पुरोधा बभूव। प्रभञ्जनस्ततः प्रच्युत्य धनदत्ताधनदत्तयोस्तनूजो धनमित्रस्तव श्रेष्ठी समजायत ।

वर्धनो मुनिना पिहितास्रवयतिना सम सार्धं गत्वा शार्दूलस्य सपर्यां परिचर्यां विस्तारयामास । § २६) तदन्विति—तदनन्तर तेन मुनिशार्दूलेन यतिश्रेष्ठेन 'स्वर्गी भव देवो भव' इतीत्थं कलित. कृत कर्णे जापो यस्य तथाभूतोऽय शार्दूलो व्याघ्र अष्टादशदिवसै त्यक्त आहारस्य परिग्रह स्वीकारो येन तथाभूत सन् श्रीमदैशानकल्पे द्वितीयस्वर्गे दिवाकरप्रभेति विख्यात विमान तस्मिन् दिवाकरप्रभो नाम देवोऽमरो बभूव । § २७) तदानीमिति—तदानीम् इम पूर्वोक्तमाश्चर्यं दृष्ट्वा तस्य प्रीतिवर्धनस्य नरपालस्य चमूपतिसचिवपुरोधस सेनापतिमन्त्रिपुरोहिता परा सातिशया शान्तिमुपागता प्राप्ता नृपेण दत्त दान नृपदान तस्यानुमोदेन समर्थनेन कुरुषु उत्तमभोगभूमिषु आर्या सजाताः भोगभूमिजा नरा आर्यशब्देनोच्यन्ते नार्यश्चार्याशब्देन कालान्तेन मृत्युना ऐशानकल्प द्वितीयस्वर्गं गत्वा प्राप्य प्रभा-काञ्चन-रूपिताख्येषु तन्नामधेयेषु विमानेषु वैमानिकदेवाना निवासस्थानानि विमानशब्देनोच्यन्ते प्रभाकर-कनकाभ-प्रभञ्जननामधेया एतदभिधाना सुरा देवा समजायन्त । § २८) ललिताङ्गेति—चतुरान् विदग्धान् धीरान् गभीरान् धुरीणान् निपुणान्, इमान् पूर्वोक्तान् चतुर चतु सख्याकान् देवान् ललिताङ्गभवे यदा त्वमैशानकल्पे ललिताङ्गोऽभवस्तदा तव परिवारामरा इति युष्मत्परिवारामरास्तान् स्वकीयपरिवारनिलिम्पान् अवधारय निश्चिनु ॥१४॥ § २९) तत इति—शार्दूलचर. भूतपूर्व शार्दूल इति शार्दूल-

---

बढ़ रहा था ऐसे राजा प्रीतिवर्धनने मुनिराजके साथ उस स्थानपर जाकर व्याघ्रकी परिचर्या की। § २६) तदन्विति—तदनन्तर उन श्रेष्ठ मुनिराजने 'देव होओ' इस तरह जिसके कानमें जाप किया था तथा अठारह दिन तक जिसने लगातार आहार ग्रहणका त्याग किया था ऐसा वह व्याघ्र शोभासपन्न ऐशान स्वर्गके दिवाकरप्रभ नामसे प्रसिद्ध विमानमे दिवाकरप्रभ नामका देव हुआ। § २७) तदानीमिति—उस समय इस उत्कृष्ट आश्चर्यको देखकर उस राजाके सेनापति, मन्त्री और पुरोहित परमशान्तिको प्राप्त हुए तथा राजाके द्वारा दिये हुए दानकी अनुमोदना करनेसे उत्तम भोगभूमिमें आर्य हुए। आयुके अन्तमे ऐशानस्वर्गको प्राप्त हो वहाँसे प्रभा, काञ्चन और रूपित नामक विमानोंमे क्रमसे प्रभाकर, कनकाभ, और प्रभञ्जन नामक देव हुए। § २८) ललिताङ्गेति—चतुर, धीर तथा निपुण इन चारों देवोंको तुम ललिताङ्ग भवमे अपने परिवारका देव समझो ॥१४॥ § २९) तत इति—वहाँसे च्युत होकर व्याघ्रका जीव दिवाकरप्रभ देव, श्रीमती और सागरका पुत्र तथा तुम्हारा मतिवर नामका मन्त्री हुआ है। प्रभाकरदेव स्वर्गसे च्युत होकर आजीवा और अपराजित सेनानीका पुत्र यह अकम्पन हुआ है। कनकप्रभ वहाँसे च्युत होकर अनन्तमति और श्रुतकीर्तिका

§ ३०) इमा मुनीन्द्रस्य गिर निशम्य तौ दम्पती धर्मरतावभूताम् ।
पप्रच्छ भूयोऽपि मुनीन्द्रमेन धरापतिर्विस्मयदत्तचित्तः ॥१५॥

§ ३१) अमी नकुलशार्दूलगोलाङ्गूला. ससूकराः ।
कस्मादत्रैव तिष्ठन्ति त्वन्मुखार्पितदृष्टयः ॥१६॥

§ ३२) इति राज्ञानुयुक्तोऽसौ चारणर्षिरुवाच तम् ।
वचश्च यस्य तेजश्च भास्वद्वर्णं विराजते ॥१७॥

§ ३३) अय किल व्याघ्रो भवान्तरे एतद्देशविशोभितहस्तिनानगरे धनवतीसागरदत्तयोर्वैश्यदम्पत्योरुग्रसेननाम्ना सूनुर्भूत्वा वसुधाभेदसनिभादप्रत्याख्यानक्रोधात्संजनिततिर्यगायुष्यः, पृथ्वीपतिकोष्ठागारे नियुक्तान् पुरुषान्निर्भर्त्स्य घृततण्डुलादिकं वेश्याजनेभ्यो ददानस्तद्वृत्तान्तज्ञेन राज्ञा वन्धितश्चपेटचरणाघातादिभिर्मृत्वेह व्याघ्रो बभूव ।

चरः 'भूतपूर्वे चरट्' इति चरट्प्रत्यय. । शेष' स्पष्ट । § ३०) इमामिति—मुनीन्द्रस्य यतिराजस्य इमा पूर्वोक्ता गिर वाणी निशम्य श्रुत्वा तौ दम्पती जायापती श्रीमतीवज्रजङ्घावित्यर्थ, धर्मरतौ धर्मासक्तौ अभूताम् । विस्मयायाश्चर्याय दत्त चित्त हृदयं येन तथाभूतो धरापतिर्वज्रजङ्घो भूयोऽपि पुनरपि एवं मुनीन्द्र मुनिराजं पप्रच्छ पृष्टवान् । उपजातिवृत्तम् ॥१५॥ § ३१) अमीति—ससूकरा सूकरेण वराहेण सहिता अमी नकुलोऽहिवैरी शार्दूलो व्याघ्र. गोलाङ्गूलो वानर एषा द्वन्द्व, तव मुखेऽर्पिता दत्ता दृष्टिर्यैस्तथाभूता सन्त अत्रैव कस्मात् कारणात् तिष्ठन्ति ॥१६॥ § ३२) इतीति—इतीत्य राज्ञा वज्रजङ्घेन अनुयुक्तः पृष्ट असौ चारणर्षिर्गगनविहारी मुनीन्द्रस्त राजानम् उवाच जगाद, यस्य चारणर्षे वचो वचनं तेज प्रतापश्च भास्वद्वर्णं वच पक्षे भास्वन्त. स्पष्टा वर्णा अक्षराणि यस्मिंस्तत् तेज.पक्षे भास्वत सूर्यस्येव वर्णो दीप्तिर्यस्य तत् । श्लेष ॥१७॥ § ३३) अयमिति—अय किल पुरो वर्तमानो व्याघ्रश्चमूरु अन्यो भवो भवान्तरस्तस्मिन् पूर्वजन्मनि एतद्देशे एतज्जनपदे विशोभितं यद्हस्तिनानगर तस्मिन् धनवतीसागरदत्तयो. एतन्नाम्नो वैश्यदम्पत्यो वणिग्जायापत्योः उग्रसेनाभिधान सूनु. पुत्रो भूत्वा वसुधाभेदसनिभाद् पृथ्वीभेदसदृशात् अप्रत्याख्यानक्रोधात् सजनित बद्ध तिर्यगायुष्य येन तथाभूत, पृथ्वीपतिकोष्ठागारे राजभाण्डागारे नियुक्तान् पुरुषान् निर्भर्त्स्य सतर्ज्य वेश्याजनेभ्यो विलासिनीजनेभ्यो घृततण्डुलादिकमाज्यशाल्यादिक ददानः, तद्वृत्तान्तज्ञेन तदुदन्तविदा राज्ञा वन्धितो निगडित चपेटो हस्ततलाघात चरणाघात पादतलाघातश्च तदादिभि तत्प्रभृतिभिर्मृत्वा इहस्थाने

पुत्र होता हुआ तुम्हारा आनन्द नामका पुरोहित हुआ है तथा प्रभञ्जन वहाँसे च्युत होकर धनदत्ता और धनदत्तका पुत्र होता हुआ तुम्हारा धनमित्र नामका सेठ हुआ है। § ३०) इमामिति—मुनिराजकी यह वाणी सुनकर वे दोनो दम्पती श्रीमती और वज्रजंघ धर्ममें लीन हुए। तदनन्तर आश्चर्ययुक्त होते हुए राजा वज्रजंघने इन मुनिराजसे पुनः पूछा ॥१५॥ § ३१) अमीति—ये नकुल, शार्दूल, वानर और शूकर आपके मुखपर दृष्टि लगाकर यहीं क्यों स्थित हो रहे हैं ? ॥१६॥ § ३२) इतीति—इस प्रकार राजा वज्रजंघके द्वारा पूछे गये वे चारण ऋद्धिधारी मुनिराज जिनके कि वचन और तेज भास्वद्वर्ण—स्पष्ट अक्षरोंसे सहित (पक्षमें सूर्यके समान दीप्तिसे युक्त) सुशोभित होता है, कहने लगे ॥१७॥ § ३३) अयमिति—यह व्याघ्र पूर्वभवमें इसी देशमें सुशोभित हस्तिनानगरके वैश्य दम्पती धनवती और सागरदत्तके उग्रसेन नामका पुत्र था। वहाँ वसुधा भेदके समान अप्रत्याख्यान क्रोधसे उसने तिर्यञ्च आयुका बन्ध किया। राजाके भाण्डारमें जो पुरुष नियुक्त थे उन्हें डाँटकर वह वेश्याओंके लिए घी तथा चावल आदि देता रहता था। जब राजाको इस वृत्तान्तका ज्ञान हुआ तब उसे बाँधकर थप्पड़ों और लातोंके आघातसे इतना पिटवाया कि वह मरकर यहाँ व्याघ्र हुआ।

§ ३४) एष किल वराहः पूर्वभवे विजयनामपुरे वसन्तसेनामहानन्दयो राजदम्पत्योर्हरिवाहननामा पुत्रो भूत्वा अप्रत्याख्यानमानमस्थिसम विभ्राण. पित्रनुशासनमसहमानः शिलास्तम्भजर्जरितमस्तक आर्तो मृत्वा वराहोऽजायत ।

§ ३५) अय खलु वानरः पूर्वभवे धान्यनाम्नि नगरे सुदत्ताकुवेरयोर्वैश्यदम्पत्योर्नागदत्तनामा नन्दन. सजातो मेषशृङ्गसमामप्रत्याख्यानमायामाश्रित. कदाचिन्निजानुजाविवाहार्थमेव स्वापणे विलसितस्वापतेयमम्बायामाददानाया तद्वञ्चनोपायमजानानस्तिर्यगायुर्बंशेन गोलाङ्गूलो बभूव ।

§ ३६) अयं किल नकुलो भवान्तरे सुप्रतिष्ठितपुरे धनलोलुपः कादविको नाम्ना लोलुपो भूत्वा, चैत्यालयनिर्मापणोद्यतस्य नरपालस्येष्टिकाविष्टिपुरुपान्वशीकृत्य तेषामपूपादिप्रदानेन घनेष्टिकासचय सगृह्णानस्तत्र कासुचित्सुवर्णशलाकाविलोकनेन विवर्धितलोभः, कदाचित् पुत्रमिष्टिकासग्रहणाय नियोज्य स्वसुताग्राम गत्वा तत प्रतिनिवृत्तस्तथानाचरितवतः पुत्रस्य शिरस्तट

व्याघ्र शार्दूल 'व्याघ्रश्चमूरु शार्दूल' इति धनजय । बभूव । § ३४) एष किलेति—एषोऽय वराह सूकर पूर्वभवे पूर्वपर्याये विजयनामपुरे वसन्तसेनामहानन्दयो राजदम्पत्योर्हरिवाहननामा पुत्रो भूत्वा, अस्थि॰समानम् अप्रत्याख्यानमान विभ्राणो दधान पितुरनुशासन पित्रनुशासनम् असहमान शिलास्तम्भेन पाषाणस्तम्भेन जर्जरित स्फोटित मस्तक शिरो येन तथाभूत., आर्त आर्तध्यानेन दु खित' सन् मृत्वा वराहो जात । § ३५) अय खल्विति—स्पष्टम् । § ३६) अयमिति—अय किल नकुल· पन्नगारि भवान्तरे अन्यस्मिन् भवे सुप्रतिष्ठितपुरे तन्नाम नगरे धनस्य लोलुपो धनलोलुपो वित्तलोभी लोलुपो नाम कान्दविक कान्दव अपूपादि भक्ष्य तदरण्यमस्येति कादविक 'हलवाई' इति हिन्दीभाषायाम्, भूत्वा, चैत्यालयस्य जिनमन्दिरस्य निर्मापणे उद्यतस्तत्परस्तस्य नरपालस्य राज्ञ इष्टिकाना विष्टिपुरुषा वेतनपुरुषास्तान् इष्टिकानयननियुक्तकर्मकरानित्यर्थ वशीकृत्य स्वायत्तीकृत्य तेषा कर्मकराणाम् अपूपादयो भक्ष्यपदार्थास्तेषा प्रदानेन घनेष्टिकासचय प्रभूतेष्टिकासमूह सगृह्णान सचिन्वन् तत्रेष्टिकाचये कासुचित् इष्टिकासु सुवर्णशलाकाना विलोकनेन विवर्धितो वृद्धिगतो लोभो यस्य तथाभूत , कदाचित् पुत्रं सूनु इष्टिकाना सग्रहण तस्मै नियोज्य नियुक्त कृत्वा स्वसुताग्रामे स्वपुत्रीनिगम

---

§ ३४) एष किलेति—यह सूकर पूर्वभवमे विजयनगरके राजदम्पती वसन्तसेना और महानन्दके हरिवाहन नामका पुत्र होकर हड्डीके समान अप्रत्याख्यान मानको धारण करता हुआ पिताके भी अनुशासनको सहन नहीं करता था। पिताके अनुशासनको सहन न करते हुए इसने एक बार पत्थरके खम्भासे अपना सिर फोड़ लिया और आर्तध्यानसे मरकर सूकर हुआ है § ३५) अयमिति—यह वानर पूर्वभवमे धन्य नामक नगरके वैश्य दम्पती सुदत्ता और कुवेरके नागदत्त नामका पुत्र था तथा मेढ़ाके सींगके समान अप्रत्याख्यान मायाको धारण करता था। किसी समय अपनी छोटी बहिनके विवाहके लिए ही बचाकर दुकानमे रखे हुए धनको माताने ले लिया। यह उस माताको ठगनेका उपाय नहीं जानता हुआ तिर्यञ्च आयुका बन्धकर वानर हुआ है। § ३६) अयमिति—यह नकुल पूर्वभवमे सुप्रतिष्ठित नामक नगरमे धनका लोभी लोलुप नामका हलवाई था। वहाँका राजा जिनमन्दिर बनवानेके लिए उद्यत था सो यह लोलुप ईंटे लानेवाले मजदूरोंको पुआ आदि देकर अपने वशमे रखता था तथा उनसे बहुत सारी ईंटोंका संचय करता रहता था। जो ईंटें उसने अपने यहाँ डलवायी थीं उनमे से कुछमे सुवर्णकी शलाकाओंके देखनेसे इसका लोभ बढ गया था। किसी समय यह ईंटोंके सग्रहके लिए पुत्रको नियुक्त कर अपनी लड़कीके गाँव गया था जब वहाँसे वापिस

लगुडताडनादिभिः स्वचरणाभ्या समं निर्भिद्य राज्ञा च घातितो नकुलत्वमप्रत्याख्यानलोभेन समुपाजगाम।

§ ३७) युष्मद्दानसमीक्षणेन परम मोद गतास्तत्क्षणं
प्राप्ता पूर्वभवस्मृति प्रतिगता निर्वेदमुर्वीपते ।
त्वद्दानानुमते' कुरुष्वतितरा बद्धायुषोऽमी मृगा
नि.शङ्काः पुरतः स्थिताः कुतुकिता धर्मामृतास्वादने ॥१८॥

§ ३८) अमी किल भवदीयाष्टभवपर्यन्त भवतैव सम दिव्यमानुषगोचरान्भोगाननुभूय ततः सेत्स्यन्ति। इय च श्रीमती भवत्तीर्थे दानतीर्थप्रवर्तक. श्रेयान् कुमारो भूत्वा शाश्वतं पदमवाप्स्यति।

§ ३९) इति सुवचनमाध्वी कणपात्रेण पीत्वा
मुनिवरमभिवन्द्यावासमागान्महीशः।

गत्वा तत स्वसुता-ग्रामात् प्रतिनिवृत्त प्रत्यागतस्तथापूपादिदानेन इष्टिकाना सग्रहे अनाचारितवत अकृतवत' पुत्रस्य शिरस्तट मस्तक लगुडताडनादिभिर्दण्डाघातादिभि स्वचरणाभ्या स्वकीयपादाभ्या समं निर्भिद्य खण्डयित्वा, न पादौ भवेता नाहं स्वसुताग्राम गच्छेय न चेष्टिकासग्रहे हानिर्भवेदिति विचारेण तेन लोलुपेन स्वचरणावपि खण्डितौ। अथ च राज्ञा घातितो दण्डिनोऽप्रत्याख्यानलोभेन नकुलत्वं पन्नगारिपर्याय समुपाजगाम प्राप। § ३७) युष्मद्दानेति—हे उर्वीपते! हे महीपते! अमी पुरो वर्तमाना मृगा वन्यपशव' सूकरशार्दूलगोलाङ्गूलनकुला. युष्मद्दानस्य भवत्प्रदत्तदानस्य समीक्षणेन समवलोकनेन परम प्रकृष्ट मोद हर्षं गता प्राप्ता, तत्क्षण दानावसरे पूर्वभवस्मृति पूर्वपर्यायस्मरणं प्राप्ता सन्तो निर्विद वैराग्य प्रतिगता आसादिता। त्वद्दानस्यानुमते समर्थनात् कुरुपूत्तमभोगभूमिपु अतितरा सातिशय बद्धमायुर्यैस्तथाभूता धर्म एवामृतं धर्मामृतं धर्मपीयूप तस्यास्वादनेऽनुभवने कुतुकिता. कौतुकसहिता, नि शङ्का निर्भया सन्त पुरतोऽग्रे स्थिता विद्यमाना. सन्तीति शेष। शार्दूलविक्रीडित छन्द. ॥१८॥ § ३८) अमीति—अमी किल एते खलु सूकरादयो भवदीयाष्टभवपर्यन्त भवतैव सम सार्धं दिव्यमानुपगोचरानमरमर्त्यसबन्धिनो भोगान् पञ्चेद्रियविपयान् अनुभूय ततोऽनन्तरं सेत्स्यन्ति सिद्धा भविष्यन्ति। इय च भवद्वल्लभा श्रीमती भवत्तीर्थे यदा भवान् वृपभदेवो भविष्यति तदा दानतीर्थस्य दानधर्मप्रवर्तक श्रेयान् कुमारो हस्तिनागपुराधिपसोमप्रभमहाराजस्यानुजो भूत्वा शाश्वतं पद मोक्षम् अवाप्स्यति लप्स्यते। § ३९) इतीति—इतीत्थ महीशो वज्रजङ्घ' सुवचनमाध्वी चारणर्षिमुखारविन्दप्रकटितवचोमकरन्द कर्णपात्रेण श्रवणभाजनेन पीत्वा मुनिवर चारणर्षिराजम् अभिवन्द्य नमस्कृत्य आवास शिविरम्

लौटा तब वैसा न करनेवाले पुत्रसे बहुत बिगडा। डडे आदिसे पीटकर उसका सिर फोड़ दिया था और यदि ये पैर न होते तो मैं लडकीके गॉव न जाता यह सोचकर अपने पैर भी काट लिये। अन्तमें राजाके द्वारा मारा जाकर अप्रत्याख्यान सम्बन्धी लोभसे इस नेवलाकी पर्यायको प्राप्त हुआ है। § ३७) युष्मद्दानेति—हे राजन्! तुम्हारे द्वारा दिये हुए दानको देखकर ये सब परम हर्षको प्राप्त हुए है तथा दान देनेके समय ही पूर्वभवकी स्मृतिको प्राप्त होकर वैराग्यको प्राप्त हो रहे हैं। तुम्हारे द्वारा प्रदत्त दानकी अनुमोदना करनेसे इन्होंने उत्तम भोगभूमिकी आयुका बन्ध किया है। इसीलिए ये वन्यपशु धर्मरूपी अमृतके रसास्वादमे कौतुकसे युक्त होते हुए निर्भयरूपसे सामने बैठे हैं ॥१८॥ § ३८) अमीति—ये सब आपके आठ भवतक आपके ही साथ देव और मनुष्य सम्बन्धी भोगोंको भोगकर पश्चात् सिद्ध अवस्थाको प्राप्त होंगे। और यह श्रीमती आपके तीर्थमे दानधर्मका प्रवर्तक श्रेयान्सकुमार होकर निर्वाणको प्राप्त करेगा। § ३९) इतीति—इस प्रकार राजा वज्रजघ कर्णरूपी पात्रके द्वारा उत्तम वचनरूपी अमृतको पीकर तथा मुनिराजको नमस्कारकर अपने डेरेमे चले गये।

तदनु च मुनिवर्यौ मेरुसकाशधैर्यौ
विदधतुरुरुशोभौ वातमार्गप्रवृत्तिम् ॥१९॥

§ ४०) भूपतिश्च तद्गुणाध्यानसमुत्कण्ठितचेतास्तद्दिन तत्रैवातिवाह्यापरेद्युर्बलेन सह प्रस्थाय प्रविश्य च पुण्डरीकिणी पुरी शोकाक्रान्तमर्ति लक्ष्मीमतिमनुन्दरी च समाश्वास्य निरुपप्लव च राज्य मन्त्रिमण्डलमण्डिते पुण्डरीके नरपुण्डरीके निवेश्य यथापुरं निजपुरमभिजगाम ।

§ ४१) किमेष सुरनायक किमु सुमोल्लसत्सायक
किमाहिततनुर्मधु. किमुत भूमिमाप्तो विधुः ।
इति क्षितिपति पुरीसुकुचकुम्भबिम्बाधरी–
गणेन परिशङ्कितो गृहमगाद्गजैर्मण्डितः ॥२०॥

§ ४२) स किल तत्र विचित्रप्रतीकशोभाभिरामया रामया सह समस्तर्तुविस्तारित-

---

आगात् आगच्छत् । तदनु च तदनन्तर च मेरुणा सकाश धैर्यं ययोस्तौ मेरुसदृशधैर्यसहितौ, उर्वी शोभा ययोस्तौ विशालशोभायुक्तौ मुनिवर्यौ यतिश्रेष्ठौ वातमार्गे गगने प्रवृत्ति गमन वातमार्गप्रवृत्ति विदधतुश्चक्रतु । मालिनीछन्द ॥१९॥ § ४०) भूपतिश्चेति—तयोर्मुनिवर्ययोर्गुणानामाध्याने चिन्तने समुत्कण्ठित चेतो यस्य तथाभूतोऽय भूपतिर्वज्रजङ्घ तद्दिन तद्दिवस तत्रैव सर समीपे अतिवाह्यातिगमय्य अपरेद्युरन्यस्मिन् दिवसे बलेन सेनया सह प्रस्थाय प्रस्थान कृत्वा पुण्डरीकिणी पुरी वज्रदन्तराजधानी च प्रविश्य शोकेन पतिपुत्रविरहजनितसतापेनाक्रान्ता व्याप्ता मतिर्यस्यास्ता लक्ष्मीमर्ति स्वश्वश्रूम् , अनुन्दरी स्वभगिनी च समाश्वास्य सान्त्वयित्वा निरुपप्लव निरुपद्रव राज्यं मन्त्रिमण्डलमण्डिते सचिवसमूहशोभिते नरपुण्डरीके पुरुषश्रेष्ठे पुण्डरीके अमिततेज सूनौ निवेश्य स्थापयित्वा यथापुर यथापूर्वं निजपुर स्वकीयमुत्पलखेटनगरम् अभिजगाम प्रत्यागच्छत् । § ४१) किमेष इति—एष दृश्यमानः किं सुरनायक पुरन्दर, उ इति वितर्के किं सुमै पुष्पैरुल्लसन्त शोभमाना सायका बाणा यस्य स पुष्पबाणो मदन, किम् आहिततनुर्धृतशरीरो मधुर्वसन्त , उत आहोस्वित् किं भूमिमाप्तो पृथिव्यामवतीर्णो विधुश्चन्द्र , इतीत्थ शोभनौ कुचकुम्भौ यासां ता सुकुचकुम्भा ताश्च ता बिम्बाधर्यश्चेति सुकुचकुम्भबिम्बाधर्य , पुर्या सुकुचकुम्भबिम्बाधर्य इति पुरीसुकुचकुम्भबिम्बाधर्यस्तासा गण समूहस्तेन परिशङ्कित' संदेहविषयीकृतो गजैर्द्विरदै मण्डित शोभित क्षितिपतिर्वज्रजङ्घो महीपालो गृह भवनम् अगात् प्राप । सशयालकार पृथ्वीछन्द ॥२०॥ § ४२) स किलेति—स किल वज्रजङ्घ तत्रोत्पलखेटनगरे विचित्रा विस्मयावहा या प्रतीकस्याङ्गस्य शोभा तयाभिरामया मनो-

---

तदनन्तर मेरुके समान धैर्यके धारक तथा विशाल शोभासे सहित दोनों मुनिराज आकाशमार्गसे विहार कर गये ॥१९॥ § ४०) भूपतिश्चेति—उन्हीं मुनिराजोंके गुणस्मरणमे जिनका चित्त उत्कण्ठित हो रहा था ऐसे राजा वज्रजघने वह दिन वहीं व्यतीत किया। दूसरे दिन सेनाके साथ प्रस्थान कर पुण्डरीकिणी नगरीमे प्रवेश किया । वहाँ शोकनिमग्न लक्ष्मीमति और अनुन्दरीको सान्त्वना देकर उपद्रवरहित राज्यको मन्त्रिमण्डलसे सुशोभित नरश्रेष्ठ पुण्डरीकपर स्थिर किया, तदनन्तर पहलेके समान अपनी नगरीकी ओर वापिसीका प्रयाण किया। § ४१) किमेष इति—क्या यह इन्द्र है, या कामदेव है, या शरीरको धारण करनेवाला वसन्त है, अथवा पृथिवीपर आया हुआ चन्द्रमा है इस प्रकार नगरकी स्त्रियाँ जिसके विषयमे शङ्का कर रही थीं तथा जो हाथियोंसे सुशोभित था ऐसा वज्रजघ अपने भवनको प्राप्त हुआ ॥२०॥ § ४२) स किलेति—वह वज्रजङ्घ उस उत्पलखेट नगरमे शरीरकी विचित्र शोभासे सुन्दर हृदयवल्लभा—श्रीमतीके साथ समस्त ऋतुओंमे विस्तारित अनुपम भोगोंको

निस्तुलभोगाननुबोभूयमानः कदाचन मदनसहकारसहकारपल्लवतल्लजसमुल्लसन्मधुरसमये वसन्तसमये, मधुमासलक्ष्मीमिव तिलकशोभितसुरुचिरसालकानना सद्यस्तनस्तबकविराजिता कलकण्ठालापमनोहरां तां नितम्बिनीं रमयन्, मल्लिकामतल्लिकाविकासमूले निदाघकाले धारागृहेषु चन्दनद्रवसिक्ताङ्गीं तां तन्वङ्गीमालिङ्गन्, प्रावृषेण्यदिवसेषु वर्षालक्ष्मीमिवाम्बरोल्लसितपीनपयोधरामभ्रमितां सज्जघनां तडिद्वत्कान्तिविराजितां च तामविरलं परिरम्भमाणः, शरदि च शारदलक्ष्मीमिव राजहंसमनोरमां तां रमयन्नयमनल्पसमयं गमयामास ।

हरया रामया प्रियया श्रीमत्या सह समस्तऋतुषु निखिलवसन्तग्रीष्मप्रावृट्शरद्धेमन्तशिशिराभिधानऋतुषु विस्तारिता विस्तारं प्रापिता येऽतुलभोगास्तान् अनुबोभूयत इत्यनुबोभूयमानः पुनः पुनरतिशयेन वानुभवन्, कदाचन जातुचित् मदनसहकाराः कामसहायका ये सहकाराणामतिसौरभाम्राणां पल्लवतल्लजाः किसलयश्रेष्ठास्तेषु समुल्लसन् शोभमानो यो मधुरसस्तन्मये वसन्तसमये वसन्तकाले मधुमासलक्ष्मीमिव सुरभिमासश्रियमिव तां नितम्बिनीं श्रीमतीं रमयन्, अथोभयोः सादृश्यमाह—तिलकशोभितसुरुचिरसालकानना तिलविशेषकेण शोभितं सुरुचिरं सुन्दरं सालकं चूर्णकुन्तलसहितम् आननं मुखं यस्यास्तां नितम्बिनीं पक्षे तिलकैस्तिलकवृक्षैः शोभितं समलङ्कृतं सुरुचि सुकान्तियुक्तं रसालकाननमाम्रवनं यस्यां तथाभूतां मधुमासलक्ष्मीं, सद्यस्तनस्तबकविराजितां सद्यो झटिति स्तनौ स्तबकाविव स्तनस्तबकौ स्तनपुष्पगुच्छकौ ताभ्यां विराजितां शोभितां नितम्बिनीं पक्षे सद्योभवाः सद्यस्तनास्तत्कालविकसिता ये स्तबकाः गुच्छकास्तैर्विराजितां मधुमासलक्ष्मीं, कलकण्ठालापमनोहरां कलकण्ठानां कोकिलानामिवालापः शब्दस्तेन मनोहरां नितम्बिनीं पक्षे कलकण्ठानां कोकिलानामालापेन मधुररवेण मनोहरां मधुमासलक्ष्मीम्, प्रशस्ता मल्लिका मल्लिकामतल्लिकास्तेषां विकासस्य मूले कारणे निदाघकाले ग्रीष्मर्तौ धारागृहेषु जलयन्त्रागारेषु चन्दनद्रवेण मलयजरसेन सिक्तमङ्गं यस्यास्तां चन्दनद्रवसिक्ताङ्गीं तां पूर्वोक्तां तन्वङ्गीं कृशाङ्गीं श्रीमतीम् आलिङ्गन्, प्रावृषेण्यदिवसेषु जलदकालदिनेषु वर्षालक्ष्मीमिव प्रावृट्श्रियमिव तां श्रीमतीम् अविरलं निरन्तरं यथा स्यात्तथा परिरम्भमाणः आलिङ्गन्, अथोभयोः सादृश्यमाह—अम्बरोल्लसितपीनपयोधराम् अम्बरे वस्त्रस्य मध्ये उल्लसितौ शोभितौ पीनपयोधरौ पीवरकुचौ यस्यास्तां श्रीमतीं पक्षे अम्बरे गगने उल्लसिताः शोभिताः पीनपयोधराः स्थूलमेघा यस्यां तां वर्षालक्ष्मीम्, अभ्रमितां न भ्रमिता प्राप्तभ्रमा अभ्रमिता तां श्रीमतीं पक्षेऽभ्रं मेघम् इता प्राप्ता वर्षालक्ष्मीं, सज्जघनां सत् प्रशस्तं जघनं यस्यास्तां श्रीमतीं पक्षे सज्जाः सजलाः घना मेघा यस्यां तां वर्षालक्ष्मीं,

---

बार-बार भोगता हुआ कभी कामके सहायक सुगन्धित आमके श्रेष्ठ किसलयोंमें सुशोभित मधुरससे युक्त वसन्तऋतुमें मधुमास (चैत्र मास) की लक्ष्मीके समान तिलक शोभित सुरुचिर सालकानना—तिलकसे सुशोभित सुन्दर तथा चूर्णकुन्तलोंसे सहित मुखसे युक्त (पक्षमें तिलक वृक्षोंसे शोभित उत्तम कान्तिसे युक्त आमके वनोंसे सहित) सद्यस्तनस्तबकविराजितां—नवीन उठते हुए गुच्छोंके सदृश स्तनोंसे सुशोभित (पक्षमें तत्काल विकसित पुष्पगुच्छकोंसे सुशोभित), कलकण्ठालापमनोहरां—कोयलके समान मधुर भाषणसे मनोहर (पक्षमें कोयलोंकी मधुर बोलीसे मनोहर) उस श्रीमतीको रमण कराता था। कभी श्रेष्ठ मालतीके विकासके मूल कारण ग्रीष्म कालमें फव्वारोंके घरोंमें चन्दन रससे सिक्त शरीर वाली उस श्रीमतीका आलिङ्गन करता था। कभी वर्षाऋतुके दिनोंमें वर्षा लक्ष्मीके समान अम्बरोल्लासितपीनपयोधरा—वस्त्रके भीतर सुशोभित स्थूल स्तनोंसे सहित (पक्षमें आकाशमें सुशोभित स्थूल मेघोंसे युक्त), अभ्रमिता—भ्रमसे रहित (पक्षमें मेघको प्राप्त), सज्जघना—प्रशस्त नितम्बसे सहित (पक्षमें सजल मेघोंसे सहित) और तडिद्वत्कान्तिविराजिता—बिजलीके समान कान्तिसे सुशोभित (पक्षमें मेघोंकी कान्तिसे सुशोभित)

§ ४३) कदाचन मणिप्रभातरलहेममञ्चाञ्चिते
तया सह धरापति पिहितरत्नवातायने ।
स वै शयनमन्दिरे सुरभिधूपधूमावृते
सुषुप्तिसुखमन्वभूत्स्तनतटाग्रजाग्रत्कर ॥२१॥

§ ४४) तत्रागुरुलसद्धूमनिरुद्धश्वासनिर्गमौ ।
दम्पती तौ निशामध्ये दीर्घनिद्रामुपेयतु ॥२२॥

§ ४५) अथ जम्बूद्वीपसुपर्वपर्वतोत्तरदिशासमाश्रितेषु मधुमैरेयादिरसभेदप्रदानप्रवणैर्मद्याङ्गै, पटहमर्दलतालकाहलझल्लरीशङ्खप्रमुखनानावादित्रविधानैरातोद्याङ्गैः, मञ्जीरकेयूरहार-

तडिद्वत्कान्तिविराजिता तडिद्वत विद्युत्सदृशी या कान्तिर्दीप्तिस्तया विराजिता श्रीमती पक्षे तडित्वन्तो मेघास्तेषा कान्त्या विराजिताम्, शरदि च जलदान्तऋतौ च शारदलक्ष्मीमिव शारदश्रियमिव ता श्रीमती रमयन् क्रीडयन्, अथोभयो सादृश्यमाह—राजहसमनोरमा राजसु हसो राजहसो राजश्रेष्ठो वज्रजङ्घस्तस्य मनो हृदय रमयति क्रीडयतीति राजहसमनोरमा ता श्रीमती पक्षे राजहसैर्हंसविशेषैर्मनोरमा मनोहरा शारदलक्ष्मीम्, अनल्पसमय प्रभूतकाल गमयामास व्यजीगमत् । § ४३) कदाचनेति—कदाचन जातुचित् वै निश्चयेन स धरापतिर्वज्रजङ्घ. मणिप्रभाभी रत्नरश्मिभिस्तरलेन हेममञ्चेन स्वर्णपर्यङ्केनाञ्चिते शोभिते, पिहितानि समावृतानि रत्नवातायनानि मणिगवाक्षा यस्य तस्मिन्, सुरभिधूपस्य सुगन्धितचूर्णस्य धूमेनावृते व्याप्ते शयनमन्दिरे शय्यागारे तया श्रीमत्या सह स्तनयोर्वक्षोजयोस्तटाग्रे जाग्रन् करो यस्य तथाभूत सन् सुषुप्तिसुख शयनसातम् अन्वभूत् भुङ्क्तेस्म । पृथ्वीछन्द ॥२१॥ § ४४) तत्रेति—तत्र शयनमन्दिरे अगुरोश्चन्दनविशेषस्योल्लसता धूमेन धूम्रेण निरुद्ध स्थगित श्वासनिर्गम उच्छ्वासो ययोस्तौ दम्पती जायापती निशामध्ये रजनीमध्ये दीर्घनिद्रा मृत्युम् उपेयतुः प्रापतु ॥२२॥ § ४५) अथेति—तौ कुत्रोत्पन्नाविति वर्णयितुमाह—अथ दीर्घनिद्राप्राप्त्यनन्तर, तौ श्रीमतीवज्रजङ्घौ पात्रदानप्रभावेण मुनिदानमाहात्म्येन उत्तरकुरुषु उत्तमभोगभूमिषु जम्पतिता जायापतिता सपादयामासतु प्रापतुरिति कर्तृक्रियासबन्ध । अथोत्तरकुरूनेव वर्णयति—जम्बूद्वीपस्याद्यद्वीपस्य सुपर्वपर्वतात् सुमेरोरुत्तरदिशामुदीची समाश्रितास्तेषु, [1]मधुमैरेयादिरसभेदाना विविधपेयद्रव्याणा प्रदाने प्रवणा निपुणास्तैस्तथाभूतैर्मद्याङ्गैर्मद्याङ्गजातिकल्पवृक्षै, पटहमर्दलतालकाहलझल्लरीशङ्खप्रमुखानि

उस श्रीमतीका निरन्तर आलिङ्गन करता था और कभी शरद् ऋतुमे शारद लक्ष्मीके समान राजहसमनोरमा—राजश्रेष्ठ-वज्रजङ्घके मनको रमण करानेवाली (पक्षमे राजहंस पक्षियोंसे मनोहर) उस श्रीमतीको रमण कराता हुआ बहुत समय व्यतीत करता रहा । § ४३) कदाचनेति—किसी समय वह राजा वज्रजघ, जो मणियोंकी प्रभासे चमकते हुए सुवर्णमय पलगोंसे सुशोभित था, जिसके रत्नमय झरोखे वन्द थे तथा जो सुगन्धित धूपके धुएँसे व्याप्त था ऐसे शय्यागृहमे उस श्रीमतीके साथ स्तनतटके अग्रभागपर हाथ चलाता हुआ शयन सुखका अनुभव कर रहा था ॥२१॥ § ४४) तत्रेति—वहाँ अगुरुचन्दनसे निकलनेवाले धूमसे जिनके उच्छ्वास रुक गये थे ऐसे दोनो दम्पति रात्रिके मध्यमे मृत्युको प्राप्त हो गये ॥२२॥ § ४५) अथेति—तदनन्तर श्रीमती और वज्रजघ पात्रदानके प्रभावसे उन उत्तर कुरुओंमे दम्पतिभावको प्राप्त हुए जो कि जम्बूद्वीप सम्बन्धी सुमेरु पर्वतकी उत्तर दिशामे स्थित हैं जो मधु मैरेय आदि विविध रसोंके प्रदान करनेमे निपुण मद्यांगजातिके वृक्षों, पटह, मर्दल,

१. कामोद्दीपनसाधर्म्यान्मद्यमित्युपचर्यते । तारवो रसभेदोऽय य सेव्यो भोगभूमिजै ॥३८॥
मदस्य कारण मद्य पानशौण्डैर्यदादृतम् । तद्वर्जनीयमार्याणामन्त करणमोहदम् ॥३९॥ —आदिपुराण पर्व ९

रुचक[1]मुकुटाङ्गदादिभूषणवितरणप्रवीणैर्भूषणाङ्गैः, नानाविधमाल्यकर्णपूरादिदानशौण्डैर्माल्याङ्गैः, निजतेजोविजृम्भितमन्दाक्षवशेनेव तत्र प्रवेष्टुमक्षमान् सूर्याचन्द्रादीन्विदधानैर्मणिप्रदीपदानैर्दीपाङ्गैः, दिवाकरनिशाकरधिक्कारधीरैर्ज्योतिरङ्गैः, तुङ्गतमहर्म्यमण्डपसभागृहहाटकमयनाटकशालास्थूललक्ष्यैर्गृहाङ्गैः, सुधामपि सुधा शर्करामपि शर्करा विदधानान् वीर्यवृद्धिकारानाहारान्ददानैर्भोजनाङ्गैः, स्थालचषकभृङ्गारकरकादिवितरणोदारैर्भाजनाङ्गैः, चीनपट्टदुकूलप्रावारपरिधानप्रदानचतुरैर्वस्त्राङ्गैश्चेति दशप्रकारैः केवलमवनीसारैः[2] कल्पपादपवारैः परिशोभितेषु, चतुरङ्गुलसमितया धरणीरमणीविधृतहरिताशुकशङ्कासपादिकया तृण्यया विराजितेषु, सुरभिसञ्चारसमीरकिशोरसमानीत-

---

यानि नानावादित्राणि विविधवाद्यानि तेषा विधानं धारणं येषा तथाभूतैः आतोद्याङ्गैर्वाद्याङ्गकल्पतरुभिः, मञ्जीरकेयूरहाररुचकमुकुटाङ्गदादीनि यानि भूषणानि तेषा वितरणे प्रवीणैर्दक्षैः भूषणाङ्गैर्भूषणाङ्गसुरतरुभिः, नानाविधा विविधप्रकारा ये माल्यकर्णपूरादयः स्रक्कर्णाभरणप्रभृतयस्तेषा दाने शौण्डैः समर्थैर्माल्याङ्गैर्माल्याङ्गकल्पवृक्षैः, निजतेजसा स्वदीप्त्या विजृम्भितं वर्धितं यन्मन्दाक्षं लज्जा तस्या वशेनेव सूर्याचन्द्रादीन् रविशशिप्रभृतीन् तत्रोत्तरकुरुक्षेत्रे प्रवेष्टुं प्रवेशं कर्तुमक्षमानसमर्थान् विदधानैः कुर्वाणैः मणिप्रदीपदानैः रत्नप्रदीपवितरणशीलैर्दीपाङ्गैर्दीपाङ्गकल्पपादपैः, दिवाकरनिशाकरयोः सूर्याचन्द्रमसोर्धिक्कारे तिरस्कारे धीरैः समर्थैः ज्योतिरङ्गैर्ज्योतिरङ्गवृक्षैः, तुङ्गतमानि उच्चतमानि हर्म्याणि भवनानि, मण्डपाः सभागृहाणि, हाटकमय्यः सुवर्णमय्यो नाटकशाला नृत्यगृहाणि, स्थूलानि पटकुट्यः एतानि लक्ष्माणि देयानि येषा तथाभूतैः गृहाङ्गैर्गृहाङ्गवृक्षैः सुधामपि पीयूषमपि सुधा चूर्णं शर्करामपि सितामपि शर्करा धूलिं विदधानान् कुर्वाणान् वीर्यस्य वृद्धिं कुर्वन्तीति वीर्यवृद्धिकरास्तान् शक्तिवर्धकान् आहारान् भोज्यपदार्थान् ददानैः भोजनाङ्गैः भोजनाङ्गकल्पतरुभिः, स्थालमुखा चषकः पानपात्रं भृङ्गारः झारीति प्रसिद्धः करको जलपात्रं तदादीनां वितरणे प्रदाने उदारैर्दानशीलैः भाजनाङ्गैर्भाजनाङ्गकल्पानोकहैः, चीनपट्टं कौशेयवस्त्रं दुकूलं क्षौमवस्त्रं प्रावारः आच्छादनवस्त्रं परिधानं शाटिकाप्रभृतिकं तेषां प्रदाने चतुरैर्दक्षैर्वस्त्राङ्गैर्वस्त्राङ्गजातिकल्पतरुभिः, इतीत्थं दशप्रकारैर्दशविधैः केवलमात्रम् [2]अवनीसारैः पृथिवीकायिकैः कल्पपादपवारैः कल्पवृक्षसमूहैः परिशोभितेषु समलङ्कृतेषु, चतुरङ्गुलसंमितया चतुरङ्गुलप्रमाणया धरणीरमण्या पृथ्वीपुरन्ध्रया विधृतं परिहितं यद् हरिताशुकं हरितवर्णवस्त्रं तस्य शङ्काया.

ताल, काहल, झल्लरी और शंख आदि नाना प्रकारके वादित्रोंको धारण करनेवाले आतोद्यांग जातिके वृक्षों, मंजीर, केयूर, हार, रुचक, मुकुट तथा अंगद आदि आभूषणोंके वितरण करनेमे प्रवीण भूषणाङ्ग जातिके वृक्षों, नाना प्रकारकी मालाएँ तथा कर्णपूर आदिके देनेमें निपुण माल्याग जातिके वृक्षों, अपने तेजसे बढी हुई लज्जाके वशसे ही मानो सूर्य-चन्द्रमा आदिको वहाँ प्रवेश करनेमें असमर्थ करनेवाले तथा मणिमय दीपोंके दाता दीपांग जातिके वृक्षों, सूर्य और चन्द्रमाके तिरस्कार करनेमें धीर ज्योतिरंग जातिके वृक्षों, अत्यन्त ऊँचे भवन मण्डप सभागृह सुवर्णमय नाट्यशालाएँ तथा कपड़ेकी चाँदनी आदिको प्रदान करनेवाले गृहांग जातिके वृक्षों, सुधा—अमृतको सुधा—चूना तथा शर्करा—शक्करको भी शर्करा—धूलि करनेवाले बालवर्धक आहारके दाता भोजनांग जातिके वृक्षों, थाली, पानपात्र, झारी तथा लोटा आदिके प्रदान करनेमे उदार भाजनांग जातिके वृक्षों और कोशा—रेशम ओढ़नी तथा साड़ी

---

१. मकुटा—क० ।

२ न वनस्पतयोऽप्येते नैव दिव्यैरधिष्ठिताः । केवलं पृथिवीसारास्तन्मयत्वमुपागताः ॥४९॥
अनादिनिधनाश्चैते निसर्गात्फलदायिनः । नहि भावस्वभावानामुपालम्भः सुसंगतः ॥५०॥
नृणां दानफलादेते फलन्ति विपुलं फलम् । यथान्यपादपाः काले प्राणिनामुपकारकाः ॥५१॥ आदिपु० पर्व ९

कुसुमरज पुञ्जपिञ्जरितनभोभागतया सतानितवितानेष्विव विलसमानेपूत्तरकुरुपु श्रीमतीवज्रजङ्घौ पात्रदानप्रभावेण जम्पतिता सपादयामासतु। ।

§ ४६) प्रागुक्ताश्च मृगा जन्म प्रापुस्तत्रैव भद्रका ।
पात्रदानानुमोदेन परम पुण्यमाश्रिता ॥२३॥

§ ४७) तत्र च मतिवरादयस्तद्वियोगविजृम्भितशोकास्तदानीमेव दृढधर्मनाम्नो मुनिवर्यस्य समीपे जैनी दीक्षामाश्रित्य दुश्चर तपस्तप्त्वाधोग्रैवेयकस्याधोविमानेऽहमिन्द्रपदमासेदुः ।

§ ४८) छायासु कल्पकतरो कमनीयमूर्ती
तौ दम्पती ललितकामकलाविलासै ।
चिक्रीडतुर्महितकल्पकपादपस्य
लक्ष्म्या प्रदत्तनयनौ नयनाभिरामौ ॥२४॥

सदेहस्य सपादिका कर्त्री तया तृणाना समूहस्तृण्या तया विराजितेपु शोभितेपु, सुरभिर्मनोज्ञ सचारो भ्रमण यस्य तथाभूत अथवा सुरभे' सौगन्ध्यस्य सचारो यस्मिन् तथाभूतो य समीरकिशोरो मन्दवायुस्तेन समानीतानि यानि कुसुमरजासि पुष्पपरागास्तेषा पुञ्जेन समूहेन पिञ्जरित पीतवर्णो नभोभागो गगनप्रदेशो येपु तेपा भावस्तया सतानितवितानेष्विव विस्तारितचन्द्रोपकेष्विव विलसमानेपु शोभमानेपु उत्तरकुरुषु उत्तरकुरुसज्ञितोत्तमभोगभूमिक्षेत्रेपु । § ४६) प्रागुक्ता इति—भद्रका भद्रपरिणामा पात्रदानानुमोदेन श्रीमतीवज्रजङ्घाभ्या चारणर्षियुगलाय दीयमानस्याहारदानस्यानुमोदनेन परम सातिशय पुण्य पुण्यवन्धम् आश्रिता प्राप्ता. प्रागुक्ता पूर्वोक्ता मृगा शार्दूलसूकरवानरनकुला तत्रैवोत्तरकुरुष्वेव जन्म प्रापुरुत्पन्ना इत्यर्थ । § ४७) तत्र चेति—तयो श्रीमतीवज्रजङ्घयोर्वियोगेन विजृम्भितो वर्धित' शोको येषा तथाभूता मतिवरादयो मतिवरानन्दधनमित्राकम्पना । षोडशस्वर्गादुपरि क्रमश एकैकस्योपरि नवग्रैवेयकविमाना सन्ति तेपु नीचैस्तनास्त्रयो विमाना अधोग्रैवेयकपदाभिधेया सन्ति, अधोग्रैवेयकस्याधोविमाने प्रथमग्रैवेयक इत्यर्थ । शेप स्पष्टम् । § ४८) छायास्विति—महितश्चासौ कल्पकपादपश्चेति महितकल्पकपादप प्रशस्तकल्पवृक्षस्य लक्ष्म्या शोभाया प्रदत्ते नयने याभ्या तौ, नयनाभिरामौ लोचनवल्लभौ, कमनीया मनोहरा मूर्ति. शरीर ययोस्तौ दम्पती श्रीमतीवज्रजङ्घौ कल्पकतरो. कल्पवृक्षस्य छायास्वनातपेषु ललिता मनोहराश्च ते कामकलाविलासाश्चेति ललितकामकला-

---

आदिके प्रदान करनेमे चतुर वस्त्रांग जातिके वृक्षों इस प्रकार मात्र पृथिवीकायिक दश प्रकारके कल्पवृक्षोंसे शोभित हैं, चार अगुल प्रमाण तथा पृथिवीरूपी स्त्रीके द्वारा धारण किये हुए हरे वस्त्रकी शंकाको उत्पन्न करनेवाले तृणके समूहसे शोभित हैं, तथा मन्द सुगन्धित वायुके द्वारा लाये हुए फूलोंकी परागके समूहसे आकाशके पीला हो जानेसे जहाँ चंदोवा-सा तना रहता है । § ४६) प्रागुक्ता इति—भद्रपरिणामी तथा पात्रदानकी अनुमोदनासे सातिशय पुण्यको प्राप्त करनेवाले पूर्वोक्त शार्दूल आदि वनपशुओंने भी उसी उत्तरकुरुमे जन्म प्राप्त किया ॥२३॥ § ४७) तत्र चेति—वहाँ जो मतिवरादिक थे वे श्रीमती और वज्रजघके वियोगसे अत्यन्त शोकको प्राप्त हुए। उन्होंने उसी समय दृढधर्म नामक मुनिराजके पास जैनी दीक्षा लेकर कठिन तपश्चरण किया और अधोग्रैवेयकके नीचेके विमानमे अर्थात् पहले ... अहमिन्द्र पदको प्राप्त हुए। § ४८) छायास्विति—उत्तम कल्पवृक्षकी शोभामे ... नेत्र लगा रखे थे तथा जो नेत्रोंको अत्यन्त प्रिय थे ऐसे सुन्दर शरीरके धारक ... कल्पवृक्षकी छायामे मनोहर कामकलाके विलासों द्वारा क्रीड़ा करते थे ॥२४॥

§ ४९) कदाचिदय व्योमपथप्रकाशमानं सूर्यप्रभदेवविमान दृष्ट्वा जातिस्मरतामासाद्य प्रबुद्धः प्रियया सह दूरादागच्छन्तो चारणमुनीन्द्रो समोक्ष्य नलिन्या समं दिवस इव सूर्यप्रतिसूर्यौ प्रत्युद्गच्छन्नानन्दबाष्पबिन्दुसदोहैस्तत्पादो क्षालयन्निव प्रणम्य सुखोपविष्टो तावेव पप्रच्छ ।

§ ५०) अहो मुनीन्द्रावरविन्दबन्धू युवा ध्रुव यन्मम चित्तपद्मम् ।
भावत्कपादागमजातबोध प्रसादमाध्वीकरस प्रसूते ॥२५॥

§ ५१) भगवन्तो ! युवा क्वत्यो कुतस्त्यो किं नु कारणम् ।
युष्मदागमने ब्रूतमिदमेतत्तथाद्य[1] मे ॥२६॥

§ ५२) इति प्रश्न समाकर्ण्य मुनिर्ज्यायानभाषत ।
दन्तांशुमञ्जरीपुञ्जैर्दिशः सुरभयन्निव ॥२७॥

§ ५३) अहं किल पुरा भवदीयमहाबलभवे भवत्सचिवाग्रणोः स्वयंबुद्धः कर्मनिबर्हणस्य जैनधर्मस्योपदेष्टा त्वद्वियोगाज्जातनिर्वेदो दीक्षित्वा सौधर्मकल्पविलसमाने स्वयप्रभविमाने मणिचूलनामा सुर· संजातः सागरोपमायुष्कः । तत. प्रच्युतो जम्बूद्वीपपूर्वविदेहपुष्कलावर्तविषयपरिशोभितपुण्डरीकिणीनगर्यां सुन्दरीप्रियसेनाह्वयर्यो राजदम्पत्यो. प्रीतिकराख्यातो ज्येष्ठः सुतः समभवम् ।

विलासास्तै. चिक्रीडतु केलिं चक्रतु ॥ वसन्ततिलकाछन्द ॥२४॥ § ४९) कदाचिदिति—स्पष्टम् । § ५०) अहो इति—अहो मुनीन्द्रो मुनिराजो युवा ध्रुव निश्चयेन अरविन्दबन्धू सूर्यौ स्थ, यत् यस्मात् कारणात् मम चित्तपद्म हृदयारविन्द भावत्कपादागमेन भवच्चरणागमनेन पक्षे भवत्किरणागमनेन जातबोध समुद्भूतज्ञान पक्षे समुद्भूतविकास सत् प्रसाद एव माध्वीकरसस्त परमाह्लादमकरन्द प्रसूते प्रकटयति । रूपकालकार, उपजातिच्छन्द ॥२५॥ § ५१) भगवन्ताविति—क्वत्यौ क्वभवौ, कुत आगतौ कुतस्त्यौ 'अव्ययात्त्यप्' इति त्यप् प्रत्यय । शेष स्पष्टम् ॥२६॥ § ५२) इतीति—इतीत्थ प्रश्न समाकर्ण्य ज्यायान् ज्येष्ठो मुनि दन्तांशुमञ्जरीणा पुञ्जास्तै दन्तदीधितिमञ्जरीसमूहै दिश ककुभ. सुरभयन्निव सुगन्धयन्निव अभाषत जगाद ॥२७॥ § ५३) अह किलेति—कर्मनिबर्हणस्य कर्माणि ज्ञानावरणादीनि तेषा निबर्हणस्य निवर्तकस्य ।

---

§ ४९) कदाचिदिति—किसी समय यह वज्रजंघका जीव, आकाशमार्गमें प्रकाशमान सूर्यप्रभदेवके विमानको देखकर जातिस्मरणको प्राप्त होता हुआ प्रबोधको प्राप्त हुआ। उसी समय दूरसे आते हुए दो चारणऋद्धिधारक मुनिराजोंको उसने प्रियाके साथ देखा। जिस प्रकार दिवस कमलिनीके साथ सूर्य और उसके प्रतिबिम्बकी अगवानीके लिए जाता है उसी प्रकार वह आर्य भी अपनी प्रियाके साथ उन मुनिराजोंकी अगवानीके लिए आगे गया। हर्षजनित अश्रुबिन्दुओंके समूहसे उनके चरणोंको धोते हुए की तरह प्रणाम किया तथा सुखसे बैठे हुए उन मुनिराजोंसे इस प्रकार पूछा। § ५०) अहो इति—अहो मुनिराजो ! आप निश्चित ही सूर्य हैं क्योंकि हमारा यह हृदयरूपी कमल आपके पाद—चरण (पक्षमे किरण) के आगमनसे विकासको प्राप्त होता हुआ प्रसन्नतारूपी मकरन्दको उत्पन्न कर रहा है ॥२५॥ § ५१) भगवन्ताविति—हे भगवन् ! आप दोनों कहाँ के हैं तथा कहाँसे आ रहे है ? आपके आगमनमे कारण क्या है ? यह सब आप मेरे लिए कहिए ॥२६॥ § ५२) इतीति—इस प्रकारके प्रश्नको सुनकर ज्येष्ठ मुनिराज दाँतोंकी किरणरूपी मंजरीके समूहसे दिशाओंको सुगन्धित करते हुए की तरह बोले ॥२७॥ § ५३) अहं किलेति—मैं पूर्वभवमें जब कि आप महाबल पर्यायमे थे आपका प्रधानमन्त्री स्वयंबुद्ध था। मैंने आपको कर्मोंके नाशक जैनधर्मका

---

१. –त्वयाद्य मे क० ।

§ ५४) ततश्च प्रीतिदेवनाम्ना मम कनीयसानुजेन सह स्वयप्रभजिनसमीपे जैनी दीक्षामासाद्यास्थाय च तपोबलेन चारणपद पात्रदानप्रभावेण भवन्तमिह सजातमवधिविलोचनेन विज्ञाय प्रबोधयितुमागतौ स्व ।

§ ५५) महाबलभवे भवान्मम सुबोधनाद्दर्शने
न शुद्धिमुपसेदिवान्प्रबलभोगकाङ्क्षावशात् ।
ततो विमलदर्शनं विदितनिर्वृतेः साधन
गृहाण गुणवारिधे ! तव तु लब्धकालोऽधुना ॥२८॥

§ ५६) शमाद्दर्शनमोहस्य सम्यक्त्वादानमादितः ।
जन्तोरनादिमिथ्यात्वकलङ्ककलितात्मनः ॥२९॥

§ ५७) निर्भिद्य मिथ्यात्वमहान्धकारमुदेति सद्दर्शनतिग्मरश्मिः ।
तेन प्रबोध विमल चरित्रमाराधयन् राजति भव्यजीव ॥३०॥

शेपं स्पष्टम् § ५४) ततश्चेति—कनीयसा कनिष्ठेन 'युवाल्पयो कनन्यतरस्याम्' इत्यल्पस्थाने कनादेश.। शेष स्पष्टम् । § ५५) महाबलेति—महाबलभवे महाबलविद्याधरपर्याये भवान् प्रबला चासौ भोगकाङ्क्षा च प्रबलभोगकाङ्क्षा तस्या वशात् सातिशयभोगाभिलाषात् मम स्वयबुद्धस्य सुबोधनात् संबोधनात् दर्शने सम्यक्त्वे शुद्धि नैर्मल्य नोपसेदिवान् न प्राप्तवान् ततस्तस्मात् कारणात् विदितनिर्वृत्ते विज्ञातमोक्षस्य साधन निमित्त विमलसद्दर्शन निर्मलसम्यग्दर्शन गृहाण स्वीकुरु । हे गुणवारिधे ! हे गुणसागर ! अधुना साप्रतं तव लब्धकालः समयः प्राप्तः सम्यग्दर्शनप्राप्तेः काललब्धि समायातेत्यर्थ । तु पादपूर्तौ । पृथ्वीछन्द ॥२८॥ § ५६) शमादिति—आदित सर्वत प्राक् अनादिमिथ्यात्वमेव कलङ्क कालुष्य तेन कलितो युक्त आत्मा यस्य तथाभूतस्य जन्तो सज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्तकत्वविशिष्टजीवस्य दर्शनमोहस्य मिथ्यात्वस्य अनन्तानुबन्धिचतुष्कस्यापि शमादुपशमनात् सम्यक्त्वादान सम्यक्त्वग्रहण जायत इति शेष ॥२९॥ § ५७) निर्भिद्येति—मिथ्यात्वमेव महान्धकार इति मिथ्यात्वमहान्धकारस्त मिथ्यादर्शनप्रगाढध्वान्त निर्भिद्य निरस्य सद्दर्शनमेव

उपदेश दिया था। तुम्हारे वियोगसे विरक्त होकर मैंने दीक्षा ले ली थी जिसके प्रभावसे सौधर्म स्वर्गमे सुशोभित स्वयप्रभविमानमे मणिचूल नामका कुछ अधिक एक सागरकी आयुवाला देव हुआ था। वहाँसे च्युत होता हुआ जम्बूद्वीप सम्बन्धी पूर्वविदेह क्षेत्रके पुष्कलावती देशमे सुशोभित पुण्डरीकिणी नगरीमें सुन्दरी और प्रियसेन नामक राजलक्ष्मीके प्रीतिंकर नामसे प्रसिद्ध ज्येष्ठ पुत्र हुआ है। § ५४) ततश्चेति—तदनन्तर प्रीतिदेव नामक अपने छोटे भाईके साथ स्वयप्रभ जिनेन्द्रके समीप जैनी दीक्षा लेकर तथा तपके बलसे चारण ऋद्धिधारीका पद प्राप्तकर, पात्रदानके प्रभावसे आप यहाँ उत्पन्न हुए हैं यह अवधिज्ञानरूपी नेत्रसे जानकर सम्बोधनेके लिए हम दोनों आये हैं। § ५५) महाबलेति—महाबल भवमें भोगोंकी प्रबल इच्छाके कारण आप मेरे समझानेसे सम्यग्दर्शनमे विशुद्धताको प्राप्त नहीं हुए थे इसलिए प्रसिद्ध निर्वाणका साधन जो निर्मल सम्यग्दर्शन है उसे ग्रहण करो। हे गुणसागर ! यह तुम्हारा सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेका काल प्राप्त हुआ है ॥२८॥ § ५६) शमादिति—अनादिकालीन मिथ्यात्वरूपी कलंकसे जिसकी आत्मा कलुषित हो रही है ऐसे संज्ञीपञ्चेन्द्रिय पर्याप्तक जीवको सर्वप्रथम दर्शन मोहके उपशमसे सम्यग्दर्शन होता है। भावार्थ—अनादि मिथ्यादृष्टि जीवको सबसे पहले मिथ्यात्व प्रकृति तथा अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभके उपशमसे सम्यग्दर्शन होता है ॥२९॥ § ५७) निर्भिद्येति—मिथ्यात्वरूपी अन्धकारको नष्ट कर सम्यग्दर्शनरूपी सूर्य उदित होता है उससे भव्यजीव सम्यग्ज्ञान

§ ५८) जीवादिमोक्षपर्यन्ततत्त्वश्रद्धानमञ्जसा ।
त्रिभिर्मूढैरनालीढमष्टाङ्गं विद्धि दर्शनम् ॥३१॥

§ ५९) तस्य प्रशमसंवेगावास्तिक्यं चानुकम्पनम् ।
गुणाः श्रद्धारुचिस्पर्शप्रत्ययाश्चेति पर्ययाः ॥३२॥

§ ६०) तथा जिनेन्द्रसंदर्शितमोक्षमार्गादिषु शङ्कापनयनं, भोगाकाङ्क्षासु विमुखता, मुनिजनतनुषु विचिकित्साविरहः, त्रिमूढतापायः, उपगूहनं, सद्धर्मपदच्युतभव्यसंहतिस्थापनं, विमलगुणवत्सलता, श्रीमज्जैनशासनप्रभावना चेत्यष्टौ गुणाः सम्यक्त्वावयवाः प्रतिपादिताः ।

§ ६१) मुक्तिश्रीहाररत्नं महितमहिम सद्दर्शनं धत्स्व चित्ते
यद्धृत्वा भव्यजीवो हृदि सपदि चिरं सौख्यमुद्वेलमेति ।

अम्ब ! त्वं चाविलम्ब भज भवजलधेर्दुस्तरस्यापि नावं
सद्दृष्टिं स्त्रैणहेतोः किमिति हृदि सदा खिद्यसे चारुनेत्रे ॥३३॥

६२) इति मुनिवचनेन प्रापतुः पुण्यवन्तौ
सपदि विमलसम्यग्दर्शनं दम्पती तौ ।
दधुरधिहृदयं ते व्याघ्रमुख्यार्यवर्या
नतमुनिपदपद्मा दर्शनं काललब्ध्या ॥३४॥

§ ६३) एवं बोधयित्वान्तर्हिते चारणयुगले किंचिदुत्कण्ठमानसौ सम्यक्त्वभावनापरिशीलनलालसौ सुचिरं भोगाननुभूय जीवितान्ते सुखोज्झितप्राणौ तौ जायारमणौ पुण्यवशेन गृहाद्गृहान्तरमिवैशानकल्पमासाद्य देवभूयमुपजग्मतुः ।

§ ६४) तत्र किल विचित्रसुखैकताने श्रीप्रभविमाने वज्रजङ्घार्यः श्रीधरनामा सुरवर्यः, श्रीमत्यार्या च स्वयप्रभविमाने तत्समाननामधेयो देवः, शार्दूलार्यश्च तत्कल्पविलसिते चित्राङ्गद-

---

उद्वेलं सीमातीतं सौख्यं परमाह्लादम् एति प्राप्नोति । हे अम्ब ! हे मातः ! दुस्तरस्यापि दुःखेन तर्तुं शक्यस्यापि भवजलधेः संसारसागरस्य नावं नौकां सद्दृष्टिं सम्यग्दर्शनं अविलम्ब शीघ्रं यथा स्यात्तथा भज सेवस्व, स्त्रैणहेतोः स्त्रीत्वनिमित्तात् हे चारुनेत्रे ! सुलोचने ! हृदि मनसि, इतीत्थं किं खिद्यसे खेदमनुभवसि । स्त्रीपर्याये सम्यग्दर्शनप्राप्तौ बाधको नास्तीत्यर्थः । स्रग्धराछन्दः ॥३३॥ § ६२) इतीति—इतीत्थं मुनिवचनेन स्वयबुद्धचरतपोधनसंबोधनेन पुण्यवती च पुण्यवांश्चेति पुण्यवन्तौ सुकृतशालिनौ तौ दम्पती सपदि शीघ्रं विमलसम्यग्दर्शनं निर्मलसम्यक्त्वं प्रापतुः । व्याघ्रो मुख्यो येषु ते व्याघ्रमुख्यास्ते च ते आर्यवर्याश्चेति व्याघ्रमुख्यार्यवर्याः शार्दूलचरा आर्या अपि नते नमस्कृते मुनिपदपद्मे यैस्तथाभूता वन्दितमुनिचरणकमलाः सन्तः काललब्ध्या सम्यक्त्वप्राप्तियोग्यसमयलब्ध्या अधिहृदयं हृदयेषु दर्शनं सम्यक्त्वं दधुर्धृतवन्तः ॥ मालिनीछन्दः ॥३४॥ § ६३) एवमिति—एवं पूर्वोक्तप्रकारेण बोधयित्वा संबोध्य चारणयोर्युगलं तस्मिन् चारणर्द्धिसपन्नतपोधनयुगे अन्तर्हिते तिरोहिते सति, किंचित् मनाग् उत्कण्ठितं मानसं ययोस्तौ, सम्यक्त्वभावनायाः परिशीलनेऽभ्यसने लालसा वाञ्छा ययोस्तौ सुचिरं पल्यत्रयपर्यन्तं भोगान् पञ्चेन्द्रियविषयान् अनुभूय जीवितान्ते आयुरन्ते सुखेनावलेशेनोज्झितास्त्यक्ताः प्राणा याभ्यां तौ जायारमणौ जम्पती पुण्यवशेन गृहाद् गृहान्तरमिव ऐशानकल्पं द्वितीय-

---

निःसीम सुखको प्राप्त होता है। हे मातः ! तुम भी दुस्तर संसार सागरकी नौका स्वरूप सम्यग्दर्शनको शीघ्र ही प्राप्त होओ। हे सुलोचने ! स्त्री पर्यायके कारण इस तरह हृदयमें सदा खेदखिन्न क्यों होती हो ? ॥३३॥ § ६२) इतीति—इस प्रकार मुनिराजके कहनेसे उस पुण्यशाली दम्पतीने शीघ्र ही निर्मल सम्यग्दर्शन प्राप्त किया तथा व्याघ्र आदि लेकर जो वहाँ आये हुए थे उन्होंने भी मुनिराजके चरण कमलोंको नमस्कार कर काललब्धिके द्वारा हृदयमें सम्यग्दर्शन धारण किया ॥३४॥ § ६३) एवमिति—इस प्रकार चारणऋद्धिके धारक दोनों मुनिराज उपदेश देकर जब अन्तर्हित हो गये—विहार कर गये तब जिनके चित्त कुछ कुछ उत्कण्ठित हो रहे थे तथा सम्यक्त्वकी भावनाके ही अभ्यासमें जिनकी लालसा लगी रहती थी ऐसे दोनों दम्पती चिरकाल तक भोग भोगकर आयुके अन्तमें सुखपूर्वक प्राण छोड़ पुण्यके वश एक घरसे दूसरे घरके समान ऐशान स्वर्गको प्राप्त होकर देव पदको प्राप्त हुए। § ६४) तत्रेति—वहाँ विचित्र सुखका जहाँ विस्तार था ऐसे श्रीप्रभ विमानमें वज्रजंघ आर्यका जीव श्रीधर नामका देव, श्रीमती आर्याका जीव स्वयंप्रभ विमानमें स्वयंप्रभ नामका देव,

विमाने चित्राङ्गदामरः, सूकरार्यश्च नन्दाख्यविमाने मणिकुण्डलीत्रिदशः, कीशार्यश्च नन्द्यावर्तविमाने मनोहरसुमनाः, नकुलार्यश्च प्रभाकरविमाने मनोहरनिलिम्पः समजायत ॥

§ ६५) पुण्योदयेन कलित सुरलोकसौख्य-
मासेदुषामतितरा द्युसदाममीषाम् ।
श्रीमत्सरस्थितिरुरो भुवि कल्पकद्रु-
क्रीडावने च समभूद्वत नैव चाभूत् ॥३५॥

§ ६६) नाकनारीमुखाम्भोजभ्रमरः श्रीधरः सुरः ।
बुभुजे सुचिर भोगान्कन्दर्पसदृशाकृतिः ॥३६॥

स्वर्गम् आसाद्य देवभूय देवपर्यायम् उपजग्मतु । § ६४) तत्रेति—स्पष्टम् । § ६५) पुण्योदयेनेति—पुण्योदयेन सुकृतोदयेन फलित प्राप्त सुरलोकसौख्य स्वर्गसातम् अतितरामतिशयेन आसेदुषा प्राप्तवताम् अमीषा पूर्वोक्ताना दिवि स्वर्गे सीदन्तीति द्युसदस्तेषा देवानाम् उरोभुवि वक्षःस्थले कल्पकद्रुक्रीडावने च कल्पानोकहकेलिकानने च श्रीमत्सरस्थिति अभूत् । उरोभुवि श्रीमान् शोभावान् य सरो हारस्तस्य स्थितिरभूत्, कल्पकद्रुक्रीडावने च श्रीमत् शोभासंपन्न यत्सर कासारस्तस्य स्थिति अभूत् । नैव च अभूत् उरोभुवि कल्पकद्रुक्रीडावने च श्रीमत्सरस्थितिर्नैवाभूदिति वत्—अद्भुतम् प्राक् सत्ता निवेद्य पश्चात्तन्निषेधेऽद्भुतम् 'वत् खेदे कृपानिन्दासतोषामन्त्रणाद्भुते' इति विश्वलोचन । उरोभुवि श्रिया लक्ष्म्या मत्सरस्थिति ईर्ष्यास्थितिर्नैवाभूत् । कल्पकद्रुक्रीडावने च श्रिया शोभाया मत्सरस्थितिर्नैवाभूत् 'श्रीर्लक्ष्मीभारतीशोभाप्रभासु सरलद्रुमे' इति विश्वलोचन । वसन्ततिलकाछन्द । श्लेषालकार ॥३५॥ § ६६) नाकेति—नाकनारीणा देवीना मुखाम्भोजेषु भ्रमर षट्पद कदर्पसदृशाकृति. कामकल्पकलेवरः श्रीधर सुरो वज्रजङ्घचर श्रीधरदेव. सुचिर दीर्घकालपर्यन्त भोगान् बुभुजे भुङ्क्तेस्म । रूपकालकार ॥३६॥ § ६७) यद्देव्य इति—यद्देव्यो यस्य देव्यो यद्देव्य. यदीयदेवाङ्गना यश्च श्रीधरामरश्च सन्मुख्य, सुमनोजनितान्तभा, श्रीसारसदृश, पुष्पद्विलासगमना अभूवन् अभूच्चेति वचनश्लेष । देवीपक्षे बहुवचने देवपक्षे चैकवचने व्याख्या कार्या । तत्र देवी पक्षे सत् समीचीन मुख यासा ता सन्मुख्य प्रशस्तवदना, देवपक्षे सत्सु साधुषु मुख्य प्रधान', देवीपक्षे सुमनोजनितान्तभा सुमनोभि. पुष्पैर्जायते स्मेति सुमनोजा तथाभूता नितान्तभा अतिशयकान्तिर्यासा तथाभूता, देवपक्षे सुमनोज. शोभनमदनस्तस्येव नितान्तभा अतिशयकान्तिर्यस्य स देवीपक्षे आकारान्तो भाशब्दो देवपक्षे सकारान्तो भास्शब्दः,

---

शार्दूल आर्यका जीव उसी ऐशान स्वर्गमें सुशोभित चित्रांगद विमानमें चित्रांगद देव, सूकर आर्यका जीव नन्द विमानमे मणिकुण्डली नामका देव, वानर आर्यका जीव नन्द्यावर्त विमानमे मनोहर नामका देव और नकुल आर्यका जीव प्रभाकर विमानमे मनोरथ नामका देव हुआ ॥ § ६५) पुण्योदयेनेति—पुण्यके उदयसे प्राप्त होने वाले स्वर्गके उत्कृष्ट सुखको प्राप्त हुए इन देवोके वक्ष स्थलपर तथा कल्पवृक्षोंके क्रीड़ावनमे श्रीमत्सरस्थिति थी अर्थात् वक्षःस्थलपर शोभासम्पन्न हारकी स्थिति थी और कल्पवृक्षोंके क्रीड़ावनमे शोभासम्पन्न सरोवरकी स्थिति थी अथवा उक्त दोनों ही स्थानोंमें श्रीमत्सरस्थिति नहीं थी यह बडी अद्भुत बात थी अर्थात् वक्षःस्थलपर लक्ष्मीकी मात्सर्य पूर्ण स्थिति नहीं थी और कल्पवृक्षोंके क्रीड़ावनमे शोभाकी मात्सर्य पूर्ण स्थिति नहीं थी ॥३५॥ § ६६) नाकनारीति—जो देवागनाओंके मुखकमलका भौरा था तथा जिसकी आकृति कामदेवके समान थी ऐसा वह श्रीधर देव दीर्घकाल तक भोगोंको भोगता रहा ॥३६॥ § ६७) यद्देव्य इति—जिस श्रीधरदेवकी देवियाँ सन्मुख्यः —समीचीन मुखवाली थीं, सुमनोजनितान्तभा —फूलोंसे उत्पन्न होनेवाली विशिष्ट कान्तिसे युक्त थीं, श्रीसारसदृशः—कमलके समान नेत्रोंसे सहित थीं और पुष्पद्विलासगमनाः—

§ ७४) या किल शर्कराप्रभा नाम्ना भूमिर्जाज्वल्यमानज्वलनशिखाप्रतप्तभूमिभागा, दुःसहदुःस्पर्शस्फुलिङ्गकणसंगतवातपरीताम्बरतलचुम्बिविगलदम्बुधरनिपतिततप्ताशनिवृष्टिदुरवगाहा, विततविषवल्लीवल्लितासिपत्रवनपातितप्रहरणमयपर्णविदीर्णप्रतीकनारकजनाक्रोशमुखरितदिगन्तरा, सततायोमयपुत्रिकासमालिङ्गितनारकतरङ्गितदुःखाक्रन्दनघोरा, भस्त्राग्निदीपितनवायसकण्टकमेदुरशाल्मलीवृक्षेषु क्रोधाकरैः परैः समारोप्यमाणानामूर्ध्वादधःकृष्यमाणानां च पुरुषाणां क्षतजप्रवाहपरीतमहाभागा, नानटयमाननारककरकलितशूलाग्रकीलिताभ्रभागवभ्रम्यमाणानां शोणितारुणविग्रहाणां केषांचिद्गात्रखण्डैर्विकीर्णा विराजते ।

धर्मे श्रद्धालुं धर्मे निश्चलबुद्धिर्यस्य तं तथाभूतं विधातुं कर्तुं सपदि शीघ्रं द्वितीयं नरकं शर्कराप्रभानामधेयम् अगात् अगाम । मालिनीछन्दः ॥४१॥ § ७४) या किलेति—या किल नाम्ना शर्कराप्रभा भूमिः वंशाभिधाना भूमिः विराजते विशोभते इति क्रियासंबन्धः । अथ तामेव भूमिं विशिनष्टि—जाज्वल्यमानाभिरत्यर्थं पुनः पुनर्वा ज्वलन्तीभिर्ज्वलनशिखाभिरग्निशिखाभिः प्रतप्तो भूमिभागो यस्याः सा, दुःसहा दुःखेन सोढुं शक्या दुःस्पर्शा दुःखेन स्प्रष्टुं शक्याश्च ये स्फुलिङ्गकणास्तैः संगतः सहितो यो वातः पवनस्तेन परीतं व्याप्तं यदम्बरतलं गगनतलं तस्य चुम्बिनो विगलन्तः क्षरन्तो येऽम्बुधरा मेघास्तेभ्यो निपतिता या तप्ताशनिवृष्टिस्तडिद्वृष्टिस्तया दुरवगाहा दुःप्रवेशा, विततैर्विस्तृताभिर्विषवल्लीभिर्गरललताभिः वल्लितानि वेष्टितानि यान्यसिपत्रवनानि तेभ्यः पातितानि यानि प्रहरणमयानि शस्त्ररूपाणि पर्णानि तैर्विदीर्णप्रतीकाः खण्डितशरीरा ये नारकजनास्तेषामाक्रोशेन पूत्काररवेण मुखरितानि वाचालानि दिगन्तराणि काष्ठान्तराणि यस्याः तथाभूता, सततमभि अयोमयपुत्रिकाभिर्लोहमयपुत्तलिकाभिः समालिङ्गिताः समाश्लिष्टा ये नारका नरकनिवासिनस्तेषां तरङ्गितदुःखाक्रन्दनेन वृद्धिंगतदुःखशब्देन घोरा भयावहा, भस्त्राग्निना दीपितास्तीक्ष्णीकृता ये नवायसकण्टका नवीनलोहकण्टकास्तैर्मेदुरा मिलिता ये शाल्मलीवृक्षास्तेषु क्रोधाकरैः कोपखनिभिः परैरन्यैः सबलैर्नारकैः समारोप्यमाणानामुच्चटयमानानाम् ऊर्ध्वादुपरितनप्रदेशादधो नीचैः कृष्यमाणानां च पुरुषाणां नारकाणां क्षतजस्य रुधिरस्य परीवाहेण प्रवाहेण परीता व्याप्ता महाभागा महाप्रदेशा यस्याः सा, नानटयमानानां पुनः पुनरतिशयेन वा नटतां नारकाणां करकलितैर्हस्तधृतैः शूलाग्रैः कीलितोऽभ्रभागो गगनप्रदेशस्तस्मिन् वभ्रम्यमाणानां कुटिलं भ्रमतां शोणितेन रुधिरेणारुणो रक्तो विग्रहः शरीरं येषां तेषां केषांचित् गात्रखण्डैः शरीरशकलैः विकीर्णा व्याप्ता ।

श्रीधरदेव अतिशय दुखी शतमतिको धर्ममे श्रद्धा रखनेवाला बनानेके लिए शीघ्र ही दूसरे नरक आया ॥४१॥ § ७४) या किलेति—अत्यन्त जलती हुई अग्निकी ज्वालाओंसे जहाँका भूमिभाग अत्यधिक सन्तप्त हो रहा था, असहनीय तथा दुःखदायक स्पर्शवाले अग्निकणोंसे युक्त वायुसे व्याप्त आकाशतलको चुम्बित करनेवाले बरसते हुए मेघोंसे पतित बिजलीकी वर्षासे जहाँ प्रवेश करना कठिन था, विस्तृत विषलताओंसे वेष्टित असिपत्रवनसे गिराये हुए शस्त्रमय पत्रोंसे खण्डित शरीरवाले नारकियोंकी चिल्लाहटसे जहाँके दिग्दिगन्त शब्दायमान हो रहे थे, तपायी हुई लोहकी पुतलियोंसे आलिंगित नारकियोंके वृद्धिंगत दुःखपूर्ण रोनेके शब्दसे जो भयंकर थी, धौंकनीकी अग्निसे तीक्ष्ण किये हुए नवीन लोहेके काँटोंसे युक्त सेमरके वृक्षोंपर क्रोधकी खान स्वरूप अन्य नारकियोंके द्वारा ऊपर चढ़ाये तथा ऊपरसे नीचेकी ओर खींचे जानेवाले नारकियोंके रक्तके प्रवाहसे जहाँके बड़े-बड़े प्रदेश व्याप्त हो रहे थे तथा बार-बार अत्यधिकरूपसे नृत्य करनेवाले नारकियोंके हाथमे लिये हुए शूलके अग्रभागोंसे कीलित आकाशमे बार-बार घुमाये जानेवाले तथा रुधिरसे लाल शरीरवाले किन्हीं नारकियोंके शरीरके टुकड़ोंसे जो व्याप्त थी ऐसी वह शर्कराप्रभा नामकी दूसरी भूमि

§ ७५) तत्रावलोक्य शतबुद्धिमसौ सुराग्र्य'
किं भद्र वेत्सि खचरेन्द्रमहाबल माम् ।
मिथ्यात्वदुर्णयवशात्तव दु खमेतत्
प्राप्त विधेहि हृदि दर्शनमित्युवाच ।।४२।।

§ ७६) इति बोधितोऽय गृहीतसम्यक्त्वधृतिः शतमति कालान्ते निरयान्निर्गत्य, पुष्करार्धद्वीपपूर्वार्धपरिशोभितप्राग्विदेहप्रकाशमानमङ्गलावतीविषयसगतरत्नसचयनगरमधितिष्ठतोः सुन्दरीमनोहरनामधेययो राजदम्पत्योस्तनयो जयसेनाभिधान' सजात' । पाणिग्रहणप्रारम्भे करुणाकरेण श्रीधरामरेण नारकी वेदना बोधितो निरस्तविषयाभिलाषस्तत्क्षणमेव यमधर नाम गुरुवर समाश्रित्य, दुश्चरणतपश्चरणदक्ष कालान्ते ब्रह्मेन्द्रो भूत्वा सुस्पष्टावधिलोचनस्तस्माल्लोकादागत्य कल्याणमित्र श्रीधरमतिमात्र पूजयामास ।।

§ ७७) तदनु श्रीधरोऽपि स्वर्गाच्च्युत्वा जम्बूद्वीपप्राग्विदेहमहितमहावत्सकावतीविषय-

---

§ ७५) तत्रेति—तत्र शर्कराप्रभाया भूमौ असौ सुराग्र्य श्रीधरदेव शतबुद्धि तन्नाममन्त्रिणम् अवलोक्य दृष्ट्वा इतीत्थम् उवाच जगाद । इतीति किम् । हे भद्र ! किं खचरेन्द्रश्चासौ महाबलश्चेति खचरेन्द्रमहाबलस्त मा वेत्सि जानासि । मिथ्यात्वेन मिथ्यादर्शनेन युक्ता ये दुर्णया दुष्टनयास्तेषा वशेन तव भवत एतदनुभूयमान दु ख प्राप्तम् अतो हृदि दर्शन सम्यग्दर्शन विधेहि कुरु इति । वसन्ततिलका छन्द ।।४२।। § ७६) इतीति—इत्येव बोधितो बोध प्रापित गृहीता सम्यक्त्वे धृतिर्येन तथाभूतो गृहीतसम्यग्दर्शन शतमति शतमतिमन्त्रिजीव कालान्ते जीवितान्ते निरयान्नरकाद् निर्गत्य पुष्करार्धद्वीपस्य पूर्वार्धे परिशोभितो य प्राग्विदेह पूर्वविदेहस्तस्मिन् प्रकाशमानो यो मङ्गलावतीविषयस्तस्मिन् सगत स्थित यत् रत्नसचयनगर तत् अधितिष्ठतोस्तत्र निवसतो सुन्दरीमनोहरनामधेययो राजदम्पत्यो जयसेनाभिधानस्तनय पुत्र सजात समुत्पन्न । पाणिग्रहणप्रारम्भे विवाहसंस्कारस्य प्रारम्भ एव करुणाकरेण कृपाखनिरूपेण श्रीधरामरेण महाबलचरेण नारकी वेदना यातना बोधित स्मारितो निरस्तविषयाभिलाषो दूरीकृतभोगाकाङ्क्ष तत्क्षणमेव यमधर नाम तन्नामान गुरुवर समाश्रित्य समाराध्य दुश्चरणतपश्चरणे कठिनतपस्याया दक्ष समर्थ सन् कालान्ते जीवितान्ते ब्रह्मेन्द्रो ब्रह्मस्वर्गपुरन्दरो भूत्वा सुस्पष्ट सुव्यक्तमवधिलोचन यस्य तथाभूत सन् तस्माल्लोकाद् ब्रह्मलोकात् पञ्चमस्वर्गाद् आगत्य कल्याणमित्र कल्याणकरमित्र श्रीधर श्रीधरदेवम् अतिमात्रमतिशयेन पूजयामास आनर्च सच्चकारेत्यर्थ । § ७७) तदन्विति—तदनु तदनन्तर श्रीधरोऽपि स्वर्गात् च्युत्वा जम्बूद्वीपस्य प्राग्विदेहे पूर्वविदेहे महित

सुशोभित हो रही थी । § ७५) तत्रेति—वह श्रीधरदेव वहाँ शतबुद्धिको देखकर बोला कि हे भद्र ! विद्याधरोंके राजा मुझ महाबलको क्या जानते हो ? मिथ्यात्वपूर्ण मिथ्यानयोंके वशीभूत होनेसे तुम्हें यह दुःख प्राप्त हुआ है अतएव हृदयमें सम्यग्दर्शन धारण करो ।।४२।। § ७६) इतीति—इस प्रकार समझाया हुआ शतमतिका जीव सम्यग्दर्शन धारण कर नरकसे निकला और पुष्करार्ध द्वीपके पूर्वार्धमें सुशोभित पूर्वविदेह क्षेत्रमें प्रकाशमान मंगलावती देशमें स्थित रत्नसंचय नामक नगरमें रहनेवाले सुन्दरी और मनोहर नामक राजदम्पतिके जयसेन नामका पुत्र हुआ । विवाहके प्रारम्भमें ही दयाकी खान स्वरूप श्रीधरदेवने उसे नरककी वेदनाका स्मरण करा दिया जिससे विषयोंकी अभिलाषाको छोड़कर उसने उसी क्षण यमधर नामक गुरुके पास जाकर कठिन तपश्चरण किया । तपश्चरणके फलस्वरूप वह ब्रह्म स्वर्गका इन्द्र हुआ । अवधिज्ञानरूपी नेत्रके प्रकट होनेपर उसने ब्रह्मलोकसे आकर कल्याणकारी मित्र श्रीधरदेवकी बहुत पूजा की । § ७७) तदन्विति—तदनन्तर श्रीधरदेव भी स्वर्गसे

§ ६७) यद्देव्यो यश्च सन्मुख्यः सुमनोजनितान्तभा ।
श्रीसारसदृश पुष्यद्विलासगमना अहो ॥३७॥

§ ६८) यश्च यत्परिवाराश्च सुशोभनमनाः सुराः ।
सामोदा सुमनोमाला यस्य पार्श्वेऽप्युरःस्थले ॥३८॥

§ ६९) उच्चोर स्थलमाश्रिता मम हठान्नेत्र मनोज्ञस्मितो-
ल्लासैर्हारसिताशुक च हरते नित्य कलाना निधेः ।
भूषाभि. किल लोकवान्धववसून्मुष्णाति तृष्णाकुले-
त्यालोच्यैव जहार वस्त्रममरो देव्या रते श्रीधर' ॥३९॥

देवीपक्षे श्रीसारसमिव शोभोपलक्षितकमलमिव दृशी नेत्रे यासा ता देवपक्षे श्रिया सार श्रीसारो लक्ष्मी-सारस्तेन सदृशस्तुल्य , देवीपक्षे पुष्यन्तो विलासा विभ्रमा यस्मिन् तत् पुष्यद्विलास तथाभूतं गमन यासा ता देवपक्षे पुष्यन्तश्च ते विलासाश्चेति पुष्यद्विलासा तान् गच्छतीति पुष्यद्विलासग तथाभूत मनो यस्य तथाभूत । श्लेषालकार ॥३७॥ § ६८) यश्चेति—यश्च श्रीधरामर यत्परिवाराश्च सुरा देवा सुशोभनमना अभूत् अभूवंश्चेति वचनश्लेष । य श्रीधरदेव सुशोभन मनश्चित्त यस्य तथाभूत अभूत् । यत्परिवारा सुराश्च सुशोभ नमन येषा तथाभूता । यस्य देवस्य पार्श्वेऽपि निकटेऽपि उर स्थले वक्ष स्थलेऽपि सामोदा सहर्षा सुमनसा माला सुमनोमाला देवपङ्क्ति निकटे अभूत्, सामोदा सुगन्धिसहिता सुमनोमाला पुष्पस्रक् अभूत् ॥ श्लेष ॥३८॥ § ६९) उच्चोर स्थलेति—चोराणा स्थल चोरस्थलम् उच्च च तत् चोरस्थल चेत्युच्चोरस्थलम् उत्कृष्टचोरस्थानम् आश्रिता प्राप्ता, 'इय देवी हठाद् वलाद् मम नेत्र हरते, किं च मनोज्ञस्मितोल्लासै सुन्दर-हसितशोभाभि हठात् कलानिधेश्चन्द्रमसो हारवत् सित शुक्लमशुकं वस्त्रमिति हारसिताशुकम् नित्य सततम् हरते मुष्णाति । किं च तृष्णाकुला सती भूषाभिरलंकारै लोकाना वान्धवो हितकारक इति लोकवान्धवो जनहितकरस्तस्य वसून् धनानि मुष्णाति चोरयति । चुराशीलेयमिति भाव । इति आलोच्यैव विचार्यैव चोरस्य चोरणमुचितमेवेति विचारविधायैव रते सुरतकाले श्रीधरोऽमरो देव्या वस्त्र जहार हरति स्म । पक्षे उच्चं स्तनाभ्यामुत्तुङ्गम् उर स्थल वक्ष स्थलम् आश्रिता प्राप्ता एषा हठात् मम नेत्र नयन, मनोज्ञस्मितोल्लासैश्च सुन्दरमन्दहसितप्रभाभि कलानिधेश्चन्द्रस्य हारवत् सिताशुक शुक्लकिरण स्वार्थे कप्रत्यय नित्य हरते ।

विलासयुक्त चालसे सहित थीं । देवी ही नहीं वह देव भी स्वयं सन्मुख्यः—सत्पुरुषोंमें मुख्य था । सुमनोजनितान्तभाः—सुन्दर कामदेवके समान अतिशय कान्तिसे युक्त था, श्रीसारसदृशः—लक्ष्मीके सारके समान था तथा पुष्यद्विलासगमना—परिपुष्ट विलासको प्राप्त मनसे सहित था यह आश्चर्यकी बात थी ॥३७॥ § ६८) यश्चेति—जो श्रीधरदेव स्वयं सुशोभनमना—अत्यन्त सुन्दर मनसे सहित था तथा उसके परिवारके देव भी सुशोभनमना' —सुन्दर शोभासे युक्त नमस्कारसे सहित थे । जिस श्रीधरदेवके पासमें सामोदा—हर्षसे भरी सुमनोमाला देवोंकी पंक्ति विद्यमान रहती थी तथा वक्ष.स्थलमें भी सामोदा—सुगन्धिसे सहित सुमनोमाला—फूलोंकी माला विद्यमान रहती थी ॥३८॥ § ६९) उच्चोर'स्थलेति—चोरोंके उच्च अड्डेको प्राप्त हुई यह देवी जबर्दस्ती मेरे नेत्र—वस्त्रको हर लेती है तथा सुन्दर मुसक्यानकी शोभाके द्वारा चन्द्रमाके हारके समान सफ़ेद अंशुक—वस्त्रका निरन्तर अपहरण करती है । साथ ही तृष्णासे आकुल होकर आभूषणोंके द्वारा लोककल्याणकारी मनुष्यके धनको चुराती है ऐसा विचार कर ही मानो श्रीधरदेवने सुरतकालमें देवीका वस्त्र छीन लिया था (पक्षमे उन्नत वक्ष स्थलको प्राप्त हुई यह देवी जबर्दस्ती मेरे नेत्रको हरती है अर्थात् मेरे नेत्रको जबर्दस्ती अपनी ओर आकृष्ट करती है, मन्दमुसक्यानकी शोभासे चन्द्रमाके

§ ७५) तत्रावलोक्य शतबुद्धिमसौ सुराग्र्य
किं भद्र वेत्सि खचरेन्द्रमहाबल माम् ।
मिथ्यात्वदुर्णयवशात्तव दु.खमेतत्
प्राप्त विधेहि हृदि दर्शनमित्युवाच ॥४२॥

§ ७६) इति बोधितोऽय गृहीतसम्यक्त्वधृतिः शतमति कालान्ते निरयान्निर्गत्य, पुष्करार्धद्वीपपूर्वार्धपरिशोभितप्राग्विदेहप्रकाशमानमङ्गलावतीविपयसगतरत्नसचयनगरमधितिष्ठतोः सुन्दरीमनोहरनामधेययो राजदम्पत्योस्तनयो जयसेनाभिधान सजात । पाणिग्रहणप्रारम्भे करुणाकरेण श्रीधरामरेण नारकी वेदना बोधितो निरस्तविपयाभिलाषस्तत्क्षणमेव यमधर नाम गुरुवर समाश्रित्य, दुश्चरणतपश्चरणदक्ष कालान्ते ब्रह्मेन्द्रो भूत्वा सुस्पष्टावधिलोचनस्तस्माल्लोकादागत्य कल्याणमित्र श्रीधरमतिमात्र पूजयामास ॥

§ ७७) तदनु श्रीधरोऽपि स्वर्गाच्च्युत्वा जम्बूद्वीपप्राग्विदेहमहितमहावत्सकावतीविषय-

---

§ ७५) तत्रेति—तत्र शर्कराप्रभाया भूमौ असौ सुराग्र्य श्रीधरदेव शतबुद्धि तन्नाममन्त्रिणम् अवलोक्य दृष्ट्वा इतीत्थम् उवाच जगाद । इतीति किम् । हे भद्र ! किं खचरेन्द्रश्चासौ महाबलश्चेति खचरेन्द्रमहाबलस्त मा वेत्सि जानासि । मिथ्यात्वेन मिथ्यादर्शनेन युक्ता ये दुर्णया दुष्टनयास्तेपा वशेन तव भवत एतदनुभूयमान दु ख प्राप्तम् अतो हृदि दर्शन सम्यग्दर्शन विधेहि कुरु इति । वसन्ततिलका छन्द ॥४२॥ § ७६) इतीति—इत्येव बोधितो बोध प्रापित गृहीता सम्यक्त्वे धृतिर्येन तथाभूतो गृहीतसम्यग्दर्शन शतमति शतमतिमन्त्रिजीव कालान्ते जीवितान्ते निरयान्नरकाद् निर्गत्य पुष्करार्धद्वीपस्य पूर्वार्धे परिशोभितो य प्राग्विदेह पूर्वविदेहस्तस्मिन् प्रकाशमानो यो मङ्गलावतीविषयस्तस्मिन् सगत स्थित यत् रत्नसचयनगर तत् अधितिष्ठतोस्तत्र निवसतो सुन्दरीमनोहरनामधेययो राजदम्पत्यो जयसेनाभिधानस्तनय पुन सजात समुत्पन्न । पाणिग्रहणप्रारम्भे विवाहसस्कारस्य प्रारम्भ एव करुणाकरेण कृपाखनिरूपेण श्रीधरामरेण महाबलचरेण नारकी वेदना यातना बोधित स्मारितो निरस्तविषयाभिलाषो दूरीकृतभोगाकाङ्क्ष तत्क्षणमेव यमधर नाम तन्नामान गुरुवर समाश्रित्य समाराध्य दुश्चरणतपश्चरणे कठिनतपस्याया दक्ष समर्थ सन् कालान्ते जीवितान्ते ब्रह्मेन्द्रो ब्रह्मस्वर्गपुरन्दरो भूत्वा सुस्पष्ट सुव्यक्तमवधिलोचन यस्य तथाभूत सन् तस्माल्लोकाद् ब्रह्मलोकात् पञ्चमस्वर्गाद् आगत्य कल्याणमित्र कल्याणकरमित्र श्रीधर श्रीधरदेवम् अतिमात्रमतिशयेन पूजयामास आनर्च सत्चकारेत्यर्थ । § ७७) तदन्विति—तदनु तदनन्तर श्रीधरोऽपि स्वर्गात् च्युत्वा जम्बूद्वीपस्य प्राग्विदेहे पूर्वविदेहे महित

सुशोभित हो रही थी । § ७५) तत्रेति—वह श्रीधरदेव वहाँ शतबुद्धिको देखकर बोला कि हे भद्र ! विद्याधरोंके राजा मुझ महाबलको क्या जानते हो ? मिथ्यात्वपूर्ण मिथ्यानयोंके वशीभूत होनेसे तुम्हें यह दुःख प्राप्त हुआ है अतएव हृदयमें सम्यग्दर्शन धारण करो ॥४२॥ § ७६) इतीति—इस प्रकार समझाया हुआ शतमतिका जीव सम्यग्दर्शन धारण कर नरकसे निकला और पुष्करार्ध द्वीपके पूर्वार्धमें सुशोभित पूर्वविदेह क्षेत्रमें प्रकाशमान मगलावती देशमें स्थित रत्नसंचय नामक नगरमें रहनेवाले सुन्दरी और मनोहर नामक राजदम्पतिके जयसेन नामका पुत्र हुआ । विवाहके प्रारम्भमें ही दयाकी खान स्वरूप श्रीधरदेवने उसे नरककी वेदनाका स्मरण करा दिया जिससे विषयोंकी अभिलाषाको छोडकर उसने उसी क्षण यमधर नामक गुरुके पास जाकर कठिन तपश्चरण किया । तपश्चरणके फलस्वरूप वह ब्रह्म स्वर्गका इन्द्र हुआ । अवधिज्ञानरूपी नेत्रके प्रकट होनेपर उसने ब्रह्मलोकसे आकर कल्याणकारी मित्र श्रीधरदेवकी बहुत पूजा की । § ७७) तदन्विति—तदनन्तर श्रीधरदेव भी स्वर्गसे

§ ७४) या किल शर्कराप्रभा नाम्ना भूमिर्जाज्वल्यमानज्वलनशिखाप्रतप्तभूमिभागा, दुःसहदुःस्पर्शस्फुलिङ्गकणसगतवातपरीताम्बरतलचुम्बिविगलदम्बुधरनिपतिततप्ताशुवृष्टिदुरवगाहा, विततविषवल्लीसललिताsसिपत्रवनपातितप्रहरणमयपत्रविदीर्णप्रतीकनारकजनाक्रोशमुखरितदिगन्तरा, संतप्तायोमयपुत्रिकासमालिङ्गितनारकतरङ्गितदुःखाक्रन्दनघोरा, भस्त्राग्निदीपितनवायसकण्टकपरिमेदुरशाल्मलीवृक्षेषु क्रोधाकरैः परैः समारोप्यमाणानामूर्ध्वाधःकृष्यमाणानां च पुरुषाणां क्षतजपरीवाहपरीतमहाभागा, नानटयमाननारककरकलितशूलाग्रकीलिताभ्रभागवभ्रम्यमाणानां शोणितारुणविग्रहाणां केषांचिद्गात्रखण्डैर्विकीर्णा विराजते।

मन्त्रिजीव वर्मे निष्ठास्थावुद्धिर्यस्य तं तथाभूतं विधातुं कर्तुं सपदि शीघ्रं द्वितीयं नरकं शर्कराप्रभानामधेयम् अगात् जगाम। मालिनीछन्दः ॥४१॥ § ७४) या किलेति—या किल नाम्ना शर्कराप्रभा भूमिः वंशाभिधाना भूमिः विराजते विशोभते इति क्रियासंबन्धः। अथ तामेव भूमिं विशिनष्टि—जाज्वल्यमानाभिरत्यर्थं पुनःपुनर्वा ज्वलन्तीभिर्ज्वलनशिखाभिरग्निशिखाभिः प्रतप्तो भूमिभागो यस्या सा, दुःसहा दुःखेन सोढुं शक्या दुःस्पर्शा दुःखेन स्प्रष्टुं शक्याश्च ये स्फुलिङ्गकणास्तैः सगतः सहितो यो वातः पवनस्तेन परीतं व्याप्तं यदम्बरतलं गगनतलं तस्य चुम्बिनो विगलन्तः क्षरन्तो येऽम्बुधरा मेघास्तेभ्यो निपतिता या तप्ताशुवृष्टिस्तडिद्वृष्टिस्तया दुरवगाहा दुःप्रवेशा, विततामिर्विस्तृताभिर्विषवल्लीभिर्गरललताभिः सललितानि वेष्टितानि यान्यसिपत्रवनानि तेभ्यः पातितानि यानि प्रहरणमयानि शस्त्ररूपाणि पत्राणि तैर्विदीर्णप्रतीकाः खण्डितशरीरा ये नारकजनास्तेषामाक्रोशेन पूत्काररवेण मुखरितानि वाचालानि दिगन्तराणि काष्ठान्तराणि यस्या तथाभूता, संतप्ताभिः अयोमयपुत्रिकाभिर्लोहमयपुत्तलिकाभिः समालिङ्गिताः समाश्लिष्टा ये नारका नरकनिवासिनस्तेषां तरङ्गितदुःखाक्रन्दनेन वृद्धिगतदुःखशब्देन घोरा भयावहा, भस्त्राग्निना दीपितास्तीक्ष्णीकृता ये नवायसकण्टका नवीनलोहकण्टकास्तैर्मेदुरा मिलिता ये शाल्मलीवृक्षास्तेषु क्रोधाकरैः कोपखनिभिः परैरन्यैः सबलैर्नारकैः समारोप्यमाणानामुच्चटयमानानाम् ऊर्ध्वादुपरितनप्रदेशादधो नीचैः कृष्यमाणानां च पुरुषाणां नारकाणां क्षतजस्य रुधिरस्य परीवाहेण प्रवाहेण परीता व्याप्ता महाभागा महाप्रदेशा यस्या सा, नानटयमानानां पुनःपुनरतिशयेन वा नटतां नारकाणां करकलितैर्हस्तधृतैः शूलाग्रैः कीलितोऽभ्रभागो गगनप्रदेशस्तस्मिन् वभ्रम्यमाणानां कुटिलं भ्रमतां शोणितेन रुधिरेणारुणो रक्तो विग्रहः शरीरं येषां तेषां केषांचित् गात्रखण्डैः शरीरशकलैः विकीर्णा व्याप्ता।

श्रीधरदेव अतिशय दुखी शतमतिको धर्ममें श्रद्धा रखनेवाला बनानेके लिए शीघ्र ही दूसरे नरक आया ॥४१॥ § ७४) या किलेति—अत्यन्त जलती हुई अग्निकी ज्वालाओंसे जहाँका भूमिभाग अत्यधिक सन्तप्त हो रहा था, असहनीय तथा दुःखदायक स्पर्शवाले अग्निकणोंसे युक्त वायुसे व्याप्त आकाशतलको चुम्बित करनेवाले बरसते हुए मेघोंसे पतित बिजलीकी वर्षासे जहाँ प्रवेश करना कठिन था, विस्तृत विषलताओंसे वेष्टित असिपत्रवनसे गिराये हुए शस्त्रमय पत्रोंसे खण्डित शरीरवाले नारकियोंकी चिल्लाहटसे जहाँके दिग्दिगन्त शब्दायमान हो रहे थे, तपायी हुई लोहकी पुतलियोंसे आलिंगित नारकियोंके वृद्धिंगत दुःखपूर्ण रोनेके शब्दसे जो भयंकर थी, धोंकनीकी अग्निसे तीक्ष्ण किये हुए नवीन लोहेके काँटोंसे युक्त सेमरके वृक्षोंपर क्रोधकी खान स्वरूप अन्य नारकियोंके द्वारा ऊपर चढ़ाये तथा ऊपरसे नीचेकी ओर खींचे जानेवाले नारकियोंके रक्तके प्रवाहसे जहाँके बड़े-बड़े प्रदेश व्याप्त हो रहे थे तथा बार-बार अत्यधिकरूपसे नृत्य करनेवाले नारकियोंके हाथमें लिये हुए शूलके अग्रभागोंमें कीलित आकाशमें बार-बार घुमाये जानेवाले तथा रुधिरसे लाल शरीरवाले किन्हीं नारकियोंके शरीरके टुकड़ोंसे जो व्याप्त थी ऐसी वह शर्कराप्रभा नामकी दूसरी भूमि

§ ७५) तत्रावलोक्य शतबुद्धिमसौ सुराग्र्य'
किं भद्र वेत्सि खचरेन्द्रमहाबल माम् ।
मिथ्यात्वदुर्णयवशात्तव दु.खमेतत्
प्राप्त विधेहि हृदि दर्शनमित्युवाच ॥४२॥

§ ७६) इति बोधितोऽय गृहीतसम्यक्त्वधृतिः शतमति' कालान्ते निरयान्निर्गत्य, पुष्करार्धद्वीपपूर्वार्धपरिशोभितप्राग्विदेहप्रकाशमानमङ्गलावतीविपयसगतरत्नसचयनगरमधितिष्ठतोः सुन्दरीमनोहरनामधेययो राजदम्पत्योस्तनयो जयसेनाभिधान सजात । पाणिग्रहणप्रारम्भे करुणाकरेण श्रीधरामरेण नारकी वेदना बोधितो निरस्तविपयाभिलाषस्तत्क्षणमेव यमधर नाम गुरुवर समाश्रित्य, दुश्चरणतपश्चरणदक्ष कालान्ते ब्रह्मेन्द्रो भूत्वा सुस्पष्टावधिलोचनस्तस्माल्लोकादागत्य कल्याणमित्र श्रीधरमतिमात्रं पूजयामास ॥

§ ७७) तदनु श्रीधरोऽपि स्वर्गाच्च्युत्वा जम्बूद्वीपप्राग्विदेहमहितमहावत्सकावतीविषय-

---

§ ७५) तत्रेति—तत्र शर्कराप्रभाया भूमौ असौ सुराग्र्य श्रीधरदेव शतबुद्धि तन्नाममन्त्रिणम् अवलोक्य दृष्ट्वा इतीत्थम् उवाच जगाद । इतीति किम् । हे भद्र ! किं खचरेन्द्रश्चासौ महाबलश्चेति खचरेन्द्रमहाबलस्त मा वेत्सि जानासि । मिथ्यात्वेन मिथ्यादर्शनेन युक्ता ये दुर्णया दुष्टनयास्तेषा वशेन तव भवत एतदनुभूयमान दु ख प्राप्तम् अतो हृदि दर्शन सम्यग्दर्शन विधेहि कुरु इति । वसन्ततिलका छन्द ॥४२॥ § ७६) इतीति—इत्येव बोधितो बोध प्रापित गृहीता सम्यक्त्वे धृतिर्येन तथाभूतो गृहीतसम्यग्दर्शन शतमति. शतमतिमन्त्रिजीव कालान्ते जीवितान्ते निरयान्नरकाद् निर्गत्य पुष्करार्धद्वीपस्य पूर्वार्धे परिशोभितो य प्राग्विदेह पूर्वविदेहस्तस्मिन् प्रकाशमानो यो मङ्गलावतीविषयस्तस्मिन् सगत स्थित यत् रत्नसचयनगर तत् अधितिष्ठतोस्तत्र निवसतो सुन्दरीमनोहरनामधेययो राजदम्पत्यो जयसेनाभिधानस्तनय पुत्र सजात समुत्पन्न । पाणिग्रहणप्रारम्भे विवाहसंस्कारस्य प्रारम्भ एव करुणाकरेण कृपाखनिरूपेण श्रीधरामरेण महाबलचरेण नारकी वेदना यातना बोधित स्मारितो निरस्तविषयाभिलाषो दूरीकृतभोगाकाङ्क्ष तत्क्षणमेव यमधर नाम तन्नामान गुरुवर समाश्रित्य समाराध्य दुश्चरणतपश्चरणे कठिनतपस्याया दक्ष समर्थ सन् कालान्ते जीवितान्ते ब्रह्मेन्द्रो ब्रह्मस्वर्गपुरन्दरो भूत्वा सुस्पष्ट सुव्यक्तमवधिलोचन यस्य तथाभूत सन् तस्माल्लोकाद् ब्रह्मलोकात् पञ्चमस्वर्गाद् आगत्य कल्याणमित्र कल्याणकरमित्र श्रीधर श्रीधरदेवम् अतिमात्रमतिशयेन पूजयामास आनर्च सच्चकारेत्यर्थ । § ७७) तदन्विति—तदनु तदनन्तर श्रीधरोऽपि स्वर्गात् च्युत्वा जम्बूद्वीपस्य प्राग्विदेहे पूर्वविदेहे महित

सुशोभित हो रही थी । § ७५) तत्रेति—वह श्रीधरदेव वहाँ शतबुद्धिको देखकर बोला कि हे भद्र ! विद्याधरोंके राजा मुझ महाबलको क्या जानते हो ? मिथ्यात्वपूर्ण मिथ्यानयोंके वशीभूत होनेसे तुम्हें यह दुःख प्राप्त हुआ है अतएव हृदयमें सम्यग्दर्शन धारण करो ॥४२॥ § ७६) इतीति—इस प्रकार समझाया हुआ शतमतिका जीव सम्यग्दर्शन धारण कर नरकसे निकला और पुष्करार्ध द्वीपके पूर्वार्धमे सुशोभित पूर्वविदेह क्षेत्रमे प्रकाशमान मगलावती देशमे स्थित रत्नसंचय नामक नगरमे रहनेवाले सुन्दरी और मनोहर नामक राजदम्पतिके जयसेन नामका पुत्र हुआ । विवाहके प्रारम्भमे ही दयाकी खान स्वरूप श्रीधरदेवने उसे नरककी वेदनाका स्मरण करा दिया जिससे विषयोंकी अभिलाषाको छोडकर उसने उसी क्षण यमधर नामक गुरुके पास जाकर कठिन तपश्चरण किया । तपश्चरणके फलस्वरूप वह ब्रह्म स्वर्गका इन्द्र हुआ । अवधिज्ञानरूपी नेत्रके प्रकट होनेपर उसने ब्रह्मलोकसे आकर कल्याणकारी मित्र श्रीधरदेवकी बहुत पूजा की । § ७७) तदन्विति—तदनन्तर श्रीधरदेव भी स्वर्गसे

विराजमानसुसीमानगरपतेः सुदृष्टिनरपतेः सुन्दरनन्दायाः सुविधिर्नाम सूनुरजायत।

§ ७८) सोऽयं कलानिधिरिति प्रथितोऽपि भास्वान्
सौम्योऽपि मङ्गलतनुः सुमना नरोऽपि ।
बाल्ये रराज सुविधिर्मदवर्जितोऽपि
श्रीसुप्रतीकविदितोऽपि च सार्वभौमः ॥४३॥

§ ७९) प्राणोऽपि जगतां सोऽयं प्रचेता राजनन्दनः ।
नरसार्थहिता यस्य सरसार्थहितापि गीः ॥४४॥

शोभितो यो महावत्सकावतीविषयो महावत्सकावतीदेशस्तस्मिन् विराजमान शोभमान यत् सुसीमानगर तस्य पति स्वामी तस्य सुदृष्टिनरपते सुदृष्टिनामभूपालस्य सुन्दरनन्दायास्तन्नामपत्न्या सुविधिर्नाम सूनु सुविधिनामा पुत्र अजायत उदपद्यत । § ७८) सोऽयमिति—सोऽय सुविधिः बाल्ये शैशवकाले कलानिधिरिति चन्द्र इति प्रथितोऽपि प्रसिद्धोऽपि भास्वान् सूर्य इति विरुद्ध, तत्परिहार —कलाना चतु षष्टिसख्याना निधिरिति कलानिधि इत्येव प्रथितोऽपि भास्वान् देदीप्यमान. । सोमस्य चन्द्रस्यापत्य पुमान् सौम्यो बुधग्रहोऽपि मङ्गलतनु मङ्गलग्रह इति विरुद्ध तत्परिहार —सौम्योऽपि शान्ताकारोऽपि मङ्गलतनु शोभनशरीर । सुमना देवोऽपि नरो मनुष्य इति विरुद्ध , तत्परिहार —सुष्ठु मनो यस्य तथाभूत शोभनचित्तोऽपि नरो मनुष्य , मद वर्जितोऽपि दानरहितोऽपि श्रीसुप्रतीको दिग्गजविशेष इति विदितोऽपि सार्वभौम इति प्रसिद्धो दिग्गजविशेष इति विरुद्ध तत्परिहार मदेन गर्वेण वर्जितोऽपि रहितोऽपि श्रीसुप्रतीकेन शोभोपलक्षितसुन्दरशरीरेण विदितोऽपि प्रसिद्धोऽपि सर्वस्या भूमेरधिप सार्वभौम चक्रवर्ती, सन् रराज शुशुभे । विरोधाभासालकार । वसन्ततिलकाछन्द ॥४३॥ § ७९) प्राणोऽपीति—सोऽय राजनन्दनो राजपुत्र सुविधि जगता प्राणोऽपि वायुरपि प्रचेता वरुण इति विरोध परिहारस्तु जगता प्राणश्चैतन्यमिव सन् प्रकृष्ट चेतो यस्य तथाभूत प्रचेता अभवत् । यस्य सुविधे गीर्भारती नरसार्थहिता रसश्चार्थश्च रसार्थौ ताभ्या हिता रसार्थहिता न रसार्थहिता नरसार्थहिता, सत्यपि सरसार्थहिता इति विरोध परिहारस्तु नराणा मनुष्याणा सार्थ समूहस्तस्य हितापि

च्युत होकर जम्बूद्वीप सम्बन्धी पूर्वविदेहमे सुशोभित महावत्सकावती देशमे विराजमान सुसीमा नगरके स्वामी सुदृष्टि राजाकी सुन्दरनन्दा नामक स्त्रीसे सुविधि नामका पुत्र हुआ। § ७८) सोऽयमिति—वह सुविधि बाल्य अवस्थामे कलानिधि—चन्द्रमा इस तरह प्रसिद्ध होकर भी भास्वान्—सूर्य था (परिहार पक्षमे चौसठ कलाओंका भाण्डार होकर भी देदीप्यमान था) सौम्य—बुधग्रह होकर भी मंगलतनु—मगलग्रहरूप था (परिहार पक्षमें शान्ताकार होकर मंगलमय शरीरसे युक्त था) सुमना—देव होकर भी नर—मनुष्य था (परिहार पक्षमें सुन्दर हृदयवाला होकर मनुष्य था) मदवर्जित—दानसे रहित होकर तथा श्रीसुप्रतीक विदित—सुप्रतीक नामक दिग्गज होकर भी सार्वभौम—सार्वभौम नामक दिग्गज रूपसे सुशोभित था (परिहार पक्षमे गर्वसे रहित) शोभासम्पन्न शरीरसे युक्त होकर भी समस्त भूमिका अधिपति चक्रवर्ती रूपसे सुशोभित था ॥४३॥ § ७९) प्राणोऽपीति—वह राजपुत्र सुविधि जगत्का प्राण—वायु होकर भी प्रचेताः—पश्चिम दिशाका दिक्पाल वरुण था (पक्षमे जगत्के प्राणस्वरूप होकर भी प्रकृष्ट—श्रेष्ठतम चित्तसे सहित था) तथा उसकी वाणी रस और अर्थके द्वारा हितकारी न होकर भी रस और अर्थसे हितकारी थी (पक्षमे नरसमूहको हितकारी होकर भी सरस—शृंगारादि रससहित अर्थसे हितकारी थी।) ॥४४॥

§ ८०) स किल यथाकाल परिगृहीतसत्कलत्र' पितुरुपरोधेन प्राप्तराज्यभारश्चक्रधरस्याभयघोषाह्वयस्य स्वस्रियोऽय चक्रिसुता मनोरमामुद्वाह्य तया सह रममाणो राज्यमनुशशास ।

§ ८१) यस्य च पुर रङ्गोज्ज्वल तुरङ्गोज्ज्वल चतुरङ्गोज्ज्वल च, नीपहृद्या वनीपहृद्या अवनीपहृद्याश्चारामा ।

§ ८२) आर्याधिकानन्ददो भार्याधिकानन्दद सभार्याधिकानन्ददश्च पृथ्वीपति' । मारविलसित कुमारविलसित सुकुमारविलसित च यस्यान्तःपुरम् । वरतोल्लासिता नवरतोल्लासिता अनवरतोल्लासिता च वनिताजनता । यस्य च यशोमाला राजमनोरमा सुरराजमनोरमा च ।

§ ८३) यस्मिन् शासति महीवलय सुवृत्तस्य कुचस्य कठिन इति पीडा, अपापस्य कूपस्य

सरसार्थे हिता सरसेन शृङ्गारादिरससहितेन अर्थेन हिता श्रेयस्करी। विरोधाभास ॥४४॥ § ८०) स किलेति— यथाकाल यौवने प्राप्ते सतीत्यर्थ परिगृहीतानि परिणीतानि सत्कलत्राणि येन तथाभूत सन् पितुस्तातस्य उपरोधेनाग्रहेण गृहीतराज्यभार स्वीकृतराज्यभार' । स्वसुरपत्य पुमान् स्वस्रियो भगिनीसुत । शेष स्पष्टम् । § ८१) यस्य चेति—यस्य च सुविधे पुरं नगरं रङ्गोज्ज्वल रङ्गैर्नृत्यभूमिभिरुज्ज्वल देदीप्यमानम्, तुरङ्गोज्ज्वल–तुरङ्गैरश्वैरुज्ज्वल शोभमान, चतुरङ्गैर्हस्त्यश्वरथपादातैश्चतुर्विधसेनाङ्गैरुज्ज्वल शोभमान बभूव । यस्य च सुविधे आरामा उद्यानानि नीपहृद्या कदम्बवृक्षमनोज्ञा, वनी पान्ति रक्षन्तीति वनीपा वनपालास्तैर्हृद्या मनोहरा, अवनी पृथ्वी पान्ति रक्षन्तीति अवनीपा राजानस्तैर्हृद्या मनोहरा । आसन्निति शेष । § ८२) आर्येति—य पृथ्वीपति' कथभूतोऽभवत् । आर्याणामधिकानन्द ददातीत्यार्याधिकानन्दद आर्यजनप्रभूतहर्षदायक, भार्याणा स्त्रीणामधिकानन्द ददातीति तथाभूतः, सभाया आर्येभ्य सदस्येभ्योऽधिकानन्द ददातीति तथाभूत । यस्य सुविधेरन्त पुर निशान्त मारविलसित कामशोभित, कुमारविलसित बालविभूषित, सुकुमारविलसित च सुकुमार कोमलं च तद् विलसित चेति सुकुमारविलसित बभूव । यस्य वनिताजनता स्त्रीसमूह वरतोल्लसिता वरता उत्कृष्टता तया उल्लसिता शोभिता, नवरतेन नूतनसभोगेन उल्लसिता प्रहर्षिता, अनवरतोल्लसिता च अनवरत निरन्तरम् उल्लसिता प्रसन्नचित्ता च अभवत् । यस्य च यशोमाला राजमनोरमा नृपतिमनोहारिणी सुरराजमनोरमा च पुरन्दरचेतोहरा च बभूव । § ८३) यस्मिनिति— यस्मिन् सुविधौ महीवलय भूमण्डल शासति सति सुवृत्तस्य वर्तुलाकारस्य कुचस्य वक्षोजस्य कठिन कठोर-

---

§ ८०) स किलेति—उस सुविधिने यथा समय उत्तम स्त्रियोंसे विवाह कर, पिताके आग्रहसे राज्यभार स्वीकृत किया। साथ ही वह अभयघोष नामक चक्रवर्तीका भानेज था अत उसने चक्रवर्तीकी पुत्री मनोरमाके साथ विवाह किया। इस तरह मनोरमाके साथ रमण करता हुआ वह राज्यका पालन करने लगा। § ८१) यस्य चेति—जिस सुविधि राजाका नगर रगोज्ज्वल—रगभूमियोंसे उज्ज्वल था, तुरगोज्ज्वल—घोडोंसे सुशोभित था, और चतुरंगोज्ज्वल—चतुरंगिणी सेनासे सुशोभित था तथा जिसके बगीचे नीपहृद्य—कदम्बके वृक्षोंसे सुन्दर थे, वनीपहृद्य—वनपालोंसे मनोहर थे और अवनीपहृद्य—राजाओंको प्रिय थे। § ८२) आर्येति—जो राजा आर्य पुरुषोंको अधिक आनन्द देनेवाला था, भार्या—स्त्रियोंको अधिक आनन्द देनेवाला था तथा सभाके आर्य मनुष्योंको अधिक आनन्द देनेवाला था। जिसका अन्त पुर कामसे सुशोभित था, बच्चोंसे सुशोभित था और सुकुमार तथा शोभायमान था। जिसकी स्त्रियोंका समूह उत्कृष्टतासे सुशोभित था, नये-नये संभोगोंसे सुशोभित था और निरन्तर प्रसन्न चित्त रहता था। तथा जिसके यशकी सन्तति राजाओंके मनको रमण करने वाली थी और इन्द्रके चित्तको हरनेवाली थी। § ८३) यस्मिन्निति—जिस सुविधि राजाके भूमण्डलका पालन करनेपर सुवृत्त—गोल स्तनोंका कठिन होनेके कारण पीड़न होता था

विरस इति खनन, सुगुणस्य मुक्ताहारस्य अन्तश्छिद्र इति भङ्ग', महातपस्थितिमहितस्य सरोजस्य सपङ्क इति मीलन, सुमनोभूषिताना कुन्तलाना वक्रा इत्याकर्षण, सुरक्तस्य वनितोष्ठस्य अधर इति खण्डनम् ।

§ ८४) एव शासितराज्यस्य रममाणस्य कान्तया ।
स्वयप्रभो दिवश्च्युत्वा केशवाख्य सुतोऽजनि ॥४५॥

§ ८५) वज्रजङ्घभवे यासौ श्रीमती तस्य वल्लभा ।
तस्मिञ्जाते सुते राज्ञ. प्रीतिरासीद्गरीयसी ॥४६॥

स्पर्श इति हेतो पीडामर्दन, अन्यस्य कस्यचित् सुवृत्तस्य सदाचारवत कठिनो निर्दय इति हेतो पीडाकयन न । अपा समूह आप अपगत आप यस्मात् तस्य अपापस्य जलसमूहरहितस्य कूपस्य प्रहेर्विरसो निर्जल इति हेतो खननमवदारण, अन्यस्य कस्यचित् अपापस्य पापरहितस्य विरसो नि स्नेह इति हेतो खनन न विदारण । सुगुणस्य शोभनतन्तुसहितस्य मुक्ताहारस्य मौक्तिकयष्टे अन्तश्छिद्रो मध्ये सविवर इति हेतोर्भङ्ग अन्यस्य कस्यचित् सुगुणस्य शोभनगुणसहितस्य अन्तश्छिद्रो मध्ये सदोष इति हेतोर्भङ्गो विनाशो न, महातपे महाघर्मे स्थितिरवस्थान तेन महितस्य प्रशस्तस्य सरोजस्य कमलस्य सपङ्क. सकर्दम इति हेतोर्मीलन सकोचन कस्यचिदन्यस्य महातपसि महातपश्चरणे स्थित्या महितस्य सपङ्क सपाप इति हेतोर्मीलन न । सुमनोभूषिताना पुष्पालकृताना कुन्तलाना केशाना वक्रा भङ्गुरा इति हेतोराकर्षण, अन्येषा सुमनोभूषिताना सुहृदयशोभिताना वक्रा कुटिला इति हेतो आकर्षण न । सुरक्तस्य सुलोहितस्य वनितोष्ठस्य स्त्रीदशनच्छदस्य अधर इति हेतो खण्डन, पतिदन्तैर्दशन, अन्यस्य कस्यचित् सुरक्तस्य शोभनरागसहितस्य अधरो नीच इति हेतो खण्डन अङ्गच्छेदन न । परिसख्यालकार । § ८४) एवमिति—एवमित्थ शासित राज्य येन तस्य तथाभूतस्य कान्तया वल्लभया रममाणस्य तस्य सुविधे स्वयप्रभो देव श्रीमत्या जीवो दिवस्त्रिदशात् च्युत्वा केशवाख्या केशवनामा सुत सूनु अजनि बभूव ॥४५॥ § ८५) वज्रजङ्घेति—वज्रजङ्घभवे तस्य सुविधे यासौ प्रसिद्धा श्रीमती नाम वल्लभासीत् तस्मिन् सुते केशवाख्ये सुते जाते सति राज्ञो गरीयसी गुरुतरा

अन्य किसी सुवृत्त—सदाचारी मनुष्यका कठिन—दुष्टहृदय होनेके कारण पीडन नहीं होता था। अपापस्य—जलके समूहसे रहित कूपका विरस—निर्जल होनेके कारण खनन होता था अन्य किसी अपाप—निष्पाप मनुष्यका विरस—स्नेह रहित होनेके कारण खनन नहीं होता था। सुगुण—उत्तम तन्तुसे सहित मोतियोंके हारका अन्तश्छिद्र—मध्यमे छिद्र होनेके कारण भग—विनाश होता था अन्य किसी सुगुण—अच्छे गुणोंसे सहित मनुष्यका अन्तश्छिद्र—मध्यमे सदोष होनेसे भंग नहीं होता था। महातपस्थितिमहित—बहुत भारी घाममे स्थितिसे शोभित कमलका सपंक—कीचडसे सहित होनेके कारण मलिन—संकोच होता था—अन्य किसी महान् तपमे स्थितिसे शोभित मनुष्यका सपक—पापसे सहित होनेके कारण मलिन नहीं होता था। सुमनोभूषित—फूलोंसे सुशोभित केशोंका वक्र—घुँघुराले होनेके कारण आकर्षण—खींचना होता था अन्य किन्हीं सुमनोभूषित—अच्छे हृदयसे भूषित मनुष्योंका वक्र—कुटिल—मायावी होनेके कारण आकर्षण नहीं होता था। सुरक्त—अत्यन्त लाल स्त्रीके ओठका अधर इस नामसे सहित होनेके कारण खण्डन होता था—पतिके दाँतोंसे उसका दशन होता था अन्य किसी सुरक्त—उत्तम रागसे सहित मनुष्यका अधर—नीच होनेके कारण खण्डन—अंगभंग नहीं होता था। § ८४) एवमिति—इस प्रकार राज्यका शासन और कान्ताके साथ रमण करते हुए सुविधिराजाके स्वयप्रभदेव स्वर्गसे च्युत होकर केशव नामका पुत्र हुआ ॥४५॥ § ८५) वज्रजंघेति—वज्रजंघभवमे उसकी जो श्रीमती नामकी

§ ८६) इहैव किल सुरलोकनिकाशे देशे शार्दूलचरश्चित्राङ्गददेवः स्वर्गात् प्रच्युत्य विभीषणनृपालस्य प्रियदत्ताया वरदत्तनामसूनुरजायत । मणिकुण्डली चानन्तमतिनन्दिषेणयो राजदम्पत्योर्वरसेनसमाह्वय पुत्रो बभूव । मनोहरश्चन्द्रमतिरतिषेणनाम्नो राजजायापत्योश्चित्राङ्गदः पुत्रो बभूव । मनोरथोऽपि चित्रमालिनीप्रभञ्जनयो. क्षत्रियभार्यापत्योः प्रशान्तमदनो नाम नन्दनोऽजायत ।

§ ८७) तदनु चक्रधरेणाष्टादशसहस्रनृपपरिवृतपार्श्वभागेन सममेतेषु विमलवाहाख्य जिनमाश्रित्य प्रव्रज्यामास्थितेषु, सुविधिभूपालस्तु पुत्रस्नेहेन गार्हस्थ्य त्यक्तुमक्षमस्तत्क्षणमुत्कृष्टोपासकस्थाने दुश्चर तपस्तप्त्वा, प्राणान्ते जैनी दोक्षामासाद्य सम्यगाराधितमोक्षमार्गं समाधिना त्यक्ततनुरच्युतेन्द्रो बभूव ।

§ ८८) केशवश्च परित्यक्तकृत्स्नबाह्येतरोपधि' ।
प्राप्तो जैनेश्वरी दीक्षा प्रतीन्द्रोऽभवदच्युते ॥४७॥

§ ८९) पूर्वोक्ता वरदत्ताद्या पुण्यात्पार्थिवनन्दन ।
तदानी समजायन्त तत्र सामानिका. सुराः ॥४८॥

प्रीति' प्रेम आसीत् ॥४६॥ § ८६) इहैवेति—मणिकुण्डली सूकरार्यचर , मनोहरः वानरार्यचर , मनोरथो नकुलार्यचर । शेष सुगमम् । § ८७) तदन्विति—तदनु तदनन्तर अष्टादशसहस्र नृपा इत्यष्टादशसहस्रनृपास्तै परिवृत पार्श्वभागो यस्य तेन चक्रधरेण अभयघोषेण सम सार्धम् एतेपु पूर्वोक्तेषु सर्वेपु विमलवाहाख्य विमलवाहनामधेय जिन तीर्थकरम् आश्रित्य प्रव्रज्या दोक्षाम् आस्थितेपु सत्सु, सुविधिभूपालस्तु श्रीधरामरजीवस्तु पुत्रस्नेहेन केशवसुतप्रीत्या गार्हस्थ्य गृहस्थभाव त्यक्तुम् अक्षमोऽसमर्थ सन्, तत्क्षण तत्कालम् उत्कृष्टोपासकस्थाने एकादशप्रतिमाया दुश्चर कठिन तपोऽनशनादिक तप्त्वा प्राणान्ते जीवितान्ते जैनी दैगम्बरी दीक्षा प्रव्रज्याम् आसाद्य प्राप्य सम्यग् यथा स्यात्तथा आराधितो मोक्षमार्गो येन स , समाधिना सन्यासमरणेन त्यक्ततनुस्त्यक्तशरीर सन् अच्युतेन्द्र षोडशस्वर्गाधिपति बभूव । § ८) केशवश्चेति—केशवश्च सुविधिपुत्रश्च परित्यक्ता निर्मुक्ता कृत्स्ना सपूर्णा बाह्येतरोपधयो बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहा येन तथाभूत जैनेश्वरी जैनेन्द्री दीक्षा प्रव्रज्या प्राप्त सन् अच्युते षोडशस्वर्गे प्रतीन्द्रो बभूव ॥४७॥ § ८९) पूर्वोक्ता इति—पूर्वोक्ता पूर्वकथिता वरदत्ताद्या वरदत्तप्रभृतय पार्थिवनन्दना राजपुत्रा पुण्यात् तदानी तस्मिन्काले सामानिका सामा-

---

वल्लभा थी उसके पुत्र होने पर राजाकी उसपर बहुत भारी प्रीति हुई ॥४६॥ § ८६) इहैवेति—स्वर्गकी तुलना करनेवाले इसी देशमे शार्दूलका जीव चित्रांगददेव स्वर्गसे च्युत होकर विभीषण राजाकी प्रियदत्ता नामक स्त्रीमें वरदत्त नामका पुत्र हुआ। सूकरार्यका जीव मणिकुण्डली देव अनन्तमति और नन्दिषेण राजदम्पतिके वरसेन नामका पुत्र हुआ। वानरार्यका जीव मनोहरदेव चन्द्रमति और रतिषेण राजदम्पतिके चित्रांगद नामका पुत्र हुआ। और नकुलार्यका जीव मनोरथ भी चित्रमालिनी तथा प्रभञ्जन राजदम्पतिके प्रशान्त मदन नामका पुत्र हुआ । § ८७) तदन्विति—तदनन्तर अठारह हजार राजाओंसे जिनका समीपवर्ती प्रदेश घिरा हुआ था ऐसे अभयघोष चक्रवर्तीके साथ इन सबने विमलवाह नामक जिनराजके पास जाकर दीक्षा ले ली परन्तु सुविधिराजा पुत्रके स्नेहसे गृहस्थ दशाका त्याग करनेमे असमर्थ रहा अतः उस समय उत्कृष्ट श्रावकके पदमे रह कर कठिन तपश्चरण करता रहा। अन्तमे जैनी दीक्षा प्राप्तकर अच्छी तरह मोक्षमार्गकी आराधना करता हुआ मरकर अच्युतेन्द्र हुआ। § ८८) केशवश्चेति—जिसने समस्त बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रहका परि-

§ ९०) राकाकोकरिपुप्रतीतवदनो राजीवसल्लोचनः
श्रीमानच्युतवासव सुरभिलं मन्दारमाल्यं वहन् ।
रेजे भूषणरत्नकान्तितटिनीखेलन्मरालस्फुर-
द्देहः काञ्चनशैलशृङ्गतुलितावंसौ दधत्सुन्दरः ॥४९॥

§ ९१) यस्य च समदया गजघटया तुलिता चित्तवृत्तिः । सदाभया तनुलतया सदृशी सामानिकपरिषत् । अतिशोभनया सपदा समाना देवीसंततिः । अतिमृदुलया वचोधारया समिता सुरसुन्दरीजनगानकला । शोभितसुवर्णसरोरुहया करकान्त्या तुल्या सप्तानीकपद्धति । कलित-

---

निकपदभाज सुरा देवा समजायन्त बभूवु ॥४८॥ § ९०) राकेति—राकायाः पौर्णमास्या कोकरिपुश्चन्द्रस्तद्वत्प्रतीत प्रसिद्ध वदन मुख यस्य तथाभूत , राजीवे कमले इव सल्लोचने यस्य तथाभूत , श्रीमान् लक्ष्मीमान् सुरभिल सुगन्धिमन्दारमाल्य कल्पवृक्षकुसुमस्रजं वहन् दधत्, भूषणरत्नानामाभरणमणीना कान्तिरेव तटिनी तरङ्गिणी तस्या खेलन्मराल इव क्रीडद्धस इव स्फुरन् शोभमानो देहो यस्य तथाभूत , काञ्चनशैलशृङ्गतुलितौ सुमेरुगिरिकूटसनिभौ असौ भुजशिरसी दधत् सुन्दरो रमणीय अच्युतवासवोऽच्युतेन्द्रो रेजे शुशुभे । उपमालकार । शार्दूलविक्रीडितछन्द ॥४९॥ § ९१) यस्येति—यस्याच्युतेन्द्रस्य चित्तवृत्तिर्मनोवृत्ति गजघटया करिपङ्क्त्या तुलिता सदृशी, उभयो सादृश्यमाह—समदयेति—समा दया यस्या तथाभूता समदया समकरुणा चित्तवृत्ति गजघटापक्षे मदेन सहिता समदा तया दानसहितया । यस्य सामानिकपरिषद् सामानिकदेवसभा तनुलतया शरीरवल्ल्या सदृशी सनिभा, उभयो सादृश्यमाह—सदाभयेति सदा सर्वदा अभया निर्भया सामानिकपरिषद् तनुलतापक्षे सती प्रशस्ता आभा कान्तिर्यस्या सा सदाभा तया । यस्य देवीसंतति सपदा सपत्या समाना सदृशी, उभयो सादृश्यमाह—अतिशोभनयेति—अतिशोभो नयो नीतिर्यस्या सा देवीसंतति सपत्पक्षे अतिशय शोभन यस्या सा अतिशोभना तया । यस्य सुरसुन्दरीजनगानकला सुरसुन्दरीजनाना देवीना गानकला सगीतवैदग्धी वचोधारया वचनपङ्क्त्या समिता सनिभा उभयो सादृश्यमाह—अतिमृदुलया अतिशयेन मृदु कोमलो लयो यस्या तथाभूता गानकला वचोधारापक्षे-तिशयेन मृदुला तया । यस्य सप्तानीकपद्धति

त्याग कर दिया था ऐसा केशव भी दैगम्बरी दीक्षाको धारण कर अच्युत स्वर्गमे प्रतीन्द्र हुआ ॥४७॥ § ८९) पूर्वोक्ता इति—पहले कहे हुए वरदत्त आदि राजपुत्र पुण्यके प्रभावसे उस समय उसी अच्युत स्वर्गमे सामानिक देव हुए ॥४८॥ § ९०) राकेति—जिनका मुख पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान था, उत्तम नेत्र कमलके समान थे, जो लक्ष्मीसे युक्त था तथा सुगन्धित कल्पवृक्षके फूलोंकी मालाको धारण करता था, जिसका शरीर आभूषण सम्बन्धी रत्नोंकी कान्तिरूपी नदीमे खेलते हुए हंसके समान शोभायमान था, जो सुमेरुपर्वतके शिखरके समान ऊँचे कन्धोंको धारण कर रहा था तथा स्वय अत्यन्त सुन्दर था ऐसा अच्युतेन्द्र सुशोभित हो रहा था ॥४९॥ § ९१) यस्येति—जिस अच्युतेन्द्रकी चित्तवृत्ति, गजघटा—हाथियोंकी पङ्क्तिके समान थी क्योंकि जिसप्रकार चित्तवृत्ति समदया—अनुरूपदयासे सहित थी उसी प्रकार गजघटा भी समदया—मदसे सहित थी। जिसकी सामानिक जातिके देवोंकी सभा तनुलता—शरीररूपी लताके समान थी क्योंकि जिसप्रकार सामानिक देवोंकी सभा सदाभया—सदा निर्भय रहती थी उसीप्रकार तनुलता भी सदाभया—समीचीन आभासे सहित थी। जिसकी देवीसन्तति—देवियोंकी श्रेणी सपदाके समान थी क्योंकि जिसप्रकार देवीसन्तति अतिशोभनया—अत्यन्त शोभायमान नयोंसे सहित थी उसीप्रकार सपदा भी अतिशोभनया—अत्यन्त शोभायमान थी जिसके सुरसुन्दरीजनोंकी गानकला वचनधाराके समान थी क्योंकि जिसप्रकार सुरसुन्दरीजनोंकी गानकला अतिमृदुलया—अत्यन्त कोमल लयसे सहित थी

मनोजया तारुण्यलक्ष्म्या निकाशा धैर्यवृत्तिः। सुगन्धिवायुविशोभितरया कल्पकवनवीथिकया सगन्धा सैन्धवपरम्परा।

§ ९२) किंच यद्देवीकुचमण्डलेषु मकरीगणश्चक्रभासुरता सरसता चेति युक्तमेव यतोऽत्र सरश्चकासामास किंतु कुचभरो नीरसहितो नासीदित्यद्भुतमेव।

सप्तविधसैन्यसंतति करकान्त्या हस्तदोप्त्या तुल्या सदृशी, उभयो. सादृश्यमाह—शोभितसुवर्णसरोरुहयेति—शोभिता सुवर्णसरा सुवर्णहारा येषा तथाभूता उरुहया उत्तुङ्गाश्वा यस्या तथाभूता सप्तानीकपद्धति करकान्तिपक्षे शोभित सुवर्णसरोरुह स्वर्णकमलं यस्या तया। यस्य धैर्यवृत्ति गाम्भीर्यप्रकृति तारुण्यलक्ष्म्या यौवनश्रिया निकाशा सदृशी उभयो सादृश्यमाह—कलितमनोजयेति—कलित कृतो मनसो मानसस्य जयो वशीकारो यया तथाभूता धैर्यवृत्ति तारुण्यलक्ष्मीपक्षे कलितो धृतो मनोज कामो यया तया। यस्य सैन्धवपरम्परा हयश्रेणि कल्पकवनवीथिकया कल्पतरुवनपङ्क्त्या सगन्धा सदृशी, उभयो सादृश्यमाह—सुगन्धिवायुविशोभितरयेति—सुगन्धिर्यो वायुस्तद्वत् विशोभितो रयो वेगो यस्यास्तथाभूता सैन्धवपरम्परा कल्पकवनवीथिकापक्षे सुगन्धिगन्धवायुना अतिशयेन विशोभिनीति सुगन्धिगन्धवायुविशोभितरा तया। विभक्तिश्लेषोत्थापितोपमालंकार. । § ९२) किंचेति—तस्याच्युतेन्द्रस्यान्यदपि किंचिद्वर्ण्यते—यद्देवीना यदीयसुरीणा कुचमण्डलेषु स्तनमण्डलेषु मकरीगणो मकरस्त्रीसमूह, चक्रभासुरता चक्रैश्चक्रवाकपक्षिभिर्भासुरता शोभा सरसता-सजलता चासीदिति युक्तमेव यतो यस्मात् कारणात् अत्र देवीकुचमण्डलेषु सर कासार चकासामास शुशुभे यत्र जलाशयस्तत्र जलजन्तूना जलपक्षिणा जलाना च सद्भाव उचित एव किं तु कुचभर स्तनसमूहो नीरसहितो जलसहितो नासीद् इत्यद्भुतमेव विस्मयोपेतमेव। पक्षे व्याख्यानम्—यद्देवीकुचमण्डलेषु मकरीगणः काश्मीरद्रवेण रचितरचनाविशेषसमूह, चक्रभासुरता—चक्र इव चक्रवाकपक्षिवत् भासुरता शोभमानता, सरसता श्रृङ्गारादिरसयुक्तता चासीदिति युक्तमेव यतोऽत्र सरो हारः चकासामास। किं तु कुचभरो नीर-

---

और वचनधारा अतिमृदुलया—अत्यन्त कोमल थी। जिसकी सात प्रकारकी सेनाकी सन्तति करकान्ति—हाथकी कान्तिके समान थी क्योंकि जिस प्रकार सात प्रकारकी सेनाकी सन्तति शोभितसुवर्णसरोरुहया—शोभायमान सुवर्णके हारोंसे युक्त बड़े-बड़े घोड़ोंसे सहित थी उसी प्रकार करकान्ति भी शोभितसुवर्णसरोरुहया—शोभायमान स्वर्णकमलोंसे सहित थी। जिसकी धैर्यवृत्ति—धीरता तारुण्यलक्ष्मीके समान थी क्योंकि जिस प्रकार धैर्यवृत्ति कलितमनोजया—मनकी विजयसे सहित थी उसी प्रकार तारुण्यलक्ष्मी कलितमनोजया—कामसे सहित थी। जिसके घोड़ोंकी परम्परा कल्पवृक्षोंकी वनवीथीके समान थी क्योंकि जिसप्रकार घोड़ोंकी परम्परा सुगन्धिवायुविशोभितरया—सुगन्धित वायुके समान शोभित वेगसे सहित थी उसी प्रकार कल्पक वृक्षोंकी वनवीथी भी सुगन्धिवायुविशोभितरया—सुगन्धित वायुसे अत्यन्त विशोभित थी। § ९२) किंचेति—जिस अच्युतेन्द्रकी देवांगनाओंके स्तनोंपर मकरीगण—मगरकी स्त्रियोंका समूह, चक्रभासुरता—चक्रवाकपक्षियोंकी शोभा, और सरसता—सजलता थी यह उचित ही था क्योंकि यहाँ सर—सरोवर शोभायमान था, जहाँ सरोवर रहता है वहाँ मगर आदि जल जन्तुओंके समूह, चक्रवाकी शोभा तथा जलका सद्भाव रहता ही है किन्तु स्तनोंका समूह नीरसहित—जलसे सहित नहीं था यह आश्चर्यकी ही बात थी। जहाँ सरोवर हो वहाँ जल न हो यह विरुद्ध बात है (परिहार पक्षमें जिस अच्युतेन्द्रकी देवियोंके स्तनोंपर मकरीगण—केशर, कस्तूरी आदिके द्रवसे लिखी हुई विशिष्ट रचना चक्रभासुरता—चक्रवाक पक्षीके समान शोभा तथा सरसता—श्रृंगारादि रससे सहितपना था यह योग्य ही था क्योंकि उनपर सर—हार शोभायमान था। जहाँ हार शोभा दे रहा था वहाँ मकरीकी रचना, चकवा जैसी गोल आकृति तथा सरसता—कामोत्तेजक होनेसे श्रृंगा-

§ ९३) त्र्यरत्निप्रमितोत्सेधदिव्यदेहेन राजत ।
मानसोऽस्य प्रवीचारो विष्वाणोऽपि तथाभवत् ॥५०॥

§ ९४) द्वाविंशतिसहस्रैश्च समाना सकृदाहरेत् ।
तथैकादशभिर्मासैः सकृदुच्छ्वसितं भजेत् ॥५१॥

§ ९५) सचारिणीभिरिव हेमलताभिराभि-
र्देवीभिरेष ललिताकृतिरच्युतेन्द्र ।
चिक्रीड दिव्यसरसीषु कुमुद्वतीषु
मन्दारसुन्दरवनेषु च मन्दरेषु ॥५२॥

§ ९६) ततश्च तस्य स्वर्गप्रच्युतिलिङ्गेषु देवीजनशोकाग्निविस्फुलिङ्गेष्विव प्रकटीभवत्सु, धीरधीरमना सोऽयमच्युतेन्द्रः षण्मासानर्हत्परमेष्ठिसपर्यामत्याश्चर्यां विधाय त्रिदिवात्प्रच्युत्य,

---

सहित' रसान्निष्क्रान्तो नीरसो जरन्नैयायिक इव नीरसस्तस्य हितो हितकरो नासीदिति न किमप्यद्भुतम् । श्लेषविरोधाभासौ । § ९३) त्र्यरत्नीति—त्र्यरत्निप्रमितो हस्तत्रयप्रमित उत्सेध उच्छ्रायो यस्य तथाभूतो यो दिव्यदेहो वैक्रियिककायस्तेन 'सरत्नि स्यादरत्निश्च निष्कनिष्ठेन मुष्टिना' इति 'नगराद्यारोह उच्छ्राय उत्सेधश्चोच्छ्रयश्च स' इति चामर । राजत शोभमानस्य अस्याच्युतेन्द्रस्य प्रवीचारो मैथुन मानसो मनोविषयो विष्वाण आहारोऽपि तथा मानस इत्यर्थ अभवत् । प्रवीचारविषये देवानां नियमोऽयम् 'कायप्रवीचारा आ-ऐशानात्' 'शेषा स्पर्शरूपशब्दमन प्रवीचारा' 'परेऽप्रवीचारा' इति तत्त्वार्थसूत्रे । आहारविषयेऽप्येव नियमोऽस्ति—येषा देवाना यावत्सागरप्रमितमायुर्भवति तेषा तावत्सहस्रवर्षानन्तरमाहारस्येच्छा भवति सा च कण्ठे क्षरतामृतेन निवर्त्यते । यावत्सागरप्रमितमायुर्भवति तावत्पक्षैश्च देवाना श्वासोच्छ्वासो भवति ॥५०॥ § ९४ द्वाविंशतीति—समाना वर्षाणा द्वाविंशतिसहस्रैश्च सकृदेकवारम् आहरेत् आहारग्रहण कुर्यात् । तथा एकादशभिर्मासै सकृदेकवारम् उच्छ्वसित श्वासग्रहण भजेत् प्राप्नुयात् पूर्वोक्तोऽसावच्युतेन्द्र इति कर्तृसबन्धो योज्य ॥५१॥ § ९५) संचारिणीभिरिति—ललिता मनोहारिणी आकृतिर्यस्य तथाभूत , एषोऽयम् अच्युतेन्द्र' सचारिणीभि सचरणशीलाभि हेमलताभिरिव सुवर्णवल्लीभिरिव आभिर्देवीभि सह कुमुद्वतीषु कुमुदयुक्तासु दिव्यसरसीषु कमनीयकासारेषु मन्दाराणा कल्पवृक्षाणा सुन्दराणि वनानि येषु तथाभूतेषु मन्दरेषु च सुमेरुपर्वतेषु च चिक्रीड क्रीडति स्म । वसन्ततिलकाछन्द ॥५२॥ § ९६) ततश्चेति—देवीजनस्य शोकाग्नेर्विरहजनिष्यमाणशोकानलस्य विस्फुलिङ्गेषु कणेष्विव तस्याच्युतेन्द्रस्य स्वर्गात्त्रिदिवात्प्रच्युते प्रच्यवनस्य लिङ्गेषु चिह्नेषु प्रकटीभवत्सु सत्सु धीरधीरमतिशयधीर मनो यस्य तथाभूत सोऽय पूर्वोक्त अच्युतेन्द्र षण्मासान् अत्यन्तसयोगे द्वितीया अनवरत षण्मासपर्यन्तमित्यर्थ अत्याश्चर्यां सातिशया सपर्यां पूजा विधाय त्रिदिवात्

रादिरसका सद्भाव उचित ही था परन्तु स्तनोंका समूह नीरसहित—नीरस मनुष्योंके लिए हितकारी नहीं था) § ९३) त्र्यरत्नीति—तीन हाथ प्रमाण ऊँचे वैक्रियिक शरीरसे सुशोभित इस अच्युतेन्द्रका मैथुन मानसिक था तथा आहार भी मैथुनके समान मानसिक था अर्थात् मनमें इच्छा होते ही तृप्ति हो जाती थी ॥५०॥ ९४) § द्वाविंशतीति—वह अच्युतेन्द्र बाईस हजार वर्षोंमें एक बार आहार करता था तथा ग्यारह माहमें एक बार श्वासोच्छ्वास ग्रहण करता था ॥५१॥ § ९५) संचारिणीभिरिति—सुन्दर शरीरका धारक यह अच्युतेन्द्र चलती फिरती स्वर्णलताओंके समान इन देवियोंके साथ कुमुदोंसे युक्त सुन्दर सरोवरोंमें तथा कल्पवृक्षोंके सुन्दर वनोंसे सहित सुमेरु पर्वतों पर क्रीड़ा करता था ॥५२॥ § ९६) ततश्चेति—तदनन्तर देवीजनोंके शोकरूपी अग्निके तिलगोंके समान स्वर्गसे च्युत होनेके चिह्न प्रकट होने पर अत्यन्त धीर मनका धारक वह अच्युतेन्द्र छह माह तक अर्हन्तपरमेष्ठीकी अतिशय

जम्बूद्वीपप्राग्विदेहविशोभितपुष्कलावतीविषयमण्डितपुण्डरीकिणीनगर्यां श्रीकान्तावज्रसेनयो राजदम्पत्योर्वज्रनाभिनामा पुत्रः समजायत ।

§ ९७) तयोरेव सुता जाता वरदत्तादय क्रमात् ।
विजयो वैजयन्तश्च जयन्तोऽप्यपराजित ॥५३॥

§ ९८) अथ वज्रजङ्घभवे तस्य ये मन्त्रिपुरोहितसेनाधिपश्रेष्ठिनो मतिवरानन्दाकम्पनघनमित्रनामधेया अधोग्रैवेयकेष्वहमिन्द्रा जातास्ते किल तत. प्रच्युत्य सुबाहुमहाबाहुपीठमहापीठाह्वयास्तयोरेव तनयाः समजायन्त ।

§ ९९) नगर्यां केशवोऽत्रैव धनदेवाह्वयोऽभवत् ।
कुवेरदत्तवणिजोऽनन्तमत्याश्च नन्दनः ॥५४॥

§ १००) निसर्गसौन्दर्यनिधेरमुष्य तारुण्यमासीत्पुनरुक्तिपात्रम् ।
विद्याविहारालयवज्रनाभेर्हेम्नो यथा वर्णविशेषक्लृप्तिः ॥५५॥

§ १०१) लक्ष्म्या साकं विपुलमभवत्तस्य वक्षस्तदानी
सत्रा शत्रुक्षितिपविभवैर्मध्यदेशः कृशोऽभूत् ।
कीर्त्या सार्धं जघनवलयं विस्तृतत्व प्रपेदे
तेजोलक्ष्म्या सह गुणनिधेरुद्गता रोमराजिः ॥५६॥

स्वर्गात् प्रच्युत्य जम्बूद्वीपस्य प्राग्विदेहे विशोभितो य. पुष्कलावतीविषयः पुष्कलावतीदेशस्तस्मिन् मण्डिता शोभिता या पुण्डरीकिणीनगरी तस्या श्रीकान्तावज्रसेनयोस्तन्नाम्नो राजदम्पत्यो वज्रनाभिनामा पुत्र समजायत समुत्पन्न. । § ९७) तयोरिति—वरदत्त. शार्दूलार्यचर , वरसेन सूकरार्यचर , चित्राङ्गदो वानरार्यचर प्रशान्तमदनो नकुलार्यचर एते क्रमात् तयोरेव श्रीकान्तावज्रसेनयोरेव विजयो वैजयन्तो जयन्तोऽपराजितश्चेतिनामान पुत्रा अजायन्त ॥५३॥ § ९८) अथेति—स्पष्टम् । § ९९) नगर्यामिति—स्पष्टम् ॥५४॥ § १००) निसर्गेति—स्पष्टम् ॥५५॥ § १०१) लक्ष्म्येति—तदानी तारुण्यकाले गुणनिधे गुणभाण्डारस्य तस्य वज्रनाभे वक्ष उर'स्थल लक्ष्म्या श्रिया साक सह विपुल विस्तीर्णम् अभवत्, मध्यदेश. कटिप्रदेश शत्रुक्षितिपाना प्रत्यर्थिपार्थिवाना विभवैरैश्वर्यै. सत्रा सह कृश क्षीणोऽभूद् बभूव, जघनवलय नितम्बमण्डलं

आश्चर्यपूर्ण पूजा करता रहा। तत्पश्चात् स्वर्गसे च्युत होकर जम्बूद्वीपके पूर्वविदेहमे सुशोभित पुष्कलावती देश सम्बन्धी पुण्डरीकिणी नगरीमे श्रीकान्ता और वज्रसेन नामक राजदम्पतीके वज्रनाभि नामका पुत्र हुआ। § ९७ तयोरिति—वरदत्त आदिक क्रमसे उन्हीं राजदम्पतिके विजय वैजयन्त जयन्त और अपराजित नामक पुत्र हुए ॥५३॥ § ९८ अथेति—तदनन्तर वज्रजघभवमें उसके जो मतिवर, आनन्द, धनमित्र और अकम्पन नामके मन्त्री, पुरोहित, सेनापति और राजश्रेष्ठी थे तथा अधोग्रैवेयकोंमें अहमिन्द्र हुए थे वे वहाँसे च्युत होकर उन्हीं राजदम्पतिके सुबाहु, महाबाहु, पीठ और महापीठ नामके पुत्र हुए। § ९९) नगर्यामिति—केशव, इसी नगरीमे कुवेरदत्त वणिक् और उसकी अनन्तमति स्त्रीसे धनदेव नामका पुत्र हुआ ॥५४॥ § १००) निसर्गेति—स्वाभाविक सौन्दर्य की निधि तथा विद्याओंके क्रीडाभवन स्वरूप इस वज्रनाभिका यौवन सुवर्णके ऊपर रंग विशेषकी रचनाके समान पुनरुक्तिका पात्र था ॥५५॥ § १०१) लक्ष्मीति—उस यौवनके समय गुणोंके भाण्डार स्वरूप उस वज्रनाभिका वक्षःस्थल लक्ष्मीके साथ विस्तृत हो गया, मध्यभाग शत्रुराजाओंके वैभवोंके साथ कृश हो गया, नितम्बमण्डल कीर्तिके साथ विस्तारको प्राप्त हो गया और रोमराजि

§ १०२) तदनु वज्रसेनमहाराजोऽपि तस्मिन्नेव तनये राज्यलक्ष्मीं नियोज्य लौकान्तिकामरैः प्रबोधितो विहितनिष्क्रमणमतिः कलितसुरवरापचितिः सहस्रप्रमितैर्नराधिपतिभिः सह परिनिष्क्रम्य तपोलक्ष्म्या समालिङ्गितदेहोऽपि मुक्तिलक्ष्मीं प्रमोदिनीं चक्रे।

§ १०३) जयागारे चक्रे विजितरविबिम्बे रुचिभरैः

समुद्भूते पुण्यात् क्षितिपतिरसौ कौतुकवशात्।

विधायैतत्पूजां विलसितषडङ्गेन महता

बलेनाथ श्रीमान् स निखिलदिगन्तानि जितवान् ॥५७॥

§ १०४) धनदेवोऽपि तस्यासीद्धरणीशस्य चक्रिणः।

रत्नं तद्गृहपत्याख्यं निधौ रत्ने च योजितम् ॥५८॥

§ १०५) यस्य च महीरमणस्यारिचक्रं पाणिलालितं खण्डितं च। सुमनोमाला कण्ठे पार्श्वे

कीर्त्या यशसा सार्धं विस्तृतत्वं विपुलत्वं प्रपेदे लेभे, रोमराजिर्लोमपङ्क्तिः तेजोलक्ष्म्या तेजःश्रिया सह उद्गता प्रकटिता। सहोक्तिरलंकारः। मन्दाक्रान्ताछन्दः ॥५६॥ § १०२) तदन्विति—तदनु तदनन्तरं वज्रसेनमहाराजोऽपि वज्रनाभिजनकोऽपि तस्मिन्नेव तनये वज्रनाभौ पुत्रे राज्यलक्ष्मीं राज्यश्रियं नियोज्य स्थापयित्वा लौकान्तिकामरैर्ब्रह्मलोकान्तनिवासिभिर्देवर्षिभिः प्रबोधितः प्रबोधं प्रापितः विहिता कृता निष्क्रमणे प्रव्रजने मतिर्येन सः, कलिता कृता सुरवरैः शक्रैरपचितिः पूजा यस्य तथाभूतः सन् सहस्रप्रमितैर्नराधिपतिभिः सह परिनिष्क्रम्य परिव्रज्य तपोलक्ष्म्या तपःश्रिया समालिङ्गितदेहोऽपि समाश्लिष्टशरीरोऽपि सन् मुक्तिलक्ष्मीं प्रमोदिनीं प्रहर्षिणीं चक्रे विदधे। § १०३) जयागार इति—असौ क्षितिपतिर्वज्रनाभिः पुण्यात् सुकृतात् रुचिभरैः किरणकलापैः विजितं पराभूतं रविबिम्बं सूर्यमण्डलं येन तथाभूते चक्रे चक्ररत्ने जयागारे शस्त्रशालायां समुद्भूते प्रकटिते सति स श्रीमान् वज्रनाभिः कौतुकवशात् कुतूहलवशात् एतत्पूजां चक्ररत्नापचितिं विधाय कृत्वा विलसितानि शोभितानि षडङ्गानि यस्य तेन महता विशालेन बलेन सैन्येन निखिलदिगन्तानि सकलकाष्ठान्तानि जितवान् जिगाय। शिखरिणीछन्दः ॥५७॥ § १०४) धनदेवोऽपीति—धनदेवोऽपि केशवजीवोऽपि तस्य पूर्वोक्तस्य धरणीशस्य पृथिवीपतेः चक्रिणश्चक्रवर्तिनो वज्रनाभेः तत् प्रसिद्धं गृहपत्याख्यं गृहपतिनाम रत्नम् अभवत् 'जातौ जातौ यदुत्कृष्टं तद्रत्नमिहोच्यते' इति रत्नलक्षणम्। यत् निधौ रत्ने च योजितं समेलितं बभूव ॥५८॥ § १०५) यस्येति—यस्य महीरमणस्य वज्रनाभेः अरिचक्रं पाणिलालितं खण्डितं च पूर्वत्रपक्षे अराश्चक्रदण्डा विद्यन्ते यस्मिन् तत् अरि तच्च तत् चक्रं चेति अरिचक्रं अरयुक्तं चक्ररत्नं करलालितं परत्र पक्षे अरीणां शत्रूणां चक्रं समूहः इत्यरिचक्रं खण्डितं नष्टं च। सुमनोमाला यस्य कण्ठे पार्श्वे च कण्ठपक्षे सुमनसां

तेजश्रीके साथ प्रकट हो गयी ॥५६॥ § १०२) तदन्विति—तदनन्तर उसी वज्रनाभिपुत्रपर राज्यलक्ष्मीको नियुक्त कर लौकान्तिक देवोंके द्वारा प्रबोधको प्राप्त होते हुए जिन्होंने दीक्षा लेनेकी बुद्धि की थी तथा इन्द्रने जिनकी पूजा की थी ऐसे वज्रसेन महाराजने भी एक हजार राजाओंके साथ दीक्षा ले ली और तपोलक्ष्मीके द्वारा आलिंगित शरीर होनेपर भी मुक्तिरूपी लक्ष्मीको हर्षित किया ॥ § १०३) जयागार इति—राजा वज्रनाभिने पुण्योदयसे आयुधशालामें किरणोंके समूहसे सूर्यबिम्बको जीतनेवाले चक्ररत्नके प्रकट होनेपर कुतूहलवश उसकी पूजा की। तदनन्तर विशिष्ट लक्ष्मीसे युक्त हो छह अंगोंसे सुशोभित बड़ी भारी सेनाके द्वारा उसने समस्त दिशाओंके अन्तको जीता ॥५७॥ § १०४) धनदेवोऽपीति—धनदेव भी उसी चक्रवर्तीका गृहपति नामका वह रत्न हुआ जो कि निधि और रत्न दोनोंमें शामिल था ॥५८॥ § १०५) यस्य चेति—अरिचक्र जिस राजाके हाथमें धारण किया गया था तथा खण्डित भी किया गया था (हाथमें अरोंसे युक्त चक्ररत्न धारण किया गया था और शत्रुओंका समूह

च । यस्य सुराः पौरवर्गा विधेयाश्च । यस्य वचनक्रम इव सत्यो, भुज इव सालसदृशो वनिताः । यस्य मनोजवन्ति तुरङ्गसमूहा देवीमण्डलानि च । वनराजीवन्ति वनितादृशः क्रीडास्थानानि च । स्त्रीणां भ्रमन्ति नाभयो न बुधा । उत्सर्पन्ति रोमराजयो न शत्रवः । दरन्ति कण्ठा न पौराः । गदन्ति वियोगा न दुर्भाषा जना. । हरन्ति हासा न धनानि चौरा ।

§ १०६) आलोक्य दिग्जये य शात्रवसैन्ये निषादियूथस्य ।
अङ्कुशमगलद्धस्तात्कुशमक्ष्णो शं तथैव मनसोऽपि ॥५९॥

पुष्पाणा माला सुमनोमाला पार्श्वपक्षे सुमनसा विदुषा माला सुमनोमाला विद्वत्समूह । यस्य पौरवर्गो नागरिकसमूहो विधेयाश्च सेवकाश्च सुरा पौरवर्गपक्षे सुष्ठु रा धन यस्य स सुरा, विधेयपक्षे सुरा देवा' इति वचनश्लेष । यस्य वनिताः स्त्रियो वचनक्रम इव सत्य प्रतिव्रता सतीशब्दस्य प्रथमाबहुवचने रूपं वचनक्रमपक्षे सत्यस्तथ्यः सत्यशब्दस्य प्रथमैकवचने रूपं, भुज इव बाहुरिव सालसदृश. सालसे सतन्द्रे दृशौ नयने यासा ता. भुजपक्षे दीर्घत्वात् सालेन सर्जवृक्षेण सदृश' संनिभ' । यस्य च वप्यनाभे' तुरगसमूहा अश्वसमूहा देवीमण्डलानि च वनितानि कुरम्याणि च मनोजवन्ति मनसो जवो वेगो मनोजव' स इवाचरन्तीति मनोजवन्ति देवीमण्डलपक्षे मनोजो मदनोऽस्ति येषा तानि मनोजवन्ति । वनितादृश' स्त्रीनयनानि क्रीडास्थानानि च केलिस्थानानि च वनराजीवन्ति, वनितादृक्पक्षे वनराजीवानीव जलस्थितकमलानीवाचरन्तीति वनराजीवन्ति क्रीडास्थानपक्षे वनराज्यो वनपङ्क्तयो विद्यन्ते येषु तानि । श्लेष' । यस्य स्त्रीणा नाभयः तुन्दयो भ्रमन्ति न बुधा विद्वास नाभिपक्षे भ्रमा आवर्ता इवाचरन्ति भ्रमन्ति बुधपक्षे भ्रमन्ति भ्रमयुक्ता भवन्ति । रोमराजयो लोमपङ्क्तय उत्सर्पन्ति न शत्रवोऽरय', रोमराजिपक्षे उत्कृष्टा. सर्पा उत्सर्पास्तद्वदाचरन्ति उत्सर्पन्ति शत्रुपक्षे उत्सर्पन्ति अभिद्रवन्ति । कण्ठा धमनीधमा दरन्ति न पौरा. पुरे भवा पौरा नागरा दरन्ति, कण्ठपक्षे दराः शङ्खा इवाचरन्तीति दरन्ति, पौरपक्षे दरन्ति भययुक्ता भवन्ति । वियोगा विरहा । गदन्ति गदा रोगा इवाचरन्तीति गदन्ति न जना लोका दुर्भाषा गदन्ति कथयन्ति । हासा हसितानि हरन्ति न धनानि चौरा. हासपक्षे हरा शिवा इवाचरन्ति हरस्याट्टहास प्रसिद्धोऽस्ति चौरास्तस्करा न हरन्ति न मुष्णन्ति । परिसंख्यालंकार श्लेषोत्थापित. । § १०६) आलोक्येति—दिग्जये काष्ठाविजयवेलायां य वप्यनाभिम् आलोक्य दृष्ट्वा

खण्डित किया गया था) सुमनोमाला जिसके कण्ठमें थी और पासमें भी थी (कण्ठमें फूलोंकी माला थी और पासमें विद्वानोंका समूह था) जिसके पौरवर्ग—नगर निवासी लोग सुराः—उत्तम धनसे सहित थे और विधेय—सेवक लोग भी सुराः—देव थे । जिसकी स्त्रियाँ वचनक्रमके समान सत्यः—पतिव्रताएँ (पक्षमें सत्य) थीं और भुजाके समान सालसदृश (अलसाये हुए) नेत्रोंसे सहित थीं (पक्षमें सागौनके वृक्षके समान लम्बी थीं) जिसके घोड़ोंके समूह मनोजवन्ति—मनके वेगके समान आचरण करते थे और देवियोंके मण्डल मनोजवन्ति—कामसे सहित थे । जिसकी स्त्रियोंके नेत्र वनराजीवन्ति—जलमें स्थित कमलके समान आचरण करते थे और जिसकी क्रीडाके स्थान वनराजीवन्ति—वनपङ्क्तियोंसे सहित थे । जिसकी स्त्रियोंकी नाभियाँ भ्रमन्ति—जलकी भँवरके समान आचरण करती थीं परन्तु विद्वान् लोग न भ्रमन्ति भ्रममें नहीं पड़ते थे । जिसकी रोमपङ्क्तियाँ उत्सर्पन्ति—उत्कृष्ट साँपके समान आचरण करती थीं परन्तु शत्रु न उत्सर्पन्ति—आगे नहीं बढ़ते थे । जिसके कण्ठ दरन्ति—शंखके समान आचरण करते थे परन्तु पुरवासी लोग न दरन्ति—भयभीत नहीं होते थे । जिसके वियोग गदन्ति—रोगके समान आचरण करते थे परन्तु मनुष्य दुर्भाषा न गदन्ति—नहीं बोलते थे । जिसके हास्य हरन्ति—शिवजीके अट्टहासके समान आचरण करते थे परन्तु चोर धनको न हरन्ति—न हरण करते थे । § १०६) आलोक्येति—दिग्विजयके समय जिस राजाको देख कर

§ १०७) आलक्ष्य यस्य वीर्यं युद्धारम्भे धुरि द्विपा हस्तात् ।
गलति स्म चन्द्रहासो हासोऽपि च तत्सतीमुखाम्भोजात् ॥६०॥

§ १०८) जयश्रिया यत्र वृते रणाग्रे विवाहशोभामरिभूमिपाल ।
लेभे तदानी रिपुसैन्यवर्गाश्चित्र चिर नन्दनसौख्यमापु ॥६१॥

§ १०९) असौजन्यनिपुणोऽपि सौजन्यनिपुण' । अपि च मर्त्येन्द्रदशायामप्यच्युतामर्त्येन्द्रो बभूवेति चित्रम् ।

शात्रवसैन्ये प्रत्यर्थिपृतनाया निषादिना हस्त्यारोहिणा यूथस्य समूहस्य हस्तात्करात् अङ्कुश सृणि अगलत् पपात, अक्ष्णोर्नयनयो कुश जलम् अश्रुनीरमिति यावत् अगलत् तथैव तेनैव प्रकारेण मनसो हृदयादपि श सुखम् अगलत् पपात । आर्याछन्द. ॥५९॥ § १०७) आलक्ष्येति—युद्धारम्भे समरारम्भे सति धुरि अग्रे यस्य वज्रनाभे वीर्यं पराक्रमम् आलक्ष्य दृष्ट्वा द्विषा शत्रूणा हस्तात् चन्द्रहास कृपाण गलति स्म पतितोऽभूत् तेषा सतीना पतिव्रतानारीणा मुखाम्भोज मुखकमल तस्मात् हासोऽपि च हसितमपि गलति स्म । शत्रवो हतास्तेन च तत्सतीनारीणा वैधव्याद् हास्यमपि विनष्टमिति भाव । आर्याछन्द ॥६०॥ § १०८) जयश्रियेति—तदानी तस्मिन्काले रणाग्रे युद्धाग्रे यत्र यस्मिन् वज्रनाभौ जयश्रिया विजयलक्ष्म्या वृते स्वीकृते सति अरिभूमिपाल. शत्रुनरेन्द्रो विवाहशोभा पाणिग्रहणश्रिय लेभे रिपुसैन्यवर्गा शत्रुसैनिकसमूहा चिर चिरकालपर्यन्त नन्दनसौख्य पुत्रसौख्यम् आपुर्लेभिरे इति चित्र, वरण कस्यचित् पाणिग्रहणमन्यस्य नन्दनोत्पत्तिश्चेतरस्येति चित्रतामूल, परिहारस्तु रणाग्रे यस्मिन् जयलक्ष्म्या वृते सति शत्रुराजो विगता विनष्टा या वाहशोभा वाहनश्रीस्ता विवाहशोभा लेभे वाहनरहितोऽभूदित्यर्थः । रिपुसैन्यवर्गाश्च मृत्वा स्वर्गं प्राप्य नन्दने स्वर्गस्य नन्दनवने सौख्य नन्दनसौख्यम् आपुर्लेभिरे इति । विरोधाभास । उपजातिछन्द । § १०९) असौजन्येति—सुजनस्य भाव सौजन्य न सौजन्यम् असौजन्य तस्मिन् निपुणोऽपि चतुरोऽपि दौर्जन्यदक्षोऽपि सौजन्यनिपुण सज्जनतानिपुण इति विरोधः य दौर्जन्यनिपुण स सौजन्यनिपुण कथ भवेदिति भाव । परिहारस्तु असौ एष वज्रनाभि जन्यनिपुणोऽपि युद्धप्रवीणोऽपि सौजन्यनिपुणो बभूव । अपि च किं च, मर्त्येन्द्रदशायामपि मनुजेन्द्रावस्थायामपि अच्युतामर्त्येन्द्र अच्युतस्वर्गदेवेन्द्रो बभूवेति चित्र यो मर्त्येन्द्र सोऽच्युतामर्त्येन्द्र कथ भवेदिति भाव । परिहारस्तु मर्त्येन्द्रदशायामपि अकारेण च्युतोऽमर्त्येन्द्र इत्यच्युतामर्त्येन्द्र

शत्रुओंकी सेनामे महावतोंके हाथसे अकुश गिर गया था, नेत्रोंसे अश्रुजल गिरने लगा था और मनसे सुख निकल गया था ॥५९॥ § १०७) आलक्ष्येति—युद्धके आरम्भमे आगे जिसके पराक्रमको देखकर शत्रुओंके हाथसे तलवार छूट जाती थी और उनकी पतिव्रता स्त्रियोंके मुखकमलसे हास भी छूट जाता था ॥६०॥ § १०८) जयश्रियेति—रणके अग्रभागमे विजयलक्ष्मीके द्वारा जिस वज्रनाभिके वरे जानेपर विवाहकी शोभा शत्रुराजाने प्राप्त की थी और चिरकाल तक नन्दनका सुख—पुत्रोत्पत्तिका आनन्द शत्रुके सैनिकोंने प्राप्त किया था यह आश्चर्यकी बात थी (परिहार पक्षमे वज्रनाभिकी जीत होनेपर शत्रुराजा वाहनरहित हो गये थे और उनके सैनिकोंके समूह युद्धमे मरकर स्वर्गके नन्दन वनमे सुखको प्राप्त हुए थे) ॥६१॥ § १०९) असाविति—वह वज्रनाभि असौजन्यनिपुणः—दुर्जनतामे निपुण होकर भी सौजन्यनिपुणः—सज्जनतामे निपुण था (परिहार पक्षमे युद्धमे निपुण होकर भी सज्जनतामे निपुण था) और मर्त्येन्द्रदशा—मनुजेन्द्र अवस्थामे भी अच्युतामर्त्येन्द्र अच्युतस्वर्गका अमर्त्येन्द्र—देवेन्द्र था यह आश्चर्यकी बात थी (परिहार पक्षमे अ-अकारसे रहित अच्युतामर्त्येन्द्र अर्थात् मर्त्येन्द्र—

§ ११०) यस्य च सपक्षा विपक्षाश्च सकलभयशस्यगमनाः सुमहिता मुक्तापासुलभवनपालि-मधिवसन्ति ।

§ १११) कुन्दसुन्दरयशोविशोभितः पाकशासनसमानवैभव ।
सोऽयमुज्ज्वलगुणो निधीश्वरः शासति स्म सुचिराय मेदिनीम् ॥६२॥

§ ११२) तदनु कदाचन विषयाभिलाषविरतस्वान्तो मेदिनीकान्तो वज्रदन्तसमाह्वये पुत्रे विन्यस्तसमस्तराज्यभार. षोडशसहस्रपरिमितपृथ्वीपतिभिः सहस्रेण नन्दनैः, अष्टाभि सोदरैर्धन-देवेन च परिवृतः स्वगुरोस्तीर्थंकरस्योपकण्ठे जैनी दीक्षामासाद्य, तीर्थंकरत्वाङ्गानि षोडश-भावनाः सुचिरं भावयन् अतिदुश्चरमाचर्यविहं तपश्चचार ।

§ ११३) ततोऽसौ कालान्ते प्रथितसुतपाः पुण्यचरितो
महीकान्तः शान्तोऽविशत शिखरे श्रीप्रभगिरे ।

मर्त्येन्द्र इत्यर्थ, मनुष्याणामिन्द्रोऽभूदिति भावः । विरोधाभासः । § ११०) यस्य चेति—यस्य च वज्रनाभेः सपक्षा. सुहृदो विपक्षा. शत्रवश्च सकलभयशस्यगमनाः सकलभं करिशावकसहित यशस्य कीर्तिसहितं गमनं येषा तथाभूता सपक्षा सकलभयैर्निखिलभयै. शस्य सहितं गमन येषा तथाभूता विपक्षा' सन्त सुमहिता अतिशयेन महिता सुमहिता ता प्रशस्ततमाम्, विपक्षपक्षे सुमै पुष्पैर्हिता युक्ता, मुक्ताभि मौक्तिकै पासुला धूलियुक्ता या भवनपालि' सौधपङ्क्तिस्ता विपक्षपक्षे मुक्तापा त्यक्तजलसमूहा निर्जलामित्यर्थ. सुलभवनपालि सुलभा चासौ वनपालिश्च वनपङ्क्तिश्चेति सुलभवनपालिस्ताम् अधिवसन्ति । श्लेषः ॥ § १११) कुन्देति—कुन्दमिव माध्यमिव सुन्दरं मनोहर यद् यश कीर्तिस्तेन विशोभित समलकृत 'माध्यं कुन्दम्' इत्यमरः, पाकशासनसमान शक्रसदृश वैभवमैश्वर्यं यस्य स., उज्ज्वला निर्मला गुणाः शौर्यादयो यस्य तथाभूत सोऽय पूर्वोक्तो निधीश्वरश्चक्रवर्ती वज्रनाभि सुचिराय सुदीर्घकालपर्यन्त मेदिनी पृथिवी शासति स्म पालयामास । रथोद्धताछन्द ॥६२॥ § ११२) तदन्विति—स्वगुरो स्वपितुर्वज्रसेनस्य तीर्थंकरस्य । षोडशभावनाः दर्शनविशुद्धयादी. । शेष सुगमम् । ११३) ततोऽसाविति—ततस्तदनन्तर प्रथित सुतपो यस्य स प्रसिद्ध-सुतपश्चरण , पुण्यचरित पवित्रचरित्र शान्तो जितरागद्वेष असौ महीकान्त. पृथिवीपतिर्वज्रनाभिमुनीश्वरः

मनुष्योंका राजा था) । § ११०) यस्य चेति—जिसके मित्र और शत्रु दोनों ही सकलभय-शस्यगमन थे अर्थात् मित्र हाथियोंसे सहित प्रशंसनीय गमनसे युक्त थे और शत्रु समस्त प्रकारके भयोंसे युक्त गमनसे सहित थे। तथा मित्र और शत्रु दोनों ही सुमहिता (मित्रपक्षसे'अत्यन्त प्रशस्त शत्रुपक्षमें फूलोंसे सहित) मुक्तापांसुलभवनपालि—(मित्र पक्षमें मोतियोंकी धूलिसे धूसरित महलोंकी पक्तिमें—शत्रुपक्षमे निर्जल-सुलभ वनपक्तिमें) निवास करते थे। § १११) कुन्देति—कुन्दकुसुमके समान सुन्दर यशसे सुशोभित, इन्द्रके समान वैभवका धारक तथा उज्ज्वलगुणोंसे सहित वह चक्रवर्ती चिरकाल तक पृथिवीका शासन करता रहा ॥६२॥ § ११२) तदन्विति—तदनन्तर किसी समय जिसका चित्त विषयोंकी इच्छासे विरत हो गया था ऐसा राजा वज्रनाभि, वज्रसेन नामक पुत्रपर समस्त राज्यका भार रख सोलह हजार राजाओं, एक हजार पुत्रों, आठ भाइयों तथा धनदेवसे परिवृत हो अपने पिता वज्रसेन तीर्थंकरके निकट जैनी दीक्षा लेकर तीर्थंकरप्रकृतिके अगभूत दर्शन-विशुद्धि आदि सोलह भावनाओंका बहुत समय तक चिन्तन करता हुआ आश्चर्य करनेवाला अत्यन्त कठिन तप करता रहा। § ११३) ततोऽसाविति—तदनन्तर प्रसिद्ध तपस्वी एवं पवित्र आचारके धारक राजा वज्रनाभि मुनिराजने आयुके अन्तमे शान्त चित्त होकर श्रीप्रभ

परित्यक्ताहारः प्रकटितसमाधिर्गुणनिधिः
सुखात्त्यक्त्वा प्राणानगमदहमिन्द्रत्वपदवीम् ॥६३॥

§ ११४) सर्वार्थसिद्धावहमिन्द्रदेवः स्वकान्तिदुग्धाम्बुधिमध्यमग्नः ।
राकासुधासूतिरिवाकलङ्कः पुञ्जीकृतो वा सुषमैकसारः ॥६४॥

§ ११५) अथवा राकाकोकारिः सकलकलावल्लभतया सन्मार्गनिविष्टतया चानेन समानोऽपि सोऽयं दोषाकरोऽपि कलङ्कमलिनोऽपि सत्पतिरिति, सप्तविंशतितारापतिरपि शततारापतिरिति,

---

कालान्ते जीवितान्ते श्रीप्रभगिरेस्तन्नामपर्वतस्य शिखरे शृङ्गे अविशत प्रविष्टोऽभूत् । तत्र परित्यक्ताहारः कृतभोजनपरित्यागः प्रकटितः समाधिर्येन तथाभूतः प्रकटितसमाधिमरणः गुणनिधिर्गुणानां दयादाक्षिण्यादीनां निधिर्भाण्डारः स सुखात् अक्लेशेन प्राणान् असून् त्यक्त्वा अहमिन्द्रत्वपदवीम् अगमद् अलभत । षोडशस्वर्गादुपरितना देवा अहमिन्द्रा कथ्यन्ते । शिखरिणी छन्दः ॥६३॥ ११४) सर्वार्थेति—सर्वार्थसिद्धौ तन्नामानुत्तरविमाने सोऽहमिन्द्रदेवः स्वकान्तिरेव दुग्धाम्बुधिः क्षीरसागरस्तस्य मध्ये मग्नो ब्रुडितः, अकलङ्कः कलङ्करहितः राकासुधासूतिरिव पूर्णिमाचन्द्र इव, वा अथवा पुञ्जीकृतो राशीकृतः सुषमायाः परमशोभाया एकसारः प्रधानसार इव बभाविति शेषः । उत्प्रेक्षा । उपजातिछन्दः ॥६४॥ ११५) अथवेति—पूर्वं चन्द्रेण सादृश्यं प्रदर्श्य पश्चात्ततो व्यतिरेकं प्रदर्शयति । अथवा पक्षान्तरे राकायाः कोकारिरिति राकाकोकारिः पूर्णिमाचन्द्रः सकलकलानां षोडशकलानां वल्लभतया स्वामित्वेन पक्षे सकलकलानां चतुःषष्टिकलानां वल्लभतया स्वामित्वेन सतां नक्षत्राणां मार्गः सन्मार्गो गगनं तस्मिन् निविष्टतया स्थिरतया पक्षे सश्चासौ मार्गश्चेति सन्मार्गः समीचीनमार्गस्तस्मिन् निविष्टतया च अनेनाहमिन्द्रेण समानोऽपि सदृशोऽपि इति प्रकारेण परस्परविरुद्धार्थं विपरीतार्थं प्रकटयति इति हेतोरुपमानभावमुपमानतां नार्हति । इतीति कथं । तदेव दर्शयति । सोऽयं पूर्णिमाचन्द्रो दोषाणामवगुणानामाकरः खनिरिति दोषाकरस्तथाभूतोऽपि कलङ्केन पापेन मलिनो मलीमसः कलङ्कमलिनस्तादृशः सन्नपि सतां सज्जनानां पतिरिति विरुद्धं पक्षे दोषाया निशाया करः इति दोषाकरोऽपि कलङ्केन लाञ्छनेन मलिनोऽपि सतां नक्षत्राणां पतिरिति । सप्तविंशतिताराणां पतिरपि शतस्य ताराणां नक्षत्राणां पतिरिति विरुद्धं पक्षेऽश्विन्यादीनां सप्तविंशतिताराणां पतिः स्वाम्यपि शतभिषातारायाः पतिरिति । हि निश्चयेन मकरोऽपि जलजन्तुविशेषोऽपि परिशोभितश्चासौ मीनश्च पाठीनश्चेति परिशोभितमीन इति

पर्वतके शिखरपर प्रवेश किया। वहाँ गुणोंके भाण्डार स्वरूप उन मुनिराजने आहारका परित्याग कर समाधि धारण की और सुखसे प्राण छोड़कर अहमिन्द्रपदको प्राप्त किया ॥६३॥ § ११४) सर्वार्थेति—जो अपनी कान्तिरूपी क्षीरसागरके मध्यमें निमग्न था ऐसा वह अहमिन्द्र सर्वार्थसिद्धिमें ऐसा जान पड़ता था मानो कलंकरहित पूर्णिमाका चन्द्रमा ही हो अथवा इकट्ठा किया हुआ उत्कृष्ट शोभाका मुख्य सार ही हो ॥६४॥ § ११५) अथवेति—अथवा पूर्णिमाका चन्द्रमा समस्त कलाओंका वल्लभ—सोलह कलाओंका स्वामी होनेसे (पक्षमें चौसठ कलाओंका वल्लभ होनेसे) और सन्मार्ग—आकाशमें स्थित होनेसे (पक्षमें समीचीन मार्गमें स्थित होनेसे) इस अहमिन्द्रके यद्यपि समान था तथापि वह पूर्णिमाका चन्द्रमा परस्पर अनेक विरुद्ध अर्थोंको प्रकट करता है इसलिए अहमिन्द्रके उपमान भावको प्राप्त नहीं हो सकता। पूर्णचन्द्रके परस्पर विरुद्ध अर्थ इस प्रकार हैं—वह चन्द्रमा दोषाकर—दोषोंकी खान तथा कलंक—पापसे मलिन होकर भी सत्पति—सज्जनोंका पति बनता है यह विरुद्ध बात है (पक्षमें चन्द्रमा दोषाकर—रात्रिको करनेवाला और कलंक—चिह्नसे मलिन होकर भी सत्पति—नक्षत्रोंका स्वामी है) चन्द्रमा सप्तविंशतितारापति—सत्ताईस नक्षत्रोंका पति होकर भी शततारापति—सौ नक्षत्रोंका पति है यह विरुद्ध बात है (पक्षमें

हिमकरोऽपि परिशोभितमीन इति, मृगकृत्तिकावशेषोऽपि परिलसितसितांशुक इति, नक्षत्राधिपोऽपि राजेति, जडस्वभावोऽपि जडध्युत्पन्नोऽपि कलानिधिरिति, भश्रीकरोऽपि नभःश्रीकर इति, स पुनर्वसुवर्गशोभितोऽपि स्वातिसमृद्धिविराजितोऽपि पूर्वाशावशेन शुभोदयभूभृत्सेवा दिने दिने करोतीति परस्परविरुद्धार्थं प्रकटयतीति नोपमानभावमर्हति।

विरुद्धं पक्षे हिमरूपा॰ करा किरणा यस्य तथाभूतोऽपि परिशोभितो मीनो मीनराशिर्यस्य तथाभूत॰ अथवा परिशोभिनी या तमी रात्रिस्तस्या इन स्वामी। मृगकृत्तिका मृगचर्मैव अवशेषो यस्य तथाभूतोऽपि परिलसितं शोभित सितांशुक श्वेतवस्त्रं यस्य तथाभूत इति विरुद्ध पक्षे मृगो मृगशिरा नक्षत्र कृत्तिका कृत्तिकानक्षत्रं मृगश्च कृत्तिका चेति मृगकृत्तिके ते अवशेषो यस्य तादृशोऽपि परिलसिता परितो विभ्राजमाना. सिता शुक्ला अंशव॰ किरणा यस्य तथाभूत इति। क्षत्राणामधिपो न भवतीति नक्षत्राधिपस्तथाभूतोऽपि राजा नृपतिरिति विरुद्धं पक्षे नक्षत्राणा ताराणामधिपो नक्षत्राधिपस्तादृशोऽपि सन् राजा चन्द्र 'राजा प्रभौ नृपे चन्द्रे यक्षे क्षत्रियशक्रयो' इति शब्दार्णव। जडो मूर्ख स्वभावो यस्य तथाभूतोऽपि जडधीर्मूर्खस्तस्मादुत्पन्नोऽपि कलाना चातुरीणा निधि कलानिधिरिति विरुद्ध पक्षे डलयोरभेदात् जलस्य स्वभाव इव स्वभावो यस्य तथाभूतो जलस्वभाव शीतलोऽपि जलधि समुद्रस्तस्मादुत्पन्नोऽपि कलाना षोडशकलाना निधिरिति कलानिधिश्चन्द्र.। भाना नक्षत्राणा श्रिय करोतीति भश्रीकरस्तथाभूतोऽपि भश्रीकरो न भवतीति नभश्रीकर इति विरुद्ध पक्षे भश्रीकरोऽपि नक्षत्रश्रीकरोऽपि नभसो गगनस्य श्रिय करोतीति नभ श्रीकर इति। स पुन. पूर्णचन्द्रो वसुवर्गशोभितो धनसमूहशोभितोऽपि स्वस्य धनस्य अतिसमृद्धि प्रभूतवृद्धिस्तया विराजितोऽपि पूर्वा प्राक्तनी या आशा तृष्णा तस्या वशेन निघ्नतया शुभ प्रशस्त उदयो भाग्य यस्येति शुभोदय. शुभोदयश्चासौ भूभृच्चेति राजा चेति शुभोदयभूभृत् तस्य सेवा शुश्रूषा दिने दिने प्रतिदिनं करोति इति विरुद्ध पक्षे पुनर्वसुवर्गेण पुनर्वसुनक्षत्राभ्या शोभितोऽपि स्वाते स्वातिनक्षत्रस्य अतिसमृद्धया प्रचुरशोभया विराजितोऽपि पूर्वाशाया पूर्वदिशाया वशेन शुभश्चासौ उदयभूभृच्चेति शुभोदयभूभृत् प्रशस्तोदयाचलस्तस्य सेवा दिने दिने

अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्रोंका पति होकर भी शत—शतभिषा नक्षत्रका पति है) हिमकरोऽपि—मगर होकर भी शोभायमान मीन—मत्स्य है अथवा मकर राशिसे युक्त होकर भी मीन राशिसे सहित है यह विरुद्ध बात है। (पक्षमे हिमकर—शीतल किरणोंवाला होकर भी मीनराशिसे सुशोभित है अथवा शोभायमान तमी-रात्रिका इन स्वामी है)। मृग-कृत्तिका विशेष—मृगचर्ममात्रसे युक्त होकर भी शोभायमान सफ़ेद वस्त्रसे सहित है, यह विरुद्ध बात है (पक्षमे मृगशिरा और कृत्तिका नक्षत्रसे युक्त होकर भी शोभायमान सफेद किरणोंवाला है)। क्षत्रों-क्षत्रियोंका अधिपति न होकर भी राजा है यह विरुद्ध बात है (पक्षमें नक्षत्रोंका अधिपति होकर भी राजा—चन्द्रमा है) जडस्वभाव—मूर्ख स्वभाववाला तथा जडधी—मूर्खसे उत्पन्न होकर भी कलानिधि चतुराइयोंका निधि है यह विरुद्ध बात है (पक्षमें जल स्वभाव—जलके समान शीतल स्वभाववाला और जलधि—समुद्रसे उत्पन्न होकर भी सोलह कलाओंका निधि है)। भश्रीकर—नक्षत्रोंकी शोभाको करनेवाला होकर भी नभश्रीकर—नक्षत्रोंकी शोभाको करनेवाला नहीं है यह विरुद्ध बात है (पक्षमे नक्षत्रोंकी शोभाको करनेवाला होकर भी नभःश्रीकर—आकाशकी शोभाको करनेवाला है)। फिर वह चन्द्रमा वसुवर्गशोभितोऽपि—धनके समूहसे शोभित तथा स्वातिसमृद्धिविराजित—धनकी अतिशय समृद्धिसे विराजित होकर भी पहलेकी आशाके वशसे शुभ उदयसे युक्त-पुण्यशाली भूभृत्—राजाकी सेवा करता है यह विरुद्ध बात है (पक्षमें पुनर्वसु नक्षत्रोंसे शोभित तथा स्वातिनक्षत्रकी समृद्धिसे विराजित होकर भी पूर्व दिशाके वशसे शुभोदयभूभृत्—उत्तम उदयाचलकी सेवा प्रतिदिन

§ ११६) सुमनोधर्मतया तयास्य समानोऽपि पञ्चशर. सुदृशामपि बाधा विदधाति, मार्गणाना पञ्चतामपि सहते इति न दृष्टान्ततामनुभवितुमीष्टे। वसन्तस्तु सकलसुमनो गरिष्ठोऽपि जातिभ्रष्ट इति स्मरणार्होऽपि न भवति। इति कटकाञ्चिततया न तुला भजति इति न चित्रमेतत्।

§ ११७) तेऽप्यष्टौ भ्रातरस्तस्य धनदेवोऽप्यनल्पधीः।
जातास्तत्सदृशा एव देवाः पुण्यानुभावतः ॥६५॥

§ ११८) स किलायमहमिन्द्रस्त्रयस्त्रिंशत्पारावारपरिमितस्थितिर्हस्तमात्रोच्छ्रितदेहः स्वक्षेत्र एव नवरत्नप्रभामनोहरे विहरमाण सकल्पमात्रकृतसनिधानैः कुसुमगन्धाक्षतादिभिर्जिनेन्द्रसपर्या

करोतीति। ११६) सुमनोधर्मतयेति—तया प्रसिद्धया सुमनसा पुष्पाणा धर्मो धनुर्यस्य सुमनोधर्मस्तस्य भावस्तया पक्षे सुमनसा देवाना धर्मतया स्वभावतया पञ्चशरः कामोऽस्याहमिन्द्रस्य समानोऽपि सदृशोऽपि सुदृशामपि सम्यग्दृष्टीनामपि पक्षे सुलोचनानामपि बाधा पीडा विदधाति करोति, मार्गणाना गत्यादिचतुर्दशमार्गणानामपि पञ्चता विनाशमपि पक्षे मार्गणाना बाणाना पञ्चतामपि पञ्चसख्यावत्त्वमपि सहते इति हेतो दृष्टान्ततामुपमाम् अनुभवितु न ईष्टे न समर्थोऽस्ति। वसन्तस्तु वसन्तर्तुस्तु सकलसुमनोगरिष्ठोऽपि सकलसुमनोभिर्निखिलपुष्पैर्गरिष्ठो गरीयानपि पक्षे सकलसुमन सु निखिलदेवेषु गरिष्ठोऽपि जात्या भ्रष्टो जातिभ्रष्टो नीचजातियुक्त पक्षे 'चमेली' इति प्रसिद्धपुष्परहित. 'न स्याज्जातिर्वसन्ते' इति कविसमास' इति स्मरणार्होऽपि स्मर्तुं योग्योऽपि न भवति। इतीत्थ कटकाञ्चिततया कर्कराशियुक्ततया तुला तुलाराशि न भजति इति एतत् न चित्र नाश्चर्यं पक्षे कटकाञ्चिततया करवलयसुशोभिततया तुलामुपमा न भजति। श्लेषो व्यतिरेकश्च। § ११७) तेऽप्यष्टाविति—ते पूर्वोक्ता अष्टावपि भ्रातरो विजयो वैजयन्तो जयन्तोऽपराजित सुबाहुर्महाबाहु पीठो महापीठश्चेति यावत् अनल्पधीर्महामति धनदेवोऽपि पुण्यानुभावत पुण्यप्रभावात् तत्सदृशा अहमिन्द्रसदृशा एव देवा जाता समुत्पन्ना ॥६५॥ § ११८) स किलेति—स किल पूर्वोक्तोऽहमिन्द्र त्रयस्त्रिंशत्पारावारपरिमिता त्रयस्त्रिंशत्सागरप्रमाणा स्थितिर्यस्य तथाभूत हस्तमात्रोच्छ्रितोऽरत्निमात्रोन्नतो देहो यस्य तादृश,

---

करता है)। § ११६) सुमनोधर्मतयेति—कामदेव सुमनोधर्मता—फूलोंके धनुषसे सहित होने (पक्षमे देवोंके धर्मसे युक्त होने) के कारण यद्यपि अहमिन्द्रके समान है तथापि वह सुदृशों—सम्यग्दृष्टि जीवोंको भी बाधा पहुँचाता है इसके विपरीत अहमिन्द्र सम्यग्दृष्टि जीवोंको कभी बाधा नहीं पहुँचाता तथा कामदेव मार्गणाओंकी पंचता—मृत्युको सहन कर लेता है इसके विपरीत अहमिन्द्र मार्गणाओंकी पचताको सहन नहीं करता इसलिए दृष्टान्तपनेको प्राप्त करनेके योग्य नहीं है (पक्षमे कामदेव सुदृशा—स्त्रियोंको भी बाधा करता है तथा अपने मार्गण—बाणोंकी पंच संख्याको सहन कर लेता है)। वसन्त ऋतु सकलसुमनोगरिष्ठ—समस्त फूलोंसे श्रेष्ठ होनेपर भी जातिभ्रष्ट—जातिसे भ्रष्ट है—नीच जातिका है जब कि अहमिन्द्र सकलसुमनोगरिष्ठ—समस्त देवोंमे श्रेष्ठ होकर भी जातिभ्रष्ट नहीं है इसलिए वह तो स्मरण करनेके भी योग्य नहीं है (पक्षमे वसन्तऋतु जाती—चमेलीसे रहित है) यथार्थमें वह अहमिन्द्र कटकांचित—कर्कराशिसे युक्त होनेके कारण तुला—तुला राशिको प्राप्त नहीं है यह कुछ भी आश्चर्यकी बात नहीं है (पक्षमे कटक—हाथके वलयसे सुशोभित होनेके कारण वह अहमिन्द्र तुला—उपमाको प्राप्त नहीं होता यह आश्चर्यकी बात नहीं है)। § ११७) तेऽप्यष्टाविति—वे विजय वैजयन्त जयन्त अपराजित सुबाहु महाबाहु पीठ और महापीठ नामके आठों भाई तथा महाबुद्धिमान् धनदेव भी पुण्यके प्रभावसे उस अहमिन्द्रके समान ही देव हुए ॥६५॥ § ११८) स किलेति—वह अहमिन्द्र तेतीस सागरकी आयुवाला था, तीन हाथ ऊँचे शरीरसे सहित था, नवरत्नोंकी प्रभासे मनोहर अपने क्षेत्रमे ही विहार करता था,

कुर्वाणः क्वचिदनाहूतमिलितै स्वसमानवैभवैरहमिन्द्रैर्धर्मगोष्ठीषु सभाषमाणः, त्रिसहस्राधिकत्रिंशत्सहस्रवर्षातिक्रमे मानस दिव्यमाहारमङ्गीकुर्वाणः पञ्चदशदिनाधिकषोडशमासावसाने प्रोच्छ्वासं प्रकटीकुर्वाणः सुखमासामास[1]।

इति श्रीमदर्हद्दासकृतौ पुरुदेवचम्पूप्रबन्धे तृतीयस्तबक. ॥३॥

नवरत्नप्रभाभिर्नवरत्नकान्तिभिर्मनोहरे रमणीये स्वक्षेत्रे स्वकीयविमानप्रदेश एव विहरमाणो विहार कुर्वाण· सकल्पमात्रेण कृत सनिधान येषा तै सकल्पकालोपस्थितैरित्यर्थ कुसुमगन्धाक्षतादिभि. पुष्पचन्दनशालेयादिभि जिनेन्द्रसपर्यां जिनपूजा कुर्वाणो विदधान क्वचित् कुत्रापि स्थाने अनाहूता मिलिता इत्यनाहूतमिलितास्तैरनाकारितोपस्थितै स्वसमानवैभवैः स्वसदृशैश्वर्यैः अहमिन्द्रै सह धर्मगोष्ठीषु धर्मसभासु सभाषमाणो वार्तालापं कुर्वन्, त्रिसहस्राधिकत्रिंशत्सहस्रवर्षातिक्रमे त्रयस्त्रिंशत्सहस्रवर्षव्यपगमे सति मानस दिव्य स्वर्ग्यम् आहार विष्वाणम् अङ्गीकुर्वाण स्वीकुर्वन् पञ्चदशदिनाधिकषोडशमासावसाने त्रयस्त्रिंशत्पक्षान्ते प्रोच्छ्वास श्वासोच्छ्वास प्रकटीकुर्वाण सुख यथा स्यात्तथा आसामास आस्ते स्म ।

इति श्रीमदर्हद्दासकृतेः पुरुदेवचम्पूप्रबन्धस्य वासन्तीसमाख्यायां संस्कृतव्याख्याया तृतीय. स्तबकः ॥३॥

संकल्प मात्रसे उपस्थित होनेवाले पुष्प गन्ध तथा अक्षत आदिसे जिनेन्द्रदेवकी पूजा करता था, कहीं बिना बुलाये मिले हुए अपने ही समान वैभवसे युक्त अहमिन्द्रोंके साथ धर्मगोष्ठियोंमे संभाषण करता था, तेतीस हजार वर्ष व्यतीत हो जानेपर मानसिक दिव्य आहार करता था, और साढ़े सोलह माहके अन्तमें श्वासोच्छवास प्रकट करता था इस तरह वह सुखसे निवास करता था ।

इस प्रकार श्रीमर्हद्दासकी कृति पुरुदेवचम्पू नामक प्रबन्धमें तीसरा स्तबक समाप्त हुआ ॥३॥

---

१ सुखयामास क० ।

चतुर्थः स्तवकः

§ १) प्राज्यप्रभावप्रभवः प्रशस्तधर्मस्य पादानतदेवराजः ।
विध्वस्तमिथ्यात्वतमा जिनेश आद्योऽथवान्ये ददता शुभानि ।।१।।

§ २) इह खलु जम्बूद्वीपसभावितभारतवर्षविशेषकायमाणराजतशिखरि दक्षिणभागे तुलित स्वर्गैकखण्डे मध्यखण्डे कालसन्धौ मुखे मनोहरा गा, भुजे ज्या, हृदि क्षमा, भूदेव्या विरहमसहमान इव विभ्राणः, कीर्तिक्षौमविलसिताना दिगङ्गनाना घुसृणरसपरिक्लृप्तव्यात्युक्षिकासदेहदायकेन

अथ चतुर्थस्तवकस्यादौ मङ्गलार्थं जिनस्तुतिमाह—

§ १) प्राज्येति—आदौ भव आद्य प्रथमो वृषभ, अथवा अन्येऽजितनाथादयस्त्रयोविंशतिसख्याका जिनेश जिनानामीश जिनेश पक्षे ईश् इति शकारान्त शब्द । शुभानि श्रेयासि ददता ददातु 'दद दाने' इत्यस्य लोट्लकारस्य प्रथमपुरुषैकवचने रूप पक्षे ददता ददतु 'डुदाञ् दाने' इत्यस्यात्मनेपदे प्रथमपुरुषबहुवचने रूपम् । अत्र वचनश्लेषेण विशेषणानामेकबहुवचनयोर्व्याख्यान कार्यम् । तत्राद्यो जिनेश प्रशस्तधर्मस्य श्रेष्ठधर्मस्य प्राज्यप्रभावप्रभव प्राज्यप्रभावस्य प्रकृष्टमाहात्म्यस्य प्रभव कारण, अन्ये जिनेश प्राज्यप्रभावेण प्रभव स्वामिन । पादानतदेवराज देवाना राजा देवराज पादयोरानतो देवराजो यस्य स पादानतदेवराज चरणानतपुरन्दर पक्षे पादयोरानतो देवराट् येषा ते पादानतदेवराज । विध्वस्तमिथ्यात्वतमा विध्वस्तं विनाशित मिथ्यात्वमेव तमस्तिमिर येन स विध्वस्तमिथ्यात्वतमा पक्षे तीव्र मिथ्यात्व मिथ्यात्वतम विनाशितं मिथ्यात्वतम यैस्ते, अथवाकारान्तोऽपि तमशब्दोऽस्ति 'ध्वान्त सतमस तमम्' इति धनञ्जय, तेन विध्वस्त मिथ्यात्वतम मिथ्यात्वतिमिर यैस्ते मिथ्यात्वतमा । वचनश्लेष । इन्द्रवज्राछन्द. ।।१।। § २) इहेति—इह खलु मर्त्यलोके जम्बूद्वीपे प्रथमद्वीपे सभावितस्य शोभितस्य भारतवर्षस्य भरतक्षेत्रस्य विशेषकायमाणस्तिलकायमानो यो राजतशिखरी विजयार्धपर्वतस्तस्य दक्षिणभागेऽवाच्या तुलितं स्वर्गैकखण्ड येन तस्मिन् उपमितत्रिदिवैकशकले मध्यमखण्डे मध्यस्थितार्यखण्डे कालसन्धौ भोगभूमिकर्मभूमिकालयो सन्धिर्मेलन तस्मिन् मुखे वदने मनोहरा चेत प्रिया गा वाणी पक्षे पृथिवी, भुजे बाहौ ज्या मौर्वी पक्षे भूमि, हृदि हृदये क्षमा क्षान्ति पक्षे धरित्री भूदेव्या महीदेव्या विरह वियोगम् असहमान सोढुमशक्नुवन्निव बिभ्राणो दधान, कीर्तिरेव क्षौम

---

§ १) प्राज्येति—जो श्रेष्ठधर्मके उत्कृष्ट प्रभावके कारण थे, जिनके चरणोंमें देवराज नम्रीभूत था और जिन्होंने मिथ्यात्वरूपी अन्धकारको नष्ट कर दिया था ऐसे प्रथम जिनेन्द्र वृषभनाथ भगवान्, अथवा जो श्रेष्ठधर्म सम्बन्धी उत्कृष्ट प्रभावके प्रभु—स्वामी थे, जिनके चरणोंमें देवराज—इन्द्र नम्रीभूत रहता था और जिन्होंने तीव्र मिथ्यात्व अथवा मिथ्यात्व रूपी तिमिरको नष्ट कर दिया था ऐसे अन्य तेईस जिनेन्द्र कल्याण प्रदान करें ।।१।। § २) इहेति—निश्चयसे इस मध्यम लोकमें जम्बूद्वीपमें सुशोभित भरतक्षेत्रके तिलकके समान आचरण करनेवाले विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण दिशामें स्वर्गके एक खण्डकी तुलना करनेवाले मध्यमआर्यखण्डमें भोगभूमि और कर्मभूमिके कालके मिलापके समय नाभिनामका राजा हुआ । वह नाभिराजा मुखमें मनोहर वाणीको, भुजामें प्रत्यंचाको और हृदयमें क्षमाको (पक्षमें गो, ज्या, और क्षमा नाम धारक पृथिवीको) धारण कर रहा था उससे ऐसा जान पड़ता था मानो वह पृथिवीदेवीके विरहको सहन नहीं कर सकता । कीर्तिरूपी रेशमी वस्त्रसे

प्रतापेन विभ्राजमानः, कुलकृतामन्त्यः, निखिलभाविमहीपालानां नाभिर्नाभिनामधेयो राजा बभूव।

§ ३) तस्यासीन्मरुदेवीति देवी देवीव सा शची।
चरन्ती हेमवल्लीव साकारैवैन्दवी कला ॥२॥

§ ४) सा खलु बिम्बोष्ठी, चन्द्रलेखेव गगनतलस्य, वसन्तलक्ष्मीरिव सहकारवनस्य, चन्द्रिकेव चन्द्रस्य, प्रभेव प्रभाकरस्य, मदलेखेव दिग्गजस्य, कल्पवल्लीव कल्पपादपस्य, कुसुमश्रीरिव वसन्तस्य, कमलिनीव सरोवरस्य, तारापङ्क्तिरिव प्रदोषसमयस्य, हंसमालेव मानससरोवरस्य, चन्दनवनराजिरिव मलयाचलस्य, फणामणिपरम्परेव फणिपते, त्रिभुवनविस्मयजननी, जननी वनिताविभ्रमाणां, खनी गुणरत्नानां, वनी कान्तिलतानां, धुनी शृङ्गाररसस्य, महीपालभूषणं बभूव।

दुकूलं तेन विलसितानां शोभितानां दिगङ्गनानां काष्ठाकामिनीनां घुसृणरसेन काश्मीरद्रवेण परिक्लृप्ता कृता या व्यात्युक्षिका रङ्गकेलिस्तस्या. सदेहस्य दायकस्तेन तथाभूतेन प्रतापेन विभ्राजमानो देदीप्यमान, कुलकृतां कुलकराणां मनूनामिति यावत् अन्त्यश्चरमः, निखिलाश्च ते भाविमहीपालाश्चेति निखिलभाविमहीपालास्तेषां सकलभविष्यद्भूमिपालानां नाभिः प्रवर्तकः नाभिनामधेयो नाभिनामा राजा बभूव। § ३) तस्येति—तस्य नाभेः मरुदेवीति प्रसिद्धा मरुदेवनाम्नी सा देवी राज्ञी आसीद् या शचीदेवीव इन्द्राणीव, चरन्ती चलन्ती हेमवल्लीव स्वर्णलतेव साकारा सशरीरा ऐन्दवी चान्द्रमसी कलेव बभूव। मालोपमा ॥२॥ § ४) सेति—सा खलु बिम्बोष्ठी रक्तदशनच्छदा मरुदेवी, गगनतलस्य नभस्तलस्य चन्द्रलेखेव शशिकलेव, सहकारवनस्य रसालोपवनस्य वसन्तलक्ष्मीरिव मधुश्रीरिव, चन्द्रस्य शशिनः चन्द्रिकेव कौमुदीव, प्रभाकरस्य सूर्यस्य प्रभेव दीप्तिरिव, दिग्गजस्य दिग्वारणस्य मदलेखेव दानरेखेव, कल्पपादपस्य कल्पतरोः कल्पवल्लीव कल्पलतेव, वसन्तस्य सुरभेः कुसुमश्रीः पुष्पलक्ष्मीरिव, सरोवरस्य कासारस्य कमलिनीव पद्मिनीव, प्रदोषसमयस्य रजनीमुखस्य तारापङ्क्तिरिव नक्षत्रसततिरिव, मानससरोवरस्य हंसमालेव मरालपङ्क्तिरिव, मलयाचलस्य मलयगिरेः चन्दनवनराजिरिव, मलयजवनश्रेणिरिव, फणिपते शेषनागस्य फणामणिपरम्परेव, त्रिभुवनस्य लोकत्रयस्य विस्मयजननी आश्चर्योत्पादिका, वनिताविभ्रमाणां स्त्रीविलासानां जननी समुत्पादिका, गुणरत्नानां गुणमणीनां खनी आकरभूता, कान्तिलतानां दीप्तिवल्लीनां वनी, शृङ्गाररसस्य धुनी नदी, महीपालस्य नाभिराजस्य

सुशोभित दिशारूपी स्त्रियोंपर केशरके रंगसे की हुई फागके सन्देहको देनेवाले प्रतापसे वह शोभायमान था, अन्तिम कुलकर था तथा आगे होनेवाले समस्त राजाओंका आदिप्रवर्तक था। § ३) तस्येति—उस राजा नाभिकी मरुदेवी नामकी राज्ञी थी जो इन्द्रकी इन्द्राणीके समान, चलती फिरती स्वर्णलताके समान और आकार सहित चन्द्रमाकी कलाके समान जान पडती थी ॥२॥ § ४) सेति—बिम्बके समान लाल ओठोंसे सुशोभित वह मरुदेवी, गगनतलकी चन्द्रकलाके समान, आम्रवनकी वसन्त लक्ष्मीके समान, चन्द्रमाकी चाँदनीके समान, सूर्यकी प्रभाके समान, दिग्गजकी मदरेखाके समान, कल्पवृक्षकी कल्पलताके समान, मधुमासकी पुष्पलक्ष्मीके समान, सरोवरकी कमलिनीके समान, सायंकालकी तारापंक्तिके समान, मानसरोवरकी हंसमालाके समान, मलयगिरिकी चन्दनवनकी पंक्तिके समान, और शेषनागकी फणाओंपर स्थित मणियोंकी परम्पराके समान राजा नाभिराजकी भूषण थी। वह मरुदेवी तीनों लोकोंको आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली थी, स्त्रियोंके हावभावोंको उत्पन्न करनेवाली थी, गुणरूपी रत्नोंकी खान थी, कान्तिरूपी

§ ५) भानि भ्राजितकान्तिसारलहरी रात्रिंदिव सेवितुं
प्रोद्युक्तानि विहाय तानि खतल तस्या कुरङ्गीदृश ।
पादाम्भोजयुगे समाविरभवन्नून नखानिच्छलात्
तस्मात्ख च नभःस्थल समभवद्रूढ्यैव तारापथम् ॥३॥

§ ६) स्वर्णस्थिति प्राप्तमपि प्रभूता सरोजमस्याः पदवारिजस्य ।
वसुप्रपञ्चानपहृत्य राज्ञो भयाद्वनान्ते वसति विधत्ते ॥४॥

§ ७) मनोजतूणीयुगल मृगाक्ष्या जङ्घायुग नूनमिति प्रतीमः ।
यतस्तदग्रे पदकैतवेन तद्बाणभूत जलज चकास्ति ॥५॥

भूषण वभूव । मालोपमा रूपक च । § ५) भानीति—रात्रिंदिवमहर्निशम्, भ्राजिता शोभिता या कान्तिसारलहरी श्रेष्ठकान्तिसततिस्ता सेवितुमाराधयितु प्रोद्युक्तानि तत्पराणि तानि प्रसिद्धानि भानि नक्षत्राणि खतल नभस्तल विहाय त्यक्त्वा छलाद् व्याजेन तस्या. कुरङ्गीदृशो मृगाक्ष्या पादाम्भोजयुगे चरणकमलयुगले नखानि नखराणि समभवन् अभूवन् नूनमित्युत्प्रेक्षायाम् । तस्मात्कारणात् ख गगन नभाना नक्षत्राणा स्थलमिति नभस्थल पक्षे नभ स्थल गगनस्थल सत् रूढ्यैव प्रसिद्ध्यैव तारापथ नक्षत्रपथम् अभवत् । नभस्थलमित्यत्र 'खर्परे शरि विसर्गलोपो वा वक्तव्य ' इति वार्तिकेन वैकल्पिको विसर्गलोपो बोध्य । उत्प्रेक्षालकार, शार्दूलविक्रीडितछन्द ॥३॥ § ६) स्वर्णेति—सरोज कमल प्रभूता प्रचुरा स्वर्णस्य काञ्चनस्य स्थितिस्ता प्रभूतसुवर्णसत्तामित्यर्थ, प्राप्तमपि अस्या मरुदेव्या पदवारिजस्य चरणकमलस्य वसुप्रपञ्चान् धनसमूहान् 'वसु तोये धने मणौ' इति वैजयन्ती । अपहृत्य चोरयित्वा राज्ञो नृपतेर्भयात् त्रासात् वनान्ते वनमध्ये वसति विधत्ते कुरुते । यथा कश्चित्स्वभावेन सपन्नोऽपि कस्यचिद्धन चोरयित्वा राजबन्धनभयाद् वनेऽन्तर्हितो निवसति तद्वदिति भाव । प्रकृतपक्षे सरोज कमल प्रभूतामधिका सुष्ठु अर्ण स्वर्ण सुजल तस्मिन् स्थितिस्ता प्राप्तमपि अस्या मरुदेव्या पदवारिजस्य वसुप्रपञ्चान् किरणसमूहान् 'वसुर्मयूखाग्निधनाधिपेपु' इति विश्व । अपहृत्य राज्ञश्चन्द्रमसो भयात् वनान्ते जलमध्ये 'वार्वारिक, पयोऽम्भोऽम्बु पाथोऽर्ण सलिल जलम्', 'शर वन कुश नीर तोय जीवनमब्विपम्' इति धनञ्जय । वसति विधत्ते कुरुते । श्लेष । उपजातिवृत्तम् ॥४॥ § ७) मनोजेति—नून निश्चयेन मृगाक्ष्या मरुदेव्या जङ्घायुग प्रसृतायुगल मनोजतूणीयुगल कामेषुधियुगम् अस्ति, इति प्रतीम प्रतीति कुर्महे यतो यस्मात्कारणात्ते तदग्रे जङ्घायुगाग्रे पदकैतवेन चरणच्छलेन तस्य मनोजस्य बाणभूत शरभूत जलज कमल चकास्ति शोभते 'अरविन्दमशोक च चूत च नवमल्लिका । नीलोत्पल च पञ्चैते पञ्चबाणा प्रकीर्तिता. ।'

लताओंकी वाटिका थी और शृगाररसकी नदी थी । § ५) भानीति—रातदिन देदीप्यमान रहनेवाली श्रेष्ठ कान्तिकी परम्पराको प्राप्त करनेके लिए उद्यत हुए नक्षत्र आकाशको छोडकर उस मृगनयनीके चरणकमलयुगलमे छलसे नाखून बन गये थे ऐसा जान पडता है। इसीलिए आकाश नभस्थल हो गया (पक्षमे ताराओंका स्थल नहीं रहा) रूढिसे ही तारापथ कहा जाता है ॥३॥ § ६) स्वर्णेति—कमल यद्यपि बहुत भारी स्वर्णकी स्थितिको प्राप्त था तथापि मरुदेवीके पद कमलके धन समूहका उसने अपहरण कर लिया इसीलिए वह राजाके भयसे वनके मध्यमे निवास करता है। (पक्षमे कमल बहुत भारी स्वर्णस्थिति—सुन्दरजलमे स्थितिको प्राप्त था तो भी उसने मरुदेवीके चरणकमलोंकी किरणोंके समूहको हर लिया इसलिए वह चन्द्रमाके भयसे पानीके मध्यमे निवास करता है ।) ॥४॥ § ७) मनोजेति—मृगनयनी मरुदेवीकी जघाओका युगल निश्चित ही कामदेवके तरकशोंका युगल था ऐसा हम समझते हैं क्योंकि उसके अग्रभागमे चरणोंके छलसे कामदेवका बाणभूत कमल सुशोभित हो रहा है

§ ८) तदूरुकान्ति स्वकरे चिकीर्षुर्मत्तद्विपोऽसौ यतन विधत्ते ।
तत्कान्तिचौर्याय सदा प्रवृत्ता रम्भा विमथ्नाति कुतोऽन्यथासौ ॥६॥

§ ९) कटीमण्डलमेतस्या काञ्चीसालपरिष्कृतम् ।
मन्ये दुर्गमनङ्गस्य जगड्डामरकारिण ॥७॥

§ १०) स्वयमम्बरमपि मध्यं तस्याः सूक्ष्माम्बरोपेतम् ।
तदपि च नेत्राविषय बभूव चित्रं सुमध्यायाः ॥८॥

§ ११) परिवेष्ट्य मध्ययष्टिं नाभिबिलान्त कुरङ्गलोलाक्ष्या ।
मणिखचितसर्वदेहश्चित्र काञ्चीप्रदाकुरधिशिष्ये ॥९॥

§ १२) रोमश्रेणी [1]कुसुमधनुषा यौवनारामवृद्ध्यै
नाभीवापी निकटघटित[2] किं घटीयन्त्रदारु ।

इत्यमरवचनाज्जलस्य मनोजवाणत्व प्रसिद्धम् । हेतूत्प्रेक्षा । उपजातिछन्द ॥५॥ § ८) तदूर्विति—तस्या मरुदेव्या ऊर्वोः सक्थ्नो कान्तिस्ता तदूरुकान्ति स्वकरे स्वकीयशुण्डादण्डे चिकीर्षु कर्तुमिच्छु असौ प्रसिद्धो मत्तद्विपो मत्तगजराजो यतन प्रयास विधत्ते कुरुते । अन्यथा असौ मत्तद्विप तत्कान्तिचौर्याय तदूरुदीप्त्यपहरणाय प्रवृत्ता रम्भा कदली सदा शश्वत् कुत कस्माद्धेतो विमथ्नाति हिंसति । रम्भासदृश तदूरुयुगमिति भाव । हेतूत्प्रेक्षा । उपजाति छन्द ॥६॥ § ९) कटीति—काञ्चीसालपरिष्कृत रशनाप्राकारवेष्टितम् एतस्या मरुदेव्या कटीमण्डलम् अवलग्नप्रदेश जगड्डामरकारिणो जगद्विजयकारिण अनङ्गस्य मदनस्य दुर्गं 'किला' इति प्रसिद्ध वर्तते इति मन्ये जाने ॥७॥ § १०) स्वयमिति—सुमध्याया शोभनावलग्नाया तस्या मरुदेव्या मध्य स्वयम् अम्बरमपि वस्त्रमपि सूक्ष्माम्बरोपेत सूक्ष्मवस्त्रसहित तदपि च तथाभूतमपि नेत्रस्य वस्त्रस्य अविषयमगोचर बभूव इति चित्रमद्भुतम् । यत् स्वय वस्त्ररूप सूक्ष्मवस्त्रसहित च तद् वस्त्ररहित कथ भवेदिति भाव । परिहारपक्षे तस्या मध्य स्वय स्वत अम्बरमपि गगनमिव शून्यमपि कृशतरमित्यर्थ सूक्ष्माम्बरोपेत सूक्ष्मवस्त्रपरिहित तदपि च नेत्राविषय नयनागोचर बभूव ॥ विरोधाभास । आर्यावृत्तम् ॥८॥ § ११) परिवेष्ट्येति—मणिभि खचित सर्वदेहो यस्य तथाभूत काञ्चीप्रदाकु मेखलासर्प कुरङ्गस्येव लोले अक्षिणी यस्यास्तस्या हरिणचपललोचनाः या मरुदेव्या इति यावत् मध्ययष्टि कटी परिवेष्ट्य परीत्य नाभिरेव बिल विवर तस्यान्तस्तम् अधिशिश्ये अधिशेते स्म इति चित्रम् । अन्यसर्पस्य फणामात्रं रत्नखचित भवति काञ्चीसर्पस्य तु सर्वदेहो रत्नखचितो बभूवेति चित्रम् । रूपकालकार । आर्याछन्द ॥९॥ § १२) रोमेति—तस्या, रोमश्रेणी रोमराजि कुसुमधनुषा कामदेवेन यौवनारामवृद्ध्यै तारुण्योपवनवर्धनाय नाभीवाप्यानिकटे घटित स्थापित

॥५॥ § ८) तदूर्विति—वह मदोन्मत्त हाथी मरुदेवीकी जाँघोंकी कान्तिको अपनी सूँड़में लानेकी इच्छा करता हुआ प्रयास करता है यदि ऐसा न होता तो वह जाँघोंकी कान्तिकी चोरीके लिए प्रवृत्त कदलीको सदा क्यों नष्ट करता ? ॥६॥ § ९) कटीति—मेखलारूपी प्राकारसे घिरा हुआ इसका मध्यभाग जगद्विजयी कामदेवका गढ था ऐसा मैं मानता हूँ ॥७॥ § १०) स्वयमिति—सुन्दर कमरवाली मरुदेवीका मध्यभाग यद्यपि स्वयं अम्बर—वस्त्ररूप था (पक्षमे आकाशके समान शून्यरूप था) और सूक्ष्म अम्बर—महीन वस्त्रसे सहित था तथापि वह नेत्र—वस्त्रका विषय नहीं था (पक्षमें नयनगोचर नहीं था) यह आश्चर्यकी बात थी ॥८॥ § ११)) परिवेष्ट्येति—आश्चर्य है कि जिसका सर्व शरीर मणियोंसे खचित था ऐसा मेखलारूपी सर्प, मृगके समान चंचल नेत्रोंवाली मरुदेवीके मध्यभागको घेरकर नाभिरूपी बिलके पास सो रहा था ॥९॥ § १२) रोमेति—मरुदेवीकी रोमराजि ऐसी जान पडती थी

---

१. कुसमधनुपा (?) क० । २. घटिता क० ।

राज्ञस्तद्रुचिराननस्य पुरतस्तत्ताण्डवाडम्बर
चक्रे चित्रतर समस्तजनताचेतोहर सादरम् ॥१५॥

§ १८) अस्या किल शुभदलसत्कान्तिविराजित राजहससतोपनिदानमब्जाभिख्याञ्चित सकलमनोहरामोदकारण सुमन श्लाघ्य वदन नलिन च समान तथापि प्रथम सकच विकलङ्क सरसत्वमुपगत कर्णाभरणादिभिर्मुक्तामयम्, अपर च विकच सपङ्क नीरसत्वमुपसेवते तथापि पूर्णचन्द्रोदये सरोगमिति न दृष्टान्तार्हम् ।

कृत यो स्तम्भस्तस्मिन्, तस्या रुचिरानन तद्रुचिरानन तदीयसुन्दरमुख तस्य राज्ञो भूपालस्य चन्द्रस्य च पुरतोऽग्रे तत् प्रसिद्ध चित्रतरमत्यद्भुत समस्तजनतायाश्चेतोहर निखिलजनसमूहचित्ताह्लादक ताण्डवाडम्बर ताण्डवनृत्यविस्तार सादर ससम्मान यथा स्यात्तथा द्राग् झटिति चक्रे कृतवान् । रूपकश्लेषौ । शार्दूलविक्रीडितच्छन्द ॥१५॥ § १८) अस्या इति—अस्या मरुदेव्या किल वदन मुख नलिन कमल च समान सदृशम् । अथोभयो सादृश्यमाह—शुभदलसत्कान्तिविराजित शुभदा श्रेय प्रदा लसन्ती शोभमाना च या कान्तिस्तया विराजित वदन, शुभानि श्रेष्ठानि यानि दलानि पत्राणि तेषा या सत्कान्ति समीचीनरुचिस्तया विराजित नलिन । राजहससंतोपनिदान—राजहसो नृपश्रेष्ठो नाभिराजस्तस्य सतोपस्य निदान कारण वदन, राजहसा मरालविशेषास्तेषा सतोपस्य निदान कारण 'राजहसस्तु कादम्बे कलहसे नृपोत्तमे' इति विश्वलोचन । अब्जाभिख्याञ्चित अब्जश्चन्द्रस्तस्येवाभिख्या शोभा तयाञ्चित शोभित वदन, अब्ज कमल इत्यभिख्या नाम तयाञ्चित नलिन 'अभिख्या तु यश कीर्तिशोभाविख्यातिनामसु' इति विश्वलोचन । सकलमनोहरामोदकारण—सकलाना सर्वेषा मनोहरश्चेतोहरो य आमोदो हर्षस्तस्य कारण वदन, सकलमनोहरो निखिलप्रियो य आमोदोऽतिनिर्हारी गन्धस्तस्य कारण नलिन । सुमन श्लाघ्यं सुमन सु विद्वत्सु श्लाघ्य प्रशसनीय वदन, सुमन सु पुष्पेषु श्लाघ्य प्रशसनीय नलिनम् । अथोभयोर्व्यतिरेकमाह—तथापि पूर्वोक्तप्रकारेण सादृश्ये सत्यपि प्रथम वदन सकच कचै केशै सहित सकच, विकलङ्क कलङ्करहित, सरसत्व सरसतामुपगत प्राप्त, कर्णाभरणादिभि अवतसादिभि मुक्तामय मौक्तिकप्रचुर पक्षे सकच अप्रफुल्ल विकलङ्क निष्पङ्क सरसत्व सजलत्व

मरुदेवीके नासावंश रूपी विशाल बाँससे बनाये हुए खम्भेपर उसके सुन्दर मुखरूपी राजाके सामने अत्यन्त आश्चर्यसे युक्त तथा समस्त जनसमूहके चित्तको हरनेवाला वह प्रसिद्ध ताण्डव नृत्यका विस्तार बडे सन्मानके साथ किया था ॥१५॥ § १८) अस्या इति—मरुदेवीका मुख और कमल समान थे क्योंकि जिस प्रकार मुख शुभदलसत्कान्तिविराजित—कल्याणको देनेवाली श्रेष्ठ कान्तिसे सुशोभित था उसी प्रकार कमल भी शुभदलसत्कान्तिविराजित—उत्तम पत्रोंकी श्रेष्ठ कान्तिसे सुशोभित था । जिस प्रकार मुख राजहंससतोषनिदान—नृपोत्तम राजा-नाभिराजके सन्तोषका कारण था उसी प्रकार कमल भी राजहसन्तोषनिदान—राजहस पक्षियोंके सन्तोषका कारण था, जिस प्रकार मुख अब्जाभिख्याञ्चित—चन्द्रमा जैसी शोभासे सहित था उसी प्रकार कमल भी अब्जाभिख्याञ्चित—अब्ज नामसे सहित था, जिस प्रकार मुख सकलमनोहरामोदकारण—सबके मनको हरनेवाले हर्षका कारण था उसी प्रकार कमल भी सकलमनोहरामोदकारण—सबके मनको हरनेवाली विशिष्ट सुगन्धिका कारण था और जिस प्रकार मुख सुमनःश्लाघ्य—विद्वानोंमें प्रशंसनीय था उसी प्रकार कमल भी सुमनःश्लाघ्य—फूलोंमें प्रशसनीय था । इस प्रकार दोनोंमें समानता होनेपर भी कमल मुखकी दृष्टान्तताके योग्य नहीं है क्योंकि मुख सकच है—केशोंसे सहित है (पक्षमें अप्रफुल्ल है), विकलंक—कलंक रहित है (पक्षमे पक रहित है, सरसताको प्राप्त होता है (पक्षमें सजलताको प्राप्त है), और कानोंके आभरण आदिसे मुक्तामय मोतियों-

§ १९) कचतिमिरे लोलदृशो निबिडे मारजनिभावितोत्कर्षे ।
कुसुमस्रजो विचित्राश्चक्रुर्हा हन्त सौरभानुगतिम् ॥१६॥

§ २०) स तया कल्पवल्ल्येव लसदशुकभूषया ।
समाश्लिष्टतनुर्भूयः कल्पाङ्घ्रिप इवाद्युतत् ॥१७॥

§ २१) अथ ताभ्यां दम्पतीभ्यामलंकृते सुरलोकनिकाशे तस्मिन् देशे कल्पपादपात्यये भावितीर्थंकृत्पुण्यसमाहूत पुरुहूतस्तत्क्षणमेव विस्मयकरविचित्रसनिवेशविशेषा कवलीकृतसुरपुरगर्वा नगरी काचिदयोध्या नाम कल्पयामास ।

मुक्तामय नीरोगमिति वदनपक्षे योज्यम् । अपर च द्वितीय च नलिनमित्यर्थ विकच कचरहित पक्षे प्रफुल्ल, सपङ्क कलङ्कसहित पक्षे सकर्दम, नीरसत्व रसराहित्यं पक्षे नीरे सत्त्व नीरसत्त्व सजलत्वम् उपसेवते समाश्रयति, तथापि पूर्णचन्द्रोदये पूर्णेन्दूदये सति सरोग रोगसहित पक्षे सरसि गच्छतीति सरोग तडागस्थितमित्यर्थ । इतीत्थ न दृष्टान्तार्हं नोपमायोग्यम् । श्लेषव्यतिरेकोपमाः । § १९) कचेति—लोलदृशश्चपलाक्ष्या मरुदेव्या निबिडे सघने मारजनिभावितोत्कर्षे मारस्य मदनस्य जनिरुत्पत्तिस्तया भावित उत्कर्षो यस्य तस्मिन् पक्षे मा लक्ष्मी शोभा वा तया उपलक्षिता या रजनि रात्रिस्तया भावितोत्कर्षे वर्धितोत्कर्षे कचतिमिरे केशान्धकारे विचित्रा विविधा कुसुमस्रज पुष्पमाला सौरभानुगति सुरभे सौगन्ध्यस्य भाव सौरभ तस्यानुगतिमनुसरण पक्षे सूरस्य सूर्यस्य इमे सौरा ते च ते भानवश्चेति सौरभानव सूर्यकिरणास्तेषा गति कार्यं तिमिरापहतिमित्यर्थ चक्रुर्विदधु हा हन्तेति शोकार्थेऽव्ययौ । रूपकश्लेषौ । आर्याछन्द ॥१६॥ § २०) स तयेति—लसन्त्य शोभमाना अशुकभूषा वस्त्रालकृतयो यस्या तथाभूतया कल्पवल्ल्येव कल्पलतयेव तया मरुदेव्या समाश्लिष्टा समालिङ्गिता तनु शरीर यस्य तादृशोऽय भूपो नाभिराज' कल्पाङ्घ्रिप इव कल्पवृक्ष इव अद्युतत् शुशुभे । उपमा ॥१७॥ § २१) अथेति—अथानन्तर ताभ्या मरुदेवीनाभिराजाभ्याम् अलकृते सुशोभिते सुरलोकनिकाशे स्वर्गसनिभे तस्मिन् देशे कल्पपादपात्यये कल्पवृक्षाभावे सति भावितीर्थकृतो भविष्यत्तीर्थकरस्य पुण्येन सुकृतेन समाहूत समाकारित इति भावितीर्थकृत् पुण्यसमाहूत पुरुहूत. पुरन्दर तत्क्षणमेव तत्कालमेव विस्मयकरा आश्चर्योत्पादका विचित्रा विविधा सनिवेशविशेषा भवनविशेषा यस्या तथाभूता कवलीकृतो ग्रस्त सुरपुरगर्व स्वर्गलोकाहकारो यया ता अयोध्या नाम काचित् नगरी कल्पयामास रचयामास ।

से युक्त है (पक्षमे नीरोग है) इसके विपरीत कमल विकच है—खिला हुआ है (पक्षमे केशोंसे सहित है), सपंक है—कीचडसे सहित है (पक्षमें सपाप है), नीरसत्त्व—जलमें सद्भावको प्राप्त है (पक्षमें रसराहित्यको प्राप्त है और इतना होनेपर भी पूर्णचन्द्रका उदय होनेपर सरोग है—रोगोंसे सहित है (पक्षमें सरोवरमे स्थित है) । § १९) कचेति—सान्द्र तथा कामकी उत्पत्तिसे जिसका उत्कर्ष बढ रहा था (पक्षमें शोभायमान रात्रिमें जिसकी प्रचुरता बढ रही थी) ऐसे मरुदेवीके केशरूपी अन्धकारमे नाना प्रकारकी पुष्पमालाओंने—खेदका विषय था सौरभानुगति—सूर्यकिरणोंका काम किया था (पक्षमे सुगन्धताकी वृद्धि की थी) ॥१६॥ § २०) स तयेति—जिसमें वस्त्र और आभूपण सुशोभित हो रहे थे ऐसी कल्पलताके समान उस मरुदेवीसे आलिंगित देह राजा नाभिराज कल्प वृक्षके समान देदीप्यमान हो रहे थे ॥१७॥ § २१) अथेति—तदनन्तर उन दोनों दम्पतियोंसे सुशोभित स्वर्गके समान उस देशमे कल्प वृक्षोंका अभाव होनेपर भावी तीर्थंकरके पुण्यसे बुलाये हुए इन्द्रने उसी क्षण आश्चर्यको उत्पन्न करनेवाले नाना प्रकारके विशिष्ट भवनोंसे सहित तथा स्वर्गके

तस्याधस्तात् त्रिवलिकपटात्कल्पित तद्विरेजे
सोपानाना त्रितयमतनो. पादविन्यासहेतोः ॥१०॥

§ १३) हस्तोज्ज्वलोऽसौ नखशीतरश्मि-
स्तस्यास्तुला नाञ्चति युक्तमेतत् ।
तथापि चित्राधिककान्तिशोभी
स्वातिप्रकाश च चकार चित्रम् ॥११॥

§ १४) तस्याः कुचौ मारमदेभकुम्भौ ध्रुव तयोर्यत्परिमौक्तिकश्री ।
रोमावलीवल्लिमिषेण रेजे शुण्डाप्रकाण्डश्च चिरादधस्तात् ॥१२॥

किं घटीयन्त्रस्य दारु काष्ठविशेष । तस्य घटीयन्त्रदारुण अधस्तात् नीचै त्रिवलिकपटात् रेखात्रितयव्याजात् अतनो कामस्य पादविन्यासहेतोश्चरणन्यासनिमित्तात् कल्पित रचित तत् प्रसिद्ध सोपानाना निश्रेणीना त्रितय त्रय विरेजे । रूपकोत्प्रेक्षे । मन्दाक्रान्ता छन्द ॥१०॥ § १३) हस्तेति—तस्या मरुदेव्या हस्तेन हस्तनक्षत्रेणोज्ज्वल शोभमान असौ नखशीतरश्मिर्नखरचन्द्र. तुला तुलाराशि नाञ्चति न प्राप्नोति, एतद् युक्तमुचितम् पक्षे हस्ते करे उज्ज्वल' शोभमानो हस्तोज्ज्वल नख शीतरश्मिरिव नखशीतरश्मि नखचन्द्रस्तुलामुपमा नाञ्चति न लभते सौन्दर्यातिशयादिति यावत् एतत् युक्तम् । तथापि चित्राया चित्रानक्षत्रस्याधिककान्त्या शोभत इत्येवशील चित्राधिककान्तिशोभी सन्नपि स्वातिप्रकाश स्वाते स्वातिनक्षत्रस्य प्रकाशस्त चकारेति चित्रमाश्चर्यम् चन्द्रस्य चित्रानक्षत्रगतत्वे स्वातिनक्षत्रप्रकाशोऽसगत इति भाव । पक्षे चित्राद्भुता याधिककान्तिस्तया शोभत इत्येवशीलोऽपि सन् स्वस्यात्मनोऽतिप्रकाशस्त चकार । श्लेषविरोधाभासौ । उपजातिवृत्तम् ॥११॥ § १४) तस्या इति—ध्रुवमित्युत्प्रेक्षायाम् । तस्या मरुदेव्या कुचौ स्तनौ मारमदेभस्य मदनमत्तमतङ्गजस्य कुम्भौ कटौ आस्तामिति शेष । यत् यस्मात्कारणात् तयो कुचयो परिमौक्तिकश्री परित मुक्ताफलश्री आसीत् । रोमावलीवल्लिमिषेण रोमराजिलताव्याजेन अधस्तात् कुचयोरध शुण्डाप्रकाण्डश्च श्रेष्ठशुण्डादण्डश्च रेजे शुशुभे । स्तनयोरुपरि मौक्तिकहारश्री गजगण्डयोश्च मुक्ताफलश्रीराशीदिति भाव ।

मानो कामदेवके द्वारा यौवनरूपी उद्यानकी वृद्धिके लिए नाभी रूपी नायिकाके पास लगाये हुए घटीयन्त्र—रेंहटकी क्या लकडी ही थी ? और उसके नीचे त्रिवलिके कपटसे कामदेवके पैर रखनेके लिए निर्मित तीन सीढ़ियाँ ही क्या थीं ? ॥१०॥ § १३) हस्तेति—हस्त नक्षत्रपर देदीप्यमान मरुदेवीका नखरूपी चन्द्रमा तुला राशिको प्राप्त नहीं था यह यद्यपि उचित था तथापि चित्रा नक्षत्रकी अधिक कान्तिसे सुशोभित होता हुआ भी स्वाति नक्षत्रके प्रकाशको करता था यह आश्चर्यकी बात थी । (पक्षमे हाथमे शोभा देनेवाला मरुदेवीका चन्द्रतुल्य नख तुला—उपमाको प्राप्त नहीं होता था यह यद्यपि उचित था तथापि नाना प्रकारकी अधिक कान्तिसे सुशोभित होता हुआ वह अपने अत्यधिक प्रकाशको करता था ।) ॥११॥ § १४) तस्या इति—मरुदेवीके स्तन निश्चित ही कामदेव रूपी मदोन्मत्त हाथीके गण्डस्थल थे क्योंकि उनपर सब ओरसे मोतियोंकी शोभा विद्यमान थी (स्तनोंपर मोतियोंका हार पड़ा हुआ था और हाथीके गण्डस्थलमे गजमोती विद्यमान थे) और इसके नीचे रोमराजि रूपी लताके बहाने उस कामदेव रूपी हाथीकी श्रेष्ठ सूँड़ सुशोभित हो रही थी ॥१२॥

§ १५) चिरमुपगतामेता त्यक्तु नभोगसरोगता
कुवलयदृशस्त्वासीदब्जद्वय नयनाननम् ।
अहमपि भवाम्यस्याः कण्ठस्तथाब्जसमाह्वय
इति किल दरस्तस्याः कण्ठात्मतां समगच्छत ॥१३॥

§ १६) वचनाधरौ मृगाक्ष्या मधुरौ तत्राद्यसगतो वर्णः ।
शुकलाल्यश्चरमगत' किंशुकलाल्यस्त्वियान्भेदः ॥१४॥

§ १७) नासाकैतवदीर्घवंशकलितस्तम्भे कुरङ्गीदृशो
भ्रूवल्लीद्वयरज्जुबद्धशिखरे द्राङ्नाट्यजीविस्मरः ।

उत्प्रेक्षा । उपजाति ॥१२॥ § १५) चिरमिति—अब्जद्वयम्—अब्ज च अब्जश्चेत्यब्जौ तयोर्द्वयं जलजद्वय कमल चन्द्रश्चेत्यर्थ , चिर चिरकालेन उपगता प्राप्ताम् एता प्रसिद्धा नभोगसरोगता न विद्यते भोगो यस्य स नभोग , रोगेण सहितमिति सरोगं, नभोगश्च सरोगं चेति नभोगसरोगे तयोर्भावो नभोगसरोगता वा भोग-राहित्य रोगसाहित्य च पक्षे नभसि गच्छतीति नभोगश्चन्द्र सरसि गच्छतीति सरोग कमलं तयोर्भावस्ता नभोगामिता सरोगामिता च त्यक्तु हातु कुवलयदृश उत्पलाक्ष्या मरुदेव्या नयनानन नयन चानन चेति नयनानन प्राण्यङ्गत्वादेकवद्भाव आसीत् । अब्जसमाह्वय अब्जमिति समाह्वयं नाम यस्य तथाभूतोऽहमपि अस्या मरुदेव्या कण्ठो ग्रीवा भवामि, इति किल विचार्य दर कम्बु तस्या मरुदेव्या. कण्ठात्मता कण्ठस्वरूपता समगच्छत् प्रापत् । तस्या नयन कमलसदृश आनन चन्द्रतुल्यं कण्ठश्च शङ्खसनिभो बभूवेति भाव । 'अब्जो धन्वन्तरौ चन्द्रे निचुले क्लीवमम्बुजे । अस्त्री कम्बुनि—' इति विश्वलोचन । उत्प्रेक्षा । हरिणीच्छन्द ॥१३॥ § १६) वचनेति—मृगाक्ष्या मरुदेव्या वचन चाधरश्चेति वचनाधरौ वचोदशनच्छदौ मधुरौ मधुररसयुक्तावास्ताम् । किं तु तत्र द्वयो आद्ये सगत आद्यसगतो वचनसंगत इत्यर्थ वर्णोऽक्षरसमूह शुकलाल्यः शुकवल्लाल्य शुकवचनमिव लालनीय चरमगतोऽधरगतो वर्णो रङ्ग किंशुकलाल्य लालस्य भावो लाल्य किंशुकमिव पलाशपुष्पमिव लाल्य रक्तत्व यस्य तथाभूत इयान् एतावान् भेदो विशेष । व्यतिरेक. । आर्याछन्द ॥१४॥ § १७) नासेति—नाट्येन जीवतीत्येवशीलो नाट्यजीवी स चासौ स्मरश्चेति नाट्यजीविस्मर नर्तकवृत्तियुक्तो मदन. भ्रूवल्लीद्वय भ्रकुटीलतायुगलमेव रज्जू रश्मी ताभ्या वद्ध शिखरमग्रभागो यस्य तथाभूते कुरङ्गीदृशो हरिणाक्ष्या नासाया घ्राणस्य कैतव कपट यस्य तथाभूतो यो दीर्घवंश उन्नतवेणुस्तेन कलित

---

§ १५) चिरमिति—अब्जके तीन अर्थ हैं चन्द्रमा, कमल और शंख। इन तीनमें चन्द्रमा और कमल चिरकालसे प्राप्त हुई नभोगता—भोगराहित्य (पक्षमें आकाशगामित्व) सरोगता—रोगसाहित्य (पक्षमे सरोगामित्व) को छोड़नेके लिए कुवलयके समान नेत्रोंवाली मरुदेवीके नेत्र और मुख बन गये अर्थात् कमल नेत्र बन गया और चन्द्रमा मुख बन गया। अब शंख विचार करता है कि मैं भी अब्ज नाम वाला हूँ अतः मैं भी इसका कण्ठ हुआ जाता हूँ यह विचार कर ही मानो शख उसकी कण्ठरूपताको प्राप्त हो गया था ॥१३॥ § १६) वचनेति—मृगनयनी मरुदेवीके वचन और ओठ दोनों ही मधुर थे। उनमें वचनसे संगत वर्ण—अक्षर समूह शुकलाल्य था अर्थात् शुकके वचनके समान लालनीय था और ओष्ठ संगत वर्ण—रग, पलाश पुष्पके समान लालिमासे युक्त था इतना ही दोनोंमे भेद था ॥१४॥ § १७) नासेति—नाटक द्वारा आजीविका करनेवाले कामदेवने, भ्रकुटी लताओंके युगलरूपी रस्सियोंसे जिसका अग्रभाग बँधा हुआ था ऐसे उस मृगनयनी

§ २२) सुत्रामा सूत्रधारोऽभूच्छिल्पिनः कल्पजा सुराः ।
यत्र तत्पुरसौन्दर्यं को वा वर्णयितुं क्षमः ॥१८॥

§ २३) यत्र पण्यवीथिकासु सकलभवनानीव सकल-भवनानि मदनागमोचितरसालसालपनसहितविटपालिपालिताभिर्मृदुलवल्लीभिरञ्चितानि व्यशोभन्त[1] । यत्र च सुरसालावलीव सुरसालावली सदाखण्डलसद्विचाररमणीया तथापीय च मरालीगतिहृद्या, सा पुनरमराली-

§ २२) सुत्रामेति—यत्र पुरे सुत्रामा वज्री इन्द्र इत्यर्थ सूत्रधारो निर्देशक कल्पजा स्वर्गोत्पन्ना सुरा अमरा शिल्पिन कार्यकरा अभूवन् तस्य पुरस्य सौन्दर्यमिति तत्पुरसौन्दर्यं तन्नगरसुन्दरता वर्णयितु समाख्यातु को वा क्षम को वा समर्थ । न कोऽपीत्यर्थ ॥१८॥ § २३) यत्रेति—यत्रायोध्यापुर्याम् पण्यवीथिकासु आपणरथ्यासु सकलभवनानि निखिलनिकेतानि सकलभानि करिशावकसहितानि च तानि वनानि चेति सकलभवनानि तद्वत् व्यशोभन्त शुशुभिरे । अयोभयो सादृश्यमाह—पूर्वं सकल-भवनपक्षे—मदनागमस्य कामशास्त्रस्य उचितानि योग्यानि रसालसानि शृङ्गारादिरसभरमन्थराणि यानि आलपनानि आभाषणानि तै सहिता ये विटपा प्रधानविटास्तेषामालि पङ्क्तिस्तया पालिताभि रक्षिताभि मृदुलवल्लीभि. मृदुलाश्च ता वल्ल्यश्च ताभि कोमलकायकामिनीभिरञ्चितानि शोभितानि । अथ सकलभ-वनपक्षे—मदनागो मदनवृक्ष मोचा कदली, तयोर्द्वन्द्व , मदनागमोचे सजाते येषा ते मदनागमोचिता रसालश्च सालश्च पनसश्चेति रसालसालपनसा आम्रसर्जपनसा मदनागमोचिताश्च ते रसालसालपनसा इति मदनागमोचितरसालसालपनसास्तेषा विटपाना शाखाना या आलि. पङ्क्तिस्तया पालिताभि. रक्षिताभि मृदुलवल्लीभि मृदवश्च ता लवल्ल्यश्चेति मृदु-लवल्ल्य ताभि कोमलताभि 'वल्ली स्यादजमोदाया व्रतत्यामपि योषिति' इति मेदिनी । अञ्चितानि शोभितानि । यत्र चायोध्याया सुरसालावली शोभना रसाला आम्रवृक्षा इति सुरसालास्तेषामावली पङ्क्ति सुरसालावलीव सुराणा देवाना सालवृक्षा सुरसाला: कल्पवृक्षास्तेषामावलीव पङ्क्तिरिव । उभयो सादृश्यमाह—सदाखण्डलसद्विचाररमणीया तत्र पूर्वं आम्रवृक्षपङ्क्तिपक्षे—सदा सर्वदा अखण्ड निरन्तराय यथा स्यात्तथा लसन् शोभमानो यो वीना कोकिलादिपक्षिणा चार सचारस्तेन रमणीयो, कल्पवृक्षपङ्क्तिपक्षे—सदा सर्वदा आखण्डलस्य सहस्राक्षस्य सद्विचारेण समीचीनविहारेण रमणीया मनोहरा । इत्थ सादृश्य निरूप्य व्यतिरेक निरूपयति—तथापि—उक्तप्रकारेण सादृश्ये सत्यपि इय च शोभनाम्रवृक्षपङ्क्तिश्च मरालीगतिहृद्या मरालीना हसीना गत्या हृद्या मनोहरा सा पुन कल्पवृक्षपङ्क्ति अमरालीगतिहृद्या मरालीना गत्या हृद्या न

गर्वको नष्ट करनेवाली अयोध्या नामकी कोई नगरी बनायी । § २२) सुत्रामेति—जहाँ इन्द्र निर्देशक था और स्वर्गके देव कारीगर थे उस नगरकी सुन्दरताका वर्णन करनेके लिए कौन समर्थ है ॥१८॥ § २३) यत्रेति—जहाँ बाजारकी गलियोंमे सकलभवन—सम्पूर्ण भवन सकलभ-वन—हाथियोंके बच्चोंसे सहित वनोंके समान सुशोभित होते थे क्योंकि जिस प्रकार सकलभवन, कामशास्त्रके योग्य रससे अलस आभाषणसे सहित विट मनुष्योंकी पंक्तिसे पालित कोमलांगी स्त्रियोंसे सुशोभित थे उसी प्रकार वन भी मदन वृक्ष और केलाके वृक्षोंसे युक्त आम सागौन तथा कटहल वृक्षोंकी शाखाओंकी पक्तिसे पालित कोमल लताओंसे सुशोभित थे । जिस अयोध्यामे सु-रसालावली—उत्तम आम्र वृक्षोंकी पक्ति सुरसालावली—कल्प वृक्षोंकी पक्ति समान थी क्योंकि जिस प्रकार आम्र वृक्षोंकी पंक्ति सदा अखण्डरूपसे शोभायमान पक्षियोंके सचारसे रमणीय थी उसी प्रकार कल्पवृक्षोंकी पक्ति भी सदा आखण्डल—इन्द्रके उत्तम सचारसे रमणीय थी किन्तु आम्र वृक्षोंकी पक्ति मराली गतिहृद्य—हसीकी गतिसे सुन्दर थीं और कल्पवृक्षोंकी पक्ति अमराली गतिहृद्य—हसीकी गतिसे सुन्दर नहीं थी

१. विशोभन्ते क० ।

गतिहृद्या। सुमनःसमूहाः सुमनःसमूहा इव सामोदभ्रमरहिताः किंतु वनार्हसमुन्मेषा न वनार्हसमुन्मेषाश्च। राजहंसा इव राजहंसाः सरसान्तरङ्गविभवमाश्रिताः किंतु भोगमनोहरोचितोल्लासा नभोगमनोहरोचितोल्लासाश्च। निर्जरजना इव निर्जरजनाः सुरतानन्दबन्धुराः किंतु वनोविहारसक्ता अवनोविहारसक्ताश्च। ललिताप्सरःकुलानीव ललिताप्सरःकुलानि स्वर्णस्थितिकलितानि

भवति अमरालीगतिहृद्या पक्षे अमराणां देवानामाली पङ्क्तिस्तस्या गत्या हृद्या मनोहारिणी। यत्रायोध्यायां सुमनःसमूहा विद्वत्समूहाः सुमनःसमूहा इव पुष्पसमूहा इव व्यशोभन्त। उभयोः सादृश्यमाह—सामोदभ्रमरहिताः तत्र विद्वत्समूहपक्षे—आमोदेन हर्षेण सहिताः सामोदाः भ्रमेण रहिता भ्रमरहिताः सन्देहरहिताः सामोदाश्च ते भ्रमरहिताश्चेति सामोदभ्रमरहिताः. पुष्पसमूहपक्षे आमोदेन जविनिर्हारिगन्धेन सहिता इति सामोदाः भ्रमरेभ्यः षट्पदेभ्यो हिता इति भ्रमरहिताः. सामोदाश्च ते भ्रमरहिताश्चेति सामोदभ्रमरहिताः.। इत्थं सादृश्यं निरूप्य व्यतिरेकं निरूपयति—किंतु वनार्हसमुन्मेषाः नवनार्हसमुन्मेषाश्च पुष्पसमूहाः वनार्हः काननयोग्यः समुन्मेषो विकासो येषां ते तथाभूताः, विद्वत्समूहास्तु वनार्हसमुन्मेषा न भवन्तीत्यवनार्हसमुन्मेषाः पक्षे नवनस्य स्तवनस्य अर्हो योग्यः समुन्मेषो येषां तथाभूताः। यत्रायोध्यायां राजहंसा मरालविशेषाः 'राजहंसास्तु चञ्चुचरणैर्लोहितैः सिताः' इत्यमरः, राजहंसा इव नृपोत्तमा इव व्यशोभन्त। उभयोः सादृश्यमाह—सरसान्तरङ्गविभवमाश्रिताः तत्र पूर्वं मरालविशेषपक्षे—सरसां तडागानां तरङ्गविभवं कल्लोलैश्वर्यम् आश्रिताः प्राप्ताः, नृपोत्तमपक्षे सरसः सस्नेहः शृङ्गारादिरससहितो वा योऽन्तरङ्गविभवो हृदयैश्वर्यं तम् आश्रिताः प्राप्ताः। एवं सादृश्यं निरूप्य व्यतिरेकं निरूपयति—किंतु भोगमनोहरोचितोल्लासाः नृपोत्तमपक्षे—भोगैः पञ्चेन्द्रियविषयैर्मनोहरा रमणीया उचितोल्लासा योग्यहर्षा येषां तथाभूताः मरालविशेषपक्षे—भोगमनोहरोचितोल्लासा न भवन्तीति नभोगमनोहरोचितोल्लासाः पक्षे नभसि गच्छन्तीति नभोगाः पक्षिणस्तेषु मनोहरो मनोज्ञ उचितोल्लासो येषां तथाभूताः। यत्र निर्जरजनाः तरुणजना निर्जरजना इव देवा इव व्यशोभन्त। उभयोः सादृश्यमाह—सुरतानन्दबन्धुराः तरुणजनाः सुरतस्य सम्भोगस्यानन्देन सुखेन बन्धुराः सहिताः देवाश्च सुराणां भावः सुरता देवत्वं तस्या आनन्देन बन्धुराः सहिताः। एवं सादृश्यं निरूप्य व्यतिरेकं

पक्षमें देवोंकी पङ्क्तिकी गतिसे सुन्दर थी। जहाँ सुमनःसमूह—विद्वानोंके समूह सुमनःसमूह—फूलोंके समूहके समान थे क्योंकि जिस प्रकार विद्वानोंके समूह सामोदभ्रमरहित—हर्षसहित तथा भ्रमरहित थे उसी प्रकार फूलोंके समूह भी सामोदभ्रमरहित—सुगन्धसे सहित तथा भ्रमरोंके लिए हितकारी थे किन्तु दोनोंमें विशेषता थी—फूलोंके समूह तो वनार्हसमुन्मेष—वनके योग्य विकाससे सहित थे और विद्वानोंके समूह नवनार्हसमुन्मेष—वनके योग्य विकाससे सहित नहीं थे (पक्षमें नवन—स्तवनके योग्य विकाससे सहित थे)। जहाँ राजहंस—श्रेष्ठराजा राजहंस—राजहंस पक्षियोंके समान थे क्योंकि जिस प्रकार श्रेष्ठ राजा सरसान्तरङ्गविभवमाश्रित—स्नेहसहित अन्तरंगके विभवको प्राप्त थे उसी प्रकार राजहंसपक्षी भी सरसांतरङ्गविभवमाश्रिताः—तालाबोंकी लहरोंके विभवको प्राप्त थे। किन्तु दोनोंमें परस्पर भेद था श्रेष्ठ राजा भोगमनोहरोचितोल्लास—भोगोंके मनोहर तथा योग्य उल्लाससे सहित थे परन्तु राजहंस पक्षी नभोगमनोहरोचितोल्लास—भोगोंके मनोहर तथा योग्य उल्लाससे सहित नहीं थे (पक्षमें नभोग—पक्षियोंके मनोहर तथा योग्य उल्लाससे सहित थे)। जहाँ निर्जरजन—तरुणपुरुष निर्जरजन—देवसमूहके समान थे क्योंकि जिस प्रकार तरुण पुरुष सुरतानन्दबन्धुर—सम्भोगके आनन्दसे सहित थे उसी प्रकार देवसमूह भी सुरतानन्दबन्धुर—देवपनाके आनन्दसे सहित थे। किन्तु दोनोंमें परस्पर भेद था क्योंकि देवसमूह वनोविहारसक्त—नदीयोंमें विहार करनेमें लीन थे और तरुण पुरुष अवनोविहारासक्त—नदीयोंमें विहार करनेमें लीन नहीं थे (पक्षमें अवनी—पृथ्वीतलपर विहार

मञ्जुगुञ्जन्मनोज्ञहंसकानि विलोलोर्मिकोज्ज्वलानि सर्वतोमुखकान्तिमधुराणि कमलाधिकशोभाञ्चितानि, किंतु विकचपद्मवदनानि सकचपद्मवदनानि। सुपर्वसुन्दरास्तेजनास्तेजनाश्च तथापि कृशानु-

---

दर्शयति—किंतु देवा वनीविहारसक्ता वनीष्वटवीषु विहारे विहरणे सक्ताः, तरुणजनास्तु वनीषु विहारे सक्ता न भवन्तीति अवनीविहारसक्ताः पक्षे अवन्या पृथिव्या विहारे सक्ता इति अवनीविहारसक्ताः। यत्र ललिताप्सरसां शोभनजलतडागानां कुलानि समूहाः ललिताप्सरःकुलानीव सुन्दरदेवाङ्गनासमूहा इव व्यशोभन्त। उभयोः सादृश्यं यथा स्वर्णस्थितिकलितानि तत्र तडागसमूहपक्षे सुष्ठु अर्णो जलं स्वर्णं तस्य स्थित्या कलितानि सहितानि, सुन्दरदेवाङ्गनासमूहपक्षे—स्वर्णस्य काञ्चनस्य स्थित्या कलितानि सहितानि। मञ्जुगुञ्जन्मनोज्ञहंसकानि तत्र तडागसमूहपक्षे—मञ्जु मनोहरं यथा स्यात्तथा गुञ्जन्तः शब्दं कुर्वन्तो मनोज्ञा मनोहरा हंसा मराला येषु तानि, देवाङ्गनासमूहपक्षे मञ्जु मनोहरं गुञ्जन्ति शब्दं कुर्वाणानि मनोज्ञहंसकानि मनोहरनूपुराणि येषां तानि, विलोलोर्मिकोज्ज्वलानि तत्र तडागसमूहपक्षे विलोला अतिचपला ऊर्मयस्तरङ्गा यस्मिन्स्तथाभूतं यत् कं जलं तेनोज्ज्वलानि, अथवा विलोला अतिचपला या ऊर्मिकास्तरङ्गास्ताभिरुज्ज्वलानि 'ऊर्मिका त्वङ्गुलीये स्यात्तरङ्गे मधुपध्वनौ' इति विश्वलोचनः। देवाङ्गनासमूहपक्षे—विलोलाभिश्चपलाभिरूर्मिकाभिरङ्गुलीयकैरुज्ज्वलानि शोभितानि, सर्वतोमुखकान्तिमधुराणि तत्र तडागसमूहपक्षे—सर्वतोमुखस्य जलस्य कान्त्या दीप्त्या मधुराणि मनोहराणि 'कबन्धमुदकं पाथः पुष्करं सर्वतोमुखम्' इत्यमरः, देवाङ्गनासमूहपक्षे सर्वतोमुखी सर्वतः प्रसरणशीला या कान्तिस्तया मधुराणि मनोहराणि, कमलाधिकशोभाञ्चितानि तत्र तडागपक्षे—कमलानां नीराणां नीरजानां वा या अधिकशोभा तया अञ्चितानि शोभितानि, देवाङ्गनासमूहपक्षे— कमलाया लक्ष्म्या अधिका सातिशया या शोभा तयाञ्चितानि 'कमलं जलजं नीरे' 'कमला श्रीवरस्त्रियाम्' इत्युभयत्रापि विश्वलोचनः। एवं सादृश्यं निरूप्य व्यतिरेकं निरूपयति—किंतु विकचपद्मवदनानि तडागसमूहपक्षे विकचानि प्रफुल्लानि पद्मानि कमलान्येव वदनानि मुखानि येषां तानि, पक्षे केशरहितकमलमुखानि, देवाङ्गनासमूहपक्षे सकचानि केशसहितानि पद्मवदनानि कमलवन्मुखानि येषां तानि। यत्रायोध्यायां ते प्रसिद्धा जना मनुष्याः तेजना इव वंशा इव व्यशोभन्त 'वंशे त्वक्सारकर्मारत्वचिसारतृणध्वजाः।

करनेमें लीन थे) जहाँ ललिताप्सरःकुल—सुन्दर जलसे युक्त तालाबोंके समूह ललिताप्सरःकुल—सुन्दर अप्सराओंके समूहके समान थे क्योंकि जिस प्रकार तालाबोंके समूह स्वर्णःस्थितिकलित—उत्तम जलकी स्थितिसे सहित थे उसी प्रकार अप्सराओंके समूह भी स्वर्णस्थितिकलित—सुवर्णकी स्थितिसे सहित थे, जिस प्रकार तालाबोंके समूह मञ्जुगुञ्जन्मनोज्ञहंसक—मधुर शब्द करते हुए हंस पक्षियोंसे सहित थे उसी प्रकार अप्सराओंके समूह भी मधुर शब्द करते हुए नूपुरोंसे सहित थे, जिस प्रकार तालाबोंके समूह विलोलोर्मिकोज्ज्वल—चंचल लहरोंसे शोभायमान थे उसी प्रकार अप्सराओंके समूह भी विलोलोर्मिकोज्ज्वल—चंचल अंगूठियोंसे शोभायमान थे, जिस प्रकार तालाबोंके समूह सर्वतोमुखकान्तिमधुर—जलकी कान्तिसे मधुर थे उसी प्रकार अप्सराओंके समूह भी सर्वतोमुखकान्तिमधुर—सब ओर फैलनेवाली कान्तिसे मनोहर थे और जिस प्रकार तालाबोंके समूह कमलाधिकशोभाञ्चित—कमलों अथवा जलकी अधिक शोभासे सहित थे उसी प्रकार अप्सराओंके समूह भी कमलाधिकशोभाचित—लक्ष्मीसे भी अधिक शोभासे युक्त थे। किन्तु दोनोंमें परस्पर भेद था क्योंकि तालाबोंके समूह विकचपद्मवदन थे—खिले हुए कमलरूपी मुखोंसे सहित थे (पक्षमें केशरहित कमलरूपी मुखोंसे सहित थे) और अप्सराओंके समूह सकचपद्मवदन थे—केशसहित कमलतुल्य मुखोंसे सहित थे। जहाँके प्रसिद्ध मनुष्य बाँसोंके समान थे क्योंकि जिस प्रकार मनुष्य सुपर्वसुन्दर—देवोंके समान सुन्दर थे उसी प्रकार बाँसोंके समूह भी सुपर्वसुन्दर—अच्छी-अच्छी पोरोंसे सुन्दर थे किन्तु दोनोंमें

भावास्पदत्वमकृशानुभावास्पदत्व मुक्तास्थानत्वममुक्तास्थानत्व चेति परस्परभेदः। यत्र च राजेव राजा सकलकलावल्लभः कुवलयानन्दसदायकश्च, किंतु दीनबन्धुर्नदीनबन्धुरलीकविप्रियो नालीकविप्रियः, क्षत्राधिपपतिर्नक्षत्राधिपपतिर्वसुधावैभवमनोहरश्च।

शतपर्वा यवफलो वेणुमस्करतेजना.' इत्यमर., उभयो' सादृश्यमाह—सुपर्वसुन्दरा. ते जना अयोध्यावासिनो मनुजा सुपर्वाणो देवा इव सुन्दरा इति सुपर्वसुन्दरा वंशा सुपर्वभि सुन्दरा इति सुपर्वसहिता., एव सादृश्यं निरूप्य परस्परभेद दर्शयति—तथापि कृशानुभावास्पदत्व—वशेषु कृशानुभावस्याग्निसद्भावस्यास्पदत्व स्थानत्वम् पक्षे कृशोऽल्पो योऽनुभावस्तस्यास्पदत्वम् जनेषु कृशानुभावास्पदत्व न भवतीत्यकृशानुभावास्पदत्वं पक्षेऽकृशो महान् योऽनुभाव. प्रभावस्तस्य आस्पदत्व स्थानत्व, मुक्तास्थानत्व मुक्ताना मुक्ताफलाना स्थानत्व तेजनेषु वशेषु पक्षे मुक्तं त्यक्तमास्थान सभासनिवेशन येषा तेषा भावस्तत्त्वम्, जनेषु मनुष्येषु अमुक्तास्थानत्व मुक्ताना मुक्ताफलाना स्थानत्व न भवतीति तथा पक्षे त्यक्तसभासनिवेशन न भवति तत्रत्या मनुष्या सभासनिवेशनार्हा आसन्निति परस्परभेद । वंशाना मुक्तास्थानत्वं यथा—'द्विपेन्द्रजीमूतवराहशङ्खमत्स्याहिशुक्त्युद्भववेणुजानि। मुक्ताफलानि प्रथितानि लोके तेषा तु शुक्त्युद्भवमेव भूरि' इत्यगस्त्य । यत्र च राजा भूपालो राजेव चन्द्र इव व्यशोभत। उभयो सादृश्य यथा—सकलकलावल्लभ सकलकलाना चतु षष्टिकलाना वल्लभ स्वामी भूपाल सकलकलाना षोडशकलाना वल्लभ. स्वामी चन्द्र., कुवलयानन्दसदायकश्च कुवलय पृथिवीमण्डल तस्यानन्दसदायको हर्षप्रदायको भूपाल, कुवलयानामुत्पलानामानन्दसदायको विकासप्रदायकश्चन्द्र । इत्थ सादृश्य निरूप्य व्यतिरेक दर्शयति—किंतु दीनबन्धुर्नदीनबन्धुः, भूपालो दीनाना बन्धुर्हितकर इति दीनबन्धु चन्द्रस्तु दीनबन्धुर्न भवतीति नदीनबन्धु पक्षे नदीना सरितामिन. स्वामी नदीन समुद्रस्तस्य बन्धु, अलीकविप्रियो नालीकविप्रिय भूपालोऽलीकस्य मिथ्याभाषणस्य विप्रियो विरोधी चन्द्रस्तु तथा न भवतीति नालीकविप्रिय पक्षे नालीकाना पद्मखण्डाना विप्रियो विरोधी। 'नालीक पद्मखण्डेऽपि' इति विश्वलोचन । क्षत्राधिपतिर्नक्षत्राधिपति भूपाल क्षत्राणामधिपति· चन्द्रस्तु तथा न भवतीति नक्षत्राधिपति. पक्षे नक्षत्राणा ताराणामधिपतिरिति, वसुधावैभवमनोहरो नवसुधावैभवमनोहरश्च भूपालो वसुधाया पृथिव्या वैभवेन समृद्ध्या मनोहरश्चन्द्रस्तु तथा न भवतीति नवसुधावैभवमनोहर पक्षे नवसुधाया प्रत्यग्रपीयूपस्य वैभवेन मनोहर ।

परस्पर भेद था क्योंकि बाँसोंके समूह कृशानुभाव—अल्पप्रभावके आस्पद-स्थान थे (पक्षमे कृशानु-अग्निके सद्भावसे सहित थे) और मनुष्य अकृशानुभावास्पद—बहुत भारी प्रभावके स्थान थे। बाँसोंके समूह मुक्तास्थानत्व—आस्थान—सभासंनिवेशसे मुक्त थे (पक्षमें मोतियोंके स्थान थे) और मनुष्य अमुक्तास्थानत्व—सभासनिवेशसे मुक्त नहीं थे अर्थात् सभाओंमें स्थान पानेके योग्य थे। जहाँ राजा—भूपाल राजा—चन्द्रमाके समान था क्योंकि जिस प्रकार भूपाल सकलकलावल्लभ—समस्त—चौसठ कलाओंका स्वामी था उसी प्रकार चन्द्रमा भी सकलकलावल्लभ—सोलह कलाओंका स्वामी था और जिस प्रकार भूपाल कुवलयानन्दसंदायक—पृथिवीमण्डलको आनन्ददायक था उसी प्रकार चन्द्रमा भी कुवलयानन्दसंदायक—नीलकमलोंको आनन्ददायक था किन्तु दोनोंमे परस्पर भेद था क्योंकि भूपाल दीन बन्धु था—दीनोका हितैषी था और चन्द्रमा नदीनबन्धु था—दीनोंका हितैषी नहीं था (पक्षमे समुद्रका बन्धु था), भूपाल अलीकविप्रिय—मिथ्याभाषणका विरोधी था और चन्द्रमा नालीकविप्रिय था—मिथ्याभाषणका विरोधी नहीं था (पक्षमे कमलसमूहका विरोधी था), भूपाल क्षत्राधिपति—क्षत्रों—क्षत्रियोंका अधिपति था और चन्द्रमा नक्षत्राधिपति—क्षत्रोंका अधिपति नहीं था (पक्षमें नक्षत्रोंका अधिपति था) भूपाल वसुधावैभवमनोहर—पृथिवीके वैभवसे मनोहर था और चन्द्रमा नवसुधावैभवमनोहर—पृथिवीके

लालनीया पद्मा, भ्रमरहितमनोरमामवदाता मालायुगली, जीवजीव प्रत्यानन्दसदायिनी सकलाञ्चितवृत्तिमिन्दुमण्डली, स्वनायकवक्षःस्थलमिव पद्माधिकोल्लासकर पुर परिस्फुरन्त भास्वन्त, सरसयुक्त पद्मावृत शातकुम्भकुम्भयुग, विमलसर स्थितिसमासक्त मीनद्वय, निजवल्लभमिव कमलाञ्चितैः कवीश्वरै सस्तुत कुवलयप्रसाधन निर्मल सरोवरं, सदुच्चलहरिधुरधर सज्जनक्रमकर-

---

स्ववल्लभयश सततिमिव सुरनागेन देवगजेन लालनीया पक्षे सुरेषु नाग सुरनाग सुरश्रेष्ठ इन्द्र इत्यर्थस्तेन लालनीया प्रशसनीया, पद्मा लक्ष्मी। निजकान्तकीर्तिमिव भ्रमरहितमनोरमा भ्रमरेभ्यो हिता भ्रमरहिता भ्रमरहिता चासौ मनोरमा चेति भ्रमरहितमनोरमा ता पक्षे भ्रमेण रहिता भ्रमरहिता सा चासौ मनोरमा चेति ता अवदातामुज्ज्वला मालायुगली स्रग्द्वयीम्। निजकान्तकीर्तिमिव जीवजीव प्रति चकोर प्रति पक्षे प्राणिन प्राणिन प्रति आनन्दस्य हर्षस्य सदायिनी प्रदायिका सकलाञ्चितवृत्ति सकला कलासहिता अञ्चिता शोभिता च वृत्तिर्यस्यास्ता पक्षे सकलै सर्वैरञ्चिता पूजिता श्लाघिता वृत्तिर्यस्यास्ता इन्दुमण्डली चन्द्रमण्डलीम्। स्वनायकवक्षस्थलमिव स्ववल्लभोर स्थलमिव पद्माधिकोल्लासकर पद्माना कमलाना पक्षे पद्माया लक्ष्म्या अधिकोल्लासस्यातिविकासस्य पक्षे प्रभूतहर्षस्य करं विधायक पुरोऽग्रे परिस्फुरन्त देदीप्यमान भास्वन्त सूर्यं, स्वनायकवक्ष स्थलमिव सरसयुक्त मालासहित अथवा सरस सजल युक्त योग्य पक्षे हारसहितं पद्मावृत पद्मेन कमलेन आवृत सवृत पक्षे पद्मया लक्ष्म्या वृत स्वीकृत शातकुम्भकुम्भयुग स्वर्णकलशयुगल। स्वनायकवक्ष-स्थलमिव विमलसर स्थितिसमासक्त विमल निर्मल यत्सर कासारस्तस्मिन् स्थितिरवस्थान तया समासक्त सहित पक्षे विमलसरस्य निर्मलहारस्य स्थित्या समासक्त अस्मिन् पक्षे 'खर्परे शरि विसर्गलोपो वा वक्तव्य' इति वार्तिकेन वैकल्पिको विसर्गलोप, मीनद्वय पाठीनयुगलम्। निजवल्लभमिव स्वजीवितेश्वरमिव कमलाञ्चितै—कमलै पद्मैरञ्चितै शोभितै पक्षे कमलया लक्ष्म्या अञ्चितै पूजितै सत्कृतैरित्यर्थ कवीश्वरै के जले विद्यमाना वय पक्षिण इति कवयस्तेषामीश्वरास्तै जलपक्षिश्रेष्ठैरित्यर्थ पक्षे कवय काव्यकर्तारस्तेषामीश्वरै कविश्रेष्ठै सस्तुत परिचित पक्षे सम्यक्प्रकारेण स्तुत, कुवलयप्रसाधन—कुवलयानि नीलकमलानि प्रसाधनानि समलकरणानि यस्य त पक्षे कोर्वलय कुवलय महीमण्डल तस्य प्रसाधनमलंकरण निर्मल निष्पङ्क

लक्ष्मीको देखा। फिर अपने पतिकी कीर्तिके समान भ्रमरहितमनोरम—भ्रमरोंके लिए हितकारी, मनोहर (पक्षमें भ्रमसे रहित मनोहर) और उज्ज्वल मालाओंके युगलको देखा। तदनन्तर अपने पतिकी कीर्तिके समान जीवजीवं प्रति आनन्दसंदायिनी—चकोरके लिए आनन्द देनेवाली (पक्षमे प्रत्येक प्राणीको आनन्द देनेवाली) और सकलाञ्चितवृत्ति—समस्त कलाओंसे सुशोभित सद्भावसे युक्त (पक्षमे सबके द्वारा प्रशसित प्रवृत्तिसे युक्त) चन्द्रमण्डलको देखा। फिर अपने पतिके वक्षःस्थलके समान पद्माधिकोल्लास—कर-कमलोंके अत्यधिक विकासको करनेवाले (पक्षमे लक्ष्मीके अत्यधिक हर्षको करनेवाले, सामने प्रकाशमान सूर्यको देखा। तत्पश्चात् अपने पतिके वक्षःस्थलके समान सरसंयुक्त—मालासे सहित अथवा सजल और योग्य (पक्षमे हारसे सहित) तथा पद्मावृत—कमलसे ढँके हुए (पक्षमे लक्ष्मीसे स्वीकृत) सुवर्णकलशके युगलको देखा। फिर अपने पतिके वक्षःस्थलके समान विमलसर-स्थितिसमासक्त—निर्मल सरोवरमे रहनेवाले (पक्षमे निर्मलहारकी स्थितिसे युक्त) मछलियोंके युगलको देखा। तदनन्तर अपने पतिके समान कमलाञ्चितैः कवीश्वरैः संस्तुत—कमलोंसे सुशोभित श्रेष्ठ जलपक्षियोंसे सेवित (पक्षमे लक्ष्मीसे सम्मानित बडे-बडे कवियोंके द्वारा अच्छी तरह स्तुत), कुवलयप्रसाधन—नीलकमलरूप अलकारोंसे सहित (पक्षमें पृथिवी मण्डलको अलंकृत करनेवाले) तथा निर्मल—पंकरहित (पक्षमें दोषरहित) सरोवरको देखा। फिर अपने पतिके समान सदुच्चलहरिधुरन्धर—उत्तम तथा ऊँची लहरोंसे श्रेष्ठ (पक्षमे उत्तम तथा उछलते हुए घोडोंसे श्रेष्ठ) सज्जनक्रमकर—स्थित नाकू और मगरोंसे

मुग्रतरवारिमज्जितक्ष्माभृत्कुल पारावार, सद्वृत्तरत्नमण्डित सिंहासन, सुरुचिरमणिमनोहर सुरभवन, बहुशोभनागमहित फणीन्द्रभवन, लोलाशुकविराजित रत्नसचय, प्रतापिन निर्धूमपावक च विलोकयामास ।

§ २९) दृष्ट्वेमान् षोडश स्वप्नानद्राक्षीन्मदिरेक्षणा ।
प्रविशन्तं स्ववक्त्राब्ज पुङ्गव कुन्दनिर्मलम् ॥२२॥

पक्षे निर्दोष सरोवर कासारं । निजवल्लभमिव सदुच्चलहरिधुरवर सत्य समीचीना उच्चा उन्नताश्च या लहरयस्तरङ्गास्ताभिर्धुरवर श्रेष्ठ पक्षे सन्त प्रशस्ता उच्चला उच्चलन्तश्च ये हरयोऽश्वास्तैर्धुरवर श्रेष्ठ, सज्जनक्रमकर सज्जा निभृता मकरा जलजन्तुविशेषा यस्मिंस्तम् पक्षे सज्जनस्य साधोर्य क्रमो रीतिस्तस्य करं विधायक, उग्रतरवारिमज्जितक्ष्माभृत्कुल—अतिशयेनोग्रमुग्रतरम् उन्नततर यद् वारि जल तस्मिन् मज्जितानि ब्रुडितानि क्ष्माभृत्कुलानि पर्वतसमूहा यस्मिन् तथाभूत पक्षे उग्रतरवारिणा तीक्ष्णकृपाणेन मज्जितानि नाशितानि क्ष्माभृत्कुलानि राजसमूहा येन तथाभूत पारावार समुद्रम् । निजवल्लभमिव सद्वृत्तरत्नमण्डित सन्ति प्रशस्तानि वृत्तानि वर्तुलानि च यानि रत्नानि तैर्मण्डित शोभित पक्षे सद्वृत्त सच्चरित्रमेव रत्न तेन मण्डित शोभितस्त सिंहासन । निजवल्लभमिव सुरुचिरमणिमनोहर सुरुचय. सुकान्तियुक्ता ये मणयो रत्नानि तैर्मनोहर पक्षे सुष्ठु रुचि प्रीति कान्तिर्वा यासा ता सुरुचयस्तथाभूता या रमणय. स्त्रियस्तासा मनोहरस्त रमणीशब्दस्य बाहुलकाद् ह्रस्वत्वम् । सुरभवन देवभवन देवविमानमित्यर्थ । निजवल्लभमिव बहुशोभनागमहित—बह्वी शोभा येषा ते बहुशोभा ते च ते नागाश्चेति बहुशोभनागास्तैर्महित शोभित पक्षे बहुशोभनश्चासावागमश्चेति बहुशोभनागम सुशास्त्र तेन हितस्त । निजवल्लभमिव लोलाशुकविराजित अशव एवाशुका किरणा लोलाश्च तेऽशुकाश्चेति लोलाशुकास्तैर्विराजित शोभितस्त पक्षे लोलानि चञ्चलानि च तानि अशुकानि वस्त्राणि चेति लोलाशुकानि तैर्विराजितस्त । निजवल्लभमिव प्रतापिन प्रकृष्ट तपतीत्येवशीलस्त पक्षे प्रतापो विद्यते यस्य त निर्धूमपावक च धूम्ररहितानल च विलोकयामास ददर्श । श्लेषोपमालकार । § २९) दृष्ट्वेति—मदिरेक्षणा खञ्जनलोचना मरुदेवी, इमान् पूर्वोक्तान् षोडशस्वप्नान् दृष्ट्वा समवलोक्य स्ववक्त्राब्जं स्वमुखकमल प्रविशन्त कुन्दनिर्मल माघ्यकुसुमवद्धवलं पुङ्गव श्रेष्ठवृषभम् अद्राक्षीत् ददर्श । रूपकाल-

---

सहित (पक्षमें सज्जनोंके क्रमको करनेवाले) और उग्रतरवारिमज्जितक्ष्माभृत्कुल—अत्यन्त गहरे पानीमे डूबे हुए पर्वतोंके समूहसे युक्त (पक्षमे पैनी तलवारके द्वारा राजाओंके समूहको खण्डित करनेवाले] समुद्रको देखा। पश्चात् अपने पतिके समान सद्वृत्तरत्नमण्डित—उत्तम तथा गोल रत्नोंसे सुशोभित (पक्षमें सदाचाररूपी रत्नसे सुशोभित) सिंहासनको देखा। तदनन्तर अपने पतिके समान सुरुचिरमणि मनोहर—देदीप्यमान मणियोंसे मनोहर (पक्षमें उत्तम प्रीति अथवा कान्तिसे युक्त स्त्रियोंसे सुशोभित) देवभक्त देवविमानको देखा। फिर अपने पतिके समान बहुशोभनागमहित—अत्यन्तशोभासे युक्त नागोंसे सुशोभित (पक्षमें अत्यन्त शोभायमान आगमसे हितकारी) नागेन्द्रके भवनको देखा। तदनन्तर अपने पतिके समान लोलांशुकविराजित—चंचल किरणोंसे सुशोभित (पक्षमें चचल वस्त्रोंसे सुशोभित) रत्नराशिको देखा और अन्तमे अपने पतिके समान प्रतापितं—अत्यन्त तपनेवाली (पक्षमे प्रतापसे युक्त) निर्धूम अग्निको देखा। § २९) दृष्ट्वेति—खंजनपक्षीके समान नेत्रोंको धारण करनेवाली मरुदेवीने इन सोलह स्वप्नोंको देखकर अपने मुखकमलमे प्रवेश करते हुए

§ २४) साकेते किल तत्र चित्रनगरे देवाधिराजः स्वयं
नाभिक्ष्माधिपतेर्विधाय चतुरो राज्याभिषेकोत्सवम् ।
तद्देव्याश्च सुपट्टबन्धनविधिं कृत्वैतयोर्विश्वदृक्
सूनुः संभवितेति कौतुकवशात्पूजा व्यधत्ताधिकम् ॥१९॥

§ २५) षड्भिर्मासैर्जिनाधीशे स्वर्गादवतरिष्यति ।
रत्नवृष्टिं दिवो देवाः पातयामासुरादरात् ॥२०॥

§ २६) सा किल रत्नवृष्टिरत्र त्रिभुवनाधिपतिरवतरिष्यतीति कौतुकवशेन समागता स्वर्गसंपदथवा पुण्यकल्पद्रुमप्ररोहपरम्परा यद्वास्मत्तेजसां निराकरणनिदानमद्भुतं तेजोऽत्र समुदेष्यतीति मत्वा तत्सेवार्थं पूर्वमेव समागता नक्षत्रपरम्पराहोस्विज्जगद्गुरुजन्मोत्सवो मयि भवतीत्यमन्दानन्दवशेन लोकपुरुषे कलितताण्डवे जगत्संक्षोभवशेन संजातनिधिगर्भस्रुति किं वा परस्परमनुप्रविष्टा

श्लेषोपमाव्यतिरेकाः ॥ § २४) साकेत इति—साकेतेऽयोध्याभिधाने तत्र पूर्वोक्ते चित्रनगरे विस्मयावहनगरे चतुरो निपुणो देवाधिराज इन्द्रः स्वयं स्वहस्ताभ्यां नाभिक्ष्माधिपतेः—नाभिराजस्य राज्याभिषेकोत्सवं राज्याभिषेकमहं विधाय तद्देव्या मरुदेव्याश्च सुपट्टबन्धनविधिं महिषीपट्टबन्धनविधिं कृत्वा एतयोर्मरुदेवीनाभिराजयोः विश्वदृक् सर्वज्ञस्तीर्थंकरः सूनुः पुत्रः संभविता भविष्यति, इति कौतुकवशात् कुतूहलवशात् अधिकं यथा स्यात् पूजां सपर्यां व्यधत्त चकार किलेतिह्ये ॥ शार्दूलविक्रीडितछन्दः ॥१९॥ § २५) षड्भिरिति—षड्भिर्मासैः षण्मासानन्तरं जिनाधीशे जिनेन्द्रे स्वर्गाद् नाकात् अवतरिष्यति सति देवास्त्रिदशा आदरात् दिवो गगनात् रत्नवृष्टिं पातयामासुः ॥२०॥ § २६) सा किलेति—सा किल देवनिपातिता रत्नवृष्टिः नभश्चरैर्देवविद्याधरैरिति पूर्वोक्तप्रकारेण उत्प्रेक्ष्यमाणा तर्क्यमाणा वसुधारा रत्नधारा 'वसु तोये धने मणौ' इति वैजयन्ती । जगद्भर्तुर्भगवतो हिरण्यं स्वर्णं गर्भे यस्य स हिरण्यगर्भस्तस्य भावस्तां हिरण्यगर्भतां पक्षे ब्रह्मरूपतां प्रकटयितुमिव नाभिनरपालस्य नाभिराजस्य सदनाङ्गणे भवनाजिरे निपपात न्यपतत् इतीति कथमुत्प्रेक्ष्यमाणेत्याह—अत्र किल भवने त्रिभुवनाधिपतिस्त्रिलोकीनाथः अवतरिष्यति जन्म गृहीष्यति, इति कौतुकवशेन समागता समायाता स्वर्गसंपत् त्रिदिवसंपत्तिः अथवा पुण्यमेव कल्पद्रुमः पुण्यकल्पद्रुमः सुकृतमहीरुहस्तस्य प्ररोहाणामङ्कुराणां परम्परा संततिः । यद्वा अस्मत्तेजसां निराकरणस्य निदानमादिकारणम् अद्भुतमाश्चर्यकरं तेजो जिनेन्द्ररूपं अत्र सदने समुदेष्यतीति समुत्पत्स्यत इति मत्वा तत्सेवार्थं पूर्वमेव समागता समायाता नक्षत्रपरम्परा तारासंततिः । आहोस्वित् अथवा जगद्गुरोस्तीर्थंकरस्य जन्मोत्सवो मयि भवति

वैभवसे मनोहर नहीं था (पक्षमें नवीन अमृतके वैभवसे मनोहर था)। § २४) साकेत इति—अयोध्यानामक उस आश्चर्यकारक नगरमें चतुर इन्द्रने स्वयं नाभिराजाका राज्याभिषेक कर उनकी रानी मरुदेवीका पट्टबन्ध किया और इनके सर्वज्ञ पुत्र होनेवाला है इस कौतुकसे उनकी अत्यधिक पूजा की ॥१९॥ § २५) षड्भिरिति—छह माहमें जिनेन्द्र भगवान् स्वर्गसे अवतीर्ण होंगे इस विचारसे देवोंने आदरपूर्वक आकाशसे रत्नवर्षा की ॥२०॥ § २६) सा किलेति—वह रत्नवृष्टि क्या थी मानो यहाँ त्रिलोकीनाथ अवतार लेंगे इस प्रकारके कौतूहलसे आयी स्वर्गकी सम्पत्ति है, अथवा पुण्यरूप कल्पवृक्षोंके अंकुरोंकी परम्परा है, अथवा हमारे तेजके निराकरण करनेका प्रधान कारण आश्चर्यकारक तेज यहाँ उदित होगा यह मानकर उसकी सेवाके लिए पहलेसे ही आयी हुई नक्षत्रोंकी परम्परा है अथवा जगद्गुरु—तीर्थंकर भगवान्‌का जन्मोत्सव मुझमें हो रहा है इस प्रकारके बहुत भारी आनन्दके वशसे लोकरूपी पुरुषके ताण्डव नृत्य करनेपर जगत्‌के क्षोभके वश निधियोंका गर्भस्राव

विद्युदिन्द्रायुधसततिरिति नभश्चरैरुत्प्रेक्ष्यमाणा वसुधारा जगद्भर्तुर्हिरण्यगर्भतां प्रकटयितुमिव नाभिनरपालसदनाङ्गणे निपपात ।

§ २७) रत्नगर्भा धरा जाता हर्षगर्भा. सुरोत्तमाः ।
क्षोभमायाज्जगद्गर्भो गर्भाधानोत्सवे विभो ॥२१॥

§ २८) अथ कदाचिद्गङ्गातरङ्गधवलदुकूलप्रच्छदपर्यङ्कशोभिते सौधे सुप्ता सा मरुदेवी निशायाः पश्चिमे यामे निजकुचयुगलमिवावधीरितधराधरमैन्द्र गज, शृङ्गारसहित परिशोभितं माहारावसक्त वृषभ, स्तम्बेरमकुम्भस्थलनिर्भेदनपटुं गर्जत्पञ्चानन, निजकान्तकीर्तिमिव सुरनाग-

---

इतीरयम् अमन्दानन्दवशेन प्रचुरप्रहर्षवशेन लोक एव पुरुषस्तस्मिन् लोकपुरुषे भुवनमनुजे कलितताण्डवे कृतताण्डवनृत्ये जगता सक्षोभस्य परिस्पन्दनस्य वशेन सजाता समुत्पन्ना निधीना या गर्भस्रुतिर्गर्भस्राव सा । किंवा यद्वा परस्परमरयोऽन्यम् अनुप्रविष्टा मिलिता विद्युदिन्द्रायुधयोस्तडिदिन्द्रधनुषो सतति परम्परा । उत्प्रेक्षालकार । § २१) रत्नेति—विभोर्भगवतो गर्भाधानोत्सवे गर्भकल्याणकमहोत्सवे धरा वसुधा रत्नानि गर्भे मध्ये यस्या रत्नगर्भा जाता । सुरोत्तमा देवोत्तमा हर्षो गर्भे येषा तथाभूता हर्षगर्भा जाता जगता गर्भो जगद्गर्भो जगन्मध्य क्षोभ परिस्पन्दम् आयात् प्राप्नोत् ॥२१॥ § २८) अथेति—अथानन्तर कदाचित् गङ्गातरङ्गवद् देवधुनीकल्लोलवद् विमलो निर्मलो दुकूलप्रच्छद क्षौमोत्तरच्छदो यस्य तथाभूतेन पर्यङ्केन पल्यङ्केन शोभिते विराजिते सौधे प्रासादे सुप्ता सा मरुदेवो निशाया रजन्या पश्चिमेऽन्तिमे यामे प्रहरे निजकुचयुगलमिव स्वस्तनयुगमिव अवधीरितस्तिरस्कृतो धराधरो पर्वतो येन त स्तनयुगपक्षे काठिन्येन गजपक्षे बृहदाकारेणेति भावः ऐन्द्र गज ऐरावतहस्तिन निजकुचयुगलमिव शृङ्गारसहित अरणमार प्राप्ति शृङ्गयोर्विषाणयोरार प्राप्तिरिति शृङ्गारस्तेन सहितं परिशोभित परित शोभासपन्न, महाश्चासौ आरावश्चेति महारावो महाराव एव माहारावो महाशब्दस्तस्मिन् सक्त लीनं वृषभ बलीवर्दं, निजकुचयुगलं तु शृङ्गारेण शृङ्गाररसेन सहित, परिशोभित मा लक्ष्मीस्तयोपलक्षितो यो हारो मुक्तादाम तेनावसक्त युक्तम् । निजकुचयुगलमिव स्तम्बेरमस्य गजस्य कुम्भस्थलयोर्गण्डस्थलयोर्निर्भेदने विदारणे पक्षे पराजयो पटुं समर्थं गर्जत्पञ्चानन गर्जन्मृगेन्द्र । निजकान्तकीर्तिमिव

हो गया है, अथवा परस्परमे मिली हुई विजली और इन्द्रधनुषकी सन्तति ही है इस प्रकार देव और विद्याधरोके द्वारा जिसकी उत्प्रेक्षा की जा रही थी ऐसी वह रत्नोंकी धारा जगत्के स्वामी—तीर्थंकर भगवान्की हिरण्यगर्भताको प्रकट करनेके लिए ही मानो नाभिराजाके भवनके आँगनमे पड़ रही थी। § २७) रत्नेति—भगवान्के गर्भकल्याणकोत्सवके समय पृथिवी रत्नगर्भा हो गयी थी, उत्तमदेव हर्षसे युक्त हो गये थे और जगत्का मध्य क्षोभको प्राप्त हो गया था ॥२१॥ § २८) अथेति—तदनन्तर किसी समय गंगानदीकी तरंगोंके समान निर्मल रेशमी चद्दरसे युक्त पलगसे सुशोभित राजभवनमे सोयी हुई मरुदेवीने रात्रिके पिछले भागमे सोलह स्वप्न देखे। प्रथम ही उसने अपने स्तनयुगलके समान अवधीरितधराधर—स्तनपक्षमे कठोर स्पर्शसे और ऐरावतपक्षमें विशाल आकारसे पर्वतको तिरस्कृत करनेवाला ऐरावत हाथी देखा। फिर अपने ही स्तनयुगलके समान शृंगारसहित—सींगोंकी प्राप्तिसे सहित, (पक्षमे शृंगाररससे सहित) परिशोभित—शोभायमान और माहारावसक्त—जोरदार शब्द करनेवाले (पक्षमें सुन्दर हारसे सहित) वृषभको देखा। तदनन्तर अपने स्तनोंके समान हाथियोंके गण्डस्थलके विदारण करनेमे समर्थ (पक्षमें हाथियोंके गण्डस्थलको पराजित करनेमे समर्थ) गरजते हुए सिंहको देखा। पश्चात् अपने पतिकी कीर्तिके समान सुरनाग—देवगज—ऐरावत हाथीके द्वारा लालनीय (पक्षमे सुरनाग—इन्द्रके द्वारा प्रशंसनीय)

§ ३०) अरुणाम्बर दधाना सध्यारमणी विनिद्रपद्ममुखी ।
देवि ! तव पादसेवा कर्तुमिवायाति कमललोलाक्षी ॥२३॥

§ ३१) लक्ष्म्या समस्तवसुवृद्धिपुषो निवासोऽ-
प्यब्ज तथा वसुमतो वसुभिः परीतम् ।
देवि ! त्वदीयमुखराजविरोधहेतो-
र्नीलालके नवसुमत्त्वमहो दधाति ॥२४॥

§ ३२) तवाननाम्भोजविरोधिनौ द्वा-
वञ्जस्तथाब्ज च पुमास्तु तत्र ।
त्वया जितोऽस्ताचलदुर्गमाप-
स्त्यक्त पुनः क्लीबमुपैति मोदम् ॥२५॥

कार ॥२२॥ § ३०) अरुणाम्बरमिति—दे देवि ! हे राज्ञि ! अरुणाम्बर अरुणेन सूर्यसारथिना सहितमम्बरं अरुणाम्बर लोहितगगनमित्यर्थ पक्षे लोहितवस्त्र दधाना धृतवती, विनिद्रपद्ममेव विकसितकमलमेव मुख यस्या सा पक्षे विनिद्रपद्ममिव मुख यस्यास्तथाभूता, कमलान्येव लोलानि अक्षीणि यस्या सा पक्षे कमले इव लोले ह्यक्षिणी यस्या सा, सध्यैव रमणी सध्यारमणी सध्यास्त्री तव भवत्या पादसेवा चरणशुश्रूषा कर्तुमिव विधातुमिव आयाति समागच्छति । रूपकालकार । आर्याछन्द ॥२३॥ § ३१) लक्ष्म्या इति—हे देवि ! हे राज्ञि ! समस्तवसुवृद्धिपुष समस्ताना सर्वेषा वसुवृद्धि धनवृद्धि पुष्णातीति समस्तवसुवृद्धिपुट् तस्या लक्ष्म्या श्रियो निवासोऽपि वसुमतो धनवत पक्षे सूर्यस्य वसुभि धनै पक्षे किरणै परीतं व्याप्तमपि अब्ज कमल त्वदीयमुखमेव राजा नृपतिश्चन्द्रश्च तस्य विरोधहेतोर्विद्वेषकारणात् नीलालके श्यामकुन्तले वसुमत्त्व धनवत्त्व किरणवत्त्व च न दधाति । रात्रौ नीलालके धृत कमलं प्रातर्निष्प्रभ जातमिति भाव यथा लक्ष्म्या निवासभूतोऽपि धनैर्युक्तोऽपि वा कश्चित् राजविरोधात् स्वस्य धनवत्त्व न प्रदर्शयति तथा कमल लक्ष्म्या निवासभूतमपि वसुभि परीतमपि वा त्वदीयमुखराजविरोधात् स्वस्य वसुमत्त्व धनवत्त्व न दधातीत्यहो आश्चर्यम् । श्लेषकाव्यलिङ्गालकारौ । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥२४॥ § ३२) तवेति—तव भवत्या. आननाम्भोजविरोधिनौ मुखकमलविद्वेषिणौ द्वौ स्त अब्जश्चन्द्र तथा अब्ज कमल च । तत्र द्वयोरब्जयो य पुमान् पुरुषत्वोपेत पुलिङ्गश्च चन्द्र इत्यर्थ स त्वया जित पराभूत सन् अस्ताचलदुर्गं पश्चिमाचलकान्तारम् आपत् लज्जितो भूत्वा पश्चिमाचलकान्तारमगच्छदिति भाव । यत्तु क्लीव पुरुषत्वहीन नपुसकलिङ्ग च कमलमित्यर्थ, तत् त्यक्त सत् उपेक्षित सत् मादं हर्षं विकास च उपैति प्राप्नोति निर्लज्जतया मोदत इति भाव । प्रातश्चन्द्रोऽस्तमेति कमल च विकसतीति

कुन्दकुसुमके समान सफेद बैलको देखा ॥२२॥ § ३०) अरुणाम्बरमिति—हे देवि ! जो लाल आकाश रूपी लालवस्त्रको धारण कर रही है, खिले हुए कमल ही जिसका मुख है तथा कमल ही जिसके चंचल नेत्र हैं ऐसी सन्ध्यारूपी स्त्री तुम्हारे चरणोंकी सेवा करनेके लिए ही मानो आ रही है ॥२३॥ § ३१) लक्ष्म्या इति—हे देवि ! जो सबके धनकी वृद्धिको पुष्ट करनेवाली लक्ष्मीका निवास भी है तथा वसुमान्—धनाढ्य (पक्षमें सूर्य) के वसु—धन (पक्षमें किरणों) से व्याप्त भी है वह कमल तुम्हारे मुखरूपी राजा—भूपाल (पक्षमें चन्द्रमा) से विरोध होनेके कारण श्यामल केशोंके बीच वसुमत्त्व—धनाढ्यपना (पक्षमे किरणोंसे सहितपना) को प्रकट नहीं कर रहा है यह आश्चर्य है ॥२४॥ § ३२) तवेति—तुम्हारे मुखकमलके विरोधी दो हैं एक चन्द्रमा और दूसरा कमल। उन दोनोंमें जो पुरुष—पुलिंग (पक्षमें पौरुषसे सहित) है वह चन्द्रमा तो तुम्हारे द्वारा पराजित होता हुआ अस्ताचलके दुर्गको प्राप्त हो चुका है परन्तु तुमने जिसे नपुंसक समझकर छोड़ दिया था वह कमल हर्ष (विकास) का

§ ३३) इति प्राबोधिकहृद्यतमपद्यपरिपाटीभिर्मङ्गलवाद्यरवघाटीभिश्च प्रबुद्धा सा देवी कृतप्रत्यूषकृत्या कलितमङ्गलनेपथ्या सभामण्डपविभासितसिंहासनाग्रमधिवसन्त नाभिमेदिनीकान्त निजनयनचकोरकुमुदिनीकान्तमासाद्य यथादृष्ट स्वप्नजातं निवेदयामास ।

§ ३४) पृथ्वीशोऽप्यवधिज्ञानप्रबुद्धः स्वप्नसत्फलम् ।
व्याजहार रदोद्योतव्याजहारमय दधत् ॥२६॥

§ ३५) अपि देवि मत्तेभगमने ! मत्तेभदर्शनेन महान्पुत्रस्ते भविता वृषासक्तचित्ते ! वृषनिरीक्षणेन सकललोकाधिपतिः, सिंहमध्ये ! सिंहविलोकनेनानन्तवीर्यो, मालारुचिरकचनिचये ! मालावलोकनेन धर्मतीर्थकर्ता, लक्ष्मीतुलितसौन्दर्यसपन्ने ! लक्ष्मीवीक्षणेन लोकोत्तरविभव', पूर्णचन्द्रानने ! पूर्णचन्द्रदर्शनेन सकलजनानन्दसंदायकः, प्रभाकरनिभमणिगणमण्डिते ! प्रभाकरनिरी-

---

यावत् । श्लेपोत्प्रेक्षे उपजातिवृत्तम् ॥२५॥ § ३३) इतीति—इतीत्थ प्रवोधो जागरण प्रयोजन येषा ते प्रावोधिकास्तेषा हृद्यतमानामतिसुन्दराणा पद्याना श्लोकाना परिपाट्य सततयस्ताभि, मङ्गलवाद्याना रवघाटयश्च शब्दपरम्पराश्च ताभि प्रबुद्धा जागृता सा देवी मरुदेवी राज्ञी कृतानि प्रत्यूषकृत्यानि प्रात कालिककार्याणि यया तथाभूता, कलितं धृत मङ्गलनेपथ्य माङ्गलिकवेषो यया तथाभूता सती सभामण्डपे विभासित यत् सिंहासन तस्याग्रम् अधिवसन्त तत्र तिष्ठन्त निजनयनचकोरयो कुमुदिनीकान्तश्चन्द्रस्त नाभिमेदिनीकान्त नाभिराजम् आसाद्य प्राप्य यथादृष्टमवलोकितक्रमेण स्वप्नजात स्वप्नसमूह निवेदयामास कथयामास । § ३४) पृथ्वीशोऽपीति—अवधिज्ञानेन प्रबुद्ध प्रबोध प्राप्त अय पृथ्वीशोऽपि नाभिमहीपालोऽपि रदाना दन्तानामुद्योतस्य प्रकाशस्य व्याजेन मिषेण हार मौक्तिकयष्टि दधत् धारयन् देव्या वक्षसीत्यर्थ स्वप्नाना सत्फल समीचीनपरिणाम व्याजहार जगाद । यमकालकार ॥२६॥ § ३५) अयीति—अयि देवि, मत्तेभस्य गमनमिव गमन यस्यास्तत्सबुद्धौ हे मत्तेभगमने ! हे मत्तमतङ्गजगामिनि ! मत्तेभदर्शनेन मत्तद्विपावलोकनेन ते तव महान् पुत्रो भविता भविष्यति । वृषे धर्मे आसक्त लीन चित्त यस्यास्तत्सबुद्धौ हे वृषासक्तचित्ते ! वृषस्य वृषभस्य निरीक्षणेन समवलोकनेन सकललोकाधिपति समग्रलोकेश्वरः, । सिंहस्येव मध्य यस्यास्तत्सबुद्धौ हे सिंहमध्ये ! सिंहविलोकनेन मृगेन्द्रदर्शनेन अनन्त वीर्यं यस्य तथाभूत । मालाभि स्रग्भि रुचिरो रमणीय कचनिचय केशसमूहो यस्यास्तत्संबुद्धौ हे मालारुचिरकचनिचये ! मालयोरवलोकनेन स्रग्द्वयदर्शनेन धर्मतीर्थस्य धर्मपरम्पराया कर्ता विधायक । लक्ष्म्या तुलित यत्सौन्दर्यं लावण्य तेन सपन्ना तत्सबुद्धौ हे लक्ष्मीतुलितसौन्दर्यसपन्ने ! लक्ष्म्या वीक्षणेन समवलोकनेन लोकोत्तरो विभवो यस्य तथाभूतो लोकोत्तरविभव

प्राप्त हो रहा है ॥२५॥ § ३३) इतीति—इस प्रकार जगानेके कार्यमें नियुक्त वन्दीजनोंके अत्यन्त सुन्दर श्लोकोंके समूहसे और मगलमय वाजोंकी शब्द परम्परासे जो जाग उठी थी, जिसने प्रात कालके कार्य सम्पन्न कर मांगलिक वेषभूषा धारण की थी ऐसी मरुदेवीने सभामण्डपमे सुशोभित सिंहासनके अग्रभागपर स्थित तथा अपने नेत्ररूपी चकोरोंके लिए चन्द्रमाके समान आनन्ददायक नाभिराजाके पास जाकर देखे हुए क्रमसे सब स्वप्न सुनाये। § ३४) पृथ्वीशोऽपीति—अवधिज्ञानी राजा नाभिराय भी दाँतोंकी कान्तिके बहाने हार पहनाते हुए इस प्रकार स्वप्नोंका शुभफल कहने लगे ॥२६॥ § ३५) अयीति—हे मत्त हाथीके समान चालवाली देवि ! मत्त हाथीके देखनेसे तुम्हारे महान् पुत्र होगा। हे धर्ममें लीन चित्तवाली देवि ! बैलके देखनेसे वह पुत्र समस्त लोकका स्वामी होगा। हे सिंहके समान पतली कमरवाली ! सिंहके देखनेसे वह अनन्तवीर्यसे युक्त होगा। हे मालाओंसे सुन्दर केशोंवाली ! मालाओंके देखनेसे वह पुत्र धर्मतीर्थका कर्ता होगा। हे लक्ष्मीके समान सौन्दर्यवाली ! लक्ष्मीके देखनेसे वह पुत्र सर्वश्रेष्ठ वैभवका धारक होगा। हे पूर्णचन्द्रमुखे ! पूर्ण-

क्षणेन नि'सीमतेज प्रसरः, कुम्भस्तनि ! कुम्भयुगलेन निधिभाक्, मीनायतलोचने ! मीनद्वयेनानन्तसुख, सरोवरसदृशनाभिमण्डले ! सरोवरेण सल्लक्षणोपेत, पारावारगम्भीरे ! पारावारेण समस्तदर्शी, पीठायितनितम्बे ! सिंहपीठदर्शनेन साम्राज्यमहित, सुरविमानसमानमन्दिरे ! सुरविमानेन स्वर्गादवतरिष्यति, फणिनिभवेणि ! फणिपतिभवनेनावधिज्ञानलोचनः, सद्रत्नशोभिते ! रत्नसचयेन गुणाकर, शुचिस्मिते ! शुचिदर्शनेन कर्मेन्धनदहन', वृषभाकारमादाय तवास्यप्रवेशेन वृषभो देवस्त्वद्गर्भे सनिधास्यतीति ।

§ ३६) तावत्सुराधिपतिशासनत समेत्य
दिक्कन्यकाश्च कुतुकेन सिषेविरे ताम् ।

सर्वश्रेष्ठसमृद्धियुक्त । पूर्णचन्द्र इवानन यस्यास्तत्सबुद्धौ हे पूर्णचन्द्रानने पूर्णेन्दुमुखि ! पूर्णचन्द्रस्य दर्शनेन सकलजनाना निखिलप्राणिनामानन्दस्य हर्षस्य सदायक इति सकलजनानन्दसदायक । प्रभाकरनिभा सूर्यसदृशा ये मणिगणास्तैर्मण्डिता शोभिता तत्सबुद्धौ हे प्रभाकरनिभमणिगणमण्डिते ! प्रभाकरस्य सूर्यस्य निरीक्षणेन नि सीमा तेज प्रसरो यस्य तथाभूतो नि सीमतेज प्रसर अपरिमितप्रतापसमूह । कुम्भाविव स्तनौ यस्यास्तत्सबुद्धौ हे कुम्भस्तनि ! कुम्भयुगलेन कलशयुगेन निधि भजतीति निधिभाक् लोकोत्तरकोषयुक्त । मीनाविवायते लोचने यस्यास्तत्सबुद्धौ हे मीनायतलोचने ! मीनद्वयेन मीनयुगलेन अनन्त सुख यस्य तथाभूतोऽनन्तसौख्यभाक् । सरोवरसदृश नाभिमण्डल यस्यास्तत्सबुद्धौ हे सरोवरसदृशनाभिमण्डले ! सरोवरेण कासारावलोकनेन सद्भिर्लक्षणैरुपेत सल्लक्षणोपेत प्रशस्तचिह्नसहित । पारावार इव गम्भीरा तत्सबुद्धौ हे पारावारगम्भीरे ! पारावारेण सागरेण समस्तदर्शी विश्वदृश्वा । पीठायितनितम्बे ! सिंहपीठस्य सिंहासनस्य दर्शनेन समवलोकनेन साम्राज्येन महित शोभित साम्राज्यमहित । सुरविमानसमान मन्दिर भवन यस्यास्तत्सबुद्धौ हे सुरविमानसमानमन्दिरे ! सुरविमानेन देवविमानेन स्वर्गात् नाकात् अवतरिष्यति समागमिष्यति । फणिनिभा सर्पतुल्या वेणी धम्मिलो यस्यास्तत्सबुद्धौ हे फणिनिभवेणि ! फणिपतिभवनेन नागेन्द्रभवनेन अवधिज्ञान लोचन यस्य तथाभूतोऽवधिज्ञानसपन्न । सद्रत्नशोभिते प्रशस्तरत्नालकृते ! रत्नसचयेन रत्नराशिना गुणाकरो गुणखनि । शुचिस्मिते धवलहसिते ! शुचिदर्शनेन अग्निनिरीक्षणेन कर्मेन्धनदहन कर्मदारु भस्मकर्ता । वृषभाकार वृषाकृतिम् आदाय गृहीत्वा तव भवत्या आस्यप्रवेशेन मुखप्रवेशेन वृषभो देव त्वद्गर्भे भवद्गर्भे सनिधास्यति सनिहितो भविष्यति । इतीत्यस्य व्याजहारेति क्रियया सबन्ध । § ३६) तावदिति— तावत् तावता समयेन सुराधिपतिशासनत शक्राज्ञया समेत्य समागत्य दिक्कन्यका रुचकगिरिनिवासिन्य

चन्द्रमाके देखनेसे वह सब लोगोंको आनन्दका देनेवाला होगा। हे सूर्यके समान मणियोंके समूहसे सुशोभित ! सूर्यके देखनेसे वह अपरिमित तेजके प्रसारसे सहित होगा। हे कुम्भके समान स्तनोंवाली ! कुम्भयुगलके देखनेसे वह निधियोंको प्राप्त करनेवाला होगा। हे मीनके समान लम्बे नेत्रोंवाली ! मीनयुगलके देखनेसे वह अनन्तसुखसे युक्त होगा। हे सरोवरके समान नाभिमण्डलवाली ! सरोवरके देखनेसे वह अच्छे लक्षणोंसे सहित होगा। हे समुद्रके समान गम्भीर ! समुद्रके देखनेसे वह पुत्र सर्वदर्शी होगा। हे स्थूल नितम्बोंवाली ! सिंहासनके देखनेसे वह साम्राज्यशाली होगा। हे देवविमानके समान मन्दिरवाली ! देवविमानके देखनेसे वह स्वर्गसे अवतार लेगा। हे सर्पके समान चोटीवाली ! नागेन्द्रका भवन देखनेसे वह अवधिज्ञानरूपी नेत्रसे युक्त होगा। हे समीचीन रत्नोंसे सुशोभित ! रत्नराशिसे वह पुत्र गुणोंकी खान होगा। हे धवल मुसकानवाली ! अग्निके देखनेसे वह कर्मरूपी ईन्धनको जलानेवाला होगा और बैलका आकार लेकर तुम्हारे मुखमे प्रवेश करनेसे वृषभनाथ भगवान् तुम्हारे गर्भमे आवेंगे। § ३६) तावदिति—उसी समय इन्द्रकी आज्ञासे आकर

श्रीर्ह्रीर्धृतिः सपदि कीर्तिसुबुद्धिलक्ष्म्यो
देव्यो जिनस्य जननीमनवद्यरूपाम् ॥२७॥

§ ३७) तास्तस्याः परिचर्याया गर्भशोधनमादितः ।
प्रचक्रुः शुचिभिर्द्रव्यैः स्वर्गलोकादुपाहृतैः ॥२८॥

§ ३८) तत्र काचिन्मुखविजितसेवार्थसमागतविधुबिम्बशङ्काकरेण धवलातपत्रेण, अन्या च तद्वदनकमलमभिपतन्मरालशङ्कावहेन चामरेण, अपरा च निजतनुलताविलसितभुजशाखाससक्तशुकनिकरसदेहदायकेन ताम्बूलीदलवृन्देन, इतरा च तदङ्गरक्षणतत्परा देहकान्तिसरोवरदीर्घमीनायमानेन करकलितकरवालेन यथोचितं मरुदेव्याः सेवा चक्रिरे ।

§ ३९) सा भारतीव व्यङ्ग्यार्थं सिन्धुवेलेव सन्मणिम् ।
बभार सुदती गर्भं गुहेव हरिपोतकम् ॥२९॥

षट्पञ्चाशत् सख्याका देवीविशेषा श्री पद्मसरोवरवासिनी, ह्री. महापद्मसरोवरवासिनी, धृति तिगिञ्छसरोवरवासिनी, कीर्ति केसरिसरोवरवासिनी, सुबुद्धि महापुण्डरीकसरोवरवासिनी, लक्ष्मी पुण्डरीकसरोवरवासिनी एता. षट्कुमारिका देव्यश्च अनवद्य निर्दोष रूप यस्यास्ता जिनस्य तीर्थकृत जननी मातर ता मरुदेवी कुतुकेन कुतूहलेन सपदि शीघ्र सिषेविरे सेवन्ते स्म । वसन्ततिलकाछन्द ॥२७॥ § ३७) तास्तस्या इति— ता पूर्वोक्ता देव्य तस्या जिनजनन्या परिचर्याया सेवायाम् आदित सर्वत प्राक् स्वर्गलोकात् त्रिविष्टपात् उपाहृतैरानीतै शुचिभि पवित्रै द्रव्यै पदार्थै गर्भस्य शोधन गर्भशोधन गर्भशुद्धि प्रचक्रु प्रारब्धवत्य ॥२८॥ § ३८) तत्रेति—तत्र तासु देवीषु काचिद्देवी मुखेन विजित पराभूत अतएव सेवार्थं समागत समायात यद् विधुबिम्ब चन्द्रमण्डल तस्य शङ्काकरेण सदेहदायकेन धवलातपत्रेण शुक्लच्छत्रेण, अन्या च तस्या मरुदेव्या वदनकमल मुखारविन्दम् अभिपतन् समुखमागच्छन्यो मरालो हंसस्तस्य शङ्कावहेन सदेहधारकेण चामरेण वालव्यजनेन, अपरा च निजतनुलताया स्वशरीरवल्ल्या विलसिता शोभिता या भुजशाखा बाहुशाखा तस्या संसक्त सनिविष्टो य शुकनिकर कीरसमूहस्तस्य सदेहदायकेन सशयोत्पादकेन ताम्बूलीदलवृन्देन नागवल्लीदलवीटिकासमूहेन, तस्या अङ्गस्य रक्षणे तत्परा लीना तदङ्गरक्षणतत्परा इतरा च देवी देहकान्ति शरीरकान्तिरेव सरोवरस्तस्य दीर्घमीन इवाचरति तेन तथाभूतेन करकलितकरवालेन हस्तधृतकृपाणेन यथोचित यथायोग्य मरुदेव्या सेवा शुश्रूषा चक्रिरे विदधिरे । § ३९) सेति—शोभना दन्ता यस्या सा सुदती सुदना सा मरुदेवी व्यङ्ग्यार्थं ध्वन्यर्थं भारतीव वाणीव, सन्मणि समीचीनमणि सिन्धुवेलेव सागरतटीव, हरिपोतक

दिक्कन्यकाएँ तथा श्री ह्री धृति कीर्ति बुद्धि और लक्ष्मी नामक देवियाँ निर्दोषरूपसे युक्त जिनमाता मरुदेवीकी कुतूहलपूर्वक शीघ्र ही सेवा करने लगीं ॥२९॥ § ३७) तास्तस्या इति— उन देवियोंने जिनमाताकी परिचर्यामें सबसे पहले, स्वर्गलोकसे लाये हुए पवित्र पदार्थोंसे गर्भशोधन किया ॥२८॥ § ३८) तत्रेति—उन देवियोंमे किसी देवीने, मुखकमलसे पराजित होकर सेवाके लिए आये हुए चन्द्रबिम्बकी शका करनेवाले सफेद छत्रसे, किसी अन्यने उनके मुखकमलकी ओर आते हुए हंसकी शंका करनेवाले चामरसे, किसी दूसरीने अपनी शरीर लतामे सुशोभित बाहुरूपी शाखापर बैठे हुए तोताओंके समूहका सदेह देनेवाले पानोंके समूहसे, और उनके शरीरकी रक्षा करनेमे तत्पर रहनेवाली किसी अन्य देवीने शरीरकी कान्ति रूप सरोवरके किसी बड़े भारी मीनके समान आचरण करनेवाले हस्तधृत कृपाणसे यथायोग्य मरुदेवीकी सेवा की थी। § ३९) सेति—जिस प्रकार भारती व्यग्य अर्थको, समुद्रकी वेला उत्तममणिको और गुहा सिंहके शिशुको धारण करती है उसी प्रकार सुन्दर

§ ४०) नोदरे विकृतिः कापि न स्तनौ नीलचूचुकौ ।
न पाण्डु वदनं तस्या गर्भोऽप्यवृधदद्भुतम् ॥३०॥

§ ४१) कदाचिन्मरुदेवी देवीजनैः सह विकचवारिजविगलन्मधुरसमांसलपयःपरिवाहां तरङ्गिणीमासाद्य, बाले ! अतनुविहारकान्तासि । मुग्धे ! किमद्यापि चापक्रीडापरायणासि । भामिनि ! किमिति शरविहारमाकलयसि । सुदति ! किंवा बहुतरवारिक्रीडां विदधासि । मुग्धे ! सर्वतोमुखभङ्गं करोषि । अबले ! जडसंगमं परिहर । सुकेशि ! कीलालार्द्रं वसनं संत्यज । वृद्धे ! कुतो विषं पिबसि । अपापे ! त्यज कबन्धानुरागम् । सुमुखि ! स्वर्णस्थितिमाप्तासि । सुमध्ये !

सिंहशावकं गुहेव कन्दरेव गर्भं भ्रूणं बभार दधार । मालोपमा ॥२९॥ § ४०) नोदर इति—तस्या मरुदेव्या उदरे जठरे कापि विकृतिः वृद्धिजन्यविकारो नाभवत्, स्तनौ कुचौ नीलचूचुकौ श्यामवदनौ नाभूताम्, वदनं मुखं च पाण्डु धवलं न बभूव तथापि गर्भो भ्रूणः अद्भुतं चित्रं यथा स्यात्तथा अवृधत् वर्धतेस्म ॥३०॥ § ४१) कदाचिदिति—कदाचित् जातुचित् मरुदेवी देवीजनैः सुराङ्गनाजनैः सह सार्धं विकचेभ्यो विकसितेभ्यो वारिजेभ्यः कमलेभ्यो विगलन् निःसरन्यो मधुरसस्तेन मांसलः पुष्टः पयःपरिवाहो जलप्रवाहो यस्यास्तां तरङ्गिणीं नदीम् आसाद्य प्राप्य, हे बाले ! न विद्यते तनुः शरीरं यस्य सोऽतनुः कामस्तस्य विहारेण क्रीडया कान्ता मनोहरा असि, अतनुविहारेण शरीररहितविहारेण अत्यधिकविहारेण वा कान्ता असि अथवा ईषत्तनुर्यस्य सोऽतनुर्जलं तस्मिन् विहारेण क्रीडया कान्तासि । मुग्धे ! सुन्दरि ! मूढे ! वा अद्यापि किं चापक्रीडायां धनुःक्रीडायां परायणा तत्परा असि, अथवा अद्यापि च साम्प्रतमपि आपक्रीडायां जलसमूहक्रीडायां परायणासि । भामिनि ! इतीत्थं किं शरविहारं बाणविहारं जलविहारं वा आकलयसि करोषि 'शरस्तेजनके काण्डे शरं नीरे नपुंसकम्' इति विश्वलोचनः । सुदति ! सुरदने ! बहुतरवारिक्रीडां प्रभूतखड्गक्रीडां किंवा विदधासि, अथवा बहुतर-वारिक्रीडां प्रचुरतरजलक्रीडां किंवा विदधासि । मुग्धे ! सर्वतः समन्तात् मुखभङ्गं वदनकौटिल्यं करोषि अथवा सर्वतोमुखस्य जलस्य भङ्गं करोषि ? अबले ! जडसंगमं धूर्तसंगं डलयोरभेदात् जलसंगमं परिहर मुञ्च । सुकेशि ! सुकचे ! कीलालार्द्रं रुधिरार्द्रं जलार्द्रं वा वसनं वस्त्रं संत्यज 'कीलालं रुधिरेऽपि स्यात्पानीयेऽपि नपुंसकम्' इति विश्वलोचनः । वृद्धे हे वृद्धिदेवि ! विषं गरलं पक्षे जलं कुतो पिबसि—'विषं तु गरले जले' इति विश्वलोचनः । अपापे ! निष्कलङ्के कबन्धे शिरोरहितशरीरेऽनुरागं प्रीतिं त्यज पक्षे कबन्धे जलेऽनुरागं त्यज 'कबन्धं वारि न स्त्री तु गतमूर्द्धकलेवरे' इति विश्वलोचनः । सुमुखि ! सुन्दरि !

दाँतोंवाली मरुदेवी गर्भको धारण कर रही थी ॥२९॥ § ४०) नोदर इति—यद्यपि मरुदेवीके उदरमें कोई विकार नहीं हुआ था, स्तनोंके अग्रभाग भी काले नहीं हुए थे और मुख भी सफेद नहीं हुआ था तो भी उनका गर्भ वृद्धिको प्राप्त हो रहा था यह आश्चर्यकी बात थी ॥३०॥ § ४१) कदाचिदिति—किसी समय मरुदेवी, देवीजनोंके साथ विकसित कमलोंसे झरते हुए मधुरसके द्वारा परिपुष्ट जल प्रवाहसे युक्त नदीको प्राप्त होकर इस प्रकारके द्वयर्थक वचन कहने लगी—हे बाले ! तू अतनुविहार—कामक्रीडासे सुन्दर है, (तू जलक्रीड़ासे सुन्दर है) हे मुग्धे ! तू अब भी चापक्रीडा—धनुष क्रीडामें तत्पर है (जल समूहकी क्रीडामें तत्पर है,) हे भामिनि ! क्यों इस तरह शरविहार—बाणोंको क्रीड़ा कर रही है (जलक्रीडा कर रही है) हे सुदति ! तू बहुतरवारि क्रीडा—बहुत अधिक तलवारकी क्रीडा क्यों करती है (तू अत्यधिक जलक्रीडा क्यों करती है) हे मुग्धे ! तू सर्वतोमुखभंग—सब ओर मुख टेढ़ा करती है (तू जलका भंग करती है) हे अबले ! जडसंगम—धूर्तका संगम छोड़ दे (जलका संगम छोड दे) हे सुकेशि ! कीलालार्द्र—खूनसे गीला वस्त्र छोड (पानीसे गीला वस्त्र दूर कर) हे वृद्धि ! तू विष—जहर पी रही है (तूँ जल पी रही है) हे अपापे—कबन्धा-

प्रचुरोर्मिकाव्रज भजसि । इत्यादि विविधव्याहारपेशला व्यातुक्षिका निर्वर्त्य भवनप्रासादमारुह्य, यावत्सचमत्कारसल्लापमभिकाङ्क्षति तावत्काचिदिद पद्यमाह ।

§ ४२) नदवनजमुदार नाभिराजस्य कान्ते !
तव मुखसुखजन्मप्राप्तिसक्त्यातपस्थम् ।
अपि यदि तदधस्तान्नीतशीर्षं तपस्येत्
जनवदनमथापि प्रोद्भवेदेणनेत्रे ! ॥३१॥

§ ४३) अहो साधु साधु भाषितमिति तामभिनन्द्यान्या तावदाह—

§ ४४) सुरादिजीवैरमृतनिष्ठैर्लाल्या सर·स्थिति· ।
कुचाद्रितटयोस्तन्वि ! तव भातीति नाद्भुतम् ॥३२॥

स्वर्णस्य काञ्चनस्य स्थितिस्ता स्वर्णस्थिति पक्षे सुष्ठु अर्ण स्वर्णस्तस्मिन् स्थितिस्ताम् आप्ता प्राप्तासि । सुमध्ये ! शोभनावलग्ने ! प्रचुरोर्मिकाणा बहुलाङ्गुलीयकाना व्रज समूह पक्षे प्रचुरोर्मिकाणा प्रभूततरङ्गाना व्रज भजसि सेवसे । इत्यादि विविधव्याहारेण नैकविधालापेन व्यातुक्षिका 'फाग' इति प्रसिद्धा क्रीडा जलक्रीडा वा निर्वर्त्य समाप्य भवनप्रासाद भवनाट्टालिकामारुह्य, यावत् सचमत्कारश्चमत्कारसहित सल्लाप सभाषण तम् अभिकाङ्क्षति वाञ्छति तावत् काचिद्देवी इद पद्यमाह कथयामास । § ४२) नदेति—हे एणनेत्रे ! हे मृगलोचने ! हे नाभिराजस्य कान्ते ! मरुदेवि ! उदार समुत्कृष्ट नदवनज सरित्सलिलज तव भवत्या मुखमेव वदनमेव सुखजन्म सुखदायकजनिस्तस्य प्राप्तिसक्त्या प्राप्तितत्परतया अह तव मुख भविष्यामीतीच्छयेत्यर्थ आतपस्थ आतपे घर्मे तिष्ठतीति आतपस्थ पक्षे आ समन्तात् तपसि तपश्चरणे तिष्ठतीति आतपस्थ 'खर्परे शरि विसर्गलोपो वा वक्तव्य ' इति वार्तिकेन वैकल्पिको विसर्गलोप । तत् वदनज यदि अधस्तात् नीचै नीतशीर्ष नीतमस्तक यथा स्यात्तथा शिरो नीचै कृत्वा तपस्येत् तपश्चरण कुर्यात् अपि संभावनायाम् अथापि एतत्तपश्चरणानन्तरमपि तत् जनवदनं साधारणजनमुख भवेत् भवितु शक्नुयात् । तव मुखभवन तु तादृशतपश्चरणेनापि दु साध्यमेवास्तीति भाव । मालिनी छन्द ॥३१॥ § ४३) अहो इति—अहो साधु साधु सम्यक् सम्यक् वीप्साया द्वित्वमिति ता तथा वदन्ती देवीम् अभिनन्द्य प्रशस्य अन्या देवी तावत् प्राह कथयामास— § ४४) सुरादीति—हे तन्वि ! हे कृशाङ्गि ! तव कुचाद्रितटयो: स्तनगिरितीरयो अमृते सुधाया जले च निष्ठा आस्था येषा तै सुरादिजीवै देवप्रभृतिप्राणिभि लाल्या सेवनीया प्रशसनीया च सर स्थिति तडागस्थिति भाति शोभते इति नाद्भुत नाश्चर्यम् अद्रितटयो सर स्थितेरद्भुतत्वेऽपि तन्निषेध

नुराग—शिररहित धडके अनुरागको छोड़ (जलके अनुरागको छोड), हे सुमुखि ! तू स्वर्णस्थिति—सुवर्णकी स्थितिको प्राप्त हुई है (तू उत्तमजलमें स्थितिको प्राप्त हुई है), हे सुमध्ये ! तू बहुत भारी अँगूठियोंके समूहको प्राप्त हो रही है (तू बहुत भारी तरंगोंके समूहको प्राप्त हो रही है) इस प्रकार नाना तरहके वचनोंसे मनोहर फागको पूरा कर महलमें पहुँची । वह ज्योंही वहाँ चमत्कारपूर्ण वार्तालापकी इच्छा करती है त्योंही कोई देवी यह पद्य बोल उठी । § ४२ नदेति—हे मृगनेत्रि ! हे नाभिराजकी प्राणवल्लभे ! नदीका उत्कृष्ट कमल तुम्हारे मुखरूप सुखदायक जन्मकी प्राप्तिकी लगनसे आतपस्थ—घाममें स्थित (सब ओरसे तपमें स्थित होकर) विद्यमान है सो यदि वह नीचे शिर लटकाकर तप कर सके तो उतनेपर भी साधारण मनुष्यका मुख हो सकता है तुम्हारा मुख हो सकना तो दुर्लभ ही है ॥३१॥ § ४३) अहो इति—अहो ! बहुत अच्छा बहुत अच्छा कहा इस प्रकार उसकी प्रशसा कर दूसरी देवी बोली । § ४४) सुरादिजीवैरिति—हे कृशांगि ! तुम्हारे स्तनरूपी पर्वतोंके तटपर अमृत—सुधा और जलके प्रेमी देव आदि प्राणियोंके द्वारा प्रशंसनीय—सेवनीय सरस्थिति—सरोवर-

§ ४५) अपरा तावदाह—

§ ४६) चन्द्रात्मना सुधाब्धौ तव कान्त्यब्धौ मुखात्मना जात ।
द्विजराज इत्यभिख्यामन्वर्थां वहति घनकुचे । राजा ॥३३॥

§ ४७) अन्या तावदाह—

§ ४८) अधरारुणविम्बेद्धस्मितेन्दुरुचिसुन्दरम् ।
महादर्शविलास ते मुख धत्त इति स्फुटम् ॥३४॥

§ ४९) न केवलमेतदेव युक्तम् । अन्यदप्येव दरीदृश्यत इत्यभिधाय काचिदाह—

§ ५०) कीर्तीन्दुमण्डलोपेत प्रतापरविशोभितः ।
अमानवचरित्रस्ते पतिरित्यपि युज्यते ॥३५॥

आश्चर्यकर इति भाव पक्षे सर स्थितिरित्यत्र विसर्गे लुप्ते सति सरस्थिति हारस्थितिरित्यर्थो योज्य ॥३२॥ § ४५) अपरेति—तावत् अपरा काचित् आह कथयति स्म । § ४६) चन्द्रात्मनेति—हे घनकुचे हे पीवर पयोधरे । चन्द्रात्मना शशिरूपेण सुधाब्धौ पीयूषपारावारे तव भवत्या कान्त्यब्धौ दीप्तितोयनिधौ मुखात्मना मुखरूपेण जात समुत्पन्नो राजा चन्द्रः द्विजराजो द्विजाना द्विप्रकारोत्पन्नाना राजा स्वामी इत्येवम् अन्वर्थां सार्थकाम् अभिख्याम् आह्वा 'आख्याह्वे अभिधान च नामधेय च नाम च' इत्यमर । वहति दधाति । श्लेष । आर्याछन्द ॥३३॥ § ४७) अन्येति—अन्या पुनर्भूय आह जगाद । § ४८) अधरेति—अधर ओष्ठ एवारुणविम्ब लोहितरुचकफल तत्र इद्ध शोभित स्मितमेव मन्दहास्यमेव इन्दुरुचि कर्पूरकान्ति ताभ्या रक्तश्वेतपदार्थाभ्या सुन्दर मनोहर ते तव मुख महादर्शविलास महादर्पणशोभा धत्त इति स्फुट स्पष्टम् । पक्षे अधर एव अरुणविम्ब सूर्यमण्डल वद्धस्मितमेव प्रकटितमन्दहास्यमेवेन्दुश्चन्द्रस्तयो रुच्या कान्त्या सुन्दर ते मुख महादर्शविलासम् अमावास्याशोभा धत्त इति स्फुटम् । श्लेष ॥ § ४९) न केवलमिति—केवल मात्रम् एवदेव न युवत किन्तु अन्यदपि मुखातिरिक्तोऽपि एव महादर्शविलाससहितो दरीदृश्यते पुन पुनरवलोक्यते इतीत्थमभिधाय कथयित्वा काचिद् देवी आह— § ५०) कीर्तीति—कीर्तिरेवेन्दुमण्डल चन्द्रविम्व तेनोपेत सहित, प्रताप एव रवि प्रतापरविस्तेजस्तपनस्तेन शोभित, ते तव पति न केवल मुख पतिरपीत्यथ अमानवचरित्र अमावास्यानूतनचरित्रयुक्त पक्षे लोकोत्तरचरित्र अस्ति इत्यपि युज्यते एतदपि सगच्छते

की स्थिति शोभा दे रही है यह आश्चर्यकी वात नहीं है (पक्षमे तुम्हारे कठोर स्तनोंपर हार शोभा दे रहा है) ॥३२॥ § ४५) अपरेति—तव तक कोई अन्य देवी वोली । § ४६) चन्द्रात्मनेति—हे पीवरपयोधरे । चन्द्ररूपसे अमृतके समुद्रमे और मुख रूपसे तुम्हारे कान्तिसागरमें उत्पन्न हुआ चन्द्रमा द्विजराज—दो वार उत्पन्न होनेवालोंका स्वामी (पक्षमे द्विजराज—चन्द्र) इस सार्थक नामको धारण करता है। भावार्थ—चन्द्रमा द्विजराज कहलाता है सो उक्त प्रकारसे चन्द्रमा दो वार उत्पन्न होकर सचमुच ही द्विजराज हुआ है ॥३३॥ § ४७) अन्येति—कोई दूसरी देवी वोली । § ४८) अधरेति—अधरोष्ठ रूपी लालविम्वफल पर सुशोभित मन्द मुसकान रूपी सफेद कान्तिसे सुन्दर तुम्हारा मुख विशालदर्पणकी शोभाको धारण कर रहा है यह स्पष्ट है (पक्षमें अधरोष्ठरूपी सूर्य विम्ब और सुशोभित मन्द मुसकानरूपी चन्द्रमाकी कान्तिसे सुन्दर तुम्हारा मुख अमावास्याकी वहुत भारी शोभाको धारण कर रहा है यह स्पष्ट है ॥३४॥ § ४९) न केवलमिति—यह ही ठीक नहीं है और कुछ भी तो ऐसा दिखाई देता है यह कहकर कोई देवी वोली । § ५०) कीर्तीन्दु—कीर्तिरूपी चन्द्रमण्डलसे सहित और प्रतापरूपी सूर्यसे सुशोभित तुम्हारा पति अमानवचरित्र—अमावास्याके चरित्रको धारण करनेवाला (पक्षमे लोकोत्तर चरित्रसे युक्त) है यह भी तो ठीक है ॥३५॥

§ ५१) इतरा पुनराह—

§ ५२) तन्वि ! त्वद्वचनामृते विलसिते द्राक्षावली द्रागिय
मादौ रूपयुता तथा किल सिता मध्येऽधिका मानिनि ! ।
लोलाक्ष्यग्रजनाञ्चिता नवसुधा लोलम्बकेश्यादितो
राजच्छोभमवास्पदं मधुरसः प्रायो दधौ हास्यताम् ॥३६॥

§ ५३) एतच्छ्रुत्वा साधु चमत्कारभाषणधुरीणा साधु, द्राक्षावली रुद्राक्षावली, सिता सिकता, नवसुधा नवसुधाना, मधुरसोऽवमधुरसो बभूवेति सम्यगभिहितमित्यभिनन्द्य काचिदेवमूचे।

श्लेपरूपके ॥३५॥ § ५१) इतरेति—इतरा अन्या पुनराह— § ५२) तन्वीति—हे तन्वि ! हे कृशाङ्गि ! हे मानिनि ! हे मनस्विनि ! हे लोलाक्षि ! हे चपललोचने ! हे लोलम्बकेशि ! हे भ्रमरकचे ! त्वद्वचनमेवामृतमिति त्वद्वचनामृत तस्मिन् त्वदीयवचनपीयूषे विलसिते सति आदौ पूर्वं रूपयुता सौन्दर्ययुक्ता इयमेषा द्राक्षावलो गोस्तनीसंतति द्राक् झटिति आदौ प्रारम्भे रूपयुता 'रु' इत्यक्षरेण उपयुता सहिता भवति द्राक्षावली रुद्राक्षावली जायते स्मेति भाव । मध्ये अधिका श्रेष्ठा सिता शर्करोपल मध्येऽधिका भवति अधिगत कः 'क' इति वर्णो यस्या तथाभूता सिकतेति यावत् । अग्रजनै श्रेष्ठपुरुषैर्देवैरित्यर्थस्तैरञ्चिता शोभिता नवसुधा प्रत्यग्रपीयूपम् अग्रजनाञ्चिता अग्रज अग्रोत्पन्नो यो न –नकारो वर्णस्तेनाञ्चिता शोभिता नवसुधाना नूतनभृष्टयववत् जातेति भाव । आदित प्रारम्भतः यो मधुरस राजच्छोभ राजन्ती शोभा यस्य तद् राजच्छोभम् अवास्पद अवस्य रक्षणस्यास्पदं स्थान बभूव स , अवास्पदम् 'अव' इति पदस्यास्पद स्थान सन् प्राय. प्रचुरेण हास्यता हास्यभाजनता दधौ । श्लेष' । शार्दूलविक्रीडितच्छन्द ॥३६॥ § ५३) एतदिति—एतद् देवीनिगदित श्रुत्वा निशम्य साधु सम्यक् सचमत्कारभाषणे धुरीणा निपुणा सचमत्कारभाषणधुरीणा साधु सम्यग्, द्राक्षावली रुद्राक्षावली रुद्राक्षाणामावली जाता द्राक्षावली रुद्राक्षवत् स्वादरहिता जाता । सिता शर्करोपल सिकता वालुका भवति बालुकावत्स्वादरहिताभूदिति भाव । नवसुधा नवपीयूप नवसुधाना सुष्ठु धाना सुधाना नवा चासौ सुधाना चेति नवसुधाना नूतनभृष्टयवा 'धाना भृष्टयवेऽपि च' इति मेदिनी । नवसुधा स्वादरहिता जाता । मधुरसोऽपि अवमधुरसः अवकृष्ट मधु अवमधु कुत्सितमदिरा तस्य रस इव रसो यस्य

---

§ ५१) इतरेति—फिर दूसरी देवी बोली—§ ५२) तन्वीति—हे तन्वंगि ! हे मानवति ! हे चपललोचने ! हे भ्रमरकचे ! तुम्हारे वचनरूपी अमृतके सुशोभित होनेपर जो दाखोंकी पंक्ति पहले रूपयुता—सौन्दर्यसे सहित थी वह प्रारम्भमें 'रु' इस अक्षरसे सहित हो गयी अर्थात् रुद्राक्षावली बनकर रुद्राक्षमालाके समान स्वादरहित हो गयी। जो सिता—मिसरी मध्येऽधिका-मध्यमें अधिक थी वह तुम्हारे वचनरूपी अमृतके सुशोभित होनेपर मध्येऽधिका—बीचमें 'क' नामक अक्षरसे सहित होकर सिकता बन गयी अर्थात् सिकता—बालूके समान निःस्वाद हो गयी। जो नवसुधा अग्रजनाचित—श्रेष्ठ मनुष्योंसे सत्कारको प्राप्त होती थी वह तुम्हारे वचनामृतके सुशोभित होनेपर अग्रजनाचिता—आगे उत्पन्न 'ना' इस अक्षरसे युक्त होकर नवसुधाना हो गयी अर्थात् भूँजे हुए नवीन जौके समान माधुर्यसे रहित हो गयी। और जो मधुरस—शहद पहले सुशोभित तथा अवास्पद—रक्षाका स्थान था वह तुम्हारे वचनामृतके प्रकट होनेपर अवास्पद—अव शब्दका स्थान बनकर अवमधुरस हो गया अर्थात् कुत्सितमदिराके समान स्वादवाला हो गया। इस तरह ये सब प्राय' हास्यभावको धारण करने लगे ॥३६॥ § ५३) एतदिति—यह सुनकर 'ठीक, तुम चमत्कारपूर्ण भाषण करनेमें निपुण हो, ठीक, द्राक्षावली रुद्राक्षावली, सिता सिकता, नवसुधा नवसुधाना

§ ५४) बिम्बाधरि ! तव कन्तुककञ्चुकनयन धीरतरधीः नयनयनो घनतानघ. सरस' तव पतिश्च कल्याणगुणोज्ज्वलतया परस्पर समाना कदाचिदपि वर्णविपर्यास न सहन्ते इति।

§ ५५) इत्यादिभिः स्फुटचमत्कृतिभिर्वचोभि-
देवीजनेन सहित परिचर्यमाणा ।
सा निर्भरप्रथितगर्भभरालसाङ्गी
पत्या सम प्रमदवारिनिधौ ममज्ज ॥३७॥

तथाभूत इति अवमधुरसो निन्दितस्वादयुक्तो बभूव । इतीत्थ सम्यग् अभिहित कथितम् । इत्येवमभिनन्द्य प्रशस्य काचिद् देवो एवमित्थम् ऊचे जगाद । § ५४) बिम्बाधरीति—बिम्बमिवाधरो यस्यास्तत्सबुद्धौ हे बिम्बाधरि ! हे रक्तदशनच्छदे ! तव भवत्या कन्तुरेव कन्तुक कामः कन्तुकश्च, कञ्चुकश्च स्तनवस्त्र च, नयन च नेत्र च, इत्येषा समाहार कन्तुककञ्चुकनयनम्, धीरतरा गम्भीरतरा चासौ धीश्च बुद्धिश्च इति धीरतरधी , नयस्य नीतेः नयन प्रापको नयनयन , घनतानघ घन कास्यतालादिवाद्य तस्य तान समूहस्तस्य घो ध्वनि शब्द इत्यर्थ 'घन स्यात्कास्यतालादिवाद्ये मध्यमताण्डवे', 'घो घण्टाया च घा घाते किङ्किण्या स्त्रीध्वनौ तु घ' इत्युभयत्र विश्वलोचन । स रस —स प्रसिद्ध रस तव पतिश्च वल्लभश्च पतिपक्षे उपरितनशब्दाना व्याख्यानमित्थ कन्तुककञ्चुकनयन कन्तुककञ्चुक कामाच्छादक यत् नयन तद्रूपम्, धीरतरधी धीरतरा गम्भीरतरा धीर्यस्य स , नयनयनो नयो नीतिरेव नयन यस्य स , घनतानघ घनतया दृढतया अनघो निष्पाप , सरस सस्नेह कल्याणगुणै स्वर्णसूत्रैरुज्ज्वलतया देदीप्यमानतया कञ्चुकपक्षे, पतिपक्षे कल्याणगुणै श्रेयस्करगुणैरुज्ज्वलतया शोभिततया परस्पर मिथ समाना सदृशा. कदाचित् जातुचित् वर्णविपर्यास वर्णस्य रूपस्य वर्णानामक्षराणा वा विपर्यास विपरीतभाव पतिपक्षे वर्णाना ब्राह्मणादीना विपर्यास वैपरीत्य न सहन्ते इति । § ५५) इत्यादिभिरिति—इत्यादिभि पूर्वोक्तप्रकारै स्फुटा स्पष्टा चमत्कृतिर्येषु तै स्पष्टचमत्कारयुक्तै वचोभि वचनै सहित यथा स्यात्तथा देवीजनेन सुरीसमूहेन परिचर्यमाणा सेव्यमाना निर्भरेण प्रथितगर्भभरेण प्रसिद्धगर्भभारेणालसमङ्ग यस्यास्तथाभूता सा मरुदेवी पत्या प्राणनाथेन सम प्रमदवारिनिधौ हर्षपारावारे ममज्ज निमग्नाभूत् । रूपकालकार । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥३७॥

और मधुरस अवमधुरस हो गया यह तुमने ठीक कहा', इस तरह उसकी प्रशंसा कर कोई देवी इस प्रकार कहने लगी । § ५४) बिम्बाधरीति—हे बिम्बके समान लाल ओठोंवाली ! तुम्हारा कन्तुक—काम, कंचुक–चोली, नयन–नेत्र, तुम्हारी धीरतरधी—अत्यन्तगभीर बुद्धि, तुम्हारा नयनयन—नीतिनिर्देष्टा, तुम्हारा घनतानघ—कांस्यताल आदि वाद्यसमूहका शब्द और तुम्हारा सरस वह स्नेह तथा उक्त विशेषणोंसे विशिष्ट अर्थात् कामको रोकनेवाले नयनस्वरूप, गभीर बुद्धिसे युक्त, नीतिरूपी नेत्रसे युक्त, कोमलतासे निष्पाप एवं स्नेहसे युक्त तुम्हारा पति, कल्याण सूत्र—स्वर्णकी लडी (पक्षमें कल्याणकारी गुणों) से सुशोभित होनेके कारण परस्परमें समान होते हुए कभी भी वर्णविपर्यास—रूपका परिवर्तन, अक्षरोंका परिवर्तन और ब्राह्मणादिवर्णोंकी विपरीत प्रवृत्तिको सहन नहीं करते । कन्तुक कचुक आदि शब्द यदि विपरीत क्रमसे पढ़े जाते हैं तो भी उनका उच्चारण उसीरूप होता है । § ५५) इत्यादिभिरिति—इस प्रकारके स्पष्ट चमत्कारोंसे युक्त वचनोंके साथ देवीजनोंके द्वारा जिसकी परिचर्या की जा रही थी तथा बहुत भारी प्रसिद्ध गर्भके भारसे जिसका शरीर अलसा रहा

§ ५६) चैत्रे मासवरे धरेश्वरसती पक्षे वलक्षेतरे
सल्लग्ने नवमीदिने दिनमणौ प्राचीदिश प्राञ्चति ।
विश्वे ब्रह्मसमाह्वये सति महायोगे विशालेक्षणा
प्राचीवार्कमसूत तत्र तनयं स्फारप्रभामेदुरम् ॥३८॥

§ ५७) नाभिक्ष्मापतिपूर्वभूधरतटात्प्राप्तोदयं श्रीजिन
बालार्कं विलसत्त्रिबोधकिरणं प्रोद्यत्तमोनाशनम् ।
लेखस्त्रीनलिनीलताः कुतुकतः संवीक्ष्य मोदोल्लसद्-
बाष्पव्याजमरन्दपूर्णविकसन्नेत्राम्बुजा रेजिरे ॥३९॥

§ ५८) तदा किल त्रिदशाविकस्नेहोज्ज्वले सुरुचिराज्यविशोभिते विभावर्युदितभयहरणचणे उत्तमश्रीविराजितेऽपि तमःसमूहविध्वंसनधुरीणे जिनाभिधाने त्रिभुवनदीपे परिस्फुरति,

---

§ ५६) चैत्र इति—तत्रायोध्यायां विशालेक्षणा दीर्घलोचना सा धरेश्वरसती राजवल्लभा मरुदेवी चैत्रे चैत्रनामनि मासवरे मासोत्तमे वलक्षेतरे कृष्णे पक्षे सल्लग्ने प्रशस्तलग्ने नवमीदिने नवम्यां तिथौ दिनमणौ सूर्ये प्राचीं दिशं पूर्वाशाम् प्राञ्चति प्रगच्छति सति ब्रह्मसमाह्वये ब्रह्माभिधाने विश्वे महायोगे एतन्नामयोगे च सति प्राची पूर्वदिशा अर्कं सूर्यमिव स्फारप्रभामेदुरं दीप्रदीप्तिसहितं तनयं पुत्रम् असूत जनयामास । उपमा । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥३८॥ § ५७) नाभीति—लेखस्त्रियो देवाङ्गना एव नलिनीलता कमलिनीव्रततयः कुतुकतः कुतूहलात् नाभिक्ष्मापतिरेव नाभिराज एव पूर्वभूधरः पूर्वाचलस्तस्य तटात् प्राप्तोदयमुदितं विलसन्तः शुम्भन्तः त्रिबोधा मतिश्रुतावधयो ज्ञानान्येव किरणा यस्य तं प्रोद्यत्तमोनाशनं प्रकटीभवत्तिमिरापहारकं बालार्कं बाल एवार्कस्तं बालसूर्यं संवीक्ष्य समवलोक्य बाष्पव्याजेन हर्षाश्रुच्छलेन मरन्दपूर्णानि मकरन्दसंभृतानि विकसन्नेत्राम्बुजानि विकसन्नयनकमलानि यासां तथाभूताः सत्यो रेजिरे शुशुभिरे । रूपकालंकारः । शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः ॥३९॥ § ५८) तदेति—तदा किल जिनेन्द्रजन्मवेलायां खलु त्रिदशानां देवानामविकस्नेहेन सातिशयप्रेम्णोज्ज्वलो देदीप्यमानस्तस्मिन्, पक्षे तिस्रो दशा वर्तिका इति त्रिदशास्तासु विद्यमानो योऽधिकस्नेहः प्रचुरतैलं तेनोज्ज्वलस्तस्मिन्, सुष्ठु रुचिः सुरुचिः सुकान्तिस्तस्या राज्येन विशोभितस्तस्मिन्, पक्षे सुरुचिरमतिमनोहरं यद् आज्यं घृतं तेन विशोभिते, विभौ प्रभौ, अरिभ्यः शत्रुभ्य उदितं यद् भयं तस्य हरणं तेन वित्तस्तस्मिन् पक्षे विभावर्यां रात्रावुदितं यद् भयं तस्य हरणेन वित्तस्तस्मिन्, उद्गतं तम उत्तमं उत्कटतिमिर

लज्जयेव तदीयकान्तिकल्लोलिनीलीना सुराङ्गनाकरारोपितदीपावलिर्दिनकरकरनिकरनिरन्तरे दिनान्तरे खद्योतपरम्परेवानवलोकनीयप्रकाशा केवलमङ्गलफला विललास।

§ ५९) नदीपवन्धुर्गाम्भीर्यगुणेन त्रिजगद्गुरुः।
दीपानय निराचक्रे तेजसेति न विस्मय. ॥४०॥

§ ६०) तदानी खलु जिनस्य प्रसिद्धा कालारिरित्यभिख्या विबुध्य भयेनेव सेवनार्थं समसमयसमवतीर्णः सर्वर्तुविलासैर्विकसदशोकविकचमल्लिकाकुन्दकुड्मलाडम्बरकदम्बरसनन्ददरविन्दविकसितसिन्दुवारप्रवुद्धलोध्रैर्विशोभमाना वनमेदिनीकामिनी सजातोऽय भुवनाधिपतिर्विभुतया

तस्य श्रीः शोभा तया विराजितेऽपि तमःसमूहस्य तिमिरसमूहस्य विध्वसने नाशने धुरीणो निपुणस्तस्मिन् इति विरोध। परिहारपक्षे उत्तमश्रिया समुत्कृष्टलक्ष्म्या विराजितेऽपि शोभितेऽपि जिनाभिधाने जिननामनि त्रिभुवनदीपे परिस्फुरति सति, लज्जयेव त्रपयेव तदीयकान्तिरेव कल्लोलिनीति तदीयकान्तिकल्लोलिनी तस्या लीनान्तर्हिता सुराङ्गनाना देवीना करेषु हस्तेषु आरोपिता धृता या दीपावलिर्दीपमालिका सा, दिनकरस्य सूर्यस्य करनिकरेण किरणसमूहेन निरन्तरे व्याप्ते दिनान्तरे दिनमध्ये खद्योतपरम्परेव ज्योतिरिङ्गणसततिरिव अनवलोकनीयोऽदर्शनीय प्रकाशो यस्यास्तथाभूता केवल मङ्गलफल यस्यास्तथाभूता मात्रमङ्गलप्रयोजना विललास शुशुभे। श्लेष विरोधाभास-रूपकोत्प्रेक्षोपमालकारा। § ५९) नदीपेति—गाम्भीर्यमेव गुणस्तेन गाम्भीर्यगुणेन धैर्यगुणेन दीपाना बन्धुर्न भवतीति नदीपबन्धु त्रिजगद्गुरु लोकत्रयगुरु अय जिनबालक तेजसा दीपान् निराचक्रे तिरश्चक्रे इति न विस्मय। यो दीपाना बन्धुर्नास्ति स दीपान् निराकुरुत इत्यत्र को विस्मय। पक्षे नदी पाति रक्षतीति नदीप सागरस्तस्य बन्धु सहोदर गाम्भीर्यगुणेन सागर इत्यर्थ ॥४०॥ § ६०) तदानीमिति—तदानी जिनजन्मसमये खलु निश्चयेन जिनस्य तीर्थकरस्य प्रसिद्धा प्रथिता कालारि यमारि पक्षे समयारि 'कालस्तु समये मृत्यौ महाकाले यमे शितौ' इति विश्वलोचन, इत्यभिख्या इत्याह्वा विबुध्य ज्ञात्वा भयेनेव भीत्येव सेवनार्थं शुश्रूषायै समसमये युगपद् समवतीर्णै प्रकटितै सर्वर्तुविलासैर्निखिलर्तूना विलासा शोभाश्चिह्नानि वा तैं विकसन्ति शोभमानानि अशोकानि कङ्केलिकुसुमानि, विकचा विकसिता मल्लिका मालत्य, कुन्दकुड्मलाना माध्यकोरकाणामाडम्बरा समूहा, कदम्बानि नीपकुसुमानि, रसेन मकरन्देन नन्दन्ति शुम्भन्ति यान्यरविन्दानि कमलानि, विकसितानि प्रफुल्लानि सिन्दुवाराणि, प्रवृद्धानि विकसितानि

प्रसिद्ध था) तथा अत्यधिक अन्धकारकी लक्ष्मीसे सुशोभित होनेपर भी (पक्षमे उत्तम—उत्कृष्ट लक्ष्मीसे सुशोभित होनेपर भी) जो अन्धकारके समूहको नष्ट करनेमे समर्थ था ऐसे जिन नामक त्रिलोकी दीपकके देदीप्यमान रहते हुए लज्जासे ही मानो जो उनकी कान्तिरूपी नदीमे जा छिपी थी ऐसी देवांगनाओंके हाथमे धारण की हुई दीपपंक्ति, सूर्यकी किरणोंके समूहसे व्याप्त दिनके मध्यमे जुगनुओंके समूहके समान अदर्शनीय प्रकाशसे युक्त होती हुई मात्र मगलरूप फलसे युक्त रह गयी थी। § ५९) नदीपेति—गाम्भीर्यगुणसे जो दीपकोंके बन्धु नहीं थे (पक्षमे समुद्रके बन्धु थे) ऐसे इन त्रिभुवन गुरुने तेजके द्वारा दीपोंका निराकरण किया था यह आश्चर्यकी बात नहीं थी ॥४०॥ § ६०) तदानीमिति—उस समय जिनेन्द्र भगवान्‌का 'कालारि'—समयके शत्रु (पक्षमे यम—मृत्युके शत्रु) यह नाम प्रसिद्ध है ऐसा जानकर भयसे ही मानो उनकी सेवाके लिए एक साथ सब ऋतुएँ प्रकट हो गयी थीं। उनके चिह्नस्वरूप विकसित अशोक, प्रफुल्लित जुही, कुन्दकी बोंडियोंका विस्तार, कदम्बके फूल, रससे भरे हुए कमल, खिले हुए सिन्दुवार और विकसित लोध्रके फूलोंसे वनभूमि रूपी स्त्री सुशोभित हो उठी थी। वनभूमि रूपी स्त्रीने समझा कि यह जो भुवनाधिपति (त्रिलोकीनाथ) उत्पन्न हुए हैं वे विभुता—अद्वितीय सामर्थ्यके कारण (पक्षमे 'भु' अक्षरको

वनाधिपतिरिति मत्वा किल निजानुराग प्रकटयन्तीव मन्दहासमातन्वतीव, पुलाकमुकुलानि बिभ्राणेव, आनन्दाश्रुबिन्दून्मुञ्चतीव हर्षवशेन नयने विस्तारयन्तीव, मलयजरजोराजिं किरन्तीव विरराज ।

§ ६१ § शम्बरारिमदभेदनधीरो जात एष इति तोषविशेषात् ।
शम्बराणि सह सज्जनचित्तैः सप्रसादमुपजग्मुरुदारम् ॥४१॥

§ ६२) प्रौढशोभनखराशुवैभवो जात एष जिनचण्डदीधिति ।
इत्यवेत्य किल लज्जया तदा मन्दितोष्णकिरणोऽभवद्रविः ॥४२॥

लोध्राणि लोध्रकुसुमानि एषा द्वन्द्व तैर्विशोभमाना विराजमाना वनमेदिनीकामिनी काननवसुधाभामिनी सजात समुत्पन्न अयमेष भुवनाधिपतिस्त्रिलोकीनाथ विभुतया समर्थतया पक्षे विगतभुवर्णतया वनाधिपतिः वनस्वामी यो भुवनाधिपति स सामर्थ्येन वनाधिपतिरस्त्येव, यो भुवनाधिपति स भुवर्णं त्यक्त्वा वनाधिपतिरस्त्येवेति भाव, इतोत्थ मत्वा विज्ञाय किल निजानुराग निजप्रीत्यतिभार प्रकटयन्तीव दर्शयन्तीव विकसदशोककुसुमच्छलेनेति भाव, मन्दहास मन्दहसितम् आतन्वतीव विस्तारयन्तीव विकचमल्लिकाकुन्दकुड्मलव्याजेनेति भाव, पुलकमुकुलानि रोमाञ्चकुड्मलानि विभ्राणेव दधानेव विकसितकदम्बकुसुमकपटेनेति भाव, आनन्दाश्रुबिन्दून् हर्षाश्रुपृषता मुञ्चन्तीव त्यजन्तीव नन्ददरविन्दरसैरिति भाव, हर्षवशेन प्रमोदवशेन नयने नेत्रे विस्तारयन्तीव वितन्वन्तीव विकसितसिन्दुवारव्याजेनेति भाव, मलयजरजोराजि चन्दनपरागपङ्क्ति किरन्तीव प्रक्षिपन्तीव प्रबुद्धलोध्रपरागच्छलेनेति भाव विरराज शुशुभे । श्लेषोत्प्रेक्षा । § ६१) शम्बरारिरिति—जात समुत्पन्न एप जिनबालक शम्बरारिर्मनसिजो जलशत्रुश्च तयोर्मदभेदने गर्वविध्वसने धीरो निपुणस्तथाभूत इति तोषविशेषाद् हर्षविशेषात् शम्बराणि जलानि सज्जनचित्तै साधुहृदयै सह उदार महान्त सप्रसाद नैर्मल्य प्रसन्नता च उपजग्मु प्रापु । 'शम्बरारिर्मनसिज कुसुमेषुरनन्यभू', 'अम्भोऽर्णस्तोयपानीयनीरक्षीराम्बुशम्बरम्' इति चामर । श्लेषसहोक्ती । स्वागताछन्द ॥४१॥ § ६२) प्रौढेति—प्रौढशोभ प्रकृष्टशोभायुक्त नखराशुवैभव नखकिरणैश्वर्यं यस्य तथाभूत, पक्षे प्रौढशोभन खराशुवैभव तीक्ष्णकिरणैश्वर्यं यस्य तथाभूत एष जिन एव चण्डदीधितिर्जिनचण्डदीधिति जिनेन्द्रसूर्य जात समुत्पन्न इतीत्थम् अवेत्य ज्ञात्वा किल लज्जया मन्दाक्षेण तदा जिनजन्मकाले रवि. सूर्य मन्दिता उष्णकिरणा यस्य तथा भूत अभवद् । श्लेष-रूपकोत्प्रेक्षा. ।

छोड देनेसे) वनाधिपति—वनके स्वामी हैं ऐसा मानकर खिले हुए अशोकके लाल-लाल फूलोंसे वह ऐसी जान पडने लगी मानो अपना अनुराग ही प्रकट कर रही हो, खिले हुए जुही तथा कुन्द कुडलोंसे ऐसी मालूम होने लगी मानो मन्द हास्यको ही विस्तृत कर रही हो, कदम्ब पुष्पोंसे ऐसी सुशोभित हो मानो रोमाचको ही धारण कर रही हो, कमल रससे ऐसी जान पडने लगी मानो हर्षके ऑसू ही छोड़ रही हो, विकसितसिन्दुवार—निर्गुण्डीके फूलोंसे ऐसी लगने लगी मानो हर्षसे नेत्रोंको विस्तृत ही कर रही हो और खिले हुए लोध्रकी परागसे ऐसी सुशोभित हो उठी मानो चन्दन धूलिके समूहको ही उडा रही हो । § ६१) शम्बरारीति—यह जो बालक उत्पन्न हुआ है वह शम्बरारि—कामका गर्व नष्ट करनेमे (पक्षमे जलके शत्रुओका गर्व चूर्ण करनेमे) धीर वीर है इस प्रकारके सतोष विशेषसे शम्बर—जल, सज्जनोंके हृदयोंके साथ साथ बहुत भारी प्रसन्नताको (स्वच्छताको) प्राप्त हो गये थे ॥४१॥ § ६२) प्रौढेति—जिसकी नख किरणोंका वैभव अत्यधिक शोभासे युक्त है (पक्षमे जिसकी तीक्ष्ण किरणोंका वैभव अत्यधिक शोभायमान है) ऐसा यह जिनेन्द्ररूपी सूर्य उत्पन्न हुआ है ऐसा जानकर उस समय लज्जासे ही मानो सूर्यकी उष्ण किरणें मन्द पड़

§ ६३) स सदागतिस्वभावः पावनरीतिं वहन्महच्छ्लाघ्य. ।
जातोऽसाविति दुर्भरहर्षभराद्वायुराववौ मन्दम् ॥४३॥

§ ६४) पुण्यश्रिय समधिका प्राप्तु सूनश्रिय महद्वृक्षा ।
विजहु को वा कुतुकादून न जहाति समधिकं प्राप्तुम् ॥४४॥

§ ६५) राकाकोकारिकान्तिप्रसरमुपगता प्रोल्लसत्पुण्डरीक-
भ्राजच्छोभा दधाना जिनपवरयश श्रीशरन्मेघजालम् ।
आरादुज्जृम्भितताप शमयति सहसेत्यम्बरश्रीस्तदानी
मेघाटोपैर्विविक्त विमलतरलसद्रूपमेषा बभार ॥४५॥

आर्या छन्द ॥४२॥ ६३) § स सदेति—यः सदा सर्वदा अगतिस्वभाव पक्षे सदागति शश्वद्गमनमेव स्वभावो यस्य स वायुस्वभाव इत्यर्थ 'सदागतिर्गन्धवाहे निर्वाणेऽपि सदीश्वरे' इति विश्वलोचन. । पावनरीतिं पवित्ररीतिं पक्षे पवनस्य वायोरिय पावनी सा चासौ रीतिश्चेति पावनरीतिं वायुरीतिं वहन् दधत्, महद्भि श्लाघ्य इति महच्छ्लाघ्य महापुरुषप्रशसनीय अस्ति, सोऽसौ सोऽय जिनबालको जात' समुत्पन्न इतीत्य दुर्भरहर्षभराद् विपुलप्रमोदभारात्, वायु पवनो मन्द यथा स्यात्तथा ववौ वहति स्म । श्लेपोत्प्रेक्षे । आर्याछन्द ॥४३॥ § ६४) पुण्यश्रियमिति—महता वृक्षा महद्वृक्षाः कल्पवृक्षा समधिका प्रभूता पुण्यश्रिय सुकृतलक्ष्मीं प्राप्तु सूनश्रिय अतिशयेन ऊना सूना सा चासौ श्रीश्चेति सूनश्रीस्ताम् पक्षे सूनाना पुष्पाणा श्रीस्ताम् विजहु-स्त्यक्तवन्त कल्पवृक्षा पुष्पाणि वर्षयामासुरिति भाव । तदेवार्थान्तिरन्यासेन समर्थयति समधिक प्रभूत प्राप्तु को वा जन कुतुकात् कुतूहलात् ऊनमल्प न जहाति न त्यजति अपितु सर्व एव त्यजति । अर्थान्तिरन्यास । आर्याछन्द ॥४४॥ § ६५) राकेति—राकायाः कोकारि राकाकोकारि पूर्णिमाचन्द्रस्तस्य कान्ते प्रसर विस्तारम्, उपगता प्राप्ता, पक्षे राकाकोकारे कान्तिरिव कान्तिस्ता प्रोल्लसत्पुण्डरीकाणा विकसच्छ्वेतकमलाना भ्राजच्छोभा देदीप्यमानशोभा दधाना पक्षे प्रोल्लसत्पुण्डरीकाणामिव भ्राजच्छोभा दधाना, जिनपवरयशो जिनेन्द्रोत्कृष्टकीर्तिरेव श्रीशरद् जिनपवरयश श्रीशरद् अपा समूह आप उज्जृम्भित वर्धितम् आप येन त तथाभूत मेघजाल मेघसमूह आराद् दूरात् शमयति शान्त करोति पक्षे उज्जृम्भी वर्धनशीलस्तापो यस्मात् त तथाभूत सतापकारक मे मम अघजाल पापसमूह आराद् सहसा झटिति शमयति नाशयति इति हेतोस्तदानी तस्मिन् काले एपा अम्बरश्रीः मेघाटोपैर्मेघसमूहै विविक्त रहित विमलतर च तत् लसद्रूप चेति विमलतरल-सद्रूप स्वच्छतरशुम्भद्रूप बभार । आकाशमतिनिर्मलमभूदिति भाव । रूपकश्लेपोत्प्रेक्षा । स्रग्धराछन्द. ॥४५॥

गयीं थी ॥४२॥ § ६३) स सदेति—जो सदागति स्वभाव है—सर्वदा मोक्ष स्वभावको धारण करनेवाला है (पक्षमे वायुके स्वभावसे सहित है), जो पावनरीति—पवित्ररीति (पक्षमे वायुकी रीति) को धारण कर रहा है तथा जो महान् पुरुषोंके द्वारा प्रशसनीय है ऐसा यह जिन बालक उत्पन्न हुआ है इस प्रकारके बहुत भारी हर्षके भारसे ही मानो वायु धीरे-धीरे बहने लगी ॥४३॥ § ६४) पुण्यश्रियमिति—कल्प वृक्षोंने अत्यधिक पुण्यलक्ष्मीको प्राप्त करनेके लिए सूनश्री—अल्पलक्ष्मी (पक्षमे फूलोंकी लक्ष्मी) को छोड दिया था अर्थात् पुष्पवर्षा की थी सो ठीक ही है क्योंकि अधिक पानेके लिए कौन कुतूहल पूर्वक अल्प वस्तुको नहीं छोड़ देता है ? ॥४४॥ § ६६) राकेति—पौर्णमासीके चन्द्रमाकी कान्तिके प्रसारको प्राप्त (पक्षमे पूर्णिमाके चन्द्रमा जैसी कान्तिके समूहको प्राप्त) तथा खिले हुए सफेद कमलोंकी उत्तम शोभाको धारण करनेवाली (पक्षमे खिले हुए सफेद कमलों जैसी उत्तम शोभाको धारण करनेवाली) जिनेन्द्र भगवानकी यशोलक्ष्मी रूपी शरदृऋतु जलसमूहकी वृद्धिसे युक्त मेघोंके समूहको (पक्षमे सन्ताप उत्पन्न करनेवाले मेरे पापोके समूहको) दूरसे ही शीघ्र

§ ६६) सा किल साकेतपुरी सुरतरुकुसुममेदुरतया विधृतविमलदुकूलेव, नभोऽङ्गणनिपतितचिरत्नरत्नरुचिरतया मणिभूषणमण्डितेव, मलयजरससिक्ताङ्गी तत्र तत्र कल्पितविचित्रमुक्तामयरङ्गवल्लीविशोभिततया व्यामुक्तमुक्तामालिकेव, प्रतिनिलय लयविलसितगानविलासमनोरमतया स्वय गायन्तीव, समुल्लसत्पल्लवतल्लजमदानितवन्दनमालासुन्दरतया निजानुरागधारा प्रकटयन्तीव, व्यालोलसमुल्लसदुदस्तकेतुहस्ततया जिनजन्मोत्सवकुतूहलेन नृत्यन्तीव चिरतर चकासामास ।

§ ६७) जिनस्त्रिलोकीजनवन्द्यपादो जगद्गुरु' सोऽयमजायतात्र ।
इतीव सत्केतुपटावृता ता पुरी न पस्पर्श रवि स्वपादैः ॥८६॥

---

§ ६६) सा किलेति—सा किल साकेतपुरी अयोध्यापुरी सुरतरुकुसुमै कल्पवृक्षपुष्पैर्मेदुरतया विधृत परिहित विमलदुकूल निर्मलक्षौम यया तथाभूतेव, नभोऽङ्गणाद् गगनचत्वरात् निपतितानि वृष्टानि यानि चिरत्नरत्नानि श्रेष्ठमणयस्तै रुचिरतया शोभिततया मणिभूषणै रत्नालङ्कारैर्मण्डितेव शोभितेव, मलयजरसेन चन्दनरसेन ससिक्तमङ्ग यस्यास्तथाभूता, तत्र तत्र विविधस्थानेषु कल्पिता रचिता विचित्रा विविधप्रकारा या मुक्तामयरङ्गवल्ल्यस्ताभिर्विशोभिततया व्यामुक्ता धृता मुक्तामालिका यया तथाभूतेव, प्रतिनिलय प्रतिगृह लयविलसितो लयशोभितो यो गानविलासस्तेन मनोरमतया मनोज्ञतया स्वय स्वतो गायन्तीव गान कुर्वन्तीव, समुल्लसद्भि शुम्भद्भि पल्लवतल्लजै श्रेष्ठकिसलयै सदानिता बद्धा या वन्दनमाला वन्दनस्रजस्ताभि सुन्दरतया निजानुरागस्य धारा सततिस्ता प्रकटयन्तीव, व्यालोलाश्चपला समुल्लसन्त समुदस्ता समुन्नोता केतव पताका एव हस्ता यया तस्या भावस्तया जिनजन्मोत्सवस्य कुतूहल कौतुक तेन नृत्यन्तीव नृत्य कुर्वाणेव चिरतर दीर्घकालपर्यन्तं चकासामास शुशुभे । उत्प्रेक्षा । § ६७) जिन इति—त्रिलोकीजनैर्वन्द्यौ पादौ चरणौ यस्य तथाभूत , जगता गुरुर्जगद्गुरु जगच्छ्रेष्ठ सोऽय लोकोत्तरमहिममहित जिनो जिनेन्द्र अत्र अजायत समुत्पन्न इतीव हेतो सत्केतुपटावृता सद्वैजयन्तीवस्त्रावृता पुरी नगरी रवि सूर्य स्वपादै स्वचरणै पक्षे स्वदीधितिभि 'पादोऽस्त्री चरणे मूले तुरीयांशेऽपि दीधितौ' इति विश्वलोचन । श्लेषोत्प्रेक्षे । उपेन्द्रवज्रा-

---

शान्त कर रही है इस विचारसे ही मानो उस समय आकाश लक्ष्मीने मेघोंके विस्तारसे रहित अत्यन्त निर्मल तथा सुन्दर रूपको धारण किया था ॥४५॥ § ६६) सा किलेति—उस समय वह अयोध्यापुरी कल्पवृक्षके फूलोंसे व्याप्त होनेके कारण ऐसी जान पडती थी मानो उसने स्वच्छ रेशमी वस्त्र ही पहिन रखा हो, आकाश रूप आँगनसे पडे हुए श्रेष्ठ रत्नोंसे सुन्दर होनेके कारण ऐसी मालूम होती थी मानो रत्नोंके आभूषणोंसे सुशोभित ही हो रही हो, चन्दन रसके छिडकावसे ऐसी जान पड़ती थी मानो उसने चन्दनका लेप ही लगा रखा हो, जहाँ-तहाँ बनाये हुए रग-बिरगे मोतियोंके वेलबूटोंसे सुशोभित होनेके कारण ऐसी प्रतिभासित होती थी मानो उसने मोतियोंकी मालाएँ ही पहिन रखी हो, प्रत्येक घरमे होनेवाले लयसे सुशोभित सगीतसे मनोरम होनेके कारण ऐसी जान पड़ती थी मानो स्वयं गा ही रही हो, लहलहाते श्रेष्ठ पल्लवोंसे निर्मित वन्दनमालाओंसे सुन्दर होनेके कारण ऐसी मालूम होती थी मानो अपने अनुरागकी सन्तति ही प्रकट कर रही हो और फहराती हुई पताकाओ रूप हाथोंको ऊपर उठानेके कारण ऐसी जान पड़ती थी मानो जिनेन्द्र भगवान्के जन्मोत्सवके कुतूहलसे नृत्य ही कर रही हो । § ६७) जिन इति—जिनके चरण तीन लोकके मनुष्योंके द्वारा वन्दनीय हैं ऐसे जगद्गुरु भगवान् जिनेन्द्रने यहाँ जन्म प्राप्त किया है इस कारण ही मानो उत्तम पताकाओंसे घिरी हुई उस नगरीको सूर्यने अपने चरणोंसे (पक्षमे किरणोंसे)

§ ६८) भवनामरभवनेषु प्रादुरभूच्छङ्खसकुलारावः ।
भो भो भो इति मरुता जिनजन्ममह वदन्निवानन्दात् ॥४७॥

§ ६९) व्यन्तरभेरीरावो लोकं व्यालोलयस्तदाजृम्भत् ।
जिनजन्मोत्सवहर्षान्मुक्तिश्रीविकसदट्टहास इव ॥४८॥

§ ७०) कण्ठीरवकण्ठरवो ज्योतिष्काणा गृहाङ्गणे जातः ।
आशासु कुञ्जरान् द्राङ् विनिर्मदास्तानविन्दुकाश्चक्रे ॥४९॥

§ ७१) कल्पामरवरघण्टाघोषोऽभून्मोक्षसच्छ्रियो हर्षात् ।
नृत्यन्त्याश्चरणरणन्मणिनूपुरशब्दसशयनिदानम् ॥५०॥

§ ७२) तदानीमुदारजिनरजनीकरशुभोदयलीलावेलोत्कूलितप्रमदपारावारचञ्चद्वीचिसचयेनेव, विश्वातिशायिमहिम्नि जगद्गुरौ जाते को वान्यस्य राज्यमहिमेति प्रभावशक्त्या-

छन्द ॥४६॥ § ६८) भवनेति—भवनामरभवनेषु भवनवासिदेवभवनेषु आनन्दात् हर्षात् भो भो भो इत्यनुकरणशब्देन मरुता देवाना जिनजन्ममह जिनोत्पत्त्युत्सव वदन्निव कथयन्निव शङ्खसकुलाराव शङ्खाना कम्बूना सकुलारावो विकटशब्द प्रादुरभूत् प्रकटितोऽभवत् । उत्प्रेक्षा । आर्या ॥४७॥ § ६९) व्यन्तरेति—तदा तस्मिन् काले जिनस्य जन्मोत्सवः जिनजन्मोत्सवस्तेन हर्ष प्रमोदस्तस्मात् मुक्तिश्रिया मुक्तिलक्ष्म्या विकसन् प्रकटीभवन् अट्टहास इव व्यन्तराणा भेरीरावो व्यन्तरभेरीरावो व्यन्तरदुन्दुभिनादो लोक जगत् व्यालोलयन् कम्पयन् अजृम्भत् ववृधे । उपमा । आर्या ॥४८॥ § ७०) कण्ठीरव इति—ज्योतिष्काणा ज्योतिष्कदेवाना गृहाङ्गणे भवनाङ्गणे जातः समुद्भूत कण्ठीरवकण्ठरव. सिंहकण्ठध्वनि आशासु दिक्षु विद्यमानान् तान् कुञ्जरान् गजान् द्राग् झटिति विनिर्मदान् मदरहितान् अविन्दुकान् अवेदितॄन् ज्ञानशून्यानिति यावत् 'विन्दु स्याद्दन्तदशने शुक्रे वेदितृविप्रुषो' इति विश्वलोचन । चक्रे विदधे। आर्याछन्द ॥४९॥ § ७१) कल्पामरेति—कल्पामरवरघण्टाघोष कल्पवासिदेवश्रेष्ठघण्टाशब्द हर्षात् प्रमोदात् नृत्यन्त्या नटन्त्या मोक्षसच्छ्रिय मोक्षलक्ष्म्या चरणयो पादयो रणन्ति यानि मणिनूपुराणि मणिमञ्जीरकाणि तेषा शब्दस्य सशयस्तस्य निदान कारणम् अभूत् । आर्याछन्द ॥५०॥ § ७२) तदानीमिति—तदानी तस्मिन्काले निलिम्पपतीना देवेन्द्राणाम् अकम्पनानि अचलानि सिंहासनानि चकम्पिरे कम्पितानि बभूवु । अथ तेषा कम्पने हेतूत्प्रेक्षण कुर्वन्नाह—उदारेति–उदार उत्कृष्टो यो रजनीकरश्चन्द्रस्तस्य या शुभोदयलीला तस्या वेलायां समये उत्कूलित उत्क्रान्ततटो य प्रमदपारावारो हर्षसागरस्तस्य चञ्चद्वीचीना सचलत्तरङ्गाणा संचयस्तेनेव, विश्वातिशायी लोकोत्तरो

नहीं हुआ था ॥४६॥ § ६८) भवनेति—भवनवासी देवोंके भवनोंमें हर्षसे 'भो भो भो' इस प्रकारके शब्द द्वारा देवोंको जिनेन्द्रके जन्मोत्सवकी सूचना देते हुएके समान शखोंका विशाल शब्द होने लगा ॥४७॥ § ६९) व्यन्तरेति—उस समय जिनेन्द्रदेवके जन्मोत्सव सम्बन्धी हर्षसे मुक्तिलक्ष्मीके प्रकट होते हुए अट्टहासके समान लोकको चंचल करता हुआ व्यन्तर देवोंकी भेरियोंका शब्द बढ़ने लगा ॥४८॥ § ७०) कण्ठीरवेति—ज्योतिषी देवोंके गृहांगणोंमें उत्पन्न हुई सिंहोंकी कण्ठध्वनिने उन प्रसिद्ध दिग्गजोंको शीघ्र ही मदरहित तथा ज्ञानशक्तिसे शून्य कर दिया था ॥४९॥ § ७१) कल्पामरेति—कल्पवासी देवोंके यहाँ होनेवाला घण्टाका उत्कृष्ट शब्द, हर्षसे नृत्य करती हुई मोक्ष लक्ष्मीके चरणोंमें रुनझुन करनेवाले नूपुरोंके शब्द सम्बन्धी संशयका कारण हो रहा था ॥५०॥ § ७२) तदानीमिति—उस समय इन्द्रोंके अकम्प आसन कम्पायमान हो उठे सो ऐसा जान पड़ता था मानो उत्कृष्ट जिनराजरूपी चन्द्रमाके शुभ उदय सम्बन्धी लीलाके समय तटकी सीमाको लाँघनेवाले समुद्रकी चंचल लहरोंके समूहसे ही कम्पायमान होने लगे थे। अथवा लोकोत्तर महिमासे युक्त जगद्गुरु—

घातेनेव, तत्कालजृम्भितविविधदुन्दुभिप्रभृतिवाद्यरवपूरितलहरीभरेणेव, आद्योदितस्य जिनराजस्य सकलसिहासनपराभवप्रवीण सिंहासनमुदेष्यतीति भयेनेव निलिम्पपतीनामकम्पनानि सिंहासनानि चकम्पिरे।

§ ७३) सुराधिपतिरादराच्चलनकारण निश्चितु
दृशा दशशतैरपि प्रगुणमक्षमस्तत्क्षणम् ।
उदीतविमलावधिप्रथितलोचनेन स्वय
जिनाधिपविधूदयं हृदि विवेद तत्कारणम् ॥५१॥

§ ७४) ततः पुरदर पीठात् प्रजवमुत्थाय, तद्दिशि सप्तपदानि गत्वा, नत्वा च, तमभिषेक्तुमना मनागितरमोदेन घनगर्जनतर्जनपटीयसी प्रस्थानभेरी दापयामास ।

§ ७५) चिराच्छयालु सद्धर्मं क्षणादुन्निद्रयन्निव ।
त्रिलोकी पूरयामास तारो दुन्दुभिनिस्वनः ॥५२॥

महिमा यस्य तस्मिन् जगद्गुरौ भगवति जाते समुत्पन्ने सति अन्यस्य तदितरस्य को वा राज्यमहिमा राज्यप्रभाव इतीत्थ प्रभावशक्तेराघातस्तेनेव, तत्काल जृम्भिता वृद्धिगता ये विविधदुन्दुभिप्रभृतिवाद्याना रवा शब्दास्तै पूरितो यो लहरीभरस्तरङ्गसमूहस्तेनेव, आद्योदितस्य प्रथमोत्पन्नस्य जिनराजस्य जिनेन्द्रस्य सकलसिहासनाना निखिलमृगेन्द्रविष्टराणा पराभवे तिरस्करणे प्रवीण निपुण सिंहासनम् उदेष्यति इति भयेनेव भीत्येव । उत्प्रेक्षा । § ७३) सुरेति—सुराधिपतिरिन्द्र आदरात् विनयात् दृशा दशशतैरपि सहस्रेणापि नेत्रै प्रगुण स्थिर चलनकारण कम्पननिमित्त सिंहासनानामिति यावत्, निश्चितु निर्णेतुम् अत्र 'निश्चितु' इत्यत्र गुणाभावश्चिन्त्य, अक्षमोऽसमर्थ सन् तत्क्षण तत्कालम् उदीत उत्पन्नो यो विमलावधिर्निर्मलावधिज्ञान तदेव प्रथितलोचन प्रसिद्धनयन तेन हृदि स्वचेतसि जिनाधिप एव विधुर्जिनाधिपविधुर्जिनचन्द्रस्तस्योदय समुद्भव तत्कारण कम्पनकारण विवेद ज्ञातवान् । रूपकालकार । पृथ्वीछन्द ॥५१॥ § ७४) तत इति—घनेति—घनगर्जनस्य तर्जने भर्त्सने पटीयसी घनगर्जनतर्जनपटीयसीम् । शेष स्पष्टम् । § ७५) चिरादिति—तारो विशालो दुन्दुभिनिस्वनो भेरीनाद चिरात् चिरकालेन शयालु कृतशयन सद्धर्मं समीचीनधर्मं क्षणादल्पेनैव कालेन उन्निद्रय-

---

जिनराजके उत्पन्न हो चुकनेपर किसी दूसरेकी राज्यमहिमा क्या हो सकती है इस तरह प्रभाव शक्तिके आघातसे ही मानो कम्पित हो उठे थे। अथवा उस समय नाना प्रकारके दुन्दुभि आदि बाजोंके वृद्धिंगत शब्दोंसे भरी हुई लहरोंके समूहसे ही हिल उठे थे। अथवा सबके सिंहासनोंके तिरस्कार करनेमे प्रवीण प्रथम जिनेन्द्रका सिंहासन यहाँ उदयको प्राप्त होगा इस भयसे ही मानो काँप उठे थे। § ७३) सुरेति—जब इन्द्र आदरपूर्वक एक हजार नेत्रोंके द्वारा सिंहासनोंके कम्पित होनेके सुदृढ कारणका निश्चय करनेके लिए समर्थ नहीं हो सका तब उसने उसी क्षण उदित हुए निर्मल अवधिज्ञानरूपी नेत्रके द्वारा अपने हृदयमें जिनचन्द्रमाके उदयको उसका कारण जान लिया ॥५१॥ § ७४) तत इति—तदनन्तर इन्द्रने सिंहासनसे शीघ्र ही उठकर उस दिशामे सात कदम जाकर नमस्कार किया और जिनराजका अभिषेक करनेके लिए उत्कण्ठित हो बहुत भारी हर्षसे मेघ-गर्जनाका तिरस्कार करनेमे समर्थ प्रस्थानभेरी दिलवायी। § ७५) चिरादिति—भेरीका वह बहुत भारी शब्द चिरकालसे सोते हुए समीचीन धर्मको क्षणभरमे जगाते हुएके समान तीनों लोकोंमे व्याप्त हो गया।

§ ८०) पुरदरपुरान्तरान्नभसि सपतन्ती तदा
जिनेश्वर गृहावधि त्रिदशपद्धतिर्मेदुरा ।
समुज्जिगमिषोर्दिव तदुरुकीर्तिलक्ष्म्या पद-
क्रमाय परिकल्पिता मणिमयीव नि.श्रेणिका ॥५६॥

§ ८१) स्फटिकरुचिरसाल केतुमालाविलास-
स्थगितगगनभाग तत्पुर सपरीत्य ।
सुरवरपृतनास्तास्तस्थुरापूर्णबिम्ब
शशिन इव परीतास्तारका व्योमसीम्नि ॥५७॥

§ ८२) ततश्चतुर्णिकायदिशाध्यक्षसमेतस्सहस्राक्षः साकेतपुरलक्ष्मीवदनायमान, गगनतरु-मञ्जरीभिरिव तर्जयन्तीभिः सुरपुरश्रिय पताकाभिरुपशोभमान, चन्द्रबिम्बमिव सकलकल, वृन्दा-

---

चलता गच्छता करेणूना मतङ्गजाना चरणा पादास्तेषा प्रक्षेपेण चूर्णीभवन्तो ये नक्षत्रप्रचयास्तारासमूहास्तद्वत् क्षितितले महीतले पेतु पतन्ति स्म 'करेणुर्गजयोषाया स्त्रिया पुसि मतङ्गजे' इति विश्वलोचन । उत्प्रेक्षा। शार्दूलविक्रीडितम् ॥५५॥ § ८०) पुरन्दरेति—तदा तस्मिन् काले पुरदरपुरान्तरात् इन्द्रनगरमध्यात् नभसि गगने सपतन्ती समागच्छन्ती मेदुरा प्रभूता जिनेश्वरगृह जिनेन्द्रभवनमवधिर्यस्य तथाभूता या त्रिदशपद्धति-र्देवपङ्क्ति दिव स्वर्गं समुज्जिगमिषो समुद्गन्तुमिच्छन्त्या तदुरुकीर्तिलक्ष्म्या जिनेन्द्रविशालयश.श्रिया. पदक्रमाय चरणचाराय परिकल्पिता रचिता मणिमयी रत्नमयी नि श्रेणिकेव सोपानसततिरिव रेजे शुशुभे इति शेष । उत्प्रेक्षा । पृथ्वीछन्द ॥५६॥ § ८१) स्फटिकेति—स्फटिकस्यार्कोपलस्य रुचिरो मनोहर सालो यस्मिस्तत्, केतुमालाया पताकापरम्पराया विलासेन स्थगित समाच्छादितो गगनभागो नभ प्रदेशो यस्मिस्तत् तथाभूत तत् पुर तन्नगरम् अयोध्यामिति यावत् सपरीत्य वेष्टयित्वा ता पूर्वोक्ता सुरवरपृतना देवराजसेना व्योमसीम्नि नभ क्षेत्रे शशिनश्चन्द्रमस आपूर्णबिम्ब सपूर्णमण्डल परीता परिवृत्य स्थिता तारका इव नक्षत्रततय इव तस्थु स्थिता बभूवुः । उपमा । मालिनी ॥५७॥ § ८२) तत इति—ततस्तदनन्तरम् चतुर्णिकायत्रिदशानां भवनामरव्यन्तरज्योतिष्ककल्पवासिदेवानामध्यक्षैरिन्द्रै समेत सहित' सहस्राक्ष सौधर्मेन्द्रः नाभिराजसदन नाभिराजभवनम् आसाद्य प्राप्य शचीदेवीमिन्द्राणीम् अन्तर्मध्ये प्रेषयामास । अथ नाभिराजसदन विशेष-यितुमाह—साकेतपुरलक्ष्म्या अयोध्यानगरश्रिया वदनायमान मुखायमान, गगनतरुमञ्जरीभिरिव व्योममही-

---

मोतियोंकी सुन्दर पंक्तियाँ पृथिवीपर ऐसी पड रही थीं मानो प्रतिदिन अपरिमितकान्तिसे युक्त नक्षत्रोंके समूह आकाशके मैदानमे चलते हुए हाथियोंके पादचारसे चूर-चूर होकर ही गिर रहे हों ॥५५॥ § ८०) पुरन्दरेति—उस समय इन्द्रनगरके मध्यसे लेकर जिनेन्द्रभगवान्‌के भवन तक आकाशमे आती हुई देवोकी विशाल सन्तति ऐसी जान पडती थी मानो स्वर्ग जानेके लिए इच्छुक जिनेन्द्रदेवकी विशाल कीर्तिरूपी लक्ष्मीके चरण निक्षेपके लिए निर्मित मणिमयी सीढियाँ ही हों ॥५६॥ § ८१) स्फटिकेति—इन्द्रकी वे सेनाएँ स्फटिक मणिके सुन्दर कोटसे युक्त तथा पताकाओंके समूहसे आकाशको आच्छादित करनेवाले उस अयोध्यानगरको घेरकर उस तरह स्थित हो गयीं जिस तरह कि आकाशमे चन्द्रमाके पूर्ण बिम्बको घेरकर ताराएँ स्थित होती हैं ॥५७॥ § ८२) तत इति—तदनन्तर चार निकायके इन्द्रोंसे सहित सौधर्मेन्द्रने नाभिराजके उस भवनको प्राप्त कर इन्द्राणीको भीतर भेजा। जो कि अयोध्यनगर-की लक्ष्मीके मुखके समान था, आकाशरूपी वृक्षकी पुष्पमजरियोंके तुल्य स्वर्गकी लक्ष्मीको तर्जित करनेवाली पताकाओंसे सुशोभित था, चन्द्रमण्डलके समान सकलकल—कलकल

रकवृन्दमिव सदामङ्गलमादधानं मञ्जुलास्यविराजित च, विजिगीषुराजबलमिव पुरतोरण-श्रीविराजमान सर्वतोमरशोभित च, वनोज्ज्वलमपि नवनोज्ज्वल, शिवाञ्चितमपि विभवाञ्चित, सशालमपि विशाल, नाभिराजसदनमासाद्य शचीदेवीमन्त' प्रेषयामास ।

§ ८३) अरिष्टगेहं तदनुप्रविष्टा सुरेन्द्रपत्नी सहसा ददर्श ।
पुत्रेण जुष्टां जिनमातरं ता सध्या नवार्केण युतामिवाद्याम् ॥५८॥

§ ८४) तदनु भक्तिरसपरीवाहेन प्लाविता पुरदरवनिता समुन्नतवशपोतमवलम्बितुकामा

रुहपुष्पसततिभिरिव सुरपुरश्रिय स्वर्गलक्ष्मी तर्जयन्तीभि भर्त्सयन्तीभिरिव पताकाभिर्वैजयन्तीभि' उपशोभमान विराजमान, चन्द्रविम्बमिव सकलकल सकला कला यस्य तत् पक्षे कलकलेन कलकलशब्देन सहित तत्, वृन्दारकवृन्दमिव देवनिकुरम्बमिव सदामगलमादधान सदाम मालासहितं गल कण्ठम् आदधान पक्षे सदा शश्वत् मङ्गल मङ्गलद्रव्यमादधान विभ्रत्, अकारान्तो दामशब्द. क्वचित् दृश्यते, मञ्जुलास्यविराजित च मञ्जुल मनोहर यदास्य मुख तेन विराजितं शोभित पक्षे मञ्जुलास्येन मनोहरनृत्येन विराजित च, विजिगीषु-राजवलमिव विजेतुमिच्छुर्विजिगीषु. स चासौ राजा चेति विजिगीपुराजस्तस्य बलमिव सैन्यमिव पुरतोरण-श्रीविराजमानं पुरतोऽग्रे रणश्रिया युद्धलक्ष्म्या विराजमान शोभमान पक्षे पुरतोरणाना नगरबहिर्द्वाराणा श्रिया शोभया विराजमानं शोभमान, सर्वतोमरशोभितं च सर्वतोमरै सकलशस्त्रविशेषै शोभित पक्षे सर्वत समन्तात् अमरशोभित च देवशोभितं च, वनोज्ज्वलमपि काननशोभितमपि न वनोज्ज्वल न काननशोभितमिति विरोध परिहारपक्षे नवनेन स्तवनेन उज्ज्वलं शोभित, शिवाञ्चितमपि शिवेन भवेन अञ्चितं शोभितमपि विभवा-ञ्चित न भवाञ्चितमिति विरोध परिहारपक्षे शिवाञ्चितमपि कल्याणाञ्चितमपि विभवाञ्चित समृद्धिस-शोभितम्, सशाल शालाभि. सहितमपि विशाल विगता शाला यस्य तत् शालारहितमिति विरोध. परिहार-पक्षे विशाल विपुलम् । श्लेषोपमाविरोधाभासा. । § ८३) अरिष्टेति—तदनु तदनन्तरम् अरिष्टगेह सूतिकागृहम् 'अरिष्ट सूतिकागृहम्' इत्यमर प्रविष्टा सुरेन्द्रपत्नी शची सहसा झटिति पुत्रेण सूनुना जुष्टा सेविता जिनमातर जिनेन्द्रजननी नवार्केण बालसूर्येण युता सहिताम् आद्या सन्ध्यामिव प्रभातवेलामिव ददर्श विलोकयामास । उपमा । उपजातिवृत्तम् ॥५८॥ § ८४) तदन्विति—तदनु तदनन्तर भक्तिरसस्य भक्ति-जलस्य परीवाह प्रपूरस्तेन प्लाविता मज्जिता पुरंदरवनिता इन्द्राणी समुन्नतः श्रेष्ठतमो वशो गोत्र यस्य

शब्दसे सहित (पक्षमे समस्त कलाओंसे सहित) था, देवसमूहके समान सदामंगलमाद-धान–सर्वदा मगलको धारण करनेवाला था (पक्षमे माला सहित कण्ठको धारण करने-वाला था) तथा मजुलास्यविराजित—मनोहर मुखसे सुशोभित (पक्षमे मनोहर नृत्यसे सुशोभित) था, और विजयाभिलाषी राजाकी सेनाके समान पुरतोरणश्रीविराजमान—आगे युद्धकी लक्ष्मीसे सुशोभित (पक्षमें नगर सम्बन्धी तोरण द्वारोंसे सुशोभित) तथा सर्वतोमरशोभित—समस्त तोमर नामक शस्त्रोंसे विराजित (पक्षमे सब ओरसे देवोंसे विराजित) था। साथ ही वनोज्ज्वल—वनोंसे सुशोभित होकर भी नवनोज्ज्वल—वनोंसे सुशोभित नहीं था (परिहार पक्षमे स्तवनसे उज्ज्वल था) शिवाचित—भव—महादेवसे सुशोभित होकर भी विभवांचित--भव—महादेवसे सुशोभित नहीं था (परिहारपक्षमे शिवाचित—कल्याणकारी पदार्थोंसे युक्त होकर भी विभवाचित—समृद्धिसे सुशोभित था और सशाल—शालाओंसे सहित होकर भी विशाल—शालाओंसे रहित था (परिहारपक्षमें विशाल—विस्तृत था । § ८३) अरिष्टेति—तदनन्तर प्रसूतिकागृहमे प्रविष्ट हुई इन्द्राणीने पुत्रसे सहित जिनमाताको शीघ्र ही ऐसा देखा जैसे नवीन उदित सूर्यसे सहित प्रातःकालकी सध्या ही हो ॥५८॥ § ८४) तदन्विति—तदनन्तर जो भक्तिरूप जलके प्रवाहसे डूबकर ऊँचे

§ ७६) ततः शक्राज्ञया देवपृतना निर्ययुर्दिव ।
तारतम्येन सद्ध्वाना महाब्धेरिव वीचय ॥५३॥

§ ७७) चतुर्णिकायत्रिदशास्तदानी जिनेन्द्रजन्मोत्सवकौतुकेन ।
विनिर्ययुर्भूषणभूषिताङ्गा दिशामधीशाश्च दश प्रचेलुः ॥५४॥

§ ७८) तदनु सुपर्वराजोऽपि सुरहिततया, कुवलयानन्दसदायकतया, सत्पथप्रवृत्ततया, सकलकलोज्ज्वलतया च पर्वराज इति कविभिरुत्प्रेक्ष्यमाणः सौधर्मकल्पशतक्रतुः, अगाभिख्याञ्चितमपि नागाभिख्याञ्चित नागमपि अनागं, मदाह्लादिनमपि नमदाह्लादिनमैरावणमारुह्य, शच्या

न्निव जागरयन्निव त्रिलोकी त्रिभुवन पूरयामास । उत्प्रेक्षा ॥५२॥ § ७६) तत इति—ततस्तदनन्तर शक्राज्ञया सुरपतिनिदेशेन देवपृतना. देवसेना सध्वाना सशब्दा महाब्धे. महासागरात् .वीचय इव तरङ्गा इव तारतम्येन क्रमशो दिव स्वर्गात् निर्ययुर्निर्जग्मु । उपमा ॥५३॥ § ७७) चतुर्णिकायेति—तदानीं तस्मिन् काले भूषणैराभरणैर्भूषितान्यलकृतान्यङ्गानि येषा तथाभूता चतुर्णिकायत्रिदशा भवनवासिव्यन्तर-ज्योतिष्ककल्पवासिदेवा जिनेन्द्रस्य जन्मोत्सवस्य कौतुक तेन जिनराजजन्माभिषवमहकुतूहलेन विनिर्ययु विनिर्जग्मु , दिशामाशाना दशाधीशाश्च दशदिक्पालाश्च प्रचेलु चलन्ति स्म ॥ उपेन्द्रवज्राछन्द ॥५४॥ § ७८) तदन्विति--तदनु तदनन्तर सुपर्वणा सुमनसा राजापि सुपर्वराजोऽपि पुरदरोऽपि सुराणा देवाना हिततया सुरहिततया पक्षे 'सु' वर्णेन रहिततया (सुपर्वराज इत्यत्र 'सु' वर्णत्यागे 'पर्वराज' इत्येवावशिष्येत) कुवलयानन्दस्य महीमण्डलानन्दस्य सदायकतया प्रदायकतया पक्षे उत्पलविकासप्रदायकतया च 'स्यादुत्पलं कुवलयमथ नीलाम्बुजन्म च' इति धनजय , सश्चासौ पन्थाश्चेति सत्पथ समीचीनमार्गस्तस्मिन् प्रवृत्ततया पक्षे सता नक्षत्राणा पन्था सत्पथ गगन तस्मिन् प्रवृत्ततया विद्यमानतया, सकलकलाभिर्निखिलचातुरीभिरुज्ज्वल-तया निर्मलतया च पक्षे षोडशकलाभिरुज्ज्वलतया च पर्वराज पूर्णिमाचन्द्र इति कविभि उत्प्रेक्ष्यमाण-स्तर्क्यमाण सौधर्मकल्प प्रथमस्वर्गस्तस्य शतक्रतुरिन्द्र, अगस्य पर्वतस्येवाभिख्या शोभा तयाञ्चितमपि शोभितमपि अगाभिख्याञ्चित न भवतीति नागाभिख्याञ्चितमिति विरोध परिहारपक्षे नाग इत्यभिख्या नाम तयाञ्चितम् हस्तीति नाम्ना सहितमित्यर्थ , नागमपि हस्तिनमपि अनाग नागो न भवतीति अनागस्तमिति विरोध परिहारपक्षे न विद्यते आगोऽपराधो यस्य तम् अकारान्तोऽप्यागशब्द क्वचिद् दृश्यते, मदेन दानेन आह्लादयतीति मदाह्लादी त तथाभूतमपि नमदाह्लादिनमिति विरोध पक्षे नमता नम्रीभवतामाह्लादिनम्,

---

॥५२॥ § ७६) तत इति—तदनन्तर इन्द्रकी आज्ञासे शब्द करती हुई देवसेनाएँ क्रमशः स्वर्गसे उस प्रकार निकलीं जिस प्रकार कि समुद्रसे लहरें निकलती हैं ॥५३॥ § ७७) चतुर्णिकायेति– उस समय आभूषणोंसे भूषित शरीरवाले चारों निकायोंके देव, जिनेन्द्र-भगवान्‌के जन्मोत्सव सम्बन्धी कुतूहलसे बाहर निकले तथा दशों दिक्पाल भी चले ॥५४॥ § ७८) तदन्विति—तदनन्तर सुपर्वराज—देवराज होनेपर भी जो सुरहिततया—देवोंके लिए हितकारी (पक्षमें 'सु' अक्षरसे रहित) होनेके कारण, कुवलयानन्द सदायकतया—पृथ्वी-मण्डलको आनन्ददायी (पक्षमें नीलकमलोंको हर्षदायी) होनेसे, सत्पथ प्रवृत्ततया—समीचीन मार्गमें प्रवृत्त होनेके कारण (पक्षमें आकाशमें प्रवृत्त होनेसे) और सकलकलोज्ज्वलतया—समस्त कलाओं—चतुराइयोंसे उज्ज्वल (पक्षमें सोलह कलाओंसे निर्मल) होनेके कारण मानो पर्वराज—पूर्णिमाका चन्द्र ही है। इस प्रकार कवि लोगोंके द्वारा जिसकी उत्प्रेक्षा की जा रही थी ऐसा सौधर्मस्वर्गका इन्द्र, अग—पर्वतकी शोभासे सहित होनेपर भी नागाभिख्याचित—पर्वतकी शोभासे रहित (पक्षमें नाग—हस्ती इस नामसे सहित नाग होनेपर भी अनाग—नागसे भिन्न (पक्षमें अपराधसे रहित) तथा मदाह्लादी—मदसे हर्षित होकर भी

सह कृतप्रस्थानः, सामानिकत्रायस्त्रिंशपारिषदात्मरक्षलोकपालाभियोग्यकिल्विपसदोहपरिवृतः, सुरभिलसुरतरुकुसुमपूरितपात्रपवित्रकरकिङ्करनिकरानुगम्यमानतया तदीयविरह सोढुमशक्नुवद्भिः क्रीडावनैरनुगम्यमानः, परस्परघट्टनरणन्मणिभूषणवाचालितकुचकुम्भै कलितकास्यतालध्वनिभिरिव दृश्यमानै गगनपयोधिपयोजशङ्कावहवदनविराजितैर्नृत्यद्भि सुराङ्गनाजनैः परिनिष्क्रियमाणपुरोभाग., नभःस्थलजलाधितरङ्गमकरशङ्काकरैस्तुरङ्गस्तम्बेरमैर्निविडितसविधप्रदेश क्रमेणाम्बरतलादवततार ।

§ ७९) समर्दाद्गलिता नटद्द्विविषदा वक्ष स्थलप्रोल्लसन्-
मालामौक्तिकराजयः क्षितितले पेतु सुशोभाञ्चिता. ।
व्योमाभोगचलत्करेणुचरणप्रक्षेपचूर्णीभव-
न्नक्षत्रप्रचया इव प्रतिदिन नि सीमकान्त्युल्वणा ॥५५॥

ऐरावण ऐरावतम् आरुह्याधिष्ठाय शच्या पुलोमजया इन्द्राण्येत्यर्थ सह कृतप्रस्थान' कृतप्रयाण, सामानिक त्रायस्त्रिंश पारिपद आत्मरक्ष लोकपाल आभियोग्य किल्विपकश्च देवविशेषास्तेषा सदोहेन समूहेन परिवृत परिवेष्टित, 'इन्द्रसामानिकत्रायस्त्रिंशपारिपदात्मरक्षलोकपालानीकप्रकीर्णकाभियोग्यकिल्विपिकाश्च' इति देवाना दशभेदा । सुरभिलानि सुगन्धीनि यानि सुरतरुकुसुमानि कल्पवृक्षपुष्पाणि तै पूरितानि सभृतानि यानि पात्राणि भाजनानि तै पवित्रकरा पूतपाणयो ये किङ्करा सेवकास्तेषा निकरेण समूहेनानुगम्यमानतया तदीयविरह इन्द्रवियोग सोढुमनुभवितुम् अशक्नुवद्भि असमर्थै, क्रीडावनैरिव केलिकाननैरिवानुगम्यमान, परस्परघट्टनेन मिथो घातेन रणन्ति शब्दायमानानि यानि मणिभूपणानि तै —वाचालिता मुखरिता कुचकुम्भा स्तनकलशा येपा तै कलित कृत कास्यतालध्वनिर्यैस्तैरिव दृश्यमानैरवलोक्यमानै गगनमेव पयोधि गगनपयोधिराकाशसमुद्रस्तस्मिन् विद्यमानानि यानि पयोजानि कमलानि तेषा शङ्कावहानि सदेहधारकाणि यानि वदनानि मुखानि तैर्विराजितै शोभितै, नृत्यद्भिर्नटद्भि सुराङ्गनाजनै देवीसमूहै परिनिष्क्रियमाण क्रियाशून्यीक्रियमाण पुरोभागोऽग्रभागो यस्य तथाभूतः नभ स्थलमेव गगनमेव जलधिस्तस्य ये तरङ्गमकरा कल्लोलमकरास्तेपा शङ्काकरै सदेहदायकै तुरङ्गस्तम्बेरमैर्हयहस्तिभि निविडित. सान्द्र सविधप्रदेशो यस्य तथाभूत सन् क्रमेण अम्बरतलात् आकाशपृष्ठात् अवततार नीचैरागच्छत् । § ७९) समर्दादिति—समर्दात्परस्परप्रघट्टनात् गलिता पतिता सुशोभया अञ्चिता सुशोभाञ्चिता उत्तमशोभासहिता. नटन्तश्च ते दिविपदश्चेति नटद्दिविपदस्तेपा नृत्यन्निलिम्पाना वक्ष स्थले प्रोल्लसन्त्यो या मालास्तासा मौक्तिकराजयो मुक्तापङ्क्तय प्रतिदिन प्रतिदिवस नि सीमकान्त्या उल्वणा उत्कटा इति नि सीमकान्त्युल्वणा व्योमाभागे आकाशविस्तारे

नमदाह्लादी मदसे रहित (पक्षमे नम्र मनुष्योंको आह्लाददायी) ऐरावत हाथीपर इन्द्राणीके साथ बैठकर प्रस्थान करता हुआ क्रमशः आकाशसे नीचे उतरा। उस समय सुगन्धित कल्पवृक्षके फूलोंसे भरे पात्र हाथोंमे धारण करनेवाले किंकरोंके समूह उसके पीछे पीछे चल रहे थे उनसे वह ऐसा जान पडता था मानो उसका विरह सहन करनेके लिए असमर्थ होते हुए क्रीडावन ही उसके पीछे चलने लगे हों। परस्परके आघातसे रुनझुन शब्द करनेवाले मणिमय आभूपणोसे जिनके स्तन कलश शब्दायमान हो रहे थे, जो काँसेकी झाँझोंके शब्द करती हुई सी दिखाई देती थीं तथा जो आकाशरूपी समुद्रमे सुशोभित कमलकी शंका करनेवाले मुखोसे सुशोभित थीं ऐसी नृत्य करती हुई देवियोने उस इन्द्रके अग्रभागको क्रियाशून्य कर दिया था। आकाशरूपी समुद्रकी तरंगो तथा भ्रमरोंकी शंका करनेवाले घोड़े और हाथियोसे उसका समीपवर्ती प्रदेश खूब व्याप्त था। § ७९) समर्दादिति—उस समय परस्परके आघातसे टूटकर गिरे हुए नृत्य करनेवाले देवोंके वक्षःस्थलोंपर शोभायमान मालाओंके

§ ९०) तितीर्षुर्भववाराशि जिनपोत समाश्रित ।
कर मेरुप्रयाणाय चालयामास वासव. ॥६३॥

§ ९१) तदनु कौतुकवशेन नभोऽङ्गणमुत्पतितैर्भूषणगणप्रभाभि· सुरचापानि तन्वद्भिर्जयघोषणमुखरमुखैर्बर्हिर्मुखै क्वचितपुरोभाग, गन्धर्वसमारब्धसगीतानुसारिणीभि कलितकुतुकधोरणीभिरुत्क्षिप्तभ्रूपताकाभिश्चलत्कुचकुम्भाभिरप्सरोभिर्विरचितनाट्यविलास, सघट्टक्षुण्णजलधरैर्विमानवरैर्निरन्तरगगनान्तश्चलदैरावणद्वात्रिंशदाननविलसदष्टदन्तसमुदञ्चितसरोवरसमुज्ज्वलद्द्वात्रिंशद्दलविलसितकमलदलेषु नटन्तीना सुरलासिकाना लास्यान्यवलोकनेनाङ्गीकुर्वाण, सुरनिकरकराम्बुरुहमुकुलीकरणचतुर मन्दस्मितफेनिलप्रमदपारावारपरिवर्धनतत्परं स्वाङ्कालकार जिनचन्दिर वक्षसा भुजाभ्या चावलम्बमानो जन्माभिषेकलालसमानसः सौधर्मपतिर्नभोमार्गेण ससैन्य प्रतस्थे।

तत्र मूर्ध्नि न्यधायि स्थापित । उपजातिवृत्तम् ॥६२॥ § ९०) तितीर्षुरिति—भव एव वाराशि भववाराशिस्त ससारसागर तितीर्षु तरितुमिच्छु अतएव जिन एव पोतो जलयान त पक्षे जिनबालक समाश्रित वासव इन्द्र मेरुप्रयाणाय मेरु प्रति प्रस्थान कर्तुं कर हस्त चालयामास कम्पयामास । रूपकालकार ॥६३॥ § ९१) तदन्विति—तदनन्तर कौतुकवशेन नभोऽङ्गण गगनाजिरम् उत्पतितैरुद्गतै, भूषणाना गणस्य प्रभाभिर्भूषणगणप्रभाभिराभरणसमूहदीप्तिभि सुरचाप शक्रशरासन तन्वद्भिर्विस्तारयद्भि, जयघोषणेन जयजयेत्युच्चारणेन मुखराणि वाचालानि मुखानि येषा तै बर्हिर्मुखैर्गीर्वाणै । 'बर्हिर्मुखा क्रतुभुजो गीर्वाणा दानवारय' इत्यमर, क्वचितो व्याप्त पुरोभागोऽग्रप्रदेशो यस्य तथाभूत, गन्धर्वै सगीतप्रियदेवविशेषै समारब्ध प्रारब्ध यत्सगीत तदनुसरन्तीत्येवशीलाभि, कलिता धृता कुतुकस्य कुतूहलस्य धोरण्यो नद्यो याभिस्ताभि, उत्क्षिप्ता उन्नमिता भ्रुव एव पताका याभिस्ताभि, चलन्तौ कुचकुम्भौ स्तनकलशौ यासा ताभि. अप्सरोभिर्देवाङ्गनाभि, विरचित कृतो नाट्यविलासो नृत्यविलासो यस्य तथाभूत, सघट्टेन समाघातेन क्षुण्णाश्चूर्णीकृता जलधरा मेघा यैस्तै विमानवरै श्रेष्ठव्योमयानै निरन्तर सान्द्रं यद् गगन तस्यान्तर्मध्ये चलदैरावणस्य चलदैरावतस्य द्वात्रिंशदाननेषु प्रत्यानन विलसन्तो विशोभमाना येऽष्टदन्तास्तेषु समुदञ्चिता शोभिता ये सरोवरास्तडागास्तेषु समुज्ज्वलन्ति शोभमानानि यानि द्वात्रिंशद्दलविलसितानि कमलदलानि नलिनपत्राणि तेषु नटन्तीना नृत्यन्तीना सुरलासिकाना देवनर्तकीना लास्यानि नृत्यानि अवलोकनेन अङ्गीकुर्वाण स्वीकुर्वाण, सुरनिकरस्य देवसमूहस्य कराम्बुरुहाणा

मस्तकपर धारण की अर्थात् हाथ जोडकर मस्तकसे लगाये ॥६२॥ § ९०) तितीर्षुरिति—संसार सागरसे पार होनेके इच्छुक अतएव जिनपोत—जिनेन्द्ररूपी जहाज (पक्षमें जिन बालक)का आश्रय लेनेवाले इन्द्रने मेरुपर्वतकी ओर चलनेके लिए हाथ चलाया अर्थात् हाथसे इशारा किया ॥६३॥ § ९१) तदन्विति—तदनन्तर कुतूहलवश, आकाशांगणमें उड़े हुए, आभूषणसमूहकी प्रभासे इन्द्रधनुषोंको विस्तृत करनेवाले तथा जय जय शब्दके उच्चारणसे शब्दायमान मुखोंसे युक्त देवोंके द्वारा जिसका अग्रभाग व्याप्त हो रहा था, गन्धर्वदेवोंके द्वारा प्रारम्भ किये हुए संगीतके अनुसार चलनेवाली, कुतूहलयुक्त, भौंहोंको ऊपर उठानेवाली तथा हिलते हुए स्तनकलशोंसे युक्त अप्सराएँ जिसके आगे नृत्यकी शोभा बढ़ा रही थीं, अपने आघातसे मेघोंको चूर चूर कर देनेवाले श्रेष्ठ विमानोंसे व्याप्त आकाशके बीच चलते हुए ऐरावत हाथीके बत्तीस मुखोंमें सुशोभित आठ-आठ दाँतोंपर छलकते हुए तालाबोंमें शोभायमान बत्तीस-बत्तीस कलिकाओंसे युक्त कमलोंके प्रत्येक दलोंपर नृत्य करती हुई देवनर्तकियोंके नृत्योंको जो अवलोकनके द्वारा स्वीकृत कर रहा था, देवसमूहके करकमलोंको मुकुलित करनेमें प्रवीण, मन्द हास्यसे फेनयुक्त हर्षरूपी समुद्रके बढ़ानेमें तत्पर तथा अपनी गोदके अलकार स्वरूप जिनचन्द्रको जो वक्षःस्थल और दोनों भुजाओंसे पकड़े हुआ था

§ ९२) तूर्यारावप्रसरमुखरे व्योमभागे तदानी
गद्यैः पद्यैर्ललितमधुर नाकनाथै प्रक्लृप्तैः ।
जैनं स्तोत्र श्रवणविषय नाभवत्किंतु लेखै-
रासीज्ज्ञातं विचलदधरस्फारलीलायितेन ॥६४॥

§ ९३) ईशानवासवधृत धवलातपत्र
प्रोद्भूतहेमकलश प्रगुण व्यतानीत् ।
जन्माभिषेककुतुकेन समागतस्य
चन्द्रस्य हस्तधृतसत्कलशस्य शङ्काम् ॥६५॥

§ ९४) तदा खलु सानत्कुमारमाहेन्द्रनायककरनीरेजकलितचारुचामरपङ्क्ति जिनाभिषेकमेदुरतया समनुसृतपय पारावारवीचिपरम्परेव, समुत्सुकमुक्तिलक्ष्मीप्रहितकटाक्षधारेव, भगवत्सेवार्थंमनुप्रवहन्ती सुरस्रवन्तीव च विरराज ।

करकमलाना मुकुलीकरणे कुडमलीकरणे चतुरो दक्षस्त, मन्दस्मितेन मन्दहसितेन फेनिलो डिण्डीरयुक्तो य प्रमदपारावरो हर्षसागरस्तस्य परिवर्धने तत्परस्त, स्वाङ्कस्य स्वोत्सङ्गस्यालकारस्त, जिनचन्दिर जिनेन्द्रचन्द्रमस वक्षसा भुजाभ्या वाहुभ्या चावलम्बमानो गृह्णान , जन्माभिषेके लालसा यस्य जन्माभिषेकलालस तथाभूत मानस यस्य स , सौधर्मपतिः सौधर्मेन्द्र नभोमार्गेण गगनवर्त्मना ससैन्य सपृतनः प्रतस्थे प्रययौ । § ९२) तूर्येति—तदानी तस्मिन् काले तूर्याणा वाद्यानामारावस्य शब्दस्य प्रसरेण मुखरे शब्दायमाने व्योमभागे गगनप्रदेशे नाकनाथैरिन्द्रै प्रक्लृप्तै रचितै गद्यै पद्यै ललितमधुर प्रशस्ततम जिनस्येद जैन जैनेन्द्र स्तोत्र स्तवन श्रवणविषय कर्णगोचर नाभवत् कलकलारावस्य बाहुल्येन स्तोत्र न श्रूयते स्मेति भाव । किंतु लेखै सुरैर्विचलतामधराणामोष्ठाना स्फारलीलायितेन प्रचुरलीलया ज्ञातम् आसीत् । ओष्ठाना चाञ्चल्येन देवै स्तोत्रस्यानुमान कृतमिति यावत् । मन्दाक्रान्ता ॥६४॥ § ९३) ईशानेति—ईशानवासवेन ऐशानेन्द्रेण धृत स्थापितमितीशानवासवधृत प्रोद्भूत प्रकटितो हेमकलशो यस्मिंस्तत् प्रगुण प्रकृष्टं श्रेष्ठमित्यर्थ । धवलातपत्र शुक्लच्छत्र जन्माभिषेकस्य कुतुक तेन समागतस्य समायातस्य हस्ते धृत सत्कलशो येन तथाभूतस्य चन्द्रस्य शशिन शङ्का सदेह व्यतानीत् विस्तारयामास । उपमा । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥६५॥ § ९४) तदेति—तदा खलु सानत्कुमारमाहेन्द्रनायकयो तन्नामेन्द्रयो करनीरेजेषु हस्तकमलेषु कलिता धृता या चारुचामरपङ्क्ति सुन्दरबालव्यजनसतति सा, जिनाभिषेकादरेण मेदुरतया मिलिततया समनुसृता समागता पय पारावारस्य क्षीरपयोधेर्वीचिपरम्परेव तरङ्गपरिपाटीव, समुत्सुकया समुत्कण्ठया मुक्तिलक्ष्म्या निर्वृतिश्रिया प्रहिता मुक्ता कटाक्षधारेव केकरपङ्क्तिरिव, भगवत्सेवार्थम् जिनेन्द्रसेवायै अनुप्रवहन्ती अनुप्रगच्छन्ती सुरस्रवन्तीव च

तथा जिसका हृदय जन्माभिषेकके लिए उत्सुक हो रहा था ऐसे सौधर्मेन्द्रने सेनासहित आकाशमार्गसे प्रस्थान किया । § ९२) तूर्येति—उस समय वाद्योंके शब्दसमूहसे वाचालित आकाशमे इन्द्रोंके द्वारा रचे हुए गद्य-पद्योंसे सुन्दर जिनस्तोत्र कानोका विषय नहीं हो रहा था किन्तु देव हिलते हुए होंठोंकी विशाल लीलासे उसे जान रहे थे ॥६४॥ § ९३) ईशानेति—जिसपर स्वर्णकलश लग रहा था ऐसा ऐशानेन्द्रके द्वारा धारण किया हुआ सुन्दर सफेद छत्र, जन्माभिषेकके कुतूहलसे हाथमे कलश लेकर आये हुए चन्द्रमाकी शका कर रहा था ॥६५॥ § ९४) तदेति—उस समय सानत्कुमार और माहेन्द्र इन्द्रोंके करकमलोंमे स्थित सुन्दर चामरोंकी पक्ति ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो जिनाभिषेकके आदरसे युक्त होनेके कारण साथ-साथ आये हुए क्षीरसागरकी तरगोंकी परम्परा ही हो अथवा अत्यन्त उत्कण्ठित

समीपमासाद्य रूपसंपदा मारं कुमारमभिजातमपि नाभिजातं, रोचितवृत्तिमपि नरोचितवृत्तिं, सलक्षणमपि विलक्षणं, विलसन्तमप्यविलसन्तं तनयं तं मायानिद्रामोहितायाः मरुदेव्या अङ्के प्राचीव पूर्वपयोधिवीचे प्रतिबिम्बं समर्प्य भानुमन्तं क्षणात् स्वीचकार ।

§ ८५) स्पर्शं स्पर्शं कौतुकात्कोमलाङ्गं
दर्शं दर्शं तस्य दृग्भ्यां मुखाब्जम् ।
उच्चद्वंशं पोतमेषाश्रितापि
पौलोमी द्राक् समदाब्धौ ममज्ज ॥५९॥

§ ८६) तदनु द्यौरिव बालभानुमुद्यन्तमर्हन्तमादाय व्रजन्ती मङ्गलधारिणीभिर्दिक्कुमारीभि·

समुन्नतवंशः स चासौ पोतश्च बालकश्चेति समुन्नतवंशपोतस्तं पक्षे समुन्नतः समुत्तुङ्गो वंशो वेणुर्यस्मिन् तथाभूतं पोतो नौस्तम्, अवलम्बितकामा समाश्रयणं कर्तुकामा, सतो समीपं निकटम् आसाद्य प्राप्य रूपमेव संपत्तया सौन्दर्यसंपत्त्या मारं कामदेवं अभिजातं श्रेष्ठकुलोत्पन्नमपि अभिजातं न भवतीति नाभिजातमिति विरोधः परिहारपक्षे नाभिराजसमुत्पन्नम्, रोचिता वृत्तिर्यस्य तं तथाभूतमपि प्रियव्यवहारमपि न रोचिता वृत्तिर्यस्य तमिति विरोधः परिहारपक्षे नराणां मनुजानामुचिता योग्या वृत्तिर्यस्य तम्, सलक्षणमपि लक्षणसहितमपि विलक्षणं विगतलक्षणमिति विरोधः परिहारपक्षे विलक्षणं विभिन्नम्, विचित्रमित्यर्थः विलसन्तमपि शुम्भन्तमपि अविलसन्तं न शुम्भन्तमिति विरोधः । परिहारपक्षे अः विष्णुस्तद्वद् विलसन्तं शोभमानं तनयं पुत्रं तं, मायैव निद्रा मायानिद्रा तया मोहितायाः मुग्धायाः मरुदेव्याः जिनजनन्याः अङ्के क्रोडे प्राचीव पूर्वदिशेव पूर्वपयोधिवीचे पूर्वसिन्धुतरङ्गसतते अङ्के प्रतिबिम्बं समर्प्य भानुमन्तमिव सूर्यमिव क्षणात् स्वीचकार आदत्तवती । श्लेषोपमाविरोधाभासाः । § ८५) स्पर्शमिति—एषा पूर्वोक्ता पौलोमी शची कौतुकात् कुतूहलात् तस्य पुत्रस्य कोमलाङ्गं मृदुलशरीरं स्पर्शं स्पर्शं स्पृष्ट्वा स्पृष्ट्वा, दृग्भ्यां नयनाभ्यां मुखाब्जं मुखकमलं दर्शं दर्शं दृष्ट्वा दृष्ट्वा उच्चन् उत्तुङ्गो वंशो वेणुर्यस्मिंस्तथाभूतं पोतं नौकां पक्षे उच्चद्वंशं श्रेष्ठकुलं पोतं शिशुं 'पोतः पाकोऽर्भको डिम्भः पृथुकः शावकः शिशुः' इत्यमरः, आश्रितापि प्राप्तापि द्राक् झटिति समदाब्धौ हर्षसागरे ममज्ज निमग्ना भूत् । रूपकविरोधाभासौ । शालिनीछन्दः ॥५९॥ § ८६) तदन्विति—उद्यन्तमुदीयमानं बालभानुं प्रभातप्रभाकरं द्यौरिव, अर्हन्तं जिनम् आदाय गृहीत्वा व्रजन्ती गच्छन्ती मङ्गलधारिणीभिरष्टमङ्गलद्रव्यधारिकाभि

बाँससे युक्त जहाज (पक्षमें उच्चकुलोत्पन्न बालक) का अवलम्बन लेना चाहती थी ऐसी इन्द्राणीने पास जाकर जो सौन्दर्यरूप सम्पत्तिसे कामदेव था, अभिजात—उच्चकुलोत्पन्न होकर भी नाभिजात—उच्चकुलोत्पन्न नहीं था (पक्षमें नाभिराजासे उत्पन्न था) रोचितवृत्ति—उत्तम व्यवहारसे युक्त होकर भी नरोचितवृत्ति—उत्तम व्यवहारसे युक्त नहीं था (पक्षमें मनुष्योंके योग्य व्यवहारसे सहित था) सलक्षण—लक्षणोंसे सहित होनेपर भी जो विलक्षण—लक्षणोंसे रहित था (पक्षमें अनुपम अथवा विचित्र था) तथा विलसन्तमपि—शोभायमान होनेपर भी जो अविलसन्त—शोभायमान नहीं था (परिहारपक्षमें अ अर्थात् विष्णुके समान शोभायमान था) ऐसे उस बालकको, मायामयी निद्रासे मोहित मरुदेवीकी गोदमें तत्सदृश-कृत्रिम बालकको रखकर उसी क्षण उस प्रकार उठा लिया जिस प्रकार कि पूर्वदिशा पूर्व-समुद्रकी वीचिकी गोदमें प्रतिबिम्बको रखकर सूर्यको उठा लेती है। § ८५) स्पर्शमिति—यद्यपि वह इन्द्राणी उच्चद्वंशं पोतं—ऊँचे बाँसवाले जहाज (पक्षमें उच्च कुलवाले बालक) को प्राप्त थी तो भी कुतूहलवश जिनबालकके कोमल शरीरका बार-बार स्पर्श कर तथा नेत्रोंसे उसके मुख कमलको बार-बार देखकर शीघ्र ही हर्षके सागरमें डूब गयी ॥५९॥ § ८६) तदन्विति—तदनन्तर उदित होते हुए बालसूर्यको लेकर आकाशके समान, उदीयमान

स्तरङ्गितपुरोभागा सेयमिन्द्राणी पाकशासनस्य करे पूर्वगिरे. सानौ द्युमणिं प्राचीव समर्पयामास ।

§ ८७) गीर्वाणेन्द्रास्त्रिजगतां गुरुमादाय सादरम् ।
सददर्श स तद्रूपं सप्रीतिस्फुरितेक्षणः ॥६०॥

§ ८८) त्वं लोकाधिपतिस्त्वमेव हि गतिर्भक्तिस्पृशां मादृशां
राजत्केवलबोधवासरमणे पूर्वाचलं त्वां विदुः ।
श्रीमन्नाधिपदे तनोति विनते द्राक् संपदं त्वद्रुचि
सिद्ध्यत्यत्र जने सुदृष्टिमहिते भव्ये समाधिस्ततः ॥६१॥

§ ८९) स्तुत्वेति जम्भद्विषता जिनोऽयं न्यधायि मूर्ध्नि त्रिदशद्विपस्य ।
जयेश नन्देति वदद्भिरुच्चैः कराञ्जलिस्तत्र समस्तलेखैः ॥६२॥

दिक्कुमारीभिर्देवीभिः तरङ्गितः पुरोभागो यस्यास्तथाभूता इयं सा इन्द्राणी पाकशासनस्य पुरंदरस्य करे हस्ते पूर्वगिरेरुदयाचलस्य सानौ शिखरे द्युमणिं सूर्यं प्राचीव पूर्वदिगिव समर्पयामास । उपमा । § ८७) गीर्वाणेन्द्र इति—गीर्वाणानां देवानामिन्द्रो भर्ता गीर्वाणेन्द्रः स सौधर्मेन्द्रः सादरं यथा स्यात्तथा त्रिजगतां त्रिलोकीनां गुरुं जिनम् आदाय गृहीत्वा सप्रीत्या स्फुरितानि ईक्षणानि नयनानि यस्य तथाभूतः सन् तद्रूपं जिनशिशुसौन्दर्यं सददर्श विलोकयामास ॥६०॥ § ८८) त्वमिति—हे भगवन् ! त्वं लोकाधिपतिः लोकस्वामी असि, हि निश्चयेन त्वमेव भक्तिस्पृशां भक्तियुक्तानां मादृशां मत्सदृशजनानां गतिर्लक्ष्यस्थानम् असि । त्वां भवन्तं राजत्केवलबोध एव वासरमणिस्तस्य शोभमानकेवलज्ञानसूर्यस्य पूर्वाचलं उदयाचलं विदुर्जानन्ति, हे श्रीमन् ! त्वद्रुचिस्त्वदीयश्रद्धा आधिपदे मनोव्यथास्पदे विनते नम्रे जने द्राक् शीघ्रं संपत्तिं तनोति विस्तारयति पक्षे समितिपदं संपदं तनोति योजयति ततस्तस्मात् कारणात् सुदृष्टिमहिते सम्यक्श्रद्धाविभूषिते अत्र भव्ये जने समाधिः ध्यानं सिद्ध्यति । अथ आधिपदे 'सम्' इति शब्दस्य योजने सति समाधिः सिध्यत्येव । रूपकश्लेषौ । शार्दूलविक्रीडितम् ॥६१॥ § ८९) स्तुत्वेति—इति पूर्वोक्तप्रकारेण स्तुत्वा जम्भद्विषता सौधर्मेन्द्रेण अयं जिनः एष जिनबालकः त्रिदशद्विपस्य देवगजस्य ऐरावतस्येत्यर्थः मूर्ध्नि शिरसि न्यधायि स्थापितः कर्मणि प्रयोगः । हे ईश ! भो स्वामिन् ! 'जय नन्द' इति वदद्भिरुच्चैरद्भिः समस्तलेखैः निखिलनिलिम्पैश्च कराञ्जलिर्हस्ताञ्जलिः

जिनबालकको लेकर जो जा रही थी, तथा मंगल द्रव्योंको धारण करनेवाली दिक्कुमारी देवियोंके द्वारा जिसके आगेका प्रदेश व्याप्त हो रहा था ऐसी उस इन्द्राणीने उस बालकको इन्द्रके हाथमें उस प्रकार सौंप दिया जिस प्रकार कि पूर्वदिशा सूर्यको पूर्वाचलके शिखरपर सौंप देती है । § ८७) गीर्वाणेन्द्र इति—इन्द्र, त्रिजगद्गुरुको आदरपूर्वक ग्रहण कर प्रीतिवश नेत्रोंको खोल-खोलकर उनके रूपको देखता रहा ॥६०॥ § ८८) त्वमिति—हे भगवन् ! आप ही लोकके स्वामी हैं, आप ही मेरे जैसे भक्तपुरुषोंके लक्ष्य स्थान हैं, आपको ही लोग शोभायमान केवलज्ञानरूपी सूर्यका उदयाचल कहते हैं । हे श्रीमन् ! अपनी श्रद्धा आधि—मानसिक व्यथाके स्थानभूत विनम्र मनुष्यमें शीघ्र ही संपद्—संपत्ति (पक्षमें 'सम्' इस पद) को विस्तृत करती है इसलिए इस जगत्में सम्यग्दर्शनसे सुशोभित मनुष्यमें समाधि—ध्यान (पक्षमें सम्+आधि=समाधि शब्द) सिद्ध होता है ॥६१॥ § ८९) स्तुत्वेति—इस प्रकार स्तुति कर इन्द्रने जिनबालकको ऐरावत हाथीके मस्तकपर धारण किया और 'ईश ! जयवन्त होओ समृद्धिवान् होओ' इस तरह कहते हुए समस्त देवोंने हाथोंकी अंजलि

§ ९५) तत्र किल विचित्रविविधवाहनान्यधिरूढेषु भवनव्यन्तरज्योतिष्ककल्पनाथेषु ससैन्येषु जिनमभितः प्रचलितेषु, केचित्किरीटघटितपद्मरागप्रभावालातपरुचिरवदनसरोजतया प्रचुरानुरागमन्तरमेयत्वेन बहिरपि प्रसृतमुद्वहन्त इव, अपरे च विचलदेकावली तरलमणिघृणिश्रेणिदन्तुरितभुजान्तरतयान्तःप्ररूढजिनभक्तिनि सारितहृदयस्थितमोहतिमिरनिकरमेदुरा इव, केचन तपनबिम्बे रक्तोत्पलधिया धावमान मत्तद्विप निजवाहन निवर्तयन्त, परे पुन सैनिकसमर्दितपाण्डुरजलधरखण्डेषु दध्योदनभ्रान्त्या संभ्रान्तान्विडालास्ताडयन्तोऽन्ये च पुनस्तरलमुक्ताहारविसृतकान्तिधारासु मृणालिनीशङ्कया सकुलान्हंसान्सान्त्वयन्त, इतरे तावत्तारापथसचरत्सुरसिन्धुरकरगलितफूत्कारजलकणगणास्ताराानिकरान्मन्यमाना, एके च समर्दसत्रुटितभूषणमणिगणान् जानन्तः सचेलुः ।

मन्दाकिनीव च विरराज शुशुभे । § ९५) तत्रेति—तत्र किल विचित्राणि विस्मयावहानि विविधानि नानाप्रकाराणि च यानि वाहनानि यानानि तानि अधिरूढेष्वधिष्ठितेषु भवनव्यन्तरज्योतिष्ककल्पाना चतुर्णिकायामराणा नाथेषु इन्द्रेषु ससैन्येषु पृतनापरीतेषु जिनमभित परित प्रचलितेषु सत्सु, केचिद्देवा किरीटेषु मुकुटेषु घटिता खचिता ये पद्मरागा लोहितमणयस्तेषा प्रभैव बालातप प्रातस्तनघर्मस्तेन रुचिर मनोहर वदनसरोज मुखकमल येषा तेषा भावस्तया प्रचुरानुराग प्रभूतानुरागम् अन्तर्मध्येऽमेयत्वेन यातुमशक्यत्वेन बहिरपि प्रसृत विस्तृतम् उद्वहन्त इव धरन्त इव, अपरे च अन्ये च विचरन्ती कम्पमाना या एकावली एकयष्टिका तस्या यस्तरलमणिर्मध्यमणिस्तस्य घृणिश्रेणिभि किरणसततिभि दन्तुरित व्याप्त भुजान्तर वक्षो येषा तेषा भावस्तया अन्तर्मध्ये प्ररूढा समुत्पन्ना या जिनभक्तिस्तया नि सारित बहिष्कृत हृदयस्थित यत् मोहतिमिरं मोहध्वान्त तस्य निकरेण समूहेन मेदुरा मिलिता इव, केचन देवा तपनबिम्बे सूर्यमण्डले रक्तोत्पलधिया रक्तराजीवबुद्धया धावमान वेगेन गच्छन्त मत्तद्विप मत्तगज निजवाहन स्वयान निवर्तयन्त प्रत्यागमयन्त, परे पुनर्देवा सैनिकै समर्दितानि यानि पाण्डुरजलधरखण्डानि श्वेतघनशकलानि तेषु दध्योदनभ्रान्त्या दधिमकसदेहेन सभ्रान्तान् व्यग्रान् विडालान् मार्जारान् ताडयन्त पीडयन्त, अन्ये च पुनस्तरलमुक्ताहारस्य विसृता या कान्तिधारास्तासु मृणालिनीशङ्कया बिसिनीसदेहेन सकुलान् व्यग्रान् हसान्मरालान् सान्त्वयन्त शमयन्त, इतरेऽन्ये तावत् तारापथे गगने सचरता गच्छता सुरसिन्धुराणा देवगजाना करगलिता हस्तपतिता ये

मुक्ति लक्ष्मीके द्वारा छोडे हुए कटाक्षोंकी धारा हो अथवा भगवान्‌की सेवाके लिए पीछे पीछे बहती हुई आकाशगंगा ही हो । § ९५) तत्रेति—वहाँपर जब आश्चर्यकारक नानाप्रकारके वाहनोंपर बैठे हुए भवनवासी व्यन्तर ज्योतिष्क और कल्पवासी देवोंके इन्द्र सेना सहित जिनेन्द्रके दोनों ओर चल रहे थे तब कितने ही देव, मुकुटमें लगे हुए पद्मरागमणिकी प्रभारूपी लाल-लाल घामसे मुखकमलके सुशोभित होनेके कारण ऐसे जान पडते थे मानो भीतर न समा सकनेके कारण बाहरकी ओर भी निकले हुए बहुत भारी अनुरागको ही धारण कर रहे हों । अन्य देव, हिलती हुई एकावलीके मध्य मणिकी किरणोंके समूहसे वक्षःस्थलके व्याप्त होनेसे ऐसे जान पडते थे मानो भीतर उत्पन्न हुई जिनभक्तिके द्वारा बाहर निकाले हुए हृदयस्थि[illegible]मोहरूपी अन्धकारके समूहसे ही व्याप्त हो रहे हों । कितने ही देव, सूर्यबिम्बको लालक[illegible] ऐरावत हा ओर दौड़ते हुए अपने वाहनस्वरूप मत्त हाथीको लौटा रहे थे । कोई देव, [illegible]न बत्तीस-बत्तीस कलिव मेघोंके टुकडोंमें दधि मिश्रित भातकी भ्रान्तिसे संभ्रम-को नर्तकियोंके नृत्योंको जो अवलोके [illegible] ही देव, चंचल मुक्ताहारोंसे निकली हुई [illegible] दे रहे थे । कितने ही देव, कुलि[illegible]करनेमें प्रवीण, मन्द हास्य [illegible] सम्बन्धी जलकणोंके समूहको [illegible] स्वरूप जिनचन्द्र [illegible]

§ ९६) पुर प्रवृत्ता सेनायाः प्रतीहारपरम्परा ।
सुराद्रिं प्रापयामास सुरानीक शनैः शनैः ॥९६॥

§ ९७) तदानी सौधर्मेन्द्र, ईशानेन्द्रादीन्प्रत्येवमुवाच—

§ ९८) हेमभूमिधरोऽप्येष महारजतशोभित ।
महती रीतिमादत्ते बहुलोहस्य गोचरः ॥६७॥

§ ९९) किंच—

§ १००) अगाभिख्याञ्चितोऽप्येष नागाभिख्याञ्चितो गिरिः ।
तथापि नमदानन्दी मदानन्दी च सोऽपि सन् ॥६८॥

फूत्कारजलकणास्तेषा गणान् समूहान् तारानिकरान् नक्षत्रसमूहान् मन्यमाना स्वीकुर्वाणा, एकेऽन्ये च समर्दन परस्पराघातेन संत्रुटितानि भूषणानि तेषा मणिगणान् रत्नसमूहान् जानन्त सन्त सचेलु । उत्प्रेक्षाभ्रान्तिमन्तौ । § ९६) पुर इति—सेनाया पृतनाया पुरोऽग्रे प्रवृत्ता चलन्ती प्रतीहारपरम्परा प्रतीहारसततिः सुरानीक देवध्वजिनी शनै शनै मन्दमन्दं सुराद्रि सुमेरु प्रापयामास । 'अकथित च' इति द्विकर्मकत्वम् ॥९६॥ § ९७) तदानीमिति—तदानी तस्या वेलाया सौधर्मेन्द्र आद्यस्वर्गपुरदर ईशानेन्द्रादीन् द्वितीयादिस्वर्गशक्रान् प्रति एवमित्थम् उवाच जगाद । § ९८) हेमेति—एष पर्वत हेमभूमिधरोऽपि स्वर्णभूमिधरोऽपि सन् महारजतशोभित महता प्रभूतेन रजतेन रौप्येण शोभित अस्तीति विरोध परिहारपक्षे महारजतेन चामीकरेण सुवर्णेन शोभित· 'चामीकर जातरूप महारजतकाञ्चने' इत्यमर । बहुश्च लोहश्चेति बहुलोहस्तस्य प्रभूतायसो गोचरोऽपि विषयोऽपि सन् महती प्रभूता रीति पित्तलम् आदत्ते गृह्णातीति विरोध 'रीति. स्त्रिया स्पन्दप्रचारयो । पित्तले लोहकिट्टे च' इति मेदिनी । परिहारपक्षे बहुलश्चासावूहश्चेति बहुलोहस्तस्य विपुलतर्कस्य गोचर. सन् महती रीतिं भूयान्स प्रचारम् आदत्ते ॥ विरोधाभास ॥६७॥ § ९९) किंचेति—स्पष्टम् । § १००) अगेति—एष गिरि सुमेरुपर्वत अगाभिख्याञ्चितोऽपि अगस्य पर्वतस्य अभिख्या शोभा तयाञ्चितोऽपि सन् अगाभिख्याञ्चितो न भवतीति नागाभिख्याञ्चित इति विरोध परिहारपक्षे 'अग' इति अभिख्या नामधेयमिति अगाभिख्या तयाञ्चितोऽपि सन् नागाभिख्याञ्चितो नागाना हस्तिनाम् अभिख्यया शोभयाञ्चित । तथापि सोऽपि सन् तथाभूतोऽपि सन् मदानन्दी—मदेन गजदानेन आनन्दयति हर्षयतीति मदानन्दी माम् आनन्दयतीति मदानन्दी वा सन् तथा न भवतीति नमदानन्दीति विरोध परिहार-

---

ताराओंके समूह मान रहे थे और कुछ लोग संमर्दसे टूटे हुए आभूषण सम्बन्धी मणियोंके समूह जान रहे थे ॥ § ९६) पुर इति—सेनाके आगे चलनेवाली प्रतीहारों—द्वारपालोंकी सन्ततिने देवसेनाको धीरे-धीरे सुमेरुपर्वतको प्राप्त करा दिया ॥९६॥ § ९७) तदानीमिति—सौधमन्द्रने ऐशानेन्द्र आदिके प्रति इस प्रकार कहा । § ९८) हेमेति—यह पर्वत, हेमभूमिधर—सुवर्णकी भूमिको धारण करनेवाला होकर भी महारजत—बहुत भारी चाँदीसे सुशोभित है (परिहारपक्षमे महारजत—सुवर्णसे सुशोभित है) और बहुलोह—बहुत भारी लोहका विषय होकर भी महती रीति—बहुत अधिक पीतलको ग्रहण कर रहा है (पक्षमे बहुल ऊह—बहुत भारी तर्कका विषय होकर भी महती रीति—बहुत भारी प्रचारको ग्रहण कर रहा है ॥६७॥ § ९९) किंचेति—और भी । § १००) अगेति—यह पर्वत अगाभिख्याचित—पर्वतकी शोभासे सुशोभित होनेपर भी नागाभिख्याचित—पर्वतकी शोभासे सहित नहीं है (पक्षमे अगाभिख्याचित—'अग—पर्वत' इस नामसे सुशोभित होकर भी नागाभिख्याचित—नाग—हाथियोंकी अभिख्या—शोभासे सुशोभित है । ओर उतनेपर भी मदानन्दी—हाथियोंके मदसे हर्षदायक होकर भी नमदानन्दी—हाथियोंके मदसे हर्षदायक नहीं है अथवा मदा-

§ १०५) अत्रत्योपवनेषु सारसगतान्यपि विसारसगतानि, मरालीमहितान्यपि अमरालीमहितानि, कूर्मितामुपगतान्यपि सूर्मितामुपगतानि बहुलापान्यप्यपापानि सरासि विलसन्ति।

§ १०६) इत्यादिकोमलवचोविसरै सुमेरु

व्यावर्ण्य निर्जरपतिः सुरशैलमूर्ध्नि।

दशा वेणवो यस्मिस्तत् उपवनम्। सदालयाञ्चितं—सदा सर्वदा लयैः स्वराणामारोहावरोहैरञ्चितं शोभितं सुराङ्गनागान पक्षे सद्भिः प्रशस्तैरालयैर्भवनैरञ्चित शोभितमुपवनम्। विविधतालसगतं—विविधैस्तालै संगत सहित सुराङ्गनागान पक्षे विविधैस्तालैस्ताडवृक्षै सगतम् उपवनम्। सुरागमहित—सुष्ठु रागा सुरागास्तैर्महित शोभित सुरागमहित पक्षे सुराणा देवानामगैस्तरुभि कल्पवृक्षैरिति यावत्, महित शोभितमुपवनम्। रसालसभावितकलकण्ठालाप च—रसेनालस रसालसं भावित कलकण्ठाना मधुरकण्ठानामालापो यस्मिस्तत् तथाभूत च सुराङ्गनागान पक्षे रसालेषु सहकारवृक्षेषु सभावित शोभितः कलकण्ठाना कोकिलानामालापो यस्मिस्तत् उपवनम्। श्लेष । § १०५) अत्रत्येति—अत्रत्योपवनेषु सरासि जलाशया विलसन्ति शोभन्ते। कथभूतानि तानीत्युच्यते—सारसगतान्यपि सारेण जलेन सगतान्यपि सहितान्यपि तथा न भवन्तीति विसारसगतानि जलरहितानीति विरोध, परिहारपक्षे सारसगतानि जलसहितान्यपि विविध रक्तश्वेतनीलादिभेदेन बहुविध सारस कमल गतानि प्राप्तानि 'सारं न्याय्ये जले वित्ते' इति विश्वलोचन 'सारस सरसीरुहम्' इत्यमर, मरालीमहितान्यपि हसीशोभितान्यपि तथा न भवन्तीति अमरालीमहितानि अहसीशोभितानीति विरोध, परिहारपक्षे अमराणा देवानामाल्या पङ्क्त्या महितानि शोभितानि। कूर्मितामुपगतान्यपि—कुत्सिता ऊर्मयो भङ्गा येषु तानि कूर्मीणि तेषा भावस्ता कूर्मिता कुत्सिततरङ्गसहितत्वमुपगतान्यपि प्राप्तान्यपि सूर्मिताम्-शोभना ऊर्मयो येषु तेषा भावस्तामुपगतानि शुभलहरीमुपगतानीति विरोध, परिहारपक्षे कूर्मा कच्छपा विद्यन्ते येषु तानि कूर्मीणि तेषा भावस्तामुपगतानि। बहुलापान्यपि अपा समूह आप बहुलम् आप येषु तानि बहुलापानि विपुलजलसमूहसहितान्यपि अपापानि अपगतम् आप येषु तानि जलसमूहरहितानीति विरोध परिहारपक्षे अपापानि पापरहितानि निर्मलानीत्यर्थ। विरोधाभास। § १०६) इत्यादीति—निर्जरपति सौधर्मेन्द्र इत्यादिकोमलवचोविसरैरितिप्रभृतिकोमलवाक्समूहै सुमेरु सुराद्रि व्यावर्ण्य वर्णयित्वा सुरशैलस्य मूर्धा

गान सदालयाञ्चित—सदा लयसे सुशोभित है उसी प्रकार उपवन भी सत् + आलय + अंचित—उत्तम भवनोंसे सुशोभित है जिस प्रकार देवागनाओंका गान विविधतालसगत है—नाना प्रकारकी तालोंसे सहित है उसी प्रकार उपवन भी नानाप्रकारके ताड़वृक्षोंसे सहित है। देवागनाओंका गान जिस प्रकार सुरागमहित—उत्तम रागरागिनियोंसे सहित है उसी प्रकार उपवन भी सुरागमहित—कल्पवृक्षोंसे सुशोभित है और देवागनाओंका गान जिस प्रकार रसालसभावितकलकण्ठालाप—रससे अलस तथा कण्ठके मनोहर आलापसे सहित है, उसी प्रकार उपवन भी आम्रवृक्षोंपर होनेवाले कोयलोंके आलापसे सहित है। § १०५) अत्रत्येति—यहाँके उपवनोंमे ऐसे तालाव सुशोभित हो रहे हैं जो सारसंगत—जलसे सहित होकर भी विसारसंगत—जलसे सहित नहीं हैं (पक्षमे नाना प्रकारके कमलोंको प्राप्त हैं) मरालीमहित—हसियोसे सुशोभित होकर भी अमरालीमहित—हंसियोंसे सुशोभित नही हैं (पक्षमे देवपंक्तियोसे सुशोभित हैं) कूर्मितामुपगतान्यपि—कुत्सित लहरोंसे युक्त होकर भी सूर्मितामुपगतानि—सुन्दर लहरोंसे युक्त हैं (पक्षमे कच्छपोंके सद्भावसे युक्त होकर भी उत्तम लहरोंसे युक्त हैं) तथा बहुलाप—बहुत भारी जलसमूहसे सहित होकर भी अपाप—जलसमूहसे रहित हैं (पक्षमें पाप—मलसे रहित—निर्मल हैं)। § १०६) इत्यादीति—इत्यादि कोमल वचनोंके समूहसे सुमेरुपर्वतका वर्णन कर परमसन्तोषके आधीन

§ १०२) अपि च—

§ १०३) पुष्यत्सुमनोविततेर्मन्दारागस्य मन्दरागस्य ।
विलसत्प्रवालपङ्क्तेः केवलमाकारतो भेद ॥६९॥

§ १०४) एप किल मेरुरुपशोभितस्तरूपशोभितो जातरूपशोभितश्च । गोपमहितोऽगोपमहितो नागोपमहितो नानागोपमहितश्च । अपि च—अत्र च सुराङ्गनागानमुपवन च मरुत्पूरितमञ्जुगुञ्जद्वंश सदालयाञ्चित विविधमालसगत सुरागमहित रसालसभावितकलकण्ठालाप च।

रञ्चित शोभित अथवा सन्तश्च ते आरामाश्चेति सदारामा श्रेष्ठोद्यानानि तैरञ्चित, सुरागख्यात'—सुष्ठु राग सुराग सुप्रीतिस्तेन विख्यात प्रसिद्धो जिनेन्द्रस्तु वीतरागत्वात्तथा न भवतीति विरुद्ध परिहारपक्षे सुराणा देवाना अग पर्वत इति ख्यात प्रसिद्ध अथवा सुराणा देवाना अगा वृक्षा कल्पवृक्षा इत्यर्थ तै ख्यात । इतीत्थ विरुद्ध विपरीतम् उपलक्ष्यते दृश्यत इति । परिहार प्रागुक्त । श्लेपोपमाव्यतिरेका'। § १०२) अपि चेति—अन्यदपि वर्ण्यत इत्यर्थ । § १०३) पुष्यदिति—पुष्यन्तो सुमनसा देवाना पक्षे पुष्पाणा वितति पङ्क्तिर्यस्य तस्य, विलसन्तो शुम्भन्तो प्रवालाना विद्रुमाणा पक्षे किसलयाना पङ्क्तिर्यस्मिन् तथाभूतस्य मन्दारागस्य मन्दारश्चासौ अगश्चेति मन्दारागस्तस्य कल्पवृक्षस्य मन्दरागस्य च मन्दरश्चासौ अगश्चेति मन्दरागस्तस्य सुमेरुपर्वतस्य मध्ये केवल मात्रम् आकारत आकृतिमात्रात् अथ च दीर्घाकारमात्रात् भेदो वैशिष्टय वर्तत इति शेष । श्लेष ॥६९॥ § १०४) एषेति—एप किल मेरु उपशोभित, तरुभिवृक्षैरुपशोभित जातरूपेण सुवर्णेन शोभितश्च वर्तते । गोपमहित गा स्वर्गं पाति रक्षतीति गोप इन्द्रस्तेन महित शोभित, अगैर्वृक्षैरुपमहित इति अगोपमहित नागैर्हस्तिभिरुपमहित इति नागोपमहित, गा पृथिवीं रक्षन्तीति गोपा राजान. विद्याधरनरेशा इत्यर्थ नानागोपैर्महित इति नानागोपमहित । अपि च किं च। अत्र चेति—अत्र सुमेरुपर्वते च सुराङ्गनाना गान सुराङ्गनागान देवीसगीतम् उपवनमुद्यान च समानं वर्तत इति शेप । उभयो सादृश्य यथा—मरुत्पूरितमञ्जुगुञ्जद्वश मरुद्भिर्देवै पूरिता मञ्जु मनोहर यथा स्यात्तथा गुञ्जन्त शब्द कुर्वन्तो वशा सुपिरवाद्यानि यस्मिन् तत् सुराङ्गनागान पक्षे मरुता वायुना पूरिता मञ्जु गुञ्जन्तो

समीचीन उद्यानोंसे सहित है) सुरागविख्यातः—उत्तमरागसे प्रसिद्ध है जब कि जिनेन्द्र वीतराग होनेसे ऐसे नहीं हैं (पक्षमें देवपर्वत नामसे प्रसिद्ध है अथवा कल्पवृक्षोंसे सुशोभित है) इस प्रकार विरुद्ध दिखाई देता है। § १०२) अपि चेति—और भी वर्णन देखिए—§ १०३) पुष्यदिति—उस समय मन्दाराग—मन्दारवृक्ष और मन्दराग—सुमेरुपर्वत दोनोंमें केवल आकार—आकृति अथवा दीर्घाकारकी अपेक्षा ही भेद रह गया था क्योंकि दोनों ही पुष्यत्सुमनोविततिः—पुष्ट होती हुई फूलोंकी पक्तिसे सहित (पक्षमें पुष्ट होते हुए देवोंकी पक्तिसे सहित) थे और दोनों ही विलसत्प्रवालपङ्क्ति—शोभायमान किसलयोंकी पङ्क्ति (पक्षमें शोभायमान मूँगाओंकी पंक्ति) से सहित थे ॥६९॥ § १०४) एष इति—यह मेरुपर्वत उपशोभित था,—समीपमें ही शोभायमान है, तरूपशोभित—वृक्षोंसे सुशोभित है और जातरूपशोभित—सुवर्णसे सुशोभित है । तथा गोपमहित है—इन्द्रसे पूजित है, नागोपमहित—हाथियोंसे सुशोभित है और नानागोपमहित—अनेक विद्याधर राजाओंसे पूजित है। और भी देखिए—इस पर्वतपर देवांगनाओंका गान और उपवन दोनों ही एक समान है क्योंकि जिस प्रकार देवांगनाओंका गान मरुत्पूरितमञ्जुगुञ्जद्वंश—देवोंके द्वारा पूरित तथा मनोहर शब्द करनेवाली बाँसुरियोंसे सहित है उसी प्रकार उपवन भी वायुके द्वारा पूरित मनोहर गूँजते हुए बाँसोंसे सहित है। जिस प्रकार देवांगनाओंका

§ १०५) अत्रत्योपवनेषु सारसगतान्यपि विसारसगतानि, मरालीमहितान्यपि अमरालीमहितानि, कूर्मितामुपगतान्यपि सूर्मितामुपगतानि बहुलापान्यप्यपापानि सरासि विलसन्ति ।

§ १०६) इत्यादिकोमलवचोविसरैः सुमेरु

व्यावर्ण्य निर्जरपतिः सुरशैलमूर्ध्नि ।

वशा वेणवो यस्मिस्तत् उपवनम् । सदालयाञ्चित—सदा सर्वदा लयैः स्वराणामारोहावरोहैरञ्चित शोभितं सुराङ्गनागान पक्षे सद्भिः प्रशस्तैरालयैर्भवनैरञ्चित शोभितमुपवनम् । विविधतालसगत—विविधैस्तालैः सगत सहित सुराङ्गनागान पक्षे विविधैस्तालैस्ताडवृक्षैः सगतम् उपवनम् । सुरागमहित—सुष्ठु रागा सुरागास्तैर्महित शोभित सुरागमहित पक्षे सुराणा देवानामगैस्तरुभि कल्पवृक्षैरिति यावत्, महित शोभितमुपवनम् । रसालसभावितकलकण्ठालाप च—रसेनालस रसालस भावित कलकण्ठाना मधुरकण्ठानामालापो यस्मिस्तत् तथाभूत च सुराङ्गनागान पक्षे रसालेषु सहकारवृक्षेषु सभावित शोभितः कलकण्ठाना कोकिलानामालापो यस्मिस्तत् उपवनम् । श्लेष । § १०५) अत्रत्येति—अत्रत्योपवनेषु सरासि जलाशया विलसन्ति शोभन्ते । कथभूतानि तानीत्युच्यते—सारसगतान्यपि सारेण जलेन सगतान्यपि सहितान्यपि तथा न भवन्तीति विसारसगतानि जलरहितानीति विरोध, परिहारपक्षे सारसगतानि जलसहितान्यपि विविध रक्तश्वेतनीलादिभेदेन बहुविध सारस कमल गतानि प्राप्तानि 'सार न्याय्ये जले वित्ते' इति विश्वलोचन 'सारस सरसीरुहम्' इत्यमर, मरालीमहितान्यपि हसीशोभितान्यपि तथा न भवन्तीति अमरालीमहितानि अहसीशोभितानीति विरोध, परिहारपक्षे अमराणा देवानामाल्या पङ्क्त्या महितानि शोभितानि । कूर्मितामुपगतान्यपि—कुत्सिता ऊर्मयो भङ्गा येषु तानि कूर्मीणि तेषा भावस्ता कूर्मिता कुत्सिततरङ्गसहितत्वमुपगतान्यपि प्राप्तान्यपि सूर्मिताम्-शोभना ऊर्मयो येषु तेषा भावस्तामुपगतानि शुभलहरीमुपगतानीति विरोध, परिहारपक्षे कूर्मा कच्छपा विद्यन्ते येषु तानि कूर्मीणि तेषा भावस्तामुपगतानि । बहुलापान्यपि अपा समूह आप बहुलम् आप येषु तानि बहुलापानि विपुलजलसमूहसहितान्यपि अपापानि अपगतम् आप येषु तानि जलसमूहरहितानीति विरोध परिहारपक्षे अपापानि पापरहितानि निर्मलानीत्यर्थ । विरोधाभास । § १०६) इत्यादीति—निर्जरपति सौधर्मेन्द्र इत्यादिकोमलवचोविसरैरितिप्रभृतिकोमलवाक्समूहैः सुमेरु सुराद्रि व्यावर्ण्य वर्णयित्वा सुरशैलस्य मूर्धा

गान सदालयाञ्चित—सदा लयसे सुशोभित है उसी प्रकार उपवन भी सत् + आलय + अचित—उत्तम भवनोंसे सुशोभित है जिस प्रकार देवागनाओंका गान विविधतालसगत है—नाना प्रकारकी तालोंसे सहित है उसी प्रकार उपवन भी नानाप्रकारके ताडवृक्षोंसे सहित है। देवांगनाओंका गान जिस प्रकार सुरागमहित—उत्तम रागरागिनियोंसे सहित है उसी प्रकार उपवन भी सुरागमहित—कल्पवृक्षोंसे सुशोभित है और देवागनाओंका गान जिस प्रकार रसालसभावितकलकण्ठालाप—रससे अलस तथा कण्ठके मनोहर आलापसे सहित है, उसी प्रकार उपवन भी आम्रवृक्षोपर होनेवाले कोयलोंके आलापसे सहित है। § १०५) अत्रत्येति—यहाँके उपवनोंमे ऐसे तालाब सुशोभित हो रहे हैं जो सारसंगत—जलसे सहित होकर भी विसारसंगत—जलसे सहित नहीं हैं (पक्षमे नाना प्रकारके कमलोंको प्राप्त हैं) मरालीमहित—हंसियोसे सुशोभित होकर भी अमरालीमहित—हंसियोंसे सुशोभित नहीं हैं (पक्षमे देवपंक्तियोंसे सुशोभित हैं) कूर्मितामुपगतान्यपि—कुत्सित लहरोंसे युक्त होकर भी सूर्मितामुपगतानि—सुन्दर लहरोंसे युक्त हैं (पक्षमे कच्छपोंके सद्भावसे युक्त होकर भी उत्तम लहरोसे युक्त हैं) तथा बहुलाप—बहुत भारी जलसमूहसे सहित होकर भी अपाप—जलसमूहसे रहित हैं (पक्षमे पाप—मलसे रहित—निर्मल है) । § १०६) इत्यादीति—इत्यादि कोमल वचनोंके समूहसे सुमेरुपर्वतका वर्णन कर परमसन्तोषके आधीन

आसाद्य पाण्डुकवन पृतनानिवेश
तत्राततान परित परितोपनिघ्नः ॥७१॥

§ १०७) वाहिनी विनिवेश्यात्र वासवः प्राप निर्मलाम् ।
तस्य प्रागुत्तराशाया पाण्डुकाख्या महाशिलाम् ॥७२॥

§ १०८) या किल महीमानिनीमस्तकायमानमहामेरुपरिलसितकवरीभरशङ्काकरपाण्डुकवनस्य सितकेतुद्युतिमुन्निद्रयन्ती, सततमवलम्बरहिताम्बरतलसचारसजातश्रान्तिविश्रान्त्यै सुरभिसमीरकिशोरमनोरमपाण्डुकवनमुपगतेवाष्टमीन्दुकला, पाण्डुकवनलक्ष्मीमौक्तिकशुक्तिरिवात्यन्तमवदातपर्यन्तभागयोर्जिनाभिषेकाय सौधर्मैशानेन्द्रयोर्विष्टर मध्ये च भगवत सिंहासन बिभ्राणा मङ्गलद्रव्यपरिशोभिता पुष्पोपहाररुचिरा परित परिस्फुरद्रत्नकिरणपरीततया सुरचापमध्यगतशशाङ्ककलामनुकुर्वन्ती विद्योतते ।

तस्मिन् सुमेरुशिखरे पाण्डुकवन तन्नामवनम् आसाद्य प्राप्य परितोपनिघ्न सतोषायत्त सन् तत्र परित समन्तात् पृतनानिवेश परित सैन्यशिविर आततान विस्तारयामास । वसन्ततिलका । § १०७) वाहिनी मिति—वासव सौधर्मेन्द्र. अत्र सुमेरौ वाहिनी सेना विनिवेश्य स्थापयित्वा तस्य सुमेरो प्रागुत्तराशाया ऐशान्या दिशाया निर्मला विमला पाण्डुकाख्या महाशिला प्राप लेभे ॥७॥ § १०८) या किलेति—या किल पाण्डुकशिला महीमानिन्या वसुधावनिताया मस्तकायमानो यो महामेरुर्जम्बूद्वीपस्य सुमेरुस्तस्योपरि लसित शोभितो य कवरीभरो धम्मिल्लभरस्तस्य शङ्काकर यत् पाण्डुकवन तस्य सितकेतुद्युति श्वेतपताकाकान्तिम् उन्निद्रयन्ती प्रकटयन्ती, सतत सर्वदा अवलम्बरहित समाश्रयशून्य यद् अम्बरतलं गगनतल तस्मिन् सचारेण सभ्रमेण सजाता समुत्पन्ना या श्रान्तिस्तस्या विश्रान्त्यै दूरीकरणाय सुरभिसमीरस्य सुगन्धिपवनस्य किशोरेण पोतेन मन्दवायुनेत्यर्थ मनोरम् यत् पाण्डुकवन तत् उपगता प्राप्ता अष्टमीन्दुकलेव अष्टमीचन्द्रकलेव, पाण्डुकवनलक्ष्मीरेव मौक्तिकानि तेषा शुक्तिरिव मुक्तास्फोट इव, अत्यन्त सातिशयम् अवदातपर्यन्तभागयो समुज्ज्वलान्तप्रदेशयो जिनाभिषेकाय जिनाभिषवाय सौधर्मैशानेन्द्रयो प्रथमद्वितीयस्वर्गशक्रयो विष्टरमासन मध्ये च भगवतो जिनेन्द्रस्य सिंहासन हरिविष्टरं बिभ्राणा दधाना मङ्गलद्रव्यै सुप्रतिष्ठकादिभि परिशोभिता समलंकृता पुष्पाणामुपहारेण रुचिरा मनोज्ञा परित. समन्तात् परिस्फुरता देदीप्यमानाना रत्नाना किरणै रश्मिभि परीत-

---

हुए इन्द्रने सुमेरुके शिखरपर पाण्डुकवन प्राप्त कर वहाँ सब ओर सेना ठहरायी ॥७०॥ § १०७) वाहिनीमिति—इन्द्रने इस पाण्डुकवनमे सेनाको ठहरा कर उसकी ऐशान दिशामें पाण्डुकनामकी महाशिला प्राप्त की ॥७१॥ § १०८) या किलेति—जो पाण्डुकशिला, पृथिवीरूपी स्त्रीके मस्तकके समान आचरण करनेवाले महामेरुके ऊपर सुशोभित चोटीकी शका करनेवाले पाण्डुकवनकी सफेद पताकाकी शोभाको प्रकट करती हुई, निरन्तर आश्रयरहित आकाशतलमे सचार करनेसे उत्पन्न थकावटको दूर करनेके लिए मन्द-सुगन्धित वायुसे मनोहर पाण्डुकवनमे आयी हुई अष्टमीके चन्द्रकी कलाके समान अथवा पाण्डुकवनकी लक्ष्मीरूप मोतियोंकी शुक्तिके समान सुशोभित होती है । वह पाण्डुकशिला अत्यन्त उज्ज्वल दोनों भागोंमे जिनाभिषेकके लिए सौधर्मेन्द्र और ऐशानेन्द्रके आसनोंको और बीचमे भगवान्के सिंहासनको धारण करती हुई मगलद्रव्योंसे सुशोभित रहती है, फूलोंके उपहारसे सुन्दर है तथा चारों ओर चमकते हुए रत्नोंकी किरणोंसे व्याप्त होनेके कारण इन्द्रधनुषके

§ १०९) तत्र किल देवराजो विविधमणिखचितविचित्रस्तम्भसभृत वस्त्राङ्गमहीजसमुद्भूतवसननिर्मितवितानविराजित तारातरलमुक्तामालाविभूषितमवलम्बितसुरभिकुसुमदामावकीर्णं चतुर्णिकायामरेन्द्रवृन्दसकीर्णमभिषेकमण्डप विधाय तत्र सिंहविष्टरे जिनार्भक पूर्वाभिमुख निवेशयामास ।

§ ११०) तदा दुन्दुभिनिध्वानो निरुद्धाशेषदिक्तट ।
समुज्जजृम्भे सभूतघनगर्जनतर्जन ॥७२॥

इत्यर्हद्दासकृतौ पुरुदेवचम्पूप्रबन्धे चतुर्थस्तबकः ॥४॥

तया व्याप्ततया सुरचापमध्यगता या शशाङ्ककला चन्द्रकला ताम् अनुकुर्वन्ती विद्योतते, विशोभते । § १०९) तत्रेति—तत्र किल पाण्डुकशिलाया देवराज सौधर्मेन्द्र , विविधमणिभिर्नानारत्नै खचिता जटिता ये विचित्रस्तम्भास्तै सभृत संधृत, वस्त्राङ्गमहीजात् वस्त्राङ्गजातीयकल्पवृक्षात्समुद्भूत समुत्पन्नं यद् वसनं वस्त्र तेन निर्मितेन वितानेन चन्द्रोपकेन विराजित शोभित, तारावत् तरलाभिश्चपलाभिर्मुक्तामालाभिर्मौक्तिकस्रग्भिर्विभूषित शोभित, अवलम्बितानि यानि सुरभिकुसुमदामानि सुगन्धिपुष्पमाल्यानि तैरवकीर्णं व्याप्त चतुर्णिकायामरेन्द्राना भवनवास्यादिचतुर्णिकायदेवेन्द्राना वृन्देन समूहेन सकीर्णं व्याप्तम् अभिषेकमण्डप विधाय रचयित्वा तत्राभिषेकमण्डपे सिंहविष्टरे सिंहासने जिनार्भक जिनेन्द्रनन्दन पूर्वाभिमुख यथा स्यात्तथा निवेशयामास स्थापयामास । § ११०) तदेति—तदा तस्मिन्काले निरुद्धानि अशेषदिक्तटानि येन स तथाभूतो निरुद्धाखिलकाष्ठान्त सभूत समुत्पन्न यद् घनगर्जन मेघगर्जन तस्य तर्जन भर्त्सन यस्मात् स , अथवा सभूता एकत्रस्थिता ये घना मेघास्तेषा गर्जनस्य तर्जन यस्मात्तथाभूत , दुन्दुभिध्वानो भेरीनाद 'शब्दो निनादो निनदो ध्वनिध्वानरवस्वना ' इत्यमर । समुज्जजृम्भे ववृधे ॥७१॥

इत्यर्हद्दासकृते पुरुदेवचम्पूप्रबन्धस्य वासन्तीसमाख्यायां सस्कृतव्याख्याया
चतुर्थ स्तबक समाप्त ॥४॥

बीचमें स्थित चन्द्रकलाका अनुकरण करती रहती है । § १०९) तत्रेति—उस पाण्डुकशिलापर इन्द्रने नाना प्रकारके मणियोंसे जडे हुए विचित्र खम्भोंसे धारण किया हुआ, वस्त्रांगजातिके कल्पवृक्षोंसे उत्पन्न वस्त्रसे निर्मित चँदोवासे सुशोभित, ताराओंके समान चचल मोतियोंकी मालाओंसे विभूषित, लटकती हुई सुगन्धित फूलोंकी मालाओसे व्याप्त और चतुर्णिकायके इन्द्रसमूहसे व्याप्त अभिषेकमण्डप बनाकर उसके बीच सिंहासन पर जिन बालकको पूर्वमुख विराजमान किया । § ११०) तदेति—उस समय समस्तदिशाओंके तटको रोकनेवाला तथा उत्पन्न हुई मेघगर्जनाको डॉटता हुआ दुन्दुभिबाजोंका शब्द वृद्धिको प्राप्त हो रहा था ॥७२॥

इस प्रकार श्रीमान् अर्हद्दासकी कृति पुरुदेवचम्पूप्रबन्धमें
चतुर्थ स्तबक पूर्ण हुआ ॥४॥

पञ्चमः स्तबकः

§ १) तदनु जिनेन्द्रजन्माभिषेकसभृतादरजम्भालम्भननिदेशपरवशः किन्नरेश कौतुकवशेन सर्वतः समापततो दिशामधीशान्सपरिवारान् करचलितमणिदण्डेन तन्मण्डपे हठाद्यथोचित विनिवेश्य, भो भो मारुता निरन्तरमवकरनिकरमपसारयत। अये मेघकुमारा' सुगन्धिशीतलगन्धोदकवृष्टि कुरुत। हे दिक्कुमार्यो मुक्तामयरङ्गवल्लीभिर्नानाविधपत्रलताचित्राणि विरचयत। अय किलैशाननाथ स्वयमेव धवलातपत्र धत्ते। तदीयमृगलोचना पुनर्मङ्गलद्रव्याणि तरङ्गयन्तु। सनत्कुमारा जिनार्भकपरिसरे वालव्यजनानि वीजयन्तु। देव्यश्च वलिफलकुसुममालागन्धधूमाद्यै पात्राणि पूरयन्तु। नर्तकाः पुन पटुपटहमृदङ्गादीनि सज्जयन्तु। वाणी च वीणा गायतु। सुरलासिकाश्च लास्यलीलामुल्लासयन्तु, इत्यादिक्रमेण त्रिदशपतीन्भगवज्जन्माभिषेकसमुचितकृत्येपु नियोजयामास।

---

§ १) तदन्विति—तदनु तदनन्तर जिनेन्द्रस्य जन्माभिषेके संभृतो सम्यक्प्रकारेण धृत आदरो येन तथाभूतो यो जम्भालम्भन इन्द्रस्तस्य निदेशेन समाज्ञया परवशो निघ्न, किन्नरेश किन्नरजातीयव्यन्तरेन्द्र कौतुकवशेन सर्वत समन्तात् समापततः समागच्छत सपरिवारान् परिवारोपेतान् दिशामधीशान् दिक्पालान् करेण चलितो यो मणिदण्डस्तेन तन्मण्डपे पूर्वोक्तमण्डपे हठाद् वलाद् यथोचित यथायोग्य विनिवेश्य, भो भो मारुता पवनकुमारदेवा ! निरन्तर सतत अवकरनिकर अवकरसमूह अवकर 'कचडा' इति हिन्दीभाषाया प्रसिद्ध। अये मेघकुमारा ! सुगन्धि सुरभि शीतल शिशिर च यद् गन्धोदक तस्य वृष्टि कुरुत। हे दिक्कुमार्य ! मुक्तामयरङ्गवल्लीभि मौक्तिकरङ्गलताभि नानाविधपत्रलताना विविधपत्रवल्लीना चित्राणि आलेख्यानि विरचयत। अयं किल ऐशाननाथो द्वितीयेन्द्र धवलातपत्र श्वेतच्छत्र स्वयमेव अकथितोऽपि धत्ते धारयति। तदीयाश्च ता मृगलोचनाश्चेति तदीयमृगलोचनास्तद्देव्य पुन मङ्गलद्रव्याणि सुप्रतिष्ठकप्रभृतीनि मङ्गलद्रव्याणि तरङ्गयन्तु वर्धयन्तु। सनत्कुमारा सनत्कुमारस्वर्गनिवासिनो देवा जिनार्भकस्य जिनबालकस्य परिसरे निकटे वालव्यजनानि लघुतालवृन्तकानि वीजयन्तु कम्पयन्तु। देव्यश्च तदीयदेवाङ्गनाश्च बलिश्च नैवेद्य च फल च कुसुम च माला च गन्धश्च धूपश्च एषा द्वन्द्वस्तदादी पात्राणि भाजनानि पूरयन्तु सभरन्तु। नर्तका नृत्यकरा पुन पटुपटहमृदङ्गादीनि उत्तमानकमुरजप्रभृतीनि सज्जयन्तु सज्जानि कुर्वन्तु। वाणी

---

§ १) तदन्विति—तदनन्तर जिनेन्द्र भगवान्के जन्माभिषेकमे आदर रखनेवाले इन्द्रकी आज्ञासे परवश किन्नरेन्द्रने कुतूहलवश सब ओरसे आते हुए दिक्पालोंको उनके परिवारोंके साथ हाथसे चलाये हुए मणिमयदण्डके द्वारा उस मण्डपमे बलपूर्वक यथायोग्य रीतिसे बैठाकर इस प्रकार आदेश दिये—हे पवनकुमार देवो ! निरन्तर कचडाके समूहको दूर करो। हे मेघकुमारो ! सुगन्धित और शीतल गन्धोदककी वर्षा करो। हे दिक्कुमारियो ! मोतियोंकी रंगावलीसे नाना प्रकारके पत्र और लताओंके चित्र बनाओ। यह ऐशानेन्द्र स्वय ही सफेद छत्र धारण किये हुए है उसकी देवियाँ मगलद्रव्योंको बढ़ावें। सनत्कुमारस्वर्गके देव जिनबालकके निकट छोटे-छोटे पखे चलावें। और उनकी देवियाँ नैवेद्य फल-पुष्प माला गन्ध और धूप आदिके द्वारा पात्रोंको भरें। नृत्यकार उत्तम तबला तथा मृदग आदिको

§ २) व्याकीर्णप्रचुरप्रसूननिकरे कर्पूरधूलीमिलद्-
गन्धक्षोदमनोहरे सुरभिले तन्मण्डपे संगता ।
भृङ्गा. कर्तुमुपेयुषा भगवतो जन्माभिषेकोत्सव
त्रुट्यद्दुष्कृतशृङ्खलालितुलना व्यातेनिरे व्याततः ॥१॥

§ ३) ततो जिनार्भकस्यास्य वामदक्षिणभागयो ।
सौधर्मैशाननाथा तावासने स्वेऽध्यरोहताम् ॥२॥

§ ४) तदनु स्वयभुव पयःपूरधवलशोणित पवित्र गात्रं क्षीराब्धिरेव स्प्रष्टुमर्हति नान्य स किल निम्नगानामधीशोऽतिवृद्धोऽयमधिकतरजरसाक्रान्तमूर्तिर्द्विपदरहितश्चिरममृतान्धोजनक्षु-

---

सरस्वती च वीणा विपञ्ची गायतु । सुरलासिकाश्च देवनर्तक्यश्च लास्यलीला नृत्यलीलाम् उल्लासयन्तु वर्धयन्तु । इत्यादिक्रमेण त्रिदशपतीन् इन्द्रान् भगवतो जिनेन्द्रस्य जन्माभिषेकममुचितानि जन्माभिषवयोग्यानि यानि कृत्यानि कार्याणि तेपु नियोजयामास सलग्नान् कारयामास । § २) व्याकीर्णेति—व्याकोर्णा विस्तृता प्रचुरप्रसूनाना प्रभूतपुष्पाणा निकरा समूहा यस्मिंस्तस्मिन्, कर्पूरधूलीभिर्घनसारचूर्णैमिलन् यो गन्धश्चन्दनस्तस्य क्षोदेण चूर्णेन मनोहरे रमणीये सुरभिले सुगन्धिते तन्मण्डपे पूर्वोक्तमण्डपे व्याततः विस्तृता भृङ्गा भ्रमरा भगवतो जिनेन्द्रस्य जन्माभिषेकोत्सव जन्माभिषवमह कर्तुं विधातुम् उपेयुपा समागताना त्रुटयन्त्यो या दुष्कृतशृङ्खला. पापहिञ्जीरास्तेषामालि पङ्क्तिस्तस्यास्तुलामुपमा व्यातेनिरे विस्तारयामासु । कृष्णा भ्रमरा पापखण्डानीव बभुरिति भाव । उपमा । शार्दूलविक्रीडितम् ॥१॥ § ३) तत इति—ततस्तदनन्तर तौ प्रसिद्धौ सौधर्मैशाननाथौ प्रथमद्वितीयस्वर्गशक्रौ अस्य जिनार्भकस्य जिनबालकस्य वामदक्षिणभागयो. सव्यासव्यप्रदेशयो स्वे स्वकीये आसने विष्टरे अध्यरोहताम् अधिरूढौ बभूवतु ॥२॥ § ४) तदन्विति—तदनु तत्पश्चात्, स्वयभुवो भगवत , पय पूर इव दुग्धप्रवाहधवल श्वेत शोणित रुधिर यस्मिंस्तत्, पवित्रं शुचितम गात्र शरीर क्षोराब्धिरेव क्षीरसागर एव स्प्रष्टुम् अर्हति योग्योऽस्ति नान्यो नेतर , स किल स तु क्षीरसागर. निम्नगाना नोचैर्गामिनाम् अधीश स्वामी पक्षे नदीना पति., अतिवृद्ध अतिशयस्थविर पक्षेऽतिवृद्धि गत , अयमेप , अधिकतरजरसाक्रान्तमूर्ति अतिशयेनाधिका जरा अधिकतरजरा तया आक्रान्ता मूर्ति शरीर यस्य तथाभूत :पक्षेऽधिकतरजेन प्रभूतोत्पन्नेन रसेन जलेन आक्रान्तमूर्तिर्व्याप्तशरीर , द्वाभ्या पदाभ्या चरणाभ्या रहित शून्य. द्विपदरहितत्वेन चलितुमसमर्थ इत्यर्थ , पक्षे द्विपदास्त्रसजीवा द्वीन्द्रियादयस्तै रहित , चिरं चिरकालपर्यन्त अमृत पोयूषमेव अन्धो भोजन येषा तेऽमृतान्धसः ते च ते जनाश्चेति अमृतान्धोजनास्तै

ठीक करें। सरस्वती वीणासे गान करे, और देवनर्तकियाँ नृत्यकी लीलाको बढावे—इत्यादिक्रमसे किन्नरेन्द्रने इन्द्रोंको भगवान्के जन्माभिषेक सम्बन्धी योग्य कार्योंमें संलग्न किया। § २) व्याकीर्णेति—जिसमें अत्यधिक फूलोंके समूह बिखरे हुए थे तथा कपूरकी धूलिसे युक्त चन्दनके चूर्णस जो मनोहर था ऐसे उस सुगन्धित मण्डपमे फैले हुए भ्रमर, भगवान्का जन्माभिषेक करनेके लिए आये हुए प्राणियोंकी टूटती हुई पापशृंखलाओंके समूहकी तुलना कर रहे थे ॥१॥ § ३ तत इति—तदनन्तरके सौधर्म और ऐशानस्वर्गके इन्द्र, जिन बालकके बायें तथा दाहिने भागमे स्थित अपने-अपने आसनोंपर अधिरूढ हो गये ॥२॥ § ४) तदन्विति—तदनन्तर दुग्धप्रवाहके समान सफेद रुधिरसे युक्त भगवान्के पवित्र शरीरको क्षीरसागर ही छूनेके योग्य है अन्य नहीं किन्तु वह नीचे चलनेवालोंमे प्रमुख है, अत्यन्त वृद्ध है, अत्यधिक बुढापासे उसका शरीर आक्रान्त है, दो पैरोंसे रहित है और उतनेपर भी देवोंके द्वारा चिरकालतक पीडित किया गया है (पक्षमे नदियोंका पति है, अत्यन्त विस्तारको प्राप्त है, अत्यधिकजलसे व्याप्त है, त्रसजीवोंसे रहित है तथा देवोके

भितः कथमत्युन्नतमिमं शैलमधिरोहत्विति पर्यालोच्य तदधिरोपणाय परिकल्पितनीलोपलसोपानपङ्क्तयः, सौवर्णकपिशकलशमाला करे निदधाना नाकिजना गगनाङ्गणे निरन्तरनिचितसान्ध्यवलाहकविलास तन्वाना, सौधर्मेशाननाथसिंहासनप्रदेशादारभ्य पयःपारावारतीरपर्यन्तं पङ्क्तिशो द्विधा समवस्थिता. प्रवालपरिशोभितं घनपुण्योज्ज्वलमिदमपि पाण्डुकवनमिति मत्वा वनाद्वनान्तरं प्रतिनिवृत्ता पात्राङ्गसुरद्रुमा इव व्यराजन्त ।

§ ५) मुक्तादामपरम्परावृतमुखान्गाङ्गेयकुम्भान्करे
कुर्वाणांस्त्रिदिवौकसो जलनिधिः सवीक्ष्य तीरागतान् ।
भूयस्ते भुजगेन्द्रवेष्टनलसन्मन्थाचलान्बिभ्रतः
प्राप्ता इत्यधिकाद्भयादिव चलद्भङ्गैश्चकम्पे तदा ॥३॥

क्षुभित पीडित पक्षे मथित अत्युन्नतमतितुङ्गम् इमं शैलं सुमेरुपर्वतं कथं केन प्रकारेण अधिरोहतु चटितुं शक्नोतु इतीत्थं पर्यालोच्य विचार्य तस्य क्षीराब्धेरधिरोपणं तस्मै परिकल्पिता रचिता नीलोपलसोपानपङ्क्तयो नीलमणिनिःश्रेणिपरम्परा यैस्तथाभूता, सौवर्णेन सुवर्णभावेन कपिशा पीता ये कलशाः कुम्भास्तेषां मालां पङ्क्तिं करे निदधाना धरन्तः, नाकिजना देवाः, गगनाङ्गणे नभश्चत्वरे निरन्तरं निर्व्यवधानं निचिता एकत्रीभूता ये सान्ध्यवलाहकाः सन्ध्याकालमेघास्तेषां विलासं शोभां तन्वाना विस्तारयन्तः, सौधर्मेशाननाथयोः सिंहासनयोः प्रदेशः स्थानं तस्मात् आरभ्य पयःपारावारतीरपर्यन्तं क्षीरसागरतटपर्यन्तं पङ्क्तिशः पङ्क्तिरूपेण द्विधा द्विप्रकारेण समवस्थिताः, प्रवालेन विद्रुमेण पक्षे किसलयेन परिशोभितं घनपुण्येन जलेन पक्षे प्रचुरपुण्येन उज्ज्वलं शोभितम् इदमपि पाण्डुकवनम् इति मत्वा वनात् एकस्माद्वनात् वनान्तरं अन्यद्वनं प्रतिनिवृत्ताः प्रत्यावृत्ताः पात्राङ्गसुरद्रुमा इव भाजनाङ्गकल्पवृक्षा इव व्यराजन्त व्यशोभन्त । श्लेषोत्प्रेक्षालंकारः । § ५) मुक्तेति—तदा तस्मिन् काले जलनिधिः क्षीरसागरः मुक्तादाम्नां मौक्तिकमालानां परम्परया सतत्या आवृतं मुखं वदनं येषां तथाभूतान् गाङ्गेयकुम्भान् काञ्चनकलशान् करे हस्ते कुर्वाणान् विदधतः तीरागतान् तटप्राप्तान् त्रिदिवं स्वर्गं ओकः स्थानं येषां तान् त्रिदिवौकसो देवान् सवीक्ष्य भुजगेन्द्रः शेषनाग एव वेष्टनं तेन लसन्तो शोभमाना ये मन्थाचला मन्दरगिरयस्तान् बिभ्रतो दधतस्ते देवा भूयः पुनरपि प्राप्ताः समायाता मथितुमिति यावत्, इत्येवम् अधिकात्प्रचुरात् भयादिव भीतेरिव चलद्भङ्गैः चञ्चलतरङ्गैः

द्वारा मथित है) इसलिए इस अत्यन्त ऊँचे पर्वतपर कैसे चढ सकता है ऐसा विचार कर उसे चढानेके लिए जिन्होंने नीलमणिकी सीढ़ियाँ बनायी थीं, जो स्वर्णनिर्मित पीले-पीले कलशोंके समूहको हाथमे लिये हुए थे तथा आकाशरूपी आंगनमें व्यवधानरहित होकर एकत्रित हुए सन्ध्याकालके बादलोंकी शोभाको बढ़ा रहे थे ऐसे देव सौधर्मेन्द्र और ऐशानेन्द्रके सिंहासनोंके समीपवर्ती स्थानसे प्रारम्भ कर क्षीरसागरके तटपर्यन्त दो पंक्तियोंमे स्थित हो हो गये। उस समय वे देव ऐसे जान पडते थे मानो प्रवालपरिशोभित—मूँगासे सुशोभित (पक्षमें पल्लवोंसे सुशोभित) तथा घनपुण्योज्ज्वल—जलसे उज्ज्वल (पक्षमे अत्यधिक पुष्पोंसे उज्ज्वल) यह क्षीरसागर भी पाण्डुकवन है ऐसा मानकर एक वनसे दूसरे वनकी ओर लौटे हुए भाजनाङ्ग जातिके कल्पवृक्ष ही हों। § ५) मुक्तेति—उस समय समुद्र, मोतियोंकी मालाओंसे ढँके हुए मुखोंसे युक्त सुवर्णकलशोंको हाथमें धारण करनेवाले तटागत देवोंको देखकर शेषनागरूपी वेष्टनसे सुशोभित मन्दरपर्वतोंको धारण करते हुए ये फिरसे आ गये हैं इस बहुत भारी भयसे ही मानो उठती हुई लहरोंसे काँप उठा था ॥३॥

§ ६) यः किल वाहिनीपतिरिव वाहिनीपतिश्चलितविमलतरवारिशोभितश्चापाञ्चितो घनकीलालकलितमूर्तिरुद्दण्डकाण्डमण्डित' पुरो वर्तितकबन्ध पृथुलहरिजालकोलाहलमुखरित-दिक्तटश्च, किं त्वय बहुभङ्गेषु सत्स्वपि प्रगर्जत्येव स तु भङ्गे सति पराजयत इति विशेष'।

§ ७) य खलु भुवनपतिरिव भुवनपतिरतिशोभनक्रमकर, सर्वतोमुखसपदाढ्य', स्वर्ण-

---

चकम्पे कम्पितवान्। उत्प्रेक्षा। शार्दूलविक्रीडित छन्द ॥३॥ § ६) यः किलेति—य किल क्षीरसागरः वाहिनीपतिरिव सेनापतिरिव आसीत्। अथोभयो सादृश्यमाह—तत्र क्षीरसागरपक्षे वाहिनीना नदीना पति, सेनापतिपक्षे वाहिनीना सेनाना पति, चलितेति—चलित कम्पित विमलतरमतिस्वच्छ यद्वारि जल तेन शोभितः क्षीरसागर, चलितेन विमलतरवारिणा स्वच्छकृपाणेन शोभितो वाहिनीपति, चापाञ्चित.—'च' इति पदं पृथक्कृत्य आपाञ्चित अपासमूह आप तेन अञ्चित शोभित क्षीरसागर, चापेन धनुषा अञ्चित शोभितो-वाहिनीपति। घनेति—घनकीलालेन प्रभूतजलेन कलिता मूर्तिर्यस्य तथाभूत क्षीरसागर घनकीलालेन प्रचुररुधिरेण कलिता मूर्ति. शरीर यस्य तथाभूत वाहिनीपति, उद्दण्डेति—उद्दण्डकाण्डेन समुच्छलद्वारिणा मण्डित शोभित क्षीरसागर उद्दण्डकाण्डैरायतबाणैर्मण्डितो वाहिनीपति 'काण्डोऽस्त्री वर्गबाणार्थनलावसर-वारिषु' इति विश्वलोचन। पुर इति—पुरोऽग्रे नर्तित कबन्ध जल यस्य तथाभूत क्षीरसागर नर्तिता कबन्धा शिरोरहितशरीरा यस्य तथाभूतो वाहिनीपति, पृथुलेति—पृथुलहरीणा स्थूलतरङ्गाणा जालस्य समूहस्य कोलाहलेन कलकलेन मुखरितानि वाचालितानि दिक्तटानि येन तथाभूतः क्षीरसागर, पृथुलाना स्थूलाना हरीणामश्वाना जालस्य समूहस्य कोलाहलेन मुखरितानि दिक्तटानि येन तथाभूतो वाहिनीपति। अथ तयो-र्व्यतिरेक दर्शयति—किन्तु अय क्षीरसागर. बहुभङ्गेषु बहुपराजयेषु पक्षे बहुतरङ्गेषु सत्सु अपि विद्यमानेष्वपि प्रगर्जत्येव प्रगर्जन करोत्येव स तु वाहिनीपति भङ्गे सति एकस्मिन्नेव पराजये जाते पराजयते पराजितो भवतीति विशेष.। § ७) य. खल्विति—य खलु क्षीरसागरो भुवनपतिरिव राजेवासीत्। अथोभयो सादृश्यमाह—भुवनपति जलपति क्षीरसागर पक्षे जगत्पति, अतिशोभा नक्रमकरा जलजन्तुविशेषा यस्मिन्

---

§ ६) यः किलेति—जो क्षीरसागर वाहिनीपति—सेनापतिके समान था—क्योंकि जिस प्रकार सेनापति वाहिनी—सेनाओंका पति होता है उसी प्रकार क्षीरसागर भी वाहिनी—नदियोंका पति था, जिसप्रकार सेनापति चलितविमलतरवारिशोभित—चलती हुई निर्मल तलवारसे शोभित होता है उसी प्रकार क्षीरसागर भी चलितविमलतरवारिशोभित—चलते हुए अत्यन्त स्वच्छ जलसे सुशोभित था, जिस प्रकार सेनापति चापाचित—धनुषसे शोभित होता है उसी प्रकार क्षीरसागर भी आपाचित—जलसमूहसे शोभित था, जिस प्रकार सेनापतिका शरीर घनकीलाल—अत्यधिक रुधिरसे युक्त होता है उसी प्रकार क्षीर-सागर भी घनकीलाल—अत्यधिक जलसे युक्त था, जिस प्रकार सेनापति उद्दण्डकाण्ड—लम्बायमान तीक्ष्ण बाणोंसे मण्डित होता है उसी प्रकार क्षीरसागर भी उद्दण्डकाण्ड—ऊँचे लहराते हुए जलसे मण्डित था, जिस प्रकार सेनापतिके आगे कबन्ध—शिर रहित धड़ उछलते हैं उसी प्रकार क्षीरसागरके आगे भी कबन्ध—जल उछल रहा था और जिस प्रकार सेनापति पृथुल-हरिजाल—स्थूल घोड़ोंके समूह सम्बन्धी कोलाहलसे दिक्तटोंको शब्दायमान करता है उसी प्रकार क्षीरसागर भी पृथु-लहरिजाल—बड़ी मोटी तरंगोंके समूह सम्बन्धी कोलाहलसे दिक्तटोंको मुखरित कर रहा था। इस प्रकार समानता होनेपर भी यह क्षीरसागर, बहुभंगों—अनेक पराजयों (पक्षमे तरंगों) के रहते हुए भी गरजता रहता है परन्तु सेनापति एक ही भंग—पराजयके होनेपर पराजित हो जाता है यह दोनोंमे विशेषता है। § ७) यः खल्विति—सचमुच ही जो क्षीरसागर भुवनपति—राजाके समान था क्योंकि जिस प्रकार राजा भुवनपति—जगत्का पति होता है उसी प्रकार वह क्षीरसागर भी

स्थितिसपन्न ; परिस्फुरद्रत्नमण्डितश्चञ्चदूर्मिकोज्ज्वलः समुद्रश्च, किंतु नदेशविख्यातो देशविख्यातो, नवसुधाविभवहेतुर्वसुधाविभवहेतु , नक्षत्रपबन्धुः क्षत्रपबन्धु , गरोल्लासनिदान नगरोल्लासनिदान, रसहितो नरसहित इति विशेषः ।

तथाभूत क्षीरसागर पक्षे अतिशोभनस्य क्रमस्य कर इत्यतिशोभनक्रमकर साधुरीतिप्रवर्तक. सर्वतोमुख जलमेव सपद् तया आढ्य सहित क्षीरसागर पक्षे सर्वतोमुखी समन्तादायान्ती या सपत् तया आढ्य , सुष्ठु अर्णः स्वर्ण सुजल तस्य स्थित्या सपन्न क्षीरसागर पक्षे स्वर्णस्य हेम्न स्थित्या सपन्न सहित , परिस्फुरद्भिः देदीप्यमानै रत्नैर्मण्डित क्षीरसागर पक्षे देदीप्यमानाभरणखचितरत्नैरलकृत , चञ्चन्त्य. शोभमाना या ऊर्मिका लहर्यस्ताभिरुज्ज्वल क्षीरसागर पक्षे चञ्चन्तीभिरूर्मिकाभिरङ्गुल्याभरणैरुज्ज्वल , समुद्रश्च समुद्रनामधेयश्च पक्षे मुद्रया सहित समुद्र । अथ तयोर्विशेष दर्शयति—क्षीरसागर नदेशविख्यात न देशेपु जनपदेपु विख्यात प्रसिद्ध इति नदेशविख्यात', भुवनपतिस्तु देशविख्यात इति विशेष पक्षे नदानामीशो नदेशस्तथा विख्यात क्षीरसागर । क्षीरसागरो न वसुधाया पृथिव्या विभवस्य हेतुः भुवनपतिस्तु वसुधा विभवहेतु पृथिवीविभवहेतुरिति विशेष पक्षे क्षीरसागरो नवसुधाया प्रत्यग्रपीयूपस्य यो विभवस्तस्य हेतु क्षीरसागर. नक्षत्रपाणा राज्ञा बन्धुर्हितकर भुवनपतिस्तु क्षत्रपाणा बन्धुरिति विशेष पक्षे क्षीरसागरो नक्षत्रपस्य चन्द्रस्य बन्धु । क्षीरसागर गरस्य विपस्य य उल्लासस्तस्य निदान भुवनपतिस्तु तथा न भवतीति नगरोल्लासनिदानमिति विशेपः पक्षे भुवनपति नगराणा पुराणामुल्लासस्य हर्षस्य निदानम् । क्षीरसागर रसहित रसेन जलेन हितो हितकर्ता आसीत् भुवनपतिस्तु न तथासोदिति विशेप पक्षे नरै. सहित इति

भुवनपति—जलका पति था, जिस प्रकार राजा अतिशोभनक्रमकर—अत्यन्त शोभायमान परिपाटीको करनेवाला होता है उसी प्रकार क्षीरसमुद्र भी अतिशोभनक्रमकर—अत्यन्त शोभायमान नाकू और मगरोंसे सहित था, जिस प्रकार राजा सर्वतोमुखसपदाढ्य—सब ओरसे आयवाली सम्पत्तिसे सहित होता है उसी प्रकार क्षीरसागर भी सर्वतोमुखसम्पदाढ्य—जलरूपी सम्पत्तिसे सहित था, जिस प्रकार राजा स्वर्णस्थितिसम्पन्न—सुवर्णकी स्थितिसे सम्पन्न होता है उसी प्रकार क्षीरसागर भी सुन्दर जलकी स्थितिसे सम्पन्न था, जिस प्रकार राजा परिस्फुरद्रत्नमण्डित—देदीप्यमान रत्नोंसे सुशोभित होता है उसी प्रकार क्षीरसागर भी चारों ओर चमकते हुए रत्नोंसे मण्डित था, जिस प्रकार राजा चंचदूर्मिकोज्ज्वल—शोभायमान अँगूठियोंसे सुशोभित होता है उसी प्रकार क्षीरसागर भी चचदूर्मिकोज्ज्वल—सुन्दर लहरोंसे सुशोभित था, और जिस प्रकार राजा समुद्र—मुद्रासे सहित होता है उसी प्रकार क्षीरसागर भी समुद्र—समुद्र नामधारी था इस तरह दोनोंमे समानता थी परन्तु राजा तो देशविख्यात—देशोंमे प्रसिद्ध होता है पर क्षीरसमुद्र नदेशविख्यात—देशोंमे प्रसिद्ध नहीं था । पक्षमे नदो—बड़ी-बड़ी नदियोंके स्वामी रूपसे विख्यात था । राजा वसुधाविभवहेतु—पृथिवीके वैभवका कारण होता है परन्तु क्षीरसागर नवसुधाविभवहेतु—पृथिवीके विभवका हेतु नहीं था (पक्षमे नवीन अमृतके विभवका हेतु था)। राजा क्षत्रपबन्धु—श्रेष्ठ क्षत्रियोंका हितकारी होता है परन्तु क्षीरसागर नक्षत्रपबन्धु—श्रेष्ठक्षत्रियोंका हितकारी नहीं था (पक्षमे चन्द्रमाका बन्धु था)। क्षीरसागर गरोल्लासनिदान—विपके उल्लासका कारण होता है परन्तु राजा नगरोल्लासनिदान—विपके उल्लासका कारण नहीं था (पक्षमे नगरोके हर्पका कारण था) क्षीरसागर रसहित—जलसे हितकारी होता है परन्तु राजा नरसहित—जलसे हितकारी नहीं था (पक्षमे मनुष्योंसे सहित था) यह दोनोंमे

§ ८) यः पुनर्धार्मिक इव सज्जनक्रमकरः, सिन्धुरबन्धनप्रदेश इव वारिगतानेकनागः, सत्पुरुष इव गोत्रातिशयः, पृथ्वीपतिनिलय इव प्रदृश्यमानमहापात्रः, गणिकासमूह इव घनतरुणाञ्चितसविधप्रदेशः, श्रीजिनराज इव विकसितकुमुदपरागः प्रकटितगाम्भीर्यमहिमा च, विषराशिरप्यमृतराशिः, अतिवृद्धोऽपि कान्तारागाञ्चितो राजते ।

§ ९) कनककलशजालं क्षीरवार्धौ निमज्जद्-
विशदरुचिरमुक्तातारकाभिः परीतम् ।

नरसहितो भुवनपतिः । § ८) यः पुनरिति—यः पुनः क्षीरसागरः धार्मिक इव धर्मेण चरतीति धार्मिकः धर्मात्मपुरुष इव सज्जनक्रमकरः—सज्जा निभृता नक्रमकरा जलजन्तुविशेषा यस्मिन् सः, पक्षे सज्जनक्रमकरः सज्जनानां क्रमस्य परिपाट्याः करः । सिन्धुरबन्धनप्रदेश इव हस्तिबन्धनस्थानमिव वारिगता जलगता अनेकनागा अनेकगजा अनेकसर्पा वा यस्य तथाभूतः पक्षे वारिगता गजबन्धनीगता अनेकनागा अनेकगजा यस्मिन्सः 'वारी तु गजबन्धनी' इत्यमरः. द्विरूपकोषे वारीशब्दस्य ह्रस्वत्वमपि प्रसिद्धम् । सत्पुरुष इव सज्जन इव गोत्रातिशयः—गोत्राणां पर्वतानामतिशयोऽतिक्रमणं यस्मिन् सः, पक्षे गोत्रस्य वंशस्यातिशयः प्रकर्षो यस्य तथाभूतः पृथ्वीपतिनिलय इव राजभवनमिव प्रदृश्यमानानि समवलोक्यमानानि महापात्राणि विशालभाजनानि यस्मिन् तथाभूतः क्षीरसागरः पक्षे प्रदृश्यमानानि महापात्राणि महाविद्वांसो यस्मिन् सः । गणिकासमूह इव वेश्यासमूह इव घनतरुणा सघनवृक्षैरञ्चितः शोभितः सविधप्रदेशो यस्य तथाभूतः क्षीरसागरः. घनतरुणेत्यत्र जातिवाचकमेकवचनम् पक्षे घनतरुणैः बहुयुवभिरञ्चितः सविधप्रदेशो यस्य तथाभूतः । श्रीजिनराज इव श्रीजिनेन्द्र इव विकसितानां कुमुदानां कैरवाणां परागो रजो यस्मिंस्तथाभूतः क्षीरसागरः पक्षे विकसितः प्रकटितः कुमुदः कुत्सितहर्षात् अपरागो विद्वेषो यस्य तथाभूतः. प्रकटितो गाम्भीर्यमहिमा अगाधत्वमहिमा यस्य तथाभूतः क्षीरसागरः पक्षे प्रकटितो गाम्भीर्यस्य धैर्यस्य महिमा यस्य सः । विषराशिरपि गरलराशिरपि अमृतराशिः पीयूषराशिरिति विरोधः परिहारपक्षे उभयत्र विषामृतयोर्जलमर्थः । अतिवृद्धोऽपि अतिस्थविरोऽपि कान्तारागेण स्त्रीप्रीत्या अञ्चितः शोभित इति विरोधः परिहारपक्षे कान्तारं च वनं च अगाश्च पर्वताश्च तैरञ्चितः शोभितः विराजते शोभते । श्लेषोपमाव्यतिरेकविरोधाभासाः । § ९) कनकेति—क्षीरवार्धौ क्षीरसागरे

सकलकलमुदञ्चच्चन्द्रसाम्य प्रपेदे
धवलमधुरदुग्धोद्योतसज्ज्योत्स्नयेद्धम् ॥४॥

§ १०) अथ सुरकरैर्नीतान्क्षीराब्धिसज्जलपूरितान्
कनककलशानेताविन्द्रौ तदा विकृतैर्भुजैः।
दशशतमितैर्मोदात्स्वीकृत्य मूर्ध्नि जगद्गुरो-
र्जयजयजयारावे साधं न्यपातयता तदा ॥५॥

§ ११) ततो जयजयारावमुखरीकृतदिक्तटाः।
कल्पेश्वरास्तदा हर्षात्सम धारा न्यपातयन् ॥६॥

§ १२) सा किल पयोधारा कुम्भस्थलायमानमिलितकनककुम्भद्वयविगलिततयाखण्डलशुण्डालशुण्डादण्डशङ्कामङ्कुरयन्ती, जिनार्भकमुत्सङ्गे वहन्त्या पाण्डुकवनलक्ष्म्याः कनककुम्भकुच-

---

निमज्जत् निमग्नीभवत्, विशदा धवला रुचिरा मनोहरा या मुक्ता मौक्तिकानि ता एव तारकास्ताभि. परीत व्याप्त, सकलकल कलकलेन सहित सकलकल कलकलशब्दसहित पक्षे सकला कला यस्य तत् पूर्णमित्यर्थ, धवलमधुर सितमिष्ट यद् दुग्ध क्षीर तस्योद्योत प्रकाश एव सज्ज्योत्स्ना सच्चन्द्रिका तया इद्ध दीप्त, कनककलशजाल स्वर्णकलशनिकुरम्ब उदञ्चच्चन्द्रस्य उदीयमानेन्दो. साम्य सादृश्य प्रपेदे। उपमालकार। मालिनी छन्द ॥४॥ § १०) अथेति—अथानन्तर तदा तस्मिन्काले एतौ इन्द्रौ सौधर्मैशानेन्द्रौ सुरकरैर्देवहस्तै नीतान् प्रापितान् क्षीराब्धिसज्जलपूरितान् क्षीरसागरसत्सलिलसभृतान् एतान् कनककलशान् काञ्चनकुम्भान् तदा विकृतैस्तत्कालविक्रियानिर्मितै दशशतमितै सहस्रपरिमितै भुजैर्बाहुभि मोदात् हर्षात् स्वीकृत्य गृहीत्वा जगद्गुरोर्जिनेन्द्रस्य मूर्ध्नि शिरसि जयजयजयेति आरावा शब्दास्तै सार्धं न्यपातयताम् निपातयाबभूवतु। हरिणीच्छन्द ॥५॥ § ११) तत इति—ततस्तदनु तदा तस्मिन् काले जयजयारावेण जयजयशब्देन मुखरीकृतानि दिक्तटानि यैस्ते तथाभूताः कल्पेश्वरा स्वर्गशतक्रतव हर्षात् प्रमोदात् सम युगपद् धारा न्यपातयन् निपातयाबभूवु ॥६॥ § १२) सा किलेति—सा किल पूर्वोक्ता पयोधारा जलधारा व्यराजत व्यशोभत। कथमिति चेत्। आह—कुम्भेति कुम्भस्थलायमानौ गण्डस्थलायमानौ मिलितौ परस्पर सपृक्तौ यौ कनककुम्भौ काञ्चनकलशौ तयोर्द्वय युगल तस्माद्विगलिततया पतितत्वया आखण्डलशुण्डालस्यैरावतस्य य शुण्डादण्डस्तस्य शङ्का सशीतिम् अङ्कुरयन्ती समुत्पादयन्ती, जिनार्भक जिनबालक उत्सङ्गे क्रोडे वहन्त्या दधत्या पाण्डुकवन-

---

क्षीरसमुद्रमें निमग्न हो रहा था, श्वेत तथा सुन्दर मोती रूप ताराओंसे व्याप्त था, कल-कल शब्दसे सहित था (पक्षमें समस्त कलाओंसे युक्त था) तथा सफेद और मधुर दूधके प्रकाशरूपी चाँदनीसे देदीप्यमान था ऐसा स्वर्णकलशोंका समूह उदित होते हुए चन्द्रमाके सादृश्यको प्राप्त हो रहा था ॥४॥ § १०) अथेति—तदनन्तर उस समय इन दोनों इन्द्रोंने देवोंके हाथोंसे लाये हुए तथा क्षीरसमुद्रके उत्तम जलसे भरे हुए इन सुवर्ण-कलशोंको तत्काल विक्रियासे निर्मित एक हजार भुजाओंके द्वारा हर्षसे स्वीकृत कर जय जय जय शब्दके साथ भगवान्‌के मस्तकपर छोड़ा ॥५॥ § ११) तत इति—तत्पश्चात् जिन्होंने जय जय शब्दके द्वारा दिशाओंके तट गुंजा दिये थे ऐसे स्वर्गके इन्द्रोंने उस समय हर्षसे एक साथ धाराएँ छोड़ीं ॥६॥ § १२) सा किलेति—वह धारा कभी तो गण्डस्थलोंके समान मिले हुए सुवर्णकलशोंके युगलसे निकली होनेके कारण ऐरावत हाथीके शुण्डादण्डकी शंका उत्पन्न कर रही थी, कभी जिनबालकको गोदमें धारण करनेवाली पाण्डुकवनकी लक्ष्मीके सुवर्णकलशरूप

युगलव्यामुक्तमुक्ताहारकान्तिझरी तच्छिरसि पततीति विद्याधरनिकरेणोत्प्रेक्ष्यमाणा, वदनरुचि-यशोवैशद्याभ्या विजितयोः सेवार्थमागत्य नभसि संनिहितयोर्जम्बूद्वीपसगतयो. सुवर्णवर्णभगवद्दिव्य-देहकान्तिसक्रान्तिवशेनारक्तमण्डलयोः शशाङ्कयोर्बिम्बयुगलान्नि सरन्ती कौमुदीति पश्यता मतिं जनयन्ती, अय किल जिनार्भक परमहिमाञ्चित', सर्वसुपर्वजनसेव्यमानपादो, महीधरसानुचर-विद्याधरपरिवृतः, सकलदिगम्बरोन्नतः स हिमालयो गिरीश इति मत्वा समापतन्ती सुरस्रवन्तीव च व्यराजत ।

लक्ष्म्या पाण्डुकवनश्रिया कनककुम्भावेव कुचौ स्तनौ तयोर्युगले व्यामुक्तो धृतो यो मुक्ताहारस्तस्य कान्तिझरी दीप्तिप्रवाह. तच्छिरसि जिनार्भकमस्तके पततीति विद्याधरनिकरेण खेचरसमूहेन उत्प्रेक्ष्यमाणा तर्क्यमाणा, वदनरुचिश्च मुखकान्तिश्च यशोवैशद्य च कीर्तिनैर्मल्यं चेति वदनरुचियशोवैशद्ये ताभ्या विजितयो पराजितयोः अतएव सेवार्थं शुश्रूषार्थम् आगत्य नभसि गगने संनिहितयोर्निकटस्थयो जम्बूद्वीपसगतयोर्जम्बूद्वीपसबन्धिनो. सुवर्णवर्णो हेमद्युतिर्यो भगवद्दिव्यदेहो जिनेन्द्रकमनीयकायस्तस्य या कान्तिर्दीप्तिस्तस्या सक्रान्तिवशेन संमिश्रण-वशेन आरक्त मण्डल बिम्ब ययोस्तयो शशाङ्कयोश्चन्द्रमसो' बिम्बयुगलात् मण्डलद्वयात् नि सरन्ती निष्पतन्ती कौमुदी चन्द्रिका इतीत्थ पश्यतामवलोकमानाना मतिं बुद्धिं जनयन्ती समुत्पादयन्ती, अय किल जिनार्भको जिनेन्द्रशिशु स प्रसिद्धो हिमालयो हिमालयनामधेयो गिरीश इति मत्वा समापतन्ती सुरस्रवन्तीव च गङ्गानदीव च व्यराजत व्यशोभत । अथ जिनार्भकहिमालययो. सादृश्यमाह—परमहिमाञ्चित —परश्चासौ महिमा च परमहिमा उत्कृष्टप्रभावस्तेन अञ्चित. शोभितो जिनार्भकः, परमहिमेन प्रभूतप्रालेयेन अञ्चित शोभितो हिमालय , सर्वसुपर्वजनसेव्यमानपाद —सर्वसुपर्वजनेन निखिलदेवसमूहेन सेव्यमानौ पादौ चरणौ पक्षे सेव्यमाना. पादा प्रत्यन्तपर्वता यस्य तथाभूत , महीधरसानुचरविद्याधरपरिवृत.—महीधरा राजान , सानुचरा अनुचरसहिता विद्याधरा. खेचराः महीधराश्च ते सानुचरविद्याधराश्चेति महीधरसानुचरविद्याधरा ससेवकविद्याधरभूपालास्तैः परिवृत. परिवेष्टित , अथवा महीधराश्च भूमिगोचरा राजानश्च सानुचरविद्या-धराश्चेति द्वन्द्वस्तैः परिवृतो जिनार्भक. पक्षे महीधरस्य विजयार्धपर्वतस्य सानुषु शिखरेषु चरन्ति गच्छन्तीति महीधरसानुचरास्तथाभूता ये विद्याधरास्तैः परिवृत सकलदिगम्बरोन्नत समग्रदिगम्बरमतानुयायिषून्नत. श्रेष्ठो जिनार्भक पक्षे सकलदिक्षु निखिलाशासु अम्बरे गगने च उन्नत समुत्तुङ्ग गिरीश गिरा वाचाम् ईशः

स्तनयुगलपर धारण किये हुए मुक्ताहारकी कान्तिका झरना क्या जिनबालकके शिरपर पड़ रहा है इस तरह विद्याधर समूहकी उत्प्रेक्षाका विषय बन रही थी । कभी मुखकी कान्ति और यशकी निर्मलतासे पराजित होनेके कारण सेवाके लिए आकर आकाशमें स्थित एवं सुवर्णके समान आभावाले भगवान्‌के सुन्दर शरीर सम्बन्धी कान्तिके सम्मिश्रणसे लाल-लाल दिखने-वाले जम्बूद्वीप सम्बन्धी दो चन्द्रमाओंके बिम्बयुगलसे गिरती हुई चाँदनी है इस प्रकार देखनेवालोंको बुद्धि उत्पन्न कर रही थी और कभी, यह जिनबालक प्रसिद्ध हिमालय नामका पर्वत है क्योंकि जिस प्रकार जिनबालक परमहिमांचित—उत्कृष्ट महिमासे सुशोभित है उसी प्रकार हिमालय भी परमहिमांचित—उत्कृष्ट बर्फसे सुशोभित है, जिस प्रकार जिनबालक सर्वसुपर्वजनसेव्यपाद—समस्त देवसमूहसे सेवनीय पादों—चरणोंसे युक्त है उसी प्रकार हिमालय भी समस्त देवसमूहसे सेवनीय पादों—प्रत्यन्त पर्वतोंसे सहित है, जिस प्रकार जिनबालक महीधरसानुचरविद्याधरपरिवृत—भूमिगोचरी राजा तथा सेवकों सहित विद्याधर राजाओंसे घिरा हुआ है उसी प्रकार हिमालय भी पर्वतके शिखरोंपर चलनेवाले विद्याधरोंसे घिरा है, जिस प्रकार जिनबालक सकलदिगम्बरोन्नत—समस्त दिगम्बर मतानुयायियोंमें उन्नत—श्रेष्ठ हैं उसी प्रकार हिमालय भी समस्त दिशाओं और

§ १३) सैषा पाण्डुशिला विपाण्डुरलसत्कन्दस्य लीला दधे
तत्राय जिनपोतक समतनोत्पुण्यप्ररोहश्रियम् ।
धारा क्षीरमयी रराज विचलत्काण्डश्रिय बिभ्रती
कुम्भाः पुण्यलताफलालितुलना व्यातेनिरे व्यातताः ॥७॥

§ १४) यद्वा सा व्यतनोज्जिनाङ्गविसरत्कान्त्या परीता पयो-
धारा प्रोद्धतरुक्मकाण्डतुलना हेम्ना समानच्छविः ।
दूर व्योम्नि समुद्गता जलकणाश्छत्रश्रिय तेनिरे
तन्मध्ये कलशश्रिय समतनोत्कुम्भस्तदा कश्चन ॥८॥

§ १५) अय खलु जिनबालकवलाहको बहुधाराराजितो हानिदाघ शमयति, कीर्तिमुक्ता-

---

स्वामी गिरीशो जिनार्भक पक्षे गिरीणामीशो गिरीश पर्वतश्रेष्ठा स हिमालय स प्रसिद्ध हि निश्चयेन मालय माया लक्ष्म्या आलय स्थानम्, पक्षे स प्रसिद्ध. हिमालयो हिमस्य आलयो हिमालय इति । उत्प्रेक्षाश्लेषौ । § १३ सैषेति—एषा सा—इय सा पाण्डुशिला पाण्डुकशिला विपाण्डुरोऽतिधवलो लसन् शोभमानो य' कन्द- स्तस्य लीला शोभा दधे धृतवती । तत्र पाण्डुकशिलाया जिनपोतको जिनेन्द्रार्भक' पुण्यप्ररोहस्य पुण्याङ्कुरस्य श्रिय शोभा समतनोत् विस्तारयामास । क्षीरमयी दुग्धमयी धारा विचलत्काण्डश्रिय चञ्चलप्रकाण्डशोभा बिभ्रती दधती रराज शुशुभे । व्यातता विस्तृता कुम्भा कलशा. पुण्यलताया सुकृतवल्ल्या फलाना या आलि पङ्क्तिस्तस्यास्तुलना सादृश्य व्यातेनिरे विस्तारयामासु । उपमा । शार्दूलविक्रीडितम् ॥७॥ § १४) यद्वेति—यद्वा विकल्पान्तरे जिनाङ्गस्य भगवद्दिव्यदेहस्य विसरन्ती प्रसरन्ती या कान्तिर्दीप्तिस्तया परीता व्याप्ता अतएव हेम्ना सुवर्णेन समाना छविर्यस्यास्तथाभूता सा पूर्वोक्ता पयोधारा जलधारा प्रोद्धत समुन्नतो यो रुक्मकाण्ड सुवर्णदण्डस्तस्य तुलनामुपमा समतनोत् विस्तारयामास, व्योम्नि नभसि दूरं विप्रकृष्टं यावत् समुद्गता समुत्पतिता जलकणा सलिलपृषता छत्रश्रिय आतपत्रशोभा तेनिरे विस्तारयामासु । तन्मध्ये तेषा जलकणाना मध्ये कश्चन कोऽपि कुम्भ कलश तदाभिषेकवेलाया कलशश्रिय छत्रोपरिधृतकलशशोभा समतनोत् विस्तारयामास । उपमा । शार्दूलविक्रीडितम् ॥८॥ § १५) अयमिति—अय खलु जिनबालक एव वलाहको मेघ इति जिनबालकवलाहक बहुधा अनेकधा अतिशयेन राजित इति राराजित पक्षे बहुधाराभि राजित शोभित तथाभूत, सन्, हानिदाघ हानिं ददातीति हानिद स चासावघश्चेति हानिदाघस्त हानिप्रदपाप पक्षे

आकाशमे उन्नत—ऊँचा है, जिस प्रकार जिनबालक गिरीश—वचनोका स्वामी है उसी प्रकार हिमालय भी गिरीश—पर्वतोंका स्वामी है और जिस प्रकार जिन बालक हि + मालय—निश्चयसे लक्ष्मीका घर है उसी प्रकार हिमालय भी हिम—बर्फका आलय घर है। इस प्रकार जिनबालकको हिमालय समझकर पड़ती हुई गगा नदीके समान जान पड़ती थी॥ § १३) सैषेति—वह पाण्डुकशिला अत्यन्त सफेद कन्दकी शोभाको धारण कर रही थी, उसपर यह जिनबालक पुण्यलताके अंकुरकी शोभाको विस्तृत कर रहा था, उसपर पड़ती हुई दूधकी धारा चचल पींडकी शोभाको धारण कर रही थी और फैले हुए कलश पुण्यलताके फलसमूहकी तुलनाको बढ़ा रहे थे ॥७॥ § १४) यद्वेति—अथवा जिनेन्द्र भगवान्‌के शरीरकी फैलती हुई कान्तिसे व्याप्त अतएव सुवर्ण सदृश कान्तिको धारण करनेवाली वह धारा ऊँचे सुवर्णदण्डकी शोभाको विस्तृत कर रही थी, आकाशमे दूर तक उछटे हुए जलकण छत्रकी शोभाको विस्तृत कर रहे थे और उनके बीच कोई कलश उस समय छत्रपर लगे हुए कलशकी शोभाको बढ़ा रहा था ॥८॥ §१५) अय खल्विति—वहुधा-राराजित—अनेक प्रकारसे सुशोभित(पक्षमे वहुधारा-राजित अनेक धाराओंसे

दयति, धर्मामृतवर्षेण भव्यमानसस्य समुल्लास करिष्यतीति च युक्त, तथाप्यसौ पङ्क नाशयति सदामरालीसतोष विशेषयति, चञ्चलानन्द त्यजति, समुज्जृम्भिताप मेघाटोपं निर्मूलयति तथा स्वयमध स्थित: सन् ऊर्ध्वं घनपुष्पवृष्टि सपादयिष्यतीति विचित्रघनाघनोऽय सकलभुवनभृतामाधिपत्येऽभिषेक्तव्य इति मत्वा किल सुरेन्द्राः क्षीरवाराशिपयःपूरेण तमभ्यसिञ्चन् ।

'ह्रा' इति दुःखार्थमव्यय पृथक्कृत्य निदाघ ग्रीष्म शमयति शान्त करोति, कीर्ति यश पक्षे वृष्टिम् उत्पादयति, धर्म एवामृतं पीयूष जल वा तस्य वर्षेण वृष्ट्या भव्याना भव्यजीवाना मानस चित्त तस्य पक्षे भव्यः श्रेष्ठश्चासौ मानसश्च तन्नामसरोवरश्चेति भव्यमानसस्तस्य समुल्लास हर्षं पक्षे वृद्धि करिष्यतीति विधास्यतीति च युक्तम् योग्यम् । तथापि पूर्वोक्तप्रकारेण साम्ये सत्यपि असौ जिनबालकवलाहकः पङ्क कर्दमं नाशयति पक्षे पापं नाशयति 'पङ्कोऽस्त्री कर्दमे पापे' इति विश्वलोचन सदा शश्वत् मरालीसतोषं हसीसतोष विशेषयति पक्षे सदा शश्वत् अमराली देवपङ्क्ति विशेषयति वर्धयति, चञ्चलाया विद्युत आनन्दं विलास त्यजति पक्षे चञ्चलश्चासावानन्दश्चेति चञ्चलानन्दस्त भङ्गुरानन्द त्यजति, समुज्जृम्भित वर्धितमाप जलसमूहो येन तथाभूत मेघाटोप मेघविस्तार निर्मूलयति समुत्पाटयति पक्षे समुज्जृम्भी तापो दुःख यस्मात्तथाभूत मे मम अघाटोपं पापसमूह निर्मूलयति, तथा स्वयम् स्वत अध स्थित सन् नीचै स्थित पक्षे मध्यलोके स्थितोऽपि सन्नित्यर्थ ऊर्ध्वं उपरि गगन इति यावत् घनपुष्पस्य जलस्य वृष्टि 'घनपुष्प मेघरस ' इत्यमरः पक्षे घना निबिडा चासौ पुष्पवृष्टिश्चेति घनपुष्पवृष्टिस्ता सपादयिष्यति करिष्यतीति हेतोः विचित्र प्रकृतघनाघनाद् विलक्षणश्चासौ घनाघनश्च मेघश्चेति विचित्रघनाघनः अय जिनबालक सकलभुवनभृता ·निखिलजलधराणा पक्षे निखिलजगत्पालकानाम् आधिपत्ये स्वामित्वे अभिषेक्तव्योऽभिषेकार्ह इति मत्वा किल सुरेन्द्रा क्षीरवाराशि क्षीरसागरस्तस्य पय.पूरेण जल-

---

सुशोभित) यह जिनबालकरूपी मेघ, ह्रानिदाघ—ह्रानिप्रद पापको (पक्षमें ग्रीष्म ऋतु अथवा तीव्रसन्तापको) शान्त करता है, कीर्ति—यश (पक्षमें वृष्टि)को उत्पन्न करता है और धर्मरूप अमृत (पक्षमे जल) की वर्षासे भव्यमानस—भव्यजीवोंके हृदयके उल्लासको (पक्षमें सुन्दर मानसरोवरकी वृद्धिको) करेगा यह ठीक है किन्तु उक्त प्रकारसे समानता होनेपर भी यह पक—कीचड़को नष्ट करता है जब कि दूसरा मेघ कीचड़को बढ़ाता है (पक्षमें पापको नष्ट करता है), सदा-मराली सन्तोष—सर्वदा हंसियोंके सन्तोषको विशिष्ट करता है—बढाता है जब कि दूसरा मेघ हंसियोंके सन्तोषको नष्ट करता है (पक्षमे सदा-अमरालीसन्तोष—सदा देवपंक्तियोंके सन्तोषको विशिष्ट करता है, चंचलानन्द—विजलीके आनन्दको छोड़ता है जब कि दूसरा मेघ बिजलीके आनन्दको धारण करता है (पक्षमें चचल—क्षणभंगुर आनन्दको छोड़ता है, समुज्जृम्भितापं मेघाटोपं—जलसमूहको धारण करनेवाले मेघोंके विस्तारको निर्मूल करता है जब कि दूसरा मेघ उस प्रकारके मेघोंके विस्तारको धारण करता है (पक्षमे सन्तापको देनेवाले मेरे ·पाप समूहको निर्मूल करता है), तथा स्वयं नीचे स्थित होता हुआ भी ऊपर जलवृष्टिको करता है जब कि दूसरा मेघ ऊपर स्थित होकर नीचेकी ओर जलवृष्टि करता है (पक्षमे नीचे स्थित रहकर भी ऊपर आकाशसे अत्यधिक पुष्पवृष्टिको कराता है), इस प्रकारसे यह जिनबालक विचित्र मेघ है—अन्य मेघोंसे विलक्षणता रखता है इसलिए समस्त भुवनभृत्—जलधर अर्थात् मेघोंके आधिपत्यमे (पक्षमे समस्त राजाओंके स्वामित्वमें) यही अभिषेक करने योग्य है ऐसा मानकर ही मानो इन्द्रोंने क्षीरसागरके जलप्रवाहसे उसका अभिषेक किया

§ १६) मरुद्भेरीरावैरितरसुरवादित्रनिनदै-
र्जयारावैर्नृत्यत्त्रिदशसुदतीनूपुररवैः ।
तदा वन्दिव्रातैः पठितजिनराजस्तुतिरवै-
रभूच्छब्दाद्वैतं परकथितमध्यक्षविषयम् ॥९॥

§ १७) तदानी खलु प्रजवं प्रचलितः प्रचुरतरपयःप्रवाहः क्वचिद् विचित्ररत्नकान्तिपरीततया द्रवीभूतेन्द्रचापशङ्काकरः, क्वचन वैडूर्यप्रभारञ्जिततया एकत्र निलीनघनतिमिरशङ्काकरः, क्वचिन्मरकतमणिघृणिसंगततया हरितांशुकच्छायः, एकत्र प्लावितानां सुरसैनिकानां क्षीराब्धिमज्जनमिव विदधानः, पत्रशाखाशिखाग्रदर्शनानुमीयमाननन्दनवनकर्षणः सुमेरुमभितः प्रससार ।

प्रवाहेण तं जिनबालकम् अभ्यसिञ्चत् स्नपयामास । श्लेषरूपकोत्प्रेक्षा । § १६) मरुदिति—तदा तस्मिन् काले मरुद्भेरीणां देवदुन्दुभीनां रावाः शब्दास्तैः, इतराणि च तानि सुरवादित्राणि चेतीतरसुरवादित्राणि तेषां निनदास्तैः अन्यदेववादित्रशब्दैः, जयारावैः जनजयशब्दैः, नृत्यन्त्यो नृत्यं कुर्वन्त्यो यास्त्रिदशसुदत्यो देवाङ्गनास्तेषां नूपुराणां मञ्जीराणां रवाः शिञ्जितानि तैः, वन्दिव्रातैः चारणसमूहैः पठिता उच्चरिता या जिनराजस्य स्तुतयः स्तोत्राणि तासां रवाः शब्दास्तैः परकथितं अन्यवादिप्ररूपितं शब्दाद्वैतं संसारे शब्द एवैको वर्तते सिद्धान्तः अध्यक्षविषयः प्रत्यक्षस्य विषयः अभूत् । तदा तत्र सर्वत्र शब्द एव श्रूयते स्मेति भावः । शिखरिणी छन्दः ॥९॥
§ १७) तदानीमिति—तदानीं तदा खलु प्रजवं प्रकृष्टवेगं यथा स्यात्तथा प्रचलितः प्रचुरतरः प्रभूततरश्चासौ पयःप्रवाहो जलपूरश्च क्वचित् कुत्रापि विचित्ररत्नानां विविधवर्णमणीनां कान्त्या परीततया व्याप्ततया द्रवीभूतो निःस्यन्दाकारेण परिणतो यः इन्द्रचापः शक्रधनुस्तस्य शङ्काकरः संदेहोत्पादकः, क्वचन कुत्रापि वैडूर्याणां नीलमणीनां प्रभया रञ्जिततया एकत्र एकस्थले निलीनं निगूढं यत्तिमिरं ध्वान्तं तस्य शङ्काकरः संशयकरः, क्वचित् कुत्रचित् मरकतमणीनां हरितमणीनां घृणिभिः किरणैः संगततया सहिततया हरितांशुकस्येव हरितवस्त्रस्येव छाया कान्तिर्यस्य तथाभूतः 'छाया सूर्यप्रिया कान्तिः प्रतिबिम्बमनातपः' इत्यमरः, एकत्र एकस्मिन् स्थाने प्लावितानां निमज्जितानां सुरसैनिकानां देवसैनिकानां क्षीराब्धिमज्जनमिव क्षीरसागरस्नपनमिव विदधानः कुर्वाणः, पत्रशाखाशिखाग्राणां दलविटपशिखराग्रभागानां दर्शनेनानुमीयमानं नन्दनवनकर्षणं यस्य तथाभूतः सन् सुमेरुमभितः सुमेरुपर्वतस्य समन्तात् 'अभितः परितः समयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि' इति ।

था । § १६ मरुदिति—उस समय देवदुन्दुभियोंके शब्दोंसे, देवोंके अन्य बाजोंके शब्दोंसे, जय जयके शब्दोंसे, नृत्य करती हुई देवांगनाओंके नूपुर सम्बन्धी शब्दोंसे और चारणोंके समूह द्वारा पढ़ी हुई जिनेन्द्र स्तुतियोंके शब्दोंसे, अन्यमतावलम्बियों द्वारा निरूपित शब्दाद्वैतका सिद्धान्त प्रत्यक्षका विषय हो रहा था। अर्थात् सर्वत्र शब्द ही शब्द सुनाई पड़ रहा था।
§ १७) तदानीमिति—उस समय बहुत भारी वेगसे बहता हुआ अत्यधिक जलका प्रवाह कहीं तो नाना रंगके मणियोंकी कान्तिसे व्याप्त होनेके कारण पिघले हुए इन्द्रधनुषकी शंका कर रहा था, कहीं वैडूर्यमणिकी प्रभासे रँगा हुआ होनेसे एक स्थानमें छिपे हुए अन्धकारका सन्देह कर रहा था, कहीं मरकत मणियोंकी किरणोंसे सहित होनेके कारण हरे रंगके वस्त्रके समान जान पड़ता था, किसी एक जगह डुबाये हुए सुरसैनिकोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो वे क्षीरसागरमें गोता लगाकर स्नान ही कर रहे हों, और कहीं उसमें पत्र शाखा तथा शिखरके अग्रभाग दिखाई देते थे उनसे ऐसा अनुमान होता था जैसे यह नन्दनवनको ही खींचकर लिये जा रहा हो। इस प्रकारका वह जल प्रवाह मेरुपर्वतके चारों ओर फैल गया।

§ १८) किं रौप्याद्रिरयं घनः किमु सुधाराशिः क्वचित्संगत
किंवा स्फाटिकभूधरः किमथवा चन्द्रोपलाना चयः ।
आहोस्वित्त्रिजगच्छ्रियो धवलितः सौधः सुधासेचनै-
रित्थं व्योमचरैर्व्यलोकि कनकक्षोणीधरः कौतुकात् ॥१०॥

§ १९) तदानी गगनमुत्पतिता प्रचुरतराः कुन्दावदाता मेरुमहीभृतः श्वेतातपत्रविभ्रम तन्वानाः, गगनलक्ष्म्याः सुपर्वजनसमर्दवशेन स्फुटितमुक्ताहारमणिसंदोहसंदेह संदधाना, श्रीमदर्हत्कीर्तिलताबीजराजिशङ्कासंपादका नभोऽङ्गणपुष्पोपहारायमाणाः, दिक्सुन्दरीकर्णपूरायमाणा स्नानपय पूरशीकरनिकरा क्रमेण निबिडिता प्राप्तज्योतिर्लोकास्तत्र तारागणेषु क्षण पय स्रवणशालितया करकाशङ्का, क्षणमुन्मज्जनवत्तया बुद्बुदमतिं, क्षण डिण्डीरखण्डमण्डिततया शुक्तिकाशकलसंगत-

प्रससार प्रसृतोऽभूत् । हेतूत्प्रेक्षा । § १८) किमिति—किम् अय दृश्यमानो रौप्याद्रि रजतगिरि, किमु क्वचित् कुत्रापि संगतो मिलित घनो निबिड सुधाराशि चूर्णकसमूह, वा अथवा किं स्फाटिकभूधरः स्फटिकगिरि, अथवा किं चन्द्रोपलाना चन्द्रकान्तमणीना चय. समूह, आहोस्वित् अथवा सुधासेचनै चूर्णकद्रवैः धवलित शुक्ल त्रिजगच्छ्रिय त्रिभुवनश्रिय सौध प्रासाद, इत्थमनेन प्रकारेण व्योमचरैर्देवविद्याधरै. कनकक्षोणीधर सुमेरु कौतुकात् व्यलोकि दृष्ट कर्मणि प्रयोग । संशयालकार । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥१०॥ § १९) तदानीमिति—तदानी तस्मिन् काले गगन नभ उत्पतिता उच्छलिताः प्रचुरतरा प्रभूततमा. कुन्दावदाता कुन्दकुसुमवद्धवला, मेरुमहीभृत सुमेरुभूपालस्य श्वेतातपत्रविभ्रम श्वेतच्छत्रसंदेह तन्वाना विस्तारयन्त, गगनलक्ष्म्या व्योमश्रिया सुपर्वजनाना देवाना समर्दवशेन संपीडनवशेन स्फुटितस्त्रुटितो यो मुक्ताहारस्तस्य मणिसंदोहस्य मणिसमूहस्य संदेह शङ्का संदधाना संधरन्त., श्रीमदर्हत श्रीमज्जिनेन्द्रस्य कीर्तिरेव लता तस्या बीजराजि बीजसततिस्तस्या शङ्का तस्या संपादका कारका नभोऽङ्गणस्य गगनाजिरस्य पुष्पोपहारायमाणा पुष्पोपहारवदाचरन्त, दिक्सुन्दरीणाम् आशासुवासिनीना कर्णपूरायमाणाः कर्णालिकारवदाचरन्त स्नानपयसोऽभिषेकजलस्य य पूर प्रवाहस्तस्य शीकराणामम्बुकणाना निकरा समूहा क्रमेण निबिडिता सान्द्रीभूता प्राप्तो ज्योतिर्लोको यैस्तथाभूता, तत्र ज्योतिर्लोके तारागणेषु नक्षत्रनिचयेषु क्षणमल्पकालपर्यन्त पय स्रवणेन जलक्षरणेन शालितया शोभितया करकाशङ्का वर्षोपलसंशीति, क्षणमल्पकालपर्यन्तम् उन्मज्जनवत्तया उन्मग्नतया बुद्बुदमतिं जलस्फोटबुद्धि, क्षण डिण्डीरखण्डेन फेनशकलेन मण्डिततया

§ १८) किमिति—क्या यह रजतगिरि है, अथवा कहीं इकट्ठा हुआ चूनाकी बहुत बडी राशि है, अथवा क्या स्फटिकका पर्वत है, अथवा क्या चन्द्रकान्त मणियोंका समूह है अथवा क्या कलईसे पुता हुआ त्रिजगत्की लक्ष्मीका भवन है इस प्रकार आकाशमें चलनेवाले देव विद्याधरोंने कुतूहल वश सुमेरु पर्वतको देखा था ॥१०॥ § १९) तदानीमिति—उस समय जो परिमाणमें बहुत भारी थे, कुन्दफूलके समान उज्ज्वल थे, तथा आकाशमें उचटकर मेरु पर्वतरूपी राजाके सफेद छत्रका संशय उत्पन्न कर रहे थे अथवा देव समूहकी धक्का-मुक्कीके कारण टूटे हुए आकाशलक्ष्मीके मुक्ताहार सम्बन्धी मणियोंके समूहकी शंका कर रहे थे अथवा श्रीमान् जिनेन्द्रदेवकी कीर्तिरूपी लताके बीजसमूहकी शंका उत्पन्न कर रहे थे, अथवा आकाशरूपी आँगनके फूलोंके उपहारके समान जान पड़ते थे अथवा दिशारूपी स्त्रियोंके कर्णाभरणके समान प्रतीत होते थे ऐसे अभिषेक सम्बन्धी जलप्रवाहके छींटोंके समूह क्रमसे एकत्रित होकर जब ज्योतिर्लोकमें पहुँचे तब वहाँ ताराओंके समूहमें जलके क्षरणसे सुशोभित होनेके कारण क्षणभरके लिए ओलोंकी शंका, क्षणभरके लिए उखर जानेके कारण बबूलोंकी

मुक्तामणिविभ्रम, क्षण सजवनसमाकृष्टनन्दनवनतरुशाखाशिखालग्नतया कुसुममनीषामुत्पादयन्तः, तपनबिम्बे क्षण कृतजलाकर्षणतया महास्तसायःपिण्ड' पानीय पायित इति सभावना, क्षणं कोकनदबुद्धि तन्वाना', सुधाकरबिम्बे च क्षणं जरन्मरालमति, क्षण शङ्खशङ्का, क्षण कुमुदधिय, क्षण घनफेनपुञ्जधिषणा विदधानाः, अनुप्राप्तमहीतला जिनचन्द्रोदयविद्रुतसकलचन्द्रकान्तशिलागलितपयःप्रवाहा इव, जगद्गुरुसङ्गतरङ्गिता' सुरमहीभृतः समदाश्रुपूरा इव प्रस्नुताः स्वच्छतरप्रवाहाः, अय भुवनैकपालक. सगोत्ररक्षणदक्षः पारावारः सुरेन्द्रभीताना महीधराणा शरणमिति मत्वा गिरिराजेन सुमेरुणा सागरायोपदीकृता निर्मलपटनिकरा, इति शङ्क्यमानास्तरङ्गिणीकान्तमवापु.।

शोभिततया शुक्तिकाया शकले खण्डे सगता मिलिता ये मुक्तामणयस्तेषा विभ्रम संदेह, क्षण सजवनेन वेगेन समाकृष्टा या नन्दनवनतरुशाखा नन्दनवनवृक्षविटपास्तासा शिखासु लग्नतया संसक्ततया कुसुममनीषा पुष्पवृद्धिम् उत्पादयन्त , तपनबिम्बे सूर्यमण्डले क्षण कृत जलस्याकर्षण येन तस्य भावस्तया, महान् विशाल' तसाय.पिण्डो लोहगोलक पानीय पायितो जलमध्ये प्रवेशित इति सभावना समुत्प्रेक्षां, क्षण कोकनदबुद्धि रक्तकमलमनीषा तन्वाना विस्तारयन्त., सुधाकरबिम्बे च चन्द्रमण्डले च क्षण जरन्मरालमति वृद्धहसबुद्धि, क्षण शङ्खशङ्का कम्बुसशीति, क्षण कुमुदधिय केरवकल्पना, क्षण घनश्चासौ फेनपुञ्जश्च तस्य धिषणा बुद्धिस्ता विदधाना. कुर्वाणा', अनुप्राप्त क्रमेण लब्ध महीतल पृथिवीतल यैस्ते, जिन एव चन्द्रो जिनचन्द्रो जिनेन्द्रचन्दिरस्तस्योदयेन समुद्गमनेन विद्रुता विलीना या सकलचन्द्रकान्तशिला निखिलचन्द्रकान्तोपलास्ताभ्यो गलिता. क्षरिता ये पय प्रवाहा जलपूरास्तद्वत्, जगद्गुरुर्जिनेन्द्रस्तस्य सङ्गेन तरङ्गिता वृद्धिगताः सुरमहीभृत सुमेरो समदाश्रुपूरा इव हर्षबाष्पप्रवाहा इव, प्रस्नुता प्रकर्षेण प्रवहमाना स्वच्छतरप्रवाहा निर्मलतरपूरा , अय पारावार सागर इत्यर्थ , भुवनैकपालको जगदेकरक्षक पक्षे भुवन जल तस्यैकपालको मुख्यरक्षक , सगोत्राणा समानकुलाना रक्षणे त्राणे दक्ष समर्थ , पक्षे पर्वताना रक्षणे समर्थ , सुरेन्द्रभीतानां गोत्रभिद्भीताना महीधराणा पर्वताना शरणम् रक्षिता 'शरण गृहरक्षित्रो ' इत्यमर , इति मत्वा, गिरिराजेन पर्वतस्वामिना सुमेरुणा सागराय समुद्राय उपदीकृता उपायनीकृता निर्मलपटनिकरा स्वच्छतरवस्त्रसमूहा, इत्येव शङ्क्यमाना शङ्काविषयीक्रियमाणा सन्त तरङ्गिणीकान्त समुद्रम् अवापु प्रापु ॥ उत्प्रेक्षारूपक-

---

बुद्धि, क्षणभरके लिए फेनके खण्डोंसे सुशोभित होनेके कारण सीपके टुकड़ोंमे संलग्न मोतियोंका संशय, और क्षणभरके लिए वेगके द्वारा खिंचे हुए नन्दनवन सम्बन्धी वृक्षशाखाओंके अग्रभागमे सलग्न होनेसे फूलोंकी बुद्धि उत्पन्न करने लगे। सूर्यके मण्डलमे क्षणभरके लिए जल खींचनेके कारण ऐसी सम्भावना करने लगे जैसे एक बड़ा भारी तपाया हुआ लोहेका गोला पानीमें डाला गया हो, और क्षणभरके लिए लाल कमलकी बुद्धिको विस्तृत करने लगे। और चन्द्रमाके मण्डलमें क्षणभरके लिए वृद्ध हंसकी बुद्धि, क्षणभरके लिए शंखकी शका, क्षणभरके लिए कुमुदकी बुद्धि और क्षणभरके लिए बहुत भारी फेन समूहकी बुद्धि उत्पन्न करने लगे। क्रम-क्रमसे जब पृथ्वीतलपर पहुँचे तब ऐसे जान पड़ने लगे मानो जिनेन्द्ररूपी चन्द्रमाके उदयसे विलीन समस्त चन्द्रकान्त मणियोंसे झरे हुए जलके प्रवाह ही हों अथवा जगद्गुरु—भगवान्के सगसे उत्पन्न सुमेरुपर्वतके हर्षाश्रुओंके पूर ही हों। इस प्रकार अतिशय स्वच्छताको लिये हुए वे जलप्रवाह क्रमसे जब समुद्रको प्राप्त हुए तब ऐसे जान पडते थे कि यह समुद्र भुवनैकपालक है—संसारका एक रक्षक है (पक्षमे जलका प्रमुख रक्षक है) तथा हमारे समान वशजोंकी रक्षा करनेमें समर्थ है और इन्द्रसे डरे हुए पर्वतोंकी रक्षा करनेवाला है ऐसा मानकर पर्वतोंके राजा सुमेरुपर्वतके द्वारा समुद्रके लिए

§ २०) शुद्धाम्बुस्नपने निष्ठा गते गन्धाम्बुभिः शुभैः ।
ततोऽभिषेक्तुमीशान शतयज्वा प्रचक्रमे ॥११॥

§ २१) चञ्चच्चन्दनकल्पकद्रुकुसुमैः कर्पूरचूर्णैस्तथा
समिश्रा सुरहेमकुम्भविगलच्छ्रोगन्धपाथोझरी ।
क्षीराम्भोधिपय'प्रवाहधवल मेरु हिमानीगिरिं
मत्वा तत्र समापतन्त्यतितरा गङ्गेव तुङ्गा व्यभात् ॥१२॥

§ २२) तस्या खलु गन्धोदकनिम्नगाया जिनार्भकदिव्यदेहसौगन्ध्यसजातलज्जाभरेणेवावाङ्मुखतया प्रवहन्त्या, कृतावभृथमज्जना सुरजना धूपदीपगन्धाक्षतादिभिर्देवदेव पूजयामासुः ।

§ २३) नटत्सुरवधूघनप्रविसरत्कटाक्षावलिं
कपोलतलसगता त्रिभुवनाधिपस्यादरात् ।
सुराधिपतिसुन्दरी स्नपनतोयशङ्कावशात्
प्रमार्जयितुमुद्यता किल बभूव हास्यास्पदम् ॥१३॥

सशयश्लेषोपमा ॥ § २०) शुद्धाम्बिति—शुद्धाम्बुना स्नपनं तस्मिन् शुद्धजलाभिषेके निष्ठा समाप्ति गते सति ततस्तदनन्तर शतयज्वा शक्र शुभै प्रशस्तै गन्धाम्बुभि सुगन्धितजलै ईशान भगवन्तम् अभिषेक्तुं स्नपयितुम् प्रचक्रमे तत्परोऽभूत् ॥११॥ § २१) चञ्चदिति—चञ्चच्चन्दनश्च कल्पकद्रुकुसुमानि चेति द्वन्द्वस्तै. शोभमानमलयजामरमहोरुहसुमनोभि तथा कर्पूरचूर्णैश्च घनसारचूर्णैश्च समिश्रा समिलिता, सुरहेमकुम्भेभ्यो देवजाम्बूनदकलशेभ्यो विगलन्ती क्षरन्ती या श्रीगन्धपाथोझरी सुगन्धितजलधारा, क्षीराम्भोधेः क्षीरसागरस्य पय प्रवाहेण जलप्रवाहेण धवलो वलक्षस्त तथाभूत मेरु सुरशैल हिमानीगिरिं हिमालय मत्वा तत्र समापतन्ती तुङ्गा समुन्नता गङ्गेव मन्दाकिनीव अतितरामत्यन्त व्यभात् शुशुभे । सशयोपमा । शार्दूलविक्रीडितम् । § २२) तस्यामिति—जिनार्भकस्य जिनशिशोर्दिव्यदेहे कमनीयकाये यत्सौगन्ध्य सौरभ्य तेन सजात समुत्पन्नो यो लज्जाभरस्त्रपासमूहस्तेनेव अवाङ्मुखतया नीचैर्वदनतया प्रवहन्त्या तस्या खलु पूर्वोक्ताया गन्धोदकनिम्नगाया स्नपनसलिलस्रवन्त्या कृत विहितमवभृथमज्जन पूजास्नान यैस्तथाभूता. सुरजना देवजना धूपदीपगन्धाक्षतादिभि देवदेव जिनेन्द्र पूजयामासुरर्चयामासु । § २३) नटदिति—त्रिभुवनाधिपस्य त्रिलोकीनाथस्य कपोलतलसगता गण्डस्थलमध्यपतिता नटत्सुरवधूजनस्य नृत्यद्देवपुरन्ध्रीसमूहस्य प्रविसरन्ती प्रसरणशीला या कटाक्षावली केकरपङ्क्तिस्ताम् स्नपनतोयशङ्कावशात् अभिषेकजलसशयवशात् आदरात् प्रमार्जयितु प्राञ्छितुम् उद्यता तत्परा सुराधिपतिसुन्दरी शची हासास्पद हासस्थान बभूव किल । भ्रान्तिमान् ।

भेंट किये हुए मानो स्वच्छ वस्त्रोंके समूह ही हों। § २०) शुद्धाम्बिवति—शुद्धजलका अभिषेक समाप्त होनेपर तदनन्तर इन्द्रने शुभ एवं सुगन्धित जलके द्वारा भगवान्का अभिषेक करना प्रारम्भ किया ॥११॥ § २१) चञ्चच्चन्दनेति—शोभायमान चन्दन और कल्पवृक्षके फूलों तथा कपूरके कणोंसे मिली, देवोंके स्वर्णकलशोंसे झरती हुई सुगन्धित जलकी धारा, क्षीरसागरके जलसे सफेद मेरुको हिमालय समझकर उसपर पड़ती हुई ऊँची गंगा नदीके समान अत्यन्त शोभित हो रही थी ॥१२॥ § २२) तस्यामिति—जिनबालकके दिव्य शरीर सम्बन्धी सुगन्धिसे उत्पन्न लज्जाके भारसे ही मानो जो नीचा मुख कर बह रही थी ऐसी उस अभिषेक जलकी नदीमें पूजा सम्बन्धी स्नानसे निवृत्त हो देवोंने धूप, दीप, गन्ध तथा अक्षत आदिसे भगवान्की पूजा की। § २३) नटदिति—त्रिलोकीनाथके कपोलतलपर संगत, नृत्य करती हुई देवियोंके फैलनेवाले कटाक्षोंकी पक्तिको स्नपनका जल समझ पोंछने-

§ २४) तदनु सा किल पुलोमजा भगवदङ्गसगतजलकणगण विमलदुकूलाञ्चलेन समार्ज्य, त्रिभुवनतिलकस्य तस्य ललाटतटे तिलक परिकल्प्य, निसर्गरन्ध्रयो श्रवणपुटयोः किमपि तत्त्वरहस्यमधिगन्तुमुपागतमिव शुक्रसुरगुरुयुगलं तस्यामानवचरितं तन्मुखस्य च महादर्शलीला च प्रकटयितुमायात सूर्यचन्द्रयुग्म मणिकुण्डलद्वितय सयोज्य, गलशङ्खगलितमुक्ताभिरिव मुखशशिना राकासुधाकर कलाचातुर्गुण्येन विजित्य वन्दीकृताभिरिव तत्प्रियाभिर्मुक्ताधिकसपदमयमनुभविष्यतीति प्रकटयन्तीभिर्मौक्तिकपरम्पराभिर्घटिता कीर्तिलक्ष्मीभिर्मुक्तिलक्ष्मीभिरार्हन्त्यलक्ष्मीभिरिवाहमहमिकया समर्पितवरणमालात्रितयशङ्काकरी त्रिगुणवलितमुक्तामाला कण्ठदेशे समर्प्य,

---

पृथ्वीछन्द ॥१३॥ § २४) तदन्विति—तदनन्तर सा किल पुलोमजा शची भगवतो जिनेन्द्रस्याङ्गसगता शरीरस्थिता ये जलकणा पय पृषतास्तेषा गण समूह विमलदुकूलाञ्चलेन निर्मलक्षौमवस्त्रेण समार्ज्य सप्रोक्ष्य, त्रिभुवनतिलकस्य त्रिजगच्छ्रेष्ठस्य तस्य भगवतो ललाटतटे निटिलतटे तिलक स्थासक परिकल्प्य रचयित्वा, निसर्गेण रन्ध्र छिद्र ययोस्तयो श्रवणपुटयो कर्णाञ्जलयो किमपि अनिर्वचनीय तत्त्वरहस्य तत्त्वगूढाभिप्रायम् अधिगन्तु ज्ञातुम् उपागत समीपागत शुक्रसुरगुरुयुगल भार्गवबृहस्पतियुगमिव, तस्य भगवत अमानवचरित लोकोत्तरचरित पक्षेऽमावास्यानवचरित तन्मुखस्य च तद्वदनस्य च महादर्शलीला महादर्पणशोभा पक्षेऽमावास्यालीला च प्रकटयितुम् आयात समागत चन्द्रसूर्ययुग्ममिव शशिसूर्ययुगलमिव मणिकुण्डलद्वितय रत्नकर्णाभरणयुग सयोज्य सधृत्य, गल एव शङ्खो गलशङ्ख कण्ठकम्बुस्तस्माद् गलिता पतिता या मुक्तास्ताभिस्तद्वत्, मुखशशिना वदनविधुना कलाना चातुर्गुण्य तेन राकासुधाकर पौर्णमासीन्दु मुखशशी चतु षष्टिकलाधर पौर्णमासीन्द्रश्च षोडशकलाधर इत्यर्थ, विजित्य वदीकृताभि कारावृताभिः तत्प्रियाभिस्तदीयवल्लभाभि तारकाभिरिव तारकाततिभिरिव, अय जिनेन्द्रनन्दनो मुक्ताभ्यो मुक्ताफलेभ्योऽधिका प्रभूता या सपद् ता पक्षे मुक्ताना सिद्धानामधिकसपदम् अनुभविष्यतीति प्रकटयन्तीभि मौक्तिकपरम्पराभि मुक्ताफलसततिभि घटिता रचिता कीर्तिलक्ष्मीभि यश श्रीभि, मुक्तिलक्ष्मीभिर्निर्वृतिश्रीभि, आर्हन्त्यलक्ष्मीभिरार्हन्त्यश्रीभि इव अहमहमिकया अहपूर्वमहपूर्वमिति भावेन समर्पित यद् वरणमालात्रितय स्वयवरस्रक्त्रय तस्य शङ्काकरी सशयोत्पादिका त्रिगुणैस्त्रियष्टिभिर्वलिता या मुक्तामाला मौक्तिकयष्टिस्ता कण्ठदेशे ग्रीवाप्रदेशे समर्प्य सधृत्य,

---

के लिए उद्यत हुई इन्द्राणी हँसीका स्थान हुई थी ॥१३॥ § २४) तदन्विति—तदनन्तर वह इन्द्राणी भगवान्के शरीरमे स्थित जलकणोंके समूहको निर्मल रेशमी वस्त्रके अंचलसे पोंछकर आभूषण पहिनानेके लिए उद्यत हुई। सर्वप्रथम उसने तीन लोकके तिलकस्वरूप भगवान्के ललाट तटपर तिलक लगाया तदनन्तर स्वभावसे ही छिद्रयुक्त कानोंके पुटोंमें मणिमय कुण्डलोंकी जोड़ी पहिनायी। वह कुण्डलोंकी जोडी ऐसी जान पड़ती थी मानो तत्त्वके किसी अनिर्वचनीय रहस्यको जाननेके लिए आये हुए शुक्र और बृहस्पतिकी ही जोड़ी हो। अथवा भगवान्के अमानवचरित—लोकोत्तरचरित्र (पक्षमें अमावस्याका चरित) और उनके मुखकी महादर्श लीला—दर्पणकी शोभा (पक्षमे अमावास्याकी शोभा) को प्रकट करनेके लिए आये हुए चन्द्र और सूर्यकी जोडी ही हो। तत्पश्चात् उसने कण्ठमें तीन लड़की मोतियोंकी माला पहिनायी। वह मोतियोंकी माला जिनमोतियोंकी परम्परासे निर्मित थी वे ऐसे जान पड़ते थे मानो कण्ठरूपी शखसे निकले हुए मोती ही हों, अथवा चौगुनी कलाओंके कारण मुखरूपी चन्द्रमाके द्वारा पूर्णिमाके चन्द्रमाको जीतकर कैद की हुई उसकी प्रिया तारिकाएँ ही हों, अथवा यह मुक्ताधिकसपदा—मोतियोंसे अधिक सम्पत्ति (पक्षमे सिद्धपरमेष्ठीकी अधिक सम्पत्ति) का अनुभव करेगा यह सूचित ही कर रहे हों। माला तीन लड़की थी जिससे ऐसी जान पड़ती थी मानो कीर्तिरूपी लक्ष्मी, मुक्तिरूपी लक्ष्मी और

करसरोजानुरागसमायाततपनशङ्काकरमणिकङ्कणं करयोः कल्पयित्वा, नाभिजघनरुचिहेतुतया, सद्वृत्तरत्नशोभिततया, कल्याणगुणगुम्फिततया मणिकिङ्किणीकलापस्य मध्यस्थता युक्तेति मध्यप्रदेशे तमर्पयित्वा ससारसागरस्य तारकमिद चरणयुगलमिति नखच्छलेन समाश्रिताना तारकाणा ततिमुल्लासयितु सन्निहितेनेव, यद्वा कान्त्या कामितार्थप्रदानस्फूर्त्या च सुरागतामिद बिभर्त्तीति मत्वा तत्प्रादक्षिण्यक्रममुपगतेनेवाथवा प्रौढशोभनखाश्रिततया सत्समूहसेव्यतया शुभ-

---

करसरोजानुरागेण करकमलप्रीत्या समायातो यस्तपन सूर्यस्तस्य शङ्काकर सशयोत्पादको यो मणिकङ्कणो रत्नवलयस्तं करयोर्हस्तयो. कल्पयित्वा धृत्वा, नाभिश्च जघनश्चेति नाभिजघनं तुन्दिनितम्बं तस्या रुचिहेतुतया कान्तिकारणतया पक्षे नाभिजो नाभिराजोत्पन्न ऋषभजिनेन्द्रस्तस्मिन् या रुचि प्रगाढश्रद्धा तस्या हेतुतया, सद्वृत्तरत्नै प्रशस्तवर्तुलमणिभि शोभिततया पक्षे सद्वृत्त सम्यक्चारित्रमेव रत्न तेन शोभिततया, कल्याण-गुणा श्रेयस्करसम्यग्दर्शनादिगुणास्तैर्गुम्फिततया युक्ततया पक्षे कल्याणगुणा सुवर्णतन्तवस्तैर्गुम्फिततया मणि-किङ्किणीकलापस्य रत्नरशनासमूहस्य मध्यस्थता कटिप्रदेशस्थितता पक्षे समभावस्थता च युक्ता समुचिता इति हेतो मध्यदेशे कटिप्रदेशे त मणिकिङ्किणीकलाप अर्पयित्वा दत्त्वा, ससारसागरस्य भवार्णवस्य तारक पारकर पक्षे नक्षत्रम् इदं चरणयुगल पदयुगलमिति हेतो नखच्छलेन नखरव्याजेन समाश्रिताना प्राप्ताना तारकाणा पारकराणा पक्षे नक्षत्राणा तति पङ्क्तिम् उल्लासयितु हर्षयितुं सनिहितेनेव सनिकटस्थितेनेव, यद्वा पक्षान्तरे कान्त्या दीप्त्या कामितार्थस्य समभिलषितपदार्थस्य प्रदान वितरणं तस्य स्फूर्तिः शीघ्रता तया च इद पदयुग सुरागता सुष्ठु राग सुरागस्तस्य भावस्ता सुरक्तवर्णता पक्षे सुराणामग सुराग कल्पवृक्षस्तस्य भावस्ता बिभर्ति दधातीति मत्वा तत्प्रादक्षिण्यक्रम पदयुगपरिक्रमणपद्धतिम् उपगतेनेव प्राप्तेनेव, अथवा पक्षान्तरे प्रौढा शोभा येषा ते प्रौढशोभास्ते च ते नखाश्चेति प्रौढशोभनखास्तेषामाश्रिततया, पक्षे प्रौढ सातिशय शोभन शोभा यस्य तथाभूत यत् ख गगन तस्याश्रिततया, सता सज्जनाना समूह सङ्घस्तेन सेव्यतया पक्षे सता नक्षत्राणा समूहस्तेन सेव्यतया, शुभकरतया शुभ कल्याण करोतीति शुभकरः श्रेयस्कर-

---

आर्हन्त्यरूपी लक्ष्मीने 'मैं पहले वर लूँ मैं पहले वर लूँ' इस भावनासे अपनी-अपनी स्वयवर मालाएँ ही उनके गलेमे डाल रखी हों। तत्पश्चात् इन्द्राणीने हाथोंमे मणिमय ककण पहिनाया जो ऐसा जान पडता था मानो हाथरूपी कमलोंके अनुरागसे आया हुआ सूर्य ही हो। पश्चात् कमरमे मणिमय मेखला पहिनायी। मेखला पहनाते समय इन्द्राणीने मानो यही विचार किया था कि यह मेखला नाभि और नितम्बकी शोभा बढ़ानेवाली है (पक्षमे नाभिज—भगवान् वृषभदेवमे श्रद्धाको बढानेवाली है), उत्तम तथा गोल-गोल रत्नोंसे सुशोभित है (पक्ष मे सदाचाररूपी रत्नसे सुशोभित है) और कल्याण-गुण—सुवर्ण सूत्रसे गुँथी हुई है (पक्षमे कल्याणकारी गुणोसे सहित है) अतः इसकी मध्यस्थता—शरीरके मध्यभागमें स्थित होना (पक्षमे साम्यभावमे स्थिर रहना) ही ठीक है। तदनन्तर दोनों पैरोंको हीरासे निर्मित तोडलोंसे अलंकृत किया। उनके वे तोड़ल ऐसे जान पडते थे मानो भगवान्‌के चरणयुगल संसारसागरके तारक—तारनेवाले (पक्षमे तारास्वरूप) हैं इसलिए नखोंके छलसे आये हुए तारकों—तारनेवालों (पक्षमे ताराओं) के समूहको हर्षित करनेके लिए समीपमें आया हुआ चन्द्रबिम्ब ही हो। अथवा यह चरणयुगल कान्तिके द्वारा सुरागता—उत्तम लालिमाको और अभिलषित पदार्थोंके प्रदान सम्बन्धी शीघ्रतासे सुरागता—कल्प-वृक्षताको धारण करता है इसलिए इसकी प्रदक्षिणा देनेके लिए ही मानो चन्द्रबिम्ब आया हो। अथवा अत्यन्त शोभायमान नखोसे आश्रित होनेके कारण (पक्षमें अत्यन्त शोभायमान आकाशके आश्रित होनेके कारण), सत्समूह—सज्जनोंके समूहसे सेवनीय होनेसे (पक्षमे

करतया तिमिरनिकरनिराकरणचतुरतया च पदयुग मम बन्धुता स्वीकृत्य मम विप्रिय पङ्कजात निर्मूलयतीति स्नेहादुपगतेन शीतकरबिम्बेनेव घनवज्रनूपुरेणाङ्घ्रिद्वयमलचकार ।

§ २५) एवं शच्या भूषित देवदेव
पाय पाय लोचनैस्ते सुरेन्द्रा. ।
आनन्दाब्धौ मज्जनोन्मज्जनाढ्या
इत्थ स्तोतु प्रारभन्ते स्म भक्त्या ॥१४॥

§ २६) भजामस्त्वा लोकाधिप तव पदाम्भोजयुगल
श्रितो भूपो नृणा द्विपद इति कीर्ति स भजते ।
नरो यस्त्वत्सेवाविमुखहृदयस्त बुधवरा-
श्चतुष्पाद प्राहुर्वत विमलकारुण्यजलधे ! ॥१५॥

स्तस्य भावस्तया पक्षे शुभा श्रेष्ठा. करा किरणा यस्य तस्य भावस्तया, तिमिरनिकरस्याज्ञानान्धकारसमूहस्य पक्षे तम समूहस्य निराकरणे दूरीकरणे चतुरतया च विदग्धतया च पदयुग चरणयुगलं मम शीतकरबिम्बस्य बन्धुता सनाभिता सादृश्यमित्यर्थ स्वीकृत्य मम विप्रियमनिष्टे पक्षे शत्रु पङ्कजातं पङ्काना पापाना जात समूह पक्षे पङ्काज्जात पङ्कजात कमलसमूह निर्मूलयति समुत्पाटयति पराभवति इति हेतो स्नेहात्प्रेम्णः उपागतेनेव सप्राप्तेनेव शीतकरबिम्बेनेव चन्द्रमण्डलेनेव घनवज्रनूपुरेण घनहीरकपादकटकेन अङ्घ्रिद्वय चरणयुगलम् अलचकार शोभयामास । श्लेषरूपकोत्प्रेक्षा ॥ § २५) एवमिति—एव पूर्वोक्तप्रकारेण शच्या पुलोमजया भूषित समलकृत देवदेव जिनेन्द्र लोचनैर्नयनै पाय पाय पीत्वा पीत्वा दृष्ट्वा दृष्ट्वेत्यर्थ आनन्दाब्धौ हर्षपारावारे मज्जन निमज्जन उन्मज्जन समुत्तरणं ताभ्यामाढ्या सहिता ते पूर्वोक्ता. सुरेन्द्रा सौधर्मेन्द्रादय इत्थ वक्ष्यमाणप्रकारेण भक्त्या अनुरागातिशयेन स्तोतु प्रारभन्ते स्म तत्परा अभूवन् । शालिनी छन्द ॥१४॥ § २६) भजाम इति—हे लोकाधिप ! हे लोकेश ! हे विमलकारुण्यजलधे ! हे निर्मलकृपाकूपार ! वय त्वा भजाम सेवामहे। कथमिति चेत् । यो नृणा भूप यो मनुष्याणा नाथ तव पदाम्भोजयुगल चरणकमलयुग श्रित प्राप्त स द्विपदो द्वे पदे यस्य तथाभूत. पदद्वययुक्तो मनुष्य इति यावत् इतीत्य कीर्ति समज्ञा भजते प्राप्नोति । यो नर त्वत्सेवाया भवदाराधनाया विमुख पराङ्मुख हृदयं यस्य तथाभूत अस्तीति शेष त नर बुधवरा विद्वच्छ्रेष्ठा. चतुष्पाद चत्वार पादा यस्य त पादचतुष्टययुक्त पक्षे पशुम् प्राहु कथयन्ति वत खेदे । यस्त्वा भजते स द्विपदयुक्तो भवति यस्तु त्वा न भजते स चतुष्पादयुक्तो भवतीति विचित्रम् पक्षे त्वद्भक्ता मनुष्यास्त्वद-

---

नक्षत्रोंके समूहसे सेवनीय होनेसे) शुभाकरता—कल्याणकारी होनेसे (पक्षमे शुभकिरणोंसे युक्त होनेसे) और अज्ञान—अन्धकार (पक्षमे अन्धकारमात्र) के निराकरण करनेमे चतुर होनेसे) यह चरणयुगल हमारी बन्धुता—हमारे भाईचारेको स्वीकृतकर हमारे विरोधी पकजात—कमलको (पक्षमे पापोंके समूह) को नष्ट करेगा इस स्नेहसे मानो चन्द्रबिम्ब ही आया हो । § २५) एवमिति—इस प्रकार इन्द्राणीके द्वारा अलकृत देवाधिदेव जिनेन्द्र-देवको नेत्रोंके द्वारा देख-देखकर जो हर्षके सागरमे डुबकियाँ लगा रहे थे ऐसे उन इन्द्रोंने भक्तिपूर्वक इस प्रकार स्तुति करना प्रारम्भ किया ॥१४॥ § २६) भजाम इति—हे लोकेश ! हे निर्मल दयाके सागर ! हम आपकी सेवा करते हैं क्योंकि जो मनुष्यो का राजा—श्रेष्ठनर आपके चरणकमलयुगलकी सेवा करता है वह 'द्विपद' इस प्रकार कीर्तिको प्राप्त होता है और जो मनुष्य आपकी सेवासे विमुखहृदय रहता है विद्वान् लोग उसे चतुष्पाद् कहते हैं यह खेदकी बात है । अर्थात् भक्तको द्विपद और अभक्तको चतुष्पाद् कहना खेदका विषय है (परिहारपक्षमे भक्तको द्विपद—मनुष्य और अभक्तको चतुष्पाद्—पशु कहते हैं) ॥१५॥

भिर्मुखरितदिङ्मुखास्ते पुरदरप्रमुखा बर्हिर्मुखाः साकेतपुरागमनसमुखा गगनतलमुत्पत्य क्वचिन्मणिभूषणगणकान्तिबालातपेन हर्षितचक्रवाका, क्वचिन्मुक्तामरीचिवीचितोषितचकोरा क्रमेण सुगन्धिगन्धवहस्तनधयव्यालोलविमलपताकापटै· सुरनिकरमाह्वयन्तीमिव विलसन्ती साकेतपुरीमभित सप्ताङ्गबलानि निवेश्य, प्रविश्य च तत्र निराकृतसुरालय नाभिराजालय सुरविरचितविविधमणिगणरुचिनिचयरुचिरभ्रमरततिविततसुरतरुकुसुमसुरभितश्रीगृहाङ्गणशोभितसिंहविष्टरे त जिनाभक निवेशयामासु ।

§ ३१) सुतमुखनिशाधीशालोकप्रवृद्धमुदम्बुधि-
प्रवरजठरे मग्नाविन्द्रो जगत्पितराविमौ ।
स्मितयुतमुख सर्वं त्त निवेद्य तदादरात्
प्रमदजलधे· पार तौ दम्पती द्रुतमानयत् ॥२०॥

घोषणा जयध्वनिश्च तदादिभि मुखरित वाचालित दिङ्मुख यैस्तथाभूता ते पूर्वोक्ता पुरंदरप्रमुखा इन्द्रप्रधाना बर्हिर्मुखा देवा साकेतपुरागमनसमुखा अयोध्यागमनतत्परा सन्त गगनतल नभस्तलम् उत्पत्य समुद्गत्य क्वचित् मणिभूषणगणस्य रत्नालकारनिकरस्य कान्तिरेव बालातप प्रातस्तनघर्मस्तेन हर्षिता चक्रवाका रथाङ्गा यैस्तथाभूता, क्वचित् मुक्तामरीचीना मौक्तिकमयूखाना वीचिभि सततिभि सतोषिता चकोरा जीवजीवा यैस्तथाभूता सन्त सुगन्धिश्चासौ गन्धवहस्तनधयश्चेति सुगन्धिगन्धवहस्तनधय सुगन्धितमन्दसमीरस्तेन व्यालोलाश्चपला ये विमलपताकापटा निर्मलवैजयन्तीवस्त्राणि तै सुरनिकर देवसमूहम् आह्वयन्तीमिव आकारयन्तीमिव विलसन्ती शोभमाना साकेतपुरीम् अयोध्यापुरीम् अभित परित. सप्ताङ्गबलानि सप्तविधसैन्यानि निवेश्य स्थापयित्वा तत्र साकेतपुर्यां निराकृतसुरालय तिरस्कृतस्वर्गं नाभिराजालय नाभिराजभवन प्रविश्य च सुरविरचिताना देवनिर्मिताना विविधमणिगणाना नानारत्नराशीना रुचिनिचयेन किरणकलापेन रुचिर शोभित भ्रमरततिविततानि भृङ्गसमूहव्याप्तानि यानि सुरतरुकुसुमानि कल्पवृक्षपुष्पाणि तै शोभित तथाभूत यत् श्रीगृहाङ्गण श्रीगृहचत्वर तस्मिन् विशोभितसिंहविष्टरे विशोभितसिंहासने त जिनार्भकं जिनशिशु निवेशयामासु निविष्ट चक्रु ॥ § ३१) सुतेति—स्मितयुत मन्दहसितसहित मुख यस्य तथाभूत इन्द्र सुतमुख पुत्रवक्त्रमेव निशाधीशश्चन्द्रस्तस्यालोकेन दर्शनेन प्रकाशेन वा प्रवृद्धो वृद्धिगतो यो मुदम्बुधि हर्षसागरस्तस्य प्रवरजठरे श्रेष्ठमध्ये मग्नौ ब्रुडितौ इमौ जगत्पितरौ जगन्मातापितरौ मरुदेवीनाभिराजौ आदरात् समादरपूर्वक तत् पूर्वोक्त सर्वं वृत्त निखिल वृत्तान्त निवेद्य कथयित्वा तौ दम्पती जायापती द्रुत क्षिप्र प्रमदजलधे प्रमोदपारावारस्य पारमन्तम् आनयत् प्रापयामास । रूपकालकारः । हरिणीच्छन्द ॥१९॥

और जयघोषणा आदिके द्वारा दिग्दिगन्तको मुखरित करनेवाले वे इन्द्र आदि देव अयोध्यानगरीके सम्मुख हो आकाशतलकी ओर उड़े। वे कहीं तो मणिमय आभूषणोंकी कान्तिरूप सुनहली धूपसे चकवोंको हर्षित कर रहे थे और कहीं मोतियोंकी किरणसन्ततिसे चकोरोंको सन्तुष्ट कर रहे थे। इस तरह वे क्रमसे मन्द सुगन्ध पवनके द्वारा हिलती हुई पताकाओंके वस्त्रों द्वारा देवसमूहको बुलाती हुईके समान सुशोभित अयोध्यानगरी जा पहुँचे। उसके चारों ओर सात प्रकारकी सेनाओंको ठहराकर उन्होंने स्वर्गको तिरस्कृत करनेवाले नाभिराजके भवनमें प्रवेश किया तथा देवोंके द्वारा निर्मित नाना प्रकारके मणिगणकी कान्तिके समूहसे सुन्दर और भ्रमर पङ्क्तियोंसे व्याप्त कल्पवृक्षके फूलोंसे सुगन्धित श्रीगृहके आँगनमें सुशोभित सिंहासनपर जिनबालकको विराजमान किया। § ३१) सुतेति—मन्द-मन्द मुसकानसे युक्त मुखवाले इन्द्रने, पुत्रके मुखरूपी चन्द्रमाके देखनेसे वृद्धिको प्राप्त हुए हर्षरूपी सागरके श्रेष्ठ मध्यभागमें निमग्न इन जगत्के माता-पिताको आदरपूर्वक

§ ३२) तदनु महार्घमणिभूषणमाल्यवसनादिभिर्मरुता पतिर्मरुदेवीनाभिराजौ पूजयित्वा युवा खलु जगद्गुरोरपि गुरुतया महापूज्यौ पुण्यघनकोशायमानौ जिनतपनसदुदयपुरदरकाष्ठापूर्वाचलावित्यादिप्रकारेण तुष्टाव ।

§ ३३) नाभिक्ष्मारमणस्तदा समतनोत्त जातकर्मोत्सव
शक्रस्यानुमतैः प्रमोदवशगै पौरैः सम सादरैः ।
यस्मिन् वाद्यरवैरपूर्यत जगत्स्वेष्टैस्तथाशार्थिना
मोदैः पौरजनस्य चित्तसरणिर्नेत्र प्रमोदाश्रुभिः ॥२०॥

§ ३४) तत्तादृक्षमहोत्सवे पुरजनान्मोदाम्बुराशे पर
पार प्राप्तवतो निरीक्ष्य बहुधा सोऽय सुराणा विभुः ।

§ ३२) तदन्विति—तदनु तदनन्तर मरुता पतिरिन्द्र महार्घमणिभूषणानि च महामूल्यरत्नालकरणानि च माल्यानि च स्रजश्च वसनानि च वस्त्राणि च तदादिभि मरुदेवीनाभिराजौ पूजयित्वा युवा खलु जगद्गुरोरपि तीर्थंकरस्यापि गुरुतया पितृतया महापूज्यौ पुण्यमेव घन वित्त तस्य कोशायमानौ निधिवदाचरन्तौ जिनतपनस्य जिनेन्द्रसूर्यस्य सदुदयाय प्रशस्तोदयाय पुरदरकाष्ठा च पूर्वदिशा च पूर्वाचलश्चोदयाचलश्च, इत्यादिप्रकारेण तुष्टाव स्तुतवान् । § ३३) नाभीति—तदा तस्मिन् काले नाभिक्ष्मारमणो नाभिराज शक्रस्य सौधर्मेन्द्रस्य अनुमते समते प्रमोदवशगैर्हर्षवशीभूतै सादरैरादरसहितै पौरैर्नगरवासिभि सम सार्धं त जातकर्मोत्सव जन्मक्रियोद्भव समतनोत् विस्तारयामास यस्मिन् उत्सवे वाद्यरवैर्वादित्रशब्दै जगद्भुवनम् अपूर्यत स्वेष्टै स्वाभिलषितै अर्थिना याचकानाम् आशा मनोरथ अपूर्यत, मोदैर्हर्षै पौरजनस्य् नागरिकजनस्य चित्तसरणिर्मनोमार्ग अपूर्यत, प्रमोदाश्रुभिर्हर्षवाष्पै तस्य नेत्र नयन च अपूर्यत । दीपकालकार । शार्दूलविक्रीडितम् ॥२०॥ § ३४) तदिति—स चासौ तादृक्षमहोत्सवश्चेति तत्तादृक्षमहोत्सवस्तस्मिन् तत्तादृशप्रभूतोद्भवे पुरजनान् नगरनरान् मोदाम्बुराशेर्हर्षसागरस्य पर द्वितीय पार तट प्राप्तवतो गतवतो बहुधा नानाप्रकारेण निरीक्ष्य दृष्ट्वा सोऽयमसौ प्रसिद्ध सुराणा विभु इन्द्र चिरात् चिरकालपर्यन्त उन्मस्तक वृद्धिगत निस्तुल निरुपमान निज स्वकीय आन्तर आन्तरङ्ग आनन्द हर्षं प्रकटयन् आनन्दोद्यतनाटके तन्नामनृत्यविशेषे कुतुकत.

अभिषेक सम्बन्धी समस्त वृत्तान्त कह कर दोनों दम्पतियोंको शीघ्र ही हर्षरूपी सागरके पारको प्राप्त कराया था ॥१९॥ § ३२) तदन्विति—तदनन्तर इन्द्रने महामूल्य मणियोंके आभूषण, माला तथा वस्त्र आदिसे मरुदेवी और नाभिराजकी पूजा कर उनकी इस प्रकार स्तुति की—निश्चयसे आप दोनों जगद्गुरुके भी गुरु होनेसे महापूज्य हैं, पुण्यरूपी धनके भाण्डारके समान हैं तथा जिनेन्द्ररूपी सूर्यके प्रशस्त उदयके लिए पूर्व दिशा और उदयाचलके समान हैं । § ३३) नाभीति—उस समय नाभिराजाने इन्द्रकी अनुमतिसे आनन्दके वशीभूत तथा आदरसे सहित नागरिकजनोंके साथ जातकर्मका वह उत्सव किया जिसमें बाजोंके शब्दोंसे जगत् पूर्ण हो गया था, अपने अभिलषित पदार्थोंसे याचकोंकी तृष्णाएँ पूर्ण हो गयी थीं, हर्षसे नगरवासियोंके हृदय पूर्ण हो गये थे और हर्षके आँसुओंसे उनके नेत्र भर गये थे ॥२०॥ § ३४) तदिति—उस प्रकारके उस महोत्सवमें नगरवासियोंको हर्षरूपी समुद्रके परले पारको प्राप्त हुए देख इन्द्रने कौतुकवश अपना चित्त आनन्दोद्यत नामक नाटकमें लगाया । उस समय इन्द्र, चिरकालसे वृद्धिको प्राप्त तथा अनुपम अपने हार्दिक आनन्दको

आनन्दोद्यतनाटके कुतुकतश्चित्त दधेऽसौ चिरा-
दानन्द निजमान्तरं प्रकटयन्नुन्मस्तक निस्तुलम् ॥२१॥

§ ३५) वक्ता नाट्यागमाना कुलिशधवरो नाटके सन्नटोऽभूद्-
यस्मिन्नाभिक्षितीशप्रमुखनरसुराः प्रेक्षका श्रीजिनेशः।
आराध्यो रङ्गभूमिस्त्रिभुवनवलय तत्फल तु त्रिवर्ग-
प्राप्तिस्तन्नाटकस्य त्रिदशकृतनुतेर्वर्णने को नु शक्त ॥२२॥

§ ३६) अथापि कविजनसमुचिताचारानुसारेण किंचिद्व्यावर्ण्यते।

§ ३७) स खलु मघवा घनाघसङ्घविघाताय समाहित सकलवलारिप्रमुखसुराधिपमुकुटतटघटितजम्भारिमणिजृम्भमाणमेचकरुचिनिचयवलाहकविलसितचलाचलशम्पाकुलशङ्कामतिसपादकव्यामुक्तमुक्ताफलनिरर्गलनिर्गलत्प्रभापटलपुनरुक्तनखचन्द्रचन्द्रिकानन्दितपुरीजनसुरीजननयननी-

---

कौतूहलात् चित्त मनो दधे धृतवान्। आनन्दोद्यतनाटक कर्तुमियेषेति भाव' ॥२१॥ § ३५) वक्तेति—यस्मिन् नाटके नाट्यागमाना नाट्यशास्त्राणा वक्ता समुपदेष्टा कुलिशधरेष्विन्द्रेषु वर श्रेष्ठ सौधर्मेन्द्र सन्नट प्रशस्तनटोऽभूत्, नाभिक्षितीशो नाभिराज प्रमुख प्रधानो येषु तथाभूताश्च ते नरसुराश्चेति नाभिक्षितीशप्रमुखनरसुरा प्रेक्षका दर्शका बभूवन्, श्रीजिनेशो जिनेन्द्र आराध्य आराधनाविषयोऽभूत्, त्रिभुवनवलय लोकत्रयमण्डल रङ्गभूमिरभिनयस्थानम् अभूत् त्रिवर्गप्राप्तिस्तु धर्मार्थकामप्राप्तिस्तु तत्फल नाटकफल अभूत्, त्रिदशैर्देवै कृता नुति स्तुतिर्यस्य तस्य नाटकस्य वर्णने क शक्त क समर्थ। नु वितर्के। स्रग्धराछन्द ॥२२॥ § ३६) अथापीति—तथापि कविजनाना य समुचिताचारस्तदनुसारेण किंचित् मनाग् व्यावर्ण्यते कथ्यते। § ३७) स खल्विति—स खलु मघवा शक्र, घनाघसङ्घविघाताय प्रचुरपापसमूहविनाशाय समाहित समुद्युक्त सन्, सकला अखिला बलारिप्रमुखा इन्द्रप्रधाना ये सुराधिपा देवेन्द्रास्तेषा प्रकटानि यानि मुकुटतटानि मौलितीराणि तत्र घटिता खचिता ये जम्भारिमणय इन्द्रनीलमणयस्तेषा जृम्भमाणा वर्धमाना या मेचकरुचय कृष्णकिरणास्तासा निचय समूह एव वलाहको मेघस्तस्मिन् विलसित स्फुरित यत् चलाचलमतिशयचपल शम्पाकुल विद्युन्निकुरम्ब तस्य शङ्कामते सशीतिबुद्धे सपादकानि विधायकानि यानि व्यामुक्तमुक्ताफलानि धृतमौक्तिकानि तेभ्यो निरर्गल निष्प्रतिबन्ध यथा स्यात्तथा निर्गलन् नि.सरन् य प्रभापटल कान्तिसमूहस्तेन पुनरुक्ता द्विरुक्ता या नखचन्द्रचन्द्रिका नखरकुमुदबान्धवकौमुदी तया नन्दितानि प्रहर्षितानि पुरीजनसुरीजनाना नगरीनरदेवाङ्गनाना नयननीलोत्पलानि नेत्रनीलकमलानि·

प्रकट कर रहा था ॥२१॥ § ३५) वक्तेति—जिस नाटकमे नाट्यशास्त्रोंका उपदेश देनेवाला सौधर्मेन्द्र उत्तम नट था, नाभिराज आदि मनुष्य तथा देव दर्शक थे, श्रीजिनेन्द्र आराध्यदेव थे, तीन लोकका मण्डल रंगभूमि थी, और त्रिवर्गकी प्राप्ति जिसका फल था देवोंके द्वारा स्तुत उस नाटका वर्णन करनेमें कौन समर्थ हो सकता है ? ॥२२॥ § ३६) अथापीति—फिर भी कविजनोंके योग्य आचारके अनुसार कुछ वर्णन किया जाता है। § ३७) स खल्विति—वह इन्द्र अत्यधिक पापसमूहके नष्ट करनेके लिए उद्यत था और उन जिनेन्द्रदेवके चरित्रको लक्ष्य कर प्रवृत्त हुए रूपकका अभिनय करनेके लिए तत्पर हुआ था जो कि सौधर्मेन्द्र आदि समस्त इन्द्रोंके मुकुटतटोंमें लगे हुए इन्द्रनीलमणियोंकी श्यामल किरणोंके समूहरूप मेघमे अत्यन्त कौंदनेवाले विद्युत्समूहकी शकापूर्ण बुद्धिको सम्पन्न करनेवाले धारण किये हुए मोतियोंसे निरन्तर निकलती हुई प्रभाके पुञ्जसे पुनरुक्त नखरूप चन्द्रमाकी चाँदनीके द्वारा नगरवासीजन तथा देवियोंके नेत्ररूपी नीलकमलको विकसित करनेवाले थे। वह

लोत्पलस्य भगवतो जिनराजस्य चरितमधिकृत्य प्रवृत्त, प्रदोपमिव प्रकटितदशावतार, पाण्डुकवनमिव जन्माभिषेकसगतम्, एकनेत्राञ्चितमपि सहस्रनेत्राञ्चित किमपि रूपकमभिनेतु प्रवृत्तः कृतमङ्गलालकारो मूर्तिमानिव नाट्यागम , कामिनोमिव सदामरालोसनुतपदन्यासा सुवर्णालकारशोभिता च, मुक्तावलिमिव सुगुणा सुनामका सद्वृत्तरत्नमण्डिता च, अनुपमामपि उपमाञ्चिता

येन तथाभूतस्य भगवत परमैश्वर्यशालिन जिनराजस्य जिनेन्द्रस्य चरितमुपाख्यानम् अधिकृत्याभिलक्ष्य प्रवृत्त प्रारब्ध, प्रदीपमिव प्रकृष्टदीपकमिव प्रकटिता दशावतारा यस्मिस्तत् पक्षे प्रकटितो दशाना वर्तिकानामवतारो यस्मिस्तम्, पाण्डुकवनमिव जन्माभिषेकेण सगत पक्षे जन्माभिषेके सगत प्राप्त, एकनेत्रा एकनायकेनाञ्चितमपि शोभितमपि सहस्रनेत्रा बहुनायकैरञ्चित शोभितमिति विरोध परिहारपक्षे सहस्र नेत्राणि यस्य स सहस्रनेत्र आखण्डलस्तेनाञ्चित शोभित, किमपि वचनागोचर रूपक नाटकम् अभिनेतु कर्तुं प्रवृत्त समुद्यत कृता धृता मङ्गलालकारा येन तथाभूत मूर्तिमान् शरीरो नाट्यागम इव नाट्यशास्त्रमिव, कामिनोमिव भामिनोमिव सदा सर्वदा मरालीभिर्हंसीभि सनुत सस्तुतो मृदुपदन्यास कोमलचरणनिक्षेपो यस्यास्ता नान्दीपक्षे सदा सर्वदा अमरालीभिर्देवपङ्क्तिभि सनुताना सस्तुताना मृदुपदाना कोमलाक्षरसघाताना न्यासो निक्षेपो यस्या तथाभूता, सुवर्णस्य काञ्चनस्य येऽलकारा कटककेयूराद्याभरणानि तै शोभिता समलकृता नान्दीपक्षे सुवर्णा शोभनाक्षराणि अलकारा उपमादयश्च तै शोभिता, मुक्तावलिमिव मौक्तिकहारयष्टिमिव सुगुणा प्रशस्तसूत्रा नान्दोपक्षे प्रशस्तमाधुर्यादिगुणा, सुनायका सुष्ठुनायको मध्यमणि र्यस्यास्ता नान्दीपक्षे सुष्ठुनायको नेता यस्या ता 'नायको नेतरि श्रेष्ठे हारमध्यमणावपि' इति विश्वलोचन । सद्वृत्तरत्नमण्डिता च सद्वृत्तानि प्रशस्तवर्तुलानि यानि रत्नानि तैर्मण्डिता शोभिता नान्दीपक्षे सद्वृत्तानि समीचीनछन्दास्येव रत्नानि तैर्मण्डिता शोभिता च, अनुपमामपि-उपमारहितामपि उपमाञ्चिता उपमा-

---

रूपक प्रदीपके समान था, क्योंकि जिस प्रकार प्रदीप प्रकटितदशावतार—प्रकट किये हुए बत्तियोंके अवतारसे सहित होता है उसी प्रकार वह रूपक भी प्रकटितदशावतार—प्रकट किये हुए दश अवतारोंसे युक्त था। अथवा पाण्डुकवनके समान था क्योंकि जिस प्रकार पाण्डुकवन जन्माभिषेकसे संगत होता है उसी प्रकार वह रूपक भी जन्माभिषेकसे संगत था अर्थात् जन्माभिषेकके समय किया गया था। इसके सिवाय वह रूपक एक नायकसे सहित होकर भी हजार नायकोंसे सहित था (पक्षमे इन्द्रसे सहित था)। उस समय मंगलमय अलकारोंको धारण करनेवाला वह इन्द्र ऐसा जान पडता था मानो शरीरधारी नाटयशास्त्र ही हो। रूपकके प्रारम्भमे इन्द्रने उस नान्दीको किया जो कि स्त्रीके समान थी क्योंकि जिस प्रकार स्त्रीका कोमलपद निक्षेप सदा मराली—हंसीसे सस्तुत होता है उसी प्रकार उस नान्दीके भी कोमल शब्दसमूहका निक्षेप सदा अमराली—देव-पङ्क्तिसे संस्तुत था, जिस प्रकार स्त्री सुवर्णालकारशोभिता—सोनेके आभूषणोंसे शोभित होती है उसी प्रकार वह नान्दी भी सुवर्णालंकारशोभिता—अच्छे अच्छे वर्ण और अलंकारोंसे सुशोभित थी। अथवा वह नान्दी मोतियोंकी मालाके समान थी, क्योंकि जिस प्रकार मोतियोंकी माला सुगुणा—अच्छे सूत्रसे सहित होती है उसी प्रकार वह नान्दी भी सुगुणा—माधुर्य आदि उत्तम गुणोंसे सहित थी, जिस प्रकार मोतियोंकी माला सुनायका—अच्छे मध्यमणिसे सहित होती है उसी प्रकार वह नान्दी भी सुनायका—अच्छे नेतासे सहित थी, और जिस प्रकार मोतियोंकी माला सद्वृत्तरत्नमण्डिता—अच्छे गोलाकार रत्नोंसे सुशोभित होती है उसी प्रकार वह नान्दी भी सद्वृत्तरत्नमण्डिता—उत्तम श्रेष्ठ छन्दोंसे सुशोभित थी। वह नान्दी अनुपमा—उपमासे रहित होकर भी उपमाञ्चिता—

बुधजनकलितश्लाघामपि विबुधजनकलितश्लाघा नान्दी प्रयुज्य रङ्गमवतीर्णः पीतावशेप नाटयरस स्वय विभजन्निव पुष्पाञ्जलिं चिक्षेप ।

§ ३८) पुष्पाञ्जलि पतन् रेजे मत्तालिभिरनुद्रुतः ।
नेत्रौघ इव वृत्रघ्न' कल्मापितनभोऽङ्गणः ॥२३॥

§ ३९) तत. किल नानाविधवाद्यमुखरीकृतदिगन्तरे तद्रङ्गस्थलान्तरे सरसमुद्धताभिनयप्रायमारभटीयवृत्तियुक्त ताण्डवमारभमाणः, परित. प्रसृतया कटाक्षधारया यवनिकाविभ्रममुद्भावयन्, व्यालोलमुकुटव्यालग्नरत्नप्रभाभिर्दिशि दिशि सुरचापशङ्कामङ्कुरयन्, चञ्चलमुक्तामणिभिरभिनभ स्थल सौदामिनीसहस्रभ्रम सपादयन्, निजभुजशाखासहस्रे कलितनर्तनानप्सरोजनान्क्षण

शोभितामिति विरोध. पक्षे उपमालकारेणाञ्चिता शोभिता, बुधजनैर्विद्वत्पुरुषै कलिता कृता श्लाघा प्रशसा यस्यास्तथाभूतामपि बुधजनकृतश्लाघा न भवतीति विबुधजनकलितश्लाघामिति विरोध. पक्षे विबुधजनैर्देवजनै कलिता श्लाघा यस्यास्ता तादृशी नान्दी नाटकस्य प्रारम्भे क्रियमाणा स्तुति 'आशीर्वचनसयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते । देवद्विजनृपादीना तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥' इति नान्दीलक्षणम् । प्रयुज्य कृत्वा रङ्ग नाटयभूमिम् अवतीर्ण पीतावशेप पानावशिष्ट नाटयरस नाटयमेव रसस्त स्वय स्वतो विभजन्निव विभक्त कुर्वन्निव पुष्पाञ्जलि कुसुमाञ्जलि चिक्षेप क्षिप्तवान् । रूपकश्लेपोपमाविरोधाभासा ॥ § ३८) पुष्पाञ्जलिरिति— मत्तालिभि मत्तभ्रमरै अनुद्रुतोऽनुगत पतन् पुष्पाञ्जलि कुसुमाञ्जलि कल्मापित चित्रित नभोऽङ्गण गगनचत्वर येन तथाभूत वृत्रघ्न पुरदरस्य नेत्रौघ इव नयनसमूह इव रेजे शुशुभे । उपमा ॥२३॥ § ३९) तत इति— ततस्तदनन्तर किल स इन्द्र, नानाविधवाद्यैर्नैकविधवादित्रैर्मुखरीकृतानि वाचालितानि दिगन्तराणि यस्मिंस्तस्मिन् तद्रङ्गस्थलान्तरे तद्रङ्गभूमिमध्ये सरसं शृङ्गारादिरसोपेत उद्धताभिनयप्रायम् उत्कटाभिनयप्रचुरम् आरभटीयवृत्त्या वृत्तिविशेषेण युक्त सहित 'मायेन्द्रजालसग्रामक्रोधोद्भ्रान्तादिचेष्टितै । सयुक्ता वधबन्धाद्यैरुद्धतारभटी मता' ॥ इत्यारभटीवृत्तिलक्षणम् । ताण्डव नटन आरभमाण प्रारब्ध कुर्वाण, परित समन्तात् प्रसृतया कटाक्षधारया केकरश्रेण्या यवनिकाविभ्रम नेपथ्यसदेहम् उद्भावयन् प्रकटयन्, व्यालोलानि चञ्चलानि यानि मुकुटानि तेपु व्यालग्नानि खचितानि यानि रत्नानि तेषा प्रभा कान्तयस्ताभि दिशि दिशि सुरचापशङ्का

उपमासे सहित थी (परिहारपक्षमे उपमालकारसे सहित थी)। बुधजनकलितश्लाघा— विद्वानोंके द्वारा की हुई प्रशसासे युक्त होकर भी विबुधजन कलितश्लाघा—विद्वज्जनोंके द्वारा की हुई प्रशसासे युक्त नहीं थी (परिहारपक्षमे देवोंके द्वारा की हुई प्रशसासे युक्त थी)। नान्दी करनेके बाद वह इन्द्र रगभूमिमें उतरा और पान करनेसे शेप बचे हुए नाटयरसका स्वयं विभाग करते हुए की तरह पुष्पाजलिक्षेपण करने लगा। § ३८) पुष्पाञ्जलिरिति—मत्त भौंरे जिसके पीछे-पीछे दौड़ रहे थे ऐसी वह पुष्पांजलि, गगनागणको चित्रित करनेवाले इन्द्रके नेत्रसमूहके समान सुशोभित हो रही थी ॥२३॥ § ३९) तत इति—तदनन्तर नाना प्रकारके बाजोंसे जहाँ दिशाओंके अन्तराल शब्दायमान हो रहे थे ऐसी उस रगभूमिके मध्यमे शृंगारादि रसोंसे सहित, प्रायः उद्धत अभिनयसे युक्त और आरभटी वृत्तिसे सहित ताण्डव नृत्यको प्रारम्भ करता हुआ इन्द्र चारों ओर फैली हुई कटाक्षधारासे कभी परदाका भ्रम उत्पन्न करता था, कभी चञ्चल मुकुटोंमे लगे हुए रत्नोंकी प्रभासे प्रत्येक दिशामें इन्द्रधनुषकी शंकाको उत्पन्न करता था, कभी चञ्चल मुक्तामणियोंके द्वारा आकाशमे हजारों बिजलियोंका भ्रम उत्पन्न करता था। वह इन्द्र अपनी भुजारूपी हजारों शाखाओंपर नृत्य

गूढ क्षण प्रकाश च सचारयन्, क्षणमेक', क्षणमनेक , क्षण व्यापी, क्षणमणु , क्षणमदूरे, 'क्षण दूरे, क्षण दिवि, क्षण भुवि, विलसमानः परितो नाटचरसमुत्तरङ्गयामास ।

§ ४०) तदा तादृड्नाटचे विलसति बलारातिकलिते
भुजोल्लासक्षुभ्यज्जलदविगलद्वारिपृषताम् ।
सुरश्रेणीवृष्टप्रचुरकुसुमाना च पतता
विशेषो विज्ञातो मधुकरवितत्या विततया ॥२४॥

§ ४१) अय किल वज्रधर. पुरा शिलामयान्पुरूपान्धरान्विभेद, अह किल मृण्मयी स्त्रीरूपा धरेति भयेनेव, पुरदरपरिचितेन क्लीबेनापि वहुधाचलेन नाट्येन पुरूपा एव अचला' कम्पिता अह तु स्त्रीरूपाचलेति मत्वा किल काश्यपी तदा कम्पमाससाद ।

शक्रशरासनसदेहम् अङ्कुरयन् प्रादुर्भावयन् । शेष सुगमम् । § ४०) तदेति—तदा तस्मिन् काले बलारातिकलिते पुरदरविहिते तादृड्नाटचे तादृक्षनाटचे विलसति शोभमाने सति भुजाना बाहूनामुल्लासेन समुन्नयनेन क्षुभ्यन्त सचलन्तो ये जलदा मेघास्तेभ्यो विगलन्ति पतन्ति यानि वारिपृषन्ति जलबिन्दवस्तेषा पतता स्खलता सुरश्रेण्या देवपङ्क्त्या वृष्टानि यानि प्रचुरकुसुमानि प्रभूतपुष्पाणि तेपा च विशेषो वैशिष्ट्य विततया विस्तृतया मधुकर-वितत्या भ्रमरपङ्क्त्या विज्ञात. । येषामुपरि मधुकरविततिरधावत् तानि कुसुमानि तदितराणि च वारिपृषन्ति सन्तीति ज्ञातानित्यर्थ । शिखरिणीछन्द. ॥२४॥ § ४१) अयमिति—अय किल वज्रधर पविधारक इन्द्र पुरा प्राक् शिलामयान् प्रस्तरमयान् पुरूपान् पुल्लिङ्गरूपान् धरान् पर्वतान् बिभेद खण्डयामास । अह किल मृण्मयी मृत्तिकारूपा स्त्रीरूपा स्त्रीलिङ्गरूपा धरा पृथिवी, पुमपेक्षया स्त्रिया कोमलत्वादिति भाव , इति भयेनेव भीत्येव, पुरदरपरिचितेन प्राप्तपुरुहूतपरिचयेन क्लीबेनापि नपुसकलिङ्गेनापि पक्षे नपुसकवत्कातरेणापि, बहुधाचलेन अतिचपलेन नाट्येन नटनेन पुरूपा एव पुल्लिङ्गा एव अचला पर्वता कम्पिता अह तु स्त्रीरूपा अचला पृथिवी, इति मत्वा किल काश्यपी क्षिति. 'क्षोणिर्ज्या काश्यपी क्षिति ' इत्यमर । तदा ताण्डवनाटच-

---

करनेवाली अप्सराओंको क्षण भर गूढ रूपसे और क्षण भर प्रकट रूपसे चला रहा था। क्षण भरमे वह एक हो जाता था, क्षण भरमें अनेक हो जाता था, क्षणभरमे व्यापक हो जाता था, क्षण भरमे अणुरूप हो जाता था, क्षण भरमे समीपमे, क्षण भरमे दूर, क्षण भरमे आकाशमे और क्षणभरमे पृथिवीपर अपनी चेष्टा दिखलाता हुआ सब ओर नाटयरसको बढ़ा रहा था। § ४०) तदेति—उस समय इन्द्रके द्वारा किये हुए उस प्रकारके नाटयके सुशोभित होनेपर भुजाओंके उल्लाससे क्षुभित मेघोंसे झडनेवाली जलकी बूँदों और देवसमूहके द्वारा बरसाये हुए बहुत भारी फूलोंकी विशेषता विस्तारको प्राप्त भ्रमरोंकी पङ्क्तिसे जानी गयी थी ॥२४॥ § ४१) अयमिति—वज्रको धारण करनेवाले इस इन्द्रने पहले शिलाओंसे तन्मय तथा पुंल्लिङ्ग रूपधारी धरों—पर्वतोंका भेदन किया था फिर मैं तो मिट्टीसे तन्मय और स्त्रीरूपको धारण करनेवाली धरा—पृथिवी हूँ मुझे तो यह अनायास ही खण्डित कर देगा इस भयसे ही मानो उस समय पृथिवी काँपने लगी थी। अथवा यह नाटय यद्यपि बहुत चंचल है और नपुंसकलिङ्ग (पक्षमे नपुंसकके समान कातर) है तो भी इन्द्रसे परिचित होनेके कारण इसने पुल्लिङ्ग (पक्षमे पुरुषरूपके धारक) अचलों—पर्वतों (पक्षमे विचलित न होनेवाले शूरो) को भी कम्पित कर दिया है फिर मैं तो स्त्रीरूपको धारण करनेवाली अचला—पृथिवी हूँ—मुझे कम्पित करनेमे इसे क्या देर लगेगी इस भयसे ही मानो उस समय पृथिवी कंपनको

§ ४२) तालशोभि ललिताप्सरोज्ज्वलं चित्तहारिततवेणुनिस्वनम् ।
हंसकध्वनिमनोरमं बभौ तद्वदोपवनमिन्द्रनर्तनम् ॥२५॥

§ ४३) तदानीं श्रव्यमपि दृश्यानुगुणतयैव गन्धर्वाः प्रकटयामासुः ।

§ ४४) धिक् तां कुतीर्थराजिं धिक् तां तत्कल्पितां मतप्रौढीम् ।
धिक् तांस्त्वय्यप्रकटान् धिक् तान्ये नात्र सङ्गता भगवन् ॥२६॥

§ ४५) धर्मध्वनि चिन्तकतां मदनान्तकतां भवार्तिकृन्तकताम् ।
मुक्तिश्रीकान्तकतां प्राप्तवति संत्रातसकलजन्तुकताम् ॥२७॥

वेलायां कल्याणम् आसमवाय प्राप्तः । पृथिवी पल्लवितामुदितहर्षा । इत्युत्प्रेक्षा । § ४२) तालेति—तत् पूर्वोक्तम् इन्द्रनर्तनम् पुरन्दरनृत्यम् उपवनं यथा आराममिव बभौ शुशुभे । उभयोः सादृश्यमाह—तालशोभि तालैः तालक्रियाभिः शोभते इत्येवंशीलमिन्द्रनर्तनम् तालैस्तालवृक्षैः शोभते इत्येवंशीलमुपवनम्, ललिताप्सरोज्ज्वलम्—ललिताश्च ता अप्सरसश्चेति ललिताप्सरसः सुन्दरसुराङ्गनास्ताभिरुज्ज्वलति शोभते इति तथाभूतम् इन्द्रनर्तनं अपां सरांसि अप्सरांसि ललितानि मनोहराणि यानि अप्सरांसि जलसरोवरास्तैरुज्ज्वलति शोभते तथाभूतमुपवनम्, चित्तहारिततवेणुनिस्वनम्—ततं वीणादिकं वाद्यं, वेणुर्वंशादिकं वाद्यं, चित्तहारी मनोहारी ततवेण्वोः निस्वनः शब्दो यस्मिंस्तत् इन्द्रनर्तनं, चित्तहारी मनोहारी ततवेणूनां विस्तृतवंशानां निस्वनः शब्दो यस्मिंस्तद् उपवनम्, हंसकध्वनिमनोरमम् हंसका नूपुराणि तेषां ध्वनिना मनोरमं रम्यम् इन्द्रनर्तनं पक्षे हंसा एव हंसका मरालास्तेषां ध्वनिना मनोरमम् उपवनम् । श्लेषोपमा । रथोद्धताछन्दः ॥२५॥ § ४३) तदानीमिति—श्रव्यमपि श्रोतुं योग्यमपि संगीतं गन्धर्वाः देवविशेषाः दृश्यानुगुणतयैव दृश्यकाव्यानुकूलतयैव एव वक्ष्यमाणप्रकारेण प्रकटयामासुः । § ४४) धिक् तामिति—ताः प्रसिद्धाः कुतीर्थानां कुगुरूणां राजिं पङ्क्तिं धिक्, तैः कुतीर्थैः कुगुरुभिः कल्पिता रचिता मतप्रौढी धर्मवैदग्ध्यं धिक्, त्वयि भवति अप्रकटान् तद्भक्तिरहितान् तान् धिक्, हे भगवन् ! ये जन्मोत्सवे न सङ्गता न सम्मिलिताः तान् धिक् । आर्या ॥२६॥ § ४५) धर्मेति—भगवन् ! त्वं धर्मध्वनि धर्ममार्गे चिन्तकतां विचारकतां, मदनान्तकतां कामविनाशकतां, भवार्तिकृन्तकतां संसारदुःखच्छेदकतां, मुक्तिश्रीकान्तकतां मुक्तिलक्ष्मीवल्लभतां, संत्राताः संरक्षिताः सकलजन्तवो येनेति संत्रात-

प्राप्त हुई थी। § ४२) तालेति—इन्द्रका वह नृत्य उपवनके समान सुशोभित हो रहा था क्योंकि जिस प्रकार इन्द्रका नृत्य तालशोभि—तालसे सुशोभित था उसी प्रकार उपवन भी तालशोभि—ताडवृक्षोंसे सुशोभित था, जिस प्रकार इन्द्रका नृत्य ललिताप्सरोज्ज्वल—सुन्दर अप्सराओंसे सुशोभित था उसी प्रकार उपवन भी ललिताप्सरोज्ज्वल—सुन्दर जलके सरोवरोंसे सुशोभित था, जिस प्रकार इन्द्रका नृत्य चित्तहारिततवेणुनिस्वन—मनको हरण करनेवाले वीणा और बाँसुरीके शब्दोंसे सहित था उसी प्रकार उपवन भी चित्तहारिततवेणुनिस्वन—मनको हरण करनेवाले विस्तृत बाँसोंके शब्दोंसे सहित था और जिस प्रकार इन्द्रका नृत्य हंसकध्वनिमनोरम—नूपुरोंकी झनकारसे सुन्दर था उसी प्रकार उपवन भी हंसकध्वनिमनोरम—हंसोंकी बोलीसे सुन्दर था ॥२५॥ § ४३) तदानीमिति—उस समय सुनने योग्य संगीतको भी गन्धर्वोंने दृश्यकाव्यके अनुरूप ही इस तरह प्रकट किया था। § ४४) धिक्तामिति—उस कुगुरुओंकी पङ्क्तिको धिक्कार हो, उनके द्वारा कल्पित मिथ्यामत सम्बन्धी चतुराईको धिक्कार हो, आपमें जो अप्रकट हैं—आपके अश्रद्धालु हैं उन्हें धिक्कार हो और हे भगवन् ! जो इस जन्मोत्सवमें सम्मिलित नहीं हुए हैं उन्हें भी धिक्कार हो ॥२६॥ § ४५) धर्मेति—हे भगवन् ! आप धर्मके मार्गमें विचारकताको, कामकी नाशकताको, संसार-सम्बन्धी पीडाकी छेदकताको, मुक्ति लक्ष्मीकी वल्लभताको और समस्त जीवोंकी रक्षकताको

§ ५०) जिननन्दनद्रुमोऽयं सिक्तो देवैः स्वकालवालेद्धः ।
स्मितकुसुमानि दधे द्राक्तन्वानस्तत्र काञ्चनच्छायाम् ॥३१॥

§ ५१) अलममितफलप्रदानचतुरस्य निरवधिकश्रीविराजितस्य विजितमारस्य जिनकुमारस्य सुमितफलप्रदानचतुरैः सूनश्रीविराजितैः स्वयमेव पञ्चतामुपगतैः कल्पद्रुमैरुपमानवार्तया ।

§ ५२) जिनबालशीतरश्मिर्जीवजीवं प्रति प्रहर्षंकरः ।
स्मितचन्द्रिका वितेने सकलकलावल्लभः सदानन्दी ॥३२॥

चर्यायां शुश्रूषायां नियोज्य नियुक्तान्विधाय निखिलनिर्जरबलेन सकलसुरसैन्येन सह निजभवनं स्वकीयसदनम् उपजगाम प्राप । § ५०) जिनेति— देवैरमरैः सिक्तः स्नपितः पक्षे कृतसेचनः, स्वकालवालेद्धः स्वस्यात्मनो ये कालवालाः कृष्णकचास्तैरिद्धः शोभितः पक्षे स्वकस्य निजस्य आलवालेन आवामेन इद्धः शोभितः काञ्चनस्य सुवर्णस्य छायां कान्तिं तन्वानो विस्तारयन् पक्षे काञ्चन कामप्यनिर्वचनीयां छायामनातपं तन्वानो विस्तारयन् 'छाया सूर्यप्रिया कान्तिः प्रतिबिम्बमनातपः' इत्यमरः । अयमेष जिननन्दनो जिनबालक एव द्रुमो वृक्षः अथवा नन्दने नन्दनवने विद्यमानो द्रुमो नन्दनद्रुमः कल्पतरुः, जिन एव नन्दनद्रुमः इति जिननन्दनद्रुमः स्मितकुसुमानि मन्दहसितपुष्पाणि द्राक् झटिति दधे धृतवान् । रूपकश्लेषौ । आर्या ॥३१॥ § ५१) अलमिति— पूर्वोक्तश्लोकेन जिनस्य नन्दनद्रुमेण कल्पवृक्षेण सादृश्यं निरूप्येदानीं तद्व्यतिरेकं निरूपयति अलमिति— अमितानां प्रमाणरहितानां फलानां प्रदाने चतुरो विदग्धस्तस्य, निरवधिका निष्प्रमाणा या श्रीर्लक्ष्मीः शोभा वा तया विराजितस्य शोभितस्य विजितो मारो मृत्युर्येन तस्य जिनकुमारस्य जिनबालकस्य, सुमितानां परिमितानां फलानां प्रदाने चतुरा विदग्धास्तैः पक्षे सुमानि सञ्जातानि येषु तानि सुमितानि पुष्पितानि तथाभूतानि यानि फलानि तेषां प्रदाने चतुरैः, सूना अतिशयेन ऊना हीना या श्रीर्लक्ष्मीः शोभा वा तया विराजितैः पक्षे सूनानां कुसुमानां श्रिया विराजितैः शोभितैः, स्वयमेव स्वत एव पञ्चतां मृत्युं पक्षे पञ्चसंख्यात्वं 'पञ्चता मृत्युमात्रेऽपि पञ्चभावेऽपि पञ्चता' इति विश्वलोचनः 'पञ्चैते देवतरवो मन्दारः पारिजातकः । सतानः कल्पवृक्षश्च पुंसि वा हरिचन्दनम्' इत्यमरवचनात्कल्पद्रुमाणां पञ्चसंख्या प्रसिद्धा, उपगतैः प्राप्तैः कल्पद्रुमैः कल्पवृक्षैः उपमानस्य वार्ता तया उपमाचर्चया अलं व्यर्थम् । श्लेषरूपकव्यतिरेकाः । § ५२) जिनबालेति—जीवं जीवं प्रति प्राणिनं प्राणिनं प्रति पक्षे चकोरं प्रति, प्रहर्षंकरः प्रमोदोत्पादकः, सकलकलानां निखिलवैदग्धीनां

मनोविनोदके लिए विभिन्न प्रकारकी विक्रियाके उदयको प्रकट करनेवाले विशिष्ट देवकुमारोंको सेवामें नियुक्त कर समस्त देवसेनाके साथ अपने घर चला गया। § ५०) जिनेति—देवोंने जिसे सींचा था (पक्षमें देवोंने जिसका अभिषेक किया था), जो अपनी क्यारीसे सुशोभित था (पक्षमें जो अपने काले-काले केशोंसे सुशोभित था) तथा जो किसी अद्भुत छायाको विस्तृत कर रहा था (पक्षमें सुवर्णकी कान्तिको विस्तृत कर रहा था) ऐसा यह जिनेन्द्ररूपी कल्पवृक्ष शीघ्र ही मन्द मुसकानरूपी फूलोंको धारण करने लगा ॥३१॥ § ५१) अलमिति—अथवा जिनबालककी कल्पवृक्षोंके साथ उपमाकी चर्चा करना व्यर्थ है क्योंकि जिनबालक अमित—अपरिमित फलोंके प्रदान करनेमें चतुर था और कल्पवृक्ष सुमित—अत्यन्त सीमित फलोंके प्रदान करनेमें चतुर थे (पक्षमें फूलोंसे युक्त फलोंके प्रदान करनेमें चतुर थे), जिनबालक अवधिरहित श्रीसे सुशोभित था और कल्पवृक्ष सूनश्री—अत्यन्त अल्पश्रीसे सुशोभित थे (पक्षमें फूलोंकी श्रीसे सुशोभित थे) जिनबालक मार—मृत्युको जीतनेवाला था और कल्पवृक्ष अपनेआप ही पञ्चता—मृत्युको प्राप्त थे (पक्षमें पञ्चसंख्याको प्राप्त थे) । § ५२) जिनबालेति—जो जीव जीव प्रति—प्रत्येक प्राणीके प्रति हर्षको करनेवाला था (पक्षमें चकोरके प्रति हर्षको करनेवाला था), जो समस्त कलाओंका

§ ५३) अलमल सिद्धान्तविदितमहिम्नः कलङ्करहितस्य दोषकथातोतस्य विमलमतेर्जिनबालकस्य पूर्वपक्षविदितमहिम्ना सकलङ्केन दोषाकरेण जडध्युत्पन्नेन चन्द्रेणोपमित्या ।

§ ५४) सर्वतोमुखसमृद्धिसमेतो मानसस्य परितोषणहेतुः ।
द्राग्बभार जिनपोतपयोदो हासकान्तिमयविद्युतमिद्धाम् ॥३३॥

§ ५५) कृत निश्चलानन्दसुन्दरस्य सकलभुवनोद्धरणदक्षस्य समाश्रितानाममृतप्रदस्य

चतु षष्टिकलाना वा पक्षे पोडशकलाना वल्लभ स्वामी, सत सत्पुरुपान् आनन्दयति हर्षयतोति सदानन्दी, सदा सर्वदा आनन्दति हर्षतीत्येवशील सदानन्दी, सन् समीचीन आनन्दो विद्यते यस्य स सदानन्दो इति वा, पक्षे सतो नक्षत्रान् आनन्दयति शोभयतीति सदानन्दो, जिनबालो जिनशिशुरेव शीतरश्मिश्चन्द्र इति जिनबालशीतरश्मि स्मितमेव मन्दहसितमेव चन्द्रिका ज्योत्स्ना ताम् वितेने विस्तारयामास । रूपकश्लेषव्यतिरेका. । आर्या ॥३२॥ § ५३) *अलमलमिति—पूर्वोक्तश्लोके जिनबालस्य शीतरश्मिना सादृक्ष्य निरूप्य* साम्प्रत तद्व्यतिरेक निरूपयति—सिद्धान्ते शास्त्रे, पक्षे उत्तरपक्षे विदित प्रख्यातो महिमा माहात्म्य यस्य तथाभूतस्य, कलङ्करहितस्य कल्मषरहितस्य पक्षे लाञ्छनरहितस्य, दोपकथातोतस्य दोपचर्चारहितस्य, विमलमतेर्निर्मलबुद्धे जिनबालस्य जिनेन्द्रशिशो पूर्वपक्षे शङ्कापक्षे, पक्षे कृष्णपक्षे विदितो महिमा यस्य तस्य, सकलङ्केन कल्मषसहितेन पक्षे लाञ्छनसहितेन, दोषाकरेण दोपाणामवगुणानामाकरस्तेन पक्षे दोपाकरेण रात्रिकरेण जडच्युत्पन्नेन जडा मूर्खा धीर्बुद्धिर्यस्य स जडधोस्तस्मादुत्पन्नो मूर्ख इत्यर्थ पक्षे डलयोरभेदात् जलधि समुद्रस्तस्मादुत्पन्नस्तेन तथाभूतेन चन्द्रेण उपमित्या उपमानवार्तया अलमलम् अतिशयेन व्यर्थमित्यर्थ । रूपकश्लेषव्यतिरेका. ॥ § ५४) सर्वत इति—सर्वतोमुखी समन्तादायशीला या समृद्धि सपत्तिस्तया समेत सहित पक्षे सर्वतोमुखस्य जलस्य समृद्धया समेत , मानसस्य चित्तस्य पक्षे मानससरोवरस्य परितोषण समाह्लादन पक्षे वर्धन तस्य हेतु , जिनपोत एव पयोदो जिनपोतपयोदो जिनबालकमेघ , इद्धा दीप्ता हासकान्तिमयो हासरुचिरूपा विद्युत्सौदामिनी ताम्, द्राग् झटिति, बभार दधार । रूपकश्लेषौ । स्वागता छन्द ॥३३॥ § ५५) कृतमिति—पूर्वोक्तश्लोकेन जिनार्भकस्य मेघेन सादृश्य प्ररूप्येदानी तद्व्यतिरेकं प्रदर्शयति—निश्चला-

---

स्वामी था (पक्षमें सोलह कलाओंसे युक्त था) और सदानन्दी—निरन्तर हर्षको धारण करनेवाला था अथवा सत्पुरुषोंको हर्षित करनेवाला था अथवा समीचीन आनन्दसे सहित था (पक्षमे नक्षत्रोंको हर्षित करनेवाला था) ऐसा जिनबालकरूपी चन्द्रमा मन्द मुसकानरूपी चाँदनीको विस्तृत करने लगा ॥३२॥ § ५३) अलमलमिति—अथवा जिनबालककी चन्द्रमाके साथ उपमा करना बिलकुल व्यर्थ है क्योकि जिनबालक सिद्धान्त पक्षमे प्रसिद्ध महिमासे युक्त था और चन्द्रमा पूर्वपक्ष—शंकापक्ष (पक्षमे कृष्णपक्ष) मे प्रसिद्ध महिमासे युक्त था, जिनबालक कलंकरहित था—पापरहित था और चन्द्रमा कलकसहित—पाप सहित था (पक्षमे लाछनसे सहित था), जिनबालक दोषकथातीत—दोषोंकी चर्चासे रहित था और चन्द्रमा दोषाकर—दोषोंकी खान था (पक्षमे रात्रिको करनेवाला था) जिनबालक विमलमति—निर्मल बुद्धिको धारण करनेवाला था और चन्द्रमा जडधी—मूर्खसे उत्पन्न था अर्थात् निर्मलबुद्धिसे रहित था (पक्षमे जलधि—समुद्रसे उत्पन्न था) । § ५४) सर्वत इति—जो सर्वतोमुखी—सब ओरसे आयवाली समृद्धिसे सहित था (पक्षमे जलकी समृद्धिसे सहित था) और मानस—हृदयके सतोषका कारण था (पक्षमे मानस-सरोवरकी वृद्धिका कारण था) ऐसा जिनबालकरूपी मेघ हासकी कान्तिरूप देदीप्यमान बिजलीको शीघ्र ही धारण करने लगा ॥३३॥ § ५५) कृतमिति—अथवा जिनबालककी मेघके साथ उपमा करना व्यर्थ है क्योंकि जिनबालक निश्चलानन्दसे सुन्दर है—अविनाशी आनन्दसे

निखिलमनोहरदिव्यध्वनिं प्राप्स्यतो जिनार्भकस्य चञ्चलानन्दसुन्दरेण सकलभुवनान्यध पातयता समाश्रितानां विषप्रदेन कठोरगर्जनेन जलदेनोपमया ।

§ ५६) पीठबन्धः सरस्वत्या लक्ष्म्या हसितविभ्रमः ।
कीर्तिवल्ल्या विकासोऽस्य मुग्धस्मितमयोऽभवत् ॥३४॥

§ ५७) मुखवारिजं विलोलं नयनभ्रमरं स्फुटाधरोष्ठदलम् ।
दन्तांशुकेसराढ्यं स्मितमकरन्दं दधे कुमारस्य ॥३५॥

§ ५८) एतन्मुखं वारिजं च कृतराजविद्वेषतया लक्ष्मीनिवासभूतया च समानम्, अथापीदं वदनं मन्मनवचनामृतविशोभितं रत्नभूषणैरलंकारमाश्रितं सुमनोजनसेवितं च, नलिनं पुनर्विष-

नन्देन स्थायिहर्षेण सुन्दरो मनोहरस्तस्य, सकलभुवनस्य निखिलसंसारस्योद्धरणे समुन्नयने दक्षः समर्थस्तस्य, समाश्रितानां शरणागतानाम् अमृतप्रदस्य पीयूषप्रदस्य पक्षे मोक्षप्रदस्य, निखिलानां समग्रजीवानां मनोहरश्चेतोहरो यो दिव्यध्वनिस्तं प्राप्स्यतो जिनार्भकस्य जिनशिशोः चञ्चलानन्देन भङ्गुरहर्षेण सुन्दरस्तस्य पक्षे विद्युदानन्दसुन्दरस्य 'तडित्सौदामिनी विद्युच्चञ्चला चपला अपि' इत्यमरः । सकलभुवनानि निखिलसंसारान् पक्षे निखिलजलानि अधः पातयता नीचैः पातयता पक्षे वर्षयता, समाश्रितानां शरणागतानां विषप्रदेन गरलप्रदेन पक्षे जलप्रदेन, कठोरगर्जनेन कठिनध्वनिसहितेन जलदेन मेघेन उपमया कृतं व्यर्थमित्यर्थः । रूपकश्लेषव्यतिरेकाः । § ५६) पीठबन्ध इति—सरस्वत्या वाग्देव्याः पीठबन्धः आसनप्राप्तिः, लक्ष्म्याः श्रिया हसितविभ्रमो हासविलासः, कीर्तिवल्ल्या यशोलताया विकासः अस्य जिनबालकस्य मुग्धस्मितमयः मन्दहसितरूपः अभवत् । रूपकालंकारः ॥३४॥ § ५७) मुखेति—कुमारस्य जिनबालकस्य विलोलं चञ्चलं नयनभ्रमरं लोचनषट्पदम्, स्फुटाधरोष्ठदलं विकसिताधरोष्ठपत्रम्, दन्तांशुकेसराढ्यं रदनरश्मिकिञ्जल्कसहितं मुखवारिजं मुखकमलं स्मितमकरन्दं मन्दहसितमरन्दं दधे बभार । रूपकालंकारः ॥३५॥ § ५८) एतन्मुखमिति—एतन्मुखं जिनराजवदनं वारिजं च कमलं च कृतो विहितो राज्ञा चन्द्रेण सह विद्वेषो वैरं येन तस्य भावस्तया, लक्ष्म्याः पद्मालयाया निवासभूततया निवासस्थानत्वेन च यद्यपि समानं तुल्यं, अथापि तुल्यत्वेऽपि इदं वदनं मुखं मन्मनवचनमव्यक्तवचनमेवामृतं पीयूषं तेन विशोभितं समलंकृतं, रत्नभूषणैर्मणिमयालंकारैः अलंकारं शोभाम् आश्रितं प्राप्तं सुमनोजनसेवितं च विद्वज्जनसेवितं च नलिनं पुनः कमलं तु, विषजातेन

मनोहर है और मेघ चञ्चलानन्द—क्षणभंगुर आनन्दसे सुन्दर है (पक्षमें बिजलीके आनन्दसे सुन्दर है), जिनबालक सकलभुवन—समस्त संसारके उद्धार करनेमें दक्ष है और मेघ सकलभुवन—समस्त संसारको नीचे गिरानेवाला है (पक्षमें समस्त जलको नीचे वर्षानेवाला है), जिनबालक शरणागत मनुष्योंके लिए अमृत प्रदान करनेवाला है—(पक्षमें मोक्ष प्रदान करनेवाला है) और मेघ आश्रित मनुष्योंको विष प्रदान करनेवाला है (पक्षमें जल प्रदान करनेवाला है) जिनबालक सबके मनको हरण करनेवाली दिव्यध्वनिको प्राप्त होगा और मेघ कठोर गर्जना करनेवाला है। § ५६) पीठबन्ध—सरस्वतीका आसनग्रहण, लक्ष्मीका हास-वैभव और कीर्तिरूपी लताका विकास इस जिनबालककी सुन्दर मुसकानरूप था ॥३४॥ § ५७) मुखेति—जो अत्यन्त चंचल था, नेत्ररूपी भ्रमरोंसे सहित था, अधरोष्ठरूपी खिली हुई कलिकाओंसे युक्त था, तथा दाँतोंकी किरणरूपी केशरसे सहित था ऐसा जिनबालकका मुखकमल मन्द मुसकानरूपी मकरन्दको धारण कर रहा था ॥३५॥ § ५८) एतन्मुखमिति—जिनबालकका मुख और कमल राजा—चन्द्रमाके साथ विद्वेष होने तथा लक्ष्मीके निवास होनेसे समान था तो भी यह मुख मन्मन वचनरूपी अमृतसे सुशोभित था, रत्नोंके आभूषणोंसे अलंकृत था और विद्वज्जनोंसे सेवित था किन्तु कमल विषजात—

जातविख्यात स्वर्णस्फूर्तिमधिगतमपि सर्वतोमुखसपदाढ्यमपि बहूर्मिकाहसकर्णिकादिकलितमपि अपाढ्यगुणान्नालमिति शब्दमधिगम्य मार्गणाना पञ्चतामेवाशासमानस्य विषमायुधस्य मार्गणतामुपगत मधुपसेवाकरमिति न दृष्टान्ततामर्हति । किं बहुना, सध्यारागरञ्जितनभःस्थले बालचन्द्रचन्द्रिकापूर इव, पद्मरागघटितप्रदेशे स्फटिकमणिप्रभाप्रसर इव, समुल्लसत्पल्लवतल्लजे प्रत्यग्रकुसुमसुषमाप्रसर इव विकचकोकनदे राजहसरुचिरिव, कुङ्कुमलिप्तप्रदेशे मलयजरस इव, तस्य जिनबालस्याधरबिम्बे स्मितच्छविराविरास ।

गरलसमूहेन विख्यात प्रसिद्धं पक्षे विषात् जलात् जात विषजातं जलजमिति नाम्ना विख्यात, स्वर्णस्य कनकस्य स्फूर्तिर्भूयिष्ठता ताम् अधिगतमपि पक्षे सुष्ठु अर्णं स्वर्णं सुजल तस्मिन् स्फूर्ति विकासम् अधिगतमपि प्राप्तमपि, सर्वतोमुखो समन्तादायकरो या सपद् सपत्तिस्तया आढ्यमपि सहितमपि पक्षे सर्वतोमुख जलमेव सपद् तया आढ्य सहितमपि, ऊर्मिका अङ्गुलीयक, हसक. पादकटक कर्णिका कर्णाभरण, बहव प्रभूता ये ऊर्मिकाहसककर्णिकादयस्तै कलित सहितमपि पक्षे बहूर्मिका बहुतरङ्गा हसका हसपक्षिण कर्णिका कमलदण्डस्तदादिभि कलितमपि, अपगता दूरीभूता आढ्यस्य धनिकस्य गुणा यस्मात्तस्मात् धनिकगुणरहितत्वादिति भाव , नाल एतत् सर्वं मम अल न पर्याप्त न इति शब्द पक्षे नाल कमलदण्डमिति शब्दम् अधिगम्य, मार्गणाना गत्यादीना पञ्चतामेव मृत्युमेव पक्षे मार्गणाना बाणाना पञ्चतामेव पञ्चसख्यामेव आशासमानस्य वाञ्छत विषमायुधस्य तीक्ष्णशस्त्रशालिन. पक्षे मदनस्य मार्गणता याचकता पक्षे बाणताम् उपगत प्राप्त, मधुपसेवाकर मद्यपायिसेवाकर पक्षे भ्रमरसेवाकरम्, इति हेतो दृष्टान्तता तुलना नार्हति । उभयोस्तुलना नास्तीत्यर्थ. । बहुना प्रभूतकल्पनेन किम् । सध्यारागेण सध्यालालिम्ना रञ्जितं रक्तवर्णीकृत यत् नभ.स्थल तस्मिन् बालचन्द्रस्य द्वितीयामृगाङ्कस्य चन्द्रिकापूर इव कौमुदीप्रवाह इव, पद्मरागघटितप्रदेशे लोहितमणिखचितस्थाने स्फटिकमणीनामर्कोपलाना प्रभाप्रसर इव कान्तिविस्तार इव, समुल्लसत्पल्लवतल्लजे शुम्भच्छ्रेष्ठकिसलये प्रत्यग्रकुसुमस्य नूतनपुष्पस्य सुषमाप्रसर इव परमशोभाविस्तार इव, विकचकोकनदे विकसितरक्तारविन्दे राजहसरुचिरिव सितच्छदकान्तिरिव, कुङ्कुमलिप्तप्रदेशे काश्मीरलिप्तस्थाने मलयजरस चन्दनरस इव तस्य जिनबालस्य जिनार्भकस्य अधरबिम्बे अधरो बिम्बमिव अधरबिम्ब तस्मिन् स्मितच्छविर्मन्दहसितकान्ति

विषसमूहसे विख्यात था (पक्षमे 'जलजात' इस नामसे प्रसिद्ध था) तथा स्वर्ण—सुवर्णकी वृद्धिको प्राप्त होकर भी, (पक्षमे सुन्दर जलमे विकासको प्राप्त होकर भी) सर्वतोमुखसपदा—सब ओरसे आयवाली सम्पत्ति (पक्षमें जलरूप संपदा) से सहित होकर भी एवं बहुत सी अँगूठियों, पादकटकों और कर्णाभरणोंसे युक्त होकर भी (पक्षमें बहुत सी लहरों, हसपक्षियों और डण्ठल आदिसे युक्त होकर भी) धनाढ्य पुरुषके गुणोंसे रहित होनेके कारण हमारे पास 'नालम्'—अल न—पर्याप्त नहीं हैं इस शब्दको प्राप्तकर उस कामदेवके सामने याचकपनेको प्राप्त होता है (पक्षमे बाणपनेको प्राप्त होता है) जो कि सदा मार्गणाओंके विनाशकी ही इच्छा करता रहता है (पक्षमे बाणोंकी पाँच संख्याको चाहता है) तथा विषम—तीक्ष्ण शस्त्रोंको धारण करनेवाला है (पक्षमें विषमायुध नामसे सहित है) और मधुप—मद्यपायी मनुष्योंकी सेवा करनेवाला है (पक्षमे भ्रमरोंकी सेवा करनेवाला है) इस तरह कमल, मुखकी दृष्टान्तताको प्राप्त करनेके योग्य नहीं है । अधिक क्या कहा जावे, संध्याकी लालीसे रँगे हुए आकाशमें जिस प्रकार द्वितीयाके चन्द्रमाकी चाँदनीका पूर सुशोभित होता है, पद्मरागमणियोंसे खचित प्रदेशमे जिस प्रकार स्फटिकमणियोंकी प्रभाका समूह सुशोभित होता है, लहलहाते हुए श्रेष्ठ पल्लवपर जिस प्रकार नवीन फूलकी सुषमाका समूह सुशोभित होता है, लाल कमलपर जिस प्रकार राजहसकी कान्ति शोभा पाती है और केशरसे लिप्त प्रदेशपर जिस प्रकार चन्दनका रस सुशोभित होता

§ ६२) इय खलु मेदिनी मामकीनपादस्पर्शादपापा निष्पङ्का च जायेत चेत्तदा कथं सारसस्यसमृद्धिर्भवितेति मत्वा किल मत्पितुर्नाभिमहीकान्तस्य पत्नीत्वेन मम जननी मेदिनीति बुद्धयेव मणिभूमिषु भूपतिसुतश्चङ्क्रमणं जानुभ्यां चमदकुरुत।

§ ६३) स्खलत्पदं बभौ तस्य वचनं गमनं तथा।
आद्यं पुनर्मनोहारि परं नूपुरराजितम् ॥३८॥

§ ६४) प्रवेपमानाग्रपदं नृपात्मजश्चचाल देवीजनदत्तहस्तः।
नखप्रभाभिर्मणिकुट्टिमाङ्गणे तन्वन्प्रसूनास्तरणस्य शङ्काम् ॥३९॥

§ ६५) धूलिकेलीं ततानाप नालीकनिभलोचनः।
सुराधीशसुतैः साकं धरापालस्य नन्दनः ॥४०॥

नागवल्लीदलस्य रस सक्त सलग्न । हेतूत्प्रेक्षा । ॥३७॥ § ६२) इयमिति—इयं खलु मेदिनी पृथिवी, चेत् यदि मामकीनपादस्पर्शात् मदीयचरणस्पर्शात् अपापा पापरहिता पक्षे अपगता आपो जलानि यस्यास्तथाभूता निर्जला निष्पङ्का पापरहिता पक्षे कर्दमरहिता च जायेत स्यात् तदा सारसस्यसमृद्धि. श्रेष्ठधान्यसमृद्धि पक्षे सारसस्य कमलस्य समृद्धि कथं भविता इति मत्वा किल, मत्पितु मज्जनकस्य नाभिमहीकान्तस्य नाभिराजस्य पत्नीत्वेन मेदिनी भूमि मम जननी माता, इति बुद्धयेव धियेव भूपतिसुतो राजपुत्रो जिनार्भकं जानुभ्यां जङ्घनुभ्यां मणिभूमिषु रत्नमयमेदिनीषु चङ्क्रमणं सचारं चमदकुरुत चमत्कुरुते स्म पादाभ्यां जनन्या स्पर्शोऽनुचित इति मत्वा स जानुभ्यां चङ्क्रमणं चकारेति भाव । § ६३) स्खलदिति—तस्य जिनबालस्य स्खलन्ति त्रुटयदक्षराणि पदानि सुबन्ततिङन्तरूपाणि यस्मिंस्तत् वचनं, तथा स्खलती पदे चरणे यस्मिंस्तत् गमनं बभौ शुशुभे । स्खलत्पदत्वेन तस्य वचनं गमनं च समानमिति भाव । पुन किंतु आद्यं वचनमित्यर्थ मनोहारि चेतोहारि परं गमनमित्यर्थ नूपुरराजितं मञ्जीरकशोभितं बभूवेति विशेष । श्लेषव्यतिरेकोपमा ॥३८॥ § ६४) प्रवेपमानेति—देवीजनेन सुरीसमूहेन दत्तो हस्तो यस्मै तथाभूतो नृपात्मजो राजपुत्र मणिकुट्टिमाङ्गणे रत्नखचिताजिरे नखप्रभाभि नखरकान्तिभि प्रसूनास्तरणस्य पुष्पशय्याया शङ्का सशीतिं तन्वन् विस्तारयन् प्रवेपमानाग्रपदं प्रकम्पमानाग्रचरणं यथा स्यात्तथा चचाल चलति स्म । उपजातिवृत्तम् ॥३९॥ § ६५) धूलीति—नालीकनिभे कमलतुल्ये लोचने यस्य तथाभूत अयं धरापालस्य नाभिराजस्य नन्दनोऽर्भक 'नन्दना दारकोऽर्भक' इत्यमर । सुराधीशसुतै सुरेन्द्रकुमारै साकं सह धूलिकेलां पांसुक्रीडां ततान

लगा हुआ था ॥३७॥ § ६२) इयमिति—यदि कहीं यह पृथिवी मेरे चरणोंके स्पर्शसे अपापा—पापरहित (पक्षमें जलरहित) और निष्पंका—पापशून्य (पक्षमे कर्दमरहित) हो गयी तो फिर सार-सस्य-समृद्धि—श्रेष्ठ धान्यकी उत्पत्ति तथा सारसस्य—कमलकी समृद्धि कैसे होगी ? ऐसा मानकर, अथवा यह पृथिवी मेरे पिता नाभिराजकी पत्नी होनेसे मेरी माता है अत. माताका चरणोंसे स्पर्श कैसा ? यह विचारकर ही मानो राजपुत्र–जिनबालक मणिमयभूमिमे घुटनोंके द्वारा सचार करता था। § ६३) स्खलदिति—जिसमे सुबन्त-तिङन्तरूप पद स्खलित हो रहे थे ऐसा उसका वचन तथा जिसमे पैर लडखडा रहे थे ऐसा उसका गमन, दोनों ही एक समान सुशोभित हो रहे थे परन्तु उनमें पहला अर्थात् वचन मनोहारी था और दूसरा अर्थात् गमन नूपुरोंसे सुशोभित था ॥३८॥ § ६४) प्रवेपमानेति—देवियोंके द्वारा जिसे हाथका सहारा दिया गया था ऐसा राजपुत्र, नखोंकी कान्तिसे रत्नखचित आँगनमे पुष्पशय्याकी शंकाको विस्तृत करता हुआ चल रहा था। चलते समय उसका आगेका पैर कम्पायमान रहता था ॥३९॥ § ६५) धूलीति—कमलके समान नेत्रोंवाला

§ ६६) एव बाललीलामतिक्रान्तः कौमारवयसि सुरकुमारैः परिवृत सहोत्पन्नमतिश्रुतावधिलोचन सकलविद्यापारावारपारदृश्वा प्रत्यक्षीकृतसकलवाङ्मयः, पृथ्वीपतितनय कदाचिद् व्यालोलमुक्ताकलापः कलितमधुरालापः सगीतप्रसङ्गेन, कदाचिदाबद्धकविपुण्डरीकमण्डलः काव्यप्रबन्धरचनेन, कदाचित्काव्यसागरनौकासकाशछन्दोविचितिचारुतरलक्षणप्रसरादिपरीक्षणेन, कदाचित्कवितावितानालकारायमाणोपमाद्यलकारविवेचनेन, कदाचिदक्षरच्युतकमात्राच्युतकबिन्दुच्युतकचित्रबन्धविशेषादिशब्दालकारकल्पनया, कदाचिन्मन्थानभूधरमथ्यमानपय पारावारगर्भसमाविर्भूतलहरीपरम्परागर्वसर्वंकषवचनप्रपञ्चः वावदूकै सम वादकलया, कदाचिन्मधुरतरवाद्यगोष्ठीभि, कदाचिद्वीणागोष्ठीभि , कदाचिच्छुकशिखण्डिहससारसक्रौञ्चकरिकलभमल्लाद्यनेकाकारविक्रतामर-

---

विस्तारयामास ॥४०॥ § ६६) एवमिति—एव पूर्वोक्तप्रकारेण बाललीला बालक्रीडाम् अतिक्रान्तोऽतीत्य गत कौमारवयसि कौमारावस्थाया सुरकुमारै देवबालकै परिवृत परिवेष्टित , सहोत्पन्नानि मतिश्रुतावधय एव लोचनानि यस्य स तथाभूत जन्मप्रभृत्येव मत्यादिज्ञानत्रयसपन्न., सकलविद्या एव पारावारः सागरस्तस्य पारदृश्वा पार दृष्टवान्, प्रत्यक्षीकृत सम्यगभ्यस्त सकलवाङ्मय यस्य तथाभूत., पृथ्वीपतितनयो राजपुत्र कदाचित् जातुचित् व्यालोलश्चपलो मुक्ताकलापो मुक्ताहारो यस्य तथाभूत , कलितमधुरालाप कृतमधुरशब्द सगीतप्रसङ्गेन सगीतावसरेण, कदाचित् आबद्धमायोजितं कविपुण्डरीकाणा कविश्रेष्ठाना मण्डल परिषद् येन तथाभूत सन् काव्यप्रबन्धरचनेन कवितासदर्भरचनेन, कदाचित् काव्यसागरे काव्यमहार्णवे नौकासकाशा तरणितुल्या या छन्दोविचिति छन्द समूहस्तस्या चारुतराणि श्रेष्ठतमानि यानि लक्षणप्रसरादीनि तेषा परीक्षणेन, कदाचित् कविताविातानस्य कविताचन्द्रोपकस्य कवितासमूहस्य वा अलकारायमाणा ये उपमाद्यलकारास्तेषा विवेचनेन व्याख्यानेन, कदाचित् अक्षरच्युतक, मात्राच्युतक बिन्दुच्युतक चित्रबन्धविशेष पद्मबन्ध हारबन्धप्रभृतिचित्रबन्धविशेष , तदादिशब्दालकाराणा कल्पना तया, कदाचित् मन्थानभूधरेण मन्दराचलेन मथ्यमानो य पय पारावार क्षीरसागरस्तस्य गर्भे मध्ये समाविर्भूता प्रकटिता या लहरीपरम्परा तरङ्गसततिस्तस्या गर्वस्य दर्पस्य सर्वंकषः सर्वघाती वचनप्रपञ्चो वाक्समूहो यस्य तथाभूत सन् वावदूकै वाचाटै. सम वादकलया शास्त्रार्थकलया, कदाचित् मधुरतरवाद्यगोष्ठीभि अतिमधुरवादित्रपरिषद्भि, कदाचित् वीणागोष्ठीभि विपञ्चीपरिषद्भि , कदाचित् शुक कीरः, शिखण्डी मयूर , हसो मराल , सारसो गोनर्द , क्रौञ्च पक्षिविशेष , करिकलभो हस्तिशावक , मल्लो बाहुयुद्धादिनिपुण एतदाद्यनेकाकारै विक्रता

यह राजपुत्र देवकुमारोंके साथ धूलिक्रीड़ाको विस्तृत करने लगा ॥४०॥ § ६६) एवमिति— इस प्रकार बाललीलाको व्यतीतकर भगवान्ने कुमार अवस्थामें प्रवेश किया। उस समय वे देवकुमारोंसे घिरे रहते थे, साथ ही उत्पन्न हुए मति श्रुत और अवधिज्ञान रूपी नेत्रोंसे सहित थे, समस्त विद्यारूपी सागरके पारदर्शी थे, उन्होंने समस्त वाङ्मयको प्रत्यक्ष जान लिया था, जिनका मोतियोंका हार हिल रहा था तथा जो मधुर आलाप भर रहे थे ऐसे राजपुत्र वृषभ कभी सगीतके प्रसगसे, कभी श्रेष्ठ कवियोंकी परिषद् बुलाकर काव्यप्रबन्धकी रचनासे, कभी काव्यरूपी सागरमें नौकाके समान छन्दःसमूहके अत्यन्त सुन्दर लक्षणों आदिकी परीक्षाके द्वारा, कभी कवितारूपी चँदोवाके अलकारोंके समान आचरण करनेवाले उपमा आदि अलकारोंके विवेचनसे, कभी अक्षरच्युतक मात्राच्युतक बिन्दुच्युतक तथा नानाप्रकारके चित्र बन्ध आदि शब्दालकारोंकी कल्पनासे, कभी मन्दरगिरिके द्वारा मथे जानेवाले क्षीरसागरके भीतर उठती हुई लहरोंकी संततिके गर्वको समूल नष्ट करनेवाले वचनोंके विस्तारसे युक्त होते हुए बहुत बोलनेवाले विद्वानोंके साथ वादकलासे, कभी अत्यन्त मधुर बाजोंकी गोष्ठियोंसे, कभी वीणाकी गोष्ठियोंसे, कभी तोता मयूर हस सारस क्रौंच पक्षी, हाथियोंके बच्चे तथा

कुमारपरिपाठनपटुनटनमृदुकूजितक्रेङ्काराहरोहणायोधनादिनानाविधविनोदै, कदाचित्समागतप्रकृतिजनरञ्जनवचनगुम्फेन, कदाचिदमराधिपप्रहितसुरतरुप्रसूनविरचितसुरभिदामाम्बरभूषणः[1] सुरभिलेपनो मेघकुमारकल्पितधारागृहेषु जलकेलिविनोदेन, कदाचिन्नन्दनवनसमाने क्रीडावने पवनामरमन्दमन्दवलनविरजीकृते वनक्रीडाव्यापारेण कालं निनाय।

इत्यर्हद्दासकृतौ पुरुदेवचम्पूप्रबन्धे पञ्चमः स्तबकः ॥५॥

कृतविक्रिया येऽमरकुमारा देवबालकास्तेषां क्रमेण परिपाठनं पटुनटनं, मृदुकूजितं, क्रेङ्कारो ध्वनिविशेषः आरोहणं समधिष्ठानं, आयोधनं युद्धकरणं तदादयः तत्प्रभृतयो ये नानाविधविनोदा विविधकेलयस्तैः, कदाचित् समागतप्रकृतिजनानां समायातप्रजाजनानां रञ्जनो हर्षकरो यो वचनगुम्फो वचनसरणिस्तेन, कदाचित् अमराधिपेन सुरेन्द्रेण प्रहितानि प्रेषितानि सुरतरुप्रसूनविरचितसुरभिदामानि अम्बराणि भूषणानि च यस्य तथाभूतः, सुरभिलेपनः सुगन्धिविलेपनयुक्तः, मेघकुमारकल्पितधारागृहेषु स्तनितकुमारामररचितजलयन्त्रागारेषु जलकेलिविनोदेन जलक्रीडाविनोदेन, कदाचित् नन्दनवनसमाने नन्दनवनतुल्ये पवनामराणां वायुकुमारदेवानां मन्दमन्दवलनेन मन्दमन्दसंचारेण विरजीकृते निर्धूलीकृते क्रीडावने केल्युपवने वनक्रीडाव्यापारेण वनकेलिविनोदेन कालं निनाय व्यपगमयामास।

इत्यर्हद्दासकृतेः पुरुदेवचम्पूप्रबन्धस्य 'वासन्ती'समाख्यायां
संस्कृतव्याख्यायां पञ्चमः स्तबकः ॥५॥

मल्ल आदिके अनेक आकारोंसे विक्रिया करनेवाले देवकुमारोंको क्रमसे पढ़ाना, अच्छी तरह नचाना, कोमल शब्द कराना, क्रेंकारध्वनि कराना, सवारी करना तथा कुश्ती लडाना आदि नानाप्रकारके विनोदोंसे, कभी आये हुए प्रजाजनोंको प्रसन्न करनेवाले वचनोंकी रचनासे, कभी इन्द्रके द्वारा भेजे हुए कल्पवृक्षके फूलोंसे निर्मित सुगन्धित मालाओं, वस्त्रों और आभूषणोंको धारण कर तथा सुगन्धित लेप लगाकर मेघकुमार देवोंके द्वारा निर्मित फव्वारोंके गृहोंमें जलक्रीडाके विनोदसे और कभी पवनकुमार देवोंके मन्द-मन्द चलनेसे धूलिरहित किये हुए नन्दनवन तुल्य क्रीडावनमे वनक्रीडाके व्यापारसे समयको व्यतीत करते थे।

इस प्रकार अर्हद्दासकी कृति पुरुदेवचम्पू प्रबन्धमें
पाँचवाँ स्तबक समाप्त हुआ ॥५॥

---

१ दामामलाम्बरभूषण क०।

षष्ठः स्तवकः

§ १) क्षोणीकल्पतरोर्जिनस्य तदनु प्राज्यप्रभावश्रिय
छाया काञ्चनमञ्जुला विदधतो नाकाधिपानन्दिनीम् ।
तारुण्यामलमञ्जरी सुमहिता हृष्यत्त्रिलोकीजन-
प्रोद्यन्नेत्रपरम्परामधुकरश्रेणी सदातर्पयत् ॥१॥

§ २) तदानीं निःस्वेदनिर्मलक्षीरगौरक्षतजसमचतुरस्रसंस्थानवज्रवृषभनाराचसंहननसुरूपसुरभिस्वस्तिकनन्द्यावर्ताद्यष्टोत्तरशतलक्षणमसूरिकाप्रभृतिनवशतव्यञ्जनरञ्जिततप्ततपनीयनिकाशवर्णसंपूर्णपरमौदारिकशरीरस्य शस्त्रपाषाणातपवर्षविषाग्निकाष्ठकण्टकत्रिदोषसंभवामयजरादि-

---

§ १) क्षोणीति—तदनु कौमारकालानन्तरम् प्राज्यप्रभावश्रियः प्राज्यप्रभावा प्रकृष्टप्रभावोपेता श्रीः शोभा यस्य तथाभूतस्य, नाकाधिपं सुरेन्द्रमानन्दयतीत्येवंशीला तां काञ्चनमिव सुवर्णमिव मञ्जुला मनोहरा तां छायां कान्तिं विदधतः कुर्वतो विशेषेण दधतो वा पक्षे मञ्जुला मनोहरा कांचन कामपि छायामनातपं विदधतो जिनस्य जिनेन्द्रस्य क्षोणीकल्पतरोः पृथिवीकल्पवृक्षस्य अतिशयेन महिता सुमहिता सुशोभिता पक्षे सुमैः पुष्पैर्हिता सुमहिता तारुण्यमेव यौवनमेव अमलमञ्जरी निर्मलपुष्पसंततिः हृष्यन्तः परमानन्दमनुभवन्तो ये त्रिलोकीजनास्त्रिभुवनपुरुषास्तेषां प्रोद्यन्ती प्रोच्छलन्ती या नेत्रपरम्परा नयनपङ्क्तिरेव मधुकरश्रेणी भ्रमररिञ्छोली तां सदा सर्वदा अतर्पयत् तृप्तामकरोत् । रूपकालंकारः । शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः ॥१॥ § २) तदानीमिति—तदानीं तारुण्यावसरे तस्य पूर्वोक्तस्य नाभिराजकुमारस्य भगवतो वृषभदेवस्य सौन्दर्यमहिमानं लावण्यप्रभावम् आकलयितुं वर्णयितुं को वा कविः ईष्टे समर्थोऽस्ति न कोऽपीत्यर्थः । अथ नाभिराजकुमारं विशेषयितुमाह—निःस्वेदेति—निःस्वेदं स्वेदरहितं, निर्मलं मलमूत्रादिबाधाविरहितं, क्षीरवद्गौरं धवलं क्षतजं रुधिरं यस्य तथाभूतं, समचतुरस्रं संस्थानं यस्य तथाभूतं, वज्रवृषभनाराचं संहननं यस्य तथाभूतं, सुष्ठु रूपं यस्य तथाभूतं सुरूपं, सुरभि सुगन्धि, स्वस्तिकनन्द्यावर्तादीनि यानि अष्टोत्तरशतलक्षणानि तैर्लक्षितं सहितं, मसूरिकाप्रभृतीनि यानि नवशतव्यञ्जनानि चिह्नानि तैर्विराजितं शोभितं, तप्ततपनीयनिकाशः कनत्काञ्चनसंनिभः वर्णो रूपं यस्य तथाभूतं च परमौदारिकशरीरं यस्य तस्य, शस्त्रेति—शस्त्रं च पाषाणश्च

---

§ १) क्षोणीति—तदनु—तदनन्तर जिनकी प्रभावरूपी लक्ष्मी अत्यन्त श्रेष्ठ थी, तथा जो इन्द्रको आनन्दित करनेवाली सुवर्णके समान सुन्दर कान्ति (पक्षमे किसी अनिर्वचनीय सुन्दर छाया) को धारण कर रहे थे ऐसे जिनराजरूपी कल्पवृक्षकी अत्यन्त सुशोभित (पक्षमे फूलोंसे हित करनेवाली) यौवनरूपी निर्मल मञ्जरीने हर्षित होते हुए त्रिलोकवर्ती मनुष्योंकी विकसित नेत्रपङ्क्तिरूपी भ्रमर पङ्क्तिको सदा सन्तुष्ट किया था ॥१॥ § २) तदानीमिति—उस समय जिनका परमौदारिक शरीर पसीनासे रहित था, मलमूत्रसे शून्य था, दूधके समान सफेद रुधिरसे युक्त था, समचतुरस्रसंस्थान तथा वज्रवृषभनाराचसंहननसे सहित था, अत्यन्त सुन्दर था, सुगन्धित था, स्वस्तिक, नन्द्यावर्त आदि एकसौ आठ लक्षणोंसे सहित था, मसूरिका आदि नौ सौ व्यञ्जनोंसे सुशोभित था तथा तपाये हुए सुवर्णके समान वर्णसे परिपूर्ण था, जो शस्त्र पाषाण घाम वर्षा विष अग्नि काष्ठ कंटक वातादि तीन दोषोंसे

बाधाविदूरस्य मृदुमधुरगम्भीरोदारप्रियहितमितवचनसारस्य चतुरुत्तराशीतिपूर्वलक्षितानपवर्त्यायुषः सौन्दर्यविजितमारस्य तस्य नाभिराजकुमारस्य सौन्दर्यमहिमानमाकलयितुं को वा कविरोष्टे। अथापि तदीयभक्तिरेव मां मुखरयति वनप्रियमिव वासन्तलक्ष्मी ।

§ ३) तरुषु स्थितमेव पुष्पवृन्दं फलहेतुर्भुवने चिराय दृष्टम् ।
सुरभूजसुमं जिनस्य मूर्ध्नि स्थितमासीत्सफलं विचित्रमेतत् ॥२॥

§ ४) सत्यक्तुं सकलङ्कतां मुखतया जातं निशानायकं
दृष्ट्वा तद्वनिता निशा जिनपतेः केशात्मनाजायत ।
दोषाख्यामपहातुमित्युपगताशङ्का विशङ्कामहे
नोचेत्तत्र कथं नवोत्पलरुचिर्हन्तोत्तमश्रीरपि ॥३॥

आतपश्च वर्षं च, विषं च अग्निश्च काष्ठश्च कण्टकश्च त्रिदोषसमवामयाश्च वातादिजनितरोगाश्च, जरा वार्धकं चेत्येषां द्वन्द्वस्तदादिबाधाविदूरस्य तत्प्रभृतिकष्टदूरवर्तिनः, मृदु मधुरं गम्भीरम् उदारं प्रियं हितं मितं च यद् वचनं तेन सारस्य श्रेष्ठस्य, चतुरुत्तराशीतिपूर्वलक्षेण उपलक्षितं सहितम् अनपवर्त्यमकालमरणरहितम् आयुर्यस्य तस्य, चतुरशीतिलक्षवर्षाणामेकं पूर्वाङ्गं भवति, चतुरशीतिलक्षपूर्वाङ्गानामेकं पूर्वं भवति, इत्थं चतुरशीतिलक्षपूर्वप्रमितं वृषभदेवस्यायुरासीत, सौन्दर्येण लावण्येन विजितो मारो मदनो येन तस्य । अथापि सौन्दर्याकलनसामर्थ्याभावेऽपि वनप्रियं कोकिलं वासन्तलक्ष्मीरिव वसन्तर्तुसम्बन्धिश्रीरिव तदीयभक्तिरेव मां कविं मुखरयति वाचालयति । उपमा । § ३) तरुष्विति—तरुषु वृक्षेषु स्थितमेव पुष्पवृन्दं कुसुमसमूहः भुवने जगति चिराय चिरकालेन फलहेतुः फलकारणं दृष्टं समवलोकितं किं तु सुरभूजसुमं कल्पानोकहकुसुमं जिनस्य वृषभदेवस्य मूर्ध्नि शिरसि स्थितमेव विद्यमानं सदेव सफलं फलसहितं पक्षे सार्थकम् आसीत्, एतद् विचित्रमाश्चर्यकरमित्यर्थः ॥२॥ § ४) सत्यक्तुमिति—सकलङ्कतां सपापतां पक्षे सलाञ्छनतां सत्यक्तुं मोक्तुं मुखतया वक्त्ररूपेण जातं समुत्पन्नं निशानायकं चन्द्रमसं दृष्ट्वा विलोक्य तस्य निशानायकस्य वनिता स्त्री तद्वनिता निशा रजनी दोषाख्यां दोषाणामवगुणानामाख्या पक्षे दोषा रात्रिरिति आख्या नाम ताम् अपहातुं त्यक्तुं जिनपतेर्जिनेन्द्रस्य केशात्मना कचरूपेण अजायत समुदपद्यत, इतीत्थम् उपगता प्राप्ता शङ्का येषां तथाभूता वयं विशङ्कामहे संशयं कुर्मः । नो चेत् एवं न स्यात् यदि तर्हि तत्र नवोत्पलरुचिः प्रत्यग्रविकसितनीलकमलकान्तिः उत्तमश्रीरपि उद्गतं तमः तिमिरं उत्तमं तस्य श्रीः शोभापि कथं आसीत् निशायामेव

उत्पन्न होनेवाले रोग, तथा बुढापा आदिकी बाधाओंसे बहुत दूर थे, कोमल मधुर गम्भीर उदारप्रिय हित तथा परिमित वचनोंसे श्रेष्ठ थे, चौरासी लाख पूर्वकी जिनकी अनपवर्त्य—बीचमें न छिदनेवाली आयु थी और सौन्दर्यसे जिन्होंने कामदेवको जीत लिया था ऐसे उन वृषभदेव सम्बन्धी सुन्दरताकी महिमाको आँकनेके लिए कौन कवि समर्थ है ? अर्थात् कोई नहीं । फिर भी जिस तरह वसन्तकी लक्ष्मी कोयलको मुखरित करती है उसी प्रकार उनकी भक्ति ही मुझे मुखरित करती है । § ३) तरुष्विति—संसारमें चिरकालसे फूलोंका समूह वृक्षोंपर स्थित रहता हुआ ही फलका हेतु देखा गया है परन्तु कल्पवृक्षका फूल जिनराजके मस्तकपर स्थित होता हुआ सफल—फलसहित (पक्षमें सार्थक) हुआ था यह विचित्र बात है ॥२॥ § ४) सत्यक्तुमिति—अपनी सकलंकता—पापसहित वृत्तिको (पक्षमें लाछनसहित वृत्तिको) छोड़नेके लिए निशानायक चन्द्रमाको भगवान् के मुखरूपसे उत्पन्न हुआ देख उसकी स्त्री रात्रि अपनी दोषाख्या—दोषपूर्ण नामको (पक्षमें 'दोषा' इस नामको) छोडनेके लिए जिनराजके केशरूपसे उत्पन्न हो गयी थी इस प्रकारकी आशंका रखते हुए हम शंका करते हैं क्योंकि यदि ऐसा न होता तो वहाँ रात्रिमें खिलनेवाले नवीन उत्पलोंकी

§ ५) तस्य किल वदनं प्रौढशोभनक्षत्राधिपं सकलमहीभृन्मस्तकसेव्यमानपादं निखिलदिगन्तेषु व्यवस्थापितकरं महितशोभनवसुधाधिपतिविख्यातं सर्वधितभुवनपतिं राजानमेव निजप्रौढिम्ना न जिगाय, वनवासिनं कलितमहातपस्स्थितिं सदापरागरुचिशोभितं कुशेशयनिकरं जिगायेति किं चित्रम् ।

नीलोत्पलकान्तिः समुद्गततिमिरश्रीश्च युज्यते पक्षे नीलोत्पलतुल्यकान्तिः उत्कृष्टलक्ष्मीश्च । हन्तेति पादपूर्तौ । श्लेषोत्प्रेक्षा । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥३॥ § ५) तस्येति—तस्य किल भगवतो वदनं मुखं जिनप्रौढिम्ना स्वकीयसामर्थ्येन राजानमेव चन्द्रमसमेव पक्षे नृपतिमेव न जिगाय जितवान् किंतु कुशेशयनिकरं कमलसमूहं पक्षे तपस्विसमूहमपि जिगायेति किं चित्रम् । किमाश्चर्यम् । न किमपीत्यर्थः । अथ राजानं वर्णयितुमाह—प्रौढशोभनक्षत्राधिपं प्रौढा शोभा येषां तानि प्रौढशोभानि प्रकृष्टशोभासहितानि यानि नक्षत्राणि भानि तेषामधिपस्तं चन्द्रमसं पक्षे प्रौढं शोभनं येषां ते प्रौढशोभनाः ते च ते क्षत्राश्चेति प्रौढशोभनक्षत्रास्तेषामधिपस्तं नृपतिम्, सकलमहीभृन्मस्तकसेव्यमानपादं—सकलमहीभृतां निखिलपर्वतानां मस्तकैः शिखरैः सेव्यमानाः पादाः किरणा यस्य तं चन्द्रमसं पक्षे सकलमहीभृतां निखिलनरेन्द्राणां मस्तकैर्मूर्धभिः सेव्यमानौ पादौ चरणौ यस्य तं नृपतिम्, निखिलदिगन्तेषु सर्वकाष्ठान्तेषु व्यवस्थापितकरं व्यवस्थापिताः कराः किरणा यस्य तं चन्द्रमसं पक्षे व्यवस्थापिताः कराः राजस्वानि यस्य तं नृपतिं, महितशोभनवसुधाधिपतिविख्यातं महिता प्रशस्ता शोभा यस्याः स्तथाभूता या नवसुधा प्रत्यग्रपीयूषं तस्या अधिपतिः स्वामीति विख्यातस्तं चन्द्रमसं पक्षे महितं शोभनं यस्याः स्तथाभूता या वसुधा पृथिवी तस्या अधिपतिः स्वामीति विख्यातस्तम्, सर्वधितभुवनपतिं सर्वधितः समुद्वेलितो भुवनपतिः समुद्रो येन तथाभूतस्तं चन्द्रमसं पक्षे सर्वधिताः समुल्लासिता भुवनपतयो राजानो येन तं नृपतिम् । अथ कुशेशयनिकरं विशेषयितुमाह—कुशेशयनिकरं कुशे जले शेरत इति कुशेशयानि कमलानि तेषां निकरः समूहः पक्षे कुशे दर्भे शेरत इति कुशेशयास्तपस्विनस्तेषां निकरः समूहः । उभयोः सादृश्यं यथा—वनवासिनं कमलनिकरपक्षे जलवासिनं तपस्विनिकरपक्षे काननवासिनम्, कलितमहातपस्स्थितिं—कलिता कृता महातपे महाघर्मे स्थितिर्येन तं कमलनिकरं पक्षे कलिता कृता महातपसि प्रचण्डतपश्चरणे स्थितिर्येन तं तपस्विनिकरं, सदापरागरुचिशोभितं—सदा सर्वदा परागस्य रजसो रुच्या "कान्त्या शोभितस्तं कमलनिकरं पक्षे सदा सर्वदा अपरागे वीतरागे रुचिः श्रद्धा तया शोभितस्तं तपस्विनिकरम् । श्लेषोपमा ।

कान्ति और उत्पन्न हुए तम—अन्धकारकी शोभा भी कैसे रहती (पक्षमें नीलोत्पल तुल्य कान्ति और उत्कृष्ट अन्धकारकी शोभा कैसे रहती ?) ॥३॥ § ५) तस्येति—उन वृषभ जिनेन्द्रके मुखने अपनी सामर्थ्यसे प्रौढशोभ-नक्षत्राधिप—अत्यन्तशोभायमान नक्षत्रोंके स्वामी, समस्त पर्वतोंके शिखरोंसे सेवनीय किरणोंसे युक्त, समस्त दिशाओंके अन्तमें व्यवस्थापितकर—किरणोंसे सहित, अतिशयसुशोभितनूतनसुधाके स्वामी रूपसे विख्यात तथा भुवनपति—समुद्रको समुद्वेलित करनेवाले चन्द्रमाको ही (पक्षमें प्रौढशोभन-क्षत्राधिप—अतिशय शोभायमान क्षत्रियोंके स्वामी, समस्त राजाओंके सेवनीय चरणोंसे युक्त, समस्त दिशाओंके अन्त तक टैक्स (कर) स्थापित करनेवाले, अतिशयसुशोभित वसुधाके स्वामीरूपसे विख्यात तथा राजाओंको समुल्लासित करनेवाले नृपतिको ही) नहीं जीता था किन्तु वनवासी—जलमें निवास करनेवाले, महातप—तीक्ष्ण घामसे स्थित रहनेवाले तथा सदा परागकी कान्तिसे सुशोभित कुशेशयनिकर—कमलोंके समूहको भी (पक्षमें अरण्यवासी, महान् तपमें स्थिति रखनेवाले और सदा वीतरागकी श्रद्धासे सुशोभित तपस्वियोंके समूहको भी) जीत लिया था इसमें क्या आश्चर्य है ?

§ ६) भुवनत्रितयातिशायिशोभा स्फुटरेखात्रितयेन दर्शयन्तम् ।
गलमस्य निरीक्ष्य हन्त शङ्खस्त्रपया वारिनिधौ ममज्ज नूनम् ॥४॥

§ ७) तस्य वक्ष स्थल विद्मो लक्ष्म्या निर्वृतिमन्दिरम् ।
यत्र मुक्ता विराजन्ते सदा शुद्धाः स्फुरद्रुचः ॥५॥

§ ८) परमहिमयुत तदीयवक्षःस्थलमिच्छन्ति हिमालयं कवीन्द्राः ।
तदुचितमुरुहारकान्तिगङ्गा यदपतदत्र परीतपद्मरागा ॥६॥

§ ९) मिथ्यात्वातपतप्तो धर्मगजो नाभिसरसि निममज्ज ।
अस्यान्यथा कथ स्यान्मदधारा रोमराजिकपटेन ॥७॥

---

§ ६) भुवनेति—स्फुटरेखात्रितयेन प्रकटितरेखात्रयव्याजेन भुवनत्रयस्य लोकत्रयस्यातिशायिनी या शोभा ता त्रिजगज्जित्वरशोभा दर्शयन्त प्रकटयन्तम् अस्य भगवतो गल कण्ठ निरीक्ष्य शङ्ख कम्बुः नून निश्चयेन त्रपया लज्जया वारिनिधौ सागरे ममज्ज मग्नोऽभूत् । उत्प्रेक्षालकार· । शङ्खातिशाय्यस्य गलोऽभूदिति भाव ॥४॥ § ७) तस्येति—तस्य भगवतो वक्ष स्थलमुर स्थल लक्ष्म्या श्रिय निर्वृतिमन्दिर संतोषस्थान पक्षे निर्वाणस्थान विद्मो जानीमहे यत्र वक्ष स्थले सदा सतत शुद्धा निर्दोषा पक्षे कर्मकलङ्क-रहिता स्फुरद्रुच. स्फुरन्ती देदीप्यमाना रुक् कान्तिर्यासा तथाभूता पक्षे स्फुरन्ती रुक् श्रद्धा येषा ते तथाभूता मुक्ता मुक्ताफलानि पक्षे सिद्धपरमेष्ठिन. विराजन्ते शोभन्ते । श्लेषोपमा ॥५॥ § ८) परमेति—कवीन्द्रा कविराजा तदीयवक्ष स्थल हिमालय हिमस्यालयस्त हिमाचलं अथ च हि निश्चयेन मालय माया लक्ष्म्या आलय भवनम् । उभयो सादृश्य यथा—परमहिमयुत वक्ष स्थलपक्षे परश्चासौ महिमा चेति परमहिमा तेन युत सहित श्रेष्ठमाहात्म्यसहित हिमालयपक्षे परमहिमेन श्रेष्ठतुषारेण युत सहितम् । यद् इच्छन्ति समभिलषन्ति तदुचित योग्यम् अस्तीति शेष । यद् यस्मात् कारणात् अत्र वक्ष स्थले परीत-पद्मरागा परीतो व्याप्त पद्माना कमलाना रागो यस्या तथाभूता पक्षे परीता मध्ये मध्ये गुम्फिता पद्मरागा लोहितमणयो यस्या तथाभूता, उरुहारकान्तिगङ्गा उरुहारकान्तिरेव विशालहारदीप्तिरेव गङ्गा मन्दाकिनी, पक्षे उरुहारकान्तिर्गङ्गेव इति उरुहारकान्तिगङ्गा अपतत् पतिता । श्लेषरूपकोपमा । पुष्पिताग्रा छन्द ॥६॥ § ९) मिथ्यात्वेति—मिथ्यात्वमेवातपो घर्मस्तेन तप्तो व्याकुलीकृतो धर्मगजो धर्मकरी अस्य भगवतो नाभिसरसि नाभिजलाशये निममज्ज निमग्नोऽभूत् । अन्यथा इतरथा चेत्तर्हि रोमराजिकपटेन लोमलेखा-

---

§ ६) भुवनेति—साफ-साफ दिखनेवाली तीन रेखाओंके द्वारा तीन लोकसे बढ़कर शोभाको दिखलाते हुए इनके कण्ठको देखकर शंख लज्जासे ही मानो समुद्रमे डूब गया था ॥४॥ § ७) तस्येति—हम उनके वक्ष स्थलको लक्ष्मीका संतोषभवन अथवा मुक्तिभवन मानते हैं क्योंकि उसमे सदा शुद्ध—निर्दोष (पक्षमें कर्मकालिमासे रहित) और स्फुरद्रुच्—देदीप्यमान कान्तिसे युक्त (पक्षमे समीचीन श्रद्धासे युक्त) मुक्ता—मोती (पक्षमे सिद्धपरमेष्ठी) सुशोभित रहते हैं ॥५॥ § ८) परमेति—बड़े-बड़े कविराज उनके वक्ष स्थलको हिमालय मानते हैं यह उचित है क्योंकि वक्ष स्थल भी हिमालयके समान परमहिमयुत—उत्कृष्ट हिमसे युक्त (पक्षमे उत्कृष्ट महिमासे सहित) था और उसपर परीतपद्मरागा—कमलोकी लालीसे व्याप्त विशाल हारकी कान्तिरूपी गंगा नदी पड़ती थी (पक्षमें पद्मराग मणियोसे युक्त, गंगानदीके समान विशाल हारकी कान्ति पड रही थी) ॥६॥ § ९) मिथ्यात्वेति—मिथ्यात्वरूपी घामसे संतप्त हुआ धर्मरूपी हाथी इनके नाभिरूपी सरोवरमें गोता लगा गया

§ १०) तस्य किल करसरोरुहनिरन्तरनिर्मितदानप्रभावेण स्वर्णत्वमुपगता दीना नदीना बभूवुरिति युज्यते, ते पुनर्लक्ष्मीकुमाराः कथमासन्निति सविस्मयमास्महे ।

§ ११) आस्थितो दशभवाञ्जिनचन्द्रो निष्कलङ्कविदितो भवितेति ।
नूनमिन्दुरकरोद्दशभावास्तस्य हस्तनखरूपमुपेत्य ॥८॥

§ १२) सदाखण्डलाभिख्यमाक्रान्तनेत्रं वलग्नं वलघ्नं वरस्यास्य विद्मः ।
स्फुरद्रत्नकाञ्चीसुवज्रायुधाढ्यं स्वराजत्वजुष्टं घनश्रीसमेतम् ॥९॥

व्याजेन मदधारा दानसततिः कथं स्यात् । रूपकोत्प्रेक्षा । आर्या ॥७॥ § १०) तस्येति—तस्य किल भगवतः करसरोरुहाभ्यां पाणिपद्माभ्यां निरन्तरं सततं निर्मितं रचितं यद्दानं त्यागस्तस्य प्रभावेण दानसलिलमहिम्नेति यावत् स्वर्णत्वं काञ्चनत्वं पक्षे जलत्वम् उपगताः प्राप्ता दीना निर्धना जना न दीना इति नदीना न निर्धनाः सधना इति यावत् बभूवुः अयं च नदीनामिना नदीनाः सागरा बभूवुरिति च युज्यते युक्तं प्रतिभाति, किंतु ते लक्ष्मीकुमाराः लक्ष्मीपुत्राः कथम् आसन् बभूवुः इति सविस्मयं साश्चर्यम् आस्महे तिष्ठाम । श्लेषः ॥ § ११) आस्थित इति—दशभवान् महाबलप्रभृतीन् दशभवान् आस्थितः प्राप्तो जिनचन्द्रो जिनेन्द्रचन्द्रिर निष्कलङ्क इति विदितो निष्कलङ्कविदितः कर्मकालिमारहितो भविता भविष्यतीति हेतो नूनं निश्चयेन इन्दुश्चन्द्रः तस्य भगवतो हस्तनखरूपं हस्तयोर्नखानि हस्तनखानि तेषां रूपं समाकारम् उपेत्य प्राप्य दशभावान् दशपर्यायान् अकरोत् विदधे । उत्प्रेक्षा ॥८॥ § १२) सदेति—वरस्य श्रेष्ठस्य अस्य भगवतो वलग्नं मध्यं 'मध्यमं चावलग्नं' चेत्यमरः । भागुरिमतेऽवेत्यस्याकारलोपः वलघ्नं वलारिम् इन्द्रमित्यर्थः विद्मो जानीमः । अथोभयोः सादृश्यमाह—तत्र मध्यमपक्षे सदाखण्डलाभिख्यं सती प्रशस्ता अखण्डला खण्डरहिता अभिख्या शोभा यस्य तत्, इन्द्रपक्षे सदा सर्वदा आखण्डल इति अभिख्या नाम यस्य स तम्, 'अभिख्या नामशोभयोः' इत्यमरः । आक्रान्तनेत्रं आक्रान्तं परिवृतं नेत्रं वस्त्रं यस्य तत् तथाभूतं मध्यं, आक्रान्तानि धृतानि नेत्राणि सहस्रनयनानि यस्य स तं इन्द्रम्, स्फुरद्रत्नकाञ्चीसुवज्रायुधाढ्यं स्फुरद्रत्नकाञ्चीव देदीप्यमानमणिखचितमेखलेव सुवज्रायुधं शक्रशरासनं तेन आढ्यं सहितं, इन्द्रं, मध्यपक्षे स्फुरद्रत्नकाञ्ची सुवज्रायुधमिव इति स्फुरद्रत्नकाञ्चीसुवज्रायुधं तेन आढ्यं सहितं, स्वराजत्वजुष्टं स्वस्य राजत्वं राज्यमिति स्वराजत्वं तेन जुष्टं सेवितं मध्यं, पक्षे राजा शक्रः तस्य भावो राजत्वं शक्रत्वमित्यर्थः स्वस्य राजत्वं, स्वराजत्वं तेन जुष्टं सेवितं

था यदि ऐसा न होता तो रोमराजिके छलसे इसकी मदधारा कैसे होती ? ॥७॥ § १०) तस्येति—उनके हस्तकमलोंके द्वारा निरन्तर निर्मित दानके प्रभावसे स्वर्णत्व—सुवर्णपनेको प्राप्त कर दीन मनुष्य नदीन—धनवान् हो गये थे (पक्षमें दानजलके द्वारा स्वर्ण—उत्तम जलको पाकर नदीन—समुद्र बन गये थे) यह तो हो सकता है किन्तु वे लक्ष्मीपुत्र कैसे हो गये यह विचारकर हम आश्चर्य सहित हैं । § ११) आस्थित इति—महाबल आदि दशभवोंको प्राप्त हुआ जिनेन्द्ररूपी चन्द्रमा निष्कलक हो जावेगा यह विचारकर ही मानो चन्द्रमाने उनके हाथोंके नखोंका रूप प्राप्त कर दश भाव—दश पर्याय धारण की थी ॥८॥ § १२) सदेति—हम श्रेष्ठ जिनेन्द्र भगवान्के मध्य भागको इन्द्र समझते हैं क्योंकि जिस प्रकार इन्द्र सदाखण्डलाभिख्य—निरन्तर आखण्डल इस नामसे सहित है उसी प्रकार मध्य भाग भी सदाखण्डलाभिख्य—प्रशस्त तथा अखण्ड शोभासे युक्त था, जिस प्रकार इन्द्र आक्रान्तनेत्र—एक हजार नेत्रोंसे सहित है उसी प्रकार मध्यभाग भी आक्रान्तनेत्र—वस्त्रसे सहित था, जिस प्रकार इन्द्र देदीप्यमान मणिमेखलाके समान उत्तम इन्द्रधनुषसे सहित है उसी प्रकार मध्यभाग भी इन्द्रधनुषकी तुलना करनेवाली देदीप्यमान मणिमेखलासे सहित था, जिस प्रकार इन्द्र स्वराजत्वजुष्ट—अपने इन्द्रपनेसे सहित है उसी प्रकार मध्यभाग

§ १३) तस्य खलु सक्थिदण्डः करभ-कलभकर-कदलिखण्डाश्च परस्परं समानाः परंतु ते कान्तिकल्लोलैरुरवः अयं तु मुख्यवर्णदैर्घ्यवशादूरुरिति विशेषः।

§ १४) पादाङ्गुष्ठनखांशुराजिकलितं जङ्घायुगं श्रीपते-
हेमस्तम्भशिखानिखातरजतश्रीशृङ्खलाशालिनीम् ।
दोलां हन्त जहास हर्षविहरत्सद्धर्मलक्ष्म्यास्तथा
कन्दर्पद्विरदस्य बद्धनिगलामालानलीलां दधे ॥१०॥

§ १५) इष्टार्थदानाद्वर्णाच्च सुरागौ चरणौ विभोः।
अथापि पल्लवं चित्रमधश्चक्रतुरुज्ज्वलम् ॥११॥

'राजा प्रभौ नृपे चन्द्रे यक्षे क्षत्रियशक्रयोः' इति विश्वः। घनश्रीसमेतं विपुलशोभासहितं मध्यं, विपुललक्ष्मीसहितम् इन्द्रम्, अथवा घनस्य स्ववाहनस्य श्रिया शोभया समेतं, इन्द्रस्य मेघवाहनत्वं प्रसिद्धम्। श्लेषोपमा। भुजङ्गप्रयातं छन्दः ॥९॥ § १३) तस्येति—तस्य खलु भगवतः सक्थिदण्डः ऊरुदण्डः 'सक्थि क्लीबे पुमानूरुः' इत्यमरः। करभः मणिबन्धादारभ्य कनिष्ठिकापर्यन्तं करस्य बहिर्भागः 'मणिबन्धादाकनिष्ठं करस्य करभो बहिः' इत्यमरः। कलभकरः करिशावकशुण्डा, कदलिखण्डो मोचाप्रकाण्डः, एषां द्वन्द्वे करभ-कलभकर-कदलिखण्डाश्च परस्परं मिथो समानाः सदृशाः परंतु ते करभादयः कान्तिकल्लोलैः दीप्तिसततिभिः उरवः श्रेष्ठाः अयं तु सक्थिदण्डस्तु मुख्यवर्णः आद्याक्षरस्तस्य दैर्घ्यं गुरुत्वं तस्य वशात् ऊरुः इति विशेषः। § १४) पादाङ्गुष्ठेति—पादाङ्गुष्ठयोर्नखानां नखराणां या अंशुराजिः किरणसततिस्तया कलितं सहितं श्रीपतेर्भगवतः जङ्घायुगं प्रसृतायुगलं हर्षेण मोदेन विहरन्त्याः क्रीडन्त्याः या सद्धर्मलक्ष्मीः प्रशस्तधर्मश्रीस्तस्याः हेमस्तम्भयोः सुवर्णस्तम्भयोः शिखयोरग्रभागयोर्निखाता संलग्ना या रजतश्रीशृङ्खला रौप्यश्रीहिञ्जीरिका तया शालिनी शोभिनी दोलां दोलनवल्लीं 'झूला' इति प्रसिद्धां जहास हसति स्म हन्त हर्षे, तथा उपमान्तरमाह—कन्दर्पद्विरदस्य कामकरिणः बद्धो निगलो यस्यां तथाभूतां बद्धनिगडाम् आलानलीलां बन्धस्तम्भशोभां दधे। उपमा। शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥१०॥ १५) § इष्टार्थेति--विभोः भगवतः चरणौ इष्टार्थदानाद् वाञ्छितार्थप्रदानात् वर्णाच्च रूपाच्च सुरागौ सुराणां देवानामगौ वृक्षौ सुरागौ कल्पवृक्षावित्यर्थः पक्षे सुष्ठु रागो लालिमा ययोस्तौ। अथापि तथापि उज्ज्वलं शोभमानं पल्लवं किसलयम् अधश्चक्रतुर्नीचैश्चक्रतुरिति चित्रं वृक्षाणां पल्लवा उपरि भवन्ति अत्र तु वैपरीत्यं ततश्चित्रमाश्चर्यकरमिति भावः, अथ च चरणौ सुरक्तौ पल्लवं किसलयं अधश्चक्रतुः तिरश्चक्रतुः रक्तत्वातिशयादिति भावः। अथ च पदोश्चरणयोर्लवस्तलरूपांश इति पल्लवस्तं पत्तलमित्यर्थः अधश्चक्रतु-

---

भी स्वराजत्वजुष्ट—अपने आपकी शोभासे सहित था और जिस प्रकार इन्द्र घनश्रीसमेत—बहुत भारी लक्ष्मी अथवा अपने वाहनभूत मेघोंकी शोभासे सहित होता है उसी प्रकार मध्यभाग भी घनश्रीसमेत—बहुत भारी शोभासे सहित था ॥९॥ § १३) तस्येति—निश्चयसे उनका सक्थिदण्ड, करभ, हाथीके बालककी सूँड़ और केलाका प्रकाण्ड परस्पर समान थे—एक सदृश चढाव-उतारको लिये हुए थे परन्तु वे सब कान्तिकी परम्परासे उरु—श्रेष्ठ थे और सक्थिदण्ड प्रथम अक्षरकी दीर्घताके कारण ऊरु था यह विशेषता थी। § १४) पादांगुष्ठेति—पैरोंके अंगूठों सम्बन्धी नखोंकी किरणपङ्क्तिसे युक्त भगवान्‌की जघाओंका युगल, हर्षसे क्रीड़ा करती हुई समीचीन धर्मरूपी लक्ष्मीके उस झूलाकी हँसी कर रहा था जो कि सुवर्णमय खम्भोंके अग्रभागमे बँधी हुई चाँदीकी साकलसे सुशोभित हो रहा था। अथवा कामदेवरूपी हाथीके उस बन्धस्तम्भकी शोभाको धारण कर रहा था जिसमे बेडी बँधी हुई थी ॥१०॥ § १५) इष्टार्थेति—भगवान्‌के चरण, इष्ट अर्थके देनेसे तथा रूप-रंगसे सुराग थे—कल्पवृक्ष थे, लालवर्णके थे फिर भी आश्चर्य है कि उन्होंने पल्लवको

§ १६) तदनु नाभिराजनरपालस्तनयस्य यौवनारम्भमेव विजृम्भितं समीक्ष्य वीतरागस्य विवाहप्रारम्भो दुर्घटः। एष किल हठान्मर्यादातीत इव मत्तदन्तावलस्तपसे वनं प्रविशेत्। तथापि काललब्धिरस्य प्रतीहारी समागमिष्यति यावत्तावत्पर्यन्तं लोकानुरोधेन पवित्रचरित्रं कलत्रं परिणाययितुमुचितमिति संचिन्त्य समासाद्य च समीपं देवस्य ससान्त्वमेवमवोचत।

§ १७) त्रिभुवनपते! देव! श्रीमन्स्वभूरसि हेतव-
स्तव वयमिहोत्पत्तौ पूर्वक्ष्माधरवद्रवे।
इति दृढमथाप्यस्मद्वाणीं न लङ्घितुमर्हसि
त्रिदशविनुतो यस्मात्तस्माद्गुरूननु मन्यसे ॥१२॥

§ १८) मतिं विधेहि लोकस्य सर्जनं प्रति सम्प्रति।
तथाविधं त्वामालोक्य लोकोऽप्येवं प्रवर्तताम् ॥१३॥

र्नीचैश्चक्रतुः। श्लेषः ॥११॥ § १६) तदन्विति—तदनु तदनन्तरं नाभिराजनरपालः तनयस्य पुत्रस्य भगवतो वृषभदेवस्येत्यर्थः एवं पूर्वोक्तप्रकारेण विजृम्भितं वृद्धिंगतं यौवनारम्भं तारुण्यारम्भं समीक्ष्य विलोक्य वीतरागस्य रागरहितस्य विवाहप्रारम्भो दुर्घटो दुःशक्यः। एष किल भगवान् हठात् प्रसह्य मर्यादातीतो मत्तदन्तावल इव मत्तद्विरद इव तपसे तपस्यार्थं वनं प्रविशेत्। तथापि अस्य तपसः प्रतीहारी द्वारपालिका काललब्धिः यावत् समागमिष्यति तावत्पर्यन्तं, लोकानुरोधेन लोकानुग्रहनिवेदनेन पवित्रचरित्रं पवित्राचारं कलत्रं भार्यां परिणाययितुं विवाहयितुम् उचितं योग्यम्, इति संचिन्त्य देवस्य भगवतः समीपं पार्श्वं समासाद्य च एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण ससान्त्वं सान्त्वनासहितं यथा स्यात्तथा अवोचत् जगाद। § १७) त्रिभुवनेति—हे त्रिभुवनपते हे त्रिजगन्नाथ! हे देव! हे श्रीमन्! त्वं स्वभूः स्वेन भवतीति स्वभूः कारणान्तरनिरपेक्षः असि, तव भवतः इहास्मिन् लोके उत्पत्तौ जन्मधारणे वयं रवेः प्रभाकरस्योत्पत्तौ पूर्वक्ष्माधरवदुदयाचल इव हेतवः स्म, इति दृढं निश्चितम्। अथापि स्वस्य कारणान्तरनिरपेक्षत्वेऽपि यस्मात् कारणात् त्वं त्रिदशविनुतो देवनमस्कृतः तस्मात् गुरून् गुरुजनान् अनुमन्यसे सत्करोषि, ततः अस्मद्वाणीं मद्भारतीं लङ्घितुम् उल्लङ्घयितुं नार्हसि योग्यो नासि। हरिणीछन्दः ॥१२॥ § १८) मतिमिति—सम्प्रति साम्प्रतं लोकस्य जगतः सर्जनं सृष्टिं प्रति मतिं बुद्धिं विधेहि कुरु। त्वां तथाविधं लोकसर्जनोद्यतम् आलोक्य दृष्ट्वा लोकोऽपि अन्यजनोऽपि एवं प्रवर्तताम् प्रवृत्तिं

नीचे किया था (पक्षमें तिरस्कृत किया था) ॥११॥ § १६) तदन्विति—तदनन्तर राजा नाभिराजने पुत्रके इस तरह वृद्धिको प्राप्त हुए यौवनारम्भको देखकर विचार किया कि वीतरागका विवाह प्रारम्भ करना कठिन है। यह मर्यादाको लाँघनेवाले मत्त हाथीके समान हठपूर्वक तपके लिए वनमें प्रवेश कर सकते हैं। फिर भी इस तपकी प्रतीहारीके समान काललब्धि जबतक आवेगी तबतकके लिए लोकोपकारके अनुरोधसे पवित्र चरित्रवाली स्त्रीका विवाह कराना उचित है। इस प्रकारका विचार कर वे भगवान्‌के पास पहुँचे और सान्त्वना पूर्वक इस प्रकारके वचन कहने लगे। § १७) त्रिभुवनेति—हे त्रिलोकीनाथ! हे देव! हे श्रीमन्! आप स्वयम्भू हैं आपकी यहाँ उत्पत्तिमें हम उसी तरह कारण हैं जिस तरह कि सूर्यकी उत्पत्तिमें पूर्वाचल कारण है यह निश्चित है। फिर भी आप मेरी वाणीका उल्लंघन करनेके योग्य नहीं हैं क्योंकि देवोंके द्वारा स्तुत होनेसे आप गुरुजनोंका सम्मान करते हैं ॥१२॥ § १८) मतिमिति—इस समय आप लोककी सृष्टिकी ओर बुद्धि लगाइए।

§ १९) ततः सुरनिकरवन्दितचरण ! त्रिभुवनरमण ! धर्मवल्लिकामतल्लिकाबीजपरम्परायमाण ! प्रजासततिसमुत्पत्तये काचन काञ्चनवल्लीसरूपा सौन्दर्यवैभवनिरस्तरतिमदाटोपा विधृतमणिकलापा त्रिजगति धन्या कन्या परिणेतुमर्हसीति ।

§ २०) अङ्गीचक्रे परमपुरुषः सस्मितस्तस्य वाचं

दाक्षिण्याद्वा पितृविषयकात् किं प्रजानुग्रहाद्वा ।

तस्या ज्ञात्वाभ्युपगममथो भूपतिर्वीतशङ्को

हर्षाच्चक्रे परिणयविधिं देवराजानुमत्या ॥१४॥

§ २१) तन्व्यौ कच्छमहाकच्छजाम्यौ सौम्ये पतिंवरे ।

यशस्वती-सुनन्दाख्ये स एनं पर्यणीनयत् ॥१५॥

§ २२) तदानीं खलु साकेतपुरलक्ष्मीविलासमणिमुकुरायमाणे नूतनविताननवितति विलम्बि

करोतु ॥१३॥§ १९) तत इति—ततः तस्मात्कारणात् सुरनिकरैर्देवसमूहैर्वन्दितौ नमस्कृतौ चरणौ यस्य तत्सबुद्धौ ! हे त्रिभुवनरमण हे त्रिलोकीनाथ ! प्रशस्ता वल्लिका वल्लिकामतल्लिका धर्म एव वल्लिकामतल्लिका धर्मवल्लिकामतल्लिका तस्या बीजपरम्परा बीजसंततिरिवाचरति तत्सबुद्धौ ! 'मतल्लिकामचर्चिका प्रकाण्डमुद्धतल्लजौ । प्रशस्तवाचकान्यमून्ययः शुभावहो विधिः ॥' इत्यमरः । प्रजासंततिसमुत्पत्तये संततिसमूहोत्पत्तये 'प्रजा स्यात्संततौ जने' इत्यमरः । काञ्चनवल्लीसरूपा स्वर्णलतासदृशी सौन्दर्यस्य लावण्यस्य वैभवेन निरस्तो दूरीकृतो रतेर्मदनमानिन्या मदाटोपो गर्वविस्तारो यया ता, विधृतो मणिकलापो मणिमेखला यया ता त्रिजगति त्रिभुवने धन्या भाग्यशालिनी काचन कन्या पतिंवरा परिणेतुं विवाहयितुम् अर्हसि योग्योऽसि । इतीत्थं नाभिराजो भगवन्तं जगाद । 'कलापः संहतौ बर्हे काञ्च्यां भूषणतूणयोः' इति मेदिनी । § २०) अङ्गीचक्र इति—परमपुरुषो भगवान् सस्मितः समन्दहसितः सन् पिता विषयो यस्य तस्मात् पितृविषयकात् दाक्षिण्यात् औदार्यात् किम् । प्रजानुग्रहाद्वा लोकोपकाराद्वा तस्य नाभिराजस्य वाचं वाणीम् अङ्गीचक्रे स्वीचकार । अथो तस्य भगवतः अभ्युपगमं स्वीकृतिं ज्ञात्वा भूपतिर्नाभिराजः देवराजस्य सौधर्मेन्द्रस्यानुमत्या संमत्या वीतशङ्को निःशङ्कः सन् हर्षात् प्रमोदात् परिणयविधिं विवाहविधिं चक्रे कृतवान् । मन्दाक्रान्ता छन्दः ॥१४॥ § २१) तन्व्याविति—स नाभिराजः तन्व्यौ कृशाङ्ग्यौ कच्छ-महाकच्छयोः जाम्यौ स्वसारौ 'जामी स्वसृकुलस्त्रियोः' इत्यमरः । सौम्ये सौम्याकारे यशस्वतीसुनन्दाख्ये तन्नाम्न्यौ पतिंवरे कन्ये एनं भगवन्तं पर्यणीनयत् विवाहयामास ॥१५॥ § २२) तदानीमिति—तदानीं विवाहविधिविधानावसरे खलु निश्चयेन साकेतपुरलक्ष्म्या अयोध्यानगरश्रिया विलासमणिमुकुरमिव विलासरत्नादर्शमिवाचरतीति तस्मिन्, नूतनविताना नवीनचन्द्रो-

---

आपको वैसा देख अन्य मनुष्य भी ऐसी प्रवृत्ति करें ॥१३॥ § १९) तत इति—इसलिए हे देव समूहके द्वारा पूजितचरण ! हे त्रिलोकीनाथ ! हे धर्मरूपी श्रेष्ठलताकी बीज सन्ततिके समान आचरण करनेवाले ! सन्तान समूहकी उत्पत्तिके लिए किस ऐसी कन्याको विवाहनेके योग्य हो जो सुवर्णलताके समान हो, अपने सौन्दर्यके विभवसे जिसने रतिके गर्वको नष्ट कर दिया हो, जो मणि मेखलाको धारण कर रही हो तथा अत्यन्त भाग्यशालिनी हो। § २०) अंगीचक्र इति—भगवान्‌ने मुसकुराकर नाभिराजके वचन स्वीकृत कर लिये सो क्या पिता सम्बन्धी सरलतासे स्वीकृत किये थे या प्रजाके अनुग्रहकी भावनासे । तदनन्तर उनकी स्वीकृतिको जानकर राजा नाभिराजने निःशक होकर बड़े हर्षसे इन्द्रकी अनुमति पूर्वक विवाहकी तैयारी की ॥१४॥ § २१) तन्व्याविति—राजा नाभिराजने कृशागी, सौम्यवर्ण कच्छ और महाकच्छकी बहिने यशस्वती और सुनन्दा नामकी कन्याओंके साथ भगवान् वृषभदेवका विवाह कराया ॥१५॥ § २२) तदानीमिति—उस समय जो अयोध्यानगरकी

प्रभाकर, काञ्चीकलापमिव सकलकलं निशाकर, पदपद्मिव सहसकं सरोवर, बाहुयुगलमिव परमकराञ्चित पयोनिधिं च विलोकयामास ॥

§ २८) वन्दिव्रातप्रकटितसुधासारधिक्कारगीतै-
वादित्राणा श्रुतिहतरवैः सा तत सप्रबुद्धा ।
उत्थाय द्रागमलशयनान्मङ्गलस्नानपूता
भेजे स्वप्नप्रकथितफल प्रष्टुकामा स्वकान्तम् ॥१९॥

§ २९) तमुपेत्य सुखासीना तत्र सा भद्रविष्टरे ।
कान्ताय स्वप्नमाला ता कथयामास सुन्दरी ॥२०॥

§ ३०) तदनु दिव्यामललोचनविलोकितस्तत्स्वप्नफलस्वभावोऽसौ देवः सुमेरुस्तनि । सुमेरु-

---

विकासकत्वेन कमलमित्र प्रभाकर सूर्यं, काञ्चीकलापमिव रशनासमूहमिव सकलकल कलकलशब्देन सहित पक्षे सकला कला यस्य त तथाभूत निशाकरं चन्द्रम्, पदपद्ममिव चरणकमलमिव सहसक सपादकटक पक्षे समराल, सरोवर कासार, बाहुयुगलमिव भुजयुगमिव परमकराञ्चित परमश्चासौ करश्चेति परमकर श्रेष्ठ-हस्तस्तेनाञ्चित पक्षे पराश्च ते मकराश्चेति परमकरास्तैरञ्चित सहितस्त पयोनिधिं सागर च विलोकयामास । श्लेषोपमा । § २८) वन्दिव्रातेति—तत. स्वप्नदर्शनानन्तर वन्दिव्रातेन स्तुतिपाठकसमूहेन प्रकटितानि सूच्चरितानि सुधासारधिक्काराणि पीयूषसारतिरस्कारकाणि यानि गीतानि तैं, वादित्राणा वाद्याना श्रुतिहत-रवै कर्णाहतशब्दै सप्रबुद्धा जागृता सा यशस्वती द्राग् झटिति अमलशयनात् निर्मलशय्याया उत्थाय मङ्गल-स्नानेन मङ्गलाभिषवेण पूता पवित्रा तथाभूता, स्वप्नै प्रकथित प्रकटित यत् फल तत् प्रष्टुकामा प्रष्टुमना सती स्वकान्त स्ववल्लभ भेजे प्राप । मन्दाक्रान्ता ॥१९॥ § २९) तमुपेत्येति—त स्वकान्तम् उपेत्य प्राप्य तत्र भद्रविष्टरे मङ्गलासने सुखासीना सुखोपविष्टा सा सुन्दरी यशस्वती कान्ताय ता स्वप्नमाला स्वप्न-परम्परा कथयामास समुवाच ॥२०॥ § ३०) तदन्विति—तदनु तदनन्तर दिव्यामलविलोचनेन अवधि-ज्ञाननेत्रेण विलोकितो दृष्टस्तत्स्वप्नाना फलस्वभावो येन तथाभूतोऽसौ देवो वृषभजिनेन्द्र इत्येव स्वप्नफलं

स्थितिसे शोभित (पक्षमे हारकी स्थितिसे शोभित) था तथा नितम्ब मण्डलके समान मेखलाञ्चित—कटनियोंसे सहित (पक्षमें करधनीसे सुशोभित) और समुन्नत—ऊँचा (पक्षमे उठा हुआ) था। तीसरे स्वप्नमे सूर्य देखा, वह सूर्य यशस्वतीके हाथके समान कमलसहचर—कमलोंका मित्र (पक्षमे क्रीडा कमलसे सहित) था। चौथे स्वप्नमें चन्द्रमा देखा, वह चन्द्रमा उसकी करधनीके समान सकलकल—कलकल शब्दसे सहित (पक्षमें सम्पूर्ण कलाओंसे युक्त) था। पाँचवें स्वप्नमे सरोवर देखा, वह सरोवर यशस्वतीके चरण-कमलके समान सहसक—तोडर अथवा नूपुरोंसे सहित (पक्षमे हसपक्षियोंसे युक्त) था और छठवें स्वप्नमे समुद्र देखा, वह समुद्र उसके बाहुयुगलके समान परमकराञ्चित—बड़े-बडे मगरोंसे सहित (पक्षमे श्रेष्ठ हाथोंसे युक्त) था। § २८) वन्दिव्रातेति—तदनन्तर वन्दीजनोंके द्वारा प्रकट किये हुए, अमृतसारका तिरस्कार करनेवाले—मधुरगीतों और कानोंमे टकरानेवाले बाजोंके शब्दोंसे जो जाग उठी थी, तथा निर्मल शय्यासे शीघ्र ही उठ-कर जो मागलिक स्नानसे पवित्र हुई थी ऐसी यशस्वती स्वप्नोंके द्वारा सूचित फलको पूछनेकी इच्छा रखती हुई अपने पतिके पास पहुँची ॥१९॥ § २९) तमुपेत्येति—उनके पास जाकर मगलमय आसनपर सुखसे बैठी हुई उस सुन्दरीने वह स्वप्नपरम्परा पतिके लिए कही ॥२०॥ § ३०) तदन्विति—तदनन्तर दिव्य निर्मलनेत्र—अवधिज्ञानके द्वारा जिन्होंने उन स्वप्नोंके फल और स्वभावको अच्छी तरह देख लिया था ऐसे भगवान् वृषभदेवने उन

दर्शनेन चक्रवर्तिन, कमलाक्षि ! कमलबन्धुना प्रतापिन, चन्द्रमुखि ! चन्द्रेण कान्तिसपन्नं, सरोजगन्धि ! सरोजदर्शनेन सरोरुहवासिन्या लक्ष्म्या समाक्रान्तवक्षःस्थलं, महीधरश्रोणि ! महीग्रसनेन जलधिमेखलाया वसुमत्याः परिपालयितार, सागरगभीरे ! सागरेण ससारसागरसंतरणनिपुण चरमाङ्गमिक्ष्वाकुकुलवर्धन पुत्रशताग्रज तनूज परिप्राप्स्यसीति स्वप्नफलमित्थमचीकथत् ।

§ ३१) इमा भर्तुर्वाचं कुवलयदलाक्षी श्रुतिपुटे
　　वितन्वाना वेगात्प्रमदभरमासाद्य ववृधे ।
यथा वार्धेर्वेला प्रविलसति राकाहिमकरे
　　यथा वा सप्राप्ते जलदसमये स्फारतटिनी ॥२१॥

§ ३२) तत सुबाहुप्रथितोऽहमिन्द्र सर्वार्थसिद्धिं समुपागतो य ।
विधेर्वशाद् व्याघ्रचर. सुरोऽयं समासदद्गर्भमरालकेश्याः ॥२२॥

स्वप्नसूचितफलम् इत्थमनेन प्रकारेण अचीकथत्, कथयामास । 'अचीकथत्' इति प्रयोगोऽपाणिनीय । इतीति कथ । तदेवोच्यते—सुमेरुरिव स्तनौ यस्यास्तत्सवुद्धौ हे सुमेरुस्तनि समुन्नतकुचे ! सुमेरुदर्शनेन सुरगिरिविलोकनेन चक्रवर्तिन सुदर्शनचक्रधर, कमलाक्षि ! शतदललोचने ! कमलबन्धुना सूर्येण प्रतापिन प्रतापवन्त, चन्द्रमुखी ! शशिवदने ! चन्द्रेण शशिना कान्तिसपन्नं दीप्तिमन्तम्, सरोजगन्धि ! कमलगन्धि ! सरोजदर्शनेन कमलावलोकनेन सरोरुहवासिन्या. कमलनिवासिन्या लक्ष्म्या श्रिया समाक्रान्तवक्ष स्थल समधिष्ठितोर स्थल, महीधरश्रोणि ! स्थूलनितम्बे ! महीग्रसनेन पृथिवीग्रसनेन जलधिमेखलाया सागररशनाया वसुमत्या पृथिव्या परिपालयितार रक्षक, सागरगभीरे जलधिवद्गाम्भीर्यशालिनि ! सागरेण समुद्रेण ससारसागरस्य भवार्णवस्य सतरणे निपुण दक्ष, चरमाङ्ग चरमशरीर तद्भवमोक्षगामिनमित्यर्थ, इक्ष्वाकुकुलवर्धन इक्ष्वाकुवशवृद्धिकर्तार पुत्राणा शत तस्याग्रज ज्येष्ठ तनूज पुत्र परिप्राप्स्यसि लप्स्यसे । इति ॥ § ३१) इमामिति—कुवलयदले इवाक्षिणी यस्या सा कुवलयदलाक्षी नीलोत्पलदललोचना सा यशस्वती भर्तु पत्यु इमा पूर्वोक्ता वाच वाणी श्रुतिपुटे कर्णपुटे वितन्वाना कुर्वाणा समाकर्णयन्तीत्यर्थः वेगाद् रभसात् प्रमदभर हर्षसमूहम् आसाद्य प्राप्य राकाहिमकरे पूर्णिमेन्दौ प्रविलसति प्रशोभमाने सति वार्धे सागरस्य वेला यथा तटोच्छ्वास इव वा अथवा जलदसमये वर्षाकाले सप्राप्ते सति स्फारतटिनी यथा महानदीव ववृधे वृद्धिमगमत् । उपमा । शिखरिणी छन्द ॥२१॥ § ३२) तत इति—ततस्तदनन्तर सुबाहु इति प्रथित प्रसिद्धो यो मतिवरमन्त्रिजीव अहमिन्द्र सन् सर्वार्थसिद्धिं तन्नामानुत्तरविमान समुपागत , भूतपूर्वो व्याघ्र इति व्याघ्रचर सोऽयम् अहमिन्द्रो विधेर्भाग्यस्य वशात् अरालकेश्या कुटिलकचाया यशस्वत्या गर्भं समासदत् प्राप । उपजातिछन्द

स्वप्नोंका फल इस प्रकार कहा—हे सुमेरुस्तनि ! सुमेरु पर्वतके देखनेसे चक्रवर्ती, हे कमललोचने ! सूर्यके देखनेसे प्रतापी, हे चन्द्रमुखी ! चन्द्रमाके देखनेसे कान्तिसम्पन्न, हे कमलगन्धि ! कमलके देखनेसे कमल निवासिनी लक्ष्मीके द्वारा आक्रान्त वक्षःस्थलवाले, हे स्थूलनितम्बे ! पृथिवीका ग्रसन देखनेसे समुद्रान्त पृथिवीके रक्षक, हे सागरके समान गाम्भीर्यसे सुशोभिते ! समुद्रके देखनेसे ससार सागरसे पार करनेमें निपुण, चरमशरीरी, इक्ष्वाकु वशको बढानेवाले तथा सौ पुत्रोंमें प्रथम पुत्रको प्राप्त करोगी । § ३१) इमामिति—कुवलयदलके समान नेत्रोंवाली यशस्वती, पतिके इन वचनोंको सुनकर वेगसे हर्षके समूहको प्राप्त होती हुई उस तरह वृद्धिको प्राप्त हुई जिस तरह कि पूर्ण चन्द्रमाके सुशोभित रहते हुए समुद्रकी वेला और वर्षाकालके आनेपर विशाल नदी वृद्धिको प्राप्त होती है ॥२१॥ § ३२) तत इति—तदनन्तर सुबाहु नामसे प्रसिद्ध जो जीव अहमिन्द्र होता हुआ सर्वार्थसिद्धि गया था वह व्याघ्रका जीव देव भाग्यवश कुटिल केशोंवाली यशस्वतीके गर्भको प्राप्त हुआ ॥२२॥

नानामणिगणघृणिपूरनिमग्नसुरनिकरे विविधवाद्यरवमुखरितदिगन्तरे परितः परिस्फुरन्मणिदीप प्रभाविसरे नवरत्नचयविनिर्मितविवाहमण्डपान्तरे विलसमानमङ्गलद्रव्यसगतशातकुम्भमयपूर्णकुम्भ लम्भितमणिवेदिकामध्ये ताभ्या कन्यामणिभ्या पुरुदेव चन्द्रिकाप्रसन्नताभ्या गगनतल इव निशाकरो विरराज ।

§ २३) सौन्दर्यस्य तरङ्गिण्यौ शृङ्गाराम्बुधिचन्द्रिके ।
तच्चित्तमत्तकरिणः शृङ्खले ते बभूवतु ॥१६॥

§ २४) तयोः सौन्दर्यसपत्ति स्वप्नबुद्धेरगोचरा ।
गाहते सा कथकार गिरा पूर कवीशिनाम् ॥१७॥

§ २५) ते खलु कन्यामतल्लिके गुरुतरभारारोपणमेव चाञ्चल्यनिवारणधुरीणमिति कौतु-

---

पकाना विततिषु पङ्क्तिषु विलम्बिनो ये नानामणिगणास्तेषा घृणय किरणास्तेषा पूरे निमग्ना बुडिता. सुरनिकरा देवसमूहा यस्मिस्तस्मिन्, विविधवाद्याना नानावादित्राणा रवेण शब्देन मुखरितानि दिगन्तराणि यस्मिस्तस्मिन्, परित समन्तात् परिस्फुरन् देदीप्यमानो मणिदीपाना प्रभाविसर. कान्तिसमूहो यस्मिस्तस्मिन्, नवरत्नाना चयेन समूहेन विनिर्मितो रचितो यो विवाहमण्डपस्तस्यान्तरे मध्ये विलसमानानि शोभमानानि यानि मङ्गलद्रव्याणि तै सगता सहिता ये शातकुम्भमया सुवर्णरचिता पूर्णकुम्भास्तैर्लम्भित प्रापित यत् मणिवेदिकाया मध्य तस्मिन्, ताभ्या पूर्वोक्ताभ्या कन्यामणिभ्या कन्यारत्नाभ्या पुरुदेवो वृषभनाथ गगनतले नभस्तले चन्द्रिका-प्रसन्नताभ्या ज्योत्स्ना-निर्मलताभ्या निशाकर इव चन्द्र इव विरराज शुशुभे । उपमा । § २३) सौदर्यस्येति—सौन्दर्यस्य लावण्यस्य तरङ्गिण्यौ नद्यौ, शृङ्गाराम्बुधे शृङ्गारसारस्य चन्द्रिके ज्योत्स्ने ते यशस्वतीसुनन्दे तच्चित्तमेव मत्तकरी तस्य जिनेन्द्रमानसमत्तमतङ्गजस्य शृङ्खले बन्धनहिञ्जीरके बभूवतु । रूपकम् ॥१६॥ § २४) तयोरिति—तयो यशस्वतीसुनन्दयो सौन्दर्यसपत्ति लावण्यसपद् स्वप्नबुद्धे अगोचरा अविषया आसीत् सा सौन्दर्यसपत्ति कवीशिना कवीन्द्राणा गिरा वाचा पूर कथकार केन प्रकारेण गाहते प्रविशति । वचनागोचरा तदीयसौन्दर्यसपत्तिरिति भाव ॥१७॥ § २५) ते खल्विति— ते पूर्वोक्ते खलु प्रशस्ते कन्ये कन्यामतल्लिके गुरुतरस्य दुर्भरतरस्य भारस्यारोपणमेव समर्पणमेव चाञ्चल्यस्य

लक्ष्मीके मणिमयविलास दर्पणके समान आचरण करता था, नवीन चँदोवोंके समूहमे लटकते हुए नाना मणिसमूहकी किरणोंके पूरमे जहाँ देवोंके समूह डूब गये थे, नाना प्रकारके बाजोंके शब्दसे जिसमे दिगन्तराल शब्दायमान हो रहे थे, और जहाँ चारों ओर चमकते हुए मणि दीपकोंकी प्रभाका समूह सुशोभित हो रहा था ऐसे नवरत्नोंके समूहसे निर्मित उस विवाह-मण्डपके बीचमे शोभायमान मगल द्रव्योंसे सहित सुवर्णमय पूर्ण कलशोंसे युक्त मणिमय वेदिकाके मध्यमे उन दोनो कन्याओंसे युक्त भगवान् पुरुदेव आकाशमे चाँदनी और निर्मलताके साथ चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहे थे। § २३) सौन्दर्यस्येति—सौन्दर्यकी नदी और शृगार सागरको समुद्वेलित करनेके लिए चाँदनी स्वरूप वे दोनों वृषभजिनेन्द्रके चित्तरूपी मत्त हाथीको बाँधनेके लिए साकल स्वरूप हुई थीं ॥१६॥ § २४) तयोरिति—उन दोनोंकी सौन्दर्यरूप सम्पदा स्वप्नबुद्धिका भी विषय नहीं थी अतः वह कविराजोंके वचनपूरमे कैसे अवगाहन कर सकती थी ? ॥१७॥ § २५) ते खल्विति – वे श्रेष्ठ कन्याएँ, 'बहुत भारी भारका लाद देना ही चपलताको दूर करनेमे निपुण है' इस

§ ३५) ददर्शान्तर्वत्नी धरणपतिरानन्दभरित
पयोगर्भां केकी सलिलधरराजीमिव नवाम् ।
यथा तेजोगर्भां सुरपतिदिश कोकतरुणो
यथा शुक्तिं मुक्ताफललतितगर्भामिव वणिक् ॥२४॥

§ ३६) ततश्च सा च यशस्वती देवी त्रिभुवनपतिना सह लीलाभवनोपवनकृतकाचलेष्विव विजयार्धहिमवदचलकूटेषु, निजगृहोद्यानक्रीडासरोवरेष्विव गङ्गाजललवणाम्बुधिवेलावनसरसीसलिलेषु, विलासमन्दिरपरिसरचन्दनवनलतानिकेतन इव पाटीरगिरिशिखरकोटीविलसितचन्दनवाटीसनिवेशे विहरमाणा, भिषक्परिषत्सपादितकल्याणामृताहारमिव षट्खण्डक्षेत्रमृत्तिका सेवमाना, सेवाभिज्ञवाराङ्गनाशृङ्गारसुधासिक्तसूक्तिसरणिमिव समरालापसमुद्भटवीरभटघटापटुतरकथा

यामास । श्लेष ॥२३॥ § ३५) ददर्शेति—आनन्दभर सजातो यस्य तथाभूत' प्रमोदयुत धरणिपतिर्वृषभजिनेन्द्र अन्तर्वत्नी गर्भिणी यशस्वती केकी मयूर पयोगर्भां जलमध्या नवा प्रत्यग्रा सलिलधरराजीमिव पयोधरपङ्क्तिमिव, कोकतरुणश्चक्रवाकयुवा तेजोगर्भां तेजोमध्या सुरपतिदिश यथा प्राचीमिव, वणिक् नैगम' 'नैगमो वाणिजो वणिक्' इत्यमर । मुक्ताफल मौक्तिक ललितगर्भे यस्यास्ता शुक्ति यथा ददर्श विलोकयामास । मालोपमा । शिखरिणीछन्द ॥२४॥ § ३६) ततश्चेति—ततश्च गर्भधारणानन्तर च सा यशस्वती देवी त्रिभुवनपतिना जगत्त्रयाधीशेन सह लीलाभवनस्य क्रीडाभवनस्योपवने विद्यमाना ये कृतकाचला कृत्रिमपर्वतास्तेष्विव विजयार्धश्च हिमवाश्चेति विजयार्धहिमवन्तौ तौ च तावचलौ चेति विजयार्धहिमवदचलौ तयो कूटेषु शिखरेषु, निजगृहोद्यानस्य स्वकीयसदनोपवनस्य क्रीडासरोवरेष्विव केलिकासारेष्विव गङ्गाजल च लवणाम्बुधिवेलावनसरसी सलिलानि च तेषु सुरस्रवन्तीसलिललवणोदतटोद्यानकासारनीरेषु, विलासमन्दिरस्य क्रीडागारस्य परिसरे समीपे यच्चन्दनवनं तस्य लतानिकेतने निकुञ्ज इव पाटीरगिरे मलयाचलस्य कोटयामग्रभागे विद्यमाना या चन्दनवाटी तस्या. सनिवेशे विहरमाणा विहार कुर्वाणा, भिषजा वैद्याना परिषदा समूहेन सपादितो रचितो य कल्याणामृताहार श्रेयस्करसुधाहारस्तमिव षट्खण्डक्षेत्रमृत्तिका भरतक्षेत्रमृत्स्ना सेवमाना भुञ्जाना, सेवाभिज्ञा सेवाज्ञाननिपुणा या वाराङ्गनास्तासा शृङ्गारसुधासिक्ता शृङ्गारपीयूषोक्षिता या सूक्तिसरणि. सुभाषितसततिस्तामिव समरालापे युद्धसम्बन्धिवाक्चारे समुद्भटा समुद्यता ये वीरभटास्तेषा घटा पङ्क्तिस्तस्या पटुतरकथा समर्थवार्ता शृण्वन्ती समाकर्णयन्ती,

---

को विस्तृत करता था ॥२३॥ § ३५) ददर्शेति—आनन्दके भारसे युक्त राजा वृषभदेव गर्भवती यशस्वतीको उस प्रकार देखते थे जिस प्रकार मयूर जल सहित नवीन मेघमालाको, तरुण चकवा सूर्यसे युक्त पूर्व दिशाको और वणिक् मुक्ताफल रूपी सुन्दर गर्भसे युक्त शुक्तिको देखता है ॥२४॥ § ३६) ततश्चेति—तदनन्तर वह यशस्वती रानी भगवान् वृषभदेवके साथ क्रीडाभवनके उपवन सम्बन्धी कृत्रिम पर्वतोंके समान विजयार्ध तथा हिमवान् पर्वतोंके शिखरोंपर, अपने घरके उद्यान सम्बन्धी क्रीडा-सरोवरोंके समान गंगाजल तथा लवण समुद्रके तटवन सम्बन्धी सरोवरोंके जलमें एवं क्रीडा-मन्दिरके समीप स्थित चन्दनवनके निकुंजके समान मलयाचल सम्बन्धी शिखरके अग्रभागपर सुशोभित चन्दनवनके बीच विहार करती हुई, वैद्य समूहके द्वारा निर्मापित कल्याणकारी अमृतमय आहारके समान षट्खण्ड-भरतक्षेत्रकी मिट्टीका सेवन करती हुई, सेवामें निपुण वारांगनाओंके शृंगाररूप सुधासे सिक्त सुभाषितोंके समूहके समान युद्ध सम्बन्धी वार्तालाप करनेमें दक्ष वीरयोद्धाओं-

§ ३३) एषा किल भुवनपतियोषा स्वस्या वचोविलासमिव सुरसार्थश्लाघ्य, मध्यदेशमिव दिने दिने प्रवर्धमान, उदरभागमिव वलिभङ्गविरहित कुचयुगलमिव मलिनमण्डलाग्रशोभा चक्रशोभा च प्रकटीकरिष्यमाण, शरीरसनिवेशमिव कोमलकलधौतरुचि, सुमित्रानन्दनमपि सुलक्ष्मणमपि भरताभिख्या प्राप्स्यमान गर्भं बभार ।

§ ३४) अन्तर्वत्न्या यशस्वत्या मुख राजेति मन्महे ।
बुभुजे वसुधा यस्मात्तारोल्लासं ततान यत् ।।२३।।

।।२२।। § ३३) एषेति—एषा किल भुवनपतेर्योषा भुवनपतियोषा जगदीश्वरजाया यशस्वती गर्भं दौहृदं बभार दधारेति कर्तृकर्मक्रियासबन्ध । अथ गर्भं विशेषयन्नाह—स्वस्या वचोविलासमिव वचनसदर्भमिव सुरसार्थश्लाघ्य सुराणा देवाना सार्थ समूहस्तेन श्लाघ्य गर्भं पक्षे रसश्च अर्थश्च रसार्थौ सुष्ठु रसार्थौ सुरसार्थौ ताभ्या श्लाघ्य वचनविलासम् । स्वस्या मध्यदेशमिव कटिप्रदेशमिव दिने दिने प्रतिदिन प्रवर्धमान, गर्भो दिने दिने वर्धते स्म तस्य भारान्मध्यदेशश्च दिने दिने ववृधे इति भाव । स्वस्या उदरभागमिव जठरभागमिव वलिभङ्गरहित श्लेषे बवयोरभेदात् वलिना बलवता भङ्गेन नाशेन विरहित गर्भं पक्षे वलयस्त्रिवलय एव भङ्गास्तरङ्गास्तैर्विरहित शून्यम् । स्वस्या. कुचयुगलमिव स्तनयुगमिव मलिनमण्डलाग्रशोभा मलिनश्चासौ कृष्णश्चासौ मण्डलाग्रश्च कृपाणश्चेति मलिनमण्डलाग्रस्तस्या शोभा पक्षे कृष्णचूचुकशोभा, चक्रशोभा च चक्रस्य चक्ररत्नस्य शोभा पक्षे चक्रस्येव चक्रवाकस्येव शोभा ता प्रकटीकरिष्यमाण, स्वस्या शरीरसनिवेशमिव कोमलकलधौतरुचि कोमलसुवर्णकान्ति उभयत्र समानम्, सुमित्रानन्दनमपि सुमित्राया एतदभिधानदशरथपत्न्या नन्दनमपि पुत्रमपि सुलक्ष्मणमपि लक्ष्मणनामसहितमपि भरताभिख्या भरतनामधेय प्राप्स्यमानमिति विरोध सुमित्राया पुत्रो लक्ष्मणनाम्ना प्रसिद्ध कैकेय्यास्तु पुत्रो भरतनाम्ना प्रथित इति विरोधबीज परिहारपक्षे सुमित्रानन्दनमपि सन्मित्रजनसतोषकरमपि, सुष्ठु लक्ष्माणि यस्य त सुलक्ष्मण शोभनहलकुलिशादिसामुद्रिकशास्त्राभिहितलक्षणयुक्तमपि भरताभिख्या भरतेति नामधेय प्राप्स्यमानम् । श्लेषोपमाविरोधाभासा. । § ३४) अन्तर्वत्न्या इति—अन्तर्वत्न्या गर्भवत्या यशस्वत्या मुख वदन राजा चन्द्रो नृपतिश्च इति मन्महे जानीम । यस्मात् कारणात् यत् मुख अवसुधा अवगता सुधा अवसुधा ता प्राप्तपीयूप बुभुजे भुङ्क्ते स्म, नृपतिपक्षे वसुधा पृथिवी बुभुजे । तारोल्लास ताराणा नक्षत्राणामुल्लासस्त ततान विस्तारयामास नृपतिपक्षे तारश्चासावुल्लासश्चेति तारोल्लासस्त महोल्लास ततान विस्तार-

---

§ ३३) एषेति—इस यशस्वतीने ऐसे गर्भको धारण किया जो अपने ही वचनोंके विलासके समान सुरसार्थश्लाघ्य—देवसमूहसे प्रशंसनीय (पक्षमे उत्तम रस और अर्थसे प्रशसनीय) था। अपने ही मध्यदेशके समान प्रतिदिन वृद्धिको प्राप्त हो रहा था। अपने ही उदरभागके समान वलिभगविरहित—बलवानोंके विनाशसे रहित (पक्षमे त्रिवलि रूप तरंगोंसे रहित) था। अपने ही स्तन युगलके समान आगे चलकर मलिन मण्डलाग्र—कृष्णखड्ग (पक्षमे काले चूचुक) की शोभा को तथा चक्रशोभा—चक्ररत्नकी शोभा (पक्षमे चक्रवाक पक्षी जैसी शोभा) को प्राप्त होगा। जो अपने ही शरीरसन्निवेशके समान कोमलकलधौतरुचि—सुवर्णके समान कान्तिको प्राप्त होगा। तथा जो सुमित्रानन्दन—सुमित्राका पुत्र और सुलक्ष्मण—लक्ष्मण नामका धारक होकर भी भरताभिख्या—भरत नामको प्राप्त होगा (पक्षमें समीचीन मित्रोंको आनन्ददायक एव अच्छे लक्षणोंसे युक्त होकर भी भरत नामको प्राप्त होगा। § ३४) अन्तर्वत्न्या इति—गर्भवती यशस्वतीका मुख राजा—चन्द्रमा अथवा नृपति था ऐसा हम मानते हैं क्योंकि वह अवसुधा—प्राप्तसुधाका उपभोग करता था (पक्षमे वसुधा-पृथिवीका उपभोग करता था) और तारोल्लास—नक्षत्रोंके उल्लास (पक्षमे विशाल हर्ष)

§ ३५) ददर्शान्तर्वत्नीं धरणपतिरानन्दभरित
पयोगर्भां केकी सलिलधरराजीमिव नवाम् ।
यथा तेजोगर्भां सुरपतिदिशं कोकतरुणो
यथा शुक्तिं मुक्ताफलललितगर्भामिव वणिक् ॥२४॥

§ ३६) ततश्च सा च यशस्वती देवी त्रिभुवनपतिना सह लीलाभवनोपवनकृतकाचलेष्विव विजयार्धहिमवदचलकूटेषु, निजगृहोद्यानक्रीडासरोवरेष्विव गङ्गाजललवणाम्बुधिवेलावनसरसीसलिलेषु, विलासमन्दिरपरिसरचन्दनवनलतानिकेतन इव पाटीरगिरिशिखरकोटीविलसितचन्दनवाटीसनिवेशे विहरमाणा, भिषक्परिषत्सपादितकल्याणामृताहारमिव षट्खण्डक्षेत्रमृत्तिका सेवमाना, सेवाभिज्ञवाराङ्गनाशृङ्गारसुधासिक्तसूक्तिसरणिमिव समरालापसमुद्भटवीरभटघटापटुतरकथा

यामास । श्लेष ॥२३॥ § ३५) ददर्शेति—आनन्दभर. सजातो यस्य तथाभूत' प्रमोदयुत धरणिपतिर्वृषभजिनेन्द्र अन्तर्वत्नी गर्भिणी यशस्वती केकी मयूर पयोगर्भां जलमध्या नवा प्रत्यग्रा सलिलधरराजीमिव पयोधरपङ्क्तिमिव, कोकतरुणश्चक्रवाकयुवा तेजोगर्भां तेजोमध्या सुरपतिदिश यथा प्राचीमिव, वणिक् नैगम. 'नैगमो वाणिजो वणिक्' इत्यमर । मुक्ताफल मौक्तिक ललितगर्भे यस्यास्ता शुक्ति यथा ददर्श विलोकयामास । मालोपमा । शिखरिणीछन्द ॥२४॥ § ३६) ततश्चेति—ततश्च गर्भधारणानन्तर च सा यशस्वती देवी त्रिभुवनपतिना जगत्त्रयाधीशेन सह लीलाभवनस्य क्रीडाभवनस्योपवने विद्यमाना ये कृतकाचला कृत्रिमपर्वतास्तेष्विव विजयार्धश्च हिमवाश्चेति विजयार्धहिमवन्तौ तौ च तावचलौ चेति विजयार्धहिमवदचलौ तयो कूटेषु शिखरेषु, निजगृहोद्यानस्य स्वकीयसदनोपवनस्य क्रीडासरोवरेष्विव केलिकासारेष्विव गङ्गाजल च लवणाम्बुधिवेलावनसरसी सलिलानि च तेषु सुरस्रवन्तीसलिललवणोदतटोद्यानकासारनीरेषु, विलासमन्दिरस्य क्रीडागारस्य परिसरे समीपे यच्चन्दनवन तस्य लतानिकेतने निकुञ्ज इव पाटीरगिरे मलयाचलस्य कोटचामग्रभागे विद्यमाना या चन्दनवाटी तस्या सनिवेशे विहरमाणा विहार कुर्वाणा, भिषजा वैद्याना परिषदा समूहेन सपादितो रचितो य. कल्याणामृताहार श्रेयस्करसुधाहारस्तमिव षट्खण्डक्षेत्रमृत्तिका भरतक्षेत्रमृत्स्ना सेवमाना भुञ्जाना, सेवाभिज्ञा सेवाज्ञाननिपुणा या वाराङ्गनास्तासा शृङ्गारसुधासिक्ता शृङ्गारपीयूषोक्षिता या सूक्तिसरणि. सुभाषितसततिस्तामिव समरालापे युद्धसबन्धिवार्त्तालापे समुद्भटा. समुद्यता ये वीरभटास्तेषा घटा पङ्क्तिस्तस्या पटुतरकथा समर्थवार्ता शृण्वन्ती समाकर्णयन्ती,

---

को विस्तृत करता था ॥२३॥ § ३५) ददर्शेति—आनन्दके भारसे युक्त राजा वृषभदेव गर्भवती यशस्वतीको उस प्रकार देखते थे जिस प्रकार मयूर जल सहित नवीन मेघमालाको, तरुण चकवा सूर्यसे युक्त पूर्व दिशाको ओर वणिक् मुक्ताफल रूपी सुन्दर गर्भसे युक्त शुक्तिको देखता है ॥२४॥ § ३६) ततश्चेति—तदनन्तर वह यशस्वती रानी भगवान् वृषभदेवके साथ क्रीडाभवनके उपवन सम्बन्धी कृत्रिम पर्वतोंके समान विजयार्ध तथा हिमवान् पर्वतोंके शिखरोंपर, अपने घरके उद्यान सम्बन्धी क्रीडा-सरोवरोंके समान गंगाजल तथा लवण समुद्रके तटवन सम्बन्धी सरोवरोंके जलमें एवं क्रीडा-मन्दिरके समीप स्थित चन्दनवनके निकुंजके समान मलयाचल सम्बन्धी शिखरके अग्रभागपर सुशोभित चन्दनवनके बीच विहार करती हुई, वैद्य समूहके द्वारा निर्मापित कल्याणकारी अमृतमय आहारके समान षट्खण्ड-भरतक्षेत्रकी मिट्टीका सेवन करती हुई, सेवामें निपुण वारांगनाओंके शृंगाररूप सुधासे सिक्त सुभाषितोंके समूहके समान युद्ध सम्बन्धी वार्तालाप करनेमें दक्ष वीरयोद्धाओं-

श्रृण्वन्ती, मृदुमधुरविदग्धमुग्धपरिहासमनोहरालापशुकसा[1]रिकावलिमिव पञ्जरगतकुञ्जराराति-किशोरपरम्परा पश्यन्ती कानिचिद्दिनानि निनाय ।

§ ३७) शाणोल्लीढे कृपाणे मणिमुकुर इव स्वानन साध्वपश्यत्
वीणागान मनोज्ञ मधुरमिव मुदा साश्रृणोच्चापशब्दम् ।
चित्ते चक्रे चिराय प्रथमरसमिव प्रौढवीराद्भुतादी-
नेषा त्रस्तैकवर्षस्थितहरिणशिशुप्रोल्लसल्लोलनेत्रा ॥२५॥

§ ३८) तदनु चक्रधरोदयनिदानतया भृशमनवमेऽपि नवमे मासि सैषा लक्ष्मीनिर्विशेषा हरिहयहरिदिव पूर्वमहीभृन्मनोहराकारा विमलशोभनक्षत्राधिपोदयहेतुश्च यशस्वती देवी, भास्वन्त-

---

मृदु कोमल मधुरो हृद्यो विदग्धश्चातुर्याञ्चितो मुग्ध सुन्दरो य परिहासस्तेन मनोहरालापा मधुरशब्दा या शुकसारिकास्तासामावलिमिव पङ्क्तिमिव पञ्जरगता लोहशलाकागृहस्थिता ये कुञ्जरारातिकिशोरा सिंहशिशवस्तेषा परम्परा सतति पश्यन्ती समवलोकयन्ती कानिचिद् कतिपयानि दिनानि निनाय व्यपगमयामास । उपमा ॥ § ३७) शाणेति—त्रस्तो भीत एकवर्षस्थित एकवर्षप्रमितायुष्को यो हरिणशिशुर्मृगमाणवकस्तस्येव प्रोल्लसती शोभमाने लोलनेत्रे चञ्चलनयने यस्यास्तथाभूता एषा सा यशस्वती मणिमुकुर इव मणिमयमुकुरुन्द इव शाणोल्लीढे शाणोपलसघृष्टे कृपाणे करवाले स्वानन स्वमुख साधु यथा स्यात्तया अपश्यत् विलोकयामास, मनोज्ञ मनोहर मधुर प्रियतर वीणागानमिव परिवादिनीगीतमिव चापशब्द कोदण्डध्वनि मुदा हर्षेण अश्रृणोत् आकर्णयामास । प्रथमरसमिव श्रृङ्गारमिव प्रौढवीराद्भुतादीन् समुत्कटवीरविस्मयादीन् रसान् चिराय दीर्घकालपर्यन्त चित्ते चेतसि चक्रे विदधे । गर्भस्थबालकप्रभावानुसारिणी तदीयचेष्टाभवदिति भाव । स्रग्धराछन्द ॥२५॥ § ३८) तदन्विति—तदनु तदनन्तर चक्रधरस्य चक्रवर्तिन उदयो जन्म तस्य निदानतयादिकारणत्वेन भृशमत्यन्तम् न नवम इत्यनवमस्तस्मिन् नवमभिन्नेऽपि नवमे इति विरोध पक्षे न अवम इति अनवम उत्कृष्ट इत्यर्थ तस्मिन् नवमे मासि, लक्ष्मीनिर्विशेषा पद्मातुल्या त्रिभुवनपतियोषा त्रिजगदधीश्वरसीमन्तिनी 'स्त्री योषिदबला योषा नारी सीमन्तिनी वधू' इत्यमर, हरिहयहरिदिव प्राचीव पूर्वश्चासौ महीभृच्चेति पूर्वमहीभृत् प्रथमनरेन्द्रो वृषभ इति यावत् तस्य मनोहरश्चेतोहर आकारो देहो यस्यास्तथाभूता पक्षे पूर्वमहीभृत् पूर्वाचलस्तेन मनोहर आकार आकृतिर्यस्यास्तथाभूता, विमल शोभन यस्य

के समूहकी जोशीली कथाको सुनती हुई, और कोमल मनोहर चतुर तथा सुन्दर परिहाससे मनोहर आलाप करनेवाले तोता मैनाओंकी पङ्क्तिके समान पिंजडोंमें स्थित सिंह शिशुओंकी परम्पराको देखती हुई कुछ दिन व्यतीत करती रही ॥ § ३७) शाणेति—एक वर्षके भयभीत हरिण शिशुके समान सुशोभित चञ्चल नेत्रोंसे युक्त वह यशस्वती मणिमय दर्पणके समान सानपर चढ़े हुए खड्गमें अच्छी तरह मुख देखती थी, मनोहर तथा इष्ट वीणाके गानके समान हर्ष पूर्वक धनुषके शब्दको सुनती थी और श्रृंगाररसके समान प्रौढ़ वीर तथा अद्भुत आदि रसोंको चिरकालतक चित्तमें धारण करती थी ॥२५॥ § ३८) तदन्विति—तदनन्तर चक्रवर्तीकी उत्पत्तिका कारण होनेसे जो अनवम—नवमसे भिन्न (पक्षमें श्रेष्ठ) होकर भी नवम—नौवाँ था ऐसे मासमें लक्ष्मीतुल्य, जिनराजकी जाया इस यशस्वती देवीने अविनाशी शुभ गुणोंसे युक्त मुहूर्तमें दुरुदर नामक योगके रहते हुए मनुवंशरूपी क्षीरसागरके लिए चन्द्रमाके समान तथा राजनीतिको प्रकट करनेवाले पुत्रको उत्पन्न किया। उस समय यशस्वती देवी इन्द्रकी दिशा—पूर्व दिशाके समान जान पडती थी क्योंकि जिस प्रकार

---

१. शालिकावलिमिव क० ।

मिव सच्चक्रानन्द कन्दलयन्त कमलाधिकपरिपोप परिस्फुरत्तेजःपरिवेष चाभङ्गुरशुभंयुगुणसपन्ने मुहूर्ते दुरुदराह्वये योगे मनुकुलकलशजलधिकलानिधि समुदितनय तनय जनयामास।

§ ३९) अजायत भुजाश्लिष्टवसुधो यदय सुतः।
ततोऽस्य सार्वभौमत्व तदा नैमित्तिका जगु ॥२६॥

§ ४०) सुतेन्दुमासाद्य कलानिवास समेधयन्त कुमुदं चिराय।
श्यामा चकासे सुदतीत्रियामा सा पापचक्रव्यथनैकहेतु ॥२७॥

स विमलशोभनो निर्मलशोभायुक्त विमलशोभनश्चासौ क्षत्राधिपश्चेति विमलशोभनक्षत्राधिपस्तस्योदयस्य जन्मनो हेतु पक्षे विमला शोभा यस्य स विमलशोभ स चासौ नक्षत्राधिपश्च चन्द्रश्चेति विमलशोभनक्षत्राधिपस्तस्योदयस्य समुद्गमस्य हेतुश्च यशस्वती देवी भास्वन्तमिव सूर्यमिव सच्चक्रानन्द सता साधूना चक्र समूहस्तस्यानन्द हर्षं पक्षे सन्तश्च ते चक्राश्च चक्रवाकपक्षिणश्चेति सच्चक्रास्तेषामानन्द हर्षं कदलयन्तं वर्धयन्त, कमलाधिकपरिपोष कमलाया लक्ष्म्या अधिक प्रभूत. परिपोष पुष्टिर्यस्मात् त पक्षे कमलानामरविन्दाना परिपोषो यस्मात्त, परिस्फुरत्तेज परिवेप परिस्फुरन् तेजस प्रभावस्य पक्षे प्रतापस्य परिवेषो मण्डल यस्य तथाभूतं च, अभङ्गुरा स्थायिनो ये शुभयुगुणा श्रेयस्करगुणास्तै सपन्ने सहिते मुहूर्ते दुरुदराह्वययोगे दुरुदरनामयोगे मनुकुलमेव कलशजलधिक्षीरसागरस्तस्य कलानिधिं चन्द्रमसं समुदित प्रकटितो नयो राजनीतिर्यस्मात्तं तनय पुत्र जनयामास प्रासूत। विरोधाभासश्लेषोपमा। § ३९) अजायतेति—यद् यस्मात्कारणात् अय सुत पुत्र भुजेन बाहुना आश्लिष्टा समालिङ्गिता वसुधा मही येन तथाभूत सन् अजायत ततस्तस्मात्कारणात् तदा जन्मकाले नैमित्तिका निमित्तज्ञानिन. अस्य पुत्रस्य सर्वस्या भूमेरधिप इति सार्वभौमस्तस्य भावस्तत्त्व चक्रवर्तित्व जगु कथयामासु ॥२६॥ § ४०) सुतेन्दुमिति—पापचक्रव्यथनैकहेतु पापाना दुरिताना चक्र. समूहस्तस्य व्यथनैकहेतु पीडनैककारण पक्षे पापा पापवन्तो ये चक्राश्चक्रवाकास्तेषा व्यथनस्य पीडनस्यैकहेतु प्रमुखकारण श्यामा यौवनवती पक्षे तमोबाहुल्येन कृष्णा सुदती एव त्रियामा इति सुदतीत्रियामा यशस्वतीरजनी कलाना चतु षष्टिकलाना पक्षे षोडशकलाना निवासो यस्मिस्त, कुमुद को पृथिव्या मुद मोद पक्षे कुमुद कैरव चिराय चिरकालपर्यन्तं समेधयन्त वर्धयन्त सुत एवेन्दु सुतेन्दुस्त पुत्रचन्द्रमसम् आसाद्य

इन्द्रकी दिशा पूर्वमहीभृन्मनोहराकारा—पूर्वाचलसे सुन्दर आकारवाली है उसी प्रकार यशस्वती भी पूर्वमहीभृन्मनोहराकारा—आद्य राजा वृषभजिनेन्द्रके मनको हरनेवाले शरीरसे सहित थी और जिस प्रकार इन्द्रकी दिशा विमलशोभ-नक्षत्राधिपोदय हेतु—निर्मल शोभासे युक्त चन्द्रमाके उदयका कारण है उसी प्रकार यशस्वती भी विमलशोभन—क्षत्राधिपोदयहेतु—निर्मल शोभासे युक्त चक्रवर्तीकी उत्पत्तिका कारण थी। यशस्वतीने जिस पुत्रको उत्पन्न किया था वह सूर्यके समान सच्चक्रानन्द कदलयन्त—साधु समूहके हर्षको बढानेवाला (पक्षमें उत्तम चकवोंके हर्षको बढानेवाला) था, कमलाधिकपरिपोष—लक्ष्मीकी अधिक पुष्टिको करनेवाला (पक्षमे कमलोंके अधिक विकासको करनेवाला) था तथा देदीप्यमान तेज—प्रताप (पक्षमे घाम) के मण्डलसे सहित था। § ३९) अजायतेति—जिस कारण यह पुत्र अपनी भुजासे पृथिवीको आलिंगित करता हुआ उत्पन्न हुआ था उस कारण निमित्तज्ञानियोंने उस समय कहा था कि यह पुत्र समस्त भूमिका स्वामी—चक्रवर्ती होगा ॥२६॥ § ४०) सुतेन्दुमिति—पाप समूहको नष्ट करनेवाली (पक्षमे पापी चकवोंको पीड़ा देनेवाली) तथा श्यामा—यौवनसे सुशोभित (पक्षमें श्यामवर्ण) वह यशस्वतीरूपी रात्रि, कलाओंके निवासभूत (पक्षमे सोलह कलाओसे युक्त) तथा कुमुद—पृथिवीके हर्षको (पक्षमे कैरवको) चिरकालतक बढानेवाले पुत्ररूपी चन्द्रमाको प्राप्त कर सुशोभित हो रही थी ॥२७॥

§ ४१) स किल जिनराज' पद्माकर इव सर्वतोमुखसमृद्धिसपन्नः समुन्निद्रशोभनतामरसहितः सदामरालीसेव्यमान. भ्रमरहितश्च, पद्मबन्धुनेव प्रौढशोभनखोज्ज्वलपादेन साधुचक्रसतोपदायिना उदयमुपेयुषा भृशमुल्ललास ।

§ ४२) पितामहौ च तस्यामू प्रमोद परमापतु' ।
यथा सवेलो जलधिरुदये शीतरोचिप. ॥२८॥

प्राप्य चकाशे शुशुभे । रूपकश्लेपौ ॥ उपजातिवृत्तम् ॥२७॥ § ४१) स किलेति—जिनराजो वृपभदेव पद्माकर इव तडाग इव सर्वतोमुखी समन्तादायकरो या समृद्धि सपत्तिस्तया सपन्न पक्षे सर्वतोमुखस्य सलिलस्य समृद्धया वृद्धया सपन्न , समुन्निद्रा प्रकटिता शोभा येपा ते समुन्निद्रशोभा ते च ते नतामराश्च नम्रीभूतदेवाश्च तै सहित. पक्षे समुन्निद्र शोभन येपा तानि समुन्निद्रशोभनानि तथाभूतानि यानि तामरसानि कमलानि तेभ्यो हित , सदा सर्वदा अमरालीभि. देवपङ्क्तिभि सेव्यमान. पक्षे सदा सर्वदा मरालीभिर्हंसीभि' सेव्यमान , भ्रमेण सदेहेन रहित भ्रमरहित पक्षे भ्रमरेभ्य पट्पदेभ्यो हित कल्याणकर , पद्मबन्धुनेव सूर्येणेव प्रौढा प्रकृष्टा शोभा येषा तथाभूता ये नखास्तैरुज्ज्वलौ पादौ चरणौ यस्य तेन पक्षे प्रौढ प्रकृष्ट शोभन यस्य तथाभूत यत् ख गगन तस्मिन् उज्ज्वला पादा किरणा यस्य तेन, साधुचक्राय सज्जनसमूहाय सतोप हर्पं ददातीति साधुचक्रसतोपदायी तेन पक्षे साधवश्च ते चक्राश्च चक्रवाकाश्चेति साधुचक्रास्तेभ्य सतोप ददातीति तेन उदय जन्म पक्षे उद्गमम् उपेयुपा प्राप्तवता कुमारेण पुत्रेण भृशमत्यन्तम् उल्ललास शुशुभे ॥ श्लेषोपमा । § ४२) पितामहाविति—तस्य पुत्रस्य अमू प्रसिद्धौ पितामही च पितामहश्चेति पितामहौ मरुदेवीनाभिराजौ शीतरोचिप शशिन उदये सवेल तटीसहित. जलधिर्यथा सागर इव पर सातिशय प्रमोद हर्पं आपतु

---

§ ४१) स किलेति—जिस प्रकार उदित होते हुए सूर्यसे पद्माकर सुशोभित होता है उसी प्रकार जिनराज वृषभदेव, उदित होते हुए पुत्रसे सुशोभित हो रहे थे। उस समय जिनराज ठीक पद्माकर—तालाबके समान जान पडते थे क्योंकि जिस प्रकार पद्माकर सर्वतोमुख समृद्धि सम्पन्न—जलकी समृद्धिसे सहित होता है उसी प्रकार जिनराज भी सर्वतोमुख समृद्धि सम्पन्न—सब ओरसे आयवाली सम्पत्तिसे सहित थे, जिस प्रकार पद्माकर समुन्निद्रशोभन—तामरस-हित विकसित शोभावाले कमलोंके लिए हितकारी होता है उसी प्रकार जिनराज भी समुन्निद्रशोभ—नतामर-सहित—शोभायमान नम्रीभूत देवोंसे सहित थे, जिस प्रकार पद्माकर सदामराली सेव्यमान—सर्वदा हंसियोंसे सेवित रहता है उसी प्रकार जिनराज भी सदामरालीसेव्यमान—सदा देवपङ्क्तिसे सेवित थे और जिस प्रकार पद्माकर भ्रमर-हित—भ्रमरोंके लिए हितकारी होता है उसी प्रकार जिनराज भी भ्रम-रहित—सदेहसे रहित थे। वह पुत्र भी ठीक सूर्यके समान जान पडता था क्योंकि जिस प्रकार सूर्य प्रौढशोभन-खोज्ज्वलपाद—अत्यन्त शोभायमान आकाशमे चमकती हुई किरणोंसे युक्त होता है उसी प्रकार वह पुत्र भी प्रौढशोभ-नखोज्ज्वलपाद—अत्यन्त शोभायमान नखोंसे देदीप्यमान चरणोंसे सहित था और जिस प्रकार सूर्य साधुचक्रसंतोषदायी—उत्तम चक्रवाक पक्षियोंको संतोषका देनेवाला होता है उसी प्रकार वह पुत्र भी साधुचक्रसतोषदायी—सज्जन समूहको सतोपका देनेवाला था। § ४२) पितामहाविति—जिस प्रकार चन्द्रमाका उदय होनेपर वेला सहित समुद्र हर्षको प्राप्त होता है उसी प्रकार उस पुत्रके दादा और दादी—नाभिराज और

§ ४३) पुण्याशीर्वचनारवैर्मृगदृशा भूपालगेहान्तरे
सानन्द प्रहतानकध्वनिभरैर्वादित्रघोषैस्तथा ।
लेखोन्मुक्तसुमावलीमनुपतल्लोलम्बकोलाहलै
शब्दैकार्णवमग्नमेतदभवद्व्यालोललोकत्रयम् ॥२९॥

§ ४४) मन्दारवनविहारी मन्द मन्दं चचार पवमानः ।
ककुभा जेता जात इति भीत इव प्रतीतदिक्पालः ॥३०॥

§ ४५) तदानी सरभससचरत्परिजननिकरसंक्षोभसचलितमहीतला, प्रतिनिकेतन समुदस्तकेतनपटसंजातमञ्जुपवनसमानीतकल्पतरुकुसुमोपहारा, गङ्गातरङ्गशीकरनिकरद्विगुणितशैत्यसौरभ्यमृगमदजलच्छटासिक्तमधुकरनिकरझङ्कारमनोहारिकुसुमोपहारमण्डितरथ्याङ्गणा, महीपतिनि-

---

लेभाते । उपमा ॥२८॥ § ४३) पुण्याशीरिति—भूपालगेहान्तरे राजभवनमध्ये मृगदृशा नारीणा पुण्याशीर्वचनारवै पवित्राशीर्वादवचनध्वनिभि सानन्द सहर्षं यथा स्यात्तथा प्रहतास्ताडिता य आनका पटहास्तेषा ध्वनिभरै शब्दसमूहै, वादित्रघोषै वाद्यनिनादै तथा लेखैर्देवैरुन्मुक्ता पातिता या सुमावली प्रसूनपङ्क्तिस्ताम्, अनुपतन्तोऽनुधावमाना ये लोलम्बा भ्रमरास्तेषा कोलाहलै कलकलशब्दै एतत् व्यालोललोकत्रय चञ्चलजगत्त्रयम् शब्द एव एकार्णव एकसागरस्तस्मिन् मग्न ब्रुडितम् अभवत् । समन्तात् शब्दा एव श्रूयमाणा आसन्निति भाव । शार्दूलविक्रीडित छन्द ॥२९॥ § ४४) मन्दारेति—मन्दारवनविहारी कल्पतरूद्यानविहरणशील. पवमान पवन ककुभा दिशा जेता जित्वर जात समुत्पन्न इति हेतो भीत इव भययुक्त इव प्रतीतदिक्पाल. सूचितदिक्पाल सन् मन्द मन्द शनै शनैर्यथा स्यात्तथा चचार चरति स्म । उत्प्रेक्षा ॥३०॥ § ४५) तदानीमिति—तदानी तस्मिन् काले साकेतपुरी अयोध्यापुरी अजायत बभूवेति कर्तृक्रियासबन्ध. । कीदृशी अजायतेत्याह सरभसेति—सरभस सवेग सचरन्त समन्ताच्चलन्तो ये परिजननिकरा कुटुम्बिजनसमूहास्तेषा सक्षोभेण सचलित कम्पित महीतल यस्या तथाभूता, प्रतीति—निकेतन निकेतन प्रतीति प्रतिनिकेतनं प्रतिगृह समुदस्ता. समुन्नमिता ये केतनपटा वैजयन्तीवस्त्राणि तै सजात. समुत्पन्नो यो मञ्जुपवन सुन्दरसमीरस्तेन समानीता सप्रापिता कल्पतरूणा कुसुमोपहारा यस्या सा, गङ्गेति—गङ्गातरङ्गाणा भागीरथीभङ्गाना ये शीकरा अम्बुकणास्तेषा निकरेण समूहेन द्विगुणिते शैत्यसौरभ्ये शिशिरत्वसौगन्ध्ये यस्य तथाभूत यत् मृगमदजल कस्तूरीसलिल तस्य छटया ससिक्ता समुक्षिता ये मधुकरनिकरा षट्पदसमूहास्तेषा

मरुदेवी परमहर्षको प्राप्त हो रहे थे ॥२८॥ § ४३) पुण्याशीरिति—राजभवनके अन्दर स्थित स्त्रियोंके पवित्र आशीर्वादात्मक वचनोंके शब्दोंसे, हर्षसहित ताडित नगाडोंके शब्दोंसे, अन्य बाजोंके शब्दोंसे तथा देवोंके द्वारा बरसाये हुए पुष्पसमूहका पीछा करनेवाले भ्रमरोंके कोलाहलसे हलचलको प्राप्त हुआ यह लोकत्रय शब्दरूप एक सागरमें निमग्न हो गया था—सब ओर शब्द ही शब्द सुनाई पड़ता था ॥२९॥ § ४४) मन्दारेति—'दिशाओंको जीतनेवाला उत्पन्न हो चुका है' इस प्रकार डरते-डरते दिक्पालोंको सूचित करनेवाला कल्पवनविहारी वायु धीरे-धीरे बह रहा था ॥३०॥ § ४५) तदानीमिति—उस समय वेगसे सब ओर चलनेवाले कुटुम्बिजनोंके समूह सम्बन्धी क्षोभसे जिसका भूतल कम्पित हो रहा था, प्रत्येक घरोंपर फहरायी हुई पताकाओंके वस्त्रोंसे उत्पन्न सुन्दर वायुके द्वारा जिसमें कल्पवृक्षोंके फूलोंका उपहार लाया गया था, गंगा सम्बन्धी लहरोंके जलकणोंके समूहसे अत्यन्त शीतल तथा सुगन्धित कस्तूरीके जलकी छटासे सींचे हुए भ्रमर समूहकी झकारसे मनोहर फूलोंके

---

१. रथ्याङ्कणा क० ।

वेदनसंभ्रमसंचरद्वृद्धकञ्चुकोनिकरपुरःसरपरिवारजननिर्दयसमर्द्दनिपतितकुब्जवामनवर्षवरनिकुरम्बा, लम्बमानकुचबिम्बविस्रस्तान्तरोयवृद्धधात्रीजनपरिकलितनर्तननिरीक्षणजनितपुरजनहास्यरसा, युगपत्तरङ्गितमङ्गलसंगोतसंगतानेकगानकलयानुगतलीलालास्यप्रसक्तकामिनीजनकमनीया, साकेतपुरी वेलातीतपौरजनप्रमोदा, अजायत ।

§ ४६) तदानीं क्षोणीशे वितरति बहूनर्थनिवहान्
सुरद्रुव्यूहो द्रागहह दिवि पञ्चत्वमभजत् ।
तथा चिन्ताश्मत्वं सुरमणिरवाप प्रकृतितो
जगाहे स्वर्धेनुः सपदि शतमन्युं दृढतरम् ॥३१॥

झङ्कारेण अव्यक्तशब्देन मनोहारिणो रम्या ये कुसुमोपहाराः पुष्पोपहारास्तैर्मण्डितं समलंकृतं रथ्याङ्गणं राजमार्गाजिरं यस्यां तथाभूता, महीपतीति—महीपतये राज्ञे निवेदनं समाचारदानं तस्य संभ्रमेण त्वरात्वेन संचरन्तः समन्तात् चलन्तो ये वृद्धकञ्चुकोनिकराः स्थविरसौविदल्लसमूहास्ते पुरःसरा अग्रेसरा येषां तथाभूता ये परिवारजनाः कुटुम्बिजनास्तेषां निर्दयसमर्द्देन निष्करुणसमाघातेन निपतितानि कुब्जवामनवर्षवराः कुब्जखर्वशिखण्डिजनानां निकुरम्बाणि कदम्बकानि यस्यां तथाभूता, लम्बमानेति—लम्बमानेभ्यः स्रंसमानेभ्यः कुचबिम्बेभ्यो वक्षोजमण्डलेभ्यो विस्रस्तं नीचैः पतितमन्तरीयं वस्त्रं येषां तथाभूता ये वृद्धधात्रीजनाः स्थविरोपमातृसमूहास्तैः परिकलितं कृतं यन्नर्तनं नृत्यं तस्य निरीक्षणेन समवलोकनेन जनितः समुत्पादितः पुरजनानां नागरनराणां हास्यरसो यस्यां तथाभूता, युगपदिति—युगपद् एककालावच्छेदेन तरङ्गितानि वृद्धिंगतानि यानि मङ्गलसंगीतानि तेषु संगतानि समायोजितानि यानि अनेकगानकानि नानाविधोपगानानि तेषां लयं स्वरतानमनुगतानि यानि लीलालास्यानि लीलानृत्यानि तेषु प्रसक्ताः संलग्ना ये कामिनीजनाः स्त्रीसमूहास्तैः कमनीया मनोहरा, वेलातीतो निर्मर्यादः पौरजनानां नागरनराणां प्रमोदो हर्षो यस्यां तथाभूता । स्वभावोक्तिः । § ४६) तदानीं क्षोणीश इति—तदानीं पुत्रजन्मावसरे क्षोणीशे वृषभजिनेन्द्रे बहून् प्रभूतान् अर्थनिवहान् धनसमूहान् वितरति ददति सति सुरद्रूणां कल्पतरूणां व्यूहः समूहः द्राग् झटिति दिवि स्वर्गे पञ्चत्वं पञ्चतां मृत्युमिति यावत् पक्षे पञ्चसंख्यात्वं अभजत् । तथा सुरमणिर्देवमणिः प्रकृतितो निसर्गतः चिन्ताश्मत्वं चिन्तया अश्मत्वं पाषाणत्वं पक्षे चिन्तामणित्वम् अवाप प्राप्तवान्, स्वर्धेनुः कामधेनुः सपदि शीघ्रं दृढतरं प्रबलं शतमन्युं शतशोकं पक्षे इन्द्रं 'मन्युः पुमान् क्रुधि । दैन्ये शोके च यज्ञे च' इति मेदिनी, 'मन्युर्दैन्ये क्रतौ क्रोधे वासवे तु शतात्परः' इति विश्वलोचनः, जगाहे प्राप अहह इति खेदे 'अहहाद्भुतखेदयोः' इति विश्वलोचनः ।

उपहारसे जिसमें राजमार्गके मैदान सुशोभित हो रहे थे, राजाके लिए पुत्रजन्म सम्बन्धी सूचना देने की उतावलीसे सब ओर चलते हुए वृद्ध कञ्चुकियोंके समूह जिनके आगे-आगे चल रहे थे ऐसे परिवारके लोगोंकी निर्दय धक्काधूमीसे जहाँ कुबड़ों, बौनों और हिंजड़ोंके समूह गिर गये थे, लटकते हुए स्तनबिम्बोंके ऊपरसे जिनके वस्त्र नीचेकी ओर खिसक गये थे ऐसी वृद्ध धायोंके द्वारा किये हुए नृत्यको देखनेसे जहाँ नगरवासी जनोंको हास्यरस उत्पन्न हो रहा था, और एक साथ वृद्धिको प्राप्त हुए मंगलमय संगीतके बीच बीचमें मिले हुए अनेक उपगानोंकी लयके अनुसार होनेवाली नृत्य क्रीड़ामें व्यस्त स्त्रीजनोंसे जो सुन्दर थी ऐसी वह अयोध्यापुरी नागरिकजनोंके बहुत भारी हर्षसे युक्त हो रही थी। § ४६) तदानीं क्षोणीश इति—उस समय जब राजा वृषभदेव बहुत भारी धनसमूहका वितरण कर रहे थे तब खेद है कि कल्पवृक्षोंका समूह शीघ्र ही स्वर्गमें पञ्चता—मृत्यु (पक्षमें पाँच संख्या) को प्राप्त हो गया, देवमणि स्वभावसे ही चिन्ताके कारण पाषाणपनेको प्राप्त हो गया (पक्षमें चिन्तामणि बन गया) और कामधेनु शीघ्र ही बहुत भारी शतमन्यु—सैकड़ों प्रकारके शोक

§ ४७) तदनु नाभिराजकच्छमहाकच्छभूपालाः समिलितास्तस्य कुमारस्य जातकर्मोत्सवं विधाय, निधाय च निजाङ्के भाविसकलभरताधिपस्यास्य भरत इति नामधेयं प्रकटयामासुः ।

§ ४८) तन्नाम्ना भारतं वर्षमितीहासीज्जनास्पदम् ।
हिमाद्रेरासमुद्राच्च क्षेत्रं चक्रभृतामिदम् ॥३२॥

§ ४९) पुत्रोऽय तनुकान्तिनिर्मलजलः श्रीकुन्तलालिव्रज-
व्याप्तः पादकरास्यशोणकमलो वाहामृणालद्युतिः ।
राज्यश्रीहृदयगमप्रविलसत्सवासपद्माकरः
सामोद समभूच्चिरं मनुकुलक्षीराब्धिमध्ये ध्रुवम् ॥३३॥

§ ५०) स किल भरतकुमारो वन्धुजनकरकमलविहारकेलिकलहसः सकलगुरुजननयनेन्दी-

---

श्लेष । शिखरिणी छन्द ॥३१॥ § ४७) तदन्विति—तदनु तदनन्तरं नाभिराजश्च कच्छश्च महाकच्छश्चेति नाभिराजकच्छमहाकच्छा ते च ते भूपालाश्च राजानश्चेति तथाभूता समिलिता सगता. सन्त. तस्य कुमारस्य जातकर्मोत्सवं जन्मक्रियोत्सवं विधाय कृत्वा निजाङ्के स्वोत्सङ्गे निधाय च स्थापयित्वा च भावी चासौ सकलभरताधिपश्चेति तथा तस्य अस्य कुमारस्य भरत इति नामधेय नाम प्रकटयामासु । § ४८) तन्नाम्नेति—जनास्पद लोकस्थान । हिमाद्रे हिमवत्कुलाचलादारम्य आसमुद्रात् आलवणोद इदम् चक्रभृता चक्रवर्तिना क्षेत्र तन्नाम्ना तन्नामधेयेन भारत वर्षम् आसीत् इतीह इत्येवम् इतिहासज्ञा वदन्ति ॥३२॥ § ४९) पुत्रोऽयमिति—अयं पुत्र मनुकुल मनुवश एव क्षीराब्धि क्षीरसागरस्तस्य मध्ये ध्रुव निश्चयेन राज्यश्रिया राज्यलक्ष्म्या हृदयगम· प्रिय प्रविलसन् प्रकर्षेण शोभमानः सवासपद्माकरो निवाससरोवर चिर चिरकाल-पर्यन्तं समभूत् । अथ पुत्रस्य पद्माकरत्व साधयति—तनुकान्ति. देहदीप्तिरेव निर्मलजलं स्वच्छसलिलं यस्मिन् स , श्रीकुन्तला शुम्भदलका एव अलयो भ्रमरास्तेषां व्रजेन समूहेन व्याप्त , पादौ च करौ च आस्यं चेति पादकरास्य तदेव शोणकमलानि रक्तकमलानि यस्मिंस्तथाभूत·, वाहा वाहुरेव मृणालद्युतिर्मृणालकान्तिर्यस्मिन् स 'वाहावाहौ हये वाहौ' इति विश्वलोचनः । सामोदः आमोदो हर्ष एवामोदोऽतिनिर्हारी गन्धस्तेन सहित. । 'सुगन्धि मुदि वा मोद.' इति विश्वलोचनः । रूपकालकार. । शार्दूलविक्रीडितं छन्द ॥३३॥ § ५०) स किलेति—बन्धुजनाना करकमलेषु विहारो यस्य तथाभूत केलिकलहस. क्रीडाकादम्व , सकलगुरुजनाना

(पक्षमे इन्द्र) को प्राप्त हो गयी ॥३१॥ § ४७) तदन्विति—तदनन्तर नाभिराज कच्छ-महाकच्छ आदि राजाओंने सम्मिलित होकर उस पुत्रका जन्म क्रिया सम्बन्धी उत्सव किया और अपनी गोदमे रखकर समस्त भरत क्षेत्रका स्वामी होनेवाले इस पुत्रका 'भरत' यह नाम प्रकट किया । § ४८) तन्नाम्नेति—उसके नामसे यह देश भारतवर्ष नामसे प्रसिद्ध हुआ ऐसा इतिहास है । हिमवान् कुलाचलसे लेकर लवण समुद्र तकका यह क्षेत्र चक्रवर्तियोंका क्षेत्र कहलाता है ॥३२॥ § ४९) पुत्रोऽयमिति—सचमुच ही वह पुत्र, मनुवंशरूपी क्षीरसागरके मध्यमे राज्यलक्ष्मीके प्रिय निवास स्वरूप पद्माकर—तालाव था क्योंकि शरीरकी कान्ति ही उसमे निर्मल जल था, वह शोभायमान केशरूपी भ्रमरोके समूहसे व्याप्त था, पैर हाथ तथा मुख ही उसमें लाल कमल थे, भुजा ही उसमे मृणाल थी और आमोद—हर्ष ही उसमे सुगन्धि थी ॥३३॥ § ५०) स किलेति—जो बन्धुजनोंके करकमलोंमे विहार करनेवाला क्रीडा-हंस था, तथा समस्त गुरुजनोंके नेत्ररूपी नीलकमलोंको विकसित करनेके लिए शरद् ऋतुका

वरानन्दशरच्चन्द्रः सुन्दरमन्मनहसितमन्मनालापलसितमणिकुट्टिमचङ्क्रमणादिभिः पित्रोरानन्द कन्दलयामास ।

§ ५१) कण्ठे मञ्जुलकुञ्जरारिनखरव्याबद्धमुक्तामणी-
माला धैर्यगुणश्रियः प्रविचलद्दोलायमाना दधत् ।
चिक्रीड क्षितिपालबालककुलैर्व्यालोलसत्कुण्डल
सानन्द पुरुनन्दनो मनुकुलप्राच्याचलाहस्करः ॥३४॥

§ ५२) तदनु मनुकुलतिलकोऽय बालको लोकयात्रावर्तनतत्परेण पुरुपरमेश्वरेण परिकलितान्नप्राशनचौलोपनयादिक्रम., सवयोभिर्नरेन्द्रनन्दनै' सह प्रकटितपासुविहार, कुरङ्गमदकर्दमसपादितरेखामण्डितगण्डमण्डलः, कुङ्कुमपासुपटलसान्द्रसिन्दूरितमस्तकः, कदाचिन्मदान्धसिन्धुर-

---

निखिलगुरुजनाना नयनान्येव इन्दीवराणि कुवलयानि तेषामानन्दाय हर्षाय शरच्चन्द्र शरदिन्दु स भरतकुमार किल सुन्दरमन्मनहसित मनोज्ञमन्दहसित, मन्मनालापोऽव्यक्तमधुरशब्द, लसितमणिकुट्टिमेषु शोभितरत्नवसुन्धरापृष्ठेषु चङ्क्रमण जानुभ्या चलन तदादिभिस्तत्प्रभृतिभि पित्रो माता च पिता चेति पितरौ तयोर्मातापित्रो आनन्द हर्ष कन्दलयामास वर्धयामास । § ५१) कण्ठ इति—कण्ठे ग्रीवाया धैर्यगुणश्रियो धीरत्वगुणलक्ष्म्या प्रविचलन्ती चासौ दोला चेति प्रविचलद्दोला तद्वद् आचरतीति प्रविचलद्दोलायमाना ताम् आन्दोल्यमाना दोलवदाचरन्तीम् मञ्जुलैर्मनोहरै कुञ्जरारिनखैर्व्याघ्रनखरैर्व्याविद्धा व्यामिश्रा या मुक्तामणीमाला मुक्तायष्टिस्ता दधत् बिभ्रत्, व्यालोले चञ्चले सत्कुण्डले शोभितकर्णाभरणे यस्य तथाभूत, मनुकुल मनुवंश एव प्राच्याचल पूर्वगिरिस्तत्राहस्कर सूर्य' पुरुनन्दनो वृषभजिनेन्द्रनन्दन क्षितिपालबालककुलै राजपुत्रसमूहै सह सानन्द सहर्ष यथा स्यात्तथा चिक्रीड क्रीडति स्म । रूपकालकार । शार्दूलविक्रीडितच्छन्द' ॥३४॥ § ५२) तदन्विति—तदनु तदनन्तर मनुकुलतिलको मनुवशश्रेष्ठ. अय बालको भरताभिधान, लोकयात्राया लोकव्यवहारस्य वर्तने प्रवर्तने तत्पर समुद्युक्तस्तेन पुरुपरमेश्वरेण वृषभजिनेन्द्रेण परिकलिता कृता अन्नप्राशनचौलोपनयादिक्रमा अन्नभक्षण-चूडासस्कारयज्ञोपवीतसस्कारप्रभृतिविधयो यस्य तथाभूत. सन्, सवयोभि' समानावस्थायुक्तै नरेन्द्रनन्दनै राजपुत्रै सह प्रकटित पासुविहारो धूलिकेलिर्येन तथाभूत, कुरङ्गमदकर्दमेन कस्तूरीद्रवेण सपादिता रचिता या रेखास्ताभिर्मण्डित शोभित गण्डमण्डल कपोलस्थल यस्य स, कुङ्कुमस्य काश्मीरस्य पासुपटलेन धूलिसमूहेन सान्द्र यथा स्यात्तथा सिन्दूरित रक्तवर्णीकृत मस्तक येन स., कदाचित्

चन्द्र था ऐसा वह भरत कुमार, सुन्दर किलकारियोंसे परिपूर्ण मन्द मुसकान, अव्यक्त मधुर बोली और शोभायमान मणिमय फर्शपर घुटनोंके बल चलना आदिके द्वारा माता-पिताके हर्षको बढा रहा था। § ५१) कण्ठ इति—जो कण्ठमे धैर्य गुणरूपी लक्ष्मीके चञ्चल झूलाके समान सुशोभित, मनोहर व्याघ्र नखोंसे युक्त मुक्तामणियोंकी मालाको धारण कर रहा था, जिसके उत्तम कुण्डल हिल रहे थे तथा जो मनुवंशरूपी उदयाचलपर सूर्यके तुल्य था ऐसा, भगवान् वृषभदेवका वह पुत्र राजकुमारोंके समूहके साथ सानन्द क्रीडा करता था ॥३४॥ § ५२) तदन्विति—तदनन्तर लोक व्यवहारके चलानेमे तत्पर वृषभजिनेन्द्रके द्वारा जिसके अन्नप्राशन, मुण्डन तथा यज्ञोपवीत आदि सस्कार किये गये थे ऐसा वह मनुवशका तिलक स्वरूप बालक, समान अवस्थावाले राजकुमारोंके साथ कभी धूलिमें खेलता था, कभी हाथीका रूप रखकर खेलता था, उस समय वह कस्तूरीके रससे निर्मित रेखाओंके द्वारा अपने गण्डस्थलोको सुशोभित करता था तथा केशरकी परागके समूहसे अपने मस्तकको अत्यधिक सिन्दूरसे युक्त किये हुएके समान लाल-लाल कर लेता था। जब और बडा हुआ तब सचमुच ही मदोन्मत्त हाथीपर सवार होकर हर्षसहित अपने योग्य वाहनोपर बैठे हुए

मारुह्य सहर्षमधिरूढोपवाह्यैरन्यैर्वयस्यैः सह प्रमदवन प्रति प्रतिष्ठमान', कुञ्चिताग्रतर्जनीनिशिताङ्कुश प्रविश्य च तद्वन तत्र विचित्रकृतकाचलतुङ्गतमशृङ्गेषु व्यापारिततद्गजः, कोमळकदलीकाननेषु सभ्रमसमुत्पाटितरम्भातरुगुम्भ कुम्भीन्द्र सचारयन्, [1]गम्भीरतरविमलदीर्घिकासलिलेषु सप्लावयन्, विकचकमलकुलशोभितकमलाकरे सरोजवननिर्मूलनप्रचण्डशुण्डादण्ड शुण्डालमखण्ड सक्रीडयन्, उद्दण्डपुण्डरीकषण्डप्रकल्पितधवलातपत्रधरः शुभ्रतरादभ्रमृदुलतन्तुसतानदन्तुरितचामरनिकरः, समुल्लसदशोकपल्लवपरिकल्पितविजयवैजयन्तीविसर', पठनपटुबालकवन्दिसदोहजयजयानन्दकोलाहलमुखरितदिगन्तर नृपभवनमवजगाहे ।

मदान्धसिन्धुर मत्तमतङ्गजम् आरुह्य समधिष्ठाय सहर्ष सानन्द यथा स्यात्तथा अधिरूढा अधिष्ठिता उपवाह्या स्ववाहनयोग्यगजा यैस्तैं अन्यैरितरै. वयस्यैर्मित्रै. सह प्रमदवन क्रीडाकानन प्रति प्रतिष्ठमान. प्रस्थान कुर्वाण , कुञ्चिताग्रा या तर्जनी तद्वत् निशितस्तीक्ष्ण अङ्कुशो यस्य स., तद्वन च प्रविश्य तत्र वने विचित्रा नानाकारा ये कृतकाचला. कृत्रिमक्रीडाशैलास्तेषा तुङ्गतमानि सून्नतानि यानि शृङ्गाणि शिखराणि तेषु व्यापारित सचारित तद्गज स्वाविष्ठितद्विरदो येन स , कोमलकदलीकाननेषु मृदुलमोचारामेषु सभ्रमेण त्वरया समुत्पाटितो निर्मूलितो रम्भातरुगुम्भ कदलीतरुगुल्मो येन त कुम्भीन्द्र गजेन्द्र संचारयन् भ्रमयन्, गम्भीरतराणि अगाधानि विमलानि स्वच्छानि यानि दीर्घिकासलिलानि दीर्घिकाजलानि तेषु उपवनेषु जलक्रीडार्थं रचिता विशालह्रदा दीर्घिका उच्यन्ते, संप्लावयन् समुत्तारयन्, विकचकमलाना विकसितारविन्दाना कुलेन समूहेन शोभितो य कमलाकर' पद्मोपलक्षितसरोवरस्तस्मिन् सरोजवनस्य कमलवनस्य निर्मूलने समुत्पाटने प्रचण्डोऽतिदक्ष शुण्डादण्डो यस्य त शुण्डाल गज अखण्ड यथा स्यात्तथा सक्रीडयन् रमयन्, उद्दण्डानि समुन्नतदण्डानि यानि पुण्डरीकाणि श्वेतकमलानि तेपा षण्डेन समूहेन प्रकल्पित रचित यद् धवलातपत्र तस्य धर , शुभ्रतरा अतिधवला अदभ्रा अकृशा मृदुला. कोमला ये तन्तवो मृणालसूत्राणि तेपा सतानेन समूहेन दन्तुरितो नतोन्नतीकृतश्चामरनिकरो बालव्यजनसमूहो येन सः समुल्लसद्भिरुन्नम्यमानै. अशोकपल्लवै. कङ्केलिकिसलयै. परिकल्पितो रचितो विजयवैजयन्तीविसरो विजयध्वजसमूहो येन स , पठनपटव उच्चारणचतुरा बालका अल्पवयस्का ये बन्दिसदोहा स्तुतिपाठकसमूहास्तेषा जयजयनन्दकोलाहलेन जयजयकारकलकलेन मुखरितानि वाचालितानि दिगन्तराणि येन तथाभूत सन् नृपभवन राजसदनम् अवजगाहे

अन्य मित्रोंके साथ प्रमदवनकी ओर प्रस्थान करता था, जिसका अग्रभाग मुड़ा हुआ है ऐसी तर्जनीके समान तीक्ष्ण अकुशको वह लिये रहता था। वनमें प्रवेश कर वहाँ नाना प्रकारके कृत्रिमपर्वतोंके अत्यन्त ऊँचे शिखरोंपर उस हाथीको घुमाता था। कभी कोमल कदलीवनोंमे वह हाथीको घुमाता था उस समय वह हाथी बड़ी उतावलीके साथ केलाके वृक्षोंको उखाड़नेमे तत्पर रहता था। कभी अत्यन्त गहरे एवं निर्मल दीर्घिका के कृत्रिम तालावोंके जलमे उस हाथीको तैराता था, कभी खिले हुए कमलोंके समूहसे शोभित तालावमे, जिसका शुण्डादण्ड बड़ी तेजीसे कमलवनको उखाड़ रहा था ऐसे हाथीको निरन्तर क्रीड़ा कराता था, और कभी ऊँची डण्ठलवाले सफेद कमलोंसे निर्मित छत्रोंको धारण कर, अत्यन्त सफेद वारीक और कोमल मृणाल सूत्रोंके चमरोंको चलवाता, ऊपरकी ओर उठाये हुए अशोक वृक्षके पल्लवोंसे निर्मित विजयपताकाको धारण करता और उच्चारण करनेमे निपुण अल्पअवस्थावाले वन्दीजनोंके जयजयकारसे दिशाओंके अन्तराल-

---

१. गभीततर क० ।

§ ५३) शरीरवल्लीकुसुमायमान तारुण्यमेतस्य ततो जजृम्भे ।
सौन्दर्यलक्ष्मीविनिवासभूमे सुवर्णखण्डस्य यथा सुगन्ध ॥३५॥

§ ५४) पितुर्यादृक् तादृक् ललितगमनं सैव च तनुः
कला लीला सैव स्मितमपि तदेव द्युतिरपि ।
वच शील तद्वन्मधुरमिति सर्वेऽपि सुगुणा-
स्तथैव प्रोद्भूता न तु गुणविशेषो व्यलसत ॥३६॥

§ ५५) अय खलु मनुकुलपूर्वाचलद्युमणिर्भूपालतनयचूडामणिर्मदन इति मानिनीभि, सुरतरुरिति वनोपकजनैर्वैवस्वत इति विद्वेषिगणै, कलासदनमिति कोविदैर्गन्धर्व इति गायकैः, स्नेह इति धनै., अनाश्रयणीय इति दोषैः, दुर्ग्रहचित्तवृत्तिरिति चित्तभुवा, स्त्रीपर इति सरस्वत्या, जनक इति कीर्त्या, पतिरिति लक्ष्म्या, षण्ढ इति परकलत्रैर्जगत्पालक इति प्रजाभिरगृह्यत ।

प्रविवेश । § ५३) शरीरेति—ततस्तदनन्तरं सौन्दर्यलक्ष्म्या विनिवासभूमिस्तस्य सौन्दर्यश्रीसदनस्य एतस्य भरतस्य शरीरवल्ल्यास्तनुलतायाः कुसुमायमान पुष्पायमाण तारुण्यं यौवन सुवर्णखण्डस्य काञ्चनशकलस्य सुष्ठु गन्ध सुगन्ध' सुरभिर्यथा जजृम्भे ववृधे । रूपकोपमा । उपजातिवृत्तम् ॥३५॥ § ५४) पितुरिति—पितुर्जनकस्य वृषभजिनेन्द्रस्य यादृक् यादृशं ललितगमन सुन्दरगमनं तादृक्ललितगमनं, सैव च पितृसदृश्येव तनुर्मूर्ति 'स्त्रिया मूर्तिस्तनुस्तनू ' इति धनजय' । कला लीला सैव पितृसदृश्येव, स्मितमपि मन्दहसितमपि तदेव, द्युति कान्तिरपि सैव, वचो वचन शील स्वभाव. च तद्वत् पितुरिव मधुरं मनोहरम् । इत्येव सर्वेऽपि सुगुणा शोभनगुणा. तथैव पितुर्यथैव प्रोद्भूता प्रकटिता, गुणविशेषो गुणाना वैशिष्टच न तु व्यलसत शुशुभे । शिखरिणी छन्द ॥३६॥ § ५५) अयमिति—अय खलु एष किल, मनुकुलमेव पूर्वाचलस्तत्र द्युमणिर्विरोचन भूपालतनयेषु राजपुत्रेषु चूडामणि शिखामणिरिव श्रेष्ठो भरत, मदनो मीनकेतन इति मानिनीभि मनस्विनीभि, सुरतरु कल्पवृक्ष इति वनीपकजनैर्याचकजनै, वैवस्वतो यम इति विद्वेषिगणै शत्रुसमूहै., कलासदन चातुरीभवनम् इति कोविदैर्बुधै, गन्धर्वो गानप्रियदेवविशेष इति गायकै, स्नेह प्रणय इति धनैर्वित्तै, अनाश्रयणीय आश्रयितुमनर्हं इति दोषैरवगुणै, दुर्ग्रहा चित्तवृत्तिर्यस्य स दुर्ग्रहमनोवृत्तिरिति चित्तभुवा मनोजेन, स्त्रीपर. स्त्रीसक्त इति सरस्वत्या शारदया, जनकः पितेति कीर्त्या यशसा, पतिर्वल्लभ इति लक्ष्म्या, षण्ढ क्लीव इति परकलत्रै परपुरन्ध्रीभि, जगत्पालकस्त्रिभुवनत्राता इति प्रजाभिर्जनै अगृह्यत गृहीत ।

को गुँजाता हुआ राजभवनमे प्रवेश करता था । § ५३) शरीरेति—तदनन्तर सौन्दर्यलक्ष्मीकी निवासभूमि स्वरूप इस भरतका, शरीररूपी लताके समान आचरण करनेवाला यौवन, सुवर्ण खण्डकी सुगन्धके समान वृद्धिको प्राप्त होने लगा ॥३५॥ § ५४) पितुरिति—उसका पिताका जैसा ही सुन्दर गमन था, वही शरीर था, वही कला और लीला थी, वही मुसकान थी, वही कान्ति थी, वचन तथा शील भी उन्हींके समान थे इस तरह उसके सभी गुण पिताके समान ही प्रकट हुए थे, गुणोंमें थोड़ी भी विशेषता नहीं थी ॥३६॥ § ५५) अयमिति—मनुवशरूपी उदयाचलके सूर्य तथा राजपुत्रोंमे श्रेष्ठ इस भरतको यह काम है इस प्रकार स्त्रियोंने, कल्पवृक्ष है इस प्रकार याचक जनोंने, यम है इस प्रकार शत्रुदलोंने, कलाभवन है इस प्रकार विद्वानोंने, गन्धर्व है इस प्रकार गायकोंने, स्नेह है इस प्रकार धनोंने, अनाश्रयणीय है इस प्रकार दोषोंने, इसकी मनोवृत्तिको ग्रहण करना कठिन है इस प्रकार कामदेवने, स्त्रियोंमे आसक्त है इस प्रकार सरस्वतीने, जनक है इस प्रकार कीर्तिने, पति है इस प्रकार लक्ष्मीने, नपुसक है इस प्रकार परस्त्रियोंने और जगत्का रक्षक

§ ५६) मनुकुलवारिजदिनकरभरतगुणाब्धिर्हि कुशलिमकरोऽयम् ।
नक्रदयते कमपि च तद्युक्त भङ्गरहित इति चित्रम् ॥३७॥

§ ५७) नरजन्या लसमानो नखोज्ज्वलोऽय तथापि भरत इति ।
राजेति च प्रसिद्धि गत इति चित्तेऽपि नृत्यति विचित्रम् ॥३८॥

§ ५८) तदनु यः किल वज्रजङ्घभवे पुरोहितानन्दनस्ततोऽधोग्रैवेयकाहमिन्द्र. पीठ सर्वार्थसिद्धावहमिन्द्रश्च बभूव स खलु यशस्वत्या वृषभसेननामतनूजोऽजायत ।

§ ५९) श्रेष्ठी धनमित्रोऽप्यधोग्रैवेयकाहमिन्द्रो महापीठः सर्वार्थसिद्धावहमिन्द्रश्च सोऽयमधुनानन्तविजयो नाम तनयो बभूव ।

§ ६०) शार्दूलार्यश्च चित्राङ्गददेवो वरदत्तनृपोऽच्युतसामानिको विजयनृपश्च भूत्वा सर्वार्थसिद्धयहमिन्द्रः सोऽयमनन्तवीर्यो नाम तनयोऽजायत ।

§ ६१) वराहार्यश्च मणिकुण्डलामरो वरसेनभूपालोऽच्युतसामानिको वैजयन्तनृपश्च भूत्वा सर्वार्थसिद्धयहमिन्द्र' सोऽयमच्युतनाम सूनुरजायत ।

उल्लेखालकार: । § ५६) मनुकुलेति—कुशलस्य भाव. कुशलिमा कुशलत्व तस्य कर पक्षे कुशलिनो मकरा जलजन्तुविशेषा यस्मिन् तथाभूत अयम् मनुकुलवारिजदिनकरो मनुवशकमलकमलबन्धुर्यो भरतस्तस्य गुणाब्धिर्गुणसागर कमपि जनमिति शेष. न क्रन्दयते न रोदयति पक्षे कमपि विलक्षण नक्र जलजन्तुविशेष दयते रक्षति तद्युक्त योग्यम् किंतु भङ्गरहितस्तरङ्गरहित पक्षे विनाशरहित इति चित्रमाश्चर्यम् । श्लेषविरोधाभासौ । आर्यावृत्तम् ॥३७॥ § ५७) नरजन्येति—अय वृषभजिनेन्द्रसुत रजन्या रात्र्या न लसमानो न शोभमान., न खे गगने उज्ज्वलो देदीप्यमान. तथापि भेषु नक्षत्रेपु रत आसक्त इति, राजा चन्द्रश्च इति प्रसिद्धि प्रख्याति गत. प्राप्त इति चित्तेऽपि चेतस्यपि विचित्रमाश्चर्यं नृत्यति । पक्षे नरजन्या मनुष्यजन्मना लसमान , नखैर्नखरैरुज्ज्वलो देदीप्यमान इति नखोज्ज्वल., भरत इति नामधेय. राजा भूपतिरिति प्रसिद्धि

है इस प्रकार प्रजाओंने समझा था । § ५६) मनुकुलेति—कुशलिमकर—कुशलताको करनेवाला (पक्षमें अच्छे मगरोंसे सहित) सूर्यवशरूप कमलोंको विकसित करनेके लिए सूर्यस्वरूप भरतका गुणरूपी सागर किसीको भी नहीं रुलाता है—किसीको दु:खी नहीं करता है (पक्षमे नक्रपर दया करता है) यह उचित है किन्तु भंगरहित—तरंगरहित है यह आश्चर्य है । (पक्षमे विनाश—पराजयसे रहित है ॥३७॥ § ५७) नरजन्येति—भगवान् वृषभदेवका वह पुत्र न तो रात्रिसे शोभायमान था, और न आकाशसे उज्ज्वल ही था तो भी भरत—नक्षत्रोंमे रत और राजा—चन्द्र इस प्रकारकी प्रसिद्धिको प्राप्त हुआ था यह विचित्र बात मनमे भी सदा नृत्य करती रहती है (पक्षमें वह वृषभदेवका पुत्र मनुष्य जन्मसे शोभायमान था, नाखूनोसे देदीप्यमान था, भरत तथा राजा इस प्रकारकी प्रसिद्धिको प्राप्त था) ॥३८॥ § ५८) तदन्विति—तदनन्तर वज्रजङ्घभवमे जो आनन्द नामका पुरोहित था, फिर अधोग्रैवेयकमे अहमिन्द्र हुआ पश्चात् पीठ और सर्वार्थसिद्धिमे अहमिन्द्र हुआ था वह यशस्वतीके वृषभसेन नामका पुत्र हुआ । § ५९) श्रेष्ठीति—श्रेष्ठी धनमित्र भी अधोग्रैवेयकमे अहमिन्द्र, महापीठ और सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र हुआ था वह इस समय अनन्तविजय नामका पुत्र हुआ । § ६०) शार्दूलार्येति—शार्दूलार्यका जीव चित्रांगद देव, वरदत्त राजा, अच्युतस्वर्गका सामानिकदेव और विजय राजा होकर सर्वार्थसिद्धिका अहमिन्द्र हुआ था वह अनन्तवीर्य नामका पुत्र हुआ । § ६१) वराहार्येति—वराहार्यका जीव मणिकुण्डल-

§ ६२) वानरार्यश्च मनोहरदिविजश्चित्राङ्गदभूपालोऽच्युतसामानिको जयन्तमहीपतिश्च भूत्वा सर्वार्थसिद्धौ सजातोऽहमिन्द्रो वीरनामा तनूभवो बभूव ।

§ ६३) नकुलार्यश्च मनोहरदिविजः शान्तमदनमहीकान्तोऽच्युतसामानिकोऽपराजितनृपश्च भूत्वा सर्वार्थसिद्धौ सजातोऽहमिन्द्रो वरवीराभिधानः सूनुरजायत ।

§ ६४) इत्येकोनशत पुत्रा यशस्वत्या जिनेश्वरात् ।
भरतस्यानुजन्मानो बभूवुश्चरमाङ्गकाः ॥३९॥

§ ६५) ब्राह्मी तनूजामतिसुन्दराङ्गी ब्रह्माथ तस्यामुदपादयत्सः ।
कलानिधेः पूर्णकला मनोज्ञा प्राच्या दिशायामिव शुक्लपक्षः ॥४०॥

§ ६६) पूर्वोक्तवज्रजङ्घसेनानायकोऽकम्पनश्चाधोग्रैवेयकाहमिन्द्रो महाबाहुमहीपतिश्च भूत्वा सर्वार्थसिद्धौ सजातोऽहमिन्द्रो मृगेन्द्र इव कन्दरागर्भं सुनन्दागर्भमाविवेश ।

§ ६७) व्यपगतवलिभङ्गं सप्रवृद्धं मृगाक्ष्या
सुभगमुदरदेशं वीक्ष्य सद्वृत्तरूपौ ।

गत । श्लेषविरोधाभासौ । आर्यावृत्तम् । § ५८-६३) तदन्विति—श्रेष्ठीति,—शार्दूलार्येति,—वराहार्येति,—वानरार्येति—नकुलार्येति—सुगमं सर्वम् । § ६४) इत्येकोनेति—इतीत्थं जिनेश्वरात् वृषभात् यशस्वत्या भरतस्य अनु पश्चात् जन्म येषां ते, चरमाङ्गकाश्चरमशरीराः एकोनशतं नवनवति पुत्रा बभूवुः समुत्पन्ना ॥३९॥ § ६५) ब्राह्मीमिति—अथ तदनन्तरं स ब्रह्मा वृषभजिनेन्द्र तस्यां यशस्वत्यां शुक्लपक्षः प्राच्यां पूर्वस्यां दिशायां काष्ठायां कलानिधेरिन्दोः मनोज्ञां मनोहरां पूर्णकलामिव अतिसुन्दराङ्गी अतिकमनीयकलेवरां ब्राह्मीं तन्नाम्नीं तनूजां पुत्रीम् उदपादयत् जनयामास । उपमा । उपजाति ॥४०॥ § ६६) पूर्वोक्तेति—सुगमम् । § ६७) व्यपगतेति—मृगाक्ष्याः कुरङ्गलोचनायाः सुनन्दायाः सप्रवृद्धं समन्ताद्वृद्धिं प्राप्तं व्यपगता विनष्टा वलिभङ्गास्त्रिवलितरङ्गा यस्मिंस्तथाभूतं सुभगं सुन्दरं उदरदेशं जठरप्रदेशं वीक्ष्य दृष्ट्वा सद्वृत्तं समीचीनवर्तुलाकारं रूपं ययोस्तौ पक्षे सद्वृत्तं सच्चारित्रमेव रूपं स्वरूपं ययोस्तौ

नामका देव, वरसेन राजा अच्युतस्वर्गका सामानिक देव, और वैजयन्त नामका राजा होकर सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र हुआ था वह अच्युत नामका पुत्र हुआ । § ६२) वानरार्येति—वानरार्यका जीव मनोहरदेव, चित्रांगद राजा, अच्युतस्वर्गका सामानिक देव, और जयन्त राजा होकर सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र हुआ था वह वीरनामक पुत्र हुआ । § ६३) नकुलार्येति—नकुलार्यका जीव मनोरथ देव, शान्तमदन राजा, अच्युतस्वर्गका सामानिक देव और अपराजित नामका राजा होकर सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र हुआ था वह वरवीर नामका पुत्र हुआ । § ६४) इत्येकोनेति—इस प्रकार वृषभ जिनेन्द्रसे यशस्वतीके, भरतके पीछे जन्म लेनेवाले निन्यानवे चरमशरीरी पुत्र और हुए ॥३९॥ § ६५) ब्राह्मीमिति—तदनन्तर जिस प्रकार शुक्लपक्ष पूर्वदिशामें चन्द्रमाकी सुन्दर पूर्णकलाको उत्पन्न करता है उसी प्रकार वृषभ जिनेन्द्रने उस यशस्वतीमें अत्यन्त सुन्दर शरीरकी धारक ब्राह्मी नामकी पुत्रीको उत्पन्न किया ॥४०॥ § ६६) पूर्वोक्तेति—पूर्वोक्त वज्रजंघका सेनापति अकंपन अधोग्रैवेयकमें अहमिन्द्र और महाबाहु राजा होकर सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र हुआ था वह सुनन्दाके गर्भमें उस तरह प्रविष्ट हुआ जिस तरह कि मृगराज गुहाके गर्भमें प्रविष्ट होता है । § ६७) व्यपगतेति—त्रिवलिरूपी तरंगसे रहित तथा वृद्धिको प्राप्त हुए सुनन्दाके सुन्दर उदरको देखकर सद्वृत्तरूप—उत्तम गोल आकारवाले (पक्षमें सदाचार स्वरूप) और

बत सुरुचिरमुक्तोद्भूतशोभा दधाना-
वपि मलिनमुखत्वं प्रापतुर्द्रागुरोजौ ॥४१॥

§ ६८) सा किल विशालाक्षी दिशावशावल्लभसकाशकरेणुराजकलितसमरविलोकनविलासमतिकौतुकेन विलोकमाना नानाविधमल्लजननियुद्धकेलिकथामेव शुश्रूषन्ती क्रमेण नवमासेष्वतीतेषु बाहुबलिसमाह्वय तनयं जनयामास ।

§ ६९) विनृत्यद्वारस्त्रीचरणविरणन्नूपुररवै-
स्तथा भेरीध्वानै पटुदलितदिग्भित्तिपटलैः ।
परीतं साकेत पुरमभवदुत्तोरणकुल
समुद्भूते पुत्रे विमलपटकेतुप्रघटितम् ॥४२॥

§ ७०) वज्रजङ्घभवे यास्य भगिन्यासीदनुन्दरी ।
सा सुन्दरीत्यभूत्पुत्री वृषभस्यातिसुन्दरी ॥४३॥

सुरुचिराः सुन्दरा या मुक्ता मुक्ताफलानि ताभ्य उद्भूता समुत्पन्ना या शोभा ता पक्षे सुरुचिरा शोभनश्रद्धाप्रदायका ये मुक्ता. सिद्धपरमेष्ठिनस्तेषामुद्भूतशोभा समुत्कटशोभा दधानावपि बिभ्रतावपि उरोजौ कुचौ द्राग् झटिति मलिनमुखत्वं श्याममुखत्व पक्षे कृष्णाग्रभागत्व प्रापतुरिति बत खेद । सज्जनावपि दुर्जनवत्परगुणासहौ जाताविति खेदस्य विषय । श्लेष । मालिनी छन्दः ॥४१॥ § ६८) सा किलेति—सा किल विशालाक्षी दीर्घलोचना सुनन्दा, दिशावशावल्लभाना दिग्गजाना सकाशाः सदृशा ये करेणुराजा गजराजास्तै कलित. कृतो यः समरो रणस्तस्य विलोकनविलास दर्शनक्रीडाम् अतिकौतुकेन महाकुतूहलेन विलोकमाना पश्यन्ती, नानाविधमल्लजनाना या नियुद्धकेलि बाहुयुद्धक्रीडा तस्या कथामेव वार्तामेव शुश्रूषन्ती श्रोतुमिच्छन्ती क्रमेण नवमासेषु अतीतेषु सत्सु बाहुबलिसमाह्वयं बाहुबलिनामधेयं तनयं पुत्र जनयामास प्रासूत ॥ § ६९) विनृत्यदिति—पुत्रे सूतौ समुद्भवे समुत्पन्ने सति साकेतपुरमयोध्यानगरम् विनृत्यन्त्यो विशेषेण नृत्यं कुर्वन्त्यो या वारस्त्रियस्तासा चरणेषु विरणन्त शिञ्जितं कुर्वाणा ये नूपुरास्तुलाकोटयस्तेषा रवै शब्दै तथा पटु यथा स्यात्तथा दलितानि खण्डितानि दिग्भित्तीनामाशाकुड्याना पटलानि यैस्तै भेरीध्वानैर्दुन्दुभिनादै. परीत व्याप्त उद्गतानि तोरणकुलानि बहिर्द्वारनिकुरम्बाणि यस्मिंस्तत्, विमलपटकेतुभिर्निर्मलवैजयन्तीवस्त्रै प्रघटित सहितम् अभवत् । § ७०) वज्रजङ्घेति—वज्रजङ्घभवे वज्रजङ्घपर्याये अस्य भगवतो या अनुन्दरी तन्नाम्नी भगिनी स्वसा अभूत् सा

अत्यन्त सुन्दर मोतियोंसे उत्पन्न शोभाको (पक्षमे उत्कृष्ट श्रद्धा प्रदान करनेवाले सिद्धपरमेष्ठीके समान बहुत भारी शोभाको) धारण करनेवाले स्तन भी शीघ्र ही मलिन मुखपनेको प्राप्त हो गये थे यह खेदकी बात थी ॥४१॥ § ६८) सा किलेति—जिसके नेत्र अत्यन्त विशाल थे, जो दिग्गजोंके समान गजराजोंके द्वारा किये हुए युद्धके देखने सम्बन्धी विलासको बहुत भारी कौतुकसे देखती थी और नानाप्रकारके मल्लोंके बाहु युद्ध सम्बन्धी चर्चाको ही सुननेकी इच्छा रखती थी ऐसी उस सुनन्दाने क्रमसे नव माह व्यतीत होनेपर बाहुबली नामका पुत्र उत्पन्न किया । § ६९) विनृत्यदिति—उस समय पुत्रके उत्पन्न होनेपर अयोध्यानगरी विशिष्ट प्रकारका नृत्य करनेवाली वारागनाओंके चरणोंमे रुनझुन करनेवाले नूपुरोंके शब्दोंसे तथा अत्यधिक रूपसे दिशारूप दीवालोंके पटलोंको खण्डित करनेवाले दुन्दुभियोंके शब्दोंसे व्याप्त हो गयी थी। उस समय वहाँ ऊँचे-ऊँचे तोरण द्वार खड़े किये गये थे और निर्मल पताकाओंके वस्त्र फहराये गये थे ॥४२॥ § ७०) वज्रजङ्घेति—वज्रजघभवमे जो इनकी अनुन्दरी नामकी बहिन थी वह इन भगवान् वृषभदेवकी सुन्दरी नामकी अत्यन्त

§ ७१) स्वर्णस्फुरत्सरोजश्रिय वितन्वन्तमुदितमभ्रमितम् ।
रविमिव विभया प्राची पुत्र पुत्र्या सहाभजत्सैपा ॥४४॥

§ ७२) तत्कालकामदेव तारुण्यश्रीमनोहराकारम् ।
को वर्णयितु शक्तो भुजवलिनं त त्रिलोकरमणीयम् ॥४५॥

§ ७३) यस्य च चञ्चरीकसचयधिक्कारिणी कुन्तलराजी, राजीवसुहृद्वदनप्रभा, प्रभाकरनिभ कुण्डलमहो, महोत्पलच्छविर्नयनलक्ष्मी', लक्ष्मीनिकेतन वक्षोवलय, वलयविलसित करयुगल, गलविलसिता मुक्तावली, वलित्रयभासुर सुभगोदर, दरहसित तुलितेन्दुविम्व, विम्वसहोदरमधरपल्लव, पल्लवकोमल पादयुग, युगायतो भुजविलासो, विलासवतीमनोहरा तनुलतेति ।

वृपभस्य जिनेन्द्रस्य अतिसुन्दरी रमणोयतरा सुन्दरोति नामधेया पुत्री सुता अभूत् ॥४३ ॥ § ७१) स्वर्णस्फुरदिति—एपा सा सुनन्दा प्राची पूर्वाशा विभया प्रभया सह रविमिव सूर्यमिव पुत्र्या दुहित्रा सह पुत्रं सूनुम् अभजत् प्रापत् । अथ पुत्ररव्यो सादृश्यमाह—स्वर्णस्य कनकस्य स्फुरद् विकसत् यत्सरोज कमल तद्वत् श्रीः शोभा ता पक्षे सुष्ठु अर्णं स्वर्ण सुजल तस्मिन् स्थितानि यानि सरोजानि कमलानि तेपा श्रिय शोभा वितन्वन्त विस्तारयन्तम्, उदित प्राप्तजन्मान पक्षे प्राप्तोदयम्, भ्रम सजातो यस्य स भ्रमित संदेहयुक्त न भ्रमित इत्यभ्रमितस्त सन्देहातीत पक्षे अभ्र गगनम् इत प्राप्तम् । श्लेपोपमा । आर्या ॥४४॥ § ७२) तत्कालेति—तत्कालकामदेव स चासौ काल तत्कालस्तत्समय तृतीयकालान्त इत्यर्थ तत्र कामदेवस्त चतुर्विंशति कामदेवा भवन्ति तेष्वय प्रथमकामदेवपदवीधारकोऽभूदिति भाव , तारुण्यश्रिया यौवनलक्ष्म्या मनोहर आकारो यस्य त त्रिलोकरमणीय त्रिभुवनैकसुन्दर त भुजवलिन वाहुवलिन वर्णयितु कः शक्त क' समर्थ । न कोऽपीत्यर्थं । आर्या ॥४५॥ § ७३) यस्य चेति—यस्य च वाहुवलिन कुन्तलराजी अलकपङ्क्तिः चञ्चरीकसचयस्य भ्रमरसमूहस्य धिक्कारिणी तिरस्कारिणी, वदनप्रभा मुखकान्ति. राजीवसुहृद् कमलमित्रम्, कुण्डलमह. कर्णाभरणतेज प्रभाकरनिभं सूर्यसदृश, नयनलक्ष्मी नेत्रश्री महोत्पलस्यारविन्दस्येव छविर्यस्यास्तथाभूता, वक्षोवलय उर.स्थल लक्ष्मीनिकेतन श्रीसदन, करयुगल पाणियुग वलयविलसित कटकालकृत, मुक्तावली हारयष्टि गलविलसिता कण्ठविभूषिता, सुभगोदर सुन्दरजठर वलित्रयभासुर रेखात्रितयशोभित, दरहसित मन्दहसित तुलितेन्दुविम्व उपमितमृगाङ्कमण्डलम्, अधरपल्लव अधरोष्ठकिसलय विम्वसहोदर पक्वरुचकफलसदृश, पादयुग चरणयुगल पल्लवकोमल किसलयमृदुल, भुजाविलासो वाहुविलासो युगायतो युगवद्दीर्घ वृषभाणा स्कन्धेपु ध्रियमाण. काष्ठदण्डो युगपदेन गद्यते 'जुवा' इति हिन्दीभाषाया, तनुलता

सुन्दर पुत्री हुई ॥४३॥ § ७१) स्वर्णेति—जिस प्रकार पूर्वदिशा प्रभाके साथ उत्तम जलमें स्थित कमलोंकी शोभाको बढ़ानेवाले, उदित तथा आकाशको प्राप्त हुए सूर्यको प्राप्त होती है उसी प्रकार यह सुनन्दा भी पुत्रीके साथ स्वर्गनिर्मित विकसित कमलके समान शोभाको विस्तृत करनेवाले, अभ्युदयको प्राप्त तथा सन्देहरहित पुत्रको प्राप्त हुई थी ॥४४॥ § ७२) तत्कालेति—जो उस समयके कामदेव थे, जिनका शरीर यौवनकी लक्ष्मीसे अत्यन्त मनोहर था और जो तीनों लोकोमें अद्वितीय सुन्दर थे ऐसे उन बाहुबलीका वर्णन करने के लिए कौन समर्थ हो सकता है ? ॥४५॥ § ७३) यस्य चेति—जिस बाहुबलीकी केशपंक्ति भ्रमर समूहका धिक्कार करनेवाली थी, मुखकी प्रभा कमलका मित्र थी, कुण्डलका तेज सूर्यके समान था, नयनोंकी लक्ष्मी कमलके समान कान्तिवाली थी, वक्षस्थल लक्ष्मीका घर था, हस्तयुगल कटकसे सुशोभित था, मोतियोंका हार गलेमें सुशोभित था, सुन्दर उदर त्रिवलियोंसे शोभित था, मन्दहास्य चन्द्रमण्डलके समान था, अधरपल्लव रुचकफलके समान था, चरणयुगल पल्लवके समान कोमल था, भुजाएँ युगके समान लम्बी

§ ७४) यस्य च बलोद्दण्डो भुजदण्डः पराक्रमलक्ष्मीपर्यङ्क इव, राज्यलक्ष्म्या उपधानखण्ड इव, प्रकृतिजनानामालम्बनदण्ड इव, शत्रुबलजलधेर्मन्थानदण्ड इव, कीर्तिलक्ष्म्या केतुदण्ड इव, जयश्रीलताया उपघ्नदण्ड इव च व्यराजत ।

§ ७५) धातु' शिल्पादिरम्यप्रकटनतिलकस्थानमेन स्वरूप
य दृष्ट्वा सारसाक्ष्यो रजनिकरशिलापुत्रिकावद्द्रुता' स्युः ।
शत्रुक्षोणीधुरीणा जगति सुविदिता ये तु संग्रामसिंहा-
स्ते सर्वे ग्रामसिंहाः सपदि समभवन्सपद सत्यजन्त ॥४६॥

§ ७६) एकोत्तर शतमिमे मधुरा कुमाराः
कान्त्या गुणेन विभवेन च तुल्यरूपा ।
ते यौवनेन भरतप्रमुखा विरेजु-
र्वन्या मनोहरमदेन यथा द्विपेन्द्रा ॥४७॥

देहवल्ली विलासवतो मनोहरा रमणीचेतोहरा, आसीदिति शेष । शृङ्खलायमकालकार. । § ७४) यस्य चेति—यस्य च बाहुबलिनो बलेन पराक्रमेणोद्दण्ड उत्कट इति बलोद्दण्डो, भुजो दण्ड इवेति भुजदण्डो बाहुदण्डः, पराक्रमलक्ष्म्या वीर्यश्रिया पर्यङ्क इव मञ्च इव, राज्यलक्ष्म्या राजश्रिया उपधानखण्ड इव उप-समीपे धीयते स्थाप्यत इत्युपधान 'तकिया' इति प्रसिद्ध तस्य खण्ड शकलमिव, प्रकृतिजनानाममात्यादीनाम् आलम्बनदण्ड इवाश्रयदण्ड इव, शत्रुबलमेव रिपुसैन्यमेव जलधिः सागरस्तस्य मन्थानदण्ड इव, कीर्तिलक्ष्म्या यश श्रिय केतुदण्ड इव पताकादण्ड इव, जयश्रीलताया विजयलक्ष्मीवल्ल्या उपघ्नदण्ड इवाश्रयतरुरिव च व्यराजत व्यशोभत । मालोपमा । § ७५) धातुरिति—धातु ब्रह्मण. वृषभजिनेन्द्रस्येति यावत्, शिल्पादिरम्याणा शिल्पप्रभृतिसुन्दरकलाना प्रकटनाय प्रकटीकरणाय तिलकस्थान श्रेष्ठस्थान, सुरूप सुन्दर एन यं बाहुबलिनं दृष्ट्वा समवलोक्य सारसाक्ष्य कमललोचनाः स्त्रियः रजनिकरशिलापुत्रिकावत् चन्द्रकान्तमणिनिर्मित-पुत्तलिकावत् द्रुता प्राप्तद्रवा स्यु भवेयु । जगति भुवने सुविदिता प्रसिद्धतरा शत्रुक्षोणीधुरीणा प्रत्यर्थि-पृथिवीप्रधाना ये तु सग्रामेषु सिंहा इवेति सग्रामसिंहा समरशूरा आसन् ते सर्वे सपदि शीघ्र सपद सपत्ति पक्षे 'सम्' इति पद सपद सत्यजन्तो मुञ्चन्त ग्रामसिंहा श्वान समभवन् बभूवु. । सग्रामसिंहा 'सम्' इति पदत्यागे ग्रामसिंहा भवन्त्येवेति भाव । स्रग्धरा छन्द ॥४६॥ § ७६) एकोत्तरमिति—एकोत्तर शतम् एकोत्तरशतसख्याका इमे मधुरा मनोहरा' कुमारा कान्त्या दीप्त्या, गुणेन दयादाक्षिण्यादिगुणेन विभवेन

थीं और शरीरलता स्त्रियोंके मनको हरण करनेवाली थी। § ७४) यस्य चेति—जिस बाहुबलीका अत्यन्त बलिष्ठ भुजदण्ड पराक्रम रूपी लक्ष्मीके पलंगके समान, राज्यलक्ष्मीके तकियाके समान, मन्त्री आदि प्रकृतिजनोंके आलम्बनदण्डके समान, शत्रुसेनारूपी समुद्रको मथनेवाले मन्थानदण्डके समान, कीर्तिरूपी लक्ष्मीके पताकादण्डके समान और विजयलक्ष्मी रूपी लताके आश्रयदण्डके समान सुशोभित हो रहा था। § ७५) धातुरिति—आदि ब्रह्माके शिल्प आदि सुन्दर कार्योंके प्रकट करनेके श्रेष्ठ स्थानस्वरूप, अत्यन्त सुन्दर जिस बाहुबलीको देखकर स्त्रियाँ चन्द्रकान्त मणिकी पुतलियोंके समान द्रवीभूत हो जाती थीं यह तो ठीक ही था परन्तु शत्रुओंकी पृथिवीमें प्रसिद्ध तथा जगत्में अत्यन्त ख्याति प्राप्त जो संग्रामसिंह—रणकलामें शूर-वीर थे वे सब जिस बाहुबलीको देखकर शीघ्र ही संपद—सम्पत्ति (पक्षमें 'सम्' इस पद) को छोड़ते हुए ग्रामसिंह—श्वान हो गये थे—श्वानके समान निर्बल हो गये थे ॥४६॥ § ७६) एकोत्तरमिति—ये एक सौ एक मनोहर पुत्र कान्ति, गुण तथा वैभवसे

§ ७७) भूषारत्नमणीघृणिप्रसरणव्याप्ताखिलाशान्तराः
कान्त्या कोमलया जितासमशराः कारुण्यवाराकरा.।
गाम्भीर्येण पयोनिधिं स्थिरतया भूमिं महिम्ना कुल-
क्षोणीध्रा ननु कुर्वते स्म त इमे दानेन कल्पद्रुमान् ॥४८॥

इत्यर्हद्दासकृतौ पुरुदेवचम्पूप्रबन्धे षष्ठ. स्तवक ॥६॥

सामर्थ्येण च तुल्यरूपा समाना आसन्। भरतप्रमुखा भरतादय' ते कुमारा यौवनेन तारुण्येन मनोहरमदेन सुन्दरदानेन वन्या वनोत्पन्ना द्विपेन्द्रा यथा गजराजा इव विरेजु शुशुभिरे। उपमा। वसन्ततिलका छन्दः ॥४७॥ § ७७) भूषेति—भूषारत्नमणीना भूषणरत्नमाणिक्याना घृणिप्रसरणेन किरणप्रसारेण व्याप्तानि परीतानि अखिलाशाना निखिलदिशानामन्तराणि यैस्तथाभूता., कोमलया मृदुलया कान्त्या रुच्या जित पराभूतोऽसमशर कामो यैस्ते, कारुण्यवाराकरा दयासागरा, त इमे कुमारा गाम्भीर्येण धैर्येण पयोनिधिं पारावार स्थिरतया दृढतया भूमिं वसुधा, महिम्ना औन्नत्येन कुलक्षोणीध्रान् कुलाचलान्, दानेन त्यागेन 'त्यागो विहापित दानम्' इत्यमर। कल्पद्रुमान् सुरतरून् अनुकुर्वते स्म अनुचक्रु। उपमा। शार्दूलविक्रीडित छन्द. ॥४८॥

इत्यर्हद्दासकृते पुरुदेवचम्पूप्रबन्धस्य 'वासन्ती'समाख्याया
संस्कृतव्याख्याया षष्ठ स्तवक ॥६॥

एक समान थे। भरतको आदि लेकर वे सब कुमार यौवनसे, मनोहरमदसे वनमे उत्पन्न हुए गजराजके समान सुशोभित हो रहे थे ॥४७॥ § ७७) भूषेति—आभूषणोंमें लगे हुए रत्न और मणियोंकी किरणोंके प्रसारसे जिन्होंने दिशाओंके अन्तरालको व्याप्त कर रखा था, जिन्होंने कोमल कान्तिके द्वारा कामदेवको जीत लिया था तथा जो दयाके सागर थे ऐसे उन इन कुमारोंने गम्भीरतासे समुद्रका, स्थिरतासे पृथिवीका, महिमासे कुलाचलोंका और दानसे कल्पवृक्षोंका अनुकरण किया था ॥४८॥

इस प्रकार अर्हद्दासकी कृति पुरुदेवचम्पू प्रबन्धमें
छठवाँ स्तवक समाप्त हुआ ॥६॥

सप्तमः स्तबकः

§ १) अथ जातुचिदमरकुमारपल्लवनिर्लोलचामरविधूननजनितमन्दगन्धवहान्दोलितविमलदुकूलाञ्चल., त्रिदशवन्दिसदोहसस्तूयमानगर्भावतरणजन्माभिषवणप्रमुखनिसर्गमहिमाकर्णनसमुदीर्णलज्जया किंचिदवनतवदनसरोरुह', सततसमवनतदिविजमनुजविद्याधरव्रजमुकुटघटितमणिमरीचिपुञ्जपिञ्जरितोत्तुङ्गसिंहासनमलकुर्वाणो वृषभेश्वरः सकलहृद्यतमविद्योपदेशाय मतिं व्यापारयामास ।

§ २) उद्भिन्नस्तनकुड्मले मृदुरणत्काञ्चीकलापाञ्चिते
शिञ्जन्मञ्जुलनूपुरेद्धचरणन्यासे चकोरेक्षणे ।
कान्तिं काञ्चनरेणुराजिसदृशीमङ्गै' किरन्त्यौ पुरो
ब्राह्मी ससदि सुन्दरी च समितौ प्राप्ते समीप गुरो' ॥१॥

---

§ १) अथेति—अथानन्तर जातुचित् कदाचित् अमरकुमाराणा देवकुमाराणा करपल्लवैर्हस्तकिसलयैर्निर्लोला नि शेषेण चपला ये चामरा' प्रकीर्णकास्तेषा विधूननेन कम्पनेन जनित समुत्पादितो यो मन्दगन्धवहो मन्दपवनस्तेनान्दोलित चलित विमलदुकूलाञ्चल निर्मलक्षौमप्रान्तो यस्य तथाभूत , त्रिदशवन्दिसदोहेन अमरमागधमण्डलेन सस्तूयमान सम्यक्स्तुतिविषयीक्रियमाणो यो गर्भावतरण-जन्माभिषवणप्रमुखो गर्भजन्मकल्याणप्रधानो निसर्गमहिमा स्वाभाविकमहिमा तस्याकर्णनेन श्रवणेन समुदीर्णा प्रकटिता या लज्जा त्रपा तया किंचित् मनाग् अवनत नम्र वदनसरोरुह मुखकमल यस्य तथाभूत , सतत शश्वत् समवनता नम्रीभूता ये दिविजमनुजविद्याधरा देवमनुष्यखेचरास्तेषा व्रजस्य समूहस्य मुकुटतटे मौलितटे घटिता खचिता ये मणयस्तेषा मरीचिपुञ्जेन किरणकलापेन पिञ्जरित पीतवर्णीकृत यद् उत्तुङ्गसिंहासनं समुन्नतमृगेन्द्रासन तत् अलकुर्वाणो वृषभेश्वर प्रथमजिनेन्द्र सकलहृद्यतमविद्याना निखिलचारुतमविद्यानामुपदेशस्तस्मै मतिं मनीषा व्यापारयामास व्यापृता विदधे । § २) उद्भिन्नेति—उद्भिन्नौ प्रकटितौ स्तनकुड्मलौ कुचकुड्मलौ ययोस्ते, मृदु कोमल यथा स्यात्तथा रणता शब्द कुर्वता काञ्चीकलापेन मेखलामण्डलेन अञ्चिते शोभिते, शिञ्जद्भिरव्यक्तशब्दविशेष कुर्वद्भि मञ्जुलनूपुरैर्मनोहरतुलाकोटिभिरिद्धो देदीप्यमानश्चरणन्यास पादनिक्षेपो ययोस्ते, चकोरेक्षणे चकोरलोचने, अङ्गैरवयवै पुरोऽग्रे काञ्चनरेणुराजिसदृशी कनकपरागपङ्क्तिप्रतिमां कान्ति दीप्ति

---

§ १) अथेति—तदनन्तर किसी समय देवकुमारोंके करपल्लवोसे चचल चामरोंके ढोरनेसे उत्पन्न मन्द-मन्द वायुसे जिनके रेशमी वस्त्रका अचल हिल रहा था, देव वन्दियोंके समूहके द्वारा अच्छी तरह स्तुति की जानेवाली गर्भावतरण तथा जन्माभिषेक आदिकी स्वाभाविक महिमाके सुननेसे उत्पन्न लज्जाके द्वारा जिनका मुखकमल कुछ-कुछ नम्र हो रहा था, और जो निरन्तर नम्रीभूत देव, मनुष्य और विद्याधरोंके समूह-सम्बन्धी मुकुटतटोंमे लगे हुए मणियोंके किरण समूहसे पीतवर्ण ऊँचे सिंहासनको अलकृत कर रहे थे ऐसे भगवान् वृषभदेवने समस्त उत्तमोत्तम विद्याओंके उपदेशके लिए बुद्धिको व्याप्त किया अर्थात् लोकहितकारी विद्याओंके उपदेश देनेका विचार किया । § २) उद्भिन्नेति—जिनके कमलकी बोडियोंके समान स्तन प्रकट हुए थे, जो कोमल शब्द करनेवाली करधनियोंके समूहसे

§ ३) ते किल बाल्यादनन्तरे वयसि वर्तमाने विहारसदने मेधाविलासिन्याः, चन्द्रिके विनयाम्बुधेः, कुलसदने शीलसंपदां, सीमाभूते सौन्दर्यस्य, सकलमानवतीजननवनपात्रे, मृदुपादविन्यासेन पुरतः प्रकीर्णरक्ताम्बुजोपहारश्रियं व्यातन्वाने, नखमणिदर्पणसंक्रान्तनिजतनुलताच्छायाच्छलेन रूपसंपदा विनिर्जितं पादमुपाश्रितं दिक्कुमारीनिकरमिव दर्शयन्त्यौ, मदनसदनाग्रभागप्रसद्धूपधूमरेखामिव नाभिनिपानावतरणार्थमिन्द्रनीलमणिखचितसोपानपरम्परामिव, अगाधतरनाभिकूपखननश्रान्तेन वेधसा तन्निकटे क्षिप्तां खननशलाकामिव रोमराजिलतां बिभ्राणे, सद्भूपतिसभासनिवेशमिव, सुमनोजनवादरणस्थानं, पद्माकरमिव सद्यस्तनकुड्मलशोभितं, सुरेन्द्रनन्दनवन-

---

किरन्त्यौ प्रक्षिपन्त्यौ ब्राह्मी सुन्दरी च इमे द्वे कन्ये समितौ सभायां गुरोः पितुः समीपं निकटं प्राप्ते गते। शार्दूलविक्रीडितछन्दः ॥१॥ § ३) ते किलेति—ते किल कन्ये बाल्यात् शैशवात् अनन्तरे निकटगते वयसि दशायां वर्तमाने, मेधाविलासिन्या बुद्धिविलासिन्या विहारसदने क्रीडाभवने, विनयाम्बुधेर्विनयसागरस्य चन्द्रिके ज्योत्स्ने, शीलसंपदां शीलसंपत्तीनां कुलसदने कुलभवने, सौन्दर्यस्य लावण्यस्य सीमाभूते अवधिभूते, सकलमानवतीजनस्य निखिलनारीनिकुरम्बस्य नवनपात्रे स्तुतिपात्रे, मृदुपादविन्यासेन कोमलचरणनिक्षेपेण पुरतोऽग्रे प्रकीर्णरक्ताम्बुजोपहारश्रियं प्रक्षिप्तकोकनदोपायनशोभां व्यातन्वाने कुर्वाणे, नखा नखरा एव मणिदर्पणा रत्नादर्शास्तेषु संक्रान्ता प्रतिफलिता या निजतनुलता स्वशरीरवल्ली तस्याः छायायाः प्रतिबिम्बस्य छलेन व्याजेन रूपसंपदा सौन्दर्यसंपत्त्या विनिर्जितं पराभूतम् अतएव पादमुपाश्रितं चरणमुपगतं दिक्कुमारीनिकरमिव काष्ठाकुमारीकदम्बकमिव दर्शयन्त्यौ प्रकटयन्त्यौ, मदनसदनं वराङ्गमेव कामनिकेतनं तस्याग्रभागे प्रसरन्ती प्रसरणशीला या धूपधूमस्य धूपधूम्रस्य रेखा लेखा तामिव, नाभिनिपाने तुन्दिजलाशयेऽवतरणार्थं इन्द्रनीलमणिखचिता या सोपानपरम्परा निःश्रेणिसंततिस्तामिव, अगाधतरो गम्भीरतरो यो नाभिकूपस्तुन्दिप्रहिस्तस्य खननेनावदारणेन श्रान्तः क्लान्तस्तेन वेधसा विधात्रा तन्निकटे नाभिप्रहिसमीपे क्षिप्तां पातितां खननशलाकामिव लोहकुशीमिव रोमराजिलतां लोमरेखावल्ली बिभ्राणे दधाने, सद्भूपतेः सन्नृपतेः सभासंनिवेशमिव समितिसदनमिव सुमनोजस्य सुकामस्य यत् नवादरणं प्रत्यग्रप्रीतिस्तस्य स्थानं पक्षे सुमनोजनानां

शोभित थीं, जिनके चरणोंके निक्षेप रुनझुन करते हुए मनोहर नूपुरोंसे देदीप्यमान थे, जिनके नेत्र चकोरके समान थे, और जो अपने अंगोंसे आगे सुवर्णधूलिके सदृश कान्तिको बिखेर रही थीं ऐसी ब्राह्मी और सुन्दरी कन्याएँ सभामें अपने पिताके निकट पहुँचीं ॥१॥ § ३) ते किलेति—उस समय वे कन्याएँ बाल्यअवस्थाके बाद आनेवाली अवस्थामें विद्यमान थीं, बुद्धिरूपी विलासिनीकी क्रीडागृह थीं, विनयरूप समुद्रके लिए चाँदनी थीं, शीलरूप सम्पत्तियोंके कुलभवन थीं, सौन्दर्यकी सीमास्वरूप थीं, समस्त स्त्रीसमूहकी स्तुतियोंकी पात्र थीं, कोमल चरणनिक्षेपसे आगे फैलाये हुए लालकमलोंके उपहारकी शोभाको विस्तृत कर रही थीं। उनके नखरूपी मणिमयदर्पणोंमें उन्हींके शरीरकी छाया पड़ रही थी जिससे वे ऐसी जान पड़ती थीं मानो सौन्दर्यरूप सम्पत्तिके द्वारा पराजित होनेके कारण सेवाके लिए चरणोंमें आयी हुई दिक्कुमारियोंके समूहको ही दिखला रही हों, वे जिस रोमराजिरूपी लताको धारण कर रही थीं वह ऐसी जान पड़ती थी मानो काममन्दिरके अग्रभागमें फैलती हुई धूपसम्बन्धी धूमकी रेखा ही हो, अथवा नाभिरूपी जलाशयमें उतरनेके लिए निर्मित इन्द्रनीलमणियोंसे खचित सीढ़ियोंकी ही परम्परा हो, अथवा बहुत गहरे नाभिरूपी कुएँको खोदनेसे थके हुए विधाताके द्वारा उसके निकट डाली हुई लोहकी कुशी ही हो। वे जिस वक्षःस्थलको धारण कर रही थीं वह किसी अच्छे राजाके सभास्थलके समान जान पड़ता था क्योंकि जिस प्रकार सभास्थल सुमनोजन-वादरणस्थान—विद्वज्जनोंके शास्त्रार्थरूपी युद्धका

मिव सुरतरुचिरलीलास्पद मञ्जुलकुचोज्ज्वल च, मुक्तिप्रदेशमिव मुक्ताधिकशोभाञ्चित वक्ष स्थल दधाने, पूर्वाचलमिवारुणबिम्बप्रकाशं, मरुमार्गमिव विद्रुमच्छायं, वन्धुजीवप्रभाहरमपि अधिकारुण्य वहन्तं सुरागमप्यधरमुद्वहन्त्यौ, कन्दर्पजैत्रास्त्रे इव नेत्रे पुरो व्यापारयन्त्यौ, लोलालकप्रतिबिम्बसगताभ्या कपोलाभ्या सकलङ्कस्य सुधाकरस्य लक्ष्मी ह्लेपयन्त्यौ, चिकुरनिकररुचिरेण वदनेन

विद्वज्जनाना वादरणस्य शास्त्रार्थसमरस्य स्थान, पद्माकरमिव कमलसर इव सद्यस्तनकुड्मलाभ्या तत्कालोद्भिन्नकुलमुकुलाभ्या शोभित समलङ्कृत पक्षे सद्योभवा सद्यस्तनास्ते च ते कुड्मलाश्चेति सद्यस्तनकुड्मलास्तैः शोभितं, सुरेन्द्रनन्दनवनमिव पुरन्दरनन्दनोद्यानमिव सुरत-रुचिर-लीलास्पद सुरतस्य सभोगस्य या रुचिरा मनोहरा लीला क्रीडा तस्या आस्पदं स्थान पक्षे सुरतरूणा कल्पवृक्षाणा चिरलीलाया दीर्घकालव्यापिशोभाया आस्पद स्थानं, मञ्जुलकुचोज्ज्वल च मञ्जुलाभ्या मनोहराभ्या कुचाभ्या स्तनाभ्यामुज्ज्वल च शोभित च पक्षे मञ्जुलैर्मनोहरैर्लकुचैर्डहुभि 'लकुचो लिकुचो डहु' इत्यमर, मुक्तिप्रदेशमिव निर्वृत्तिस्थानमिव मुक्ताधिकशोभित मुक्ताना मुक्ताफलाना पक्षे सिद्धपरमेष्ठिनाम् अधिका प्रभूता पक्षे के आत्मनि इति अधिकम् आत्मसंबन्धिनी या शोभा तया अञ्चित शोभित वक्ष स्थल मुर स्थल दधाने बिभ्राणे, पूर्वाचलमिव पूर्वाद्रिमिव अरुणबिम्बप्रकाश पक्वरुचकफलसदृशप्रकाश पक्षे अरुणबिम्बस्य सूर्यमण्डलस्य प्रकाशो यस्मिस्तम्, मरुमार्गमिव मरुस्थलपथमिव विद्रुमच्छाय विद्रुमप्रवालस्य छायेव छाया कान्तिर्यस्य त पक्षे विगता द्रुमाणा वृक्षाणा छायानातपो यस्मिस्तम्, बन्धुजीवप्रभाहरमपि सनाभिजीवस्फूर्तिविनाशकमपि अधिकारुण्य अविगत कारुण्यमधिकारुण्य प्राप्तकरुणाभाव वहन्तं दधतमिति विरुद्ध पक्षे बन्धुजीवाना द्विप्रहरिका पुष्पविशेषाणा प्रभाया. कान्तेर्हरमपि अधिक च तत् आरुण्य चेति अधिकारुण्य प्रभूतरक्तत्व वहन्त दधतं, सुरागमपि सुराणा देवानामग. पर्वतस्तथाभूतमपि अधर न धर: पर्वत इत्यधरस्त पक्षे सुष्ठु रागो यस्य तथाभूतमपि अधर अधरसज्ञासहित नीचैस्तनरदनच्छदम् उद्वहन्त्यौ दधत्यौ, कन्दर्पस्य कामस्य जैत्रास्त्रे इव विजयिशस्त्रे इव नेत्रे नयने पुरोऽग्रे व्यापारयन्त्यौ चालयन्त्यौ, लोलालकाना चञ्चलकुन्तलाना प्रतिबिम्बेन सगताभ्या सहिताभ्या कपोलाभ्या

स्थान होता है उसी प्रकार उनका वक्ष स्थल भी सुमनोज-नवादरण-स्थान-कामकी नूतन प्रीतिका स्थान था, अथवा कमलसरोवरके समान था क्योंकि जिस प्रकार कमलसरोवर सद्यस्तनकुड्मलशोभित—तत्काल उत्पन्न हुई बोंडियोंसे शोभित होता है उसी प्रकार उनका वक्षःस्थल भी सद्यस्तनकुड्मलशोभित—तत्काल प्रकट होनेवाले बोंडियोंके सदृश स्तनोंसे सुशोभित था, अथवा इन्द्रके नन्दनवनके समान था क्योंकि जिस प्रकार इन्द्रका नन्दनवन सुरतरु-चिरलीलास्पद—कल्पवृक्षोंकी चिरस्थायी शोभाका स्थान होता है उसी प्रकार उनका वक्षस्थल भी सुरत-रुचिर-लीलास्पद—सभोगसे सुन्दर क्रीडाका स्थान था, तथा जिस प्रकार इन्द्रका नन्दनवन मंजुलकुचोज्ज्वल—मनोहरलुकाटके वृक्षोंसे उज्ज्वल होता है उसी प्रकार उनका वक्षःस्थल भी मजुलकुचोज्ज्वल—मनोहर स्तनोंसे देदीप्यमान था, अथवा उनका वह वक्षःस्थल मुक्तिप्रदेश—मोक्षस्थानके समान जान पड़ता था, क्योंकि जिस प्रकार मोक्षस्थान मुक्ताधिकशोभाञ्चित—सिद्धपरमेष्ठियोंकी आत्मसम्बन्धी शोभासे सहित होता है उसी प्रकार वक्षःस्थल भी मुक्ताधिकशोभांचित—मोतियोंकी अत्यधिक शोभासे सहित था। वे जिस अधरोष्ठको धारण कर रही थीं वह पूर्वाचल—उदयाचलके समान अरुणबिम्बप्रकाश—लालरुचकफलके समान प्रकाशसे युक्त (पक्षमें सूर्यबिम्बके प्रकाशसे सहित) था, मरुस्थलके मार्गके समान विद्रुमच्छाय—मूँगाके समान कान्तिसे युक्त (पक्षमें वृक्षोंकी छायासे रहित) था, और बन्धुजीव-प्रभाहर—बन्धुजनोंके प्राणोंकी प्रभाको हरनेवाला होकर भी अधिकारुण्य—अधिक दयालुताको धारण करता था (पक्षमें दुपहरियाके फूलोंकी प्रभाको हरनेवाला होकर भी अधिक लालिमाको धारण करता) तथा सुराग—देव पर्वत होकर भी अधर—

§ ९) त्रिभुवनपते ! श्रीमन् ! स्वामिन् ! दयागुणशेवधे !
वयमतिभयाद्युष्मत्पादाम्बुज शरण गताः ।
तदुचिततमा वृत्ति व्यावेद्य रक्ष भवत्प्रजा-
स्तरुततिरिय नष्टा सस्यानि नैव फलन्ति च ॥५॥

§ १०) पिपासा क्षुद्बाधा तरलयति चित्त प्रतिदिन
निराहाराणा नस्त्रिभुवनपते ! त्राहि दयया ।
तथा जाता बाधा घनपवनवर्षातपमुखै-
र्निराधारानस्मान्निरवधि दुनोत्याकुलयति ॥६॥

§ ११) ततोऽस्माक यथाद्य स्याज्जीविका निरुपद्रवा ।
तथोपदेष्टुमुद्योग कुरु देव ! प्रसीद नः ॥७॥

§ १२) इति प्रजाना विज्ञापनशैलो निशम्य विशालतरकरुणस्त्रिभुवनरमण पूर्वापरविदेहे-ष्विव ग्रामारामनगरादीनि च षट्कर्माणि प्रकृतिविततिजीवनाय व्यवस्थापनोयानीति निश्चित्य

वक्ष्यमाणप्रकारेण विज्ञापयामासु कथयामासु । § ९) त्रिभुवनेति—हे त्रिभुवनपते ! हे त्रिलोकीनाथ ! हे श्रीमन् ! लोकोत्तरलक्ष्मीशालिन् ! हे स्वामिन् ! हे स्वामिगुणोपेत ! हे दयागुणशेवधे ! हे करुणागुणनिधे ! वयम् अतिभयात् तीव्रभीते युष्मत्पादाम्बुज भवच्चरणकमल शरण रक्षितृबुद्धया गता प्राप्ता । तत्तस्मात्कारणात् उचिततमा योग्यतमा वृत्ति जीविका व्यावेद्य कथयित्वा भवत्प्रजा स्वप्रकृतीः रक्ष त्रायस्व, इय तरुततिर्वृक्ष-पङ्क्तिर्नष्टा सस्यानि च धान्यानि च नैव फलन्ति फलयुक्तानि भवन्ति । शिखरिणीछन्द ॥५॥ § १०) पिपासेति—हे त्रिभुवनपते ! हे त्रिजगदधीश्वर ! प्रतिदिन प्रतिवासर निराहाराणाम् आहाररहिताना नोऽस्माक चित्त पिपासा उदन्या क्षुद्बाधा बुभुक्षापीडा तरलयति चपलयति, अतो दयया कृपया त्राहि रक्ष । तथा घनपवनवर्षातपमुखैर्मेघसमीरवृष्टिघर्मप्रभृतिभि जाता समुत्पन्ना बाधा पीडा निराधारान् गृहादिरहितान् अस्मान् निरवधि नि सीम यथा स्यात्तथा दुनोति सतापयति आकुलयति व्यग्रीकरोति च । शिखरिणीच्छन्दः ॥६॥ § ११) तत इति—ततस्तस्मात् कारणात् हे देव ! यथा येन प्रकारेण अस्माक जीविका वृत्तिः निरुपद्रवा निर्वाधा स्यात् तथा तेन प्रकारेण उपदेष्ट समुपदेश दातुम् उद्योग कुरु विधेहि । नोऽस्माक प्रसीद प्रसन्नो भव ॥७॥ § १२) इतीति—वृत्राहित इन्द्र , अदेवमातृका नद्यम्बुपालिता देवमातृका वृष्ट्यम्बु-

---

के पास आकर इस तरह निवेदन करने लगे । § ९) त्रिभुवनेति—हे त्रिलोकीनाथ ! हे श्रीमन् ! हे स्वामिन् ! हे दयागुणके भाण्डार ! हम लोग बहुत भारी भयसे आपके चरण कमलोंकी शरण-को प्राप्त हुए हैं इसलिए अत्यन्त योग्य आजीविका बतलाकर अपनी प्रजाकी रक्षा कीजिए । यह वृक्षोंकी पंक्ति नष्ट हो गयी है और धान्य भी नहीं फलते हैं ॥५॥ § १०) पिपासेति—प्यास और भूखकी बाधा प्रतिदिन निराहार रहनेवाले हम लोगोंके चित्तको चचल करती रहती है इसलिए हे तीन लोकके नाथ ! दयासे हम लोगोंकी रक्षा कीजिए । भूख-प्यासके सिवा मेघ वायु वर्षा और घाम आदि कारणोंसे उत्पन्न बाधा भी गृह आदिके आधारसे रहित हम लोगोंको अत्यन्त सन्तप्त करती तथा व्यग्र बनाती रहती है ॥६॥ § ११) तत इति—इसलिए हे देव ! जिस प्रकार हम लोगोंकी जीविका निर्बाध हो सके उस प्रकार उपदेश देनेके योग्य हो । हम लोगोंपर प्रसन्न होइए ॥७॥ § १२) इतीति—इस प्रकार प्रजाजनोंकी प्रार्थना शैलीको सुनकर जिन्हें बहुत भारी करुणा उत्पन्न हुई थी ऐसी त्रिलोकीनाथने निश्चय किया कि पूर्व और पश्चिम विदेहोंके समान ग्राम उद्यान तथा नगर आदिका विभाग कर प्रजा

समाश्वास्य च मुहुः प्रजानिकर मा भैष्टेति गिरा सुराधिपस्य सस्मार। अथ तदनुध्यानमात्रेणागतः सकलसुरनिकरपरिवृत वृत्राहितस्तत्पादपङ्कज निजमुकुटमणिमरीचिमञ्जर्या पिञ्जरीकुर्वाणस्तदाज्ञावशेन शुभे मुहूर्ते तस्यायोध्यापुरस्य मध्ये महादिक्षु च रुचिविजितसुरमन्दिराणि जिनमन्दिराणि निर्माथादेवमातृकदेवमातृकसाधारणानूपजाङ्गलभेदानन्तपालपालितदुर्गपरिवृतान्, लुब्धकारण्यचरपुलिन्दशवरादिपरीक्षितान्तरालप्रदेशान्, काशीकोसलकलिङ्गवङ्गकरहाटककर्णाटकचोलकेरलमालवमहाराष्ट्रसौराष्ट्रवनवासद्रविडान्ध्रकाम्बोजवाल्हिकतुरुष्ककेदारसौवीराभीरचेदिकेकयशूरसेनापरान्तिकविदेहसिन्धुगन्धारकुरुजाङ्गलविदर्भवत्सावन्तीवनभेदपल्लवदशार्णकच्छमहाकच्छमगधमगधरम्यकाश्मीरकुरुसौभद्रकादिविविधविषयान् तज्जनपदमध्यभागेषु परिखावप्रप्राकारगोपुराट्टालकालङ्कृतानि नानाविधनगराणि च ग्रामपुरखेटखर्वटादिक च परिकल्पयामास।

§ १३) पुराणि परिकल्पयन्नमुचिसूदन सार्थकं
पुरंदरसमाह्वय दधदय विभोः शासनात्।
यथोचितपदेषु ता भुवि निवेश्य सर्वा प्रजाः
त्रिविष्टपमुपासदन्निखिललेखवर्गे समम् ॥८॥

पालिता साधारणा नदीमातृकदेवमातृकमिश्रा, अनूपा जलप्रायदेशाः, जाङ्गला निर्वारिदेशाः, ग्रामपुरखेटखर्वटादीना लक्षणानि परिशिष्टे द्रष्टव्यानि। शेष सुगमम्। § १३) पुराणीति—विभोर्वृषभदेवस्य शासनात् आज्ञाया पुराणि नगराणि परिकल्पयन् रचयन् सार्थकमन्वितार्थं पुरदरसमाह्वय पुरंदरेति नाम दधत्

जनोंकी जीविकाके लिए असि, मषी, कृषि, शिल्प, वाणिज्य और विद्या इन छह कर्मोंकी व्यवस्था करनी चाहिए। निश्चयानुसार उन्होंने 'भयभीत मत होओ' इस प्रकारकी वाणीसे बार-बार आश्वासन दे कर इन्द्रका स्मरण किया। तदनन्तर उनके स्मरणमात्रसे समस्त देवसमूहसे परिवृत इन्द्र आ पहुँचा। अपने मुकुटमें लगे हुए मणियोंकी किरणरूप मंजरीके द्वारा भगवान्के चरण कमलोंको पीतवर्ण करते हुए इन्द्रने उनकी आज्ञासे शुभमुहूर्तमें उस अयोध्यानगरके बीचमें तथा उसकी चारों महादिशाओंमें कान्तिसे इन्द्रभवनको जीतनेवाले जिन मन्दिरोंकी रचना की। तदनन्तर जो अदेवमातृक—नदी आदिके जलसे जीवित रहनेवाले, देवमातृक—वर्षाके जलसे जीवित रहनेवाले, साधारण—दोनों प्रकारके अनूप—अत्यधिक जलवाले, तथा जांगल—जलरहित भेदोंसे सहित थे, जो अन्तपाल—पहरेदारोंसे सुरक्षित दुर्गोंसे घिरे हुए थे, लुब्धक, अरण्यचर, पुलिन्द तथा शवर आदिके द्वारा जिनके भीतरी प्रदेशोंकी सदा परीक्षा की जाती थी ऐसे काशी, कोसल, कलिंग, वंग, करहाटक, कर्णाटक, चोल, केरल, मालव, महाराष्ट्र, सौराष्ट्र, वनवास, द्रविड, आन्ध्र, काम्बोज, वाह्लिक, तुरुष्क, केदार, सौवीर, आभीर, चेदि, केकय, शूरसेन, अपरान्तिक, विदेह, सिन्धु, गन्धार, कुरुजागल, विदर्भ, वत्स, अवन्ती, वनभेद, पल्लव, दशार्ण, कच्छ, महाकच्छ, मगध, रम्य, काश्मीर, कुरु और सौभद्रक आदि नाना देशोंकी और उन देशोंके मध्यभागोंमें परिखा, धूलिसाल, कोट, गोपुर तथा अट्टालकोंसे सुशोभित नाना प्रकारके नगर और ग्राम, पुर, खेट तथा खर्वट आदिकी रचना की। § १३) पुराणीति—भगवान्की आज्ञासे पुरों—नगरोंकी रचना करता हुआ जो पुरन्दर इस प्रकारके सार्थक नामको धारण करता था ऐसे

---

१ मकुट क०।

शैवलपटलपरिवृतं पफुल्यमानपयोज प्रावृषेण्यपयोवाहव्यूहविराजित राकासुधाकर च तुलयन्त्यौ, मालाजालकलितेन कबरीभरेण गङ्गातरङ्गसगत कालिन्दीप्रवाह स्मारयन्त्यौ ब्राह्मीसुन्दर्यौ सप्रश्रय समीपमुपाश्रित्य जगन्नाथ नमश्चक्रतु.।

§ ४) उत्थाप्य वेगात्प्रणते सुते ते स्वाङ्क समारोप्य च कौतुकेन ।
स्पृष्ट्वा कराभ्या मुहुरुत्सुकोऽय लोकेश्वरो मूर्धनि जिघ्रति स्म ॥२॥

§ ५) तदनु तयोर्विनयशीलादिक विलोक्य जगद्गुरुर्विद्यास्वीकारणकालोऽयमिति मत्वा ब्राह्मीसुन्दरीभ्या सिद्धमातृकोपदेशपुर.सर गणित स्वायभुवाभिधानानि पदविद्याछन्दोविचित्यलंकारशास्त्राणि च, अर्थशास्त्रभरतशास्त्रे भरताय, वृषभसेनाय गान्धर्वं, अनन्तविजयाय चित्रकलाशास्त्र

गण्डाभ्या सकलकस्य सलाञ्छनस्य सुधाकरस्य चन्द्रस्य लक्ष्मी शोभा ह्रेपयन्त्यौ लज्जयन्त्यौ, चिकुरनिकरेण केशकलापेन रुचिर मनोहर तेन वदनेन मुखेन शैवलपटलपरिवृत जलनीलिनिकुरम्बव्याप्त पफुल्यमानपयोजम् अतिविकसितकमल, प्रावृषेण्याना वर्षाकालभवाना पयोवाहाना मेघाना व्यूहेन समूहेन शोभित राकासुधाकरं च पूर्णिमाचन्द्र च तुलयन्त्यौ उपमितं कुर्वन्त्यौ, मालाजालकलितेन स्रक्समूहसहितेन कबरीभरेण केशकलापेन गङ्गातरङ्गसगत भागीरथीभङ्गसहितं कालिन्दीप्रवाह यमुनापूर स्मारयन्त्यौ स्मृत कारयन्त्यौ ब्राह्मीसुन्दर्यौ तन्नामकन्ये सप्रश्रय सविनय समीप पार्श्वम् उपाश्रित्य गत्वा जगन्नाथ भगवन्त नमश्चक्रतु प्रणेमतु । रूपकोत्प्रेक्षा श्लेषोपमाविरोधाभासा: । § ४) उत्थाप्येति—उत्सुक उत्कण्ठित अय लोकेश्वरो जगत्पति वृषभजिनेन्द्र प्रणते नम्रीभूते सुते पुत्र्यौ वेगाद् रभसात् उत्थाप्य कौतुकेन स्वाङ्क स्वोत्सग समारोप्य च समधिष्ठाप्य च कराभ्या पाणिभ्या स्पृष्ट्वा मुहुरनेकवारान् मूर्धनि शिरसि जिघ्रति स्म नासाविषयीचकार । इन्द्रवज्रा ॥२॥ § ५) तदन्विति—तदनु तदनन्तर तयो पुत्र्यो विनयशीलादिक नम्रतासत्स्वभावादिक विलोक्य दृष्ट्वा जगद्गुरुर्जिनेन्द्र अयमेव विद्याना स्वीकारणस्य काल. समय इति मत्वा ज्ञात्वा ब्राह्मीसुन्दरीभ्या तन्नामपुत्रीभ्या सिद्धमातृकाया वर्णमालाया उपदेश पुर सरोऽग्रेसरो यस्य तथाभूत गणितमङ्कशास्त्र, स्वायभुवम् अभिधान नाम येषा तानि पदविद्या च छन्दोविचितिश्च अलकारशास्त्राणि चेति पदविद्याछन्दोविचित्यलकारशास्त्राणि व्याकरणच्छन्द समूहालकारशास्त्राणि च, भरताय तन्नामपुत्राय अर्थशास्त्रभरतशास्त्रे अर्थशास्त्रनाट्यशास्त्रे, वृषभसेनाय तन्नामपुत्राय गान्धर्वं सगीतशास्त्रम्, अनन्तविजयाय तन्नामपुत्राय

पर्वतरूप नहीं था (पक्षमे अत्यन्त लाल होकर अधर इस नामको धारण करता था) वे कामदेवके विजयी बाणोंके समान नेत्रोको आगे चला रही थीं, चचल केशोंके प्रतिबिम्बसे सहित कपोलोंके द्वारा वे लांछनसहित चन्द्रमाकी शोभाको लज्जित कर रही थीं। केशोंके समूहसे सुन्दर मुखके द्वारा वे सेवालके समूहसे घिरे विकसित कमलकी अथवा वर्षाकाल सम्बन्धी मेघसमूहसे सुशोभित पूर्णिमाके चन्द्रकी तुलना कर रही थीं, और मालाओंके समूहसे युक्त केशपाशके द्वारा गगाकी लहरोंसे युक्त यमुनाके प्रवाहका स्मरण करा रही थीं। इस प्रकार उन ब्राह्मी और सुन्दरी कन्याओंने विनय सहित समीप जाकर भगवान्को नमस्कार किया। § ४) उत्थाप्येति—उत्सुकतासे युक्त भगवान्ने नम्रीभूत उन पुत्रियोंको बड़े वेगसे उठाकर कुतूहलवश अपनी गोदमे बैठा लिया और हाथोंसे बार-बार स्पर्श कर उनका मस्तक सूँघा ॥२॥ § ५) तदन्विति—तदनन्तर उन पुत्रियोंके विनय तथा शील आदिको देखकर जगद्गुरु—भगवान् वृषभदेवने विचार किया कि यह इनका विद्या स्वीकार करानेका काल है। ऐसा निश्चय कर उन्होंने ब्राह्मी और सुन्दरीके लिए वर्णमालाके उपदेशके साथ-साथ गणित तथा 'स्वायंभुव' इस नामको धारण करनेवाले व्याकरण, छन्द:समूह और अलकार शास्त्रका, भरतके लिए अर्थशास्त्र और

वास्तुविद्या च, भुजबलितनयाय कामतन्त्रसामुद्रिकायुर्वेदधनुर्वेदहस्त्यश्वतन्त्ररत्नपरीक्षादीनि, अन्येभ्यश्च यथोचित लोकोपकारकशास्त्राण्युपदिदेश ।

§ ६) सुतैरधीतनिःशेषविद्यैरद्युतदीक्षिता ।
किरणैरिव तिग्माशुरासादितशरद्द्युति ॥३॥

§ ७) पुत्रै. कलत्रैश्च महापवित्रैर्वृतस्य नित्य वृषभेश्वरस्य ।
कालो व्यतीयाय महान् क्रमेण मनोहरैर्मङ्गलदिव्यभोगै ॥४॥

§ ८) अत्रान्तरे कालवैभवकृतेन महौषधिदीप्तौषधिप्रमुखसर्वौषधिशक्तिप्रक्षयेण नरनिकररक्षणविचक्षणानामकृष्टपच्याना सस्याना विरलीभावेन लोकोत्तरपादपाना रसवीर्यविपाकप्रहाणेन जीवनशङ्कातङ्ककलङ्कितमनोवृत्तय प्रकृतयो नाभिराजाज्ञया सनातन पुरुषमासाद्य सविनयमेव विज्ञापयामासुः ।

चित्रकलाशास्त्रम् आलेख्यकलाशास्त्रम्, वास्तुविद्या च भवननिर्माणविद्या च, भुजबलितनयाय बाहुबलिपुत्राय कामतन्त्र कामशास्त्र, सामुद्रिक रेखाविज्ञान, आयुर्वेदश्चिकित्साशास्त्र, धनुर्वेद शस्त्रविद्या, हस्त्यश्वतन्त्र हस्तिहयपरीक्षाशास्त्र, रत्नपरीक्षा रत्नगुणदोषपरीक्षा तदादीनि, अन्येभ्यश्च पुत्रेभ्यो यथोचित यथायोग्य लोकोपकारकशास्त्राणि जनहितावहविद्या उपदिदेश समुपदिष्टवान् । § ६) सुतैरिति—ईशिता भगवान् वृषभदेव , अधीता पठिता नि.शेषविद्या सकलविद्या यैस्तै सुतै पुत्रै आसादिता प्राप्ता शरदा शरदृतुना द्युति सवन्धो येन तथाभूत. तिग्माशु' सूर्य. किरणैरिव मयूखैरिव अद्युतत् व्यशोभत । उपमा ॥३॥ § ७) पुत्रैरिति—महापवित्रैरतिशुचिभि पुत्रैः सुतै कलत्रैश्च स्त्रीभिश्च नित्य निरन्तर वृतस्य परिवेष्टितस्य वृषभेश्वरस्यादिजिनेन्द्रस्य महान् विपुल काल मनोहरैश्चेतोहरै मङ्गलदिव्यभोगै श्रेयोमयसुरोपनीतभोगै क्रमेण व्यतीयाय व्यतिजगाम । उपजातिच्छन्दः ॥४॥ § ८) अत्रान्तर इति—अत्रान्तरे एतन्मध्ये कालस्यावसर्पिणीसंज्ञस्य वैभवेन सामर्थ्येन कृतस्तेन, महौषधिदीप्तौषधिप्रमुखसर्वौषधीना शक्त्या प्रक्षयस्तेन, नरनिकरस्य मर्त्यसमूहस्य रक्षणे त्राणे विचक्षणाना निपुणानाम् अकृष्टपच्यानाम् अकृष्टपक्तुमर्हाणा सस्याना धान्याना विरलीभावेन विरलतया, लोकोत्तरपादपाना तात्कालिकश्रेष्ठवृक्षाणा रसवीर्यविपाकस्य प्रहाणेन नाशेन जीवनशङ्का जीवितसशीतिरेवातङ्क आमयस्तेन कलङ्किता मनोवृत्तिर्यासा ता , प्रकृतयो प्रजा नाभिराजाज्ञया नाभिराजादेशेन सनातन पुरुष वृषभजिनेन्द्रम् आसाद्य प्राप्य सविनय सप्रश्रय यथा स्यात्तथा एव

नाटयशास्त्रका, वृषभसेनके लिए संगीतशास्त्रका, अनन्त विजयके लिए चित्रकला शास्त्र तथा मकान बनानेकी विद्याका, बाहुबलिके लिए कामशास्त्र, सामुद्रिकशास्त्र, आयुर्वेद, धनुर्वेद, हस्तिपरीक्षा, अश्वपरीक्षा तथा रत्नपरीक्षा आदिके शास्त्र और अन्य पुत्रोंके लिए लोकोपकारी शास्त्रोंका उपदेश दिया । § ६) सुतैरिति—समस्त विद्याओंका अध्ययन करनेवाले पुत्रोंसे भगवान् वृषभदेव इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जिस प्रकार कि किरणोंसे शरद्ऋतुका सूर्य सुशोभित होता है ॥३॥ § ७) पुत्रैरिति—अतिशय पवित्र पुत्रों तथा स्त्रियोंसे निरन्तर घिरे रहनेवाले वृषभ जिनेन्द्रका बहुत भारी समय मनोहर तथा मंगलमय देवोपनीत भोगों द्वारा क्रमसे व्यतीत हो गया ॥४॥ § ८) अत्रान्तर इति—इसी बीचमे अवसर्पिणीकालकी सामर्थ्यसे किये हुए महौषधि, दीप्तौषधि आदि समस्त औषधियोंकी शक्तिके क्षयसे, मनुष्यसमूहकी रक्षा करनेमे निपुण बिना जोते अपनेआप उत्पन्न होनेवाली धान्यके विरलभावसे तथा उस समयके श्रेष्ठ वृक्षोंके रस और वीर्य शक्ति नष्ट हो जानेसे जीवनकी आशकारूपी रोगसे जिनकी मनोवृत्ति कलंकित हो रही थी ऐसी प्रजा नाभिराजकी आज्ञासे वृषभ जिनेन्द्र-

§ १४) सृष्ट्वा क्षत्रियवैश्यशूद्रविदित वर्णत्रय सप्रभु—
वृत्ति चास्य तथा यथार्हमकरोत् षट्कर्मसपादिताम् ।
तामाज्ञा त्रिजगद्गुरोर्हिततमा मूर्ध्ना दधाना प्रजाः
प्रापु क्षेमपरम्परामतितरा निर्विघ्नमुर्वीतले ॥९॥

§ १५) युगादिब्रह्मणा तेन यदित्थ स कृतो युगः ।
ततः कृतयुग नाम्ना त पुराणविदो विदुः ॥१०॥

§ १६) आदीशस्य विधातुमुत्सुकमना राज्याभिषेकोत्सवं
स्फूर्जत्तूर्यविरावपूरमुखरव्योमावकाशस्तत ।
व्यावल्गन्मणिभूषणद्युतिझरीनिर्धूतभानुप्रभे—
र्देवै साकमवातरत्त्रिदिवतो गोत्राहित सोत्सवम् ॥११॥

नमुचिसूदन इन्द्र, भुवि पृथिव्या ता' पूर्वोक्ता सर्वा अखिला प्रजा जनान् यथोचितपदेषु यथायोग्यस्थानेषु निवेश्य स्थापयित्वा निखिललेखवर्गं सकलसुरसमूहं सम साधं त्रिविष्टप स्वर्गम् उपासदत् प्राप । पृथ्वीच्छन्द ॥८॥ § १४) सृष्ट्वेति—स प्रभुः क्षत्रियवैश्यशूद्रेति विदित प्रख्यात वर्णत्रय सृष्ट्वा रचयित्वा तथा च अस्य वर्णत्रयस्य यथार्हं यथायोग्य षट्कर्मसपादिता षट्कर्मभिरसिमषीकृषिशिल्पवाणिज्यविद्याभिधानै सपादितां कृता वृत्ति जीविका च अकरोत् विदधे । त्रिजगद्गुरोर्भगवत हिततमाम् अतिशयहितरूपा ता पूर्वोक्ताम् आज्ञा मूर्ध्ना शिरसा दधाना बिभ्रत्य प्रजा उर्वीतले भूतले अतितरामत्यन्त निर्विघ्न विघ्नानामभावो निर्विघ्न निरन्तराय यथा स्यात्तथा क्षेमपरम्परा कल्याणसतति प्रापु लेभिरे । शार्दूलविक्रीडितछन्द ॥९॥ § १५) युगादीति—यत् यस्मात् कारणात् इत्थमनेन प्रकारेण स युग कालभेद' तेन युगादिब्रह्मणा प्रथमजिनेन्द्रेण कृतो रचित ततस्तस्मात् कारणात् पुराणविद' पुराणज्ञा त युग नाम्ना कृतयुग विदु जानन्ति ॥१०॥ § १६) आदीशस्येति—ततस्तदनन्तरम् आदीशस्य प्रथमजिनेन्द्रस्य राज्याभिषेकोत्सव राज्याभिषवोद्भवं विधातु कर्तुम् उत्सुकमना उत्कण्ठितचेता स्फूर्जत्तूर्याणा वाद्यमानवादित्राणा विरावपूरेण शब्दसमूहेन मुखरो वाचालितो व्योमावकाशो गगनान्तराल येन तथाभूतो गोत्राहितो गोत्रभिद् इन्द्र इत्यर्थ, व्यावल्गता चलतां मणिभूषणाना रत्नालकाराणा द्युतिझरीभि कान्तिनिर्झरैर्निर्धूता तिरस्कृता भानुप्रभा सूर्यदीप्तिर्यैस्तै लेखैरमरै साक सह त्रिदिवत स्वर्गात् सोत्सव समह यथा स्यात्तथा अवातरत् अवतीर्णोऽभूत् । शार्दूलविक्रीडितछन्द.

इन्द्रने समस्त प्रजाको पृथ्वीपर यथायोग्य स्थानोंमे ठहराया। तदनन्तर वह समस्त देव समूहके साथ स्वर्गको वापस लौट गया ॥८॥ § १४) सृष्ट्वेति—उन भगवान्‌के क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इस नामसे प्रसिद्ध तीन वर्णोंकी रचना कर यथायोग्य असि, मषी, कृषि, शिल्प, वाणिज्य और विद्या इन छह कार्योंसे होनेवाली आजीविका निश्चित की। और तीन जगत्‌के गुरु भगवान्‌की अत्यन्त हितकारी उस आज्ञाको शिरसे धारण करती हुई प्रजा पृथिवीतल-पर निर्विघ्नरूपसे अत्यधिक कल्याणकी परम्पराको प्राप्त हुई ॥९॥ § १५) युगादीति—इस तरह चूँकि वह युग, युगके आदि ब्रह्मा—भगवान् वृषभदेवके द्वारा किया गया था इसलिए पुराणके ज्ञाता उसे 'कृतयुग' इस नामसे जानते हैं ॥१०॥ § १६) आदीशस्येति—तदनन्तर आदि जिनेन्द्रका राज्याभिषेक करनेके लिए जिसका मन उत्कण्ठित हो रहा था और बजते हुए बाजोंके जोरदार शब्द समूहके द्वारा जिसने आकाशको गुँजा दिया था ऐसा इन्द्र, चचल मणिमय आभूषणोंकी कान्ति रूपी झिरनोंसे सूर्यकी प्रभाको तिरस्कृत करनेवाले देवोंके

§ १७) तत पर नाकराजो नाभिराजादिपरिवृतस्त्रिभुवनगुरुपट्टाभिषेकाय त्वरमाण, शुभे मुहूर्ते, सुरशिल्पिजनकल्पिते, मञ्जुलसुरभिमृत्स्नाविरचितवेदिकाविराजमाने, चञ्चत्पञ्चरत्नचूर्णविरचितरङ्गवल्लीविराजितसुनाशीरशरासने, व्यामुक्तमुक्ताफलशोभमानविरचितवितानचित्रच्छायाछुरितसुन्दरपुरन्दरमणिकुट्टिमबन्धुरतया विडम्बितसंध्यारागरञ्जितसौदामिनीसंगतनीलजलधरपटले, विविधोपकरणसमुद्धरणनियमितानेकनाककामिनीनिरुद्धसंचारमार्गे, संचरत्पौरविलासिनीललितमृदुलपदन्यासमञ्जुगुञ्जन्मञ्जीरमनोहरझङ्कारप्रवर्धमानकोलाहले, पारावार इव परि-

---

॥११॥ § १७) तत इति—तत पर तदनन्तर न विद्यतेऽक दु ख यत्र स नाक स्वर्गस्तस्य राजा नाकराज' शक्र. नाभिराजादिभि परिवृत परीत त्रिभुवनगुरोर्वृषभजिनेन्द्रस्य पट्टाभिषेकाय राज्याभिषवाय त्वरमाण शीघ्रता कुर्वाण, शुभे प्रशस्ते मुहूर्ते नृपभवस्य राजमन्दिरस्य मध्ये लसमान शोभमानो योऽभिषेकमण्डपस्तस्मिन् सुरयारवनिताना निलिम्पविलासिनीना करपल्लवै पाणिकिसलयै विधूयमानाना कम्प्यमानाना चारुचामराणा सुन्दरवालव्यजनाना समीरेण वायुना आन्दोलिताश्चालिता., प्रलम्बमाना दीर्घायिता या मन्दारमाला कल्पानोकहकुसुमस्रजस्ताभिरञ्चित शोभित देव त्रिभुवनपति जिनेन्द्र हरिविष्टरे सिंहासने प्राङ्मुख पूर्वाभिमुख यथा स्यात्तथा विनिवेशयामास स्थापयामासेति कर्तृकर्मक्रियासबन्ध । अथाभिषेकमण्डप वर्णयितुमाह—सुराश्च ते शिल्पिजनाश्चेति सुरशिल्पिजना देवकार्यकरास्तै कल्पिते रचिते, मञ्जुला मनोहरा सुरभि सुगन्धिश्च या मृत्स्ना मृत्तिका तया विरचिता निर्मिता या वेदिका परिष्कृता भूमिस्तया विराजमाने शोभमाने, चञ्चता शुम्भता पञ्चरत्नचूर्णेन पञ्चविधरत्नकणिकानिकरेण विरचिता निर्मिता या रङ्गवल्ल्य पत्रलतास्ताभिर्विराजित विशोभित सुनाशरिशरासन शक्रचापो यस्मिंस्तस्मिन्, व्यामुक्तै व्यालम्ब्य धृतैर्मुक्ताफलैर्मौक्तिकै. शोभमाना विराजमाना ये विरचितविताना निर्मितचन्द्रोपकास्तेषा चित्रच्छायाभिर्विविधकान्तिभि छुरितो व्याप्तो य. सुन्दरपुरदरमणिकुट्टिमो मनोहरमहानीलमणिभूपृष्ठस्तेन वन्धुरतया शोभिततया विडम्बितस्तिरस्कृत सध्यारागरञ्जित सान्ध्यारुणिमरक्त सौदामिनीसगतश्च विद्युत्सहितश्च नीलजलधरपटल श्यामलघनसमूहो येन तस्मिन्, विविधोपकरणाना नानाविधसामग्रीणा समुद्धरणे नियमिता. सलग्ना या अनेकनाककामिन्यो बहुदेव्यस्ताभिर्निरुद्ध सचारमार्गो यातायातसरणिर्यस्मिंस्तस्मिन्, सचरन्तीना भ्रमन्तीना पौरविलासिनीना नागरिकनारीणा ललितमृदुलै चारुकोमलै पदन्यासैश्चरणनिक्षेपैर्मञ्जुमनोहर यथा स्यात्तथा

साथ स्वर्गसे उत्सव सहित अवतीर्ण हुआ—पृथिवीपर आया ॥११॥ § १७) तत इति—तदनन्तर जो नाभिराजा आदिके द्वारा घिरा हुआ था और त्रिलोकीनाथका राज्याभिषेक करनेके लिए शीघ्रता कर रहा था ऐसे इन्द्रने शुभमुहूर्तमे राजभवनके मध्यमे सुशोभित अभिषेक मण्डपमे सुरबालाओंके करकिसलयोंसे चलाये जानेवाले सुन्दर चामरोंकी वायुसे कम्पित लटकती हुई कल्पवृक्षके फूलोंकी मालाओंसे सुशोभित भगवान्को सिंहासनके ऊपर पूर्वाभिमुख बैठाया। वह अभिषेकमण्डप देव कारीगरोंके द्वारा निर्मित था, मनोहर तथा सुगन्धित मिट्टीके द्वारा विरचित वेदिकासे सुशोभित हो रहा था, चमकदार पंचरत्नोंके चूर्णसे विरचित रंगीन बेलबूटोंके द्वारा उस मण्डपमे इन्द्रधनुष सुशोभित हो रहा था, लटका कर लगाये हुए मोतियोंसे सुशोभित जो नानारंगके चँदोवा बनाये गये थे उनकी रंगबिरंगी कान्तिसे वहाँका नीलमणि निर्मित फर्स व्याप्त हो रहा था इसलिए वह मण्डप सन्ध्याकी लालिमासे रंगे तथा बिजलीसे सहित श्यामल मेघ-समूहको तिरस्कृत कर रहा था, नाना प्रकारके उपकरणोंके उठानेमे लगी हुई अनेक देवांगनाओंके द्वारा उस मण्डपमे यातायातका मार्ग रुक गया था, इधर-उधर चलती हुई नगर-निवासिनी स्त्रियोंके सुन्दर तथा कोमल चरणोंके निक्षेपसे सुन्दर शब्द करनेवाले नूपुरोंकी झंकारसे उस मण्डपमे कोलाहल बढ़ रहा

शोभितरङ्गे सर्वतोमुखसमृद्धे कुशलिमकरे च, पद्माकर इव विकस्वरशोभनतामरससहिते कमलाकरे च, नन्दनवन इव सुरागविशोभिते तालमनोहरे मधुराप्सरःकुलशोभिते च, नृपभवनमध्यलसमानाभिषेकमण्डपे सुरवारवनिताकरपल्लवविधूयमानचारुचामरसमीरान्दोलितप्रलम्बमानमन्दारमालाञ्चित देव त्रिभुवनपति हरिविष्टरे प्राङ्मुखं विनिवेशयामास।

§ १८) तत्रानन्दात्त्रिभुवनपतिं विष्टरे तस्थिवांस
गङ्गासिन्धुप्रमुखसलिलैरभ्यषिञ्चन्सुरेशाः।

गुञ्जन्ति शब्दं कुर्वाणानि यानि मञ्जीराणि नूपुराणि तेषां मनोहरझङ्कारेण चारुशिञ्जितेन प्रवर्तमान समेधमानः कोलाहलो यस्मिंस्तस्मिन्, पारावार इव सागर इव परिशोभिनः परितःशोभिनः रङ्गो नृत्यभूमिर्यस्मिंस्तस्मिन् पारावारपक्षे परिशोभिन समन्ताच्छोभमानास्तरङ्गाः कल्लोला यस्मिंस्तस्मिन्, सर्वतः समन्तात् मुखैर्द्वारैः समृद्धे सम्पन्ने पारावारपक्षे सर्वतोमुखेन सलिलेन समृद्धे परिपूर्णे, कुशलिम्नः कुशलताया करस्तस्मिन् पारावारपक्षे कुशलिनः कुशलयुक्ता मकरा जलजन्तुविशेषा यस्मिंस्तस्मिन्, पद्माकर इव कासार इव विकस्वरशोभा प्रकटशोभासम्पन्ना नता नम्रीभूताश्च ये अमरा देवास्तैः सहितस्तस्मिन् पद्माकरपक्षे विकस्वरशोभनानि प्रकटितशोभायुक्तानि यानि तामरसानि पद्मानि तैः सहिते, कमलाया लक्ष्म्या करस्तस्मिन् पद्माकरपक्षे कमलानां पद्मानामाकरः खनिस्तस्मिन्, नन्दनवन इव इन्द्रोद्यान इव सुरागशोभिते सुष्ठु रागः सुरागः न्दरसगीतध्वनिस्तेन शोभितः नन्दनवनपक्षे सुराणां देवानामगा वृक्षाः सुरागाः कल्पवृक्षास्तैः शोभिते मलङ्कृते, तालैर्लयमानैर्मनोहरे रम्ये नन्दनवनपक्षे डलयोरभेदात् तालमनोहरे ताडवृक्षसुन्दरे, मधुराप्सरसां सुन्दरसुरविलासिनीनां कुलेन समूहेन शोभिते च रम्ये च नन्दनवनपक्षे मधुराप्सरांसि मधुरजलतडागास्तेषां कुले समूहे शोभिते च। § १८) तत्रेति—तत्राभिषेकमण्डपे विष्टरे सिंहासने तस्थिवांस स्थितं त्रिभुवनपतिं वृषभजिनेन्द्रं सुरेशा देवेन्द्रा गङ्गासिन्धुप्रमुखानां गङ्गासिन्धुप्रभृतीनां सलिलैरम्भोभिः, अन्य-

---

था, वह मण्डप समुद्रके समान था क्योंकि जिस प्रकार समुद्र परिशोभि-तरग—सब ओर शोभा देनेवाली तरंगोंसे युक्त होता है उसी प्रकार वह मण्डप भी परिशोभित-रंग—शोभाय-
वाचालितो व्योमाव... गिसे सहित था, जिस प्रकार समुद्र सर्वतोमुखसमृद्ध—जलसे समृद्ध
मणिभूषणाना रत्नालंकाराणां ...ण्डप भी सर्वतोमुख समृद्ध—चारों ओर निर्मित द्वारोंसे समृद्धका
... स्वर्गात् सौत्र कुशलिमकर—कुशलतासे युक्त मगरोंसे सुशोभित होता है उसी
न रंगभूमि—नृत्यभूमि... कर—कुशलताको करनेवाला था। अथवा वह मण्डप तालावके
ता है उसी प्रकार वह म...
ोट जिस प्रकार समुद्र कु... को पृथ्वीपर कार तालाव विकस्वर-शोभन-तामरस-सहित—खिले हुए
कार वह मण्डप भी कुशलिम... वापस लौटता है उसी प्रकार वह मण्डप भी विकस्वर शोभनतामर-
समान था, क्योंकि जिस प्र... प्रसिद्ध तीन नम्रीभूत देवोंसे सहित था, और जिस प्रकार तालाब
शोभायमान कमलोंसे सहित हो... छह कार्योंसे उसी प्रकार वह मण्डप भी कमलाकर—लक्ष्मीको करने-
सहित—विकसित शोभासे युक्त हितकारी उपवनके समान था क्योंकि जिस प्रकार नन्दनवन सुराग-
कमलाकर—कमलाकी खान होता ...क कल्याण है उसी प्रकार वह मण्डप भी सुरागशोभित—अच्छे-
वाला था। अथवा वह मण्डप नन्द... आदि प्रकार नन्दनवन तालमनोहर—ताड़ वृक्षोंसे सुन्दर रहता
शोभित—कल्पवृक्षोंसे सुशोभित होत... इस ...मनोहर—स्वर तालोंसे सुन्दर था और जिस प्रकार
अच्छे रागोंसे सुशोभित था, जिस प्र... करनेके ... जलवाले सरोवरोंके समूहसे शोभित होता है उसी
है उसी प्रकार वह मण्डप भी ताल... के द्वार शोभित—सुन्दर अप्सराओंके समूहसे शोभित था।
नन्दनवन मधुराप्सरःकुलशोभित—मीठे ... सनपर बैठे हुए त्रिलोकीनाथका ... क गंगा,
... भी मधुराप्सरःकुल...

भूपा नाभिक्षितिपतिमुखाः पौरवर्गाश्च भर्तु-
स्तीर्थोपात्तैः सुरभिसलिलैस्तेऽभिषेकं वितेनुः ॥१२॥

§ १९) तदनु हैमस्नानजलकुण्डे कृतावगाहनस्त्रिभुवनकमनः कुङ्कुमारुणपयोधरैररुणप्रभाधरपल्लवशोभितमुखभागैः कोमलमधुकरसंगतैः कलधौतरुचिरुचिरैः कामिनीजनैः कनककलशैश्च स्नापितः, कृतनीराजनश्चात्मवत् कल्याणगुणं वसनं परिधाय, सरसं मुकुरमवलोक्य भद्रश्रीख्यातिकलितं चन्दनं च धृत्वा, सद्वृत्तरत्नमण्डितैः सदाखण्डलसत्प्रभाविराजितैर्मुक्तामयैर्नवपुष्यरागैस्त्रि-

पिञ्चन् अभिषिक्तं चक्रुः । ते प्रसिद्धाः नाभिक्षितिपतिमुखा नाभिराजादयो भूपा राजानः पौरवर्गाश्च नागरिकनरसमूहाश्च तीर्थोपात्तैस्तीर्थानीतैः सुरभिसलिलैः सुगन्धितजलैः भर्तुः स्वामिनः अभिषेकं राज्याभिषवं वितेनुः विस्तारयामासुः ॥१२॥ § १९) तदन्विति—तदनु तदनन्तरं हेम्ना निर्वृत्तो हैमः सौवर्णः स चासौ स्नानजलकुण्डश्च तस्मिन्, कृतावगाहनः कृतप्रवेशः त्रिभुवनकमनः त्रिजगत्पतिः कुङ्कुमेन केशरेण अरुणा रक्ताः पयोधराः स्तना येषां तैः कामिनीजनैः, पक्षे कुङ्कुमेन केशरेण अरुणं रक्तं यत् पयोजलं तस्य धराधारकास्तैः कनककलशैः काञ्चनकुटैः, अरुणप्रभैः रक्तकान्तिभिः अधरपल्लवैर्दशनच्छदकिसलयैः शोभिताः समलंकृता मुखभागा येषां तैः कामिनीजनैः, पक्षे अरुणप्रभाया रक्तकान्त्या धराधारका ये पल्लवाः किसलयास्तैः शोभितो मुखभागोऽग्रभागो येषां तैः कनककलशैः, कोमला मृदुला मधवो मधुरूपाश्च ये कराः पाणयस्तैः संगतैः कामिनीजनैः, पक्षे कोमलमधुकरैः मृदुभ्रमरैः संगतैः सहितैः कनककलशैः, कलधौतस्य सुवर्णस्येव रुचिः कान्तिस्तया रुचिरैः सुन्दरैः कामिनीजनैः, पक्षे कलधौतस्य सुवर्णस्य रुच्या कान्त्या रुचिरैः रम्यैः कनककलशैश्च स्नापितः अभिषिक्तः, कृतं विहितं नीराजनम् आरार्तिकं यस्य तथाभूतः, आत्मवत् स्वमिव कल्याणगुणं कल्याणस्य सुवर्णस्य गुणास्तन्तवो यस्मिंस्तत्, वसनं वस्त्रं पक्षे कल्याणाः कल्याणकरा गुणा यस्य तं स्वं जिनेन्द्रमित्यर्थः, परिधाय धृत्वा, स्वमिव आत्मानमिव सरसं रसेन पारदेन सहितं सरसं मुकुरं दर्पणं पक्षे रसेन स्नेहेन सहितं सरसं स्वं, अवलोक्य दृष्ट्वा, स्वमिव आत्मानमिव भद्रश्रीख्यातिकलितं—'भद्रश्री' इति ख्यात्या प्रसिद्ध्या कलितं सहितं चन्दनं मलयजं पक्षे भद्रा कल्याणकारिणी या श्रीः लक्ष्मीस्तया कलितं स्वं, चन्दनं च धृत्वा, सद्वृत्तरत्नमण्डितैः सद्वृत्तं सदाचार एव रत्नं तैर्मण्डितैः शोभितैः त्रिदशजनैः देवैः पक्षे सन्ति रेखादिदोषरहितानि वृत्तानि वर्तुलानि च यानि रत्नानि तैर्मण्डितैः भूषणगणैश्च भूपासमूहैश्च, सदा सततम् आखण्डलस्य सहस्रा-

सिन्धु आदि नदियोंके जलसे अभिषेक किया तथा नाभिराज आदि राजा और नगर निवासी लोगोंने भी तीर्थोंसे लाये हुए सुगन्धित जलसे भगवान्का अभिषेक किया ॥१२॥ § १९) तदन्विति—तदनन्तर सुवर्णनिर्मित स्नानजलके कुण्डमें जिन्होंने अवगाहन किया था ऐसे त्रिलोकीनाथका स्त्रीजनोंने जिन सुवर्णकलशोंसे अभिषेक किया था वे सुवर्णकलश उन्हीं स्त्रीजनोंके समान थे, क्योंकि स्त्रीजन कुकुमारुणपयोधर—केशरसे लाल-लाल स्तनोंको धारण करनेवाले थे और सुवर्णकलश भी कुकुमारुणपयोधर—केशरसे लाल-लाल जलको धारण कर रहे थे, स्त्रीजनोंके मुख अरुण-प्रभाधरपल्लव—लालकान्तिवाले अधरोष्ठ रूपी पल्लवोंसे सुशोभित थे और सुवर्ण कलशोंके मुख भी लाल प्रभाको धारण करनेवाले पल्लवोंसे सुशोभित थे, स्त्रीजन कोमलमधुकर संगत—कोमल तथा मधुरूप हाथोंसे सहित थे और सुवर्णकलश भी कोमल-मधुकर-संगत—कोमल भ्रमरोंसे सहित थे, तथा स्त्रीजन-कलधौतरुचि-रुचिर—सुवर्णके समान कान्तिसे सुन्दर थे और सुवर्ण कलश भी कलधौत रुचिरुचिर—सुवर्णकी कान्तिसे मनोहर थे। स्नपनके बाद स्त्रीजनोंने उनकी आरती की थी। तदनन्तर उन्होंने अपने ही समान कल्याणगुण सुवर्णतन्तुओंसे निर्मित (पक्षमें कल्याणकारी गुणोंसे सहित) वस्त्रको धारण किया, अपने ही समान सरस—पारेसे सहित (पक्षमें स्नेहसे सहित)

रामालास्यप्रकारप्रकटितहृदय सत्सभालाभयोग्य-
स्तद्वल्लोकाधिनाथ ! स्फुरति तव रिपुर्लेश एवास्ति भेद ॥१३॥

§ २२) मन्ता सत्कार्यभूम्ना शुभकररमितस्त्व दयोद्दामशीलो
मीनाङ्कश्लाघ्यदेहो मितरहितयशा मानिभिः सेवितश्रीः ।
प्रज्ञावद्भिः प्रमेयः प्रतिमतकुशलः प्राप्तसाम्यो न कश्चित्
लोकेश ! त्वत्सपत्नो न खलु तव समो मोहमाप्नोति विष्वक् ॥१४॥

रामाया लक्ष्म्या लास्यप्रकारे नृत्यभेदे प्रकटित हृदय यस्य तथाभूत , सत्सभाना समीचीनपरिषदा लाभस्य प्राप्तेर्योग्य' समर्ह असीति शेष , हे लोकाधिनाथ ! हे लोकेश ! तद्वत् तथैव तव रिपु शत्रु स्फुरति शोभते । उभयो: लेश एव अल्प एव भेदो विशेष अस्ति । अथ च ले लकारस्थाने श शकार इति लेश एव भेदोऽस्ति उपरितन-विशेषणेपु लकारस्थाने शकार योजयित्वा शत्रुपक्षे व्याख्यानं कर्तव्यमिति यावत् । एव च शत्रुपक्षे श्लोकपाठ एवं बोध्य.—देव ! त्व शोकसेव्य प्रकृतिविशसने कोविदो मुक्तशोभो भ्राजन्नङ्गैः कशार्हैररिशयनियत कोशसकाशवीर्य. । रामाशास्यप्रकारप्रकटितहृदय सत्सभाशाभयोग्यस्तद्वच्छोकाधिनाथ ! स्फुरति तव रिपु शेष एवास्ति भेद ॥ हे देव ! त्वं लोकसेव्य तव रिपुस्तु शोकसेव्य शोकयुक्त , त्व प्रकृतिविलसने कोविद: तव रिपुस्तु प्रकृतिविशसने प्रजाविनाशे कोविद , त्व मुक्तलोभ तव रिपुस्तु मुक्तशोभ शोभारहित , त्व कलार्हं अङ्गं भ्राजन् तव रिपुस्तु कशार्हं 'अश्वादेस्ताडनी कशा' तदर्ह. अङ्गं भ्राजन्, त्व अरिलयनियत' तव रिपुस्तु अरिशये शत्रुहस्ते नियतो बद्ध , त्व कीलसकाशवीर्य नव रिपुस्तु कीशसंकाशवीर्य कपितुल्यपराक्रम., त्व रामालास्यप्रकारप्रकटितहृदय: तव रिपुस्तु रामाशास्यप्रकारप्रकटितहृदय स्त्रीनिघ्नताप्रकारप्रकटितहृदय , त्व सत्सभालाभयोग्य तव रिपुस्तु सत्सभाशाभयोग्य सत्सभासु अनादरयोग्य , त्व लोकाधिनाथ तव रिपुस्तु शोकाधिनाथ शोकयुक्त , इत्यमुभयोर्भेद शेष एव असमाप्त एव विद्यते । श्लेषव्यतिरेकौ । शार्दूलविक्रीडित वृत्तम् ॥१३॥ § २२) मन्वेति—हे लोकेश ! हे जगत्पते ! त्व सत्कार्याणा भूमानस्तेषा प्रशस्तकार्य-बाहुल्याना मन्ता बोद्धा, शुभकरैः श्रेयस्करैरमित क्रीडित , दयया उद्दामशील यस्य तथाभूत कृपोत्कट-स्वभाव , मीनाङ्को मदनस्तद्वत् श्लाघ्यो देहो यस्य स , मितरहितमपरिमित यशो यस्य स , मानिभिर्मनस्विभि: सेविता श्रीर्यस्य स , प्रज्ञावद्भिर्बुद्धिमद्भि प्रमातु योग्य प्रमेय , प्रतिमत प्रतिज्ञात कुशल श्रेयो यस्य स , असीति शेप । कश्चित् कोऽपि प्राप्तसाम्य. प्राप्तसादृश्यो नास्ति तवेति शेप । खलु निश्चयेन त्वत्सपत्नस्त्वद्वैरी 'रिपौ

कीलके समान सुदृढ़ पराक्रमसे सहित हैं, लक्ष्मीके नृत्यभेदमें आपका हृदय प्रकट है, आप समीचीन सभाओंकी प्राप्तिके योग्य हैं तथा लोकके नाथ हैं इसी प्रकार आपका शत्रु भी है उसमे लेशमात्र ही भेद है—थोडा सा भेद है (पक्षमे उपर्युक्त विशेषणोंमे लकारके स्थानमें शकार कर देने मात्रका भेद है अर्थात् आपका शत्रु शोकसेव्य है—शोकके द्वारा सेवनीय है, प्रकृति—प्रजाके विशसन—नष्ट करनेमें निपुण है, मुक्तशोभ-शोभासे रहित है, कशार्ह—कोड़ाके योग्य अंगोंसे सहित है, अरिशयनियत—शत्रुके हाथोंमे बद्ध है, कीशसंकाशवीर्य—वानरके समान शक्तिका धारक है, स्त्रियोंकी आज्ञामे चलनेवाला है, समीचीन सभाओंमे अनादरके योग्य है तथा शोकाधिनाथ—शोकका स्वामी है) ॥१३॥ § २२) मन्तेति—हे लोकेश ! आप अनेक सत्कार्योंके माननेवाले हैं, कल्याणकारी लोगोके द्वारा क्रीडाको प्राप्त हैं, दयासे परिपूर्ण शीलसे युक्त हैं, कामदेवके समान सुन्दर देहसे सहित हैं, अपरिमित यशसे सहित हैं, मानीजनोंके द्वारा सेवित श्रीसे सम्पन्न हैं, बुद्धिमानोंके द्वारा जाननेके योग्य हैं, तथा कल्याणकारी कार्योंको जानने वाले हैं, कोई भी पुरुष आपकी समानताको प्राप्त करनेवाला नहीं है । हे लोकेश्वर ! आपका शत्रु आपके समान नहीं है वह सब ओरसे मोह—विभ्रमको

दशजनैर्भूषणगणैश्च भूषित , स्वात्मानमिव सुपर्वाञ्चित सुरुचिरमणीमनोहर च नाभिराजार्पित मौलिं शिरसि निदधानो राजताभ्युदयाकरेण नाभिराजकरेण पट्टबन्धेन च बन्धितललाटतट' पर विरराज।

§ २०) तदानीमुदारवचनमकरन्दा सुबन्दिन इत्थ पठन्ति स्म।

§ २१) देव ! त्व लोकसेव्यः प्रकृतिविलसने कोविदो मुक्तलोभो-
भ्राजन्नङ्गैः कलार्हैररिलयनियतः कीलसकाशवीर्य.।

क्षस्य या सत्प्रभा सत्कान्तिस्तया विराजितै शोभितै त्रिदशजनै पक्षे सदा सततम् अखण्ड यथा स्यात्तथा लसन्ती शोभमाना या प्रभा कान्तिस्तया विराजितै भूषणगणै , मुक्तस्त्यक्त आमयो रोगो यैस्तै रोगरहितै. त्रिदशजनै पक्षे मुक्ताना मुक्ताफलाना विकारा मुक्तामया तै भूषणगणै , न वपुषि शरीरे अरागै रागरहितैरिति नवपुण्यरागै शरीररागसहितैरित्यर्थ , त्रिदशजनै पक्षे नवो नूतन पुष्यरागो मणिविशेषो येषु तै. भूषणगणै भूषित समलङ्कृत , स्वात्मानमिव स्वमिव सुपर्वभि सुमनोभि अञ्चितस्त देवपूजित स्वात्मान पक्षे सुपर्वभि सुशिखरैरञ्चित शोभित मौलिं मुकुट, सुष्ठु रुचि कान्तिर्यासा ता सुरुचय तथाभूता या रमण्य स्त्रियस्तासा मनोहर चेतोहर स्वात्मान पक्षे सुरुचिरमणीभि सुन्दरतररत्नैर्मनोहर मौलिं मणिशब्द ईकारान्तोऽपि दृश्यते। नाभिराजेन अर्पित दत्त मौलिं मुकुट शिरसि निदधान , राज्ञोभावो राजता नृपतिता तस्या अभ्युदयस्य आ- समन्तात् कर कर्ता इति राजताभ्युदयाकरस्तेन नाभिराजकरेण स्वपितृहस्तेन, पक्षे रजतस्य अय राजत. रौप्य स चासौ अभ्युदयस्तस्य आकर खनिस्तेन रजतनिर्मितेन पट्टबन्धेन च बन्धितो ललाटतटो यस्य तथाभूत सन् परमत्यन्त विरराज शुशुभे। श्लेषोपमा। § २०) तदानीमिति—तदानीं राजपट्टबन्धनावसरे उदार समुत्कृष्ट वचनमकरन्द येषा ते सुबन्दिन सुमागधा इत्थ अनेन प्रकारेण पठन्ति स्म विरुदावलीमुच्चार- यामासु । § २१) देवेति—हे देव ! हे राजन् । यद्वत् येन प्रकारेण त्व लोकसेव्य लोकै सेव्य लोकसेव्या जनाराधनीय , प्रकृतिविलसने प्रजाप्रसन्नीकरणे कोविदो निपुण , मुक्तलोभ त्यक्तलोभ , कलार्है कलायोग्यै अङ्गैरवयवै भ्राजन् शोभमान , अरिलये शत्रुनाशे नियत सलग्न , कीलसकाश वीर्य यस्य तथाभूत सुदृढपराक्रम,

---

ाभि-तर

दर्पणको देखकर अपने ही समान भद्रश्रीख्यातिकलित—'भद्रश्री' इ ोभित स नामसे सहित (पक्षमें कल्याणकारी लक्ष्मीसे सहित) चन्दन लगाया। तदनन्तर देवोंने समृद्ध- अपने समान सद्वृत्त रत्नमण्डित—समीचीन गोलाकार रत्नोंसे सुशोभित, (पक्ष मित द्वा में सदाचरणरूपी रत्नसे सुशोभित), सदाखण्डलसत्प्रभाविराजित—निरन्तर अखण्ड सुशोभित भसे सुशोभित कान्तिसे विराजित (पक्षमे इन्द्रकी समीचीन प्रभासे विराजित), मुक्तामय वा वह —मोतियोंसे तन्मय (पक्षमें रोगरहित), तथा नवपुष्पराग—नूतन पुखराजमणिसे सहित मरस-स —मोतियोंसे तन्मय (पक्षमें शरीरमें अराग— अप्रीतिसे रहित) भूषणोंके समूहसे अलकृत किया हि लकार भी विकस्व (पक्षमें शरीरमें अराग— धारण करनेके पश्चात् उन्होंने अपने ही समान सुपर्वांचित—सुन्दर कलगियों सहि ोभि, अ जिस (पक्षमें देवोंके द्वारा पूजित) और सुरुचिरमणी मनोहर—सुन्दर मणियोंसे यह मण्डप भी क कर त (पक्षमें सुन्दर स्त्रियोंके मनको हरने- वाले) नाभिराजाके द्वारा प्रदत्त मुकुटको न था क्योंकि जि सुर (पक्षमें सुन्दर स्त्रियोंके मनको हरने- कर—राजपनाके अभ्युदयको करनेवाले न प्रकार वह मण्ड नोहर ऊपर धारण किया, तदनन्तर राजताभ्युदय अभ्युदयको करनेवाला अर्थात् रजतनिर्मि दनवन तालमनोह ऊपर धारण किया, तदनन्तर राजताभ्युदयकर—चाँदीके सब कारणोंसे वे अत्यधिक सुशोभित र—स्वर तालोंसे राजके हाथ तथा राजताभ्युदयकर—चाँदीके मकरन्दसे सहित सुवन्दीजन इस प्र ालवाले सरोवरोंके पट्टबन्ध उनके ललाट तटपर बाँधा गया। इन प्रकार आप लोकसेव्य हैं—लोगोंके शोभित—सुन्दर अप रहे थे। § २०) तदानीमिति—उत्कृष्ट वचनरूपी हैं, लोभसे रहित हैं, कलाके योग्य ऊपर बैठे हुए त्रिलो र पाठ कर रहे थे। § २१) देवेति—हे देव ! जिस ारा सेवा करने योग्य हैं, प्रजाके प्रसन्न करनेमें निपुण शोभायमान हैं, शत्रुओंका नाश करनेमें सलग्न हैं,

रामालास्यप्रकारप्रकटितहृदय सत्सभालाभयोग्य-
स्तद्वल्लोकाधिनाथ ! स्फुरति तव रिपुर्लेश एवास्ति भेदः ॥१३॥

§ २२) मन्ता सत्कार्यभूम्ना शुभकररमितस्त्वं दयोद्दामशीलो
मीनाङ्कश्लाघ्यदेहो मितरहितयशा मानिभिः सेवितश्रीः ।
प्रज्ञावद्भिः प्रमेयः प्रतिमतकुशलः प्राप्तसाम्यो न कश्चित्
लोकेश ! त्वत्सपत्नो न खलु तव समो मोहमाप्नोति विष्वक् ॥१४॥

रामाया लक्ष्म्या लास्यप्रकारे नृत्यभेदे प्रकटित हृदय यस्य तथाभूत, सत्सभाना समीचीनपरिषदा लाभस्य प्राप्तेर्योग्य समर्ह असीति शेष', हे लोकाधिनाथ ! हे लोकेश ! तद्वत् तथैव तव रिपु शत्रु स्फुरति शोभते । उभयोः लेश एव अल्प एव भेदो विशेष अस्ति । अथ च ले लकारस्थाने श शकार इति लेश एव भेदोऽस्ति उपरितन-विशेषणेषु लकारस्थाने शकार योजयित्वा शत्रुपक्षे व्याख्यानं कर्तव्यमिति यावत् । एव च शत्रुपक्षे श्लोकपाठ एव बोध्य.—देव ! त्व शोकसेव्य प्रकृतिविशसने कोविदो मुक्तशोभो भ्राजन्नङ्गैः कशार्हैररिशयनियत कीशसंकाशवीर्य. । रामाशास्यप्रकारप्रकटितहृदय सत्सभाशाभयोग्यस्तद्वच्छोकाधिनाथ ! स्फुरति तव रिपु शेष एवास्ति भेद ॥ हे देव ! त्वं लोकसेव्य तव रिपुस्तु शोकसेव्य शोकयुक्त, त्व प्रकृतिविलसने कोविद तव रिपुस्तु प्रकृतिविशसने प्रजाविनाशे कोविद, त्व मुक्तलोभ तव रिपुस्तु मुक्तशोभ शोभारहित, त्व कलार्हैः अङ्गैः भ्राजन् तव रिपुस्तु कशार्हैः 'अश्वादेस्ताडनी कशा' तदर्हैः अङ्गैः भ्राजन्, त्व अरिलयनियत' तव रिपुस्तु अरिशये शत्रुहस्ते नियतो बद्ध, त्व कीलसकाशवीर्य नव रिपुस्तु कीशसकाशवीर्यः कपितुल्यपराक्रम., त्वं रामालास्यप्रकारप्रकटितहृदयः तव रिपुस्तु रामाशास्यप्रकारप्रकटितहृदय स्त्रीनिघ्नताप्रकारप्रकटितहृदय, त्व सत्सभालाभयोग्य तव रिपुस्तु सत्सभाशाभयोग्य सत्सभासु अनादरयोग्य, त्व लोकाधिनाथ तव रिपुस्तु शोकाधिनाथ शोकयुक्त, इत्यमुभयोर्भेद शेष एव असमाप्त एव विद्यते । श्लेषव्यतिरेकौ । शार्दूलविक्रीडित वृत्तम् ॥१३॥ § २२) मन्तेति—हे लोकेश ! हे जगत्पते ! त्व सत्कार्याणा भूमानस्तेषा प्रशस्तकार्य-बाहुल्याना मन्ता बोद्धा, शुभकरैः श्रेयस्करैरमित क्रीडित, दयया उद्दामशील यस्य तथाभूत कृपोत्कट-स्वभाव, मीनाङ्को मदनस्तद्वत् श्लाघ्यो देहो यस्य स, मितरहितमपरिमित यशो यस्य स, मानिभिर्मनस्विभिः सेविता श्रीर्यस्य स, प्रज्ञावद्भिर्बुद्धिमद्भि प्रमातु योग्य प्रमेय, प्रतिमत प्रतिज्ञात कुशल श्रेयो यस्य स, असीति शेष । कश्चित् कोऽपि प्राप्तसाम्यः प्राप्तसादृश्यो नास्ति तवेति शेष । खलु निश्चयेन त्वत्सपत्नस्त्वद्वैरी 'रिपौ

कीलके समान सुदृढ पराक्रमसे सहित हैं, लक्ष्मीके नृत्यभेदमे आपका हृदय प्रकट है, आप समीचीन सभाओंकी प्राप्तिके योग्य हैं तथा लोकके नाथ हैं इसी प्रकार आपका शत्रु भी है उसमे लेशमात्र ही भेद है—थोडा सा भेद है (पक्षमे उपर्युक्त विशेषणोंमे लकारके स्थानमे शकार कर देने मात्रका भेद है अर्थात् आपका शत्रु शोकसेव्य है—शोकके द्वारा सेवनीय है, प्रकृति—प्रजाके विशसन—नष्ट करनेमे निपुण है, मुक्तशोभ-शोभासे रहित है, कशार्ह—कोड़ाके योग्य अंगोंसे सहित है, अरिशयनियत—शत्रुके हाथोंमे बद्ध है, कीशसंकाशवीर्य—वानरके समान शक्तिका धारक है, स्त्रियोंकी आज्ञामे चलनेवाला है, समीचीन सभाओंमे अनादरके योग्य है तथा शोकाधिनाथ—शोकका स्वामी है) ॥१३॥ § २२) मन्तेति—हे लोकेश ! आप अनेक सत्कार्योंके माननेवाले हैं, कल्याणकारी लोगोंके द्वारा क्रीडाको प्राप्त हैं, दयासे परिपूर्ण शीलसे युक्त हैं, कामदेवके समान सुन्दर देहसे सहित हैं, अपरिमित यशसे सहित हैं, मानीजनोंके द्वारा सेवित श्रीसे सम्पन्न हैं, बुद्धिमानोंके द्वारा जाननेके योग्य हैं, तथा कल्याणकारी कार्योंको जानने वाले हैं, कोई भी पुरुष आपकी समानताको प्राप्त करनेवाला नहीं है । हे लोकेश्वर ! आपका शत्रु आपके समान नहीं है वह सब ओरसे मोह—विभ्रमको

§ २३) देव! त्वं काशपुष्पस्तवकनिभयशा गोविशालोत्सवाढ्यो-
दानैकायत्तचित्तो रिपुजनविततेः शासने धीरवीरः।
भासेद्धर्द्धिर्मयाप्तो भुवि लयरहितो धीद्धवृत्तिभरेण
युक्तस्त्वद्वत्कथं स्याद्रिपुरमरनुत! प्रागभजत्यापदं सः ॥१५॥

वैरिसपत्नारिद्विषद्द्वेषणदुर्हृद' इत्यमरः, तव समो न भवत सदृशो न वर्तते, स विष्वक् समन्तात् मोहं विभ्रमम् आप्नोति प्राप्नोति अथ य मकारस्य स्थाने ह हकारं प्राप्नोति उपर्युक्तविशेषणेषु सर्वत्र मकारस्थानेषु हकारं प्राप्नोति तथा च त्वद्रिपुपक्षे इत्थं पाठः परिवर्त्यते—हन्ता सत्कार्यभूम्ना शुभकररहितस्त्वं दयोद्दाहशीलो हीनाङ्कश्लाघ्यदेहो हितरहितयशा हानिभिः सेवितश्रीः। प्रज्ञावद्भिः प्रहेयः प्रतिहतकुशलः प्राप्तसाह्यो न कश्चित् लोकेश! त्वत्सपत्नो न खलु तव सहो होहमाप्नोति विष्वक् ॥ अस्मिन् पक्षे व्याख्यानं त्वित्थम्—हे लोकेश! त्वत्सपत्नो भवद्रिपुः सत्कार्यभूम्ना प्रशस्तकार्यबाहुल्यानां हन्ता नाशकः, शुभकरैः श्रेयस्करैः रहितः शून्यः, दयोद्दाहः कृपादाहकरः शीलं स्वभावो यस्य सः, हीनाश्च तेऽङ्काश्चेति हीनाङ्काः कुत्सितलिङ्गानि तैः श्लाघ्यो युक्तो देहो यस्य सः, हितरहितं कल्याणरहितं यशो यस्य सः, हानिभिः सेविता श्रीर्यस्य सः, प्रज्ञावद्भिर्बुद्धिमद्भिः प्रहातुं त्यक्तुं योग्यः प्रहेयः, प्रतिहतं नष्टं कुशलं यस्य सः, अस्तीति शेषः। कश्चित् कोऽपि तस्य साह्यं सहभवं साह्यः सहयायी न वर्तते। हे लोकेश! त्वत्सपत्नस्त्वद्रिपुः तव सहते इति सहः सहनकर्ता न त्वां न सहतेऽसाविति भावः। स विष्वक् समन्तात् अहं तर्कम् आप्नोति हा इति खेदेऽव्ययं। श्लेषव्यतिरेकौ॥ शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥१४॥ २३) देवेति—हे देव! हे राजन्! त्वं काशपुष्पस्तवनिभं काशपुष्पगुच्छकसदृशं यशः कीर्तिर्यस्य तथाभूतः, गवि भूम्यां विशालोत्सवैर्बहूद्धवैः आढ्यः सहितः, दानस्य विहापितस्य एकायत्तं एकाधीनं चित्तं यस्य सः, दानैकतत्परहृदय इत्यर्थः, रिपुजनविततेः शत्रुजनसततेः शासने दमने धीरवीरो दक्षतरः, भासा कान्त्या इद्धा दीप्ता ऋद्धिर्यस्य तथाभूतः मया लक्ष्म्या आप्तः सहितः, भुवि पृथिव्यां लयरहितो नाशरहितः, धिया बुद्ध्या इद्धाया वृत्तिः प्रवृत्तिस्तस्या भरेण समूहेन युक्तः सहितः असीति शेषः, रिपुः शत्रुः त्वद्वत् त्वत्सदृशः कथं स्यात् अपि तु केनापि प्रकारेण न स्यात्। हे अमरनुत! हे देवस्तुत! स त्वद्रिपुः प्राक्पूर्वमेव आपदमापत्तिं भजति प्राप्नोति त्वदहितविचारात् पूर्वमेव स आपत्तिमवाप्नोतीति भावः। अथ च स प्राक् पूर्वोक्तविशेषणेषु प्राक् आ इति पदम् आपदं भजति सेवते। तथा च त्वद्रिपुपक्षे इत्थं पाठः, परिवर्त्यते त्वं काशपुष्पस्तवकनिभयशा, त्वद्रिपुस्तु आकाशपुष्पस्तवकनिभयशाः—आकाशपुष्पस्तवकनिभ

प्राप्त होता है (पक्षमें आपका शत्रु उपर्युक्त विशेषणोंमें मकारके स्थानमें हकारको प्राप्त होता है अर्थात् वह प्रशस्त सत्कार्योंकी अधिकताका हन्ता—नाश करनेवाला है, शुभकर—कल्याणकारी लोगोंसे रहित है, दयोद्दाहशील—दयाको जलानेवाले स्वभावसे सहित है अर्थात् निर्दय है, हीन चिह्नोंसे युक्त शरीरवाला है, हित रहित यशसे सहित है अर्थात् हितकारी यशसे शून्य है, हानियोंसे युक्त लक्ष्मीवाला है, बुद्धिमानोंके द्वारा प्रहेय—छोड़नेके योग्य है, कुशलताको नष्ट करनेवाला है, उसका कोई साथी नहीं है, वह आपको सहन नहीं कर सकता वह तो सदा तर्क ही को प्राप्त होता रहता है यह खेदकी बात है) ॥१४॥
§ २३) देवेति—हे देव! आप काशके [illegible] सहित हैं, पृथ्वीपर विशाल उत्सवोंसे युक्त हैं, आपका चि[illegible] दे[illegible] न रहता है, आप शत्रु-समूहका दमन करनेमें शूर-वीर हैं, अ[illegible] देदीप्यमान है पृथिवी पर आप विनाशसे रहित हैं [illegible] स्तुत! आपका शत्रु आप[illegible] आपत्तिको प्राप्त हो जाव[illegible] प्राप्त होता है अर्थात् [illegible]

§ २४) किंच देव खलु करोदितविभवः कविगीतयशा' करिमिलितदिगन्तर. कमलविलसितनयनयुग कोपक्रियाविरहित. कान्तोपलालितहर्षः कामाभतनुलतः कार्तस्वरमात्रविचित्रसदनः कर्णसयोजितमहार्घभूषणः कारणचिन्ताधुरीणमानस', कवनयोग्यपवित्रचरित्र कार्यसमापनतत्परः कामितविभवत्यागी कासारविराजितभवनप्रदेशः करेणुवृन्दस्थपुटितमन्दिरद्वारदेश' काननस्थापितपरतृणः कालवालजलदस्तवरिपुस्तु पूर्वकान्न रक्षतीति कथं तव कक्षा गाहत इति ।

गगनपुष्पस्तबकसदृश शून्यरूपं यशो यस्य तथाभूत , त्व गोविशालोत्सवाढच' त्वद्रिपुस्तु आगोविशालोत्सवाढचः आगोभिरपराधैर्विशाला पूर्णा ये उत्सवास्तैराढच , त्व दानैकायत्तचित्त ः त्वद्रिपुस्तु आदानैकायत्तचित्त आदानस्य ग्रहणस्य एकायत्त चित्त यस्य तथाभूतो दीन इत्यर्थः, रिपुजनविततो शत्रुसमूहस्य आशासने आज्ञापालने वीरधीरोऽतिदक्ष , त्व भासेद्धर्द्धि. त्वद्रिपुस्तु आभासेद्धर्द्धि आभास यथा स्यात्तथा इद्धा ऋद्धयो यस्य स आभासमात्रर्द्धियुक्त इत्यर्थ , त्वं मयाप्त त्वद्रिपुस्तु आमयाप्त सरोग., त्वं भुवि लयरहित त्वद्रिपुस्तु आलयरहितो गृहरहित', त्व धीद्धवृत्तेर्भरेण युक्त. त्वद्रिपुस्तु आधीद्धवृत्तेर्भरेण युक्त आधयो मानसव्यथास्तैरिद्धा या वृत्तिश्चेष्टा तस्या भरेण युक्त', त्वम् अमरनुत. त्वद्रिपुस्तु आमरनुत आ समन्तात् म्रियन्त इत्यामरास्तै. नुत स्तुतः तत्सबुद्धौ । श्लेषव्यतिरेकौ । शार्दूलविक्रीडितछन्द ॥१५॥ § २४) किं चेति—किं च अन्यदपि देवो भवान् खलु निश्चयेन करै राजस्वैरुदितं बलवैभवं वीर्यसामर्थ्यं यस्य स , कविभिर्गीतं यशो यस्य स., करिभिर्गजैर्मिलितानि दिगन्तराणि काष्ठान्तानि यस्य स , कमलमिव विलसित शोभित नयनयुगं यस्य सः, कोपक्रियया क्रोधचेष्टया विरहित. शून्य , कान्ताभि कामिनीभिरुपलालितो वर्धितो हर्षो यस्य स , कामाभा स्मरसदृशी तनुलता देहवल्ली यस्य स , कार्तस्वरपात्रै' सुवर्णभाजनैर्विचित्राणि विस्मयकराणि सदनानि भवनानि यस्य स , कर्णयो श्रवणयो संयोजिते धृते महार्घभूषणे महामूल्याभरणे यस्य स., कारणाना चिन्ताया धुरीण दक्ष मानस यस्य स , कवनयोग्य स्तवनयोग्य पवित्रचरित्र यस्य स , कार्याणा प्रारब्धकृत्याना समापने पूरणे तत्पर सलग्न , कामितविभवस्य इष्टवैभवस्य त्यागो दान कामितविभवत्याग सोऽस्ति यस्येति तथाभूत., कासारेण सरसा विराजित शोभितो भवनप्रदेशो यस्य स , करेणुवृन्देन हस्तिसमूहेन स्थपुटितो व्याप्तो मन्दिरद्वारदेशो भवनद्वारप्रदेशो यस्य स , कानने वने स्थापिता उषिता परतृणाः क्षुद्रशत्रवो येन स , कालवालैः

आगोविशाल—अपराधोंसे पूर्ण उत्सवोंसे युक्त है, आदानैकायत्तचित्त—ग्रहण करनेमें ही उसका चित्त संलग्न रहता है, वह शत्रुसमूहकी आज्ञाका पालन करनेमें अति दक्ष है, आभासमात्र ऋद्धियोंसे युक्त है—उसके पास वास्तविक सम्पत्ति नहीं है, आमयाप्त—रोगोंको प्राप्त है, पृथिवीपर आलय—घरसे रहित है, आधीद्धवृत्ति—मानसिक व्यथाओंसे युक्त है। चेष्टाओंके समूहसे युक्त है और मरणशील मनुष्योंके द्वारा ही स्तुति करने योग्य है।) ॥१५॥ § २४) किंचेति—इसके सिवाय निश्चयसे आपके पराक्रमकी सामर्थ्य राजस्वों—टैक्सोंसे वृद्धिको प्राप्त हुई है, कवियोंके द्वारा आपका यश गाया जाता है, आपने दिशाओंके अन्तराल हाथियोंसे मिला दिये है, आपके दोनों नेत्र कमलोंके समान सुशोभित हैं, आप क्रोधकी क्रियासे रहित है, आपका हर्ष कान्ताओं—स्त्रियोंसे बढ़ाया गया है, आपकी शरीरलता कामदेवके समान है, आपके भवन स्वर्णमय पात्रोंसे आश्चर्य उत्पन्न कर रहे हैं, आपके कानोंमें महामूल्य आभूषण सुशोभित है, आपका मन कारणोंकी चिन्ता करनेमें निपुण है, आपका पवित्र चरित्र स्तुतिके योग्य है, आप कार्योंको समाप्त करनेमें तत्पर रहते हैं, आपने इष्टविभवोंका त्याग किया है, आपके भवनोंके प्रदेश तालाबोंसे सुशोभित है, आपके भवनोंके द्वार हाथियोंके समूहसे व्याप्त रहते हैं, आपने शत्रुरूपी तृणको अथवा तृणके समान क्षुद्र शत्रुओंको वनमे खदेड़ दिया है, तथा काले केशोंसे आप मेघके समान जान पड़ते हैं परन्तु आपका शत्रु अपने पूर्ववर्तीजनोंकी रक्षा नहीं कर सकता इसलिए वह आपकी बराबरी कैसे कर सकता

§ २५) ततः सानन्दमानन्दनाटकं कुलिशायुधः ।
प्रयुज्यास्थायिकारङ्गे प्रत्यगाद्‌गां सुरैः सह ॥१७॥

§ २६) अथ स मुकुटबद्धप्रोल्लसन्मौक्तिमाला-
मसृणितनखराजीराजितो विश्वसृष्टा ।
विधृतसकलभारो नाभिराजोपकण्ठे
प्रकृतिनिचयरक्षायत्नमित्थं चकार ॥१८॥

कृष्णकचैः जलदो मेघ., असीति शेष , तव भवतो रिपुस्तु शत्रुस्तु पूर्वकान् पूर्वे एव पूर्वका स्वकीयपूर्वपुरुषास्तान् न रक्षतीति कथ तव कक्षामुपमा गाहते इति । अथ च तव रिपु उपर्युक्तविशेषणेषु विद्यमानान् पूर्वकान् पूर्वकाक्षरान् न रक्षतीति कथ तव कथा गाहते । रिपुपक्षे पूर्वकाक्षरत्यागे विशेषणानामित्यमर्थो भवति—रोदितबलविभव —रोदित आक्रन्दनयुक्तो बलविभवो यस्य स , विगीत निन्दित यशो यस्य स , अरिभिर्मिलित दिगन्तर यस्य स , मलविलसित नयनयुग यस्य स , उपक्रियाविरहित समुपकारशून्य , अन्तेन विनाशेनोपलालितो हर्षो यस्य स , अमाभा अशोभना तनुलता यस्य स , आर्तस्वरस्य पीडितशब्दस्य पात्र विचित्र चित्ररहित सदन यस्य स , ऋणे सयोजितानि समर्पितानि महार्घभूषणानि यस्य स , रणचिन्ताया समरचिन्तायां धुरीण मानस यस्य स , वनयोग्य पवित्रचरित्र यस्य स , आर्याणा सत्पुरुषाणा समापने विनाशे तत्पर समुद्युक्त , अमितविभवत्यागोऽपरिमितैश्वर्यत्यागो विद्यते यस्य स , सारेण धनेन विराजित शोभितो भवनप्रदेशो न भवति यस्य स असारविराजितभवनप्रदेश , अथवा आसारेण वलीकपटलरहितत्वाद् धारासपातेन विराजितो भवनप्रदेशो यस्य स , रेणुवृन्देन धूलिसमूहेन स्थपुटिता नतोन्नता मन्दिरद्वारदेशा भवनद्वारदेशा यस्य स , आननेषु मुखेषु स्थापिता परै शत्रुभि तृणा यस्य स , आलवालेषु आवापेषु जल ददातीति आलवालजलदा । श्लेषव्यतिरेकौ । § २५) तत इति—ततस्तदनन्तर कुलिशायुधो वज्रायुध इन्द्र इत्यर्थ आस्थायिकारङ्गे सभारङ्गभूमौ सानन्द यथा स्यात्तथा आनन्दनाटक तन्नामनाटक प्रयुज्य कृत्वा सुरैरमरै सह गा स्वर्गं 'गौ पुमान् वृषभे स्वर्गे खण्डवज्रहिमांशुषु' इति विश्वलोचन । प्रत्यगात् प्रतिजगाम ॥१७॥ § २६) अथेति—अथ तदनन्तर मुकुटबद्धा मौलिसलग्ना या प्रोल्लसन्त्य शोभमाना मौक्तिमाला मुक्ताफलनिकरास्ताभिर्मसृणिता. स्निग्धा या नखराज्यो नखरपङ्क्तयस्ताभी राजित शोभित , विधृत सधृत सकलभारो

है ? (पक्षमें आपका शत्रु उपर्युक्त विशेषणोंमे ककारकी रक्षा नहीं करता है अर्थात् उसका बल विभव सदा रोदनसे युक्त रहता है, वह विगीतयश—निन्दित यशसे युक्त है, उसके दिशाओंके अन्तराल शत्रुओंसे व्याप्त रहते हैं, उसके नेत्रयुगल मलसे दूषित रहते हैं, वह उपकारोंसे शून्य रहता है, उसका हर्ष अन्तसे सहित होता है, उसकी शरीरलता अशोभनीक रहती है, उसका भवन दुःखमय शब्दोंका पात्र तथा चित्रोंसे विहीन है, उसके महामूल्य आभूषण ऋणमे चले जाते हैं, वह सदा रणकी चिन्तामे ही व्यग्र रहता है, उसका पवित्र चरित्र वनके योग्य है, वह आर्य मनुष्योंके नाश करनेमें तत्पर रहता है, उसे अपने अपरिमित विभवका त्याग करना पडता है, उसके महलोंके प्रदेश सारहीन हैं अथवा छप्परसे रहित होनेके कारण वर्षासे पीड़ित रहते हैं, उसके मकानोंके आगे धूलिके ढेर लगे हुए हैं, उसके शत्रु उससे मुखमें तृण धारण कराते हैं, तथा वह आजीविकासे दु खी हो क्यारियोंमें पानी देता फिरता है—इस तरह वह आपकी बराबरी कैसे कर सकता है ?) § २५) तत इति—तदनन्तर इन्द्र, सभारूपी रंगभूमिमें हर्ष सहित आनन्द नामका नाटक कर देवोंके साथ स्वर्गको वापिस चला गया ॥१७॥ § २६) अथेति—तदनन्तर मुकुटोंमे लगी हुई देदीप्यमान मोतियोंकी मालासे चिकनी नखोंकी पंक्तियोंसे जो सुशोभित हो रहे थे, तथा जिन्होंने

§ २७) तदानो त्रिभुवनपतिः शस्त्रशोभितभुजेन स्वात्मना सृष्टाना क्षतत्राणधुरीणाना क्षत्रियाणा प्रजापालनशरणागतरक्षणादिक, ऊरुभ्या यात्रा प्रदर्श्य सृष्टाना वैश्याना जलस्थलयात्राप्रवृत्ति, पादाभ्या सृष्टाना शूद्राणा वर्णोत्तमशुश्रूषा च यथार्हमुपदिश्य तद्वृत्तेरनतिक्रमाय दण्डमेवोद्दण्डसाधन मन्यमानः, चतुःसहस्रमुकुटबद्धपरिवृतान् सोमप्रभहर्यकम्पनकाश्यपनामधेयान्महामाण्डलिकान्नरपालान्मूर्धाभिषिक्तान्दण्डधरान्विधाय सोमप्रभस्य कुरुराजाभिधान कुरुवशाग्रगण्यता च, हरेश्च हरिकान्तसमाह्वय हरिवशतिलकता च, अकम्पनस्य पुनः श्रीधरनामधेय नाथवशमुक्ताफलता च, काश्यपस्य मघवाह्वयमुग्रवशललामता च प्रथयाचकार ।

§ २८) प्रभु कच्छमहाकच्छप्रमुखान्वसुधापतीन् ।
स्वाधिराजपदे देवः स्थापयामास सत्कृतान् ॥१९॥

निखिलभारो येन तथाभूतः, विश्वसृष्टा जगत्सृष्टा, स वृषभजिनेन्द्र , नाभिराजस्य स्वजनकस्योपकण्ठे समीपे इत्य वक्ष्यमाणप्रकारेण प्रकृतिनिचयस्य प्रजासमूहस्य रक्षायास्त्राणस्य यत्नमभ्युपाय चकार कृतवान् । मालिनी छन्द ॥१८॥ § २७) तदानोमिति—प्रजापालनाभ्युपायचिन्तनवेलाया त्रिभुवनपतिर्वृषभेश्वर., शस्त्रेण शोभितो भुजो यस्य तथाभूतेन स्वात्मना स्वेन सृष्टाना रचिताना क्षताना विपन्नाना त्राणे रक्षणे धुरीणाना निपुणाना क्षत्रियाणा क्षत्रियवशाना प्रजापालन प्रकृतिसरक्षणं शरणागताना रक्षण त्राण च तदादिक तत्प्रभृतिक, ऊरुभ्या सक्थिभ्या यात्रा गमनागमन प्रदर्श्य सृष्टाना निर्मिताना वैश्याना वैश्यवर्णाना जलस्थलयोर्नीरभूमितलयो प्रवृत्ति गतागति, पादाभ्या चरणाभ्या सृष्टाना रचिताना शूद्राणा शूद्रवर्णजाना वर्णोत्तमशुश्रूषा क्षत्रियवैश्यवर्णजसेवा च यथार्हं यथायोग्य उपदिश्य निरूप्य, तद्वृत्तेस्तदीयव्यापारस्यानतिक्रमायानुल्लङ्घनाय दण्डमेव उद्दण्डसाधन समुत्कटसाधन मन्यमान स्वीकुर्वाण· चतु सहस्र ये मुकुटबद्धास्तै परिवृतान् परिवेष्टितान्, सोमप्रभश्च हरिश्च अकम्पनश्च काश्यपश्चेति सोमप्रभहर्यकम्पनकाश्यपास्ते नामधेयानि येषा तथाभूतान् महामाण्डलिकान् महामण्डलेश्वरान् मूर्धानि अभिषिक्तान् कृतमस्तकाभिषेकान् दण्डधरान् दण्डधारकान् प्राप्तदण्डाधिकारानिति भाव विधाय कृत्वा सोमप्रभस्य कुरुराजाभिधान कुरुराजसज्ञा, कुरुवशस्य अग्रगण्यता प्रधानता च, हरेश्च हरिकान्तेति समाह्वयो यस्य त, हरिवशस्य तिलकता श्रेष्ठता च, अकम्पनस्य पुन श्रीधरनामधेय श्रीधरसज्ञा नाथवश एव वशो वेणुस्तस्य मुक्ताफलता मौक्तिकता च, काश्यपस्य मघवाह्वय मघवेति नामधेय उग्रवशललामता उग्रवशाभरणता च प्रथयाचकार प्रख्यापयामास । § २८) प्रभुरिति—

समस्त भार धारण किया था ऐसे जगत्स्रष्टा भगवान् आदि जिनेन्द्रने नाभिराजाके समीप प्रजासमूहकी रक्षाका इस प्रकार उपाय किया ॥१८॥ § २७) तदानीमिति—उस समय त्रिलोकेश्वर वृषभ जिनेन्द्रने शस्त्रसे शोभित भुजाके धारक अपने-आपके द्वारा रचे हुए तथा विपत्तिग्रस्त जीवोंकी रक्षा करनेमें निपुण क्षत्रियोंका प्रजापालन और शरणागतरक्षण आदि कार्य, जाँघोंके द्वारा यात्रा दिखलाकर रचे हुए वैश्योंका जल और स्थलमें गमनागमन कार्य, तथा पैरोंसे रचे हुए शूद्रोंकी यथायोग्य उत्तम वर्णवालोंकी सेवा करना कार्य बतलाकर उन कार्योंका कोई उल्लंघन न कर सके इस अभिप्रायसे दण्डको ही उत्कृष्ट साधन मानते हुए, चार हजार मुकुटबद्ध राजाओंसे परिवृत सोमप्रभ, हरि, अकम्पन और काश्यप नामक महामण्डलेश्वर राजाओंका मस्तकाभिषेक कर उन्हें दण्ड देनेका अधिकारी निश्चित किया और सोमप्रभका कुरुराज यह नाम रखकर उन्हें कुरुवंशका अग्रगण्य घोषित किया, हरिका हरिकान्त नाम रखकर उन्हें हरिवंशका तिलक बतलाया, अकम्पनका श्रीधर नाम रखकर उन्हें नाथवंश रूप बाँसका मुक्ताफल—मोती सूचित किया और काश्यपका मघवा यह नाम रखकर उन्हें उग्रवंशका आभरण प्रकट किया ॥ § २८) प्रभुरिति—सर्वसामर्थ्यवान् आदि-

§ २९) तदनु पुत्रानपि विचित्रवस्तुवाहनसंपदा संयोजयन्नयमादिदेव सकलनराणामिक्षुरससंग्रहणघटनेनेक्ष्वाकुरिति, प्रजाजीवनोपायकल्पनेन प्रजापतिरिति, निजकुलोद्धरणेन कुलधर इति, काश्यपदवाच्यतेजःपरिपालनेन काश्यप इति, कृतयुगप्रारम्भस्यादिभूतत्वेनादिब्रह्मेत्यादिनामधेयानि निखिलजनकर्णरसायनानि प्रकटयामास ।

§ ३०) नाकाधीश्वरमौलिमौक्तिकमणीतारावलीसेवित-
प्रोद्यत्पादनखेन्दुबिम्बविततिर्लोकत्रयाधीश्वरः ।
दिव्यस्रग्मणिभूषणाम्बरधरः साकेतसिंहासना-
रूढः पुत्रकलत्रमित्रसहितः शास्ति स्म विश्वंभराम् ॥२०॥

§ ३१) तदा देवे पृथ्वीमवति घनसंपत्तिरभवत्
न वारिप्राचुर्यं तदपि भुवनेषु क्वचिदभूत् ।

प्रभवतीति प्रभुः प्रकृष्टसामर्थ्योपेतः देवो वृषभेश्वरः, सत्कृतान्प्राप्तसत्कारान् कच्छमहाकच्छौ प्रमुखौ येषु तान् तथाभूतान् वसुधापतीन् राज्ञः स्वाधिराजपदे निजोत्कृष्टराजस्थाने स्थापयामास नियोजयामास ॥१९॥ § २९) तदन्विति—स्पष्टम् । § ३०) नाकेति—नाकाधीश्वराणां देवेन्द्राणां मौलिषु मुकुटेषु विद्यमाना मौक्तिकमणयो मुक्ताफलरत्नान्येव तारा नक्षत्राणि तासामावल्या पङ्क्त्या सेविता प्रोद्यतां समुदीयमानानां नखेन्दुबिम्बानां नखरचन्द्रमण्डलानां विततिः समूहो यस्य तथाभूतः, दिव्यानि स्वर्गसमुत्पन्नानि स्रग्मणिभूषणाम्बराणि मालामाणिक्यालंकारवस्त्राणि तेषां धरः, साकेतस्य अयोध्यानगरस्य सिंहासनेऽधिरूढः स्थितः, पुत्रमित्रकलत्रैः सुतस्त्रीसुहृज्जनैः सहितो युक्तः, लोकत्रयाधीश्वरः त्रिभुवनपतिः विश्वंभरां पृथिवीं शास्ति स्म पालयामास । रूपकालंकारः । शार्दूलविक्रीडितछन्दः ॥२१॥ § ३१) तदेति—तदा तस्मिन् काले देवे वृषभेश्वरे पृथ्वीं मेदिनीम् अवति रक्षति सति यद्यपि भुवनेषु लोकेषु घनसंपत्तिर्मेघसंपदा अभवत् किंतु वारिप्राचुर्यं जलाधिक्यं क्वचित् कुत्रापि नाभूदिति विरोधः परिहारपक्षे घनसंपत्तिः प्रभूतसंपत्तिरभूत् अरिप्राचुर्यं शत्रुबाहुल्यं न वाभूदिति । भयेभ्यो भीतिभ्यः स्वम् आत्मीयजनं त्रातर्यपि रक्षितर्यपि तस्मिन् अथ पौरो नागर-

---

जिनेन्द्रने सत्कारको प्राप्त कच्छ, महाकच्छ आदि राजाओंको अपने राजाधिराजपदपर नियुक्त किया अर्थात् उन्हें श्रेष्ठराजा बनाया ॥१९॥ § २९) तदन्विति—तदनन्तर पुत्रोंको भी नानाप्रकारकी वस्तुएँ तथा वाहन आदि सम्पत्तिसे युक्त करते हुए इन आदिजिनेन्द्रने, समस्त मनुष्योंको इक्षुरसके संग्रह करनेका उपदेश देनेके कारण इक्ष्वाकु, प्रजाके जीवित रहनेके उपायोंकी रचना करनेसे प्रजापति, अपने कुलका उद्धार करनेसे कुलधर, काश्यपदके वाच्यभूत तेजकी रक्षा करनेसे काश्यप और कृतयुगके प्रारम्भके आदिकारण होनेसे आदि ब्रह्मा इत्यादि अपने नाम प्रकट किये । उनके वे सब नाम समस्त मनुष्योंके कानोंके लिए रसायनके समान थे । § ३०) नाकेति—इन्द्रोके मुकुटोंमे सलग्न मोतियों तथा रत्नोंकी पंक्तिरूप ताराओकी पंक्तियोंसे जिनके उदीयमान चरण नखरूप चन्द्रमण्डलका समूह सेवित हो रहा था, जो स्वर्गमे उत्पन्न माला, मणिभूषण और वस्त्रोको धारण कर रहे थे, तथा जो पुत्र स्त्री तथा मित्र जनोंसे सहित थे ऐसे त्रिलोकीनाथ आदि जिनेन्द्रने अयोध्याके सिंहासनपर आरूढ हो पृथिवीका शासन किया था ॥२०॥ § ३१) तदेति—उस समय भगवान्के पृथिवीका पालन करते हुए यद्यपि लोकमे घनसम्पत्ति—मेघसम्पत्ति तो थी परन्तु कहीं भी जलकी प्रचुरता नहीं थी (परिहारपक्षमें घनसम्पत्ति—अत्यधिक सम्पत्ति तो थी परन्तु अरिप्राचुर्य—शत्रुओंकी अधिकता नहीं थी) और यद्यपि भगवान् भयोंसे आत्मीयजनोंकी

भयेभ्य' स्व त्रातर्यपि महितनीतिज्ञचतुरो
ष्यनीति' पौरोऽयं समजनि भयाढ्यश्च बत हा ॥२१॥

§ ३२) अथ कदाचन महास्थानमध्ये पूर्वाचलतटमिव पुटकिनीविटं, सिंहासनमलकुर्वन्तं नृपशतपरिवृत त्रिभुवनपतिमुपासितुमागतेन भर्तुर्विषयेषु विरतिमापादयितुमुद्यतेन पाकाहितेन प्रेरिता प्रक्षीणायुर्दशा नीलाञ्जनानाम सुरनर्तकी सविलास नटन्ती सौदामिनीव क्षणाददृश्यतामाससाद ।

§ ३३) तदा सुरेन्द्रो रसभङ्गभीत्या प्रायुङ्क्त तस्या' सदृश मनोज्ञम् ।
पात्रान्तर तुल्यविलासवेषं तथापि वेत्ति स्म तदेष देवः ॥२२॥

§ ३४) ततोऽस्य चेतसीत्यासीच्चिन्ता भोगाद्विरज्यत' ।
परा सवेगनिर्वेगभावना समुपेयुषः ॥२३॥

जन महितनीतिज्ञेषु प्रशस्तनीतिज्ञातृषु चतुरो विदग्धोऽपि सन् अनीति नीतिरहितो वभूव किंच भयाढ्य. भयेन भीत्या आढ्यो भयाढ्यो भीतियुक्त समजनि बभूव इति बत हा खेदस्य विषय । इत्थ विरोध. परिहारपक्षे अनीति न विद्यन्त ईतयो यस्य सः, भयाढ्य भया कान्त्या आढ्य. सहित इति 'अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूषक. शलभ. शुकः । अत्यासन्नाश्च राजान षडेता ईतय स्मृता.' । विरोधाभास । शिखरिणीछन्द' ॥२१॥ § ३२) अथेति—कदाचन जातुचित् महास्थानमध्ये विशालसभामण्डपमध्ये पूर्वाचलतट पूर्वाद्रितट पुटकिनीविटमिव कमलिनीवल्लभमिव सूर्यमिवेत्यर्थ , सिंहासन मृगेन्द्रविष्टरम् अलकुर्वन्त शुम्भयन्त नृपशतपरिवृत बहुनृपतिपरीत त्रिभुवनपतिं वृषभं जिनेन्द्रम्, उपासितु सेवितुम् आगतेन विषयेषु पञ्चेन्द्रियभोग्यपदार्थेषु भर्तुं स्वामिनो विरतिं विरक्तिम् आपादयितु प्रापयितुम् उद्यतेन तत्परेण पाकाहितेन पुरदरेण प्रेरिता प्राप्तसकेता प्रक्षीणायुर्दशा अल्पायुष्का नीलाञ्जना तन्नामधेया सुरनर्तकी देवनृत्यकारिणी सविलास सविभ्रम नटन्ती सौदामिनीव विद्युदिव क्षणात् अदृश्यतामनवलोकनीयताम् आससाद प्राप मृतेत्यर्थ । § ३३) तदेति—तदा नीलाञ्जनाविलयवेलाया सुरेन्द्र' सौधर्मेन्द्र रसभङ्गभीत्या रसविनाशभयेन तस्या नीलाञ्जनाया सदृशं समान मनोज्ञ सुन्दर तुल्यौ सदृशौ विलासवेषौ यस्य तथाभूत तत्सदृशविभ्रमनेपथ्ययुक्त पात्रान्तरं अन्यत्पात्र यद्यपि प्रायुङ्क्त प्रयुक्त चकार तथापि एष देवो वृषभ तत् पात्रान्तर वेत्तिस्म जानाति स्म । उपजातिवृत्तम् ॥२२॥ § ३४) ततोऽस्येति—ततस्तदनन्तर भोगाद् पाञ्चेन्द्रियविषयात् विरज्यतो विरक्ति प्राप्तवत पराम् उत्कृष्टा सवेग ससाराद्भीति निर्वेग औदासीन्य तयोर्भावना समुपेयुष प्राप्तवतः अस्य भगवत. चेतसि चित्ते

रक्षा करते थे तथापि यह नगरवासी जनसमूह प्रशस्तनीतिज्ञ जनोंमें चतुर होकर भी अनीति—नीतिसे रहित तथा भयाढ्य—भयोंसे युक्त था यह खेदकी बात थी (परिहारपक्षमें नीतिज्ञ होकर भी अनीति—अतिवृष्टि आदि ईतियोंसे रहित था तथा कान्तिसे सम्पन्न था ॥२१॥ § ३२) अथेति—तदनन्तर किसी समय महासभामण्डपके मध्यमें पूर्वाचलको सूर्यके समान सिंहासनको अलकृत करनेवाले तथा सैकड़ों राजाओंसे घिरे हुए त्रिलोकीनाथकी सेवाके लिए आगत और इन्द्रियोंके विषयोंमें भगवान्को विरक्ति उत्पन्न करानेमें तत्पर इन्द्रके द्वारा प्रेरित अल्पायुष्क नीलाजना नामकी देवनर्तकी विलास सहित नृत्य करती हुई विजलीकी भाँति क्षणभरमे अदृश्यताको प्राप्त हो गयी । § ३३) तदेति—उस समय इन्द्रने रसभगके भयसे यद्यपि उसीके समान सुन्दर तथा एक समान विलास और वेषको धारण करनेवाले दूसरे पात्रको नियुक्त कर दिया था तथापि यह भगवान् उसे जान गये ॥२२॥ § ३४) ततोऽस्येति—तदनन्तर भोगोंसे विरक्त हो सवेग और निर्वेगकी उत्कृष्ट भावनाको प्राप्त होनेवाले

§ ३५) वातोद्धूतप्रसरविसरद्दीपतुल्यं शरीरं
लक्ष्मीरेखा विलसिततडिद्वल्लरीसंनिकाशा।
संध्यारागप्रतिममुदितं यौवनं चातिलोल-
मेतत्सौख्यं पुनरिह पयोराशिवीचीविलोलम् ॥२४॥

§ ३६) देवी काचिद्वासवाज्ञावशेन नृत्यन्ती यन्नीरजाक्षी पुरस्तात्।
याता दैवादीदृशी चेदवस्था को वा लोके संसृतौ निर्व्यपायः ॥२५॥

§ ३७) विषराशिसमुपजाता लक्ष्मी तु मन्दरागेण।
पीयूषवार्धिजाता मुग्धाः कलयन्त्यमन्दरागकरीम् ॥२६॥

§ ३८) नीरक्षीरनयेन यः परिणतो जीवस्य देहश्चिरा-
दाधारः सुखदुःखयोः स विलयं कालेन संयाति चेत्।

इतीत्थंभूता चिन्ता विचारसंततिः आसीत् बभूव ॥२३॥ § ३५) वातेति—शरीरं वर्ष्म 'शरीरं वर्ष्म विग्रहः' इत्यमरः। वातस्य पवनस्य उद्धूतप्रसरेण प्रचण्डवेगेन विसरन् विनाशोन्मुखो यो दीपस्तत्तुल्यं वर्तते इति शेषः, एषा दृश्यमाना लक्ष्मी राज्यश्रीः विलसिता स्फुरिता या तडिद्वल्लरी विद्युल्लता तस्याः संनिकाशा सदृशी अस्तीति शेषः, उदितं प्रकटितं यौवनं च तारुण्यं च संध्यारागप्रतिमं सान्ध्यारुणिमतुलितं अतिलोलं अत्यन्तचलं 'लोलश्चलसतृष्णयोः' इत्यमरः, अस्तीति शेषः। इहास्मिन् संसारे पुनः एतत्सौख्यं समनुभूयमानं विषयसुखं पयोराशिवीचीव सागरतरङ्ग इव विलोलं चपलतरं वर्तते इति शेषः। उपमा। मन्दाक्रान्ताछन्दः ॥२४॥ § ३६) देवीति—यत् यस्मात् कारणात् वासवाज्ञावशेन इन्द्रसमादेशनिघ्नत्वेन पुरस्तादग्रे नृत्यन्ती नटन्ती नीरजाक्षी कमललोचना काचित् कापि देवी सुरी दैवात् नियतेः ईदृशीमित्थंभूताम् अवस्थां दशां चेत् याता प्राप्ता तर्हि समन्तात्सृतिर्भ्रमणं यस्मिन् तथाभूते लोके जगति निर्व्यपायो विनाशरहितः को वा। अपितु न कोऽप्यस्ति। शालिनीछन्दः ॥२५॥ § ३७) विषेति—मुग्धा मूढा 'मुग्धः सुन्दरमूढयोः' इत्यमरः। मन्दरागेण मन्दप्रीत्या पक्षे मन्दराचलेन विषराशिसमुपजाता गरलराशिसमुत्पन्ना पक्षे जलराशिसमुत्पन्ना लक्ष्मीं श्रियं पीयूषवार्धिजातां सुधासागरसमुद्भूतां अमन्दरागकरीं विपुलप्रीतिकरीं पक्षे अमन्दराचलकरीं कलयन्ति जानन्ति। श्लेषः॥ आर्या ॥२६॥ § ३८) नीरेति—जीवस्य जन्तोः, यो देहः कायः नीरक्षीरनयेन जलदुग्धवत् परिणतः परस्परं मिश्रितः चिरात् चिरकालेन सुखदुःखयोः आधारः आश्रयः अस्तीति शेषः, स

भगवान् वृषभ जिनेन्द्रके मनमें इस प्रकारकी विचारधारा उत्पन्न हुई ॥२३॥ § ३५) वातेति—यह शरीर वायुके प्रचण्डवेगसे नष्ट होने के सन्मुख दीपकके समान है, यह लक्ष्मी कौंधती हुई बिजली रूपी लताके समान है, प्रकट हुआ यौवन सन्ध्याकी लालिमाके समान अत्यन्त चंचल है, और यह सुख समुद्रकी लहरके समान भंगुर है ॥२४॥ § ३६) देवीति—जिस कारण इन्द्रकी आज्ञासे सामने नृत्य करती हुई कमललोचना कोई देवी भाग्यवश यदि ऐसी अवस्थाको प्राप्त हुई है तो सब ओर भ्रमण करना ही जिसका स्वभाव है ऐसे संसारमें विनाशसे रहित कौन है ? अर्थात् कोई नहीं है ॥२५॥ § ३७) विषेति—मूर्खलोग, मन्दराग—मन्दराचल (पक्षमें मन्दप्रीति) के द्वारा विषराशिसमुत्पन्ना—जलके समूहसे उत्पन्न (पक्षमें विषके समूह उत्पन्न) लक्ष्मीको अमृत समुद्रमें उत्पन्न तथा अमन्दरागकरी—बहुत भारी रागको करनेवाली (पक्षमें अमन्दराचलको करनेवाली) समझते हैं। भावार्थ—मूर्ख मनुष्योंकी बुद्धिको क्या कहा जावे क्योंकि वे विषसे उत्पन्न लक्ष्मीको अमृतसे उत्पन्न हुई समझते हैं और जो लक्ष्मी मन्दराग—अल्परागसे उत्पन्न होती है उसे वे अमन्दराग—बहुत भारी रागको उत्पन्न करनेवाली जानते हैं ॥२६॥ § ३८) नीरेति—जीवका जो शरीर दूध

बाह्ये पुत्रकलत्रमुख्यविभवे का वा मनीषाजुषा-
मास्था किंतु विमोहचेष्टितमिदं बध्नाति सर्वं जनम् ॥२७॥

§ ३९) जन्तु पापवशादवाप्तनरको भुक्त्वातिदु.ख तत-
श्च्युत्वा कालवशेन याति विविध तैरश्चदु:खं तत ।
एव दुःखपरम्परामतितरा भुक्त्वा मनुष्य पुन-
र्जातश्चेत्स्वहिने मतिं न कुरुते तद्दुःखमात्यन्तिकम् ॥२८॥

§ ४०) एव चिन्तयन्त मुक्तिलक्ष्म्या सदिष्टाभि समागताभिस्तत्सखीभिरिव विशुद्धिभिः समाश्रितान्तरङ्ग देव बोधयितु सारस्वतादित्यप्रमुखलौकान्तिकसुरपङ्क्तिर्मुकुटमणिघृणिभिर्निरभ्रेऽपि गगने पुरदरचापलक्ष्मीमङ्कुरयन्ती मुकुलीकृतहस्तपल्लवा त्रिभुवनवल्लभमासाद्य प्रणम्य चेमा वाचमुवाच ।

देहश्चेत् कालेन विलयं विनाश प्राप्नोति तर्हि मनीषाजुषा मनीषिणा बाह्ये बहिर्भवे पुत्रकलत्रमुख्यविभवे सुतस्त्रीप्रभृतिविभूतौ का वा आस्था आदरबुद्धि न कापीत्यर्थ किंतु इद विमोहचेष्टित अज्ञानविलास सर्वं जन निखिल लोक बध्नाति स्ववश विदधाति ॥ शार्दूलविक्रीडितछन्द. ॥२७॥ § ३९) जन्तुरिति—जन्तुः प्राणी पापवशात् दुरितवशात् अवाप्तनरक प्राप्तश्वभ्र सन् अतिदु ख तीव्रकष्ट भुक्त्वा ततो नरकात् च्युत्वा निर्गत्य कालवशेन विविध नानाप्रकार तिरश्चामिद तैरश्च तच्च तद् दु ख चेति तैरश्चदु ख तैर्यग्योनिजदु ख याति प्राप्नोति ततस्तदनन्तरं एव पूर्वोक्ता दु खपरम्परा दु.खसततिम् अतितरा नितरा भुक्त्वा पुन पश्चात् चेत् यदि मनुष्यो जात समुत्पन्न सन् स्वहिते स्वश्रेयसि मति बुद्धि न कुरुते तत् आत्यन्तिक तीव्र दु खमस्तीति शेष ॥ शार्दूलविक्रीडितम् ॥२८॥ § ४०) एवमिति—एव पूर्वोक्तप्रकारेण चिन्तयन्तं विचारयन्त मुक्तिलक्ष्म्या निर्वृतिश्रिया सदिष्टाभि प्राप्तसदेशाभि समागताभि समायाताभि तत्सखीभिरिव मुक्तिलक्ष्मीसहचरीभिरिव विशुद्धिभि प्राप्तवैराग्यभावनाभि समाश्रितान्तरङ्ग ससेवितहृदय देव भगवन्तं बोधयितु सारस्वतादित्यप्रमुखा या लौकान्तिकसुरपङ्क्ति देवर्षिसतति सा 'सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिताव्याबाधारिष्टाश्च' इत्यष्टविधा लौकान्तिकदेवा आगमे प्रसिद्धा , मुकुटमणिघृणिभि मौलिरत्नरश्मिभि निरभ्रेऽपि घनरहितेऽपि गगने नभसि पुरदरचापलक्ष्मी शक्रशरासनश्रियम् अङ्कुरयन्ती प्रकटयन्ती, मुकुलीकृतहस्तपल्लवा कुड्मलीकृतकरकिसलया सती त्रिभुवनवल्लभ त्रिजगदधीश्वरम् आसाद्य प्राप्य प्रणम्य नमस्कृत्य च इमा

और पानीके समान परस्पर मिश्रताको प्राप्त होता हुआ चिरकालसे सुख दुःखका आधार बना हुआ है वह भी यदि कालके द्वारा विनाशको प्राप्त हो जाता है तो बुद्धिमान मनुष्योंका फिर बाह्यभूत पुत्र तथा स्त्री आदि मुख्य वैभवमें कौन सी आदर बुद्धि हो सकती है ? अर्थात् कोई भी नहीं। फिर भी यह अज्ञानकी चेष्टा सब जीवोंको बाँध रही है—बन्धनमे डाल रही है ॥२७॥ § ३९) जन्तुरिति—यह जीव पापके वशसे नरकको प्राप्त होता है वहाँ बहुत भारी दुःख भोगकर कालके वशीभूत हो वहाँसे निकलकर तिर्यंचोंके नाना दुःखोंको प्राप्त होता है। इस प्रकार अत्यन्त तीव्र दुःखोकी परम्पराको भोगकर मनुष्य हुआ है और फिर भी आत्महितमे बुद्धि नहीं लगाता है तो अत्यन्त दुःखको उत्पन्न करता है ॥२८॥ § ४०) एवमिति—जो इस प्रकार विचार कर रहे थे, तथा मुक्तिरूपी लक्ष्मीके द्वारा सन्देश प्राप्त कर आयी हुई उसकी सखियोंके समान विशुद्धियोंसे जिनका अन्तरग सेवित हो रहा था ऐसे वृषभ जिनेन्द्रको सम्बोधनके लिए सारस्वत आदित्य आदि लौकान्तिक देवोंकी पक्ति मुकुट सम्बन्धी मणियोंकी किरणोंसे मेघशून्य आकाशमे भी इन्द्रधनुषकी शोभाको

§ ४१) साधु देव । हृदि साधु चिन्तित ससृतिप्रकटदु'खभञ्जनम् ।
येन नाथ ! भवतो न केवलं किंतु सर्वजगता हित कृतम् ॥२९॥

§ ४२) परिनिष्क्रमणस्य काललब्धिस्त्रिजगन्नाथ ! समीपमागता ते ।
अनुरक्ततया समागमाय प्रियदूती प्रहिता तप श्रियेव ॥३०॥

§ ४३) स्वय सम्यग्ज्ञातत्रिविधहितमार्गोऽसि भगवन् !
न बोध्यो मादृक्षैरिति विदितमेव स्फुटतरम् ।
अथाप्याचारोऽय चिरपरिचितो बोधनविधौ
तवाभ्यर्णेऽप्यस्मान्मुखरयति नाथ ! त्रिजगताम् ॥३१॥

§ ४४) धीरसस्य महावृद्धि तन्वतो जलदस्य ते ।
प्रीयन्ता धर्मवृष्ट्याद्य भव्यचातकपोतकाः ॥३२॥

वक्ष्यमाणा वाच वाणीम् उवाच जगाद । § ४१) साध्विति—हे देव ! हे नाथ ! साधु श्रेष्ठ, ससृतिप्रकटदु खाना भञ्जन नाशकर यथा स्यात्तथा हृदि चेतसि साधु श्रेष्ठ चिन्तित विचारित येन चिन्तनेन हे नाथ ! हे स्वामिन् ! न केवल मात्र भवतस्तव हित कल्याण कृत किंतु सर्वजगता निखिललोकाना हित श्रेय कृत विहितम् । रथोद्धतावृत्तम् ॥२९॥ § ४२) परिनिष्क्रमणस्येति—हे त्रिजगन्नाथ ! हे त्रिभुवनवल्लभ ! समागमाय सयोगाय अनुरक्ततया अणुरक्तताहेतो तप श्रिया तपोलक्ष्म्या प्रहिता प्रेषिता प्रियदूतीव प्रियदूती यथा परिनिष्क्रमणस्य तप कल्याणस्य काललब्धि तदर्हसमयप्राप्ति ते तव समीप निकटम् आगता समायाता । उत्प्रेक्षा ॥३०॥ § ४३) स्वयमिति—हे भगवन् ! त्व स्वय स्वत सम्यक् सुष्ठु ज्ञातो विदित त्रिविधस्त्रिप्रकारो हितमार्गो कल्याणवर्त्म येन तथाभूतोऽसि मादृक्षैर्मादृशै सयमानर्हे बोध्यो बोधयितु योग्यो नासि इति स्फुटतर स्पष्टतर विदितमेव ज्ञातमेव, अथापि तथापि हे त्रिजगता त्रिभुवनाना नाथ ! बोधनविधौ सबोधनकार्ये चिरपरिचित चिराभ्यस्तः अयमाचारो व्यवहार तव भवत अभ्यर्णेऽपि निकटेऽपि अस्मान् लौकान्तिकामरान् मुखरयति वाचालयति । शिखरिणी छन्द ॥३१॥ § ४४) धीरेति—धीरसस्य बुद्धिजलस्य महावृद्धि दीर्घविस्तार तन्वतो विस्तारयत अथवा धीरा गम्भीरा एव सस्यानि धान्यानि तेषा महावृद्धि प्रभूतवृद्धि तन्वतो जलदस्य मेघस्य ते तव धर्मवृष्ट्या धर्मवर्षणेन अद्येदानी भव्या एव चातकपोतका इति भव्यचातक-

---

प्रकट करती हुई हाथ जोडकर त्रिलोकीनाथके पास आयी और प्रणाम कर निम्नप्रकार वचन कहने लगी । § ४१) साध्विति—हे देव ! ठीक, ससारके प्रकट दुःखोंको नष्ट करनेवाला आपने हृदयमें ठीक विचार किया है, जिस विचारने हे नाथ ! न केवल आपका हित किया है किन्तु समस्त जगत्का हित किया है ॥२९॥ § ४२) परिनिष्क्रमणस्येति—हे त्रिलोकीनाथ ! दीक्षा कल्याणककी काललब्धि आपके समीप आयी है सो ऐसी जान पड़ती है मानो समागमके लिए अनुरक्त होनेसे तपरूपी लक्ष्मीके द्वारा भेजी हुई मानो प्रियदूती ही हो ॥३०॥ § ४३) स्वयमिति—हे भगवन् ! यद्यपि आप तीन प्रकारके हितकारी मार्गको स्वय ही अच्छी तरह जानते हैं अतः हमारे जैसे लोगोंके द्वारा सम्बोधनेके योग्य नहीं हैं यह अच्छी तरह विदित ही है तो भी सम्बोधनेके विषयमें चिरकालसे परिचित यह आचार-व्यवहार हे त्रिभुवनपते ! आपके निकटमे भी हम लोगोंको वाचालित कर रहा है ॥३१॥ § ४४) धीरसस्येति—हे भगवन् ! आप बुद्धिरूपी जल अथवा गम्भीर मनुष्यरूपी धान्यकी अत्यधिक वृद्धिको करते हुए मेघस्वरूप हैं । आज आपकी धर्मवृष्टिसे भव्य जीवरूपी चातक-

§ ४५) परीषहभटोद्भटा प्रबलकर्मसेनामिमा
विमोहपरिपालिता विमलसत्तपोवैभवात् ।
सुखेन जगता पते ! जयतु जातरूपो भवान्
भजस्व च सुखोत्तरा विशदमोक्षलक्ष्मी ततः ॥३३॥

§ ४६) इति बोधयित्वा कृतार्थेषु लौकान्तिकसुरसार्थेषु हंसेष्विव गगनाङ्गणमुत्पतितेषु कम्पितविष्टरा· पुरंदरपुर·सरा· सर्वेऽपि सुराः विलोकनलालसनिर्निमेषलोचन प्रासादविलसमानललनाजनं निजवधूविशङ्कया विलोकमाना· साकेतपुरं प्रविश्य पुरुदेवस्य पयःपारावारनीराभिषेकपुरःसरं परिनिष्क्रमणकल्याणारम्भ विजृम्भयामासु ॥

§ ४७) ततो देवः श्रीमान् महिवलयसाम्राज्यसरणौ
तनूजानामाद्य भरतमभिषिच्य प्रमदतः ।
युवाधीशं कृत्वा भुजबलिसुतं कीर्तिमहित
समस्तैर्भूपालैः सह समतनोदुत्सवकलाम् ॥३४॥

पोतका भव्यसारङ्गशिशव प्रीयन्ता सतुष्टा भवन्तु ॥३२॥ § ४५) परीषहेति—हे जगता पते ! लोकेश्वर ! जातस्येव रूप यस्य तथाभूतो दिगम्बरो भवान् विमलसत्तपोवैभवात् निर्मलसमीचोनतपश्चरणसामर्थ्यात् परीषहा एव भटा योद्धारस्तैरुद्भटा बलिष्ठा ता, विमोहेन मिथ्यात्वेन परिपालिता परिरक्षिताम् इमामेता प्रबलकर्मसेना बलवत्तरकर्मपृतना सुखेन अनायासेन जयतु ततस्तदनन्तर सुखोत्तरा सातप्रधाना विशदमोक्षलक्ष्मी निर्मलमोक्षश्रिय भजस्व सेवस्व । पृथ्वीछन्द ॥३३॥ § ४६) इतीति—इतीत्थ बोधयित्वा सबोध्य कृतार्थेपु कृतकृत्येपु लौकान्तिकसुरसार्थेपु लौकान्तिकामरसमूहेषु हसेष्विव मरालेष्विव गगनाङ्गण नभोऽजिरम् उत्पतितेषु समुड्डीनेपु सत्सु कम्पितविष्टरा वेपितासना पुरदरपुरःसरा इन्द्रप्रमुखा सर्वेऽपि निखिला अपि सुरा निर्जरा विलोकनलालसनिर्निमेषलोचन दर्शनाभिलाषनिःस्पन्दनयन प्रासादेपु हर्म्येषु विलसमानः शोभमानो यो ललनाजनो नारीनिचयस्त निजवधूविशङ्कया निजनारीसंदेहेन विलोकमाना पश्यन्त साकेतपुरमयोध्यानगर प्रविश्य पुरुदेवस्य वृषभजिनेन्द्रस्य पय पारावारस्य क्षीरसागरस्य नीरेण सलिलेन योऽभिषेकोऽभिषव स पुरस्सरो यस्मिंस्त परिनिष्क्रमणकल्याणारम्भ तप कल्याणकारम्भ विजृम्भयामासु वर्धयामासु । § ४७) तत इति—ततस्तदनन्तर श्रीमान् श्रीसपन्नो देवो वृषभजिनेन्द्र, प्रमदतो हर्षात् 'मुत्प्रीति प्रमदो हर्ष प्रमोदामोदसमदाः' इत्यमर. । महीवलयस्य भूमण्डलस्य साम्राज्यसरणौ साम्राज्यपथे तनूजाना पुत्राणाम् आद्य प्रथम भरतम् अभिषिच्य कीर्तिमहित यशस्विन भुजबलिसुत बाहुबलिन युवाधीश युवराज कृत्वा

पक्षीके शिशु प्रसन्नताको प्राप्त हों ॥३२॥ § ४५) परीषहेति—हे जगत्पते ! आप निर्विकार दिगम्बर मुद्राके धारक होकर अत्यन्त निर्मल समीचीन तपके वैभवसे परीषह रूपी योद्धाओंसे बलिष्ठ तथा मिथ्यात्वके द्वारा सुरक्षित इस प्रबल कर्मरूपी सेनाको सुखसे जीतो और उसके बाद सुखदायक निर्मल मोक्षरूपी लक्ष्मीका सेवन करो ॥३३॥ § ४६) इतीति—इस प्रकार समझाकर कृतकृत्यताको प्राप्त हुए लौकान्तिक देवोंके समूह जब हंसोंके समान गगनांगणमें उड गये तब जिनके आसन कम्पित हो रहे थे ऐसे इन्द्र आदि सभी देव, देखनेकी इच्छासे टिमकाररहित नेत्रोंवाली, महलोंपर सुशोभित स्त्रियोंको अपनी स्त्रियोंकी शंकासे देखते हुए अयोध्या नगरमें प्रविष्ट हुए और भगवान् वृषभदेवका क्षीरसागरके जलसे होनेवाले अभिषेकको आदि लेकर दीक्षा कल्याणकका आरम्भ करने लगे । § ४७) तत इति—तत्पश्चात् श्रीमान् वृषभ जिनेन्द्रने भूमण्डलके साम्राज्य पथमें प्रथम पुत्र भरतका राज्याभिषेक

§ ४८) वितीर्णराज्यभारस्य विभोर्निजतनूजयो. ।
परिनिष्क्रमणोद्योगस्तदा जज्ञे निराकुलः ॥३५॥

§ ४९) तत्रोत्सवद्वन्द्वविजृम्भमाणकोलाहलोत्तालदिगन्तराले ।
शेषात्मजेभ्यश्च मही विभज्य विश्राणयामास विभुः प्रहृष्टः ॥३६॥

§ ५०) तदनु त्रिभुवनपति प्रसन्नमतिर्नाभिराजादीनापृच्छ्य नाकराजदत्तहस्तावलम्बो, दीक्षाङ्गनापरिष्वङ्गमङ्गलशयनायमान याप्ययानमारूढ· सप्तपदानि भुवि भूपालैस्तथा सप्त पदानि

समस्तैर्निखिलै भूपालैर्नृपतिभि· सह उत्सवकला उद्धवकला समतनोत् विस्तारयामास । शिखरिणी छन्द ॥३४॥ § ४८) वितीर्णेति—तदा तस्मिन् काले निजतनूजयो स्वसुतयो. भरतबाहुबलिनो वितीर्णो राज्यभारो येन तथाभूतस्य विभोरादिराजस्य परिनिष्क्रमणोद्योग प्रव्रज्याप्रयास निराकुलो व्यग्रतारहित जज्ञे बभूव ॥३५॥ § ४९) तत्रेति—उत्सवयोर्दीक्षाकल्याणकराज्याभिषेकमहयोर्द्वन्द्व युगल तस्मिन् विजृम्भमाणेन वर्धमानेन कोलाहलेन कलकलशब्देन उत्तालानि उत्कटशब्दयुक्तानि दिगन्तरालानि काष्ठान्तराणि यस्मिन् तस्मिन् तत्रायोध्यानगरे प्रहृष्ट प्रकृष्टहर्षोपेत विभु शेषात्मजेभ्य अवशिष्टान्यसुतेभ्य विभज्य विभाग कृत्वा महीं भूमिं विश्राणयामास ददौ । इन्द्रवज्रावृत्तम् ॥३६॥ § ५०) तदन्विति—तदनु तदनन्तर प्रसन्ना निर्मला मतिर्मनीषा यस्य तथाभूत, त्रिभुवनपति लोकत्रयाधीश्वरो जिनेन्द्र नाभिराजादीन् नाभिराजप्रभृतीन् आपृच्छ्य पृष्ट्वा नाकराजेन देवेन्द्रेण दत्तो हस्तावलम्बः कराश्रयो यस्य तथाभूत सन्, दीक्षाङ्गनाया प्रव्रज्यापुरन्ध्र्या परिष्वङ्गाय समालिङ्गनाय मङ्गलशयनायमान मङ्गलशय्यावदाचरत्, याप्यमान शिविकाम् आरूढ, सप्त पदानि सप्तपदपर्यन्त भुवि पृथिव्या भूपालै राजभि तथा सप्तपदानि सप्तपदपर्यन्त नभसि व्योमनि नभश्चरैर्विद्याधरै, तदनु तदनन्तर प्रेमबन्धुरै प्रीतिनिभृतै सुरासुरैश्च देवधरणेन्द्रैश्च निरुह्यमानो नीयमान, तारापथात् व्योम्न आपतन्त्या दीक्षाङ्गनाया प्रव्रज्याकामिन्या कटाक्षधारानुकारिण्या अपाङ्गसततिविडम्बिन्या सौरभ्येण सौगन्ध्येन समाकृष्टा भृङ्गश्रेणिर्भ्रमरपङ्क्तिर्यया तथाभूतया पुष्पवृष्ट्या सुमनोवृष्ट्या व्याकीर्णो व्याप्त., सुरवन्दिसदोहैरमरमागधमण्डलै पापठ्यमाना. पुन पुनरुच्चार्यमाणा ये मङ्गलारावा मङ्गलशब्दास्तै

कर यशस्वी बाहुबलीको युवराज निश्चित किया तथा समस्त राजाओंके साथ उत्सवको वृद्धिंगत किया ॥३४॥ § ४८) वितीर्णेति—उस समय अपने दोनों पुत्रोंपर जिन्होंने राज्यका भार अर्पित कर दिया था ऐसे भगवान् प्रथम जिनेन्द्रका दीक्षा धारण सम्बन्धी उद्योग आकुलता रहित हुआ था ॥३५॥ § ४९) तत्रेति—दोनों उत्सवोंमे वृद्धिको प्राप्त होते हुए कोलाहलसे जिसमे दिशाओंके अन्तराल अत्यन्त शब्दायमान हो रहे थे ऐसे उस अयोध्या नगरमे बहुत भारी हर्षसे युक्त भगवान्ने विभाग कर शेष पुत्रोंके लिए भी पृथिवी प्रदान की ॥३६॥ § ५०) तदन्विति—तदनन्तर निर्मल बुद्धिके धारक वृषभ जिनेन्द्र नाभिराजा आदिसे पूछकर दीक्षारूपी स्त्रीके आलिंगनके लिए मगलशय्याके समान आचरण करनेवाली पालकीपर आरूढ हुए । पालकीपर चढ़ते समय इन्द्रने उन्हें अपने हाथका सहारा दिया था । पालकीपर बैठते ही उन्हें सात कदम भूमिगोचरी राजा पृथिवीपर तथा आकाशमें चलनेवाले विद्याधर सात कदम आकाशमे और उसके बाद प्रेमसे भरे हुए देव और धरणेन्द्र उन्हें आकाशमे ले चले । उस समय वे आकाशसे पडती हुई उस पुष्प वृष्टिसे व्याप्त हो रहे थे जो दीक्षारूपी स्त्रीकी कटाक्षपंक्तिका अनुकरण कर रही थी तथा सुगन्धिसे जिसने भ्रमरोंकी पक्तिको आकृष्ट किया था । देववन्दियोंके समूहके द्वारा बार-बार तथा अत्यधिक मात्रामे पढे गये मंगल शब्दोंसे युक्त प्रस्थान भेरीके भांकार शब्दसे यह सूचित हो रहा था मानो उन्होंने मोहरूपी शत्रुको जीतनेके लिए विजययात्रा ही प्रारम्भ की हो । आकाशमे उड़े

महाकच्छप्रधानपार्थिवैश्च निरीक्ष्यमाणपरिनिष्क्रमणः, साकेतपुरस्य नातिदूरे सिद्धार्थकवनोद्देशे, निरन्तरनिचिततरुनिकरनिष्पतत्पुष्पोपहारशोभिते, पुरदरसुन्दरीकरारविन्दकल्पितरत्नचूर्णरङ्गवलिविराजिते, सुरवाराङ्गनारब्धमङ्गलसगीतमनोहरे, विशङ्कटपटपरिकल्पितमण्डपमण्डिते, पर्यन्तनिहितविविधमङ्गलद्रव्यसगते, पाण्डुकशिलातलविलासोपहासिनि, कस्मिश्चिच्चन्द्रकान्तशिलातले गीर्वाणैरुर्वीमवतारिताद्यानादवततार।

§ ५१) क्षण तत्र स्थित्वा नरसुरसभा स्निग्धमधुरे
कटाक्षै. संभाव्य स्वजनमयमापृच्छ्य सहसा।
सुरेन्द्रे सनद्धे परिचरति मध्येयवनिक
स नैःसङ्ग्य भेजे वसनमणिमाल्यानि विसृजन् ॥३८॥

§ ५२) ततः पूर्वमुख स्थित्वा कृतसिद्धनमस्क्रिय ।
तत्सर्वं विभुरत्याक्षीन्निर्व्यपेक्ष त्रिसाक्षिकम् ॥३९॥

भरतेश्वरबाहुबलिकच्छमहाकच्छा ते प्रधाना. प्रमुखा येषु तथाभूता ये पार्थिवा राजानस्तै निरीक्ष्यमाण समवलोक्यमान परिनिष्क्रमण विरज्य निर्गमन यस्य तथाभूत, सन्, साकेतपुरस्य अयोध्यानगरस्य नातिदूरे समीपस्थे सिद्धार्थकवनोद्देशे सिद्धार्थकाभिधानवनमध्ये, निरन्तरनिचितात् निर्व्यवधानसगतात् तरुनिकरात् वृक्षसमूहात् निष्पतता पुष्पोपहारेण कुसुमोपायनेन शोभिते समलकृते, पुरंदरसुन्दरीणामिन्द्राणीना करारविन्दैः पाणिपद्मैः कल्पिता रचिता या रत्नचूर्णरङ्गवलिस्तया विराजिते शोभिते, सुरवाराङ्गनाभिरप्सरोभिरारब्धं प्रक्रान्तं यत् मङ्गलसगीत तेन मनोहरे रमणीये, विशङ्कटपटैर्विशालवस्त्रैः परिकल्पितेन रचितेन मण्डपेन आस्थानेन मण्डिते शोभिते, पर्यन्ते समीपे निहितानि स्थापितानि यानि विविधमङ्गलद्रव्याणि नानामङ्गलवस्तूनि तैः सगते सहिते, पाण्डुकशिलातलस्य विलास शोभा उपहसतीत्येव शीले कस्मिश्चित् चन्द्रकान्तशिलातले चन्द्रकान्तदृषत्तले गीर्वाणैरमरैः उर्वी पृथिवीम्, अवतारितात् प्रापितात् यानात् शिबिकायाः अवततार अवतरति स्म ॥ § ५१) क्षणमिति—सोऽय जिन तत्र शिलातले क्षण स्थित्वा स्निग्धमधुरैः स्नेहपूर्णमनोहरैः कटाक्षैरपाङ्गैः नरसुरसभा मनुजामरसमिति सभाव्य संमान्य स्वजनमात्मीयजन नाभिराजादिकमित्यर्थ. आपृच्छ्य आमन्त्र्य सनद्धे तत्परे सुरेन्द्रे सौधर्मेन्द्रे परिचरति परिचर्यां कुर्वाणे सति, सहसा झटिति मध्येयवनिक यवनिकाया मध्ये वसनमणिमाल्यानि वस्त्ररत्नस्रजो विसृजन् त्यजन् नैःसङ्ग्य नैर्ग्रन्थ्य भेजे प्राप। शिखरिणी छन्द ॥३८॥ § ५२) तत इति—ततस्तदनन्तर पूर्वमुख यथा स्यात्तथा स्थित्वा कृता सिद्धेभ्यो नमस्क्रिया

महाकच्छ आदि राजा जिनके दीक्षाकल्याणकको देख रहे थे ऐसे भगवान् वृषभदेव, अयोध्या नगरके समीपवर्ती सिद्धार्थकवनके मैदानमें चन्द्रकान्त मणिके किसी शिलातलपर देवों द्वारा पृथिवीपर उतारी हुई पालकीसे नीचे उतरे। जिस शिलातलपर भगवान् उतरे थे वह व्यवधान रहित एक दूसरेसे मिले हुए वृक्षसमूहसे गिरनेवाले फूलोंके उपहारसे सुशोभित हो रहा था, इन्द्राणी द्वारा अपने करकमलसे रचित रत्नोंके चूर्णकी रगवलिसे शोभायमान था, अप्सराओंके द्वारा प्रारब्ध मंगलमय संगीतसे मनोहर था, विशाल वस्त्रोंसे निर्मित मण्डपसे सुशोभित हो रहा था, समीपमें रखे हुए नाना प्रकारके मंगलद्रव्योंसे सहित था, और पाण्डुक शिलातलकी शोभाका उपहास कर रहा था। § ५१) क्षणमिति—वृषभ जिनेन्द्रने वहाँ क्षणभर ठहर कर स्नेहपूर्ण मनोहर कटाक्षोंसे मनुष्य और देवोंकी सभाको सम्मानित किया तदनन्तर आत्मीयजनोंसे पूछकर सावधान इन्द्रके परिचर्यामें लीन रहते हुए परदाके भीतर वस्त्र मणि तथा मालाओंका त्याग कर उन्होंने शीघ्र ही निर्ग्रन्थमुद्रा धारण कर

§ ५३) कर्मक्ष्मारुहमूलजालसदृशान्केशोत्करान्पञ्चधा
देवः कोमलपञ्चमुष्टिभिरसावुत्खाय सद्भावनः।
चैत्रे मेचकपक्षके सुसमये शस्तोत्तराषाढभे
सायाह्ने नवमीदिने शुभगुणे जग्राह दीक्षां प्रभुः ॥४०॥

§ ५४) तदनु कुलिशायुध कुतुकितमानसस्त्रिजगद्गुरोर्मूर्ध्नि निवासेन पावनान्विमलदुकूलप्रतिच्छन्ने पृथुलनूतनरत्नसमुद्गके स्थापितान् शशाङ्कबिम्बविलसितकलङ्कलेशसकाशान्विततपुण्डरीकसंगतभृङ्गसङ्घनिकाशान् श्यामलकोमलकेशानतिविभवेन नीत्वा पयःपारावारे समर्पयामास।

§ ५५) तत्र किल सैवालकावलिर्विततया हिमालया विलसितमेचकरुचिरुचिरा पूर्वतनसुवर्णवर्णेशसगात् कलशवाराशिसलिले सैवालकावलिर्बभूवेति न विचित्रमेतत् ॥

येन तथाभूत. कृतसिद्धपरमेष्ठिनमस्कार' विभु वृषभजिनेन्द्र त्रिसाक्षिकम् इन्द्रसिद्धात्मसाक्षिकं निर्व्यपेक्षं नि स्पृह यथा स्यात्तथा तत् पूर्वोक्त सर्वं वस्त्रादिकम् अत्याक्षीत् तत्याज ॥३९॥ ५३) कर्मेति—सती प्रशस्ता भावना यस्य तथाभूत प्रभु. सामर्थ्यवान् असौ देवो वृषभो जिनेन्द्र. कर्मक्ष्मारुहस्य कर्मवृक्षस्य मूलजालसदृशान् जटासमूहसनिभान् पञ्चधा पञ्चप्रकारेण स्थितान् केशोत्करान् कचसमूहान् कोमलपञ्चमुष्टिभि. मृदुलपञ्चमुष्टिभि उत्खाय उत्पाटय चैत्रे मासे मेचकपक्षके कृष्णपक्षे सुसमये प्रशस्तकाले शस्तोत्तराषाढभे शुभोत्तराषाढनक्षत्रे सायाह्ने सायकाले शुभगुणे शुभगुणसहिते नवमीदिने नवमीतिथौ दीक्षा प्रव्रज्या जग्राह स्वीचक्रे ॥ शार्दूलविक्रीडितछन्द' ॥४०॥ § ५४) तदन्विति—तदनु तदनन्तर कुतुकित कुतूहलाक्रान्त मानस चित्त यस्य स' कुलिशायुधो वज्रायुध इन्द्र इत्यर्थ, त्रिजगता गुरुस्त्रिजगद्गुरुस्तस्य भगवज्जिनेन्द्रस्य मूर्ध्नि शिरसि निवासेन पावनान् पवित्रान् विमलदुकूलेन निर्मलक्षौमेण प्रतिच्छन्ने पिहिते पृथुलनूतनरत्नसमुद्गके विशालनूतनरत्नकरण्डके स्थापितान् निवेशितान् शशाङ्कबिम्बे चन्द्रमण्डले विलसित शोभितो य कलङ्कलेशो लाञ्छनलेशस्तस्य सकाशान् सदृशान् विततपुण्डरीके विकसितश्वेतसरोजे सगतो यो भृङ्गसङ्घो भ्रमरसमूहस्तस्य निकाशान् सदृशान् श्यामलकोमलकेशान् मेचकमृदुलमूर्धरुहान् अतिविभवेन महतोत्सवेन नीत्वा पय-पारावारे क्षीरसागरे समर्पयामास चिक्षेप ॥ § ५५) तत्रेति—तत्र किल पय पारावारे विततया विस्तृतया अहिमालया सर्पपङ्क्त्या विलसिता शोभिता या मेचकरुचि कृष्णकान्तिस्तया रुचिरा मनोहरा सा पुरदरेण निक्षिप्ता अलकावलिरेव केशपङ्क्तिरेव पूर्वतन प्राक्कालिक सुवर्णवर्णेशस्य काञ्चनवर्णभगवतो य सङ्गस्तस्मात्

ली ॥३८॥ § ५२) तत इति—तदनन्तर पूर्वाभिमुख होकर उन्होंने सिद्धपरमेष्ठीको नमस्कार किया फिर इन्द्र, सिद्ध तथा आत्माकी साक्षीपूर्वक विना किसी इच्छाके समस्त परिग्रहका त्याग किया ॥३९॥ § ५३) कर्मेति—प्रशस्त भावनासे सहित, सर्वसामर्थ्यवान् भगवान् वृषभजिनेन्द्रने कर्मरूपी वृक्षकी जडोंके समान पाँच प्रकारके केशोंके समूहको कोमल पंचमुष्टियोंसे उखाडकर उत्तम उत्तराषाढ नक्षत्रमे चैत्रकृष्ण नवमीके शुभदिन सायंकालके समय दीक्षा ग्रहण की ॥४०॥ § ५४) तदन्विति—तदनन्तर जिसका मन कुतूहलसे युक्त हो रहा था ऐसे इन्द्रने त्रिलोकीनाथके मस्तकपर निवास करनेसे पवित्र, निर्मल रेशमी वस्त्रसे आच्छादित विशाल नवीन रत्नमय पिटारेमे रखे हुए, चन्द्रमाके बिम्बमे स्थित कलकके खण्डोंके समान अथवा विकसित श्वेत कमलपर एकत्रित भ्रमर समूहके समान काले और कोमल केशोंको बहुत भारी वैभवके साथ ले जाकर क्षीरसमुद्रमे समर्पित कर दिया। § ५५) तत्रेति—जान पडता है कि विस्तृत सर्पोंकी मालाके समान सुशोभित काली कान्तिसे सुन्दर वह केशोंकी पक्ति ही पहले सुवर्णके समान कान्तिवाले भगवान्का सग करनेसे

§ ५६) तत्रार्पित कचकुल कलशाम्बुराशिर्वीचीकरेण परिगृह्य तदादरेण ।
डिण्डीरखण्डकपटेन कृताट्टहासो मोदाच्चलल्लहरिबाहुरयं ननर्त ।।४१।।

§ ५७) तत्र कौतुकेन विलोकमानाना नाकलोकजनाना मेचकरुचिरुचिरतत्कचनिचयेन कुत्रचित् शैवालपुञ्जपञ्जरित इव, क्वचिद्वातानीतजलधरखण्डमण्डित इव, एकत्र समुन्मीलितकुवलयकोरकित इव, परत्र पुरदरमणिप्रभापरीत इव, अन्यत्रान्त सचरज्जलदेवताकवरीभरपरीत इव, कुत्रचन श्यामलपन्नगमेचकित इव कलशतटिनीविटश्चकासामास ।

§ ५८) तत. समागत्य मुदा मरुत्वान्स्तुत्वा च नत्वा च जिनेन्द्रपादौ ।
निलिम्पवर्गै सह नाकलोक जगाम सम्यक् स्मृततद्गुणौघः ।।४२।।

कलशवाराशिसलिले क्षीरसागरजले सैवालिकावलि जलनीलीपङ्क्ति बभूव इति एतत् विचित्र विस्मयावहं न ।। § ५६) तत्रेति—तत्र पूर्वोक्तावसरे अर्पित पुरदरनिक्षिप्त तत् कचकुलं केशसमूह वीचीकरेण तरङ्गहस्तेन आदरेण सन्मानेन परिगृह्य स्वीकृत्य डिण्डीरखण्डकपटेन फेनशकलव्याजेन कृताट्टहास विहितसशब्दहास' अय कलशाम्बुराशि क्षीराब्धि मोदात् प्रमदात् चलल्लहरिबाहु चलत्तरङ्गहस्त सन् ननर्त नृत्यतिस्म । रूपकोत्प्रेक्षा ।। वसन्ततिलका छन्द ।।४०।। § ५७) तत्र कौतुकेनेति—तत्रावसरे कौतुकेन कुतूहलेन विलोकमानाना पश्यता नाकलोकजनाना देवाना कलशतटिनीविट क्षीरसागर, मेचकरुच्या श्यामलकान्त्या रुचिरो मनोहरो यस्तत्कचनिचयो जिनेन्द्रकेशकलापस्तेन कुत्रचित्क्वापि शैवालपुञ्जेन जलनीलीसमूहेन पञ्जरित इव व्याप्त इव, क्वचित् कुत्रचित् वातानीतेन समीराकृष्टेन जलधरखण्डेन मेघशकलेन मण्डित शोभित इव, एकत्र एकस्मिन् स्थले समुन्मीलितकुवलयकोरकित इव प्रकटितोत्पलकुड्मलव्याप्त इव, परत्र अन्यस्मिन् स्थाने पुरदरमणीनामिन्द्रनीलमणीना प्रभाभि परीत इव व्याप्त इव, अन्यत्र अन्तर्मध्ये सचरन्तीना जलदेवताना कवरीभरेण धम्मिल्लसमूहेन परीत इव व्याप्त इव, कुत्रचन क्वापि श्यामलपन्नगैः कृष्णसर्पै मेचकित इव कृष्णवर्ण इव च चकासामास शुशुभे । उत्प्रेक्षा । § ५८) तत इति—मरुत्वानिन्द्र मुदा हर्षेण तत क्षीरसागरात् प्रत्यावर्त्य समागत्य जिनेन्द्रपादौ जिनराजचरणौ स्तुत्वा नुत्वा नत्वा च नमस्कृत्य च सम्यक् सुष्ठु स्मृतोऽनुध्यात तद्गुणौघो भगवद्गुणसमूहो येन तथाभूत सन् निलिम्पवर्गैरमरसमूहै सह सार्धं नाकलोक

क्षीरसमुद्रके जलमे शेवालकी माला हो गयी थी इसमे आश्चर्यकी बात नहीं है। § ५६) तत्रेति—उस समय इन्द्रके द्वारा समर्पित उस केशसमूहको आदरपूर्वक तरगरूपी हाथसे स्वीकृतकर फेनखण्डोंके कपटसे अट्टहास करता हुआ यह क्षीरसागर हर्षवश चचलतरंग रूप भुजाओंसे मानो नृत्य ही कर रहा था ।।४१।। § ५७) तत्र कौतुकेनेति—उस समय कुतूहलवश देखनेवाले देवोंके सामने यह क्षीरसागर, उस श्यामल केशोंके समूहसे कहीं तो ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो शेवालके समूहसे व्याप्त ही हो, कहीं ऐसा जान पड़ता था मानो वायुके द्वारा लाये हुए मेघके खण्डोंसे ही सुशोभित हो रहा हो, कहीं ऐसा लगता था मानो प्रकट हुई नील कमलोंकी बोंडियोंसे ही युक्त हो, कहीं ऐसा प्रतिभासित होता था मानो इन्द्रनील मणियोंकी प्रभासे ही व्याप्त हो, कहीं ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो भीतर चलते हुए जलदेवताओंके केशपाससे ही व्याप्त हो, और कहीं ऐसा मालूम होता था मानो काले सर्पोंसे ही काला काला हो रहा हो। § ५८) तत इति—वहाँसे लौटकर इन्द्रने हर्षपूर्वक जिनेन्द्र भगवान्‌के चरणोंकी स्तुति की, नमस्कार किया। तदनन्तर वह उन्हींके गुण समूहका

§ ५९) तदा किल कच्छमहाकच्छप्रमुखाश्चतुःसहस्रसंख्याता नरपालास्तरङ्गितकेवलद्रव्यलिङ्गाः परिवर्धितस्वामिभक्तिपरिष्वङ्गाः केवलं स्वामिभक्त्यैव दीक्षामभजन्त।

§ ६०) अव्यक्तसंयममहीरमणैः परीतो
दीक्षालताविलसितो वृषभेश्वरोऽयम्।
बालाङ्घ्रिपैः परिवृतस्य सुरद्रुमस्य
लक्ष्मीमसौ त्रिभुवनैकगुरुर्बभार ॥४३॥

§ ६१) अथ भरतनरेन्द्रो भक्तिसान्द्रो मुनीन्द्रं
सह भुजबलिमुख्यैः सोदरैः पूजयित्वा।
तदनु तपनबिम्बे पश्चिमाशाप्रलम्बे
प्रभुरविशदयोध्यां स्वामिवाज्ञामलङ्घ्याम् ॥४४॥

इत्यर्हद्दासकृतौ पुरुदेवचम्पूप्रबन्धे सप्तमः स्तबकः ॥७॥

स्वर्गलोकं जगाम ययौ ॥४२॥ § ५९) तदेति—तदा किल भगवद्दीक्षाकल्याणकावसरे कच्छमहाकच्छौ प्रमुखौ प्रधानौ येषां तथाभूताः चतुःसहस्रसंख्याता नरपाला राजानः तरङ्गितं प्रकटितं केवलद्रव्यलिङ्गं मात्रद्रव्यवेषो यैस्तथाभूताः, परिवर्धितः समेधितः स्वामिभक्तिपरिष्वङ्गः प्रभुभक्तिसमाश्लेषो येषां ते, केवलं मात्रं स्वामिभक्त्यैव प्रभुभक्त्यैव दीक्षां प्रव्रज्याम् अभजन्त सिषेविरे दीक्षिता बभूवुरिति भावः। § ६०) अव्यक्तेति—अव्यक्तोऽप्रकटितः संयमो भावसंयमो येषां तथाभूता ये महीरमणा राजानस्तैः परीतः परिवृतः दीक्षा प्रव्रज्या एव लता वल्ली तया विलसितो विशोभितः त्रिभुवनैकगुरुः त्रिजगदेकनाथः अयमसौ वृषभेश्वरः प्रथमतीर्थकरः बालाङ्घ्रिपैः बालवृक्षैः परिवृतस्य परिवेष्टितस्य सुरद्रुमस्य कल्पवृक्षस्य लक्ष्मीं शोभां बभार दधार। उपमा। वसन्ततिलका ॥४३॥ § ६१) अथेति—अथानन्तरं भक्तिसान्द्रो भक्तिनिविडः भरतनरेन्द्रः भरतराजः भुजबलिमुख्यैर्बाहुबलिप्रधानैः सोदरैः सहोदरैः सह सार्धं मुनीन्द्रं मुनिराजं वृषभजिनेन्द्रमित्यर्थः पूजयित्वा समर्च्य तदनु तत्पश्चात् तपनबिम्बे सूर्यमण्डले पश्चिमाशाप्रलम्बे वरुणदिगवलम्बमाने सति स्वां स्वकीयाम् आज्ञामिव अलङ्घ्यामलङ्घनीयाम्, अयोध्याम् अविशत् साकेतं प्रविष्टवान्। मालिनीछन्दः ॥४४॥

इत्यर्हद्दासकृते पुरुदेवचम्पूप्रबन्धस्य 'वासन्ती' समाख्यया संस्कृतव्याख्यया
सप्तमः स्तबकः समाप्तः ॥७॥

अच्छी तरह स्मरण करता हुआ देवनिकायोंके साथ स्वर्ग चला गया ॥४२॥ § ५९) तदेति—उस समय जिन्होंने पात्र द्रव्य लिंग धारण किया था, और स्वामिभक्तिका आलिंगन जिनका बढ़ रहा था ऐसे कच्छ, महाकच्छ आदि चार हजार राजाओंने मात्र स्वामिभक्तिसे ही दीक्षा धारण की थी ॥ § ६०) अव्यक्तेति—जिनके भावसंयम प्रकट नहीं हुआ है ऐसे राजाओंसे घिरे हुए तथा दीक्षा रूपी लतासे सुशोभित, त्रिलोकीनाथ भगवान् वृषभ जिनेन्द्र छोटे-छोटे वृक्षोंसे परिवृत कल्पवृक्षकी शोभाको धारण कर रहे थे ॥४३॥ § ६१) अथेति—तदनन्तर प्रगाढ़ भक्तिसे युक्त राजा भरत बाहुबली आदि भाइयोंके साथ भगवान्‌की पूजा कर जब सूर्य पश्चिम दिशाकी ओर ढल गया तब अपनी आज्ञाके समान अलंघनीय अयोध्यानगरीमें प्रविष्ट हुए ॥४४॥

इस प्रकार अर्हद्दासकी कृति पुरुदेवचम्पू प्रबन्धकी हिन्दी टीकामें
सप्तम स्तबक समाप्त हुआ ॥७॥

अष्टमः स्तबकः

§ १) तदनु कलितकायोत्सर्गं, प्रतिज्ञातषण्मासानशनः, समग्रैकाग्रतानिरुद्धान्तर्बाह्यकरण-व्यापार· साकार इव धैर्यगुणो, मूर्त इव शमः, सुस्थिरनिश्चलाङ्गतयालेख्यलिखित इव विलसमानो, निगूढाक्षर किंचिदन्तर्जल्पाकारतया निगूढनिर्झरमुखरकन्दरो धराधर इव, सुगन्धिनिर्गतनिःश्वास-गन्धाहूतपुष्पंधयपरीतलपनसविधप्रदेशतया बहिर्निष्कासिताशुद्धलेश्याश इव दीक्षान्तरसमुद्भूत-ज्ञानचतुष्टयजुष्टतया प्रदीपविशिष्टो मणिमयनिलय इव च लक्ष्यमाण·, सत्यक्तसर्वपरिग्रहोऽपि

---

§ १) तदन्विति—तदनु दीक्षाग्रहणानन्तर कलितो धृत कायोत्सर्गो येन तथाभूत, प्रतिज्ञातः षण्मासानशन षण्मासोपवासो येन स, समग्रा सपूर्णा या एकाग्रता तया निरुद्ध स्थगित अन्तर्बाह्यकरणाना बाह्याभ्यन्तरेन्द्रियाणा व्यापारो येन स, साकारः सशरीर धैर्यगुण इव, मूर्त साकृति शम शान्तिगुण इव, सुस्थिर निश्चल च अङ्ग यस्य तस्य भावस्तया आलेख्यलिखितचित्राङ्कित इव विलसमान शोभमान., निगूढाक्षरमन्तर्निहितवर्णं यथा स्यात्तथा किंचित् मनाग् अन्तर्जल्पाकारतया अव्यक्तशब्दोच्चारणतत्परतया निगूढनिर्झरेण गुप्तवारिप्रवाहेण मुखरा वाचाला कन्दरा गुहा यस्य तथाभूतो धराधर इव पर्वत इव, सुगन्धि शोभनगन्धयुक्तो यो निर्गतनिःश्वासस्तस्य गन्धेन आहूता आकारिता ये पुष्पंधया भ्रमरास्तै परीतो व्याप्तो लपनसविधप्रदेशो मुखाभ्यर्णप्रदेशो यस्य तस्य भावस्तया बहिर्निष्कासिता या अशुद्धलेश्या कृष्णलेश्या तस्या अश इव, दीक्षानन्तर प्रव्रज्यानन्तर समुद्भूत समुत्पन्न यज्ज्ञानचतुष्टय मतिश्रुतावधिमन पर्ययरूप तेन जुष्टतया सेविततया प्रदीपविशिष्टो दीपकसहित मणिमयनिलय इव च रत्नमयभवनमिव च लक्ष्यमाणो दृश्यमाण., सत्यक्त सर्वपरिग्रहो येन तथा भूतोऽपि सन् मुक्ताहार मुक्ताना हारो यस्य तथाभूत इति विरोध, सर्वद. सर्वदायक, अपत्यकान्तासक्त पुत्रस्त्रीमोहयुत इति विरोध स्वीकृतानि अनन्तवसनानि वस्त्राणि येन स इति विरोध विग्रहोत्थिता रणोत्थिता येऽरातय शत्रवस्तेषा निग्रहे दमने तत्परश्च समुद्युक्तश्चेति विरोध.।

---

§ १) तदन्विति—तदनन्तर जिन्होंने कायोत्सर्ग मुद्रा धारण की थी, छह माहके उपवासकी प्रतिज्ञा ली थी, समस्त प्रकारकी एकाग्रताके द्वारा जिन्होंने अन्तरंग और बहिरंग इन्द्रियोंके व्यापारको रोक दिया था, जो आकार सहित धैर्य गुणके समान अथवा शरीर-धारी शमगुणके समान जान पड़ते थे, समस्त शरीरके निश्चल होनेसे जो चित्रलिखितके समान सुशोभित हो रहे थे, जो अक्षरोंको निगूढ़कर भीतर ही भीतर कुछ उच्चारण करनेसे उस पर्वतके समान जान पडते थे जिसकी गुफा किसी गुप्त झरनेसे शब्दायमान हो रही हो, निकले हुए सुगन्धित श्वासकी गन्धसे आमन्त्रित भ्रमरोंसे मुखका समीपवर्ती स्थान व्याप्त होनेसे जो ऐसे जान पड़ते थे मानो अशुद्ध लेश्या—कृष्ण लेश्याके अंशोंको ही उन्होंने बाहर निकाल दिया हो, दीक्षा लेनेके बाद ही प्रकट हुए चार ज्ञानोंसे युक्त होनेके कारण जो उत्तम दीपोसे सहित मणिमय भवनके समान जान पड़ते थे, समस्त परिग्रहका त्याग कर देनेपर भी जो मुक्ताहार—मोतियोंके हारसे सहित थे (परिहार पक्षमे आहारके त्यागी थे),

मुक्ताहार., सर्वदोपत्यकान्तासक्तः स्वीकृतानन्तवसनो विग्रहोत्थितारातिनिग्रहतत्परश्चेति राज्यलक्ष्मीपरिष्वक्त इव तप·श्रीवल्लभस्त्रिभुवनवल्लभ· प्रचुराश्चर्यं दुश्चर तपश्चचार।

§ २) अयमथ तपःसिद्धया दृश्येतरातपवारण-
प्रकटितघनच्छायोऽप्युद्यत्परिच्छदनिःस्पृहः।
वनघनतरुश्रेणीस्पन्दत्समीरणचञ्चल-
न्नवकिसलयै रेजे सच्चामरैरिव वीजित.॥१॥

§ ३) एव द्वित्रमासेषु किंचिदूनेषु गतेपु परीषहप्रभञ्जनप्रभञ्जितधृतयस्ते मुनिमानिनो राजर्षयस्तस्य गुरोर्गरीयसी पदवी, सिंहस्येव मृगशावकाः, गरुडस्येवेतरविहङ्गमाः, गन्तुमक्षमाः,

---

सत्यक्तसर्वपरिग्रहस्य मुक्ताहारप्रभृतीनि विरुद्धानीति भाव, परिहारपक्षे मुक्तस्त्यक्त आहारो भोजन येन तथाभूत', सर्वदा सदा उपत्यकान्तेषु पर्वतासन्नभसुखान्तेषु आसक्त, स्वीकृतमङ्गीकृतमनन्तमेव गगनमेव वसन वस्त्र येन तथाभूत, विग्रहोत्थिता शरीरोद्भूता येऽरातय कामक्रोधादयस्तेषा निग्रहे तत्परश्चेति। राजलक्ष्म्या राज्यश्रिया परिष्वक्त इव समालिङ्गित इव तप श्रीवल्लभस्तपोलक्ष्मीपति त्रिभुवनवल्लभस्त्रिजगदधीश्वरो वृषभजिनेन्द्र. प्रचुराश्चर्यं विपुलाश्चर्ययुक्तं दुश्चरं दु खेन चरितु शक्य दुश्चरं कठिन तपः चचार चरति स्म। § २) अयमिति—अथानन्तर तप सिद्धया तपश्चरणसमुद्भूतर्द्धिप्रभावेण दृश्येतरोऽदृश्यो य आतपवारण छत्र तेन प्रकटिता प्रादुर्भूता घनच्छाया तीव्रानातपो यस्य तथाभूतोऽपि उद्यत्परिच्छदे प्रकटीभवत्परिकरे नि स्पृह प्रीतिरहित, अय वृषभजिनेन्द्र वनस्य गहनस्य घनतरुश्रेण्या सान्द्रमहीरुहसतत्या स्पन्दन् सचलन् यः समीरणो वायुस्ते चञ्चलन्तो नितरा सचलन्तो ये नवकिसलया नूतनपल्लवास्तैः सच्चामरैः प्रशस्तबालव्यजनै वीजितो व्याधूत इव रेजे शुशुभे। उत्प्रेक्षा। हरिणी छन्द ॥१॥ § ३) एवमिति—एवमित्थम् किंचिदूनेषु द्वौ वा त्रयो वा इति द्वित्रा ते च ते मासाश्चेति द्वित्रमासेषु गतेषु सत्सु परीषह एव प्रभञ्जनस्तीव्रपवनस्तेन प्रभञ्जिता धृतिर्येषा तथाभूता ते कच्छमहाकच्छादयो मुनिमानिन आत्मानं मुनि मन्यन्त इति मुनिमानिन कृत्रिममुनय राजर्षय, गुरोर्वृषभेश्वरस्य गरीयसी गरिष्ठा पदवी पद्धति, मृगशावका हरिणशिशव सिंहस्येव मृगेन्द्रस्येव, इतरविहङ्गमा अन्यपक्षिणो गरुडस्येव पक्षिराजस्येव, गन्तु यातुम्

सर्वदोपत्यकान्तासक्त—सब कुछ देनेवाले तथा पुत्र और स्त्रियोंमें आसक्त थे (परिहारपक्षमें सर्वदा—सदा पर्वतकी तलहटियोंमे आसक्त थे), स्वीकृतानन्तवसन—अनन्त वस्त्रोंको स्वीकृत करनेवाले थे (परिहारपक्षमें आकाशरूपी वस्त्रको स्वीकृत करनेवाले थे) और विग्रहोत्थितारातिनिग्रहतत्पर—युद्धमें खड़े हुए शत्रुओंका दमन करनेमें तत्पर थे (परिहारपक्षमें शरीरमे उत्पन्न काम क्रोध आदि शत्रुओंका दमन करनेमे तत्पर थे) इस प्रकार जो राज्यलक्ष्मीसे आलिंगित हुएके समान जान पड़ते थे, तथा जो तपरूपी लक्ष्मीके स्वामी थे ऐसे तीन जगत्के स्वामी भगवान् वृषभ जिनेन्द्रने बहुत भारी आश्चर्योंसे सहित कठिन तप किया § २) अयमिति—तदनन्तर तपकी सिद्धिके कारण अदृश्य छत्रके द्वारा बहुत भारी छायाके प्रकट होनेपर भी जो प्राप्त होनेवाले परिकरमे नि स्पृह थे ऐसे वे भगवान् वृषभ जिनेन्द्र, वनकी सघन वृक्षावलीसे चलनेवाली वायुके द्वारा अत्यन्त चंचल पल्लवसे ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो उत्तम चामरोंसे वीजित ही हो रहे हों अर्थात् उन पर उत्तम चामर ही ढोरे जा रहे हों ॥२॥ § ३) एवमिति—इस प्रकार कुछ कम दो तीन माहोंके व्यतीत होने पर परीषह रूपी आँधीके द्वारा जिनके धैर्य टूट गये थे ऐसे वे अपने आपको मुनि मानने वाले कच्छ, महाकच्छ आदि राजर्षि वृषभ जिनेन्द्रके मार्ग पर चलनेके लिए उस प्रकार असमर्थ हो गये जिस प्रकार कि सिंहके मार्गपर चलनेके लिए हरिणके बच्चे और गरुडके मार्ग पर

नदीजलफलमूलाद्याहाराय प्रवृत्ताः, वनदेवताभिर्निषिद्धदिगम्बरवेषा, केचन वल्कलवसनाः, केचन कौपीनधराः, परे भस्मोद्‌धूलिताङ्गा, कतिचन जटाजटिलमस्तका, एकदण्डिनस्त्रिदण्डिनश्च भूत्वा, भरतराजर्षिभयेन तद्देशान्निवृत्य वनेषु कृतोटजाः प्रतिदिन पुष्पादिभिर्विभूषितमेन पुरुदेव पूजयामासु'।

§ ४) मरीचिश्च श्रीमद्भरतनृपपुत्रो मुनिनिभ-
शिचकीर्षुर्मिथ्यात्वप्रबलतरवृद्धि गतमतिः।
तदा योग शास्त्र कपिलमततन्त्र च विदधे
जनोऽय येनाद्य प्रभजति महामोहसरणीम् ॥३॥

§ ५) एवमेतेषु सवृत्तेषु निलिम्पगिरिरिव निष्कम्प', पारावार इवाक्षोभो, वायुरिव नि सङ्ग, आकाश इव निर्लेपस्तपोवैभवजृम्भितकान्तिनिराकृतनिशाकरदिवाकरः पुरुदेव' प्रकटसयमकटक-स्त्रिगुप्तिपरिगुप्तो गुणसैनिकपरीत कर्मारिविजिगीषुरासामास।

अक्षमा असमर्था सन्त, नदीजल च फल च मूल चेति नदीजलफलमूलानि तान्यादौ यस्य तथाभूतो य आहारस्तस्मै प्रवृत्तास्तत्परा वनदेवताभि वनाधिष्ठातृदेवैः निषिद्धो दिगम्बरवेषो येषा तथाभूता, केचन केऽपि वल्कलवसना वृक्षत्वग्वस्त्रा., केचन कौपीनधरा लिङ्गवस्त्रधारका, परे भस्मना भूत्या उद्‌धूलितमङ्ग येषा तथाभूता, कतिचन जटाभिर्जटिल व्याप्त मस्तक शिरो येषा तथाभूता, एकदण्डिन एकदण्डयुक्ता, त्रिदण्डिन त्रिदण्डयुक्ता भूत्वा भरतराजाद्भयं तेन भरतेश्वरभीत्या तद्देशात् भरतपालितप्रदेशात् निवृत्य प्रत्यावृत्य वनेषु काननेषु कृतोटजा रचितपर्णशाला, प्रतिदिन प्रतिदिवस विभूषित वर्धमानशोभम् एन पुरुदेव वृषभनाथ पुष्पादिभि कुसुमप्रभृतिभि पूजयामासु आनर्चु। § ४) मरीचिश्चेति—श्रीमद्भरतनृपपुत्र श्रीमद्भरतेश्वरसुत, मुनिनिभो मुनिसदृश, गतमतिर्गतबुद्धि अतएव मिथ्यात्वस्य मिथ्यादर्शने या प्रबलतरा सातिशया वृद्धिस्ता चिकीर्षु कर्तुमिच्छु मरीचिश्च तन्नामा च तदा भगवत्तपश्चरणकाले योग शास्त्र ध्यान-शास्त्र कपिलमततन्त्र च साख्यसिद्धान्त च विदधे चकार येन अय जनो लोक अद्येदानी महामोहसरणीं तीव्रमिथ्यात्वमार्गं प्रभजति प्रकर्षेण सेवते। शिखरिणी छन्द' ॥२॥ § ५) एवमेतेष्विति—एतेषु कच्छमहा-कच्छादिषु एव पूर्वोक्तप्रकारेण सवृत्तेषु सत्सु निलिम्पगिरिरिव सुमेरुरिव निष्कम्पो निश्चल, पारावार' सागर इव अक्षोभ क्षोभरहित, वायुरिव समीर इव नि सङ्गो निष्परिग्रह, आकाश इव गगनमिव निर्लेप.

चलनेके लिए अन्य पक्षी असमर्थ हो जाते हैं। वे नदियोंका जल तथा फल और मूल आदिक आहारके लिए प्रवृत्त हुए तो वनदेवताओंने उन्हें दिगम्बर वेषमे यह सब करनेके लिए मना कर दिया। तब कोई वल्कलोंको धारण करने वाले हो गये, कोई लंगोटको धारण करने वाले हो गये, किन्हींने शरीरको भस्मसे युक्त कर लिया, कितने ही जटाधारी बन गये, कोई एक दण्डके धारक हो गये और कोई तीन दण्डोंको धारण करनेवाले बन गये। भरतराजके भयसे वे उनके देशसे वापस लौट कर वनोंमे ही झोपड़ियाँ बना कर रहने लगे और जिनकी शोभा निरन्तर बढ़ती जाती थी ऐसे इन भगवान् पुरुदेवकी पुष्प आदिके द्वारा प्रतिदिन पूजा करने लगे। § ४) **मरीचिश्चेति**—श्रीमान् भरत राजाका पुत्र मरीचि, जो मुनिके समान था वह बुद्धिसे भ्रष्ट हो जानेके कारण मिथ्यात्वकी अत्यधिक वृद्धिकी इच्छा करने लगा। फल-स्वरूप उसने उस समय उस योगशास्त्र और साख्य सिद्धान्तकी रचना की जिसके कि द्वारा यह लोक आज भी महामोह—तीव्र मिथ्यात्वके मार्गको प्राप्त हो रहा है ॥२॥ § ५) **एव-मिति**—इस प्रकार इन सबका जब यह हाल रहा तब जो सुमेरुके समान निश्चल थे, समुद्र-

§ ६) जटीभूताः केशा विभुशिरसि सस्कारविरहा-
तदानी ध्यानाग्निप्रतपनविशुद्धस्य बहुधा ।
स्वजीवस्वर्णस्योद्गतमलिनदोषा इव तथा
विरेजुर्निर्दग्धप्रसवशरधूमा इव च ते ॥३॥

§ ७) तदानी तद्वनं वृषभेश्वरतपःप्रभावेण प्रशान्तपावन बभूव ।

§ ८) कण्टकालग्नवालाग्रान् कोमलाश्चमरीमृगान् ।
कण्ठीरवाः स्वनखरैः कौतुकेन व्यमोचयन् ॥४॥

§ ९) पञ्चाननसुत तत्र पिबन्त जननीस्तनम् ।
करेणुपोता कर्षन्ति क्रीडितु कुतुकाञ्चिता ॥५॥

सपर्करहित तपोवैभवेन तपश्चरणसामर्थ्येन जृम्भिता वर्धिता या कान्तिर्दीप्तिस्तया निराकृतो तिरस्कृतो निशाकरदिवाकरो चन्द्रसूर्यों येन तथाभूत पुरुदेवो वृषभेश्वर' प्रकटसयम एव कङ्कटक. कवचो यस्य स, त्रिगुप्तिभिर्मनोगुप्तिप्रभृतिभि. परिगुप्त परिरक्षित, गुणा एव सैनिकास्तै परीत. परिवृत सन्, कर्मारिविजिगीषु कर्मशत्रुविजयोद्यत आसामास आस्ते स्म । § ६) जटीभूता इति—तदानी ध्यानावसरे विभुशिरसि भगवन्मूर्धनि सस्कारस्य तैलकङ्कतिकादिक्रियाजन्यस्य विरहादभावात् जटीभूता जटाकारेण परिणता. ते प्रसिद्धा केशा कचा बहुधा नैकधा ध्यानाग्नेर्ध्यानानलस्य प्रतपनेन प्रकृष्टतापेन विशुद्ध निर्मल तस्य स्वजीव एव स्वर्णं भर्म तस्य उद्गता उत्थिता मलिना मलिनाकारा ये दोषास्तद्वत्, तथा अथवा निर्दग्धो भस्मीकृतो य प्रसवशर कामस्तस्य धूमा इव धूम्रा इव च विरेजु' शुशुभिरे । रूपकोत्प्रेक्षा । शिखरिणी छन्द ॥३॥ § ७) तदानीमिति—तदानी तस्मिन् काले तद्वन तत्कानन वृषभेश्वरस्य तपस प्रभावस्तेन प्रशान्त च तत् पावन चेति प्रशान्तपावन प्रशान्तपवित्रं बभूव । § ८) कण्टकेति—कण्ठीरवा. सिंहाः कण्टकाग्रेषु लग्ना, ससक्ता बालाग्रा कचाग्रभागा येषा तथाभूतान् चमरीमृगान् कौतुकेन कुतूहलेन स्वनखरै. स्वनखै व्यमोचयन् विमोचयामासु ॥४॥ § ९) पञ्चाननेति—तत्र वने कुतुकाञ्चिता कुतूहलयुक्ता. करेणुपोता कलभा जननीस्तन मातृपयोधर पिबन्तं धयन्त पञ्चाननसुतं सिंहशावक क्रीडितु कर्षन्ति स्वाभिमुखं

के समान क्षोभ रहित थे, वायुके समान परिग्रह रहित थे, आकाशके समान निर्लेप थे, और तपके वैभवसे बढ़ती हुई कान्तिके द्वारा जिन्होंने चन्द्रमा और सूर्यको तिरस्कृत कर दिया था ऐसे भगवान् वृषभदेव, कर्मरूपी सेनाको जीतनेके लिए उत्सुक हो रहे थे। उस समय प्रकट हुआ संयम ही उनका कवच था, वे तीन गुप्तियोंसे सुरक्षित थे तथा गुणरूपी सैनिकोंसे घिरे हुए थे। § ६) जटीभूता इति—उस समय तैल, कंघी आदि सस्कारका अभाव होनेसे जटारूपमें परिणत भगवान्‌के सिरके केश ऐसे जान पड़ते थे मानो अनेक प्रकारसे ध्यानरूपी अग्निके संतापके द्वारा अत्यन्त शुद्ध हुए स्वकीय आत्मारूपी स्वर्णके ऊपरकी ओर उठे काले-काले दोष ही हों अथवा जलाये हुए कामदेवके धूम ही हों ॥३॥ § ७) तदानीमिति—उस समय वह वन वृषभ जिनेन्द्रके तपके प्रभावसे अत्यन्त शान्त और पवित्र हो गया था § ८) कण्टकेति—जिनके बालोंके अग्रभाग काँटोंमें उलझ गये थे ऐसे कोमल चमरी मृगोंको सिंह कुतूहल पूर्वक अपने नखोंसे छुडा रहे थे ॥४॥ § ९) पञ्चाननेति—वहाँ कौतूहलसे सुशोभित हाथीके बच्चे माताका स्तन पीते हुए सिंहके पुत्रको खेलने के लिए खींच रहे थे

§ १०) एवं प्रशान्तपावने वने तपस्यतो भगवतः पादमूलमुपाश्रितौ सकलभुवनकमन ! त्वया पुत्रनप्त्रादिभ्यः साम्राज्यसंविभागकाले विस्मृतावावामद्य भोगप्रदानेनानुग्राह्याविति भगवन्तमनुबध्नन्तौ नमिविनमिनामधेयौ कच्छमहाकच्छनरपतितनयौ स्वासनकम्पविदितभगवद्ध्यानान्तरायो धरणेन्द्रः समागत्य, सोपायमिमौ समाश्वास्य, ताभ्यां सह विमानमारूढस्तापप्रकाशाभ्यां तपन इव व्योममार्गेण प्रस्थितो भगवत्कीर्तिपुञ्जमिव मूर्तिमन्तं रजतसानुमन्तमुपजगाम ।

§ ११) जम्बूद्वीपमहाम्बुजस्य लवणाम्भोराशिमध्यस्थिते-
स्तत्तत्क्षेत्रदलोज्ज्वलस्य सततं यो हंसवद्भासते ।
तस्याण्डा इव गण्डशैलनिकरा राजन्ति तत्राभितः
सानू विद्रुमवल्लिकाविलसितौ तद्रक्तपादाविव ॥६॥

कर्तुं चेष्टन्ते ॥५॥ § १०) एवमिति—एवमित्थं प्रशान्तपावने वने तपस्यतः तपश्चरणं कुर्वतो भगवतो वृषभजिनेन्द्रस्य पादमूलं चरणमूलम् उपाश्रितौ प्राप्तौ सकलभुवनकमन ! हे निखिलजगत्पते ! त्वया भवता पुत्रनप्त्रादिभ्यः पुत्रपौत्रप्रभृतिभ्यः साम्राज्यस्य संविभागकाले संविभागावसरे विस्मृतौ स्मृतिविषयानानीतौ आवाम् अद्य साम्प्रतं भोगप्रदानेन भोगसामग्रीदानेन अनुग्राह्यौ अनुग्रहीतुमर्हौ स्व इति शेषः, इतीत्थं भगवन्तं जिनेन्द्रम् अनुबध्नन्तौ पुनः पुनः प्रार्थयन्तौ नमिविनमिनामधेयौ कच्छमहाकच्छनरपतितनयौ स्वासनस्य निजविष्टरस्य कम्पेन कम्पनेन विदितो ज्ञातो भगवद्ध्यानस्यान्तरायो विघ्नो येन तथाभूतो धरणेन्द्रो भवनामरेन्द्रः समागत्य सोपायं यथा स्यात्तथा इमौ नमिविनमी समाश्वास्य संबोध्य, ताभ्यां सह विमानं व्योमयानम् अधिरूढोऽधिष्ठितः तापप्रकाशाभ्यां घर्मालोकाभ्यां तपन इव सूर्य इव व्योममार्गेण गगनवर्त्मना प्रस्थितः प्रयातः, मूर्तिमन्तं सशरीरं भगवत्कीर्तिपुञ्जमिव जिनेन्द्रयशोराशिमिव रजतसानुमन्तं विजयार्धगिरिम् उपजगाम ययौ । § ११) जम्बूद्वीपेति—यो रजतसानुमान् लवणाम्भोराशिमध्ये स्थितिर्यस्य तस्य गालवमते वैभाषिकपुंवद्भाव लवणोदमध्यं स्थितस्य तत्तत्क्षेत्राण्येव दलानि पत्राणि तैरुज्ज्वलस्य शोभितस्य जम्बूद्वीपमहाम्बुजस्य जम्बूद्वीपमहाकमलस्य सततं सदा हंसवद् मराल इव भासते शोभते, तत्र रजतसानुमति अभितः परितः गण्डशैलनिकराः स्थूलोपलसमूहाः, तस्य हंसस्य अण्डा इव राजन्ति शोभन्ते, विद्रुमवल्लिकाभिः प्रवाललताभिर्विलसितौ शोभितौ सानू दक्षिणोत्तरश्रेण्यौ तस्य हंसस्य रक्तपादाविव लोहितचरणाविव रेजाते । रूपकोपमालंकारः । शार्दूल-

---

॥५॥ § १०) एवमिति—इस प्रकार प्रशान्त और पवित्र वनमें तपश्चरण करनेवाले भगवान्‌के चरणमूलमें आकर जो बार-बार प्रार्थना कर रहे थे कि 'हे सकल संसारके स्वामी ! पुत्र और पौत्रोंके लिए साम्राज्यका विभाग करते समय आपने हम दोनोंको बिलकुल भुला दिया। अब भोग प्रदान कर हम दोनोंको अनुगृहीत कीजिए' इस प्रकार भगवान्‌से अनुरोध करनेवाले नमि और विनमि नामके धारक, कच्छ और महाकच्छ राजाके पुत्रोंको, अपने आसनके कम्पायमान होनेसे जिसने भगवान्‌के ध्यानमें विघ्न आया है यह जान लिया था ऐसे धरणेन्द्रने आकर उपाय पूर्वक समझाया तथा उनके साथ विमानपर आरूढ होकर ताप और प्रकाशके साथ सूर्यके समान आकाशमार्गसे चलकर वह उस विजयार्ध पर्वतके समीप पहुँचा जो कि भगवान् जिनेन्द्रके मूर्तिधारी यशःसमूहके समान जान पड़ता था। § ११) जम्बूद्वीपेति—वह विजयार्धपर्वत निरन्तर लवण समुद्रके मध्यमें स्थित तथा तत्तत् क्षेत्ररूपी कलिकाओंसे सुशोभित जम्बूद्वीप रूपी महाकमलके हंसके समान सुशोभित हो रहा था, उस पर्वतपर जो चारों ओर गोलाकार बड़े बड़े पाषाणोंके समूह विद्यमान थे वे उस हंसके अण्डोंके समान सुशोभित हो रहे थे और मूँगाकी लताओंसे सुशोभित उत्तर दक्षिण

§ १२) तद्भूधरशिखरालकारं पराध्यंपुर प्रविश्य फणीश्वर सकलविद्याधरभूपालानामनयोर्विद्याधरराज्यलक्ष्मीसमर्पणे भगवदनुमितिरिति प्रकटयित्वा; दक्षिणश्रेणिसाम्राज्ये नमिमुत्तरश्रेणिसाम्राज्ये च विनमिं विद्याधरीकरधृतैः कनककुम्भैरभिपिषेच ।

§ १३) एतौ खचरभूमीशमुकुटारूढशासनौ ।
शासतः स्म धरा धीरौ विद्यासिद्धिमुपेयुषौ ॥७॥

§ १४) ततः श्रीमान् लेखाचल इव पर निश्चलतनू-
रतीतः षण्मासाश्चिरविहितयोगात्तु विरमन् ।
शरीरस्थित्यर्थं विहितमतिराहारममलं
समाहर्तुं प्रायात्प्रथितयतिचर्याप्रकटनः ॥८॥

§ १५) तदनु देवदेवे निर्दोषविष्वणान्वेषणाय पुराकरग्राममडम्बादिषु विहरमाणे, भगवत्पादपयोजविन्यासस्थली शिरसा प्रणमन्तः केचन देव ! प्रसीद किं कृत्यमिति पृच्छा चक्रुः, परे च

विक्रीडितं छन्द ॥६॥ § १२) तद्भूधरेति—तद्भूधरशिखरस्य विजयार्धमहीधरशृङ्गस्यालकार भूषणस्वरूप पराध्यंपुरं तन्नामनगरं प्रविश्य फणीश्वरो धरणेन्द्रः सकलविद्याधरभूपालाना निखिलखगेश्वराणा अग्रे, अनयोर्नमिविनम्यो. विद्याधरराज्यलक्ष्म्या समर्पणे प्रदाने भगवदनुमतिर्वृषभजिनेन्द्राज्ञा अस्ति इति प्रकटयित्वा निवेद्य दक्षिणश्रेणिसाम्राज्ये नमिम्, उत्तरश्रेणिसाम्राज्ये च विनमिं विद्याधरीकरधृतै. खेचरीकरस्थापितै कनककुम्भै काञ्चनकलशै अभिपिषेच स्नपयामास । § १३) एताविति—खचरभूमीशाना विद्याधरनरेन्द्राणा मुकुटारूढ शासन ययोस्तौ, विद्यासिद्धिम् उपेयुषौ प्राप्तौ एतौ धीरौ नमिविनमी धरा भूमिं शासत स्म पालयत स्म 'शासत ' इति प्रयोगोऽपाणिनीय ॥७॥ § १४) तत इति—ततस्तदनन्तर लेखाचल इव सुमेरुरिव पर सातिशय निश्चला स्थिरा तनू शरीर यस्य तथाभूत , षण्मासान् अतीतः अतिक्रान्त चिरविहितयोगात् दीर्घकालकृतध्यानात् विरमन् विरतो भवन्, शरीरस्थित्यर्थं देहस्थितिप्रयोजनात् विहिता मतिर्येन स कृतविचार , प्रथिता प्रसिद्धा या यतिचर्या मुनिचर्या तस्याः प्रकटन. प्रकटयिता श्रीमान् वृषभेश्वर अमल निर्दोषम् आहारं समाहर्तुं प्राप्तु प्रायात् प्रययौ । शिखरिणी छन्द ॥८॥ § १५) तदन्विति—ततस्तदनन्तरं देवदेवे भगवति निर्दोषविष्वणस्य निर्दोषाहारस्यान्वेषण मार्गण तस्मै पुराकरग्राममडम्बादिषु विहरमाणे विहरति सति, भगवतो वृषभेश्वरस्य पादपयोजयोश्चरणकमलयोर्विन्यासस्य निक्षेपस्य स्थली भूमिं शिरसा

श्रेणियाँ उस हंसके लाल-लाल पैरोंके समान जान पडती थीं ॥६॥ § १२) तद्भूधरेति—धरणेन्द्रने उस पर्वतके शिखरके अलंकार स्वरूप पराध्यंपुर नामक नगरमे प्रवेश कर समस्त विद्याधरोंके आगे यह प्रकट किया कि इन दोनोंके लिए विद्याधरसम्बन्धी राज्यलक्ष्मीके समर्पण करनेमे भगवान्की अनुमति है। इस प्रकार प्रकट कर उसने दक्षिणश्रेणीके साम्राज्यमे नमिका और उत्तर श्रेणीके साम्राज्यमे विनमिका विद्याधरियोंके हाथोंमे स्थित सुवर्णकलशोके द्वारा अभिषेक किया। § १३) एताविति—जिनका शासन विद्याधरराजाओंके मुकुटोंपर आरूढ था तथा जो विद्याओंकी सिद्धिको प्राप्त थे ऐसे धीर-वीर नमि और विनमि पृथिवीका पालन करने लगे ॥७॥ § १४) तत इति—तदनन्तर सुमेरु पर्वतके समान जिनका शरीर अत्यन्त निश्चल था ऐसे भगवान् वृषभजिनेन्द्र छह मास व्यतीत कर चिरकालसे धारण की हुई ध्यान मुद्रासे विरत हुए, शरीरकी स्थितिके लिए उन्होंने विचार किया और प्रसिद्ध मुनिचर्याको प्रकट करते हुए वे निर्दोष आहार प्राप्त करनेके लिए गमन करने लगे। § १५) तदन्विति—तदनन्तर देवाधिदेव भगवान् जब निर्दोष आहारको प्राप्त करनेके लिए पुर, आकर, ग्राम तथा मडम्ब आदिमे

पराध्यंरत्नानि समानीय पुरतः परिकल्पयामासु , अन्ये च वस्तु, वाहनादिक विभोरढौकयन्त, परे तु भूपणगणललिताङ्गीर्लताङ्गी परिणाययितु देव प्रार्थयामासु., केचन स्वादुतरमाहार मज्जनसामग्र्या सह समानीय सगृहाणेति विज्ञापयामासु। ।

§ १६) एव मोहवशाद्यथामति जनेष्वारम्भमाणेऽत्रय

तूष्णीभावमुपाश्रितो मुनिवरश्चर्या परामाश्रित. ।

विघ्ने तत्र विजृम्भितेऽप्यविकृतप्राज्यप्रसीदन्मनाः

पण्मासानतिवाह्य पूर्णमकरोत्सवत्सरान्त प्रभुः ॥९॥

§ १७) तदा खलु कुरुजाङ्गलविपयविशेपकायमाणहस्तिनापुरपालककुरुवंशतिलकसोमप्रभानुज स्वयप्रभाश्रीमत्यार्यास्वयप्रभदेवकेशवमहीशाच्युतप्रतीन्द्रधनदेवचर सर्वार्थसिद्धितः

मूर्ध्ना प्रणमन्तो नमस्कुर्वन्त. केचन हे देव ! हे स्वामिन् ! प्रसीद प्रसन्नो भव, कि कृत्य कार्यमस्ति । इति पृच्छा चक्रु प्रश्न विदधु । परे च पराध्यंरत्नानि श्रेष्ठरत्नानि समानीय पुरत अग्रे परिकल्पयामासु निदधु, अन्ये च वाहनादिक यानादिक वस्तु सामग्री विभो स्वामिन अढौकयन्त प्रापयन्ति स्म, परे तु अन्ये तु भूपणगणेनालकारनिचयेन ललित मनोहरमङ्ग यासा ता लताङ्गीर्वधू परिणाययितु विवाहयितु देव प्रार्थयामासु केचन स्वादुतरमतिस्वादिष्टम् आहार भोजनसामग्रीं मज्जनसामग्र्या स्नानोपकरणै सह समानीय सगृहाण स्वीकुरु इति विज्ञापयामासु निवेदयन्ति स्म । § १६) एवमिति—एव पूर्वोक्तप्रकारेण जनेपु लोकेपु मोहवशादज्ञानवशात् यथामति स्वबुद्धयनुसारम् आरम्भमाणेपु आरम्भ कुर्वाणेपु अत्र धातोर्नुमागमश्चिन्त्य । तूष्णीभाव मौनवृत्तिम् उपाश्रित प्राप्त परा श्रेष्ठा चर्या यतिप्रवृत्तिम् आश्रित प्राप्तवान्, तत्र चर्याया विघ्नेऽन्तराये विजृम्भितेऽपि वर्धितेऽपि अविकृत विकाररहितं प्राज्यप्रसीदच्च मनश्चित्त यस्य तथाभूत मुनिवरो यतिश्रेष्ठ अय प्रभु वृपभेश्वर पण्मासान् अतिवाह्य व्यपगमय्य सवत्सरान्त वर्पान्त पूर्णम् अकरोत् । पण्मासावधियोगो धृत पण्मासाश्च भ्रमतो व्यतीता इत्यमेको वर्प पूर्णोऽभवदित्यर्थ । § १७) तदेति—तदा खलु तस्मिन्काले कुरुजाङ्गलविपयस्य कुरुजाङ्गलदेशस्य विशेपकायमाणं तिलकायमान यद् हस्तिनापुरं तस्य पालको रक्षक कुरुवशतिलको य सोमप्रभस्तस्यानुजो लघुसहोदर स्वयप्रभाललिताङ्गदेवी, श्रीमती वज्रजङ्घभार्या, आर्या भोगभूमिजा, स्वयप्रभदेव केशवमहीश , अच्युतप्रतीन्द्र धनदेव इत्येपा द्वन्द्वस्ततो

विहार करने लगे तब भगवान्‌के चरणकमलोंकी निक्षेपभूमिको अर्थात् जहाँ भगवान्‌के चरण पडते थे उस भूमिको सिरसे प्रणाम करते हुए कितने ही लोग यह पूछते थे कि हे देव ! प्रसन्न होइए, क्या कार्य है। कितने ही लोग श्रेष्ठ रत्न लाकर उनके सामने रखने लगे। कितने ही लोग सवारी आदि वस्तुएँ लाकर उनके सामने रखने लगे। कितने ही लोग आभूपणोंके समूहसे अलकृत शरीरवाली वधुओंको विवाहनेकी प्रार्थना करने लगे और कितने ही लोग स्नानकी सामग्रीके साथ अत्यन्त स्वादिष्ट आहार लाकर कहने लगे कि इसे स्वीकृत कीजिए। § १६) एवमिति—इस प्रकार अज्ञानवश जब लोग अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार आरम्भ कर रहे थे तब उत्कृष्ट चर्याको प्राप्त हुए यह मुनिराज मौन धारण कर विहार करते थे। चर्यामे विघ्न आनेपर भी जिनका मन विकार रहित तथा अत्यन्त प्रसन्न हो रहा था ऐसे भगवान्‌ने छह मास व्यतीत कर एक वर्ष पूर्ण किया। अर्थात् छह मासका योग उन्होंने लिया था और छह मास भ्रमण करते हुए व्यतीत हो गये इस प्रकार आहारका त्याग किये हुए उन्हें एक वर्ष हो गया ॥९॥ § १७) तदेति—उस समय जो कुरुजांगल देशके तिलकके समान आचरण करनेवाले हस्तिनापुर नगरके रक्षक तथा कुरुवंशके तिलक राजा सोमप्रभका छोटा भाई था तथा वर्तमान भवके पूर्व जो स्वयप्रभा, श्रीमती,

समागत्यात्र सजातः परमश्रेयो निदानतया श्रेयानिति विख्यातः सोऽयं निशाया. पश्चिमे यामे समुत्तुङ्गसुमेरु, शाखाग्रलम्बिभूषणभूषितं कल्पतरु, विद्रुमपल्लवारुणकेसर केसरिणं, शृङ्गाग्रलग्नमृत्स्न वृप, स्फुरत्कान्तिमनोहरौ दिवाकरनिशाकरौ, चलाचलवीचिविशाल पारावार, अष्टमङ्गलधारीणि भूतरूपाणि च स्वप्ने विलोकयामास ।

§ १८) ततः प्रभाते परितुष्टचित्तः श्रेयानय ससदि वर्तमानम् ।
सोमप्रभं प्राप्य सुरेशतुल्यं स्वप्नान्यथावत्कथयाबभूव ॥१०॥

§ १९) तदनु सोमप्रभेण वीक्षितवदनारविन्दः सुरगुरुप्रतिच्छन्द पुरोधाः सुराद्रिदर्शनेन तद्वदुत्तुङ्ग परमपुरुषो भवत्सदनमलकरिष्यत्यन्ये च स्वप्नास्तद्गुणोन्नतिं सूचयन्त्यस्माकं तु महत्तरकीर्तिलाभादिसपदा निदानभूतः पुण्योदय कुमारश्चाय तत्त्वविदिति प्रतिपादयास ।

भूतपूर्वार्थे चरट् प्रत्यय सर्वार्थसिद्धित तन्नामानुत्तरविमानात् समागत्य अत्र हस्तिनापुरे सजात समुत्पन्न. परमश्रेयस परमकल्याणस्य निदानतया प्रधानकारणतया 'श्रेयान्' इति विख्यात प्रसिद्ध , सोऽय श्रेयान् निशाया. रजन्या पश्चिमेऽन्तिमे यामे प्रहरे समुत्तुङ्गसुमेरु सून्नतसुमेरुपर्वत, शाखाग्रलम्बिभिर्भूषणैर्भूपितं कल्पतरु सुरद्रुम, विद्रुमश्च प्रवालश्च पल्लवश्च किसलयश्चेति विद्रुमपल्लवौ तद्वद् अरुणा रक्ता केसरा. सटा यस्य तथाभूतं केसरिण सिंहं, शृङ्गाग्रयोर्लग्ना मृत्स्ना प्रशस्तमृत्तिका यस्य तथाभूतं वृपं वृषभ, स्फुरत्कान्तिमनोहरौ देदीप्यमानकान्तिकमनीयौ दिवाकरनिशाकरौ सूर्याचन्द्रमसौ, चलाचला अतिचपला वीचयो लहर्यस्ताभिर्विशाल पारावार सागर अष्टमङ्गलधारीणि दर्पणाद्यष्टविधमङ्गलद्रव्यधारकाणि भूतरूपाणि च व्यन्तरदेवाश्च स्वप्ने विलोकयामास ददर्श । § १८) तत इति—ततस्तदनन्तर प्रभाते प्रत्यूषे सति परितुष्टचित्त. सतुष्टस्वान्त. 'चित्त तु चेतो हृदय स्वान्त हृन्मानस मन ' इत्यमर , अय श्रेयान् सोमप्रभानुज ससदि सभाया वर्तमान विद्यमान सुरेशतुल्य देवेन्द्रसनिभ सोमप्रभ प्राप्य लब्ध्वा यथावत् यथादृष्टस्वप्नान् कथयावभूव निवेदयामास । उपजातिवृत्तम् ॥१०॥ § १९) तदन्विति—तदनु तदनन्तर सोमप्रभेण हस्तिनापुरनरेन्द्रेण वीक्षित समवलोकित वदनारविन्द मुखकमल यस्य तथाभूत , सुरगुरुप्रतिच्छन्दो वृहस्पतितुल्यः पुरोधा. पुरोहित सुराद्रिदर्शनेन सुमेरुशैलविलोकनेन तद्वत् सुमेरुवत् उत्तुङ्ग समुन्नत परमपुरुप श्रेष्ठपुरुप भवत्सदन भवदीयभवनम् अलकरिष्यति विभूषयिष्यति, अन्ये इतरे च स्वप्ना तस्य परमपुरुपस्य गुणोन्नतिं सूचयन्ति प्रकटयन्ति । अस्माकं तु महत्तरकीर्तिलाभादिसपदा विपुलतरकीर्तिप्राप्तिप्रभृतिविभूतीना निदानभूत. कारणभूत. पुण्योदय सुकृतोदय अस्तीति शेष । अय कुमारश्च श्रेयान्कुमारश्च तत्त्वविद् तत्त्वज्ञ अस्तीति शेषः इति प्रति-

---

आर्या, स्वयंप्रभदेव, केशवराजा, अच्युतस्वर्ग का प्रतीन्द्र और धनदेवकी पर्याय धारण कर सर्वार्थसिद्धि गया था वहाँसे आकर जो हस्तिनापुरमे उत्पन्न हुआ और परमश्रेय—उत्कृष्ट कल्याणका कारण होनेसे जो श्रेयान् इस नामसे प्रसिद्ध था उसने रात्रिके पिछले पहरमे अत्यन्त ऊँचा सुमेरुपर्वत, शाखाओंके अग्रभागमे लटकते हुए आभूपणोंसे सुशोभित कल्पवृक्ष, मूंगा और नयी कोंपलके समान लालजटाओंसे युक्त सिंह, सींगोंके अग्रभागमे लगी हुई उत्तम मिट्टीसे युक्त बैल, देदीप्यमान कान्तिसे सुन्दर सूर्य और चन्द्रमा, अत्यन्त चचल लहरोंसे परिपूर्ण समुद्र तथा आठ मंगल द्रव्योंको धारण करनेवाले व्यन्तरदेव स्वप्नमे देखे। § १८) तत इति—तदनन्तर प्रातःकाल होनेपर सन्तुष्टचित्तसे युक्त इस श्रेयासने सभामे विद्यमान इन्द्रतुल्य सोमप्रभके पास जाकर ज्योंके-त्यों सब स्वप्न कह सुनाये ॥१०॥ § १९) तदन्विति—तदनन्तर सोमप्रभने जिसके मुखकी ओर देखा था तथा जो वृहस्पतिके तुल्य था ऐसे पुरोहितने कहा कि सुमेरु पर्वतके देखनेसे उसीके समान ऊँचा कोई परम पुरुप तुम्हारे भवनको अलकृत करेगा और शेष स्वप्न उसी परम पुरुपके गुणोंकी उन्नतिको सूचित करते

§ २०) तदानीं योगीन्द्रे प्रविशति पदा हास्तिनपुरं
तमेनं संद्रष्टुं कुतुकितहृदां सम्भ्रमवताम् ।
जनानां सम्मर्दान्निबिडतररथ्याङ्गणजुषां
पुपूरे व्योमाध्वा प्रबलतरकोलाहलरवैः ॥११॥

§ २१) तदात्वे किल संवेगवैराग्यसिद्धयर्थं बद्धपरिच्छदं, जगत्कायस्वभावादितत्त्वान्यनुध्यायन्तं, सत्त्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनयेषु मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यानि भावयन्तं, युगप्रमितदेशे पुरःप्रदेशे दृष्टिं प्रसार्य शनैः पादाम्बुजं गन्धसिन्धुरलीलया विन्यस्यन्तं राजमन्दिरसमीपमापतन्तं भगवन्तं सिद्धार्थनामकाद्दौवारिकाच्छ्रुत्वाधिराजयुवराजौ सोमप्रभश्रेयान्सौ, अन्तःपुरामात्यसेनानीप्रमुखैर्निबिडितपार्श्वभागौ ससम्भ्रमं प्रत्युद्गम्य प्रणम्य च ततश्चरणाम्बुजं निवेद्य चार्घ्यंपाद्यादिकं प्रमोदस्य परां काष्ठामुपजग्मतुः ।

पादयामास कथयामास । § २०) तदानीमिति—तदानीं तस्मिन् काले योगीन्द्रे वृषभजिनेन्द्रे पदा चरणेन हास्तिनपुरं कुरुजाङ्गलजनपदराजधानीं प्रविशति सति, एनं तं योगीन्द्रं संद्रष्टुं समवलोकितुं कुतुकितहृदां कुतूहलाकुलचेतसां सम्भ्रमवतां त्वरायुक्तानां निबिडतराणि सान्द्रतराणि यानि रथ्याङ्गणानि राजमार्गाजिराणि तानि जुषन्ते प्रीत्या सेवन्ते तेषां जनानां लोकानां सम्मर्दात् समाघातात् प्रबलतरा अतिप्रबला ये कोलाहलरवाः कलकलशब्दास्तैः व्योमाध्वा गगनमार्गः पुपूरे संपूर्णः । शिखरिणी छन्दः ॥११॥ § २१) तदात्व इति—तदात्वे तदानीं किल संवेगश्च वैराग्यं चेति संवेगवैराग्ये तयोः सिद्धयर्थं बद्धपरिच्छदं बद्धपरिकरं समुद्यतमिति भावः । जगच्च कायश्चेति जगत्कायौ संसारशरीरे तयोः स्वभावस्तदादितत्त्वानि अनुध्यायन्तं भूयोभूयश्चिन्तयन्तं 'जगत्कायस्वभावौ वा संवेगवैराग्यार्थम्' इति प्ररूपितत्वात्, सत्त्वाश्च गुणाधिकाश्च क्लिश्यमानाश्च अविनयाश्च तेषु सत्त्वाः सामान्यप्राणिनः गुणाधिकाः ज्ञानादिगुणसंपन्नाः क्लिश्यमानाः दुःखभाजः अविनयाः उद्दण्डप्रकृतिकाः एतेषु क्रमेण मैत्री च प्रमोदश्च कारुण्यं च माध्यस्थ्यं चेति मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यानि भावयन्तं 'मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यानि च सत्त्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनयेषु' इति निरूपितत्वात्, भावयन्तं चिन्तयन्तं, युगं शकटवाहवृषभयोः स्कन्धोपरिधृतश्चतुर्हस्तप्रमाणो दारुविशेषः तेन प्रमितो युगप्रमितः स चासौ देशश्च तस्मिन् पुरःप्रदेशे अग्रस्थाने दृष्टिं दृशं प्रसार्य विस्तार्य शनैर्मन्दं गन्धसिन्धुरलीलया मत्तमतङ्गजलीलया पादाम्बुजं चरणकमलं विन्यस्यन्तं निक्षिपन्तं, राजमन्दिरसमीपं राजभवनाभ्यर्णम् आपतन्तं समागच्छन्तं भगवन्तं जिनेन्द्रं सिद्धार्थनामकाद् दौवारिकात् सिद्धार्थाभिधानद्वारपालात् श्रुत्वा निशम्य अधिराजश्च युवराजश्चेति अधिराजयुवराजौ सोमप्रभश्रेयान्सौ तन्नामानौ अन्तःपुरामात्यसेनानीप्रमुखैः शुद्धान्तसचिवसेनापतिप्रधानैर्जनैः

हैं । इस समय हम लोगोंके बहुत भारी कीर्तिकी प्राप्ति आदि संपदाओंका कारणभूत पुण्यका उदय है तथा यह श्रेयांसकुमार तत्त्वोंका ज्ञाता है । § २०) तदानीमिति—उस समय योगिराज वृषभजिनेन्द्रने ज्योंही चरणोंके द्वारा हस्तिनापुरमें प्रवेश किया त्योंही उन्हें देखनेके लिए कुतूहलसे युक्त, शीघ्रता करनेवाले तथा राजमार्गके मैदानमें एकत्रित मनुष्योंकी धक्का-मुक्कीसे उत्पन्न बहुत भारी कोलाहलके शब्दसे आकाशमार्ग भर गया ॥११॥ § २१) तदात्व इति—उस समय जो संवेग और वैराग्यकी सिद्धिके लिए बद्धपरिकर—पूर्ण-उद्यत थे, संसार और शरीरके स्वभाव आदि तत्त्वोंका बार-बार ध्यान करते थे, सत्त्व, गुणाधिक, दुःखी तथा उद्दण्ड मनुष्योंमें क्रमसे मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ्य भावकी भावना रखते थे, तथा युगप्रमाण भूमिमें आगे दृष्टि पसारकर मत्तहाथीकी लीलासे धीरे-धीरे चरण कमलको रख रहे थे, ऐसे भगवान्‌को सिद्धार्थक नामक द्वारपालसे राजभवनके समीप आते हुए सुनकर अधिराज और युवराज पदके धारक सोमप्रभ और श्रेयांस, अन्तः-

§ २२) सप्रेक्ष्य भगवद्रूपं श्रेयान् जातिस्मरोऽभवत् ।
तती दाने मतिं चक्रे तत्संस्कारेण संगतः ॥१२॥

§ २३) तदनु श्रीमतीवज्रजङ्घादिवृत्तान्त चारणयुग्माय दत्तदान च स्मृत्वा मत्वा च गोचरवेलेयं दानयोग्येति, श्रद्धादिगुणसपन्नो नवपुण्यान्वित· श्रेयान् दानादितीर्थकर्ता, भगवते प्रासुकाहारकल्पितं दान विततार ।

§ २४) सोमप्रभेण सममुज्ज्वलपुण्यकीर्ति-
लक्ष्मीमतीसहित एष विशुद्धवृत्तिः ।
पुण्ड्रेक्षुकाण्डवरनूत्नरसस्य धारा
श्रेयान् ददे भगवत खलु पाणिपात्रे ॥१३॥

§ २५) तदनु सुरनिकरकरगलितमणिविसरघणघणरवपरिभरेण, समनुपतदमरतरुसुरभितम-

---

निविडित सान्द्रीकृत· पार्श्वभागो ययोस्तथाभूतौ सन्तौ ससभ्रम सत्वरं प्रत्युद्गम्य समुख गत्वा ततस्तदनु चरणाम्बुज पादारविन्द प्रणम्य च नमस्कृत्य च अर्घपाद्यादिक अर्घपादोदकप्रभृतिक निवेद्य समर्प्य च प्रमोदस्य हर्षरूपस्य परामुत्कृष्टा काष्ठा सीमानम् उपजग्मतु प्रापतु । § २२) सप्रेक्ष्येति—भगवतो रूप भगवद्रूप जिनेन्द्ररूप सप्रेक्ष्य समवलोक्य श्रेयान् सोमप्रभानुज. जाति पूर्वजन्म स्मरतीति जातिस्मर· अभवत् । ततस्तदनन्तर तत्संस्कारेण पूर्वजन्मसस्कारेण सगत सहित· सन् दाने मतिं बुद्धि चक्रे विदधे ॥१२॥ § २३) तदन्विति—तदनु तदनन्तर श्रीमतीवज्रजङ्घादिवृत्तान्त चारणयुग्माय चारणर्षियुगलाय दत्तदान प्रदत्ताहारदान च स्मृत्वा इयं गोचरवेला प्रातर्वेला दानयोग्या दानार्हेति मत्वा च श्रद्धादिगुणसंपन्न श्रद्धातुष्टिभक्तिप्रभृतिसप्तगुणसहित नवपुण्यैर्नवधाभक्त्यभिधानैरन्वित सहित दानादितीर्थकर्ता दानतीर्थप्रथमप्रवर्तकः श्रेयान् भगवते वृषभाय प्रासुकाहारेण निश्चित्ताहारेण कल्पितं कृत दान विततार ददौ । § २४) सोमप्रभेणेति—उज्ज्वला निर्मला पुण्यकीर्तिं पवित्रयशो यस्य स लक्ष्मीमत्या सोमप्रभस्त्रिया सहितो युक्त , विशुद्धा निर्दोषा वृत्तिर्यस्य तथाभूत , एष श्रेयान् सोमप्रभेण तन्नामाग्रजेन सम सह भगवतो जिनेन्द्रस्य पाणिपात्रे हस्तभाजने खलु निश्चयेन पुण्ड्रेक्षुकाण्डाना पुण्ड्रसालदण्डाना वर श्रेष्ठो नूत्नो नवीनश्च यो रसस्तस्य धारा ददे दत्तवान् । वसन्ततिलका छन्द ॥१३॥ § २५) तदन्विति—तदनु तदनन्तर सुरनिकरस्य देवसमूहस्य करेभ्यो हस्तेभ्यो गलित. पतितो यो मणिविसरो रत्नसमूहस्तस्य घणघणरवस्य घणघणेत्याकारकशब्दस्य य.

पुरकी स्त्रियों, मन्त्रियों और सेनापति आदि प्रमुख जनोंके द्वारा समीपवर्ती प्रदेशको व्याप्त करते हुए शीघ्रतासे उनके संमुख गये तथा उनके चरणकमलोंको प्रणाम करनेके बाद अर्घ और पादोदक आदि प्रदान कर हर्षकी परम सीमाको प्राप्त हुए। § २२) संप्रेक्ष्येति—भगवान्‌के रूपको देखकर श्रेयांस जातिस्मरणसे युक्त हो गया जिससे पूर्वभवके सस्कारोंसे युक्त होकर उसने दान देनेमे बुद्धि लगायी ॥१२॥ § २३) तदन्विति—तदनन्तर श्रीमती और वज्रजघ आदिके वृत्तान्त तथा चारणऋद्धिके धारक मुनियुगलके लिए दिये हुए दानका स्मरण कर उसने विचार किया कि यह प्रातःकालका समय दान देनेके योग्य है। तत्पश्चात् श्रद्धादि गुणोंसे सहित नवधा भक्तिसे युक्त श्रेयासने दानतीर्थका प्रथम कर्ता बनकर भगवान्‌के लिए प्रासुक आहारसे निर्मित दान दिया। § २४) सोमप्रभेणेति—उज्ज्वल और पवित्र कीर्तिसे युक्त, लक्ष्मीमतीसे सहित एवं निर्दोषवृत्तिके धारक इस श्रेयांसने, राजा सोमप्रभके साथ भगवान्‌के हस्तरूपी पात्रमें पौंड़ा और ईखोंके उत्कृष्ट तथा नवीन रसकी धारा दी थी ॥१३॥ § २५) तदन्विति—तदनन्तर देवसमूहके हाथोंसे गिरे मणिसमूह सम्बन्धी घण-घण शब्दोंके

कुसुमकुलसमनुसृतमधुकरनिचयमधुरतरविरुतेन, विबुधजनकरनिहतपटहपटुनिनदेन, त्रिदिवपतिसुभगवनचिरनिवसदतिसुरभिमृदुपवनललितगतिसमनुसरदलिजालकोलाहलेन, अहो दानमहो पात्रमहो दातेति गगनतलविलसितदिविजततिहृदयसरसिजसमुदयपरिकलितवचनभरेण चाकाशं निरवकाशमासीत् ।

§ २६) कृतार्थं स्वात्मानं सममनुत तद्भ्रातृयुगलं
कृतार्थोऽयं यस्मात्स्वगृहमपुनाल्लोकमहितः ।
परे दानस्यास्य प्रगुणमनुमोदेन बहवः
सुखेनैव प्रापुः प्रचुरतरपुण्यस्य सरणिम् ॥१४॥

§ २७) तदनु कृतपारणं निखिलपौरसंदोहवन्दितचरणं गमनविलासविजितवारण[1], त्रिभुवनरमणं वनाय व्रजन्तं किंचिदन्तरमनुव्रज्य प्रत्यावृत्तौ तद्गुणमणीनेव मुहुर्मुहुः प्रस्तुवानौ

परिभरः समूहस्तेन, समनुपतन्ति वर्षन्ति अमरतरूणां कल्पवृक्षाणां सुरभितमानि सुगन्धितमानि यानि कुसुमकुलानि प्रसूननिकुरम्बाणि तानि समनुसृताः समनुगता ये मधुकरनिचया भ्रमरसमूहास्तेषां मधुरतरं मिष्टतरं यद् विरुतं शब्दस्तेन, विबुधजनानां देवानां करैः पाणिभिर्निहतास्ताडिता ये पटहा ढक्कास्तेषां पटुनिनदेन तीव्रशब्देन, त्रिदिवपतेः पुरंदरस्य यत् सुभगवनं सुन्दरोद्यानं तस्मिन् चिरनिवसन् चिरकालेन निवासं कुर्वन् अतिसुरभिः सातिशयसुगन्धयुक्तो मृदुर्मन्थरश्च यः पवनः समीरस्तस्य ललितगतिं सुन्दरगतिं समनुसरन्तः समनुगच्छन्तो येऽलयो भ्रमरास्तेषां जालस्य समूहस्य कोलाहलेन कलकलशब्देन, 'अहो दानम् अहो पात्रम् अहो दाता' इतीत्थं गगनतले नभस्तले विलसितानि यानि दिविजततेर्देवसमूहस्य हृदयसरसिजानि मानसतामरसानि तेषां समुदयेन समूहेन कलितानि कृतानि यानि वचनानि तेषां भरः समूहस्तेन च आकाशं गगनं निरवकाशमवकाशशून्यम् आसीत् । § २६) कृतार्थमिति—यस्मात् कारणात् कृतार्थः कृतकृत्यः लोकमहितः जगदभ्यर्चितः अयं भगवान् स्वगृहं स्वभवनम् अपुनात् पवित्रं चकार तस्मात् कारणात् तत् पूर्वोक्तं भ्रातृयुगलं सहोदरयुगं सोमप्रभश्रेयसोर्युगलमित्यर्थः स्वात्मानं कृतार्थं कृतकृत्यं सममनुत सम्यक्प्रकारेण मन्यते स्म । अस्य दानस्य प्रगुणं प्रकृष्टं यथा स्यात्तथा अनुमोदेन समर्थनेन बहवः प्रभूताः परे अन्ये जनाः सुखेनैव अनायासेनैव प्रचुरतरपुण्यस्य विपुलतरसुकृतस्य सरणिं मार्गं प्रापुः । शिखरिणीछन्दः ॥१४॥ § २७) तदन्विति—तदनु तदनन्तरं कृतपारणं कृतव्रतान्तभोजनं निखिलपौरसंदोहेन निखिलनागरनरनिचयेन वन्दितौ चरणौ यस्य तथाभूतं गमनविलासेन मन्दगमनलीलया विजितो वारणो गजो येन तं, त्रिभुवनरमणं जगत्त्रयाधीश्वरं वनाय

भारसे पड़ते हुए कल्पवृक्षोंके सुगन्धित पुष्प समूहका पीछा करनेवाले भ्रमर समूहके अत्यन्त मधुर शब्दसे, देवोंके हाथोंसे ताड़ित नगाड़ोंके जोरदार शब्दसे, इन्द्रके सुन्दर वनमें चिरकालसे निवास करनेवाले, अत्यन्त सुगन्धित एवं कोमल पवनकी सुन्दर गतिका अनुसरण करनेवाले भ्रमर समूहके कोलाहलसे और 'अहो दान अहो पात्र अहो दाता' इस प्रकार आकाशतलमें सुशोभित देवसमूहके हृदयरूपी कमलोंके समूहसे उत्पन्न वचनोंके समूहसे आकाश अवकाशहीन हो गया था अर्थात् भर गया था । § २६) कृतार्थमिति—क्योंकि कृतकृत्य तथा लोकपूजित भगवान्‌ने अपना गृह पवित्र किया है इसलिए उन भाइयोंके युगलने अपने-आपको अच्छी तरह कृतकृत्य माना था । इस दानकी बहुत भारी अनुमोदना करनेसे अन्य बहुतसे लोगोंने अनायास ही विपुल पुण्यका मार्ग प्राप्त किया था ॥ § २७) तदन्विति—तदनन्तर जिन्होंने पारणा की थी, समस्त नगरवासियोंके समूहने जिनके चरणोंकी वन्दना

१ विजितमदवारण क० ।

सकलजनविस्मयनीयप्रज्ञाप्रभावौ विमलयशोविशोभितदिगन्तौ कुरुकुमुदिनीकान्तौ सानन्द पुरं प्राविक्षताम् ।

§ २८) तदादि तदुपज्ञ तद्दानं जगति पप्रथे ।
येन विस्मयमासेदुर्भूमिपा भरतादयः ।।१५।।

§ २९) सुराश्च विस्मयानन्दसभूतनवकौतुकाः ।
प्रतीता कुरुराज त पूजयामासुरादरात् ।।१६।।

§ ३०) तदनु भरतराजेन सबहुमानमिम दानोदन्त पृष्ट· श्रेयान् श्रीमतीवज्रजङ्घभवपरिकलितचारणयुग्मदानवैभवकथनपुर सर दानशुद्धिमित्यमचीकथत् ।

§ ३१) दान स्वस्यातिसर्गो भवति नरवरानुग्रहार्थं त्रिशुद्धि-
प्रोद्भूत तत्पुनाति प्रचुरतरफलं कीर्तिलक्ष्मीनिदानम् ।

काननाय व्रजन्त गच्छन्त भगवन्तं किंचिदन्तर किंचिद्दूर यावत् अनुव्रज्य अनुगत्य प्रत्यावृत्तौ प्रतिनिवृत्तौ तद्गुणमणीनेव तदीयगुणरत्नान्येव मुहुर्मुहु भूयोभूय प्रस्तुवानौ स्तुतिविषयीकुर्वाणौ सकलजनाना निखिलनराणा विस्मयनीयौ आश्चर्यकरौ प्रज्ञाप्रभावौ ययोस्तौ, विमलयशसा निर्मलकीर्त्या विशोभिता समलकृता दिगन्ता याभ्या तौ, कुरुकुमुदिनीकान्तौ कुरुवशचन्द्रमसौ सोमप्रभश्रेयान्सौ सानन्द यथा स्यात्तथा पुर हस्तिनापुरं प्राविक्षताम् प्रविविशतु । § २८) तदादीति—तद् आदौ यस्य तदादि, तेनादावुपज्ञात तदुपज्ञ 'उपज्ञा ज्ञानमाद्य स्यात्' इत्यमर· । तत् श्रेय प्रदत्त दान जगति भुवने पप्रथे प्रथितमभवत् येन दानेन भरतादयो भूमिपा राजानो विस्मय चित्रम् आसेदु प्रापु ।।१५।। § २९) सुराश्चेति—विस्मयानन्दाभ्या चित्रप्रमोदाभ्या सभूत समुत्पन्नं नवकौतुक नूतनकुतुक येषा तथाभूता सुरा अमराश्च प्रतीता विश्वस्ता सन्त त कुरुराज सोमप्रभ श्रेयास च आदरात् पूजयामासु आनर्चु ।।१६।। § ३०) तदन्विति—तदनु तदनन्तरं भरतराजेन भरतेश्वरेण सबहुमान यथा स्यात्तथा इममेत दानोदन्त दानवृत्तान्तं पृष्ट श्रेयान् श्रीमतीवज्रजङ्घयोर्भवे परिकलित प्राप्तं यत् चारणयुग्माय चारणर्द्धिधारकमुनियुगलाय दानवैभव तस्य कथनपुर सरं दानशुद्धिम् इत्यमनेन प्रकारेण अचीकथत् कथयामास । 'अचीकथत्' इति प्रयोगोऽपाणिनीय । § ३१) दानमिति—हे नरवर ! हे नरश्रेष्ठ ! अनुग्रहार्थं स्वपरयोरुपकारार्थम् अथवा नरवरा मुनयस्तेषामनुग्रहार्थमुपकारार्थं स्वस्य स्वकीयवस्तुन अतिसर्गस्त्यागो दान भवति । तच्च दान त्रिशुद्धिभिर्मनोवाक्कायशुद्धिभि प्रोद्भूत समुत्पन्नं

की थी, गमनके विलाससे जिन्होंने हाथीको जीता था तथा जो वनकी ओर जा रहे थे ऐसे त्रिभुवनपति भगवान्को कुछ दूर तक भेजकर जो वापस लौटे थे, जो बार-बार उन्हींके गुणरूपी रत्नोंकी स्तुति कर रहे थे, जिनकी प्रज्ञा और प्रभाव समस्त लोगोंको आश्चर्यमें डाल रहे थे, तथा निर्मल यशके द्वारा जिन्होंने दिशाओंके अन्तको सुशोभित कर दिया था ऐसे कुरुवंशके चन्द्र—राजा सोमप्रभ और युवराज श्रेयान्सने हर्ष सहित नगरमे प्रवेश किया। § २८) तदादीति—सर्वप्रथम राजा श्रेयान्सके द्वारा जाना हुआ वह दान संसारमें प्रसिद्ध हो गया जिसके द्वारा भरत आदि राजा आश्चर्यको प्राप्त हुए ।।१५।। § २९) सुराश्चेति—आश्चर्य और हर्षके कारण जिन्हें नवीन कुतूहल उत्पन्न हो रहा है ऐसे देवोंने विश्वस्त होकर उस कुरुराजकी आदर पूर्वक पूजा की ।।१६।। § ३०) तदन्विति—तदनन्तर राजा भरतने बहुत सम्मानके साथ श्रेयान्ससे दानका समाचार पूछा तो उसने श्रीमती और वज्रजंघके भवमे दिये हुए चारणर्द्धिके धारक मुनि युगलके दानका वैभव बतलाते हुए इस प्रकार दानकी शुद्धिका कथन किया। § ३१) दानमिति—हे नरश्रेष्ठ ! निज और परके उपकारके लिए आत्मीय वस्तुका त्याग करना दान है। वह दान मनशुद्धि, वचनशुद्धि और कायशुद्धि

दाता श्रद्धादिसम्यग्गुणमणिनिलयो देयमाहारशास्त्रे
भैषज्य चाभयं चेत्युदितमथ मत रागशून्य तु पात्रम् ॥१७॥

§ ३२) पात्र त्रिधा जघन्यादिभेदैर्भेदमुपेयिवत् ।
जघन्य शीलवान्मिथ्यादृष्टिश्च पुरुषो भवेत् ॥१८॥

§ ३३) सद्दृष्टिर्मध्यम पात्र नि शीलव्रतभावन ।
सद्दृष्टि शीलसपन्न पात्रमुत्तममुच्यते ॥१९॥

§ ३४) इत्यादिवाचमवकर्ण्य नृपोत्तमोऽय
भर्तु र्भवान्सुविभवाश्च निशम्य धीर: ।
संपूज्य त कुरुपति कुतुकेन भूयो
ध्यायन्गुरोर्गुणगण स्वपुर जगाम ॥२०॥

§ ३५) तदनु निखिलगुणसान्द्रो वृषभयोगीन्द्रः साकलसावद्यातिदूर जिनकल्पिताचारं

प्रचुरतरफल सातिशयफलयुक्त कीर्तिलक्ष्मीनिदान यश श्रीकारण सत् पुनाति पवित्र करोति। श्रद्धादय एव सम्यग्गुणमणयस्तेषा निलयो गृह श्रद्धातुष्टिभक्तिप्रभृतिसमीचीनगुणमणिसहितो नरो दाता भवति, आहारश्च शास्त्र चेत्याहारशास्त्रे भैषज्यमौषध अभय च भयनिवारण च इत्येतत् देय दातु योग्यमुदितं कथितम्, तु किं तु रागशून्य रागादिदोषरहित पात्रं दानभाजन मत स्वीकृतम्। स्रग्धराछन्द ॥१७॥ § ३२) पात्रमिति—जघन्यादिभेदै भेदम् उपेयिवत् प्राप्तवत् पात्र त्रिधा त्रिप्रकार भवति। तत्र शीलवान् मिथ्यादृष्टि पुरुषो जघन्य पात्र भवेत् ॥१८॥ § ३३) सद्दृष्टिरिति—शीलव्रतभावनारहित सम्यग्दृष्टि मध्यम पात्र भवेत्। शीलसपन्न सम्यग्दृष्टिश्च उत्तम पात्रम् उच्यते ॥१९॥ § ३४) इत्यादीति—नृपोत्तमो राजश्रेष्ठ धीरो धीरप्रकृतिक अय भरत इत्यादिवाच पूर्वोक्तवाणीम् अवकर्ण्य श्रुत्वा भर्तु स्वामिनो भवान् पूर्वपर्यायान् सुविभवान् समोचीनैश्वर्याणि च निशम्य श्रुत्वा कुतुकेन त कुरुपति सोमप्रभ श्रेयान्स च भूय पुनरपि संपूज्य समर्च्य गुरो. पितु गुणगण गुणसमूह ध्यायन् चिन्तयन् स्वपुर स्वनगरं जगाम ययौ। वसन्ततिलकाछन्द ॥२०॥ § ३५) तदन्विति—तदनु तदनन्तर निखिलगुणै समग्रगुणै सान्द्रो निविडित वृषभयोगीन्द्रो वृषभमुनीन्द्र सकलसावद्येभ्यो निखिलपापारम्भेभ्योऽतिदूर विप्रकृष्टतर जिनकल्पिता-

---

इन तीन शुद्धियोंसे उत्पन्न हो तो बहुत भारी फलको देनेवाला तथा कीर्ति और लक्ष्मीका कारण होता हुआ पवित्र करता है। जो श्रद्धा आदि समीचीन गुणरूपी मणियोंका घर है वह दाता कहलाता है। आहार, शास्त्र, औषध और अभय ये चार देय कहलाते हैं और रागसे रहित मनुष्य पात्र माना गया है ॥१७॥ § ३२) पात्रमिति—जघन्य आदिके भेदसे भेदको प्राप्त होता हुआ पात्र तीन प्रकारका होता है उनमे शीलवान् मिथ्यादृष्टि पुरुष जघन्य पात्र होता है ॥१८॥ § ३३) सद्दृष्टिरिति—शील तथा व्रतकी भावना से रहित सम्यग्दृष्टि मध्यमपात्र और शीलसहित सम्यग्दृष्टि उत्तम पात्र कहा जाता है। विशेष—अन्यत्र अविरत सम्यग्दृष्टिको जघन्यपात्र, श्रावकके व्रत सहित सम्यग्दृष्टिको मध्यम पात्र और सकल चारित्रके धारक मुनिको उत्तम पात्र कहा गया है ॥१९॥ § ३४) इत्यादीति—इत्यादि वचन सुनकर धीर-वीर राजाधिराज भरतने भगवान्के पूर्वभव तथा उनके उत्तम वैभवका वर्णन सुना, कुतूहल पूर्वक कुरुराजकी पुन: पूजा की और पश्चात् पिताके गुणसमूहका ध्यान करते हुए अपने नगरकी ओर गमन किया ॥२०॥ § ३५) तदन्विति—तदनन्तर जो समस्त गुणोंसे परिपूर्ण थे, समस्त पापारम्भसे दूर रहनेवाले जिनकल्पी आचारको स्वीकृत कर

स्वीकुर्वाणो योगयोग्यप्रदेशेष्ववहितध्यानाधीनमानसो विहरमाणः क्रमेणातिवाहितसंवत्सरसहस्रः पुरिमतालविदितनगरनिकटविलसितशकटसमाह्वयोपवनन्यग्रोधविटपिमूलतलविलसमाननिराकुल-निर्जन्तुकविमलशिलापट्टे निबद्धपल्यङ्कासनः, पूर्वाभिमुख प्रहितध्यानोन्मुखमानस, परा लेश्याशुद्धि दधानश्चेतसा परंपदमनुसदधान, सम्यग्दर्शनज्ञानानन्तवीर्यसौख्यसूक्ष्मत्वागुरुलघुत्वावगाहाव्याबाधारूपानष्टसिद्धगुणान्प्रथममनुध्यायन्, अध्रुवादिद्वादशानुप्रेक्षाभावनाभावितान्तःकरणः, तदनन्तरमाज्ञाविचयविपाकविचयापायविचयसंस्थानविचयविख्यातानि धर्म्यध्यानानि भजमानो, ज्ञानादिपरिणामेषु निरतिशयशुद्धि संगृह्णानः, क्रमाच्छुक्लध्यानपरिणतो, घातिकर्माणि निःशेषयित्वा, फाल्गुनकृष्णैकादशीदिने संप्राप्तोत्तराषाढनक्षत्रे सकलद्रव्यपर्यायस्वभावोद्भासनप्रवीण भव्यसरोजतल्लजसमुल्लसननिपुण केवलज्ञानतरणिमुद्बोधयामास ।

चार जिनकल्पाभिधान निर्ग्रन्थाचार स्वीकुर्वाणोऽङ्गीकुर्वन्, योगयोग्यप्रदेशेषु ध्यानार्हस्थानेषु अवहितध्यानस्य सावधानध्यानस्याधीन निघ्न मानस यस्य तथाभूत विहरमाणो विहार कुर्वन् क्रमेण अतिवाहितमतिलङ्घित संवत्सरसहस्र वर्षसहस्र येन तथाभूत, पुरिमतालेति नाम्ना विदितं प्रसिद्धं यन्नगर पुर तस्य निकटे समीपे विलसित शोभित शकटसमाह्वयं शकटनामधेय उपवनमुद्यान तस्य न्यग्रोधविटपिनो वटवृक्षस्य मूलतलेऽधस्तात् विलसमान. शोभमानो निराकुलो व्यग्रताकारणरहितो निर्जन्तुको जन्तुरहितो विमल स्वच्छश्च य. शिलापट्ट पाषाणफलकस्तस्मिन् निबद्ध पल्यङ्कासन येन तथाभूतो बद्धपद्मासन, पूर्वाभिमुख· प्रहित प्रकृष्टहितकरं यद् ध्यान तस्योन्मुख समुख मानस यस्य स, परामुत्कृष्टा लेश्याशुद्धि कषायोदयेनानुरञ्जिता योगप्रवृत्तिर्लेश्या कथ्यते लेश्याया शुद्धिस्ता दधान., चेतसा हृदयेन पर पद मोक्षस्थानम् अनुसदधान भूयोभूय. सदवत् मोक्षप्राप्तिर्मम भवत्विति चेतसा चिन्तयन्निति यावत्, सम्यग्दर्शनादिरूपान् अष्टसिद्धगुणान् ज्ञानावरणादिकर्मणामभावे प्रकटितानष्टगुणान् प्रथम प्राक् अनुध्यायन् चिन्तयन्, अध्रुवादिद्वादशानुप्रेक्षाणा भावनया भावित युक्तमन्त करण चित्त यस्य तथाभूत., तदनन्तर तदनु आज्ञाविचयादिविख्यातानि धर्मध्यानानि भजमान. सेवमान, ज्ञानादिपरिणामेषु निरतिशयशुद्धि विपुलतरशुद्धि संगृह्णानः स्वीकुर्वाण·, क्रमात् शुक्लध्यानेन पृथक्त्ववितर्कादिचतुर्विधशुक्लध्यानेन परिणत सन्, घातिकर्माणि मोहज्ञानावरणदर्शनावरणान्तरायनामानि निःशेषयित्वा निःशेषाणि कृत्वा क्षपयित्वेत्यर्थ, फाल्गुनकृष्णैकादशीदिने संप्राप्तोत्तराषाढनक्षत्रे सकलद्रव्यपर्यायाणा स्वभावस्योद्भासने प्रकटने प्रवीण निपुण भव्या एव सरोजतल्लजानि श्रेष्ठकमलानि तेषा समुल्लसने

रहे थे, ध्यानके योग्य स्थानोंमें जिनका मन सावधान होकर ध्यान धारण करता था, तथा विहार करते हुए जिन्होंने क्रमसे एक हजार वर्ष व्यतीत कर दिये थे ऐसे मुनिराज वृषभ, एक दिन पुरिमताल नामसे प्रसिद्ध नगरके निकट शोभायमान शकट नामक उपवनमें वट वृक्षके नीचे सुशोभित आकुलताके कारणोंसे रहित चिंउटी आदि जन्तुओंसे शून्य निर्मल शिलातलपर पर्यंकासनसे पूर्वाभिमुख होकर विराजमान हुए। वहाँ जिन्होंने श्रेष्ठ ध्यानके सम्मुख चित्त किया है, जो लेश्याकी परम विशुद्धताको धारण कर रहे थे, हृदयसे जो परम-पद—मोक्षका ही विचार करते थे ऐसे भगवान्ने पहले सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, अनन्त वीर्य, अनन्त सौख्य, सूक्ष्मत्व, अगुरुलघुत्व, अवगाह और अव्याबाधा इन सिद्धोंके आठ गुणोंका चिन्तवन किया, फिर अनित्य आदि बारह अनुप्रेक्षाओंकी भावनासे अन्तःकरणको युक्त किया, तदनन्तर आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थानविचय इन नामोंसे प्रसिद्ध चार धर्म्य ध्यानोंको धारण किया, ज्ञानादि परिणामोंमें अत्यधिक विशुद्धिको प्राप्त किया, पश्चात् क्रमसे शुक्लध्यानरूप परिणत हो घातिया कर्मोंका क्षय कर फाल्गुन कृष्ण एकादशीके दिन उत्तराषाढ़ नक्षत्रमें उस केवलज्ञानरूपी सूर्यको प्रकट किया जो कि समस्त

§ ३६) वृषभजिनपख्यातप्राच्याचले प्रविजृम्भिते
सुरपरिषदा सतोषाम्भोधिवर्धनतत्परे।
विहतबलवद्घातिध्वान्ते च केवलबोधस-
न्नवसितकरे चित्र दोषोद्गमो न हि पप्रथे ॥११॥

§ ३७) पुष्पैर्देवौघवृष्टैः सुरपटहपटुप्रस्फुरद्ध्वानपूरै-
र्गीर्वाणस्त्रैणलास्यैरमरवरमुखोद्भूतसस्तोत्रशब्दैः ।
मन्दारोद्यानवाटीमृदुसुरभिमरुन्मन्दमन्दप्रचारै-
रासीत्कैवल्यबोधोदयमहिमहो विश्वपाश्चर्यभूत ॥२२॥

§ ३८) तदानी विमलकेवलज्ञानसपूर्णचन्द्रबिम्बोदयोज्जृम्भितभुवनत्रयाम्भोधिनिर्लोल-कल्लोलकोलाहलानुकारिघण्टाघणघणात्कारकण्ठोरवराव-पटहप्रणाद-शङ्खस्वनसमुत्पन्नबोधानेकयान-

---

विकसने निपुण प्रवीण केवलज्ञानतरणि केवलज्ञानसूर्यम् उद्बोधयामास प्रकटयामास । ३६) वृषभेति— वृषभजिनपो वृषभजिनेन्द्र एव ख्यात प्रसिद्ध प्राच्याचल उदयाद्रिस्तस्मिन् सुरपरिषदां देवनिकायाना सतोष एवाम्भोधि सागरस्तस्य वर्धनमुद्वेलन तस्मिन् तत्पर समुद्यतस्तस्मिन्, विहत विनष्ट बलवद्घातीन्येव बलिष्ठ-घातिकर्माण्येव ध्वान्तानि तिमिराणि येन तस्मिन्, केवलबोध केवलज्ञानमेव सन् प्रशस्त नवो नूतनोदित. सितकरश्चन्द्रस्तस्मिन् प्रविजृम्भिते समुदिते दोषोद्गम दोषाया रजन्या उद्गम प्रादुर्भावो न हि नैव पप्रथे न प्रथितोऽभूत् इति चित्र विस्मयस्थान परिहारपक्षे दोषाणा रागाद्यवगुणानामुद्गमो नैव पप्रथे । रूपकश्लेष-विरोधाभासा । • हरिणीच्छन्द ॥२१॥ § ३७) पुष्पैरेति—देवौघवृष्टैः सुरसमूहवृष्टैः पुष्पैः कुसुमैः, सुरपटहाना देवदुन्दुभीना पटु यथा स्यात्तथा प्रस्फुरन्त प्रकटीभवन्तो ये ध्वानपूरा. शब्दप्रवाहास्तैः, गीर्वाण-स्त्रैणाना देवाङ्गनाना लास्यैर्नृत्यै , अमरवराणा श्रेष्ठसुराणा मुखेभ्यो वक्त्रेभ्य उद्भूता प्रकटिता ये सस्तोत्र-शब्दा सस्तुतिरवास्तै , मन्दारोद्यानवाट्या कल्पवृक्षोपवनवीथ्या यो मृदु कोमल सुरभि सुगन्धिश्च मरुत्पवनस्तस्य मन्दमन्दप्रचारा शनै शनै सचरणानि तैः कैवल्यबोधोदयमहिम्न केवलज्ञानप्राप्तिकल्याणस्य मह उत्सव विश्वपाश्चर्यभूतो लोकेशविस्मयास्पदम् आसीद् बभूव । स्रग्धराछन्द ॥२२॥ § ३८) तदानीमिति—तदानी तस्मिन् काले विमलकेवलज्ञानमेव सपूर्णचन्द्रविम्ब तस्योदयेन उज्जृम्भित समुद्वेलितो यो भुवनत्रयाम्भोधि लोकत्रयपारावारस्तस्य निर्लोलकल्लोलाना चपलतरतरङ्गाणा य कोलाहल कलकल-

---

द्रव्य और पर्यायों के स्वभाव प्रकट करनेमें प्रवीण था और भव्यजीव रूपी श्रेष्ठ कमलोंको विकसित करनेमें निपुण था। § ३६) वृषभेति—वृषभ जिनेन्द्ररूपी उदयाचल पर देव-निकायोंके सन्तोषरूपी समुद्रकी वृद्धि करनेमें तत्पर तथा अतिशय बलवान् घातिया कर्मरूपी अन्धकारको नष्ट करनेवाले केवलज्ञानरूपी प्रशस्त एवं नूतन चन्द्रमाके उदित होनेपर दोषोद्गम—रात्रिका प्रादुर्भाव नहीं हुआ था यह आश्चर्यकी बात थी (परिहारपक्षमें दोषोंका प्रादुर्भाव नहीं हुआ था ॥२१॥ § ३७) पुष्पैरिति—देवसमूहके द्वारा वर्षाये हुए पुष्पों, देव दुन्दुभियोंके जोरदार शब्दों, देवांगनाओंके नृत्यों, श्रेष्ठ देवोंके मुखसे प्रकट हुए समीचीन स्तोत्रोंको शब्दों तथा कल्पवृक्षोंकी उद्यान वाटिका सम्बन्धी कोमल और सुगन्धित वायुके मन्द-मन्द सचारोसे केवलज्ञानकी प्राप्ति रूप कल्याणकका वह उत्सव समस्त जगत्‌के स्वामियोंके लिए आश्चर्य स्वरूप हुआ था ॥२२॥ § ३८) तदानीमिति—उस समय निर्मल केवलज्ञान रूप पूर्णचन्द्र विम्बके उदयसे लहराते हुए लोकत्रय रूप समुद्रकी अत्यन्त चचल लहरोंके कोलाहलका अनुकरण करने वाले घण्टाओंके घण-घण शब्द, सिंहोंके कण्ठ-

विमानारूढकल्पज-ज्योतिष्क-व्यन्तर-भवनवासिरूपचतुर्णिकायामरपरिवेष्टित', प्रचुरतरप्रसृतनिजाङ्गकान्तिकल्लोलैर्भूषणरत्नप्रभाभिश्च गगनतलमलकुर्वाणो, नागदत्तनामधेयाभियोग्येशकल्पितमैरावतमारूढ पुलोमजापरिष्कृतपार्श्वभागः सौधर्मपुरदरः भगवत कैवल्यपूजार्थं निश्चक्राम ।

§ ३९) हाराशुस्वच्छनीरे सुरयुवतिमुखाम्भोजनेत्रोत्पलश्री-
सारे काश्मीररागारुणितकुचरथाङ्गाह्वये शोभमाने।
स्फारप्रोद्धूतचञ्चच्चमरजकलहसास्पदे व्योमवार्द्धौ
नाकेशाना विमाना मणिगणरुचिरा नावमेतेऽन्वकुर्वन् ।।२३।।

शब्दस्तस्यानुकारिणो ये घण्टाघणघणात्कार कल्पामरविमानोत्पन्नशब्दविशेप, कण्ठीरवरावो ज्योतिष्कदेवविमानोद्भूतमृगेन्द्रकण्ठध्वनिविशेप, पटहप्रणादो व्यन्तरनिवासगृहोत्पन्नदुन्दुभिशब्दविशेप, शङ्खस्वनश्च भवनामरभवनोद्भूतशङ्खशब्दविशेपश्च, तै समुत्पन्नो बोधो भगवत्कैवल्यप्राप्त्यवगमो येपा तथाभूता, अनेकयानविमानारूढा नानावाहनव्योमयानाधिष्ठिता कल्पज-ज्योतिष्क-व्यन्तर-भवनवासिरूपा ये चतुर्णिकायामराश्चतुर्विधदेवास्तै परिवेष्टित. परिवृत, प्रचुरतर यथा स्यात्तथा प्रसृता विस्तृता ये निजाङ्गकान्तिकल्लोला निजकायकान्तितरङ्गास्तै भूपणरत्नप्रभाभिश्च भूपणमणिमरीचिभिश्च गगनतल नभस्तलम् अलकुर्वाण, शोभयन्, नागदत्तनामधेयेन आभियोग्येशेन देवविशेपेण कल्पितं रचितम् ऐरावत तन्नामगजम् आरूढ, पुलोमजया शच्या परिष्कृत शोभित पार्श्वभाग सविधप्रदेशो यस्य तथाभूत सौधर्मपुरदर. प्रथमस्वर्गाधिपति., भगवतो वृपभदेवस्य कैवल्यपूजार्थं केवलज्ञानकल्याणकसपर्यार्थं निश्चक्राम निर्जगाम । § ३९) हारेति—हाराणा मुक्तायष्टीनामशव किरणा एव स्वच्छनीर निर्मलसलिल यस्मिस्तस्मिन्, सुरयुवतीना निलिम्पतरुणीना मुखान्येव अम्भोजानि मुखाम्भोजानि वदनवारिजानि, नेत्राण्येवोत्पलानि नेत्रोत्पलानि नयनकुवलयानि च तेषा श्रिया शोभया सारे श्रेष्ठे, काश्मीररागेण कुङ्कुमद्रवेण अरुणिता रक्तवर्णीकृता कुचा स्तना एव रथाङ्गाह्वयाश्चक्रवाकास्तै. शोभमाने, स्फार प्रचुर यथा स्यात्तथा प्रोद्धूता उन्नमिता चञ्चच्चमरजा शुम्भद्बालव्यजना एव कलहसा. कादम्बास्तेपाम् आस्पदे स्थाने व्योमवार्द्धौ गगनार्णवे एते दृश्यमाना मणिगणरुचिरा रत्नराजिरमणीया नाकेशाना देवाना विमाना व्योमयाना नाव तरणिम् अन्वकुर्वत् विडम्बयामासु' देवाना विमाना गगनार्णवे नौका इव बभुरिति भाव । रूपकोपमा । स्रग्धराछन्द ।।२३।।

नाद, दुन्दुभियोंके शब्द तथा शंखोंके शब्दसे जिन्हें भगवान्‌के केवलज्ञान उत्पन्न होनेका ज्ञान हो गया था तथा जो नाना प्रकारके वाहन और विमानोंपर चढ़कर आ रहे थे ऐसे कल्पवासी ज्योतिष्क व्यन्तर और भवनवासी इन चार निकायके देवोंसे घिरा हुआ सौधर्मेन्द्र भगवान्‌के केवलज्ञानकी पूजाके लिए निकला। उस समय वह सौधर्मेन्द्र, अत्यधिक मात्रामें फैली हुई अपने शरीरकी कान्तिरूप तरंगोंसे तथा आभूषणोंमें लगे रत्नोंकी प्रभासे आकाशतलको अलंकृत कर रहा था, नागदत्तनामक आभियोग्य जातिके देवोंके स्वामीके द्वारा निर्मित ऐरावत हाथीपर बैठा हुआ था तथा इन्द्राणीसे उसका पार्श्वभाग सुशोभित हो रहा था। § ३९) हारेति—जिसमें हारोंकी किरणें ही स्वच्छ जल था, जो देवांगनाओंके मुखरूपी कमल और नेत्ररूपी उत्पलोंकी शोभासे श्रेष्ठ था, जो केशरके रंगसे लाल-लाल स्तनरूपी चकवाक पक्षियोंसे सुशोभित था तथा अतिशय रूपसे ऊपरकी ओर उठाये हुए चंचल चमररूपी कलहंस पक्षियोंका स्थान था ऐसे आकाशरूपी समुद्रमें मणिमण्डलसे सुशोभित

§ ४०) शश्वद्वादितदेवदुन्दुभिरवैरापूरिताशान्तरा-
लेखास्तुङ्गकिरीटरश्मिरचितानेकेन्द्रचापभ्रमा ।
उन्मीलत्तनुकान्तिभिर्विदधतो दिग्भित्तिचित्रभ्रम
देवास्थानमवातरन् धनदसन्निर्माणमिन्द्राज्ञया ॥२४॥

§ ४१) यत्किल समवसरणस्थानं भूमिभागात्पञ्चसहस्रदण्डादुपरिवर्तमान, द्वादशयोजनसमवृत्तेकेन्द्रनीलशिलाघटितमसृणतलविलसिततया नीराकृताम्बरोऽप्यसौ देवो मया सेवित' सन् अनन्तसौख्यानन्तसूरिति मत्वा समागतेन विनयसंकुचिताङ्गेन व्योमस्थलेनेव विलसमान, दिक्चतुष्टयव्यवस्थितदेवमानवतिर्यग्विनेयजनसुखारोहणहेतुभूतमणिमयविंशतिसहस्रसोपानविराजमानं, भुवनत्रयलक्ष्मीलपनविलोकनमणिदर्पणायमानं, वलयितबलरिपुचापशङ्काकरेण, मोक्षलक्ष्मीमणिमय-

§ ४०) शश्वदिति—शश्वद् निरन्तर वादितास्ताडिता ये देवदुन्दुभय सुरानकास्तेषां रवै शब्दै आपूरितानि समरितानि आशान्तराणि दिगन्तराणि यैस्ते, तुङ्गकिरीटानामुन्नतमुकुटाना रश्मिभिर्मरीचिभि रचित समुत्पादित अनेकेन्द्रचापाना नानाशक्रशरासनाना भ्रम सदेहो यैस्ते, उन्मीलन्त्य' प्रकटीभवन्त्यो यास्तनुकान्तयो देहदीप्तयस्ताभि दिग्भित्तिषु काष्ठाकुड्येषु चित्रभ्रमम् आलेख्यसशय विदधत कुर्वन्त , लेखा अमरा इन्द्राज्ञया सौधर्मेन्द्रादेशेन धनदेन कुबेरेण सनिर्माण यस्य तत् कुबेररचित देवास्थान देवस्य भगवतो वृषभस्य आस्थानं समवसरणम् अवातरन् अवतरन्ति स्म । शार्दूलविक्रीडितच्छन्द ॥२४॥ § ४१ यदिति—यत् किल समवसरणस्थान देवास्थान भूमिभागात् भूपृष्ठात् पञ्चसहस्रदण्डात् पञ्चसहस्रपरिमितदण्डात् उपरि वर्तमान विद्यमान, द्वादशयोजनसमवृत्ता द्वादशयोजनविस्तारयुक्ता समवृत्ता समा उच्चावचप्रदेशरहिता वृत्ता वर्तुला च या एकेन्द्रनीलशिला अखण्डनीलमणिशिला तया घटितं रचित यन्मसृणतल सचाकचक्यपृष्ठ तस्मिन् विलसिततया शोभिततया असौ देवोऽय भगवान् निराकृताम्बरोऽपि तिरस्कृताकाशोऽपि पक्षे तिरस्कृतवस्त्रोऽपि मया अम्बरेण नभसेत्यर्थं सेवित सन् अनन्त सौख्य यस्मिन् स' अनन्तसौख्य अनन्तसौख्यश्चासावनन्तश्च मोक्षश्चेति अनन्तसौख्यानन्तस्तं सूत उत्पादयतीति अनन्तसौख्यानन्तसू इति मत्वा समागतेन समायातेन विनयेन सकुचितमङ्ग यस्य तेन तथाभूतेन व्योमस्थलेन गगनस्थलेनेव विलसमान शोभमान, दिक्चतुष्टयव्यवस्थितै देवमानवतिर्यग्विनेयजनसुखारोहणहेतुभूतै मणिमयविंशतिसहस्रसोपानै विराजमान, भुवनत्रय-लक्ष्म्या जगत्त्रयश्रिया लपनविलोकनाय मुखदर्शनाय यो मणिदर्पणस्तद्वदाचरत्, धूलिसालेन रत्नधूलिनिर्मितप्राकारेण परीत वेष्टित, अथ च तमेव धूलिसालं वर्णयति—वलयितो मण्डलाकारीकृतो यो बलरिपुचाप

देवोंके ये विमान नौकाओंका अनुकरण कर रहे थे ॥३२॥ § ४०) शश्वदिति—निरन्तर बजाये हुए देवदुन्दुभियोंके शब्दोंसे जिन्होंने दिशाओंके अन्तरालको भर दिया था, ऊँचे-ऊँचे मुकुटोंकी किरणोंसे जिन्होंने अनेक इन्द्रधनुषोंका भ्रम उत्पन्न किया था, तथा जो प्रकट होती हुई शरीरकी कान्तिके द्वारा दिशारूप दीवालोंपर चित्रोंका भ्रम उत्पन्न कर रहे थे ऐसे देव, इन्द्रकी आज्ञासे कुबेरके द्वारा निर्मित भगवान्के समवसरणमें उतरे ॥२४॥ § ४१) यदिति—वह समवसरण पृथिवीतलसे पाँच हजार दण्ड ऊपर विद्यमान था, बारह योजन प्रमाण सम तथा गोल इन्द्र नीलमणिकी एक शिलासे निर्मित सचिक्कण तलपर सुशोभित होनेके कारण ऐसा जान पड़ता था मानो यह भगवान् निराकृताम्बर—आकाशका तिरस्कार करनेवाले (पक्षमें वस्त्रका त्याग करनेवाले) होकर भी मेरे द्वारा सेवित होते हुए अनन्त सुखसे युक्त मोक्षको उत्पन्न करनेवाले हैं ऐसा मानकर आये हुए तथा विनयसे सकुचित शरीरको धारण करनेवाले नभस्थलसे ही सुशोभित हो रहा था। चारों दिशाओंमें स्थित, देव मनुष्य तथा तिर्यंच गतिके शिष्य जनोंके सुखपूर्वक चढ़नेमें कारणभूत मणिमय बीस

कङ्कणायमानेन, सभालक्ष्मीमणिघटितकटिसूत्रसदृशेन, पञ्चरत्नपांसुमयेन, क्वचिज्जाज्वल्यमानपद्मरागप्रभामेदुरतया देवसद्ध्यानाग्निकीलकलापसंवलितेनेव, परत्र विमलतरमुक्ताकान्तिमनोरमतया तन्मुखचन्द्रचन्द्रिकाविभ्रमं वितन्वता, क्वचन पद्मरागेन्द्रनीलरुचिरुचिरतया देवापरागसात्कृतकामक्रोधांशसश्रितेनेव परिशोभमानेन, रजःश्रीविराजितेनापि नीरजश्रीविराजितेन, परागशोभितेनापि अपरागशोभितेन, घनाशामलकान्तिनाप्यघनाशामलकान्तिना धूलिसालेन परीतं, चतुर्दिक्षु शातकुम्भमयस्तम्भाग्रलम्बितमणिमयमकरतोरणरमणीयज्योतिरमरदौवारिकपरिपालितजातरूपमयगोपुराभ्यन्तरमहावीथिमध्यपरिशोभमानेन मूर्तिमुपगतेनेव भर्तुरनन्तचतुष्टयेन, पुरुषार्थचतुष्टय-

---

इन्द्रधनुस्तस्य शङ्काकरेण सदेहोत्पादकेन, मोक्षलक्ष्म्या मुक्तिश्रिया यो मणिमयकङ्कणस्तद्वदाचरता, सभालक्ष्म्या समवसरणश्रिया यत् मणिघटितं रत्नखचितं कटिसूत्रं मेखलासूत्रं तस्य सदृशेन, पञ्चरत्नपांसुमयेन पञ्चविधमणिधूलिनिर्मितेन, क्वचित् क्वापि जाज्वल्यमानानां देदीप्यमानानां पद्मरागाणां लोहितमणीनां प्रभाभिः कान्तिभिर्मेदुरतया मिलिततया देवस्य भगवतो यत् सद्ध्यानाग्निः प्रशस्तध्यानपावकस्तस्य कीलकलापो ज्वालासमूहस्तेन संवलितेनेव व्याप्तेनेव, परत्र अन्यत्र विमलतरमुक्तानामतिनिर्मलमुक्ताफलानां कान्त्या दीप्त्या मनोरमतया मनोज्ञतया तन्मुखमेव भगवद्वदनमेव चन्द्रो विधुस्तस्य चन्द्रिकाया ज्योत्स्नाया विभ्रमं सदेहं वितन्वता विस्तारयता, क्वचन क्वापि पद्मरागेन्द्रनीलयोर्लोहितनीलमण्यो रुच्या कान्त्या रुचिरतया मनोहरतया देवेन भगवता परागसात्कृता धूल्यधीनीकृता ये कामक्रोधांशास्तैः संश्रितेनेव सेवितेनेव परिशोभमानेन विराजमानेन, रजःश्रीविराजितेनापि धूलिश्रीविशोभितेनापि नीरजश्रीविराजितेन न धूलिश्रीविराजितेनेति विरोधः पक्षे कमलश्रीविराजितेन, परागशोभितेनापि धूलिशोभितेनापि अपरागशोभितेन अधूलिशोभितेनेति विरोधः पक्षे अपगतो रागो यस्य सोऽपरागो वीतरागो जिनेन्द्रस्तेन शोभितेन, घना आशा दिशस्तासु अमलकान्तिनापि तथा न भवतीति अघनाशामलकान्तिना इति विरोधः पक्षे अघनाशेन पापनाशेन अमला कान्तिर्यस्य तेन । चतुर्दिक्षु शातकुम्भमयस्तम्भानां सौवर्णस्तम्भानामग्रेषु लम्बिता ये मणिमयमकरतोरणास्तैः रमणीयानि, ज्योतिरमरदौवारिकैर्ज्योतिष्कदेवद्वारपालैः परिपालितानि रक्षितानि यानि जातरूपमयगोपुराणि सुवर्णमयगोपुराणि तेषामभ्यन्तरमहावीथीनां मध्ये परिशोभमानेन, मूर्तिमाकृतिमुपगतेन प्राप्तेन भर्तुं

हजार सीढियोंसे सुशोभित था तथा भुवनत्रयकी लक्ष्मीका मुख देखनेके लिए मणिमय दर्पणके समान आचरण करता था। वह समवसरण जिस धूलिसालसे घिरा हुआ था वह गोलाकार इन्द्रधनुषकी शंका कर रहा था, मोक्षलक्ष्मीके मणिमय कंकणके समान जान पडता था, अथवा सभालक्ष्मीके मणिनिर्मित कटिसूत्रके समान था, पंचरत्नोंकी धूलिसे तन्मय था, कहींपर देदीप्यमान पद्मरागमणियोंकी प्रभासे युक्त होनेके कारण ऐसा प्रतिभासित होता था, मानो भगवान्‌के प्रशस्त ध्यानरूपी अग्निकी ज्वालाओंके समूहसे ही व्याप्त हो रहा हो, कहीं निर्मल मोतियोंकी कान्तिसे मनोहर होनेके कारण भगवान्‌के मुखरूपी चन्द्रमाकी चाँदनीके विभ्रमको विस्तृत कर रहा था, कहींपर पद्मराग और इन्द्रनील मणियोंकी कान्तिसे सुन्दर होनेके कारण ऐसा जान पडता था मानो भगवान्‌के द्वारा धूलिके आधीन किये हुए काम और क्रोधके अंशोंसे ही सेवित हो रहा हो। रजःश्री‌धूलिकी शोभासे शोभित होकर भी निरजश्री—धूलिकी शोभासे शोभित नहीं था (पक्षमें कमलों जैसी शोभासे सुशोभित था) परागशोभित—धूलिसे सुशोभित होकर भी अपरागशोभित—धूलिसे सुशोभित नहीं था (परिहार पक्षमें वीतराग भगवान्‌से सुशोभित था)। घनाशामलकान्ति—सघन दिशाओंमें निर्मल कान्तिका धारक होकर भी अघनाशामलकान्ति—सघन दिशाओंमें निर्मल कान्तिका धारक नहीं था (परिहार पक्षमें पापोंके नाशसे निर्मल कान्तिको

प्रदानाय ससल्लक्ष्म्या समुदस्तभुजदण्डचतुष्टयसभावनासपादकेन जातरूपधरेणाप्यम्वरस्पर्शन-विलोलध्वजविराजितेन मानस्तम्भचतुष्टयेन जुष्टं चकासामास ।

§ ४२) विमलसलिलान्यस्य प्रान्ते सरासि निरेजिरे
जिनदिनमणेर्भासा यत्रत्यकोकपरम्परा ।
निशि न विरहं भेजे भेजे च वारिजमण्डलं
मधुरसपरीवाहैर्मत्तद्विरेफमनोज्ञताम् ॥२३॥

§ ४३) त्रिविधगतिषु भ्रान्त्वा खिन्ना सुराधिकतोषिणी
वहुतरपरीतापि सा पङ्कजातसदोदये ।

प्रभो अनन्तचतुष्टयेनेव अनन्तज्ञानदर्शनसुखवीर्यरूपेणेव, पुरुषार्थाना धर्मार्थकाममोक्षाणा चतुष्टयं तस्य प्रदानाय वितरणाय ससल्लक्ष्म्या समवसरणश्रिया. समुदस्ता समुन्नमिता ये भुजदण्डा वाहुदण्डास्तेषां चतुष्टयस्य सभावनाया. सपादकेन, जातरूपधरेणापि दिगम्वरमुद्राधरेणापि पक्षे सुवर्णधरेणापि अम्वरस्पर्शने वस्त्रस्पर्शने पक्षे गगनस्पर्शने विलोला सतृष्णा पक्षे चपला ये ध्वजास्तैर्विराजितेन शोभितेन मानस्तम्भचतुष्टयेन जुष्टं सहितं चकासामास शुशुभे । श्लेषोत्प्रेक्षाविरोधाभासा । § ४२) विमलेति—अस्य मानस्तम्भचतुष्टयस्य प्रान्ते समीपे विमलसलिलानि निर्मलनीराणि तानि सरासि कासारा विरेजिरे शुशुभिरे यत्रत्यकोकपरम्परा यत्र भवा यत्रत्या सा चासौ कोकपरम्परा च चक्रवाकसततिश्चेति तथाभूता जिनदिनमणेर्जिनेन्द्रदिवाकरस्य भासा कान्त्या निशि रजन्या विरहं चक्रवाकीभि सह वियोगं न भेजे प्राप वारिजमण्डलं च कमलसमूहश्च मधुरसस्य मकरन्दस्य परीवाहैं प्रवाहैं मत्तद्विरेफै मत्तभ्रमरै. मनोज्ञता सुन्दरता भेजे प्राप । रूपकालंकार: । हरिणीछन्द ॥२४॥ § ४३) त्रिविधेति—त्रिविधगतिषु त्रिपथेषु पक्षे नारकतिर्यङ्मनुष्यपर्यायेषु भ्रान्त्वा भ्रमण कृत्वा खिन्ना प्राप्तखेदा सुराधिकतोषिणी सुरया मदिरया अधिक यथा स्यात्तुष्यतीत्येव शीला तथा पक्षे सुरान् देवान् अधिक तोषयतीत्येव शीला, पङ्कजातसदोदयै पङ्काना पापाना जातस्य समूहस्य ये सदा शश्वत् उदया विपाकास्तै वहुतर प्रभूतं परीताप सतापो यस्या सा पक्षे पङ्कजाताना कमलाना सदा सर्वदा उदया विकासास्तै वहुतर प्रचुरं यथा स्यात्तथा

धारण करनेवाला था)। वह समवसरण चारों दिशाओंमे जिन चार मान स्तम्भोंसे सहित था वे सुवर्णमय खम्भोंके अग्रभागमे लटकते हुए मणिमय मकराकर तोरणोंसे रमणीय तथा ज्योतिष्क देवरूपी द्वारपालोंसे सुरक्षित सुवर्णमय गोपुरोंके भीतर महावीथियोंके मध्यमें सुशोभित थे। तथा ऐसे जान पडते थे मानो शरीरको प्राप्त हुए भगवान्के अनन्तचतुष्टय ही हों, अथवा चार पुरुषार्थोंको देनेके लिए समवसरणकी लक्ष्मीके ऊपर उठे हुए चार भुज-दण्ड ही हों। वे मानस्तम्भ जातरूपधर—दिगम्वर वेषको धारण करनेवाले होकर भी अम्वर स्पर्शन विलोल ध्वजविराजित—वस्त्रके स्पर्श करनेमे सतृष्ण ध्वजाओंसे सुशोभित थे (परिहार पक्षमे सुवर्णके धारक होकर भी आकाशका स्पर्श करनेवाली चंचल ध्वजाओंसे सुशोभित थे)। § ४२) विमलेति—उन मानस्तम्भोंके समीप निर्मल जलसे भरे हुए ऐसे सरोवर सुशोभित हो रहे थे जिनमे रहनेवाले चकवोंका समूह जिनेन्द्ररूपी सूर्यकी कान्तिके कारण रात्रिके समय वियोगको प्राप्त नहीं होता था और कमलोंका समूह मधुररसके प्रवाहोंसे मत्त भ्रमरोंके द्वारा सुन्दरताको प्राप्त होता रहता था ॥२५॥ § ४३) त्रिविधेति—जो आकाश मध्य और पातालके भेदसे तीन प्रकारकी गतियोंमे (पक्षमे नरक, तिर्यंच और मनुष्य इन तीन गतियों मे) भ्रमण कर खेदको प्राप्त हुई थी, जो मदिरासे अधिक सन्तोषको प्राप्त करती थी (पक्षमे जो देवोंको अधिक सन्तुष्ट करनेवाली थी) और पंकजात—पापसमूहका सद उदय

परिहृतभवासङ्गा गङ्गा जिनेन्द्रमुपासितु
कलितकुतुका ससत्प्रान्तेऽभवज्जलखातिका ॥२४॥

§ ४४) सुराधिकासक्तिसमात्तपाप संत्यक्तुकामा द्युनदी जिनस्य ।
सभान्तराले जलखातिकाभूदथाप्यपापा न बभूव चित्रम् ॥२५॥

§ ४५) तदभ्यन्तरभूभागे विमलविकचविविधकुसुमनिकरविगलितमधुरसनिरतमधुकरमधुरतररवमुखरितदिगन्तरा, मधुमदोपरक्तकामिनीकपोलकोमलच्छविना वनदेवताचरणालक्तकरसरञ्जितेनेव पल्लवप्रचयेन सछादिता, सुमनःसेविताप्यबोधा, अपरिमितपर्णसचयापि सप्तपर्णोपशोभिता, पुप्पवत्यपि पवित्रा पुष्पवाटी चकासामास ।

परीता व्याप्ता आपो जलानि यस्या सा गङ्गा त्रिपथगा परिहृतस्त्यक्तो भवस्य ससारस्य आसङ्गो यया पक्षे परिहृतो भवस्य शिवस्य आसङ्गो यया तथाभूता जिनेन्द्र वृपभेश्वरम् उपासितु सेवितु कलितकुतुका धृतकुतूहला सती ससत्प्रान्ते समवसरणप्रान्ते जलखातिका पय परिखा अभवत् । श्लेष ॥२६॥ § ४४) सुरेति—सुराया मदिराया या अधिकासक्ति प्रभूतलीनता तया समस्त गृहीत यत्पाप तत् पक्षे सुरेपु देवेपु अधिकासक्त्या समात्त यत्पाप तत् सत्यक्तुकामा मोक्तुमना. द्युनदी वियद्गङ्गा जिनस्य भगवत सभान्तराले सभामध्ये जलखातिका पानीयपरिखा उदभूत् समुदपद्यत अथापि एतावतापि सा अपापा पापरहिता न बभूवेति चित्र पक्षे अपापा जलरहिता न बभूव । श्लेष । उपजातिवृत्तम् ॥२७॥ § ४५) तदभ्यन्तरेति—तस्या खातिकाया अभ्यन्तरभूभागे पुष्पवाटी पुष्पोपवनी चकासामास शुशुभे । अथ तामेव पुष्पवाटी विशेपयति—विमलानि समुज्ज्वलानि विकचानि विकसितानि विविधानि नानाप्रकाराणि यानि कुसुमानि पुष्पाणि तेषा निकरेभ्य समूहेभ्यो विगलितो निष्पतितो यो मधुरस पुष्परसस्तस्मिन् निरता लीना ये मधुकरा भ्रमरास्तेषा मधुरतरा अतिमधुरा ये रवा शब्दास्तैर्मुखरितानि वाचालितानि दिगन्तराणि काष्ठान्तरालानि यस्या तथाभूता, मधुमदेन मद्यमदेन उपरक्ता अरुणिता ये कामिनीना स्त्रीणा कपोला गण्डस्थलानि तेपामिव कोमला मृदुला छविर्यस्य तेन, वनदेवताचरणाना वनदेवीपादानामलक्तकरसेन यावकरङ्गेण रञ्जितेनेव पल्लवप्रचयेन किसलयकलापेन सछादिता व्याप्ता, सुमन सेवितापि विद्वत्सेवितापि अबोधा ज्ञानशून्येति विरोध पक्षे सुमन सेविताापि पुष्पसेविताापि अबोधा ज्ञानरहिता, अपरिमितानां पर्णाना पत्राणा सचय सग्रहो यस्या तथाभूतापि सप्तपर्णै सप्तसख्याकपत्रैरुपशोभितेति विरोध पक्षे सप्तपर्णै विपमच्छदै उपशोभिता 'सप्तपर्णो विशालत्वक् शारदो

रहनेसे बहुत भारी सन्तापसे युक्त थी (पक्षमे कमलोंका सदा विकास रहनेसे जो बहुत भारी जलसे युक्त थी) वह गंगा नदी भव—शिवजी (पक्षमें) संसारकी आसक्तिको छोडकर जिनेन्द्र भगवान्‌की उपासना करनेके लिए कुतूहल वश समवसरणके समीप जलकी परिखा बन गयी थी ॥२६॥ § ४४) सुरेति—सुराधिकासक्ति—मदिराकी अत्यन्त आसक्तिसे (पक्षमे देवोंकी अत्यधिक आसक्तिसे) संचित पापको छोडनेकी इच्छा करती हुई आकाशगगा जिनेन्द्र देवके समवसरणके बीचमे जलकी परिखा बन गयी थी परन्तु वह उतनेपर भी अपापा—पापसे रहित (पक्षमें जलसे रहित) नहीं हुई थी यह आश्चर्यकी बात थी ॥२७॥ § ४५) तदभ्यन्तरेति—उस परिखाके आगेकी भूमिमे ऐसी पुष्पवाटिका सुशोभित हो रही थी जिसमे निर्मल तथा खिले हुए नाना प्रकारके पुष्पसमूहसे पतित मधुरसमे आसक्त भ्रमरोंके अत्यन्त मधुर शब्दोंसे दिशाओंके अन्तराल शब्दायमान हो रहे थे, मदिराके नशासे लाल-लाल दिखनेवाले स्त्रीके गालोंके समान कोमल कान्तिसे युक्त अथवा वनदेवियोंके चरण सम्बन्धी महावरसे रंगे हुएके समान लाल दिखनेवाले पल्लवोंके समूहसे जो आच्छादित थी, विद्वानोंसे सेवित होनेपर भी जो ज्ञानसे रहित थी (पक्षमें देवोसे सेवित होनेपर

§ ४६) सालः स्वर्णमयस्तत परमभूद्रौप्यैश्चतुर्गोपुरै -
प्रत्युप्त शिखरोल्लसन्मणिगणैर्नक्षत्रशङ्काकर ।
सुस्वच्छैश्चतुरम्बुदैरुपगतः सुत्रामचापोत्करो
देव सेवितुमेतमागत इति व्योमाध्वगै शङ्कित ॥२८॥

§ ४७) सत्य सुरेन्द्रचापः सालोऽभूदिति न सशयः कश्चित् ।
घनचापलताख्यात सुमनोधर्मत्वमाप सपदि यतः ॥२९॥

§ ४८) द्वारेषु मङ्गलद्रव्याण्यष्टोत्तरशत वभु ।
भृङ्गारादीनि निधयो नवशङ्खादयस्तथा ॥३०॥

§ ४९) ततः पर दौवारिकयक्षपालिततद्गोपुरप्रान्तविलसितेन मृदुमृदङ्गनिनादगर्जनशोभि-

---

विषमच्छद ' इत्यमर , पुष्पवत्यपि रजस्वलापि पवित्रा शुचिरिति विरोध पक्षे पुष्पवत्यपि कुसुमसहितापि पवित्रा । § ४६) साल इति—ततः पर पुष्पवाटघा अग्रे रौप्यै रजतमयैः चतुर्गोपुरैश्चतु प्रधानद्वारै प्रत्युप्तो युक्त शिखरोल्लसन्मणिगणै श्रृङ्गोल्लसद्रत्नराशिभि नक्षत्रशङ्काकरस्तारिकाविधायक स्वर्णमय कनकमय साल प्राकारः अभूत् । य साल सुस्वच्छैरतिधवलै चतुरम्बुदैश्चतुर्मेघै उपगत सहित सुत्रामचापोत्कर शक्रशरासनसमूह एत देव वृषभजिनेन्द्र सेवितुमुपासितुम् आगत समायात इतीत्थं व्योमाध्वगै तारापथ-पथिकै देवविद्याधरैरित्यर्थ शङ्कित ,सदिग्ध । सशयालकार । शार्दूलविक्रीडितम् ॥२८॥ § ४७) सत्यमिति—सत्य परमार्थतया सुरेन्द्रचाप इन्द्रधनु साल प्राकार अभूत् इति कश्चित् कोऽपि सशय सदेहो नाभूत् । यतो यस्मात्कारणात् स घनेषु मेघेषु चपलता धनुर्वल्ली इति ख्यात प्रसिद्ध पक्षे चपल एव चापल-स्तस्य भावश्चापलता घना चासौ चापलता चेति घनचापलता सातिशयचञ्चलता तया ख्यात प्रसिद्ध सन् सपदि शीघ्र सुमनो धर्मत्व सुमनसा देवाना धर्मत्व कोदण्डत्वम् आप प्राप पक्षे देवस्वभावत्वम् आप । श्लेष । आर्या ॥२९॥ § ४८ द्वारेष्विति—तथा किं च द्वारेषु प्रवेशमार्गेषु भृङ्गारादीनि भृङ्गारप्रभृतीनि अष्टोत्तरशत अष्टोत्तरशतसख्याप्रमितानि मङ्गलद्रव्याणि शङ्खादयश्च नवनिधयो वभु शुशुभिरे । भृङ्गारादीनि मङ्गलद्रव्याणि अष्ट सन्ति, तानि च प्रत्येकम् अष्टोत्तरशतसख्याप्रमितान्यासन् ॥३०॥ § ४९) तत इति—तत पर सुवर्ण-सालादनन्तर दौवारिकयक्षैर्द्वारपालयक्षनामकव्यन्तरदेवै पालिताना रक्षिताना तद्गोपुराणा पूर्वोक्तप्रधान-

---

ज्ञानसे रहित थी) अपरिमित पत्रोंके समूहसे युक्त होकर भी जो सप्तपर्ण—सात पत्रोंसे शोभित थी (पक्षमे सप्तपर्ण नामक वृक्षोंसे सुशोभित थी) और पुष्पवती—रजस्वला होकर भी जो पवित्र थी (पक्षमे फूलोंसे युक्त होकर भी उज्ज्वल थी) । § ४६) स्तल इति—उस पुष्पवाटिकाके आगे सुवर्णमय कोट था। वह कोट चाँदीसे वने हुए चार गोपुरोंसे युक्त था, उस कोटके शिखरोंपर जो मणियोंके समूह चमक रहे थे उनसे वह नक्षत्रोंकी शंका करता था तथा आकाशमें चलनेवाले देव विद्याधर उसके विषयमें ऐसी शंका करते थे कि अत्यन्त स्वच्छ चार मेघोंसे सहित इन्द्रधनुषोंका समूह ही क्या इन वृषभ देवकी सेवा करनेके लिए आया है ? ॥२८॥ § ४७) सत्यमिति—सचमुच इन्द्रधनुष ही वह कोट बन गया था इसमें कुछ भी सशय नहीं है क्योंकि वह घन चापलताख्यात—मेघसम्बन्धी धनुषरूपी लता इस नामसे प्रसिद्ध था (पक्षमे अत्यधिक चचलतासे प्रसिद्ध था) और उसने शीघ्र ही सुमनोधर्मत्व—देवोंके धनुषपनेको प्राप्त कर लिया था (पक्षमें देवस्वभावताको प्राप्त कर लिया था) ॥२९॥ § ४८) द्वारेष्विति—प्रत्येक द्वारोंपर एक सौ आठकी सख्यामें भृगार आदि मगल द्रव्य तथा शंख आदि नौ निधियाँ सुशोभित हो रही थीं ॥३०॥ § ४९) तत इति—उस सुवर्णमय कोटके आगे वह समवसरण सभा चाँदीसे वनी हुई नाट्यशालाओंके

तेन शम्पालतासकाशनिलिम्पनटीसगतेन राजतविराजितनाटयशालायुगलेन [1]वलितविद्युल्लता-कलितस्तनितमुखरितशारदनीरदयुगलेनेव विराजमाना, ततश्च तदानीमुदारतपसा भगवता निरस्तकर्मश्यामिकाशङ्काकरी सौरभ्यलुब्धमधुकरश्रेण्या मञ्जुलमुञ्जितव्यञ्जितभेदा धूपधूमपरम्परा जनयता प्रतिमार्गं परिलसता शातकुम्भकुम्भयुगेन सभाविता, ततः पर कामिनीजनेनेव तरुणाञ्चितेन परिशोभितरूपगतेन पयोधरोज्ज्वलसरस्थितिरमणीयेन सद्यस्तनस्तबकभरभरितेन

द्वाराणा प्रान्तयोरुभयतटयोर्विलसितेन शोभितेन, मृदुमृदङ्गनिनाद एव कोमलमुरजशब्द एव गर्जन स्तनित तेन शोभितेन समलङ्कृतेन, शम्पालतासकाशा विद्युद्वल्लीसदृश्यो या निलिम्पवटयो देवनर्तक्यस्ताभि सगतेन सहितेन, राजतेन रौप्येण विराजित शोभित यन्नाटयशाला युगल नाटयभवनयुग तेन वलिता. स्फुरन्त्यो या विद्युल्लता तडिद्वल्लर्यस्ताभि कलित सहित स्तनितेन गर्जितेन मुखरित शब्दायमान च यत् शारदनीरदयुगलं शरदृतुसबन्धिवारिदयुग तद्वत् तेन विराजमाना शोभमाना, ततश्च नाटयशालानन्तर च तदानी तस्मिन् काले उदारतपसा महातपश्चरणेन भगवता वृषभेण निरस्ता दूरीकृता या कर्मश्यामिका कर्मकालिमा तस्याः शङ्काकरीं सदेहोत्पादिका सौरभ्यलुब्धा सौगन्ध्यलुब्धा या मुग्धमधुकराणा सुन्दरषट्पदाना श्रेणी पङ्क्तिस्तया मञ्जुलगुञ्जितेन मनोहरगुञ्जनशब्देन व्यञ्जितः प्रकटितो भेदो वैशिष्टय यस्यास्ता धूपधूमस्य सुगन्धितचूर्ण-धूमस्य परम्परा संततिस्ता जनयता समुत्पादयता प्रतिमार्गं प्रतिसरणि परिलसता शोभमानेन शातकुम्भकुम्भ-युगलेन सुवर्णकलशयुग्मेन समाविता शोभिता, तत परं धूपघटयुगलानन्तर क्रीडोद्यानचतुष्टयेन केल्युपवन-चतुष्केण जुष्टा सहिता तस्य भगवत सभा विभाति स्म शोभते स्म । अथ तदेव क्रीडोद्यानचतुष्टय विशेषयितु-माह—कामिनीजनेनेव वनितावृन्देनेव, उभयो सादृश्यं यथा—तरुणाञ्चितेन तरुणा वृक्षेण जातित्वादेकवचन अञ्चितेन शोभितेन कामिनीपक्षे तरुणैर्युवभिरञ्चितेन शोभितेन, परिशोभितरूपगतेन—परिशोभिनो ये तरवो वृक्षास्तैरुपगतेन सहितेन कामिनीपक्षे परिशोभित यद् रूप सौन्दर्यं तद् गतेन प्राप्तेन, पयोधरोज्ज्वलसरस्थिति-रमणीयेन पयोधराणि जलधराणि उज्ज्वलानि निर्मलानि यानि सरासि सरोवरास्तेषा स्थित्या सद्भावेन रमणीयं तेन कामिनीपक्षे पयोधरेषु स्तनेषु उज्ज्वला देदीप्यमाना ये सरा हारास्तेषा स्थितया रमणीयेन, सद्यस्तनस्तवकभरविराजितेन सद्योभवा सद्यस्तना ते च ते स्तबकाश्च गुच्छकाश्च तेषा भरेण समूहेन विरा-

---

उस युगलसे सुशोभित हो रही थी जो द्वारपाल रूप यक्ष जातिके देवोंसे सुरक्षित गोपुरोंके समीपमें सुशोभित थे, जो मृदगोंके कोमल शब्दरूप गर्जनासे युक्त थे, जिनमे बिजली रूपी लताओंके समान देव नर्तकियाँ नृत्य कर रही थीं और जो कौंदती हुई बिजलीरूपी लताओंसे युक्त तथा गर्जनासे शब्दायमान शरदृऋतुके मेघ युगलके समान जान पड़ते थे। नाट्य-शालाओंसे आगे चलकर वह सभा प्रत्येक मार्गमे सुशोभित सुवर्णमय धूपघटोंके उस युगलसे सुशोभित हो रही थी जो उस समय उत्कृष्ट तपसे युक्त भगवान्के द्वारा दूर की हुई कर्म कालिमाकी शंकाको करनेवाली सुगन्धित धूपके धूमकी परम्पराको उत्पन्न कर रहे थे उस धूमकी परम्परापर सुगन्धके लोभी सुन्दर भ्रमरोंकी पंक्ति भी मँडरा रही थी, उसकी मनोहर गुंजारसे धूमपरम्परा और भ्रमर पक्तिमें भेद प्रकट हो रहा था। धूप घटोंसे आगे चलकर वह सभा क्रीडाके उन चार उपवनोंसे सुशोभित हो रही थी जो ठीक स्त्री समूहके समान थे, क्योंकि जिस प्रकार स्त्रीसमूह तरुणाचित—तरुण पुरुषोंसे अंचित होता है उसी प्रकार उपवन भी तरुणाचित—वृक्षोंसे अचित सुशोभित थे, जिस प्रकार स्त्रीसमूह परिशोभित-रूपगत—अत्यन्त शोभायमान रूपसे सहित होता है उसी प्रकार उपवन भी परिशोभि-तरूपगत—अत्यन्त शोभायमान वृक्षोंसे सहित थे, जिस प्रकार स्त्रीसमूह पयोधरोज्ज्वल

---

१. चलित क० ।

गगनमध्यजघनक्रीडाशैलविलसितेन कर्णिकारचितोदयेन घनामलकावलिं बिभ्राणेन विभ्रमोज्ज्वलेन च, सरागजनेनेव लताङ्गीकृतप्रणयेन पल्लवाभिख्याञ्चितेन च, वनीविख्यातेनाप्यवनीविख्यातेन, सुरसुन्दरीजनसदोहानन्दकरशालाशोभितेनापि विशालेन, त्रिमेखलापीठाधिष्ठितगगनचुम्बिचैत्यतरुशोभितमध्यभागेन क्रीडोद्यानचतुष्टयेन जुष्टा तस्य सभा विभाति स्म ।

जितेन शोभितेन कामिनीपक्षे सद्यो झटिति स्तना कुचा' स्तवकभरा इव गुच्छसमूहा इव तैर्भरितेन सहितेन, गगनमध्यजघनक्रीडाशैलविलसितेन गगनमध्यजा आकाशमध्योत्पन्ना ये घना मेघास्तद्वत् ये क्रीडाशैला क्रीडाचलास्तैर्विलसितेन शोभितेन कामिनीपक्षे गगनमिव मध्यं गगनमध्य कृशतरकटिप्रदेश जघन नितम्बं क्रोडाशैल इव इति जघनक्रीडाशैल गगनमध्य च जघनक्रीडाशैलश्चेति गगनमध्यजघनक्रीडाशैलौ ताभ्या विलसितेन, कर्णिकारचितोदयेन कर्णिकारै 'कनेर' इति प्रसिद्धवृक्षैश्चितो व्याप्त उदयो यस्य तेन कामिनीपक्षे कर्णिकाभि. कर्णाभरणै रचित उदयो यस्य तेन घनामलकावलिं घना प्रचुरा ये आमलका धातकीवृक्षास्तेषामावलिं पङ्क्ति कामिनीपक्षे घना सान्द्राम् अलकावलिं कुन्तलसमूह बिभ्राणेन दधानेन, विभ्रमोज्ज्वलेन च वीना पक्षिणा भ्रमेण सचारेण उज्ज्वल तेन कामिनीपक्षे विभ्रमा विलासास्तैरुज्ज्वलेन, सरागजनेनेव रागिमनुष्येणेव लताङ्गीकृतप्रणयेन लताभिर्वल्लीभिरङ्गीकृत प्रणयो विस्तारो यस्य तेन सरागजनपक्षे लताङ्गीषु स्त्रीषु कृत प्रणय स्नेहो येन तेन, पल्लवाभिख्याञ्चितेन पल्लवाना किसलयानामभिख्या शोभा तयाञ्चितेन सहितेन सरागजनपक्षे पल्लवो विट इति अभिख्या नाम तेनाञ्चितेन सहितेन च वनीविख्यातेनापि वनी वाटिका इति विख्यातेन प्रसिद्धेनापि अवनीविख्यातेन तद्विरुद्धेनेति विरोध पक्षे अवनीविख्यातेन पृथिवीप्रसिद्धेन, सुरसुन्दरीजनाना देवाङ्गनाना सदोह समूहस्तस्य आनन्दकरा हर्षोत्पादिका या शाला भवनानि ताभि शोभितेनापि विशालेन विगता शाला यस्मिस्तेनेति विरोध पक्षे विशालेन विस्तृतेन त्रिमेखलाभिरुपलक्षिता. पीठास्त्रिमेखलापीठास्तत्राधि-

---

सरस्थितिरमणीय—स्तनोंपर देदीप्यमान निर्मल हारोंकी स्थितिसे सुन्दर होता है उसी प्रकार उपवन भी पयोधरोज्ज्वल सरस्थिति-रमणीय—जलको धारण करनेवाले निर्मल सरोवरोंकी स्थितिसे सुन्दर थे, जिस प्रकार स्त्रीसमूह सद्यस्तनस्तवकभरभरित—शीघ्र ही गुच्छोंके समान स्तनोंके भारसे युक्त होता है उसी प्रकार उपवन भी तत्काल विकसित गुच्छोंके समूहसे युक्त थे, जिस प्रकार स्त्रीसमूह गगनमध्य-जघनक्रीडाशैलविलसित—आकाशके समान कृश कमर और क्रीडाचलके समान स्थूल नितम्बोंसे सुशोभित होता है उसी प्रकार उपवन भी गगनमध्यजघन-क्रीडाशैलविलसित—आकाशके मध्यमे उत्पन्न मेघोंके समान क्रीडाचलोंसे सुशोभित थे, जिस प्रकार स्त्रीसमूह कर्णिकारचितोदय—कानके आभूषणोंसे रचित वैभवसे युक्त होता है उसी प्रकार उपवन भी कर्णिकारचितोदय-कनेरके वृक्षोंसे व्याप्त अभ्युदयसे युक्त थे, जिस प्रकार स्त्रीसमूह घनामलकावलिं बिभ्राणः-सघन केशोंकी पंक्तिको धारण करता है उसी प्रकार उपवन भी सघन आँवलोंकी पङ्क्तिको धारण करते थे, और जिस प्रकार स्त्री समूह विभ्रमोज्ज्वल—हाव-भावोंसे सुशोभित होता है उसी प्रकार उपवन भी विभ्रमोज्ज्वल—पक्षियोंके संचारसे सुशोभित थे। अथवा जो उपवन रागी मनुष्यके समान थे क्योंकि जिस प्रकार रागी मनुष्य लतांगीकृतप्रणय—स्त्रियोंमे प्रेम करनेवाला होता है उसी प्रकार उपवन भी लतागीकृतप्रणय—लताओंके द्वारा स्वीकृत विस्तारसे सहित थे और जिस प्रकार रागी मनुष्य पल्लवाभिख्यांचित—पल्लव-विट इस नामसे सहित होता है उसी प्रकार उपवन भी पल्लवाभिख्यांचित—नये-नये पत्तोंकी शोभासे सहित थे। जो उपवन वनीविख्यात—वनी इस नामसे प्रसिद्ध होकर भी अवनी-विख्यात—वनी इस नामसे प्रसिद्ध नहीं थे (परिहार पक्षमे अवनी-पृथिवीपर प्रसिद्ध थे) तथा देवागनाओंके समूहको हर्ष उत्पन्न करनेवाली शालाओंसे सुशोभित होकर भी विशाल-

§ ५०) रत्नस्तम्भोरुलक्ष्मीस्तदनु मणिगणैर्भूषिता स्वर्णवेदी
बिभ्राणैषा सदामङ्गलमुरुजघनश्रीपरीताभ्रमध्या ।
लोलाक्षीवद्विरेजे प्रकटितसुमनोजातपुष्यद्विलासा
चञ्चत्स्वर्णांशुकान्ता सकलजनदृशां तृप्तिहेतुर्मनोज्ञा ॥३१

§ ५१) गजवृषभवस्त्रचक्राम्बुजमुख्यैरञ्चिता ध्वजश्रेणी ।
वीथ्यन्तरालभूमौ स्वर्णस्तम्भाग्रलम्बिता रेजे ॥३२॥

ष्ठिता. स्थिता गगनचुम्बिन अत्युन्नता ये चैत्यतरव चैत्यवृक्षास्तै शोभितो मध्यभागो यस्य तेन क्रीडोद्यान-चतुष्टयेन । § ५०) रत्नेति—तदनु तदनन्तरम्, एषा वर्ण्यमाना सभा लोलाक्षीवत् ललनावत् विरेजे शुशुभे । अथोभयो. सादृश्यमाह—रत्नस्तम्भोरुलक्ष्मी रत्नस्तम्भैर्मणिमयस्तम्भै उरुर्महती लक्ष्मी शोभा यस्या सा लोलाक्षीपक्षे रत्नस्तम्भा एव ऊरव सक्थीनि तेषा लक्ष्मीर्यस्या सा, मणिगणै रत्नसमूहै भूषिता समलङ्कृता स्वर्णवेदी सदा सर्वदा मङ्गल मङ्गलरूपा बिभ्राणा दधाना लोलाक्षीपक्षे मणिगणभूषितस्वर्णवेदीरूपा सदाम दामसहित गल कण्ठ बिभ्राणा, उरुजा प्रभूतोत्पन्ना या घनश्री मेघशोभा तया परीत व्याप्त अभ्रमध्य गगनमध्यं यस्या सा, लोलाक्षीपक्षे उरुजघनस्य स्थूलनितम्बस्य श्रिया शोभया परीता व्याप्ता, अभ्रमिव गगनमिव मध्यं यस्या सा कृशमध्येत्यर्थ , प्रकटिता प्रादुर्भाविता सुमनोजातानां पुष्पसमूहाना पुष्यद्विलासा प्रकृष्टशोभा यस्या सा लोलाक्षीपक्षे प्रकटिता सुमनोजातस्य सुमदनस्य विलासा विभ्रमा यया सा, चञ्चद् देदीप्यमान यत्स्वर्णं काञ्चन तस्य अंशुभि किरणै कान्ता मनोहरा लोलाक्षीपक्षे चञ्चन् शोभमान स्वर्णांशुकस्य स्वर्णवस्त्रस्यान्तो यस्या सा, सकलजनदृशा निखिलजननयनाना तृप्तिहेतु सतोषकारणम्, मनोज्ञा मनोहारिणी इति विशेषण-द्वयमुभयत्र समानम् । श्लेषोपमा । स्रग्धराछन्द ॥३१॥ § ५१) गजेति—वीथीना प्रधानमार्गाणा अन्तराल-भूमौ मध्यभूमौ स्वर्णस्तम्भाग्रेषु लम्बिता समारोपिता स्वर्णस्तम्भाग्रलम्बिता गजश्च वृषभश्च वस्त्र च चक्र च अम्बुज चेति गजवृषभवस्त्रचक्राम्बुजानि तान्येव मुख्यानि तै अञ्चिता शोभिता ध्वजश्रेणी पताकापङ्क्ति रेजे शुशुभे । समवसरणे ध्वजा दशप्रकारा भवन्ति तथाहि—'स्रग्वस्त्रसहसानाब्जहंसवीनमृगेशिनाम् । वृषभेभेन्द्रचक्राणा

शालाओंसे रहित थे (परिहार पक्षमे विस्तृत थे) और जिन उपवनोंका मध्यभाग तीन कटनियोंसे युक्त पीठोंपर स्थित गगनचुम्बी चैत्य वृक्षोंसे सुशोभित हो रहा था । § ५०) रत्नेति—तदनन्तर—उपवनोंके आगे सदा मगल स्व-स्वरूप स्वर्णवेदीको धारण करती हुई वह सभा स्त्रीके समान सुशोभित हो रही थी क्योंकि जिस प्रकार स्त्री रत्नोंके खम्भोंके समान ऊरुओं—जाँघोंको शोभासे सहित होती है उसी प्रकार वह सभा भी रत्नमय खंभोंकी बहुत भारी शोभासे सहित थी, जिस प्रकार स्त्री सदा मंगलमाला सहित कण्ठको धारण करती है उसी प्रकार वह सभा भी मणिगणोंसे विभूषित सदा मंगलस्वरूप स्वर्णवेदीको धारण कर रही थी, जिस प्रकार स्त्री स्थूल नितम्बोंकी शोभासे सहित तथा आकाशके समान पतली कमरसे युक्त होती है उसी प्रकार सभा भी अत्यधिक मात्रामे उत्पन्न मेघोंकी शोभासे आकाशके मध्यको व्याप्त करनेवाली थी, जिस प्रकार स्त्री सुमनोजात—कामदेवके सुन्दर विलासोंको प्रकटित करती है उसी प्रकार सभा भी सुमनोजात—पुष्प समूहकी अत्यधिक शोभाको प्रकट कर रही थी, जिस प्रकार स्त्री शोभायमान स्वर्णमय वस्त्रके अंचलसे सहित होती है उसी प्रकार सभा भी देदीप्यमान स्वर्णकी किरणोंसे सुन्दर थी, जिस प्रकार स्त्री समस्त मनुष्योंके नेत्रोंकी तृप्तिका कारण तथा मनोहर होती है उसी प्रकार सभा भी समस्त मनुष्योंकी तृप्तिका कारण तथा मनोहर थी ॥३१॥ § ५१) गजेति—वीथियोंकी अन्तराल भूमिमें स्वर्णमय खम्भोके ऊपर अवलम्बित हाथी, बैल, वस्त्र, चक्र तथा कमल आदिके

§ ५२) ततः परमष्टमङ्गलनवनिधिसमेतनाटयशालाधूपघटध्वजाभिरामनागकुमारद्वारपालकविराजितेन, रजतमयगोपुरचतुष्टयसगतेन देवेन करिष्यमाणा धर्मव्याख्या श्रोतुमागत्य वलयाकृतिमुपेतेनेव मानुपोत्तरपर्वतेन, शुभरुचिरसालेनापि कनकाभिख्याञ्चितेन अद्वितीयेनापि द्वितीयेन प्राकारेण परिगता, ततश्च सिद्धार्चासनाथसिद्धार्थवृक्षाङ्कितमध्यभागेन कल्पेश्वरसेवितकल्पद्रुमवनेन विलसमाना, ततश्चतुरगोपुरविराजमानया सादरैः सुरैः समानीय निवेशितमेव कैलासाचलाधित्यकया वज्रमयवेदिकया सुरतरुकुसुमकिसलयनिचयविरचितवन्दनमालासुन्दरैर्दशभी रत्नतोरण प्रकाशमाना, ततः पद्मरागमयैर्मूर्तैरिव जनानुरागैः सुरनिकरनिरन्तरसेव्यमानैस्तादूप्यमुपगता-

---

ध्वजा. स्युर्दशभेदका' । अष्टोत्तरशत ज्ञेया प्रत्येक पालिकेतना । एकैकस्या दिशि प्रोच्चास्तरङ्गास्तोयधेरिव ।' इत्यादिपुराणे जिनसेनोक्तत्वात् । आर्याच्छन्द ॥३२॥ § ५२) तत इति—ततः पर ध्वजभूमिमतिक्रम्याग्रे अष्टमङ्गलनवनिधिभि समेत नाटचशालाधूपघटध्वजाभिराम नागकुमारद्वारपालकविराजितश्च तेन, रजतमयगोपुराणा चतुष्टयेन सगतस्तेन, देवेन वृषभजिनेन्द्रेण करिष्यमाणा विधास्यमाना धर्मव्याख्या श्रोतु निशामयितुम् आगत्य वलयाकृति कङ्कणाकारम् उपगतेन प्राप्तेन मानुपोत्तरपर्वतेनेव, शुभरुच्या प्रशस्तकान्त्या रसालेनापि आम्रेणापि कनकाभिख्याञ्चितेन धत्तूरकवृक्षनामधेयसहितेन, पक्षे शुभरुचिरश्चासौ साल परिधिश्चेति शुभरुचिरसालस्तेन तथाभूतेनापि कनकस्य सुवर्णस्य अभिख्या शोभा तयाञ्चितेन सहितेन, अद्वितीयेनापि प्रथमेनापि द्वितीयेन पक्षे अद्वितीयेनापि निरुपमेणापि द्वितीयेन द्वितीयसख्याकेन प्राकारेण सालेन परिगता परिवृता, ततश्च द्वितीयसालानन्तरं च सिद्धार्चाभि सिद्धप्रतिमाभि सनाथ सहितो य सिद्धार्थवृक्षः सिद्धार्थनामधेयवृक्षस्तेनाङ्कितो मध्यभागो यस्य तेन, कल्पेश्वरेण कल्पवासिदेवेन्द्रेण सेवित यत् कल्पद्रुमवन कल्पतरूद्यान तेन विलसमाना शोभमाना, तत कल्पद्रुमवनादग्रे चतुर्गोपुरै विराजमानया शोभमानया सादरै. सुरै समानीय निवेशितया स्थापितया कैलासाचलस्याधित्यका उपरितनभूमिस्तयेव वज्रमयवेदिकया, सुरतरूणां कल्पानोकहाना कुसुमकिसलयनिचयेन पुष्पपल्लवसमूहेन विरचिता या वन्दनमालास्ताभि सुन्दरै रम्यै दशभि रत्नतोरणै प्रकाशमाना, तत पद्मरागमयैर्लोहितमणिनिर्मितै मूर्तै साकारै जनानुरागैरिव लोकप्रीतिभिरिव,

---

चिह्नोंसे युक्त ध्वजाओंकी पक्ति सुशोभित हो रही थी ॥३२॥ § ५२) **ततः परमिति**—ध्वजाओंकी भूमिसे आगे चलकर वह सभा उस प्रकारसे परिवृत थी जो अष्ट मंगल द्रव्य तथा नव निधियोंसे सहित नाट्यशालाओं, धूपघट और ध्वजाओंसे सुन्दर तथा नागकुमार नामक द्वारपालोसे सुशोभित, चाँदीसे निर्मित चार गोपुरोंसे युक्त था, जो ऐसा जान पडता था मानो भगवान्‌के द्वारा की जानेवाली धर्मकी व्याख्याको सुननेके लिए आकर वलयके आकारको प्राप्त हुआ मानुषोत्तर पर्वत ही हो, जो शुभ कान्तिके द्वारा रसाल—आम्ररूप होकर भी कनक—धतूरा इस नामको प्राप्त हो रहा था (पक्षमे शुभ तथा सुन्दर साल—प्राकार होकर भी कनकाभिख्या—स्वर्णकी शोभासे सहित था,) तथा अद्वितीय—द्वितीयसे भिन्न होकर भी द्वितीय था (पक्षमे अनुपम होकर भी संख्यामे द्वितीय था)। उस द्वितीय प्राकारसे आगे चलकर वह सभा उस कल्पवृक्षोंके वनसे सुशोभित हो रही थी जिसका मध्यभाग सिद्धप्रतिमाओंसे सहित सिद्धार्थ वृक्षोंसे युक्त था, तथा कल्पवासी देवोंके इन्द्रके द्वारा जो सेवित था। उससे आगे चलकर उस वज्रमय वेदिकासे घिरी हुई थी जो चार गोपुरोंसे सुशोभित थी तथा देवोंके द्वारा लाकर रखी हुई कैलास पर्वतकी अधित्यका—उपरितन भूमिके समान जान पडती थी। उस वेदिकामें कल्प वृक्षोंके फूलों और पल्लवोंके समूहसे निर्मित वन्दन-मालाओंसे सुन्दर दश रत्नमय तोरण थे उनसे वह सभा प्रकाशमान हो रही थी। आगे चलकर उन नौ स्तूपोंसे सुशोभित थी जो पद्मरागमणियोंसे निर्मित थे तथा

भिरिव भगवतो नवकेवललब्धिभिर्यद्वा जिनपतिसेवाहेवाकभावेन प्रादुर्भूतैरिव नवपदार्थैर्गगनतलचुम्बिभिरर्चासनाथैर्नवभिः स्तूपैः परिष्कृता समवसृतिधरा विरराज।

§ ५३) आकाशो बहुधातप स्थितियुतस्त्यक्तु निराकारता
देवस्यास्य सभान्तरे स्फटिकसत्प्राकाररूपोऽभवत्।
सत्यं किं तु पुरा सुमेषु विलसत्ससर्गशून्योऽधुना-
प्येव युक्तमिद तु चित्रमधिक सालोऽप्यवन्युज्ज्वलः ॥३३॥

§ ५४) अथवा विजयार्धमहीधरः किल दुर्वर्णधर इत्यपरख्याति परिमाष्टुं उत्तमवर्णसेव्यतां प्राप्तु कृतादरतया, यद्वा महाबलभवप्रभृतिसजातप्रणयेन, यदि वा सुमेरुर्हि पुरा जन्माभिषेकाधिकरण-

---

सुरनिकरेण वृन्दारकवृन्देन निरन्तर शश्वत् सेव्यमाने., ताद्रूप्य नवस्तूपाकारम् उपगताभि प्राप्ताभिः भगवतो जिनेन्द्रस्य नवकेवल लब्धिभिरिव ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्यसम्यक्त्वचारित्राणि नवकेवललब्धय. कथ्यन्ते, यद्वा अथवा जिनपतिसेवाहेवाकभावेन जिनेन्द्रोपासनानम्रभावेन प्रादुर्भूतैः प्रकटितैः नवपदार्थैरिव जीवाजीवास्रवबन्धसवरनिर्जरामोक्षपुण्यपापानि जैनागमे नवपदार्था कथ्यन्ते। गगनतलचुम्बिभिर्नभस्तलचुम्बनशीलैः समुत्तुङ्गैरिति यावत्, अर्चासनाथैः जिनप्रतिमासहितैः नवभिः स्तूपैः परिष्कृता शोभिता समवसृतिधरा समवसरणभूमि विरराज शुशुभे। श्लेषविरोधाभासोत्प्रेक्षाः। § ५३) आकाश इति—आकाशो गगन बहुधा नानाप्रकारस्यातपस्य घर्मस्य स्थित्या युत पक्षे बहुधानानाप्रकाराणि यानि तपासि तपश्चरणानि तेषा स्थित्या युत. सन् निराकारता स्वकीयामाकृतिहीनता त्यक्तुम् अस्य देवस्य भगवतः सभान्तरे सभामध्ये, स्फटिकस्य सितोपलस्य सत्प्राकाररूप प्रशस्तसालाकार अभवत्, इति सत्यम्, किंतु पुरा पूर्वं सुमेषो. कामस्य विलसत्ससर्गेण शोभमानसपर्केण शून्योऽभवत् तथा अधुनापि साम्प्रतं सुमेषु पुष्पेषु विलसत्ससर्गेण शोभमानसपर्केण शून्योऽभवत् एव युक्तमुचित। तु किंतु इदमेतत् अधिक चित्र विस्मयास्पद यत् स सालोऽपि वृक्षोऽपि सन् न वन्या वने उज्ज्वल इति अवन्युज्ज्वलः परिहारपक्षे सालोऽपि प्राकारोऽपि अवन्या पृथिव्यामुज्ज्वलो देदीप्यमानः। 'साल. पादपमात्रे स्यात्प्राकारे सर्जपादपे' इति मेदिनी। श्लेषविरोधाभासोत्प्रेक्षा। शार्दूलविक्रीडितच्छन्द ॥३३॥ § ५४) अथवेति—अथवा उत्प्रेक्षणान्तरमाह—विजयार्धमहीधरो रजताचल 'किल दुर्वर्णधरो दुष्टो वर्णो दुर्वर्णो हीनवर्णस्तस्य धर इति अपरख्यातिम् अपरनामपक्षे रजताचल. परिमाष्टुं दूरीकर्तुम्, उत्तमवर्णेन उच्चवर्णेन सेव्यता ता प्राप्तु कृतादरतया पक्षे उत्तमवर्णः सेव्यो यस्य तस्य भावस्ता

ऐसे जान पडते थे मानो मूर्तिधारी मनुष्योंका अनुराग ही हो, जो देव समूहके द्वारा निरन्तर सेवित थे, अथवा जो ऐसे जान पड़ते थे मानो तद्रूपपनेको प्राप्त हुई भगवान्‌की नौ केवललब्धियाँ ही हों, अथवा जिनेन्द्र भगवान्‌की सेवाके नम्र भावसे प्रकट हुए जीवाजीवादि नौ पदार्थ ही हों, जो गगनतलका चुम्बन कर रहे थे अर्थात् अत्यन्त ऊँचे थे और प्रतिमाओंसे सहित थे। § ५३) आकाश इति—बहुत प्रकारके तपश्चरणकी स्थितिसे सहित (पक्षमे बहुत भारी घामकी स्थितिसे सहित) आकाश निराकारपनेको छोडनेके लिए इन वृषभजिनेन्द्रकी सभाके भीतर स्फटिकका समीचीन प्राकार बन गया था यह सत्य है किन्तु जिस प्रकार वह पहले सुमेषु विलसत्संसर्गशून्य—कामके शोभायमान संसर्गसे शून्य था उसी प्रकार अब भी सुमेषु—पुष्पोंपर विलसत्संसर्गशून्यः—शोभायमान संसर्गसे शून्य था यह सही बात है परन्तु सबसे अधिक आश्चर्य तो इस बात का है कि वह साल—वृक्ष होकर भी अवन्युज्ज्वल—वनमें शोभायमान नहीं था (पक्षमे प्राकार होकर अवनी—पृथिवीमें शोभायमान था)। § ५४) अथवेति—अथवा ऐसा जान पड़ता है कि विजयार्ध पर्वत ही आकाश स्फटिकसे निर्मित प्राकारके रूपमें वहाँ उत्पन्न हो गया था, विजयार्ध

तयाऽधुना तु भगवतः पादस्पर्शनक्षमसिंहासनरूपेण च सेवा विधाय, विहाय च सुरासक्तिं, दोषाकरससर्गमनुदिनं पङ्कजातसहचरतया भ्राम्यतः स्वयं वसुमतोऽपि सद्वृन्दवसुमोषकस्य, भूमौ वर्तमानाना स्वर्णस्थितिं करैरपहरत, तथा चरमाचलयोगं प्राप्तस्यापि पूर्वाशावशेन महोदयभूभृत्सेवा कुर्वतो जडबन्धोः सख्यं च परिहृत्य सकलभूधरश्रेष्ठता कल्याणसपदा जातरूपधरत्वेन भगवतः

प्राप्तुं कृतादरतया, यद्वा महाबलभवप्रभृतिषु सजात समुत्पन्नो यः प्रणय. स्नेहस्तेन नूनमित्युत्प्रेक्षाया आकाशस्फटिकघटितश्चासौ तत्सालश्चेत्याकाशस्फटिकघटिततत्सालस्तस्यात्मना तद्रूपेण समजायत समुदपद्यत । यदि वा अथवा उत्प्रेक्षणान्तरमाह—सुमेरुर्हि मेरु खलु पुरा प्राक् जन्मवेलाया जन्माभिषेकस्य अधिकरणतया आधारत्वेन अधुना तु ज्ञानकल्याणकावसरे भगवतो वृषभस्य पादस्पर्शने चरणस्पर्शने क्षम समर्थं यत्सिंहासन तस्य रूपेण च सेवा विधाय कृत्वा, सुरासक्तिं सुरेषु देवेषु आसक्तिस्तां पक्षे सुराया मदिरायामासक्तिस्ता दोषाकरससर्गं च दोषाकरस्य चन्द्रस्य संसर्गस्तं पक्षे दोषाणामवगुणानामाकर. खनिस्तस्य ससर्गं च विहाय त्यक्त्वा, अनुदिन प्रतिदिवस पङ्कजातसहचरतया कमलमित्रतया पक्षे पापसमूहसहगामितया, भ्राम्यतो भ्रमणं कुर्वत, स्वय वसुमतोऽपि धनवतोऽपि सद्वृन्दवसुमोषकस्य सज्जनसमूहधनापहारकस्य पक्षे स्वय किरणवतोऽपि सद्वृन्दस्य नक्षत्रसमूहस्य वसुमोषक' किरणापहारकस्तस्य, भूमौ पृथिव्या वर्तमानाना भूमिष्ठजनाना स्वर्णस्थितिं काञ्चनसद्भाव करै राजस्वै अपहरत. पक्षे भूमिष्ठपदार्थाना स्वर्णस्थितिं जलस्थितिं करैः किरणैः अपहरत, तथा चरमाचलयोग अन्तिमाविनश्वरोपायं प्राप्तस्यापि 'योग सनहनोपायध्यानसगतियुक्तिषु' इत्यमर पूर्वाशावशेन प्राक्कालिकतृष्णावशेन महोदया महाभ्युदययुक्ता ये भूभृतो राजानस्तेषा सेवा शुश्रूषा कुर्वत पक्षे अस्ताचलसग प्राप्तस्यापि पूर्वाशावशेन पूर्वदिशानिघ्नत्वेन महाश्चासौ उदयभूभृच्चेति महाभ्युदयभूभृत् महोदयाचलस्तस्य सेवा कुर्वतो कुनृपतेः विशेषणासाम्यात् सूर्यस्य, जडबन्धो मूर्खबन्धो पक्षे अजलबन्धो जलशत्रो सख्यं मैत्री च परिहृत्य त्यक्त्वा सकलभूधरश्रेष्ठतां सकलपर्वतश्रेष्ठता सकलनृपतिश्रेष्ठता

पर्वतके उस रूप होनेमें कारण यह था कि वह अभी दुर्वर्णधर इस दूसरे नामसे प्रसिद्ध है अर्थात् हीन वर्णको धारण करनेवाला कहलाता है अतः इस अपमानजनक नामको वह छोड़ना चाहता था और उत्तमवर्णकी सेव्यताको प्राप्त करनेके लिए आदरशील था (पक्षमें दुर्वर्णधरका अर्थ चाँदीका पर्वत और उत्तमका अर्थ उत्कृष्टरूप ग्रहण करना चाहिए) अथवा उस विजयार्ध पर्वतका भगवान्‌के महाबल आदि भवोंमें स्नेह था इसीलिए वह प्राकार बन गया था । अथवा उस विजयार्ध पर्वतने यह विचार किया कि सुमेरु पर्वतने पहले जन्माभिषेकका आधार बनकर और वर्तमानमें उनके चरणोंका स्पर्श करनेमें समर्थ सिंहासन बनकर भगवान्‌की सेवा की है तथा सुरासक्ति—मदिराकी आसक्ति (पक्षमें देवोंकी आसक्ति और दोषाकर—अवगुणोंकी खान स्वरूप दुष्टजनोंकी संगति (पक्षमें निशाकर—चन्द्रमाकी सगति) को छोड़कर उस दुष्टराजाकी (पक्षमें सूर्यकी) मित्रताका परित्याग किया है जो प्रतिदिन पंकजात—पापसमूहका सहगामी होनेसे (पक्षमें कमलोंका मित्र होनेसे) भ्रमण करता रहता है, स्वयं वसुमान्—धनवान् होकर भी सद्वृन्दवसुमोषक—सज्जन समूहके धनको चुरानेवाला है, (पक्षमें स्वयं किरणोंसे सहित होकर भी सद्वृन्दवसुमोषक—नक्षत्रसमूहकी किरणोंका अपहरण करनेवाला है), पृथिवीपर रहनेवाले लोगोंके स्वर्णकी स्थितिका टैक्सोंके द्वारा अपहरण करता रहता है (पक्षमें अपनी किरणोंके द्वारा भूमिपर स्थित वस्तुओंकी जलकी स्थितिका अपहरण करता रहता है), तथा चरमाचलयोग धन प्राप्तिके अन्तिम एवं अविनाशी उपायको प्राप्त होकर भी पूर्वाशा—पहलेकी तृष्णाके वशसे महोदय भूभृत्—बहुत भारी अभ्युदयसे युक्त राजाकी सेवा करता है (पक्षमें चरमाचलयोग—अस्ताचलके संगको प्राप्त होकर भी अर्थात् अस्त होकर भी पूर्वाशा—पूर्वदिशाके वशसे महोदयभूभृत्

§ ५७) समवसरणभूमिं सारसौन्दर्यभूमिं
बलरिपुमुखदेवा वीक्ष्य सद्भक्तिभावाः।
परिगतिमथ कृत्वा तत्सभान्तश्च गत्वा
सपदि नवमुदारं भेजिरे हर्षपूरम् ॥२५॥

§ ५८) तत्र किल विचित्रमणिगणघृणिरुचिरमसृणतलसुरगिरिशिखरसंदृशविजितदिनकररुचिरुचिविसरभरभरितगगनतलविलसितविवृतवदनगजरिपुविवृतविष्टरमधितिष्ठन्तमानन्दमन्थरवृन्दारकसंदोहकरनिकरसमुन्मुक्तया, मुक्तयेव स्वच्छकान्तिमनोरमया, मनोरमयेव वियन्मध्यविराजमानलक्ष्म्या लक्ष्म्येवातिचञ्चलया, चञ्चलयेव कलितघनपुष्टवृष्टया, वृष्टयेव बहुधा मानसस्य

चतुरङ्गुलगगनतले सिंहासनाच्चतुरङ्गुलोपरि गगने देवो भगवान् चकासामास शुशुभे। § ५७) समवसरणेति—अथानन्तर सद्भक्तिभावा समीचीनभक्तिभावसहिता बलरिपुमुखदेवा इन्द्रप्रभृतिसुराः सारसौन्दर्या श्रेष्ठसौन्दर्ययुक्ता भूमिर्यस्यां तां समवसरणभूमिं समवसरणवसुधां वीक्ष्य समवलोक्य परिगतिं प्रदक्षिणां कृत्वा विधाय तत्सभान्तश्च तत्सभामध्यं च गत्वा सपदि शीघ्रं नवं नूतनं उदारं समुत्कृष्टं हर्षपूरं प्रमोदप्रवाहं भेजिरे प्रापुः। समवसरणसभां दृष्ट्वा इन्द्रादयः परमहृष्टा बभूवुरिति भावः। मालिनीछन्दः ॥२५॥ § ५८) तत्रेति—अथाष्टप्रातिहार्योपेतं जिनेन्द्रं वर्णयितुमाह—तत्र किल गन्धकुट्यां विचित्राणां विविधवर्णानां मणिगणानां रत्नसमूहानां घृणिभिः किरणैः रुचिरं मनोहरं मसृणतलं स्निग्धतलं यस्य तथाभूतं, सुरगिरेः सुमेरोः शिखरेण सदृशं, विजितदिनकररुचिना पराभूतप्रभाकरप्रभेण रुचिविसरभरेण कान्तिसमूहभरेण भरितं यद् गगनतलं तस्मिन् विलसितं शोभितं, विवृतवदना उद्घाटितमुखा ये गजरिपवो मृगेन्द्रास्तैर्विधृतं च यद् गरिष्ठविष्टरं श्रेष्ठसिंहासनं तत् अधितिष्ठन्तं तत्र विद्यमानम्। अथ पुष्पवृष्ट्या शोभमानं, कथंभूता पुष्पवृष्टिरिति तामेव विशेषयति—आनन्देन हर्षेण मन्थरा मन्दगतिशीला ये वृन्दारका देवास्तेषां संदोहस्य समूहस्य करनिकरात् हस्तसमूहात् समुन्मुक्ता सपातिता तया, मुक्तयेव मुक्ताफलेनेव स्वच्छकान्त्या निर्मलरुच्या मनोरमया मनोहरया, मनोरमयेव स्त्रियेव वियन्मध्ये गगनमध्ये विराजमाना शोभमाना लक्ष्मीः शोभा यस्यास्तया स्त्रीपक्षे वियदिव मध्यं वियन्मध्यं गगनवत्कृशकट्या विराजमाना लक्ष्मीर्यस्यास्तया, लक्ष्म्येव श्रियेव अतिचञ्चलया अतिचपलया सशीघ्रं पतन्त्येत्यर्थः पक्षेऽतिभङ्गुरया, चञ्चलयेव विद्युतेव कलिता कृता घनपुष्पाणां प्रभूतकुसुमानां वृष्टिर्यस्या

अंगुल अन्तरीक्षमें भगवान् वृषभदेव सुशोभित हो रहे थे। § ५७) समवसरणेति—समीचीन भक्तिभावसे भरे हुए इन्द्रादि देवोंने श्रेष्ठसौन्दर्यपूर्ण भूमिसे युक्त समवसरण भूमिको देखकर प्रथम ही उसकी प्रदक्षिणा की। तदनन्तर सभाके भीतर जाकर शीघ्र ही नूतन तथा बहुत भारी हर्षके समूहको प्राप्त किया ॥२५॥ § ५८) तत्रेति—उस गन्धकुटीमें भगवान् ऐसे उत्कृष्ट सिंहासनपर विराजमान थे जिसका कि तलभाग नाना-प्रकारके मणिसमूहकी किरणोंसे सुन्दर तथा चिकना था, जो सुमेरु पर्वतके शिखरके समान था, जो सूर्यकी किरणोंको जीतनेवाली कान्तिके समूहसे भरे हुए आकाशमें सुशोभित हो रहा था और जो खुले हुए मुखोंसे युक्त सिंहोंके द्वारा धारण किया हुआ था। भगवान् ऐसी पुष्पवृष्टिसे सुशोभित हो रहे थे जो आनन्दसे मन्द-मन्द चलते हुए देव समूहके हाथोंके समूहसे छोड़ी गयी थी, जो मोतीके समान स्वच्छ कान्तिसे मनोहर थी, मनोरमा—स्त्रीके समान आकाशके मध्यभागमें विराजमान लक्ष्मीसे सहित थी (पक्षमें जो आकाशके समान पतली कमरसे सुशोभित थी), जो लक्ष्मीके समान चचल थी—जल्दी-जल्दी पड़ रही थी (पक्षमें क्षणविनश्वर थी), जो बिजलीके समान घनपुष्प—अत्यधिक फूलोंकी वर्षासे सहित थी (पक्षमें जो घनपुष्प—जल-

समुल्लासनप्रवीणया, वीणयेव सपादितालिकुलमधुरस्वश्रिया, मधुरस्वरश्रियेव सुरागोद्भूतिसुन्दर्या, सुन्दर्येव सकलकलया, कलयेव शीतरुचिविलसमानया, परागरुच्युज्ज्वलयाप्यपरागरुच्युज्ज्वलया, सुरागोद्भूततयासुराधिकरुचिकरतया, संततसजातमधुपससर्गतया मधुरुचिरुचिरतया लताङ्गीकृतप्रणयतया सदारामानुरक्ततया च मे बन्धनस्थितिरासीद्भगवतः सेवोन्मुख्यमात्रेण बन्धो मुक्त इति

तथा पक्षे कलिता कृता घनपुष्पस्य जलस्य वृष्टिर्यया तया, वृष्ट्येव वर्षयेव वहुधा अनेकधा मानसस्य हृदयस्य समुल्लाससपादने हर्षोत्पादने प्रवीणया निपुणया पक्षे मानसस्य मानसरोवरस्य समुल्लाससपादने वृद्धिकरणे प्रवीणया निपुणया, वीणयेव परिवादिन्येव सपादिता कृता अलिकुलस्य भ्रमरसमूहस्य मधुरस्वरश्रीर्यया तया पक्षे सपादिता आलिकुलस्य सखीसमूहस्य मधुरस्वरश्रीर्यया तया, मधुरस्वरस्य मनोहरालापस्य श्रीः शोभा तयेव सुरागोद्भूतिसुन्दर्या सुराणा देवानामगा वृक्षा. कल्पवृक्षास्तेभ्य उद्भूति समुत्पत्तिस्तया सुन्दर्या मनोहरया पक्षे सुष्ठु रागा गान्धारादय सुरागास्तेषामुद्भूत्या सुन्दर्या, सुन्दर्येव ललनयेव सकलकलया कलकलेन सहिता सकलकला तया पक्षे सकला समस्ता. कला यस्या सा सकलकला तया, कलयेव शशिषोडशभागेनेव शीतरुचिविलसमानेन शीता शिशिरा या रुचि कान्तिस्तया विलसमानया पक्षे शीता रुचय. किरणा यस्य स शीतरुचिश्चन्द्रस्तस्मिन् विलसमानया शोभमानया, परागस्य पुष्परेणो रुचिः कान्तिस्तया उज्ज्वलयापि तथा न भवतीत्यपरागरुच्युज्ज्वलया परिहारपक्षे अपगतो रागो यस्य तथाभूतोऽपरागो वीतराग, इत्यर्थ तस्मिन् या रुचिरभिलाषस्तेन उज्ज्वलया, सुरागोद्भूततया सुष्ठु रागः सुरागस्तस्मादुद्भूततया समुत्पन्नतया पक्षे सुराणा देवानामगा वृक्षा सुरागा कल्पतरवस्तेभ्य उद्भूततया, सुराधिकरुचिकरतया सुराया मदिराया याधिका प्रभूता रुचिरिच्छा तस्या करतया कर्तृत्वेन पक्षे सुराणा देवानामधिकरुच्या प्रभूतेच्छाया करतया, सततसजातमधुपससर्गतया सततं शश्वत् सजात समुत्पन्नो मधुपाना मद्यपायिना ससर्गो यस्यास्तस्या भावस्तया, पक्षे सतत सजातो मधुपाना भ्रमराणा ससर्गो यस्यास्तस्या भावस्तया, मधुरुचिरुचिरतया मधुनो मद्यस्य रुचिरभिलापस्तया रुचिरतया सुन्दरतया पक्षे मधुनो मकरन्दस्य रुचि कान्तिस्तया रुचिरतया सुन्दरतया, लताङ्गीषु स्त्रीषु कृतप्रणयतया कृतस्नेहतया पक्षे लतासु व्रततिषु अङ्गीकृत प्रणयो विस्तारो यस्यास्तस्याभावस्तया, सदारामानुरक्तया च सदा सर्वदा रामासु स्त्रीषु अनुरक्ततया च

की वृष्टिसे सहित थी), जो वृष्टिके समान अनेक प्रकारसे मानस—हृदयके उल्लासको उत्पन्न करनेमे समर्थ थी (पक्षमें जो मानस—मानसरोवरकी वृद्धिको करनेमें निपुण थी), जो वीणाके समान अलिकुल—भ्रमर समूहके मधुर स्वरसे सहित थी (पक्षमें जो आलिकुल—सखीसमूहके मधुर स्वरसे संगत थी) जो मधुर स्वरकी लक्ष्मीके समान सुरागोद्भूतिसुन्दरी—कल्पवृक्षसे होनेवाली उत्पत्तिसे सुन्दर थी (पक्षमें—उत्तम रागरागिनियोंकी उत्पत्तिसे सुन्दर थी), जो सुन्दरी—स्त्रीके समान सकलकला—कलकल शब्दसे सहित थी (पक्षमे सकल कलाओंसे सहित थी), जो कलाके समान शीतरुचि विलसमान—शीतल कान्तिसे सुन्दर थी (पक्षमे चन्द्रमामें सुशोभित थी), जो परागरुचि—पुष्पधूलिकी कान्तिसे उज्ज्वल होकर भी पराग—पुष्पधूलिकी कान्तिसे उज्ज्वल नहीं थी (परिहार पक्षमे अपरागरुचि—वीतराग विषयकरुचि—इच्छासे उज्ज्वल थी), उस समय पुष्पवृष्टि बन्धनमुक्त होकर 'मैं पहले पड़ूँ मैं पहले पड़ूँ' इस अभिप्रायसे पहल करती हुई पड़ रही थी जिससे ऐसी जान पडती थी मानो उसने ऐसा विचार किया हो कि सुरागोद्भूतता—उत्तमरागसे उत्पन्न होनेके कारण (पक्षमे कल्पवृक्षसे उत्पन्न होनेके कारण), सुराधिकरुचिकरता—मदिराकी अधिक इच्छा करनेसे (पक्षमें देवोंकी अधिक रुचि करनेसे), निरन्तर होनेवाली मधुपों—मद्य पीनेवालोंकी संगतिसे (पक्षमें निरन्तर होनेवाली भ्रमरोंकी संगतिसे) मधुरुचि—मदिराविषयक इच्छासे सुन्दर होनेसे (पक्षमें मकरन्दकी कान्तिसे

कुतुकेनाहमहमिकया स्वयमनुपतन्त्येव पुष्पवृष्ट्या शोभमान, देवस्य चित्तान्निष्कासितेन रागेणेवोपगूढस्य मरकतहरितदलविलसितमदकलमधुरविरुतमधुकरनिचयमुखरितमणिमयकुसुमविततकिसलयकुलविलसितस्य रक्ताशोकतरोमूलमुपाश्रितं, भुवनत्रयाधिपत्यं प्रकटीकुर्वाणेन, हासेनेव त्रिजगल्लक्ष्म्या, यशोमण्डलेनेव भगवतः, स्मितोल्लासेनेव धर्मनृपस्य, सेवार्थमुपागतेनेव चन्द्रविम्बेनाथ किल विमुक्ताम्बरस्त्यक्तचञ्चलानन्दः सदामरालीसंतोषकरो विचित्रवलाहको धीरसस्यवृद्धि करोतीति कुतूहलेन सद्रष्टुमुपागत्य विस्मयवशात्तत्रैव निश्चलतामुपगतेनेव शारदनीरदत्रयेण, चन्द्रे

प्रतितया च पक्षे सन् चासावारामश्चेति सदाराम समोचीनोपवनं तस्मिन् अनुरक्ततया च मे पुष्पस्य वन्धनस्थिति कर्मवन्धस्थिति पक्षे मालारूपेण वन्धस्थिति आसीत् भगवतो वृषभजिनेन्द्रस्य सेवोन्मुख्यमात्रेण सेवायामुन्मुख्यं सेवोन्मुख्यं सेवोन्मुख्यमेव सेवोन्मुख्यमात्र तेन सेवातत्परत्वेनैव बन्धो मुक्त कर्मबन्ध अस्त्व पक्षे मालावन्धो मुक्त इतीत्य कुतुकेन कुतूहलेन अहमहमिकया अह पूर्वमहपूर्वमिति भावेन स्वयं स्वत अनुपतन्त्येव अनुगच्छन्त्येव पुष्पवृष्ट्या सुमनोवर्षया शोभमान, देवस्य भगवत चित्तात् निष्कासितेन दूरीकृतेन रागेणेवोपगूढस्य रागेण प्रेम्णा पक्षे लोहितवर्णेन उपगूढस्येव समालिङ्गितस्येव मरकतहरितदलै मरकतमणिमयहरितपत्रैर्विलसित. शोभित., मदकल मधुर च विरुत विरावो येषां तथाभूता ये मधुकरा भ्रमरास्तेषां निचयेन मुखरितो वाचालितः, मणिमयै कुसुमै. पुष्पैर्विततो व्याप्तः, किसलयकुलेन पल्लवप्रचयेन विलसितश्च शोभितश्चेति तथाभूतस्य रक्ताशोकतरो. लोहितकङ्केलिवृक्षस्य मूलं उपाश्रित प्राप्तम् अशोकतरोरधस्तात् सिंहासनासीनमित्यर्थ धवलातपत्रत्रितयेन शुक्लच्छत्रत्रयेण विशोभमानं विराजमानम्, कथंभूतेन धवलातपत्रत्रितयेनेत्याह—भुवनत्रयाधिपत्य लोकत्रयाधीश्वरत्वं प्रकटीकुर्वाणेन प्रकटयता, त्रिजगल्लक्ष्म्या. त्रिभुवनश्रिया हासेनेव हसितेनेव, भगवतो जिनेन्द्रस्य यशोमण्डलेनेव कीर्तिपुञ्जेनेव, धर्मनृपस्य धर्माधिराजस्य स्मितोल्लासेनेव मन्दहास्यविलासेनेव, सेवार्थं शुश्रूषार्थम् उपागतेन प्राप्तेन चन्द्रबिम्बेनेव चन्द्रमण्डलेनेव, अथ किल एष खलु भगवद्रूपो नीरद विमुक्ताम्बर त्यक्ताकाश. पक्षे त्यक्तवस्त्र' त्यक्तचञ्चलानन्दो मुक्तविद्युद्विस्फुरण पक्षे मुक्तभङ्गुरसुख , सदा सर्वदा मरालीनां हंसीनां संतोषकर' पक्षे सदा सर्वदा अमरालीनां देवपङ्क्तीनां संतोषकर इत्थ विचित्रवलाहको वर्तमानवलाहकविलक्षणः धीरसस्य वृद्धि धीरा एव सस्यानि व्रीहयस्तेषां

मनोहर होनेसे), लतांगी—स्त्रियोंमें प्रेम करनेसे (पक्षमें लताओंमें विस्तारके स्वीकृत करनेसे), और सदारामानुरक्तता—निरन्तर स्त्रीविषयक रागके कारण (पक्षमें उत्तम उद्यानोंमें अनुराग होनेसे) मैं वन्धनमें पड़ी थी अब भगवान्‌की सेवाके लिए सन्मुख होने मात्रसे मेरा वन्धन छूट गया है—मैं बन्धन मुक्त हो गयी हूँ इस कुतूहलसे ही वह पुष्प वृष्टि स्वय पहल करती हुई पड़ रही थी। वे भगवान् उस लाल अशोक वृक्षके मूलमें विद्यमान थे। जो उनके हृदयसे निकाले गये रागसे ही मानो आलिंगित था, मरकतमणियोंके हरे हरे पत्तोंसे सुशोभित था, मदसे अव्यक्त मधुर शब्द करनेवाले भ्रमर समूहकी झंकारसे झंकृत था, मणिमय फूलोंसे व्याप्त था तथा पल्लवोंके समूहसे सुशोभित था। जिनेन्द्र भगवान् शुक्लवर्णके उस छत्रत्रयसे सुशोभित हो रहे थे जो अपनी तीन संख्यासे ऐसा जान पड़ता था मानो उनके तीन लोकके आधिपत्यको प्रकट कर रहा था, जो तीनों जगत्‌की लक्ष्मीके हासके समान जान पड़ता था, भगवान्‌के कीर्तिपुंजके समान शोभा देता था, धर्मरूपी राजकी मुसकानके समान सुशोभित था, अथवा सेवाके लिए समीपमें आया हुआ चन्द्रमाका मण्डल ही था। अथवा वह छत्रत्रय ऐसा जान पड़ता था मानो भगवान् एक विचित्र मेघ हैं इसलिए कुतूहल वश उन्हें देखनेके लिए शरदृतुके तीन बादल ही आये हों जो कि विस्मयके कारण वहीं स्थिर हो गये थे। भगवान्‌के विचित्र मेघ होनेका कारण यह था कि

कलङ्कोत्पादनेन, सूर्ये संतापजननेन च संजातापकीर्ति परिमार्ष्टुं तदुभयमेकीकृत्य वेधसा निर्मितेनेव विम्बत्रयेण रत्नकान्तिमनोहरेण धवलातपत्रत्रितयेन विशोभमानं, गाम्भीर्यविजितेन पयःपारावारेण द्विपदरहिततयाधिकतरजरसाश्लिष्टतयातिवृद्धतया च सेवार्थं स्वयमागन्तुमक्षमतया प्रहितैरिव वीचिनिकरैर्यद्वा यशोविजिततया सेवार्थमागतैरिव सुधापूरैरथवा निखिलसुरसेव्यपादोऽयं हिमालय इति मत्वानुपतद्भिरिव गङ्गातरङ्गैः सुरनिकरवदनपयोजपरिष्कृते भगवतो विमलतरदिव्यदेहकान्तिपूरे सरोवरशङ्कया संपतद्भिरिव हंसैः, ईश्वरादुत्पतद्भिरिव यशोविसरैर्यक्षकरसरोजवीज्यमानचामरैः

वृद्धि पक्षे धी वृद्धिः रस इव जलमिव धीरस तस्य वृद्धि करोतीति कुतूहलेन तद्द्रष्टुं समवलोकितुमुपागत्य समीपमागत्य विस्मयवशात् आश्चर्यवशात् तत्रैव निश्चलतां स्थिरताम् उपगतेन प्राप्तेन शारदनीरदत्रयेणेव शारदवारिदत्रितयेणेव, चन्द्रे कलङ्कस्योत्पादनेन, सूर्ये दिवाकरे संतापसंजननेन च संतापोत्पादकत्वेन च संजातापकीर्ति समुत्पन्नदुर्यशः परिमार्ष्टुं प्रोक्षितु तदुभयं सूर्याचन्द्रमसौ एकीकृत्य वेधसा विधात्रा निर्मितेन रचितेन बिम्बत्रयेणेव, रत्नकान्तिमनोहरेण मणिमरीचिमनोज्ञेन धवलातपत्रत्रितयेन विशोभमानं, यक्षकरसरोजवीज्यमानचामरै यक्षाणां व्यन्तरदेवविशेषाणां करसरोजैः करकमलै वीज्यमाना प्रकीर्यमाणा ये चामरास्तै उपशोभमान विराजमानम्, अथ कथंभूतै. चामरैरिति तानेव विशेषयितुमाह—गाम्भीर्येण धैर्येण विजितेन पराभूतेन, पय पारावारेण क्षीरनीरधिना द्विपदरहिततया चरणद्वयरहिततया पक्षे त्रसजीवरहिततया, अधिकतरजरसा अतिशयवार्धक्येन आश्लिष्टतया समालिङ्गिततया पक्षे अधिकतरजेन बहूलोत्पन्नेन रसेन जलेन आश्लिष्टतया, अतिवृद्धतया च अतिस्थविरतया च पक्षेऽतिविस्तृततया च सेवार्थं शुश्रूषार्थं स्वय स्वतः आगन्तुं समायातुम् अक्षमतया असमर्थतया प्रहितै प्रेषितै. वीचिनिकरैरिव तरङ्गसमूहैरिव, यद्वा यशोविजिततया कीर्तिविजिततया सेवार्थम् आगतै सुधापूरैरिव पीयूषप्रवाहैरिव, अथवा निखिलसुरै सर्वदेवै सेव्या सेवनीया पादा प्रत्यन्तपर्वता यस्य तथाभूत. अय हिमालयो हिमवान् पर्वत इति मत्वा पक्षे निखिलसुरै समग्रदेवै. सेव्यौ समाराधनीयौ पादौ चरणौ यस्य तथाभूत. अयं जिनेन्द्रो हि निश्चयेन मालय माया लक्ष्म्या आलय स्थानम् इति मत्वा अनुपतद्भिरनुगच्छद्भि. गङ्गातरङ्गैरिव भागीरथीभङ्गैरिव, सुरनिकरस्य देवसमूहस्य वदनपयोजै मुखकमलै. परिष्कृते सहिते भगवतो जिनेन्द्रस्य विमलतरा चासौ दिव्यदेहकान्तिश्चेति विमलतरदिव्यदेहकान्तिस्तस्या पूरे प्रवाहे सरोवरशङ्कया कासारसंदेहेन संपतद्भि समागच्छद्भि. हंसैर्मरालैरिव,

---

वह विमुक्ताम्बर—आकाशको छोड़नेवाला था जब कि अन्य मेघ अविमुक्ताम्बर—आकाशको छोड़नेवाला नहीं था (पक्षमें विमुक्ताम्बर—वस्त्र रहित था), वह त्यक्तचंचलानन्द—बिजलीके आनन्दको छोड़नेवाला था जब कि अन्य मेघ अत्यक्तचंचलानन्द—बिजलीके आनन्दको छोड़नेवाला नहीं था (पक्षमें क्षणभंगुर आनन्दको छोड़नेवाला था), वह सदामरालीसंतोषकर—हमेशा हंसियोंको सन्तोष उत्पन्न करनेवाला था जब कि अन्य मेघ हंसियोंको सन्तोष उत्पन्न करनेवाला नहीं होता था (पक्षमें सदा अमराली—देवोंके समूहको सन्तोष उत्पन्न करनेवाला था) वह विचित्र मेघ अन्य मेघोंके समान ही धीरसस्य—धीर मनुष्यरूपी धान्यकी वृद्धिको करता था (पक्षमें बुद्धिरूप जलकी वृद्धिको करता था)। वह भगवान यक्षोंके करकमलोंसे ढोरे जानेवाले उन चामरोंसे सुशोभित हो रहे थे जो ऐसे जान पड़ते थे मानो गम्भीरताके द्वारा पराजित हुए क्षीरसमुद्रके द्वारा द्विपदरहितता—दो पाँवोंसे रहित होनेके कारण (पक्षमें त्रस जीवोंसे रहित होनेके कारण), अधिकतरजरसाश्लिष्टता—अत्यधिक बुढ़ापासे युक्त होनेके कारण (पक्षमें अत्यधिक जलसे सहित होनेके कारण) तथा अतिवृद्ध—अत्यन्त वृद्ध (पक्षमें अत्यन्त विस्तृत) होनेसे स्वयं आनेमें असमर्थ होनेके कारण भेजे हुए तरंगोंके समूह ही हों, अथवा यशके द्वारा पराजित होनेसे

रुपशोभमान, जिनचन्द्रोदयवर्धमानपयोधिध्वनिमनुकुर्वता सुरदुन्दुभिनिध्वानेन प्रकटितमहिमान, भव्यजनसप्तभवावलोकनमणिमुकुरायमाणेनान्तरारातिचक्रनिराकरणनिपुणचक्रायुधायमानेन ज्ञानश्रीमणिदर्पणायमानेन यद्वा धवलातपत्ररूपेण भगवतः सेवा विधाय कृतकृत्यतामापन्न चन्द्रमवलोक्य स्वयमपि सेवार्थमागतेनेव प्रभाकरेण भामण्डलेन वाभास्यमानदिव्यदेह, मृदुमधुरगम्भीरसर्वभाषामयदिव्यध्वनिदिनकरेण भव्यजनमनोदुर्गध्वान्त विध्वसयन्त मूर्तेनेव ज्ञानदर्शनचरित्रत्रितयेनान्येन वदनत्रयेण परिशोभमान त देवदेवमवलोक्य विस्मयविस्तृताक्षाः सहस्राक्षप्रमुखसुराध्यक्षा भक्त्या प्रणम्यार्चयित्वा चैव स्तोतुमारभन्त ।

ईश्वराद् भगवत उत्पतद्भिरुद्गच्छद्भि, यशोविसरैरिव कीर्तिसमूहैरिव, यक्षकरसरोजवीज्यमान चामररुपशोभमान, जिन एव चन्द्रो जिनचन्द्रस्तस्य उदय एवाभ्युदय एव उदय उद्गमस्तेन वर्धमानो य पयोधि सागरस्तस्य ध्वनि शब्द अनुकुर्वता विडम्बयता सुरदुन्दुभिनिध्वानेन देवदुन्दुभिनिनादेन प्रकटितो महिमा यस्य तम्, भामण्डलेन द्युतिवलयेन भामण्डलाभिधानप्रातिहार्येणेत्यर्थ. बाभास्यमान शोशुभ्यमानो दिव्यदेहो यस्य त, अथ कथभूतेन भामण्डलेनेत्याह—भव्यजनाना-भव्यजीवाना सप्तभवाना सप्तपर्यायाणामवलोकन दर्शन तस्मै मणिमुकुरायमाणेन रत्नादर्शवदाचरता, आन्तरारातीनामभ्यन्तरशत्रूणा चक्र समूहस्तस्य निराकरणे तिरस्करणे निपुण दक्ष यत् चक्रायुध चक्राभिधानशस्त्र तद्वदाचरता, ज्ञानश्रिया ज्ञानलक्ष्म्या मणिदर्पणायमानेन रत्नमुकुरन्दायमानेन यद्वा धवलातपत्ररूपेण धवलच्छत्राकारेण भगवत सेवा विधाय कृत्वा कृतकृत्यता कृतार्थताम् आपन्न प्राप्त चन्द्र शशिनम् अवलोक्य स्वयमपि स्वतोऽपि सेवार्थं शुश्रूषार्थं आगतेन प्रभाकरेणेव सूर्येणेव भामण्डलेन बाभास्यमानदिव्यदेह, मृदु मधुरो गंभीर सर्वभाषामयश्च यो दिव्यध्वनि स एव दिनकर सूर्यस्तेन भव्यजनमनोदुर्गाणा भव्यजनहृदयकान्ताराणा ध्वान्त अज्ञानतिमिर विध्वसयन्त नाशयन्त, मूर्तेन साकारेण ज्ञानदर्शनचारित्रत्रितयेनेव सम्यग्दर्शनादिरत्नत्रयेणेव, अन्येन निजमुखातिरिक्तेन वदनत्रयेण मुखत्रयेण परिशोभमान त देवदेव वृषभजिनेन्द्रम् अवलोक्य दृष्ट्वा विस्मयेन विस्तृतानि अक्षीणि येषा तथाभूता

सेवाके लिए आये हुए अमृतके पूर ही हों, अथवा यह भगवान् समस्त देवोंके द्वारा सेव्यमान पादों—चरणों (पक्षमें प्रत्यन्त पर्वतों) से युक्त होनेके कारण हिमालय—हिमवान् पर्वत हैं (पक्षमें निश्चयसे लक्ष्मीके घर हैं) ऐसा मानकर उनके पास आनेवाली गंगाकी लहरें ही हों, अथवा देव समूहके मुखरूपी कमलोंसे सुशोभित भगवान्के दिव्य शरीरकी कान्तिके पूरमें सरोवरकी शंका होनेसे आते हुए मानो हंस ही हों, अथवा भगवान्से ऊपरकी ओर उठते हुए उनके यशके समूह ही हों। जिनेन्द्ररूपी चन्द्रमाके उदयसे बढ़ते हुए समुद्रकी ध्वनिका अनुकरण करनेवाले देवदुन्दुभियोंके शब्दसे उन भगवान्की महिमा प्रकट हो रही थी। उस भामण्डलके द्वारा उनका दिव्य शरीर सुशोभित हो रहा था जो भव्य जीवोंके सात भव देखनेके लिए मणिमय दर्पणके समान आचरण करता था, जो अन्तरंग शत्रुओंके समूहका निराकरण करनेवाले चक्रायुधके समान जान पड़ता था, जो ज्ञानरूपी लक्ष्मीके मणिमय दर्पणके समान मालूम होता था अथवा धवलछत्रत्रयके रूपमें भगवान्की सेवा कर कृतकृत्यताको प्राप्त हुए चन्द्रमाको देखकर स्वयं सेवाके लिए आया हुआ मानो सूर्य ही हो। वे भगवान् कोमल, मधुर, गम्भीर, और सर्वभाषा रूप परिणत होनेवाली दिव्यध्वनिरूपी सूर्यके द्वारा भव्य जीवोंके मनरूपी अटवीके अन्धकारको नष्ट कर रहे थे, तथा वे मूर्तिधारी ज्ञान, दर्शन और चारित्रके त्रिकके समान अपने तीन अन्य मुखोंसे सुशोभित हो रहे थे अर्थात् वे चतुर्मुख दिखाई देते थे। देवाधिदेव उन वृषभ जिनेन्द्रके दर्शन कर जिनके नेत्र आश्चर्यसे

§ ५९) गुणश्रेणी देव ! त्रिभुवनपते ! ते गणधर-
प्रसिध्यद्वाणीनामपि न विषयास्मत्स्तुतिगिराम् ।
कथं भूमिः सा स्यादिह जलधिमौर्वानलमुखै-
रपेयं पातुं किं मशकशिशुकाली प्रभवति ॥३६॥

§ ६०) क्व तावकगुणाम्बुधिः क्व मितशेमुषीका वयं
क्व नो वचनवैखरी क्व खलु ते यशोमाधुरी ।
इति स्तुतिपथाज्जिनाधिप ! निवृत्तिभाजः पुनः
प्रवर्तयति देव ! नस्तव पदाब्जभक्तिर्ध्रुवा ॥३७॥

§ ६१) अनुगृह्णान सुमनोजातं त्वं देवदेव भुवनपते ! ।
सुमनोजातं सहसा नाशयति स्मेति जिनप ! चित्रमिदम् ॥३८॥

सहस्राक्षप्रमुखसुराध्यक्षाः सौधर्मेन्द्रादिदेवेन्द्राः भक्त्या प्रणम्य अर्चयित्वा पूजयित्वा च एवं वक्ष्यमाणतया स्तोतुम् आरभन्त तत्परा अभूवन् । श्लेषरूपकोत्प्रेक्षा शृङ्खलायमकश्च । § ५९) गुणेति—हे देव ! हे त्रिभुवनपते ! हे त्रिलोकीनाथ ! ते तव गुणश्रेणी गुणपङ्क्तिः गणधराणां चतुर्ज्ञानधारिणां याः प्रसिद्ध्यन्त्यो वाण्यो भारत्यस्तासामपि न विषया न गोचरा अस्मत्स्तुतिगिराम् मत्स्तवनवाचां भूमिः पात्रं सा कथं स्यात् ? तदेवोदाह्रियते—इहास्मिन् लोके और्वानलमुखैर्वडवानलवदनैः अपेयं न पातुं योग्यं जलधिं सागरं पातुं किं मशकशिशुकानां दंशशावकानामाली पङ्क्तिः किं प्रभवति ? अपि तु न प्रभवति । शिखरिणी छन्दः ॥३६॥ § ६०) क्वेति—हे जिनाधिप ! हे जिनेन्द्र ! तावकगुणाम्बुधिः त्वदीयगुणसागरः क्व कुत्र, मिता परिमिता शेमुषी बुद्धिर्येषां तथाभूता वयं क्व कुत्र, द्वौ क्वशब्दौ महदन्तरं सूचयतः । नोऽस्माकं वचनवैखरी वाग्विन्यासः क्व, ते तव यशोमाधुरी कीर्तिमाधुरी क्व कुत्र खलु इतीत्थं पुनः स्तुतिपथात् स्तुतिमार्गात् निवृत्तिभाजो दूरीभूतान् नोऽस्मान् हे देव ! तव ध्रुवा स्थिरा पदाब्जभक्तिः चरणकमलभक्तिः प्रवर्तयति प्रेरयति । पृथ्वीछन्दः ॥३७॥ § ६१) अनुगृह्णान इति—हे देवदेव ! हे देवाधिदेव ! हे भुवनपते हे जगन्नाथ ! हे जिनप हे जिनेन्द्र ! सुमनोजातं देवसमूहं विद्वत्समूहं वा अनुगृह्णान उपकुर्वन् त्वं सुमनोजातं देवसमूहं विद्वत्समूहं वा सहसा नाशयसि स्मेति इदं चित्रमाश्चर्यं पक्षे सुमनोजातं कामं सहसा झगिति नाशयसि स्म । श्लेषः । आर्या

विस्तृत हो रहे थे ऐसे सौधर्मेन्द्र आदि इन्द्र भक्तिपूर्वक प्रणाम कर तथा पूजा कर इस प्रकार स्तुति करनेके लिए तत्पर हुए । § ५९) गुणश्रेणीति—हे देव ! हे त्रिजगन्नाथ ! आपके गुणोंकी पंक्ति गणधरोंकी प्रसिद्ध वाणीका भी विषय नहीं है फिर हमारी स्तुति विषयक वाणीका विषय कैसे हो सकती है ? जो समुद्र बडवानलके मुखोंसे अपेय है उसे क्या मच्छरोंके बच्चोंकी पंक्ति पीनेके लिए समर्थ हो सकती है अर्थात् नहीं हो सकती ॥३६॥ § ६०) क्वेति—हे जिनेन्द्र ! हे देव ! आपके गुणोंका सागर कहाँ ? और सीमित बुद्धिके धारक हम लोग कहाँ ? आपके यशकी मधुरता कहाँ और हमारे वचनोंका विन्यास कहाँ ? इस तरह हम स्तुतिके मार्गसे दूर हैं हम लोगोंको तो मात्र आपके चरण-कमलोंकी स्थायी भक्ति ही स्तुति करनेके लिए प्रवृत्त कर रही है ॥३७॥ § ६१) अनुगृह्णान इति—हे देवाधिदेव ! हे भुवनपते ! हे जिनेन्द्र ! आप सुमनोजात—विद्वानों अथवा देवोंके समूहपर अनुग्रह करनेवाले हैं फिर उसी सुमनोजातको आपने सहसा नष्ट कर दिया यह आश्चर्यकी बात है (पक्षमें

§ ६२) देव तव वैभव यो जानाति पुमान् जिनेन्द्र ! भुवनपते ! ।
भजति त्यजति च वैभवमेष इति श्रीपते ! चित्रम् ॥३९॥

§ ६३) अमलसद्गुणवारिधिरप्यहो जिनप ! नामलसद्गुणवारिधिः ।
निखिललोकनुतोऽप्यभवः कथ त्रिदशलोकनुतो जगता पते ! ॥४०॥

§ ६४) अवदातमूर्तिमहितोऽप्यधिकारुण्य वहस्यहो चित्रम् ।
व्याकीर्णकल्पकुसुमो न व्याकीर्णाद्विकल्पकुसुमोऽपि ॥४१॥

§ ६५) इत्याद्यनेकस्तोत्रपवित्रीकृतमुखारविन्द' पुरदरप्रमुखवृन्दारकसदोहः सतत-

---

॥३८॥ § ६२) देवेति—हे देव ! हे जिनेन्द्र ! हे त्रिभुवनपते ! हे श्रीपते ! य पुमान् पुरुष. तव भवतो वैभव समृद्धि जानाति एप वैभव समृद्धि भजति प्राप्नोति त्यजति मुञ्चति च इति चित्रमाश्चर्यम् । पक्षे वै निश्चयेन भव ससार त्यजतीति व्याख्या कार्या ॥ आर्या ॥३९॥ § ६३) अमलेति—हे जिनप ! हे जिनेन्द्र ! हे जगतापते ! जगत्स्वामिन् ! त्वम् अमला निर्मला ये सद्गुणा प्रशस्तगुणास्तेपा वारिधि सागरोऽपि सन् न अमलसद्गुणवारिधिरिति चित्र परिहारपक्षे नाम इति पृथक्पद सभावनायाम् अथवा नाम्ना लसता गुणाना वारिधिरिति । निखिललोकनुतोऽपि सकललोकस्तुतोऽपि सन् त्रिदशलोकनुत त्रिगुणितदशलोकनुत ! कथमभव इति विरोध परिहारपक्षे त्रिदशलोकनुतो देवसमूहस्तुत इति । विरोधाभासः । द्रुतविलम्बित-वृत्तम् ॥४०॥ § ६४) अवदातेति—अवदाता उज्ज्वला धवला च या मूर्ति शरीर तया महितोऽपि प्रशस्तोऽपि सन् अधिकारुण्य अधिक च तत् आरुण्य चेति अधिकारुण्य सातिशयरक्तवर्णत्व वहसि दधासि इत्यहो चित्रम् परिहारपक्षे अधिगत प्राप्त कारुण्य दयालुत्व वहसि । एव व्याकीर्णानि विस्तृतानि कल्पकुसुमानि कल्पतरुपुष्पाणि येन तथाभूत सन् न व्याकीर्णानि द्विकल्पाना पृथिवीस्थस्वर्गस्थभेदेन द्विविधकल्पवृक्षाणा कुसुमानि येन तथाभूत इति चित्र परिहारपक्षे नव्य नूतन यथा स्यात्तथा आकीर्णानि व्याप्तानि द्विकल्प-कुसुमानि येन तथाभूत असीति शेष , श्लेषविरोधाभासौ । आर्या ॥४१॥ § ६५) इत्यादीति—इत्यादिभि-रनेकस्तोत्रैर्विविधस्तवनै पवित्रीकृत मुखारविन्द वदनवारिज यस्य तथाभूत पुरदरप्रमुखवृन्दारकाणा

सुमनोजात—कामको नष्ट कर दिया) ॥३८॥ § ६२) देवेति—हे देव ! हे जिनेन्द्र ! हे भुवनपते ! हे श्रीपते ! जो मनुष्य आपके वैभवको जानता है वह वैभवको छोड देता है तथा प्राप्त भी होता है यह बड़े आश्चर्यकी बात है। (परिहार पक्षमे वे निश्चयसे भव—संसारको छोड़ देता है और वैभव—ऐश्वर्यको प्राप्त होता है) ॥३९॥ § ६३) अमलेति—हे जिनेन्द्र ! आप निर्मल समीचीन गुणोंके सागर होकर भी अमलसद्गुण-वारिधिः न—निर्मल समीचीन गुणोंके सागर नहीं हैं (परिहार पक्षमें आप नामलसद्गुण-वारिधिः—नामसे शोभायमान समीचीन गुणोंके सागर हैं) इसी प्रकार हे जगत्पते ! आप समस्त लोकके द्वारा स्तुत होकर भी त्रिदशलोकनुत—तीस लोगोंके द्वारा स्तुत कैसे हुए ? (परिहारपक्षमे त्रिदशलोकनुत—देवोंके द्वारा स्तुत हुए) ॥४०॥ § ६४) अवदातेति—हे भगवन् ! आप उज्ज्वल मूर्तिसे पूजित होकर भी अधिकारुण्य—अधिक लालिमाको धारण करते हैं यह आश्चर्यकी बात है (परिहारपक्षमें अधिकारुण्य—अधिक दयालुताको धारण करते हैं) इसी प्रकार आप व्याकीर्णकल्पकुसुम—कल्पवृक्षके फूलोंको विस्तृत करनेवाले होकर भी न व्याकीर्णद्विकल्पकुसुम·—पृथिवी तथा स्वर्गसम्बन्धी भेदसे द्विविध कल्पवृक्षके फूलोंको विस्तृत करनेवाले नहीं हो यह आश्चर्यकी बात है (परिहारपक्षमे नवीन रूपसे द्विविध कल्पवृक्षोंके फूलोंको व्याप्त करनेवाले हैं) ॥४१॥ § ६५) इत्यादीति—इत्यादि अनेक स्तोत्रोंसे जिसका मुखकमल पवित्र हो रहा था ऐसा इन्द्रादि देवोंका समूह निरन्तर प्रति-

सगतनिजनयनपरम्पराभिर्जिनराजस्य कनकामलदिव्यदेह चञ्चच्चञ्चरीकसचयकल्पतरुकल्पं कुर्वाणो भगवदभिमुखीकृतमुखो यथोचित निषसाद ।

§ ६६) श्रीमान् भरतराजर्षिर्बुबुधे युगपत्त्रयम् ।
गुरोः कैवल्यसभूति सूति च सुतचक्रयो ॥४२॥

§ ६७) कैवल्य वृषभस्य धार्मिकमुखात्सत्कञ्चुकीयात्सुतो-
त्पत्ति चक्रसमुद्भव च कलयन्द्राक् शस्त्रपालाद्विभुः ।
किंचिद्व्याकुलमानस. किमिह मे प्राक्कार्यमित्यादरात्
तीर्थं धर्मफलं तदा भगवतः प्राप्तु मति व्यातनोत् ॥४३॥

§ ६८) तदनु गुरुभक्तिभरनिरतो भरतराज. कौतुकितहृदयैरनुजपुरजनपरिजनान्तःपुर-पुर सरैः परिवृत' पटुपटहमन्द्रतमनिधाननिरुद्धदशदिशावकाश प्रचलितमिवाम्भोधि षडङ्गतरङ्गित-

---

पुरुहूतप्रधानदेवाना सदोह' समूह सतत सगतानि प्रतिफलितानि यानि निजनयनानि स्वकीयसहस्रनेत्राणि तेषा परम्पराभि सततिभि जिनराजस्य जिनेन्द्रस्य कनकमिव स्वर्णमिव अमलदेहं निर्मलशरीर चञ्चन्त शोभमाना. चञ्चरीकसंचया भ्रमरसमूहा यस्मिन् तथाभूतो य कल्पतरुस्तत्कल्प सदृश कुर्वाणो विदधानो भगवतो जिनेन्द्रस्याभिमुखीकृत मुख वक्त्र यस्य तथाभूत सन् यथोचित यथायोग्य स्वस्वकोष्ठेष्वित्यर्थं निषसाद समुपविष्टोऽभूदित्यर्थ. । § ६६) श्रीमानिति—श्रीमान् प्रकृष्टराज्यलक्ष्मीयुक्त भरतराजर्षि. युगपत् एककालावच्छेदेन गुरो पितु कैवल्यसभूति केवलज्ञानोत्पत्ति सुतश्च चक्र चेति सुतचक्रे तयो पुत्र-चक्ररत्नयो सूति समुत्पत्ति च इति त्रय त्रितय बुबुधे ज्ञानवान् ॥४२॥ § ६६) कैवल्यमिति—धर्मं चरति धार्मिकस्तस्य मुखात् धार्मिकजनवचनात् वृषभस्य जिनेन्द्रस्य कैवल्य केवलज्ञानोत्पत्ति, सत्कञ्चुकीयात् प्रशस्त-सौविदल्लात् सुतोत्पत्ति पुत्रजन्म, शस्त्रपालाच्चायुधरक्षकाच्च द्राक् झटिति चक्रसमुद्भव चक्ररत्नोत्पत्ति च कलयन् जानन् विभु भरत' इह त्रिषु कार्येषु प्राक् पूर्वं मे मम किं कार्यमितीत्थ किंचिन्मनाग् व्याकुलमानसो व्यग्रचेतस्क' सन् तदा तस्मिन् काले आदरात् विनयात् भगवतो जिनेन्द्रस्य धर्मफल धर्मोद्देश्यक तीर्थं प्राप्तुं मति बुद्धि व्यातनोत् विस्तारयामास । शार्दूलविक्रीडितं छन्द ॥४३॥ § ६८) तदन्विति—तदनु तदनन्तर गुरुभक्त्या भरेव निरतस्तत्पर भरतराज भरतश्चासौ राजा चेति भरतराज 'राजाह सखिभ्यष्टच्' इति टच् समासान्त , कौतुकितानि हृदयानि येषा तै अनुजाश्च पुरजनाश्च परिजनाश्च अन्त पुर च एषा द्वन्द्वः ते पुर सरा येषा तैर्जनै परिवृत. परिवेष्टित , पटुपटहाना विशालदुन्दुभीना मन्द्रतमनिध्वानेन गम्भीरतम-

---

बिम्बित होनेवाले अपने नेत्रोंके समूहसे भगवान्के सुवर्णके समान निर्मल शरीरको सुशोभित भ्रमर समूहसे युक्त कल्पवृक्षके समान करता हुआ भगवान्के सामने मुख कर यथायोग्य रीतिसे बैठ गया । § ६६) श्रीमानिति—तदनन्तर श्रीमान् राजर्षि भरतने पिताको केवलज्ञान-की प्राप्ति तथा पुत्र और चक्ररत्नकी उत्पत्ति इन तीन कार्योंको एक साथ जाना ॥४२॥ § ६७) कैवल्यमिति—धार्मिक मनुष्यके मुखसे भगवान्को केवलज्ञानकी उत्पत्ति, उत्तम कंचुकीयके मुखसे पुत्रकी उत्पत्ति और शस्त्ररक्षकसे चक्ररत्नकी उत्पत्तिके समाचारको शीघ्र ही जानकर भरतमहाराज, इन कार्योंमें मुझे पहले कौन कार्य करना चाहिए इस प्रकार कुछ व्यग्र चित्त हुए परन्तु उस समय उन्होंने आदरपूर्वक तीर्थधर्मकी प्रवृत्तिरूप फलसे युक्त भगवान्के केवलज्ञानोत्सवको प्राप्त करनेका विचार कर लिया ॥४३॥ § ६८) तदन्विति—तद-नन्तर गुरुभक्तिके समूहमें लीन सम्राट् भरत, कुतूहलसे युक्त हृदयवाले छोटे भाइयों, परिवार-के अन्य लोगो तथा अन्त पुरकी स्त्रियोंसे परिवृत होता हुआ विशाल दुन्दुभियोंके जोरदार

वलं पुरोधाय पुरतश्चलित, पुरत परिशोभमानमेकत्र युगपदुदितदिनकरबिम्बसहस्रशङ्काकरं पुञ्जीभूतमिव कान्तिसारं भगवदास्थानमण्डपं प्रवीक्ष्य प्रविश्य चान्तः क्रमेण प्रथमद्वितीयसालावुत्क्रम्य, तत्र संभ्राम्यद्भिर्दौवारिकैः प्रवेशितः त्रिदशभुवनसौभाग्यजित्वरीं श्रीमण्डपशोभावैसरीं विलोक्य विस्मितमानसः प्रदक्षिणीकृत्य प्रथमपीठे धर्मचक्रचतुष्टयं, द्वितीयपीठे महाध्वजांश्चार्चयित्वा, गन्धकुटीमध्यसमिद्धसिंहासनोपरि विराजमानतया पूर्वाचलशिखरशोशुम्यमानं दिनमणिमनुकुर्वाणं, चलच्चामरनिकरवीज्यमानतया पुष्पवृष्टिपरीततया च प्रपतन्निर्झरं त्रिधाभूतविधुबिम्बावलम्बिताम्बुधरचुम्बितं मन्दारतरुगलितप्रसूनपरिमेदुरं मन्दरगिरिं तुलयन्तं भगवन्तमवलोक्य प्रणम्य चातिविभवेन पूजयामास।

शब्देन निरुद्धा दशदिशावकाशा येन तत् प्रचलितम् अम्भोनिधिमिव सागरमिव, षडङ्गैस्तरङ्गितं यद् बलं सैन्यं तत् पुरोधाय अग्रे कृत्वा पुरतो नगरात् चलितः पुरतोऽग्रे शोभमानं विराजमानं, एकत्र एकस्मिन् स्थाने युगपद् एकसार्धम् उदितानि यानि दिनकरबिम्बसहस्राणि तेषां शङ्काकरं संदेहोत्पादकं पुञ्जीभूतं राशीकृतं कान्तिसारमिव भगवदास्थानमण्डपं जिनेन्द्रसभामण्डपं प्रवीक्ष्य दृष्ट्वा प्रविश्य च अन्तः, क्रमेण प्रथमद्वितीयसालौ उत्क्रम्य समुल्लङ्घ्य तत्र संभ्राम्यद्भिः दौवारिकैर्द्वाररक्षकैः प्रवेशितः प्राप्तप्रवेशः सन् त्रिदशभुवनस्य स्वर्गस्य सौभाग्यशोभां जित्वरी जयनशीला श्रीमण्डपस्य शोभावैसरी ता श्रीमण्डपसुषमाविस्तृतिं विलोक्य विस्मितमानसः चकितचेताः प्रदक्षिणीकृत्य परिक्रम्य प्रथमपीठे धर्मचक्राणां चतुर्दिक्स्थितानां चतुष्टयं चतुष्कं, द्वितीयपीठे महाध्वजान् बृहत्पताकाश्च अर्चयित्वा गन्धकुटीमध्ये समिद्धस्य देदीप्यमानस्य सिंहासनस्य हरिविष्टरस्योपरि विराजमानतया शोभमानतया पूर्वाचलशिखरे शोशुम्यमानमतिशयेन शुम्भन्तं दिनमणिं सूर्यम् अनुकुर्वाणं, चलच्चामराणां निकरेण वीज्यमानतया पुष्पवृष्टिपरीततया च सुमनोवृष्टिव्याप्ततया च प्रपतन्तो निर्झरा वारिप्रवाहा यस्मिंस्तं, त्रिधाभूतेन विधुबिम्बेनावलम्बितं सहितो योऽम्बुधरो मेघस्तेन चुम्बितं मन्दारतरुभ्यः कल्पवृक्षेभ्यो गलितैः प्रसूनैः पुष्पैः परिमेदुरं व्याप्तं मन्दरगिरिं सुमेरुसानुमन्तं तुलयन्तं भगवन्तं वृषभजिनेन्द्रम् अवलोक्य प्रणम्य च नमस्कृत्य च अतिविभवेन विपुलसमृद्ध्या पूजयामास। § ६९) पूजान्त इति—पूजान्ते सपर्यावसाने भरतनृपतिः भरतेश्वरः त्रिभुवनतिलकं त्रिलोकीश्रेष्ठं सकलगुणनिधिं निखिलगुणसागरं विश्ववेदिनं सकलपदार्थानां याथात्म्यस्य पारमार्थ्यस्य बोधो ज्ञानं यस्य तं तथाभूतं देवदेवं जिनेन्द्रं सप्रणम्य अतिभक्त्या तीव्रानुरागेण स्तुत्वा नत्वा च भूयः पुनः श्रीमण्डपाग्रं गत्वा तत्र सभ्यानामन्यसभासदामन्तराले मध्ये देवाङ्गे जिनेन्द्रशरीरे दत्तदृष्टिः प्रदत्तनयनः मुकुलिते

शब्दोंसे दशों दिशाओंके अवकाशको रोकनेवाली, तथा लहराते हुए समुद्रके समान छह अंगोंसे व्याप्त सेनाको आगे कर नगरसे चला। आगे शोभायमान तथा एक स्थानपर एक साथ उदित हुए हजार सूर्यबिम्बोंकी शंका करनेवाले अथवा इकट्ठे हुए कान्तिके सारके समान भगवान्के सभामण्डपको देखकर उसने भीतर प्रवेश किया। क्रम-क्रमसे पहले और दूसरे कोटको उल्लंघन कर वहाँ घूमनेवाले द्वारपालोंके द्वारा भीतर प्रविष्ट होता हुआ आगे बढ़ा। सर्वप्रथम स्वर्गकी शोभाको जीतनेवाली श्रीमण्डपकी विचित्र शोभाको देखकर उसका मन आश्चर्यसे चकित हो गया। तदनन्तर प्रथम पीठपर विद्यमान चार धर्मचक्रोंकी प्रदक्षिणा देकर तथा द्वितीय पीठपर स्थित महाध्वजाओंकी पूजा कर उसने भगवान्के दर्शन कर प्रणाम किया और बहुत वैभवके साथ उनकी पूजा की। उस समय भगवान् गन्धकुटीके मध्यमें देदीप्यमान सिंहासनके ऊपर विराजमान होनेसे उदयाचलके शिखरपर शोभायमान सूर्यका अनुकरण कर रहे थे। चलते हुए चामरोंके समूहसे वीज्यमान तथा पुष्पवृष्टिसे व्याप्त होनेके कारण वे उस मन्दरगिरिकी तुलना कर रहे थे जिसपर अनेक निर्झर पड़ रहे

§ ६९) पूजान्ते देवदेवं त्रिभुवनतिलकं सप्रणम्यातिभक्त्या
स्तुत्वा नत्वा च भूयः सकलगुणनिधिं विश्वयाथात्म्यबोधम् ।
गत्वा श्रीमण्डपाग्र्य भरतनरपतिस्तत्र सभ्यान्तराले
देवाङ्गे दत्तदृष्टिर्मुकुलितविलसत्पाणिपद्मोऽवतस्थे ॥४४॥

§ ७०) तदनु भव्यपुण्डरीकषण्डमार्तण्ड केवलज्ञानलक्ष्मीमनुभवन्तं भगवन्तं धर्मं पृष्टवति भरतराजे, भूतभविष्यद्वर्तमानपदार्थसार्थव्यक्तीकरणसाक्षिणी, निर्मुक्ताशेषदोषा, मिथ्यात्वजालतूलवातूललीला, ·विपक्षगर्वसर्वस्वपर्वतदम्भोलिः, अपारससारसागरकर्णधारायमाणा, स्याद्वादलक्ष्मीविहरणप्रासादपाली, धर्मनृपसाम्राज्यप्रतिष्ठाभूमि , ताल्वोष्ठस्पन्दादिवर्जिता, वर्णविन्यासरहितापि वस्तुबोधविधानचतुरा, स्वयमेकापि पृथक्पृथगभिप्रायवचनाना देहिना स्पष्टमिष्टार्थसाधनप्रवीणा सुधामयी वृष्टिरिव दिव्यवाणी भगवन्मुखारविन्दात्प्रादुर्बभूव ।

विलसत्पाणिपद्मो यस्य यथाभूत. सन् अवतस्थे अवस्थितोऽभूत् । स्रग्धरा छन्द ॥४४॥ § ७०) तदन्विति— तदनु तदनन्तर भव्यपुण्डरीकषण्डमार्तण्ड भव्यारविन्दवृन्दविभाकरं केवलज्ञानलक्ष्मीमनुभवन्त केवलज्ञानसहितं भगवन्त वृषभजिनेन्द्र भरतराजे धर्मं पृष्टवति सति भगवन्मुखारविन्दात् भगवद्वदनवारिजात् दिव्यवाणी दिव्यध्वनि. प्रादुर्बभूव । अथ कथभूता सा दिव्यवाणीत्याह—भूतभविष्यद्वर्तमानपदार्थाना कालत्रयवर्तिपदार्थाना सार्थ समूहस्तस्य व्यक्तीकरणस्य प्रकटकरणस्य साक्षिणी, निर्मुक्तास्त्यक्ता अशेषदोषा यस्यास्तथाभूता, मिथ्यात्वजालमेव तूल तस्य वातूलस्य वात्याया इव लीला यस्यास्तथाभूता, विपक्षाणा प्रतिवादिनां गर्वसर्वस्वमेव पर्वत सानुमान् तस्य दम्भोलि पवि', अपारसंसार एव सागरस्तस्मिन् कर्णधार इवाचरतीति तथा, स्याद्वादलक्ष्मीरनेकान्तश्रीस्तस्या विहरणाय प्रासादपाली सौधसतति धर्मनृपस्य धर्ममहीभृतो यत् साम्राज्य तस्य प्रतिष्ठाभूमि , तालवोष्ठस्य स्पन्दादिना वर्जिता त्यक्ता, वर्णविन्यासरहितापि अक्षराकारपरिणमनरहितापि वस्तुबोधस्य वस्तुज्ञानस्य विधाने करणे चतुरा विदग्धा, स्वय स्वत एकापि अद्वितीयापि पृथक्पृथगभिप्रायवचनाना पृथक्पृथगभिप्रायवादिना देहिना प्राणिना स्पष्टं यथा स्यात्तथा इष्टार्थसाधने प्रवीणा समर्था सुधामयी पीयूषमयी वृष्टिरिव दिव्यवाणी दिव्यध्वनिर्भगवन्मुखारविन्दात् प्रादुर्बभूव

थे, जो तीन रूपमें परिणत चन्द्रमण्डलसे अवलम्बित मेघसे चुम्बित हो रहा था तथा कल्पवृक्षोंसे घिरे हुए पुष्पोंसे व्याप्त था। § ६९) पूजान्त इति—पूजाके अन्तमें भरतेश्वरने त्रिलोकके तिलक समस्त गुणोंके सागर एवं सर्वज्ञ देवाधिदेव वृषभजिनेन्द्रको प्रणाम किया, भक्तिपूर्वक स्तुति की, नमस्कार किया और उसके बाद श्रीमण्डपमें जाकर वहाँ भगवान्‌के शरीरपर दृष्टि लगाता हुआ वह दोनों हाथ जोड़कर सभासदोंके बीचमें बैठ गया ॥४४॥ § ७०) तदन्विति—तदनन्तर भव्यजीवरूपी कमलसमूहको विकसित करनेके लिए सूर्य एवं केवलज्ञानरूपी लक्ष्मीका अनुभव करनेवाले भगवान्‌से भरतेश्वरने धर्मका स्वरूप पूछा। उसके फलस्वरूप भगवान्‌के मुखारविन्दसे दिव्यध्वनि प्रकट हुई। वह दिव्यध्वनि भूत, भविष्यत् और वर्तमान पदार्थोंके समूहको प्रकट करनेके लिए साक्षीस्वरूप थी, समस्त दोषोंसे रहित थी, मिथ्यात्वके समूह रूप रुईको उड़ानेके लिए तीव्रवायुके समान थी, प्रतिवादियोंके गर्वरूपी पर्वतोंको नष्ट करनेके लिए वज्रके समान थी, अपार संसाररूपी सागरसे पार करनेके लिए कर्णधारके समान थी, स्याद्वादरूपी लक्ष्मीकी क्रीडाका प्रासाद थी, धर्मरूपी राजाके साम्राज्यकी प्रतिष्ठाभूमि थी, तालु तथा ओठके हलन-चलन आदिसे रहित थी, अक्षरोंके विन्याससे रहित होकर भी वस्तुके ज्ञान करानेमें चतुर थी, स्वयं एक होकर भी पृथक्-पृथक् अभिप्रायको प्रकट करनेवाले प्राणियोंके इष्ट अर्थको स्पष्ट रूपसे सिद्ध करनेमें

§ ७१) निशम्य भरताधिपो मधुरदिव्यवाणी विभो-
स्तदाभजत दर्शनव्रतविशुद्धिमुद्यद्रुचिः ।
सुरासुरमुनीश्वरप्रभृतिभिः परीता सभा-
परा धृतिमवाप सा परमशर्मधर्मामृते ॥४५॥

§ ७२) तदानी कुरुकुलचूडामणिः सोमप्रभनरमणिर्दानतीर्थप्रवर्तक श्रेयान् भरतेश्वरानुजो वृषभसेनश्च भगवत्पादमूले दीक्षित्वा गणधरा बभूवु. । ब्राह्मीसुन्दर्यौ च ससारनिर्वेदनिर्धूतविवाहचिन्ते भट्टारकपादमूले दीक्षामासाद्य गणिनीगणप्रधाने बभूवतु' । श्रुतकीर्तिश्च गृहीतोपासकव्रत. श्रावकाग्रणीर्बभूव । प्रियव्रता च गृहीताणुव्रता श्राविकाग्रेसरी बभूव । पुराभग्नतपस्का कच्छमहाकच्छप्रमुखाश्च भरतराजपुत्र मरीचिं विना सर्वेऽपि महाप्रव्रज्यामासेदु अनन्तवीर्यश्च गुरुपादमूलप्राप्तदीक्ष सुरासुरै पूजितो मोक्षलक्ष्मीमाससाद ।

§ ७३) वन्दित्वा भरताधिपो भगवत पादाम्बुजं सानुज-
स्तच्चक्रायुधपूजने कृतमति. सपूज्य लोकेश्वरम् ।
आस्थानाद्बहिरागत पृतनया जुष्टश्च सौधोल्लसत्
केतुव्रातनिरस्तभास्करकरं नैज पुरं प्राविशत् ॥४६॥

प्रकटितासीत् । § ७१) निशम्येति—तदा तस्मिन् काले उद्यन्ती वर्धमाना रुचि प्रतीतिर्यस्य तथाभूतो भरताधिपः भरतेश्वर विभोर्भगवतो मधुरदिव्यवाणी मधुरदिव्यध्वनिं निशम्य श्रुत्वा दर्शनव्रतविशुद्धि सम्यक्त्वव्रतयो —विशुद्धि निर्मलताम् अभजत प्रापत् । सुराश्च असुराश्च मुनीश्वराश्चेति सुरासुरमुनीश्वरास्ते प्रभृतयो येषा तै परीता व्याप्ता सा सभा समवसरणपरिषद् परमशर्मधर्मामृते उत्कृष्टसुखदायकधर्मपीयूषे परा सातिशया धृतिं सतुष्टिम् अवाप प्राप्तवती । पृथ्वीछन्द ॥४५॥ § ७२) तदानीमिति—सुगमम् । § ७३) वन्दित्वेति—भरताधिपो भरतेश्वर. भगवतो वृषभस्य पादाम्बुज चरणकमलं वन्दित्वा नमस्कृत्य सानुजसकनिष्ठभ्रातृक: तच्चक्रायुधपूजने तच्चक्ररत्नसमर्चाया कृतमति कृतबुद्धि' सन् लोकेश्वर जिनेन्द्र

प्रवीण थी और ऐसी जान पड़ती थी मानो अमृतको वृष्टि ही हो । § ७१) निशम्येति—जिसकी श्रद्धा बढ़ रही थी ऐसे भरतेश्वरके भगवान्‌की मधुर दिव्य ध्वनि सुनकर दर्शन और व्रतमें विशुद्धता प्राप्त की तथा सुर, असुर और मुनि आदिसे व्याप्त वह सभा उत्कृष्ट सुखदायक धर्मरूपी अमृतके द्वारा परम धैर्यको प्राप्त हुई ॥४५॥ § ७२) तदानीमिति—उस समय कुरु वंशके शिखामणि राजा सोमप्रभ, दान तीर्थके प्रवर्तक श्रेयांस, और भरतेश्वरके छोटे भाई वृषभसेन भगवान्‌के पादमूलमे दीक्षित होकर गणधर हो गये । ससारसे वैराग्य होनेके कारण जिन्होंने विवाहकी चिन्ता दूर कर दी थी ऐसी ब्राह्मी और सुन्दरी भी भगवान्‌के पादमूलमे दीक्षा प्राप्त कर गणिनियोंके समूहमें प्रधान हो गयीं । श्रुतकीर्ति, श्रावकके व्रत ग्रहण कर श्रावकोंमें अग्रेसर हो गया और प्रियव्रता, अणुव्रत ग्रहण कर श्राविकाओंमे श्रेष्ठ बन गयी । पहले जिन्होंने तप छोड दिया था ऐसे कच्छ, महाकच्छ आदि राजा तथा भरतेश्वरके पुत्र मरीचिको छोडकर अन्य सभी लोगोंने दिगम्बर दीक्षाको प्राप्त किया था । और पिताके पादमूलमे जिसने दीक्षा प्राप्त की थी ऐसे अनन्तवीर्यने सुर-असुरोंसे पूजित हो मोक्ष लक्ष्मीको प्राप्त किया । § ७३) वन्दित्वेति—भरतेश्वरने भगवान्‌के चरण-कमलोंकी वन्दना की तदनन्तर छोटे भाइयों सहित चक्ररत्नकी पूजाकी इच्छा करता हुआ भगवानकी पूजा

§ ७४) तदनु देवदेव । त्रिभुवनरक्षणविचक्षण । पापावग्रहविशेषविशोषितभव्यसस्य-समुल्लासक ! धर्मामृतसेकाय दयाध्वजविराजमाना भव्यवरूथिनी जयोद्योगसाधन सज्जनधर्मचक्रं च पुरस्कृत्य मुक्तिमार्गावस्कन्दननिपुणाया मोहपृतनाया नि शेषनिर्मूलनाय च कालोऽयमुपस्थित इति सविनय पुरुहूतेन विज्ञापितस्तीर्थंकरपुण्यसारथिबोधित', समीरकुमारसंमार्जितयोजनान्तर-रम्यभूभाग., स्तनितसुरविरचितविमलसुरभिसलिलसेकविरहितरजःप्रसरमहीतलः, सकलर्तुकुसुम-पल्लवितसमुल्लसितवल्लिकामतल्लिकाफलविलसिततरुनिकरनिरन्तरितमणिदर्पणप्रतिमावनीतल-विलासः समनुसृतशिशिरसुरभिमन्दानिलः परस्पराह्वाननिरतदिविजजननिनदपूरितगगनतल', पुरस्कृताष्टमङ्गलसगतध्वजमालावितानविचित्रिताम्बरसहस्रदिनकरस्पर्द्धिसहस्रारधर्मचक्रपुरःसरः ,

---

सपूज्य समर्च्य आस्थानात् सभामण्डपात् बहिरागत पृतनया सेनया जुष्ट सेवितश्च सन् सौधेषु हर्म्येषूल्लसता स्फुरता केतूना पताकाना व्रातेन समूहेन निरस्ता दूरीकृता भास्करकरा रविरश्मयो यस्मिंस्तत् नैजं स्वकीय पुर नगर प्राविशत् प्रविष्टवान् । शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः ॥४६॥ § ७४) तदन्विति—तदनु तदनन्तरं हे देवदेव । हे देवाधिदेव ! हे त्रिभुवनस्य रक्षणे त्राणे विचक्षणो विद्वान् तत्सबुद्धौ, पापमेव अवग्रहविशेषो वृष्टिप्रतिबन्धविशेषस्तेन विशोषितानि यानि भव्यसस्यानि भव्यजनव्रीहयस्तेषा समुल्लासकस्तत्सबुद्धौ, धर्मामृतसेकाय धर्मसुकृतसेचनाय दयाध्वजै. कृपाकेतुभिर्विराजमाना शोभमाना भव्यवरूथिनी भव्यसेना जयोद्योगस्य विजयप्रयासस्य साधन सज्जधर्मचक्र कार्यरतधर्मचक्र च पुरस्कृत्य अग्रेकृत्य मुक्तिमार्गे मोक्षमार्गे यद् अवस्कन्दन लुण्ठनं तस्मिन् निपुणाया दक्षाया मोहपृतनाया मोहसेनाया नि.शेषनिर्मूलनाय च समग्रभावेन समुत्पाटनाय च अय काल समय उपस्थित' सप्राप्त इति सविनय सादरं यथा स्यात्तथा पुरुहूतेन पुरदरेण विज्ञापितः प्रार्थित., तीर्थकरपुण्यमेव सारथिस्तेन बोधित सावधानीकृत , समीरकुमारैर्वायुकुमारै' समार्जितः स्वच्छीकृत. योजनान्तररम्यभूभागो यस्य स , स्तनितसुरैर्मेघकुमारदेवैर्विरचित कृत यो विमलसुरभिसलिलसेकनिर्मलसुगन्धितजलसेचनं तेन विरहितरज प्रसर दूरीकृतरेणुविस्तार महीतल यस्य स सकलर्तुकुसुमैर्निखिलर्तुपुष्पै पल्लविता. किसलयिता समुल्लसिता शोभिता या वल्लिकामतल्लिका श्रेष्ठलतास्तासा फलैर्विलासिता शोभिता ये तरुनिकरा वृक्षसमूहास्तै निरन्तरितः सान्द्रितो मणिदर्पणप्रतिमावनीतलस्य रत्नादर्शतुल्यमहीतलस्य विलासो यस्य स , समनुसृत ·शिशिर शीत सुरभि. सुगन्धिर्मन्दश्चानिलो यस्य स., परम्पराह्वाने निरता लीना ये दिविजजना देवास्तेषा निनदेन शब्देन पूरित गगनतल नभस्तल यस्य स , पुरस्कृताष्टमङ्गलै संगता सहिता ध्वजमाला केतुपङ्क्ति वितानश्चन्द्रोपकश्च तैर्विचित्रित यदम्बर नभस्तल

कर समवसरणसे बाहर आया और सेनासे युक्त होता हुआ महलोंपर फहराती हुई पताकाओंके समूहसे जिसमें सूर्यकी किरणें दूर हट गयी थीं ऐसे अपने नगरमें प्रविष्ट हुआ ॥४६॥ § ७४) तदन्विति—तदनन्तर हे देवोंके देव ! हे तीन लोककी रक्षा करनेमें निपुण ! हे पाप-रूपी वर्षाके प्रतिबन्ध-विशेषसे सूखती हुई भव्यजीवरूपी धान्यको हरा-भरा करनेवाले ! धर्मरूपी अमृतको सींचनेके लिए और दयारूपी ध्वजासे सुशोभित भव्य जीवोंकी सेना तथा जयरूपी उद्योगके साधन समुत्पन्न धर्मचक्रको आगे कर मोक्षमार्गके लूटनेमें निपुण मोहकी सेनाको समस्त रूपसे निर्मूलित करनेके लिए यह समय उपस्थित हुआ है इस प्रकार इन्द्रने जब विनय सहित प्रार्थना की तब समस्त देशोंमें विहार करते हुए भगवान् क्रम-क्रमसे अपने यशकी शोभाका अनुकरण करनेवाले कैलास पर्वतपर पहुँचे। विहार करते समय तीर्थंकर नामक पुण्य प्रकृति रूपी सारथि उन्हें प्रेरित कर रहा था, वायुकुमार देवोंके द्वारा एक योजनके भीतरका रमणीय भू-भाग साफ कर दिया गया था, स्तनित-कुमार देवोंके द्वारा किये हुए निर्मल सुगन्धित जलके सेकसे पृथिवीतल धूलि रहित कर दिया

पुरस्तात् पृष्ठतश्च व्योमतलविन्यस्तसप्तसप्तहेमाम्बुजरुचिरञ्जितचरणयुगलतया विजितेन रागमल्लेन भयादुपाश्रितपद इव नभःस्थले कलितयानः सकलजगदानन्दनः जिनराज सर्वदेशेषु विहरमाणः क्रमेणानुकृतनिजयशोलील कैलासशैलमुपजगाम।

इति श्रीमदर्हद्दासकृतौ पुरुदेवचम्पूप्रबन्धेऽष्टम स्तबकः ॥८॥

तस्मिन् सहस्रदिनकराणा सहस्रसूर्याणा स्पर्द्धि यत् सहस्रारधर्मचक्र सहस्रारसहितधर्मचक्र तत्पुर सर यस्य स, पुरस्तादग्रे पृष्ठतश्च पश्चाच्च व्योमतले गगनतले विन्यस्तानि निक्षिप्तानि यानि सप्तसप्तहेमाम्बुजानि तेषा रुच्या कान्त्या रञ्जित रक्तवर्णाङ्कित चरणयुगल यस्य तस्य भावस्तया विजितेन पराभूतेन रागमल्लेन भयात् उपाश्रितपद इव सेवितचरण इव, नभ स्थले गगने कलितयान कृतगमन, सकलजगदानन्दनो निखिललोकानन्दकर जिनराजो वृषभजिनेन्द्र सर्वदेशेषु समग्रजनपदेषु विहरमाणो विहार कुर्वन् क्रमेण क्रमश अनुकृता निजयशोलीला स्वकीर्तिशोभा येन त तथाभूत कैलासशैल कैलासपर्वतम् उपजगाम प्रापत्।

इति श्रीमदर्हद्दासकृते पुरुदेवचम्पूप्रबन्धस्य 'वासन्ती'समाख्याया संस्कृतव्याख्यायामष्टम स्तवक समाप्त. ॥८॥

गया था, परस्परके बुलानेमें लीन देवोंके शब्दोंसे आकाशतल भर गया था, आगे किये हुए आठ मंगल द्रव्योंसे सहित ध्वजाओंकी पंक्ति और चँदोवासे चित्रित आकाशमें उदित हजार सूर्योंके साथ स्पर्धा करनेवाला एक हजार अरोंसे युक्त धर्मचक्र उनके आगे-आगे चल रहा था, आगे और पीछे आकाशतलमें विरचित सात-सात स्वर्ण कमलोंकी कान्तिसे उनके चरण युगल रंगे हुए थे जिनसे ऐसा जान पड़ता था मानो पराजित हुआ रागरूपी मल्ल भयसे उनके चरणोंमें आ पड़ा हो, वे आकाशमें अधर गमन कर रहे थे और समस्त जगत्को आनन्द उत्पन्न कर रहे थे।

इस प्रकार श्रीमान् अर्हद्दास कविकृत पुरुदेवचम्पूप्रबन्धमें आठवाँ स्तवक समाप्त हुआ ॥८॥

नवमः स्तबकः

§ १) चक्रे चक्रस्य पूजा तदनु निधिपतिर्जातकर्मापि सूनोः
पुञ्जीभूतानि रत्नान्युरुतरकुतुकादर्थिना संददानः ।
यत्र स्वः पारिजातावलिरधिकमदोन्मत्तभूपारिजात-
श्रेणी च व्रीडशोकावभजत युगपद्वीतवेलोत्सवाग्रे ॥१॥

§ २) ततश्चक्रधरस्यास्य दिग्जयारम्भसभ्रमे ।
उपतस्थे शरल्लक्ष्मीर्जयश्रीरिव सादरा ॥२॥

§ ३) विशालविमलाम्बरस्फुटपयोधरोद्यन्मरु-
च्छरासननखक्षता मधुकरालिनीलालका ।

---

§ १) चक्र इति—तदनु तदनन्तरं, निधिपतिर्भरतेश्वरः चक्रस्य चक्ररत्नस्य पूजा नमस्यां 'पूजा नमस्यापचितिः सपर्यार्चार्हणा समाः' इत्यमरः, चक्रे विदधे, उरुतरकुतुकात् विशालकौतूहलात् अर्थिना याचकाना पुञ्जीभूतानि राशीकृतानि रत्नानि संददानो वितरन् सूनोः पुत्रस्य जातकर्मापि जन्मसंस्कारमपि चक्रे विदधे, यत्र यस्मिन् युगपद् एककालावच्छेदेन वीतातिक्रान्ता वेला सीमा यस्य तथाभूतस्योत्सवस्य समुद्धवस्य अग्रे पुरस्तात् स्वःपारिजाताना स्वर्गस्थकल्पवृक्षाणामावलिः पङ्क्तिः अधिकमदोन्मत्ता विपुलगर्वगर्विता ये भूपारयः शत्रुराजा तेषां जातस्य समूहस्य श्रेणी व्रीडशोकौ लज्जाशोकौ अभजत प्रापत् । निधिपतेर्दानं दृष्ट्वा स्वःपारिजातावलिः लज्जां लेभे भरतपुत्रोत्पत्तिं च श्रुत्वा शत्रुराजसततिः शोकमभजत । युगपदित्यस्य अभजतेति क्रिययापि संबन्धो युज्यते । स्रग्धराच्छन्दः ॥१॥ § २) तत इति—ततस्तदनन्तरं अस्य चक्रधरस्य दिग्जयारम्भसभ्रमे विजययात्राजन्यहर्षत्वरायां सादरा आदरसहिता जयश्रीरिव विजयलक्ष्मीरिव शरल्लक्ष्मीः शरच्छ्रीः उपतस्थे उपस्थिताभूत् ॥२॥ § ३) विशालेति—शरद् शरदृतुः विशेषणसाम्यात् काचित्कामिनी च अराजत शुशुभे । अथोभयोः सादृश्यमाह—विशालविमलाम्बरे विस्तृतस्वच्छाकाशे स्फुटाः प्रकटिता ये पयोधरा मेघास्तेषु उद्यन्ति प्रकटीभवन्ति मरुच्छरासनानि शक्रधनूंषि नखक्षतानीव यस्याः

---

§ १) चक्र इति—निधियोंके स्वामी भरतने चक्ररत्नकी पूजा की। तदनन्तर बहुत भारी कुतूहलवश याचकोंके लिए एकत्रित रत्न प्रदान करते हुए उन्होंने पुत्रका जन्म संस्कार भी किया ऐसा संस्कार कि जिसके निर्मर्याद उत्सवके आगे स्वर्गके पारिजात—कल्पवृक्षोंकी पङ्क्ति और अधिक मदसे उन्मत्त भू-पारिजातों—शत्रुराजाओंके समूहकी पंक्ति एक साथ लज्जा और शोक को प्राप्त हुई थी अर्थात् भरतेश्वरके दानको देखकर स्वर्गके पारिजात—कल्पवृक्ष लज्जाको प्राप्त हो गये और भू-पारिजात—पृथिवीके पारिजात (पक्षमें शत्रु राजाओंके समूह भरतके पुत्रोत्पत्तिका समाचार पाकर) शोकको प्राप्त हो गये ॥१॥ § २) तत इति—तदनन्तर इस चक्रवर्तीकी ज्योंही दिग्विजयकी तैयारियाँ शुरू हुईं त्योंही आदर-सहित विजय लक्ष्मीके समान शरद् ऋतुकी लक्ष्मी आकर उपस्थित हो गयी ॥२॥ § ३) विशालेति—वह शरद् ऋतुकी लक्ष्मी किसी स्त्रीके समान सुशोभित हो रही थी क्योंकि जिस प्रकार स्त्रीके स्वच्छ अम्बर-वस्त्रके भीतर प्रकट स्थूल स्तनोंके ऊपर इन्द्रधनुषके समान

वियत्तलपतत्सितच्छदपरम्पराकण्ठिका
शशाङ्कविलसन्मुखी शरदराजताम्भोजदृक् ॥३॥

§ ४) तदानीं विकचकञ्जपुञ्जकिंजल्कपिञ्जरया कनककलितमणिबद्धशरल्लक्ष्मीकण्ठिकयेव, मदमत्तमदनगजसत्रुटितसुवर्णशृङ्खलयेव, मधुकरपरम्परया विराजमाने, मनसिजमदगजमदवारिसौरभशङ्काकरसप्तच्छदपरिमलपरिमिलितदिगन्तरे, गगनतललक्ष्मीवक्षःस्थलविलसितहरिन्मणिकण्ठिकानुकारिणीभिः, निरावरणं प्रकाशमानं विकर्तनं निजपितरमुपसेवितुमागतायाः

तथाभूता शरद् कामिनीपक्षे विशालौ वृहदाकारौ विमलाम्बरे स्वच्छवस्त्रे स्फुटौ प्रकटौ यौ पयोधरौ स्तनौ तयोरुद्यन्ति मरुच्छरासनानीव इन्द्रधनूंषीव नखक्षतानि नखराघाता यस्यास्तथाभूता, मधुकरालिर्भ्रमरपङ्क्तिर्नीलालका इव यस्या सा शरद् कामिनीपक्षे मधुकरालिरिव नीलालका श्यामलकचा यस्या सा, वियत्तले गगनतले पतन्त समुड्डीयमाना ये सितच्छदा हंसास्तेषां परम्परा सततिः कण्ठिकेव ग्रीवाभरणमिव यस्या तथाभूता शरद् कामिनीपक्षे वियत्तलपतत्सितच्छदपरम्परेव कण्ठिका यस्या सा, शशाङ्कश्चन्द्रो विलसन्मुखमिव यस्या तथाभूता शरद् कामिनीपक्षे शशाङ्क इव विलसन्मुखं शोभमानवदनं यस्या सा, अम्भोजदृक् अम्भोजानि कमलानि दृश इव नेत्राणि यस्यास्तथाभूता शरद् कामिनीपक्षे अम्भोजे इव दृशौ नयने यस्या सा । श्लेषरूपकोपमा. । पृथ्वीछन्द ॥३॥ § ४) तदानीमिति—तदानीं तस्मिन् काले, विकचानि विकसितानि यानि कञ्जानि कमलानि तेषां पुञ्जस्य समूहस्य किञ्जल्केन केसरेण पिञ्जरा पीतवर्णा तया कनककलिता स्वर्णनिर्मिता मणिबद्धा रत्नखचिता च या शरल्लक्ष्म्या कण्ठिका ग्रीवाभरणं तयेव, मदमत्तमदनगजेन सत्रुटिता खण्डिता सुवर्णशृङ्खलयेव हाटकहिञ्जीरिकयेव, मधुकरपरम्परया भ्रमरसतत्या विराजमाने शोभमाने, मनसिजमदगजस्य कामोन्मत्तकरिणो मदवारिणो दानसलिलस्य यत् सौरभं सौगन्ध्यं तस्य शङ्काकरा ये सप्तच्छदा सप्तपर्णवृक्षास्तेषां परिमलेन विमर्दोत्थगन्धेन परिमिलितानि व्याप्तानि दिगन्तराणि यस्मिस्तस्मिन्, गगनतललक्ष्म्या नभस्तलश्रिया वक्षःस्थले विलसिता शोभिता या हरिन्मणिकण्ठिकास्तासामनुकारिणीभिः, निरावरणं यथा स्यात्तथा प्रकाशमानं विभ्राजमानं विकर्तनं मार्तण्डं 'विकर्तनार्कमार्तण्डद्वादशात्मदिवाकरा' इत्यमरः, निजपितरं स्वजनकम् उपसेवितुं समीपमागत्य सेवितुम् आगताया समायाताया

नखक्षत सुशोभित होते हैं उसी प्रकार उस शरद् ऋतुके विशाल तथा निर्मल आकाशमें प्रकट मेघोंके ऊपर नखक्षतके समान इन्द्रधनुष सुशोभित हो रहा था, जिस प्रकार स्त्रीके भ्रमरावलिके समान काले-काले केश होते हैं उसी प्रकार शरद् ऋतुके भी काले केशोंके समान भ्रमरावलि सुशोभित हो रही थी, जिस प्रकार स्त्रीके कण्ठमें आकाशतलमें उड़ते हुए हंसोंकी सन्ततिके समान कंठी सुशोभित होती है उसी प्रकार शरद् ऋतुके भी कण्ठीके समान आकाशतलमें हंसोंकी पंक्ति उड़ रही थी, जिस प्रकार स्त्रीका चन्द्रमाके समान मुख सुशोभित होता है उसी प्रकार शरद् ऋतुके भी मुखके समान चन्द्रमा सुशोभित हो रहा था और जिस प्रकार स्त्री कमलोंके समान नेत्रोंसे सहित होती है उसी प्रकार शरद् ऋतु भी नेत्रोंके समान कमलोंसे सहित थी ॥३॥ § ४) तदानीमिति—उस समय वह शरद् ऋतु भ्रमरोंकी जिस परम्परासे सुशोभित हो रही थी वह खिले हुए कमल समूहकी केशरसे पीली-पीली हो रही थी इसलिए ऐसी जान पड़ती थी मानो स्वर्णनिर्मित एवं मणियोंसे जड़ी शरद् ऋतुकी लक्ष्मीकी कण्ठी ही हो अथवा मदसे मत्त कामदेवरूपी हाथीके द्वारा तोड़ी हुई सुवर्णकी साँकल ही हो। उस समय दिशाओंके अन्तराल कामरूपी मदोन्मत्त हाथीके मद जल सम्बन्धी सुगन्धिकी शंका करनेवाले सप्तपर्णकी सुगन्धिसे मिल रहे थे। उस समय आकाश शुकोंकी जिन पंक्तियोंसे व्याप्त हो रहा था वे ऐसी जान पड़ती थीं

कलिन्दगिरिनन्दिन्याः परित' प्रसृताभिरिव वीचिपरम्पराभि', सुरगजोन्मूलितनिर्गलदाकाशगङ्गा-कमलिनीमिव दर्शयन्तीभिः, दिनकररथतुरगतनुप्रभानुलिप्तश्याममिव गगनतलमुत्पादयन्तीभिः, संचारिणीमिव मरकतस्थली विडम्बयन्तीभिः, अन्तरीक्षाकूपारशैवालावलिमिव स्मारयन्तीभिः, गगनतलवितते: पक्षपुटै कदलीदलैरिव दिवसकरखरकिरणपरिखेदितान्याशामुखानि वीजयन्तीभिः, वियतिसचारिणी शाद्वलमालामिवाचरन्तीभिः शुकराजिभिर्दन्तुरिततारापथे पम्फुल्यमानमल्लिकामतल्लिकाजाले तस्मिन् शरत्काले रचितदिग्जयोद्योगो भरतराजः पुरस्कृतचक्रायुध' प्रस्थानभेरीभाङ्कारैर्घनस्तनितशङ्कया कलापिकलापमुद्ग्रीव विदधानैर्दिगन्तराणि पूरयामास ।

कलिन्दगिरिनन्दिन्या यमुनाया. परित समन्तात् प्रसृताभि विस्तृताभि वीचिपरम्पराभिस्तरङ्गसततिभिरिव, सुरगजैर्देवद्विपैरुन्मूलिता उत्पाटिता निर्गलन्ती पतन्ती आकाशगङ्गाया मन्दाकिन्या कमलिनी सरोजिनी ता दर्शयन्तीभिरिव, दिनकररथस्य सूर्यस्यन्दनस्य ये तुरगा हयास्तेषा तनुप्रभया देहदीप्त्या अनुलिप्त सत् श्यामं श्यामवर्णं गगनतल नभस्तलम् उत्पादयन्तीभि , संचारिणी सचरणशीला मरकतस्थलीं हरितमणिमयभूमि विडम्बयन्तीभिरिव अनुकुर्वन्तीभिरिव, अन्तरीक्षा कूपारस्य गगनार्णवस्य शैवालावलिं जलनीलीपङ्क्ति स्मारयन्तीभि , गगनतलविततैर्नभस्तलव्याप्तै पक्षपुटै गरुत्पुटै कदलीदलै मोचातरुपत्रै दिवसकरस्य सूर्यस्य खरकिरणैस्तीक्ष्णरश्मिभि परिखेदितानि आशामुखानि दिङ्मुखानि वीजयन्तीभिरिव, पवन कुर्वन्तीभिरिव, वियति विहायसि सचारिणी सचरणशीला शाद्वलमाला हरितशष्पसततिमिव आचरन्तीभि , शुकराजिभि कीरपङ्क्तिभि दन्तुरित व्याप्त तारापथ गगन यस्मिंस्तस्मिन्, प्रशस्ता मल्लिका मल्लिकामतल्लिका तासा जालानि समूहा. पम्फुल्यमानानि मल्लिकामतल्लिकाजालानि यस्मिंस्तस्मिन्, शरत्काले जलदान्तसमये रचित कृतो दिग्जयस्योद्योग प्रयासो येन तथाभूत. भरतराजो निधीश्वर पुरस्कृतमग्रे कृत चक्रायुध येन तथा सन् प्रस्थानभेरीभाङ्कारै प्रयाणदुन्दुभिभंभाशब्दै घनस्तनितशङ्कया मेघगर्जनसदेहेन कलापिकलाप मयूरमण्डलम् उद्ग्रीवं समुन्नमितकण्ठ विदधानै कुर्वाणै., दिगन्तराणि काष्ठान्तरालानि पूरयामास सभृतानि

मानो आकाशतलकी लक्ष्मीके वक्ष:स्थलपर सुशोभित हरे मणियोंकी कंठीका अनुकरण ही कर रही हो, अथवा निरावरण रूपसे प्रकाशमान अपने पितारूपी सूर्यकी उपासना करनेके लिए आयी हुई यमुना नदीकी सब ओर फैली तरंगों की परम्पराएँ ही हों, अथवा देवों के हाथियों द्वारा उखाड़ी जाकर गिरती हुई आकाशगंगाकी कमलिनियोंको ही मानो दिखला रही थीं, आकाश तलको सूर्य सम्बन्धी रथके घोड़ोंके शरीरकी प्रभासे लिप्त किये हुएके समान श्यामवर्ण कर रही थीं, अथवा चलती-फिरती मरकत मणियोंकी भूमिका अनुकरण कर रही थीं, अथवा आकाशरूपी समुद्रके शैवाल समूहका स्मरण करा रही थीं, अथवा केलेके पत्तोंके समान आकाशतलमें विस्तृत पंखोंकी पुटोंसे ऐसी जान पड़ती थीं मानो सूर्यकी तीक्ष्ण किरणोंके द्वारा खिन्न दिशाओंके मुखको हवा ही कर रही थीं अथवा आकाशमें चलती फिरती हरी-हरी घासके समूहका आचरण करती थीं। उस शरद् ऋतुके समय श्रेष्ठ मालतियोंका समूह अत्यन्त विकसित हो रहा था। ऐसे शरद् ऋतुके समय जिसने दिग्विजयका उद्योग किया था, तथा जिसने चक्ररत्नरूपी शस्त्रको आगे किया था ऐसे भरतने प्रयाण कालमें बजनेवाली भेरियोंके भांकार शब्दोंसे दिशाओंके अन्तरालको भर दिया था। भेरियोंके वह भांकार मयूरोंके समूहको मेघ गर्जनाकी शंकासे उद्ग्रीव—उन्मुख कर

§ ५) दृप्तारातिमदेभकेसरिरवस्तत्सैन्यवीरावली-
केकिव्रातघनारवस्त्रिभुवनाभोगे नटन्त्याश्चिरम् ।
उद्यच्चक्रधरस्य कीर्तिसुदृशो मञ्जीरशिञ्जारवो
व्योमाध्वन्युदियाय मन्द्रविजयप्रस्थानभेरीरवः ॥४॥

§ ६) उद्यन्मन्दजयानकध्वनिभरः सत्रस्तदिक्कुम्भिराट्-
फिट्कारैः कुलभूधराग्रिमगुहासंसुप्तपञ्चोद्विषाम् ।
कोपोद्बुद्धवता च गर्जितरवैर्जुष्टो दिशो जेष्यत-
श्चक्रेशात्प्रथमं दिगन्तवलयान्याक्रान्तवांस्तत्क्षणम् ॥५॥

§ ७) तदानीमुदारपराक्रमश्चक्रधरः शत्रुबलजलधिशोषणवडवाग्निकल्पेन मूर्तेनेव प्रतापपुञ्जेन सुदर्शननाम्ना चक्ररत्नेन, विचित्रमणिमयूखचित्रितेन सूर्यप्रभनाम्ना छत्ररत्नेन, समुत्खात-

---

व्रिदधे । §५) दृप्तेति—उद्यश्चासौ चक्रधरश्चेति उद्यच्चक्रधरस्तस्य विजयोद्योगवतश्चक्रवर्तिन मन्द्रो गम्भीरो यो विजयप्रस्थानभेरीणा रवो विजयप्रयाणदुन्दुभिनाद स व्योमाध्वनि गगनमार्गे उदियाय उज्जगाम । अथ तमेव रव विशेषयितुमाह—दृप्तारातय एव सगर्वशत्रव मदेभा मत्तमतङ्गजास्तेषा केसरिरवो मृगेन्द्रशब्द, तत्सैन्यवीरावली भरतपृतनावीरश्रेणी एव केकिव्रात मयूरसमूहस्तस्य घनारवो मेघशब्द, त्रिभुवनाभोगे त्रिजगदजिरे चिर दीर्घकालेन नटन्त्या नृत्यन्त्या. कीर्तिसुदृशो यश स्त्रिया मञ्जीरशिञ्जारवो नूपुरशिञ्जितरव । रूपकालंकार । शार्दूलविक्रीडितच्छन्द ॥४॥ § ६) उद्यन्निति—उद्यन् उद्गच्छन् मन्द्रो गभीरो यो जयानकध्वनिभरो विजयदुन्दुभिशब्दसमूह स सत्रस्ताना भीताना दिक्कुम्भिराजां दिग्गजराजाना फिट्कारैरव्यक्तशब्दविशेषै, कोपेन क्रोधेन उद्बुद्धवन्तो जागृतास्तेषा कुलभूधराणां कुलाचलानाम् अग्रिमगुहासु संसुप्ता कृतशयना ये पञ्चोद्विष. सिंहास्तेषा गर्जितरवैश्च गर्जनध्वनिभिश्च जुष्ट सेवित. सन् दिशो हरित 'दिशस्तु ककुभ काष्ठा आशाश्च हरितश्च ता' इत्यमर, जेष्यत चक्रेशात् चक्रपते. प्रथम पूर्वं तत्क्षण तत्काल यथा स्यात्तथा दिगन्तवलयानि काष्ठान्तमण्डलानि आक्रान्तवान् व्याप्तवान् । शार्दूलविक्रीडितछन्द. ॥५॥ § ७) तदानीमिति—तदानी तस्मिन्काले उदारो महान् पराक्रमो यस्य तथाभूतः 'उदारो दातृमहतो.' इत्यमर, चक्रधरो भरत. शत्रुबल रिपुसैन्यमेव जलधिः सागरस्तस्य शोषणाय वाडवाग्निकल्पेन वडवानलसदृशेन मूर्तेन साकारेण प्रतापपुञ्जेनेन तेजोराशिनेव सुदर्शननाम्ना चक्ररत्नेन, विचित्रमणीना नैकविधरत्नाना मयूखैश्चित्रित

रहा था । § ५) दृप्तेति—उद्यमशील चक्रवर्तीकी विजययात्राके समय बजनेवाली भेरियो का जो जोरदार शब्द आकाशमार्गमे गूंज उठा था वह अहंकार शत्रुरूपी मदोन्मत्त हाथियों के लिए सिंहकी गर्जना था, उनकी (भरतकी) सेनाके योद्धाओ की पंक्तिरूपी मयूर समूहके लिए मेघों का शब्द था और चिरकालसे त्रिभुवनके मैदानमे नृत्य करनेवाली कीर्तिरूपी स्त्रीके नूपुरों का मनोहर शब्द था ॥४॥ § ६) उद्यन्निति—ऊपरकी ओर उठता हुआ विजयसम्बन्धी नगाड़ो का जोरदार शब्दसमूह, भयभीत दिग्गजों की फिट्कार तथा क्रोधसे जागृत कुलाचलों के आगेकी गुहाओं में सोये हुए सिंहों की गर्जना सम्बन्धी शब्दो के साथ मिलकर दिशाओंको जीतनेवाले चक्रवर्तीसे पूर्व ही दिशाओंको तत्काल व्याप्त कर गया था ॥५॥ § ७) तदानीमिति—उस समय जो महान् पराक्रमका धारक था, शत्रुओंकी सेनारूपी समुद्रको सुखानेके लिए वडवानलके समान अथवा मूर्तिधारी प्रतापके पुंजके समान सुदर्शन नामक चक्ररत्नसे नाना प्रकारके मणियोंकी कान्तिसे चित्र-विचित्र सूर्यप्रभ

मात्रवित्रस्तसमस्तरिपुमण्डलेन, वीरलक्ष्मीकर्णपूरनीलेन्दीवरश्यामलेन सौनन्दकनाम्ना खड्गरत्नेन, विजयार्धगिरिगुहागह्वरवज्रकवाटपुटविघटनपटुना चण्डवेगनाम्ना दण्डरत्नेन, अतिविषमजलदुर्गसमुत्तरणनिरतसकलशिबिरसधारणधुरीणवज्रमयचर्मरत्नेन, चक्रवर्तिमणिमुकुटशिखरायमाणचूडानाममणिरत्नेन, महागुहागह्वरान्तरसूचीभेद्यतमस्ततिनिरसनप्रभाप्रभूतगुणोपेतेन चिन्ताजननीनामधेयेन काकिणीरत्नेन, नामग्रहणमात्रेणान्तर्निहितसमस्तवस्तुसमर्पणप्रवीणकामवृष्टिनामगृहपतिरत्नेन, अतिपराक्रमशालिना षड्विधसेनापालनपरायणेन अयोध्यनाम्ना सेनापतिरत्नेन, अनुस्मरणमात्रनिर्वर्तितसप्ततलादिप्रासादप्रकरेण भद्रमुखनाम्ना तक्षकरत्नेन, शान्तिपौष्टिकादिक्रियाकुशलधर्मकार्याधिकृतेन बुद्धिसागरनामधेयेन पुरोहितरत्नेन, कामरूपिणा कामचारिणा विजयार्धपर्वताभिधानेन यागहस्तिरत्नेन, विजितपवनवेगेन द्वादशयोजनोल्लङ्घनरहोनिवासभूतेन पवनजय-

---

विविधवर्णीकृतं तेन सूर्यप्रभनाम्ना छत्ररत्नेन, समुत्खातमात्रेण समुन्नमनमात्रेण वित्रस्तं भयभीत समस्तरिपुमण्डल सर्वशत्रुसमूहो येन तेन वीरलक्ष्म्या वीरश्रिया कर्णपूर कर्णाभरणीभूत यत् नीलेन्दीवर नीलोत्पल तद्वत् श्यामलेन कृष्णेन सौनन्दकनाम्ना खड्गरत्नेन, विजयार्धगिरे रजताचलस्य गुहागह्वरस्य गुहाविवरस्य यद् वज्रकवाटपुट तस्य विघटने विदारणे पटु दक्ष तेन चण्डवेगनाम्ना दण्डरत्नेन, अतिविषम विषमतर यत् जलदुर्गं तस्य समुत्तरणे निरत लीन यत् सकलशिबिरं तस्य सधारणे धुरीण निपुण यद् वज्रमयचर्मरत्न तेन, चक्रवर्तिनो मणिमुकुटस्य रत्नमयमौले शिखरायमाण यत् चूडामणिनामक मणिरत्न तेन, महागुहागह्वरस्य विशालगुहाविवरस्य अन्तरे मध्ये या सूचीभेद्या सघनतमा तमस्ततिस्तिमिरश्रेणी तस्या निरसनी दूरीकरणदक्षा या प्रभा कान्ति सैव प्रभूतगुण प्रकृष्टगुणस्तेन उपेतेन सहितेन चिन्ताजननीनामधेयेन काकिणीरत्नेन, नामग्रहणमात्रेण अन्तर्निहितानि मध्ये स्थितानि, यानि समस्तवस्तूनि निखिलपदार्थास्तेषा समर्पणे प्रदाने प्रवीण निपुण यत् कामवृष्टिनाम गृहपतिरत्न तेन, अतिपराक्रमेण प्रभूतविक्रमेण शालते शोभत इत्येवशीलेन षड्विधसेनाया. पालने रक्षणे परायण तेन अयोध्यनाम्ना सेनापतिरत्नेन, अनुस्मरणमात्रेण चिन्तनमात्रेण निर्वर्तितो रचित. सप्ततलादिप्रासादाना सप्तखण्डादिभवनाना प्रकर समूहो येन तेन भद्रमुखनाम्ना तक्षकरत्नेन स्थपतिरत्नेन, शान्तिपौष्टिकादिक्रियासु कुशलश्चतुर. धर्मकार्येष्वधिकृतश्च तेन बुद्धिसागरनामधेयेन पुरोहितरत्नेन, कामरूपिणा इच्छानुसाररूपयुक्तेन कामचारिणा इच्छानुसारचारिणा विजयार्धपर्वताभिधानेन यागहस्तिरत्नेन

नामक छत्ररत्नसे, उभारने मात्रसे समस्त शत्रुदलोंको भयभीत कर देनेवाले तथा वीरलक्ष्मीके कर्णाभरण स्वरूप नील कमलके समान श्यामल सौनन्दक नामक खड्गरत्नसे, विजयार्ध पर्वतके गुहाविवर सम्बन्धी वज्रमय किवाड़ोंके तोड़नेमें समर्थ चण्डवेग नामक दण्डरत्नसे, अत्यन्त विषम जलरूपी दुर्गम स्थानोंसे पार करनेमें निपुण तथा समस्त सेनाके धारण करनेमें समर्थ वज्रमय चर्मरत्नसे, चक्रवर्तीके मणिमय मुकुटकी कलँगीके समान आचरण करनेवाले चूडामणि नामक मणिरत्नसे, बड़े-बड़े गुहाविवरोंके भीतर विद्यमान घनघोर अन्धकारके समूहको दूर करनेवाली प्रभाके बहुत भारी गुणोंसे सहित चिन्ता जननी नामवाले काकिणीरत्नसे, नाम लेने मात्रसे भीतर रखी हुई समस्त वस्तुओंके देनेमें समर्थ कामवृष्टि नामक गृहपतिरत्नसे, अत्यधिक पराक्रमसे सुशोभित तथा छह प्रकारकी सेनाके पालन करनेमें निपुण अयोध्य नामक सेनापतिरत्नसे, स्मरण करने मात्रसे सप्तादि खण्डोंसे युक्त भवन समूहकी रचना करनेवाले भद्रमुख नामक तक्षकरत्नसे, शान्ति तथा पौष्टिक आदि क्रियाओंके करनेमें कुशल तथा धार्मिक कार्योंके अधिकारी बुद्धिसागर नामक पुरोहितरत्नसे, मनचाहे रूप और मनचाही चालसे चलनेवाले विजयार्ध पर्वत नामक यागहस्ति-

विख्याततुरङ्गरत्नेन, मनोहरस्त्रीरत्नेन च प्रत्येक सहस्रयक्षयक्षीरक्षितेन यथोचितमनुगम्यमानः शारदनीरदानुकारिविमलदुकूल' चन्द्रातपपाण्डुरहरिचन्दनानुलिप्तशरीर, स्फुरन्मल्लिकामालापरिष्कृतमुकुटतटस्तारातरलमुक्ताफलकलिताजानुविलम्बिब्रह्मसूत्रो जयलक्ष्मीपरिणयमङ्गलमणिमयदीपायमानकौस्तुभमणिघृणिभासुरवक्ष स्थल' समुद्दण्डभुजदण्डवास्तव्यचञ्चलराज्यलक्ष्मीकनकनिगलशङ्काकराङ्गदशोभित सुरचापविलासोपहासिरुन्द्रेन्द्रच्छन्दहाराभिरामो, निजस्थपतिरत्ननिर्मित मनःपवनपत्रिपत्रिपतिचतुष्टयविनयसजातकीर्तिपुञ्जैरिव चतुर्भिः शशिश्वेतैर्वाजिभिर्योजितमजितजयनामधेय स्यन्दनमधिरूढ. सान्द्रमन्द्रजयदुन्दुभिध्वानपुरःसरजयघोषैः पुरन्ध्रिकाजनमङ्गलगीतसंगतगुरुजनाशीर्वचनैश्च पूरितनभःस्थलो वारनारीकरचलितचामरनिकरदम्भसभूत-

विजित पवनवेगो वायुरहो येन तेन द्वादशयोजनोल्लङ्घन यद् रहो वेगस्तस्य निवासभूतेन पवनजयविख्याततुरङ्गरत्नेन, मनोहर मनोज्ञ यत्स्त्रीरत्न तेन च प्रत्येक प्रतिरत्न सहस्र यक्षयक्ष्य इति सहस्रयक्षयक्ष्यस्ताभी रक्षितेन यथोचित यथायोग्यम् अनुगम्यमान अनुस्रियमाण, शारदनीरदानुकारिणी शरन्मेघसदृशे विमलदुकूले स्वच्छक्षौमे यस्य तथाभूत शुक्लवस्त्रधारीत्यर्थ., चन्द्रातप इव ज्योत्स्नेव पाण्डुरो धवलो यो हरिचन्दन शुक्लमलयजस्तेनानुलिप्त दिग्ध शरीर यस्य स, स्फुरन्त्या शोभमानया मल्लिकामालया मालतीस्रजा परिष्कृत शोभित मुकुटतट यस्य स, तारावत्तरलैर्मुक्ताफलैर्मौक्तिकै कलित निर्मितम् आजानुविलम्बि आजह्नुविलम्बि ब्रह्मसूत्र यज्ञोपवीताभिधानाभरणं यस्य स., 'जानु जह्नु च' इति धनजय, जयलक्ष्म्या विजयश्रिया परिणयो विवाहस्तस्य मङ्गलमयो यो मणिदीपस्तद्वदाचरन् य कौस्तुभमणिस्तस्य घृणिभि किरणैर्भासुर वक्ष स्थल यस्य स, समुद्दण्डभुजदण्डे वास्तव्या निवसनशीला या चञ्चलराजलक्ष्मीस्तस्या. कनकनिगलस्य स्वर्णनिगडस्य शङ्काकरेणाङ्गदेन केयूरेण शोभित समलकृत, सुरचापविलासोपहासी शक्रशरासनशोभोपहासो यो रुन्द्रेन्द्रच्छन्दहारो नानायष्टियुक्तेन्द्रच्छन्दनामकहारस्तेनाभिरामो रमणीय, निजस्थपतिरत्नेन स्वकीयतक्षकरत्नेन निर्मित रचित मनश्च चित्त च पवनश्च वायुश्च पत्री च वाणश्च पत्रिपतिश्च गरुडश्चेति मन पवनपत्रिपतयस्तेषा चतुष्टयस्य चतुष्कस्य यो विजयस्तेन सजाता समुत्पन्ना कीर्तिपुञ्जा यशोराशयस्तैरिव चतुर्भि शशिश्वेतैरिन्दुधवलै. वाजिभिर्हयै 'वाजिवाहार्वगन्धर्वहयसैन्धवसप्तय' इत्यमर, योजित सहित अजितजयनामधेय स्यन्दन रथम् अधिरूढोऽधिष्ठित., सान्द्रमन्द्रेण निविडगभीरेण दुन्दुभिध्वानेन भेरीशब्देन पुर सरा सहिता ये जयघोषा आलोकशब्दास्तै, पुरन्ध्रिकाजनाना सुवासिनीना मङ्गलगीतै सगतानि सहितानि यानि गुरुजनाशीर्वचनानि तैश्च पूरित सभरित नभ स्थलं येन स, वारनारी-

रत्नसे, पवनके वेगको जीतनेवाले तथा बारह योजनको लाँघनेवाले वेगके निवासभूत पवनंजय नामसे प्रसिद्ध अश्वरत्नसे और मनोहर स्त्रीरत्नसे जो यथायोग्य अनुगम्यमान था जिसके ये प्रत्येक रत्न एक-एक हजार यक्ष-यक्षियोंसे रक्षित थे, जिसके निर्मल वस्त्र शरद् ऋतुके मेघोंका अनुकरण कर रहे थे, जिसका शरीर चाँदनीके समान सफेद चन्दनसे लिप्त था, जिसका मुकुटतल खिली हुई मालतीकी मालासे सुशोभित था, जिसका ताराओंके समान चमकीले मोतियोसे निर्मित यज्ञोपवीत घुटनों तक लम्बा था, जिसका वक्षःस्थल विजयलक्ष्मीके विवाह-सम्बन्धी मंगलमय मणिदीपके समान आचरण करनेवाले कौस्तुभ मणिकी किरणोंसे देदीप्यमान था, जो उन्नत बाहुदण्डमे निवास करनेवाली विजय लक्ष्मीके स्वर्णनिर्मित तोरणोंकी शंका करनेवाले बाजूबन्दोंसे सुशोभित था, जो इन्द्रधनुषकी शोभाकी हँसी उडानेवाले अनेक लड़ोंसे युक्त इन्द्रछन्द नामक हारसे मनोहर था, जो अपने स्थपति रत्नके द्वारा निर्मित, मन, वायु, बाण और गरुड इन चारोंको जीतनेसे उत्पन्न कीर्तिसमूहोंके समान तथा चन्द्रमाके समान शुक्ल चार घोड़ोंसे जुते हुए रथपर सवार था, सघन तथा गम्भीर

जयलक्ष्मीकटाक्षक्षीरार्णवः परितो रथारूढैर्महामुकुटबद्धैः परिवृतश्चलितेनेवापरसागरेण बलेन शबलितपुरोभागो दूरादेव प्रणतमस्तकैः सेनाध्यक्षैः प्रतिपाल्यमानवीक्षणावसरः शनैः राजमन्दिरान्निर्याय चञ्चत्पञ्चतोरणालंकृतासु रथ्यासु प्रविशमानो मनुवंशगगनतलोदितभरतचन्द्रकान्तिचन्द्रिकाक्षुभितनगरक्षीरवाराशिवीचिपरम्परानुकारि - सौधालम्बिपुरनितम्बिनीजनपरिमुक्तापाङ्ग - शीकरनिकरमेदुरसाक्षतलाजमौक्तिकदन्तुरितसविधप्रदेशः पुरान्निश्चक्राम ।

§ ८) क्ष्माभृत्प्रोत्तुङ्गसिन्दूरितकरटिघटाडम्बरैः कुङ्कुमाभ-
त्वङ्गत्प्रोद्यत्तुरङ्गैः रथिकवरचयैश्चारुचित्राम्बरेद्धैः ।
भानुप्रस्पर्द्धिचक्रप्रतिफलनलसद्धेतिहस्तैः पदाति-
व्रातैश्चक्रिप्रतापाम्बुधिरिव चलितस्तद्बलौघो बभासे ॥६॥

करेण वाराङ्गनाहस्तेन चलितो वीजितो यश्चामरनिकरो बालव्यजनसमूहस्तस्य दम्भेन छलेन सभूत समुत्पन्नो जयलक्ष्मीकटाक्षा एव क्षीरार्णवः क्षीरसागरो यस्य सः, परित समन्तात् रथारूढैः स्यन्दनसमधिष्ठितैः महामुकुटबद्धैर्महामुकुटबद्धनृपतिभिः परिवृत परीत, चलितेन अपरसागरेण अन्यसमुद्रेणेव बलेन सैन्येन शबलितश्चित्रित पुरोभागो यस्य स. दूरादेव प्रणतमस्तकैः नम्रशिरस्कैः सेनाध्यक्षैः पृतनापतिभि. प्रतिपाल्यमान प्रतीक्ष्यमाणो वीक्षणावसरो दर्शनसमयो यस्य, स शनैः राजमन्दिरात् नरेन्द्रमन्दिरात् निर्याय निर्गत्य चञ्चद्भि पञ्चतोरणैः पञ्चसंख्याकतोरणैरलंकृतासु शोभितासु रथ्यासु रथार्हराजमार्गेषु प्रविशमान. प्रवेशं कुर्वन्, मनुवंश एव गगनतलं नभस्तलं तस्मिन्नुदितो यो भरतचन्द्रभरतेन्दुस्तस्य कान्तिरेव चन्द्रिका कौमुदी तया क्षुभित समुद्वेलितो यो नगरक्षीरवाराशि पुरपय पारावारस्तस्य वीचिपरम्परायास्तरङ्गसंततेरनुकारी सौधावलम्बी प्रासादपृष्ठस्थितो य. पुरनितम्बिनीजनो नगरनारीनिचयस्तेन परिमुक्तास्त्यक्ता येऽपाङ्गशीकरा कटाक्षजलकणास्तेषा निकरेण समूहेन मेदुराणि सहितानि साक्षतानि शालेयसहितानि यानि लाजमौक्तिकानि भर्जितधान्यपुष्पमुक्ताफलानि तैर्दन्तुरितो नतोन्नत सविधप्रदेशो यस्य तथाभूत सन् पुरात् नगरात् निश्चक्राम निरियाय निर्गत इत्यर्थ । § ८) क्ष्माभृदिति—क्ष्माभृत इव पर्वता इव इव प्रोत्तुङ्गा अत्युन्नता सिन्दूरिता. सिन्दूरयुक्ता या करटिघटा हस्तिपङ्क्तयस्तासामाडम्बरैर्विस्तारै., त्वङ्गन्त समुच्चलन्तो ये प्रोद्यत्तुरङ्गा उन्नताश्वास्तै, चारुचित्राम्बरै सुन्दरविविधवर्णवस्त्रैरिद्धा दीप्तास्तै रथिकवरचयै

विजय-दुन्दुभियोंके शब्दोंसे सहित जय-जयकारकी घोषणाओं और स्त्रीजनोंके मंगल गीतोंसे सहित गुरुजनोंके आशीर्वादात्मक वचनोंसे जिसने नभ स्थलको भर दिया था, जो वेश्याओंके हाथोंसे चलाये हुए चामर समूहके छलसे उत्पन्न विजयलक्ष्मीके कटाक्षरूपी क्षीर सागरसे युक्त था, रथोंपर सवार महामुकुटबद्ध राजाओं द्वारा जो चारों ओरसे घिरा हुआ था, चलते हुए दूसरे समुद्रके समान दिखनेवाली सेनासे जिसका आगेका भाग व्याप्त हो रहा था, और दूरसे ही मस्तक झुकानेवाले सेनापतियोंके द्वारा जिनके देखनेके समयकी प्रतीक्षा की जा रही थी, ऐसा भरत चक्रवर्ती धीरे-धीरे राजभवनसे निकलकर शोभायमान पाँच तोरणोंसे अलंकृत चौड़ी सड़कोंपर आया। उस समय मनुवंश रूपी आकाशमें उदित भरत-रूपी चन्द्रमाकी कान्तिरूपी चाँदनीसे लहराते हुए नगररूपी क्षीरसागरकी लहरोंके समान सुशोभित एवं महलोंपर चढ़ी हुई स्त्रियोंके द्वारा छोड़े गये कटाक्षरूपी जलकणोंके समूहसे युक्त धान्यकी लाई और मोतियोंसे उसका समीपवर्ती प्रदेश नतोन्नत हो रहा था। इस तरह वह नगरसे निकला। § ८) क्ष्माभृदिति—पर्वतोंके समान अत्यन्त ऊँचे तथा सिन्दूरसे सुशोभित हस्तिसमूहके विस्तारों, उछलते हुए ऊँचे घोड़ों, नाना प्रकारकी सुन्दर पताकाओंसे देदीप्यमान श्रेष्ठ रथोंके समूहों तथा सूर्यके साथ स्पर्धा करनेवाले चक्ररत्नके प्रतिबिम्बसे

§ ९) बलाघातोद्गीर्णक्षितितलगलद्धूलिनिकरे
नभोभागे तन्वत्यविरलपयोदालितुलनाम् ।
पदातिव्राताना करतलचलत्खड्गलतिका
वितेनुः प्रागल्भ्य प्रतिदिशि चलानेकतडिताम् ॥७॥

§ १०) दिशायुवतिकीर्णसत्सुपटवासचूर्णोऽथवा
जगत्कमलवासिनीप्रमदमुष्टिपिष्टातक. ।
अमानि बहुधा सुरै सदनसङ्गिपौराङ्गना-
वशीकरणचूर्ण इत्यमितसैन्यरेणूत्करः ॥८॥

§ ११) तदा किल प्रचलितप्रलयजलधिशङ्काकरे चक्रधरसैन्ये पुर सरसेनापतिपुरस्कृत-दण्डरत्नसमीकृततया राजपथायमाने मार्गे प्रभास्वरपुर सरचक्ररत्नानुसारेण प्राङ्मुख प्रचलिते

रथारोहिश्रेष्ठसमूहे , भानुप्रस्पर्द्धि सूर्यप्रस्पर्द्धि यत् चक्र चक्ररत्न तस्य प्रतिफलनेन प्रतिबिम्बीभावेन लसन्त्यो देदीप्यमाना हेतय शस्त्राणि हस्तेपु येषा तथाभूतै. पदातिव्रातै पत्तिसमूहै उपलक्षित:-तद्बलौघ तदीयसैन्य-समूह चक्रिप्रतापाम्बुधिरिव चक्रधरतेजस्तोयराशिरिव बभासे शुशुभे । उपमा । स्रग्धराछन्द. ॥६॥ § ९) बलेति—बलाघातेन सेनाघातेनोद्गीर्णं यत्क्षितितल वसुधातल तस्माद् गलन् पतन् यो धूलिनिकर-स्तस्मिन् नभोभागे गगनैकदेशे अविरला निरन्तरा या पयोदालि मेघपङ्क्तिस्तस्यास्तुलना तन्वति विस्तारयति सति, पदातिव्राताना पत्तिप्रचयाना करतलेषु हस्ततलेषु चलन्त्यो या खड्गलतिका कृपाणवल्लर्य. प्रतिदिशि प्रतिकाष्ठ चलानेकतडितां चञ्चलविविधविद्युता प्रागल्भ प्रौढी वितेनु' विस्तारयामासु. । शिखरिणी छन्द ॥७॥ § १०) दिशेति—अमितसैन्यरेणूत्कर अपरिमितपृतनापरागप्रचय सुरैरमरै दिशायुवतिषु काष्ठाकामिनीषु कीर्ण. प्रक्षिप्त सन् समीचीन सुपटवासचूर्ण सुवस्त्रसुगन्धीकरणचूर्ण , अथवा जगदेव कमल जगत्कमल तस्मिन् वासिनी श्रीरित्यर्थ तस्या' प्रमदाय हर्षाय मुष्टिपिष्टातको मुष्टिस्थितसुगन्धिचूर्णविशेषः, अथवा सदनसङ्गिन्यो भवनोपरि विद्यमाना या पौराङ्गना नागरनार्यस्तासा वशीकरणचूर्ण इति वा, अमानि मन्यते स्म । पृथ्वीछन्द ॥८॥ § ११) तदेति—तदा किल तस्मिन् काले प्रचलितो य प्रलयजलधि- प्रलय-पारावारस्तस्य शङ्काकरे संशयकारके चक्रधरसैन्ये चक्रवर्तिसैन्ये पुर सरोऽग्रेयायी य सेनापति सेनानीस्तेन पुरस्कृतेनाग्रेकृतेन दण्डरत्नेन समीकृततया समतलीकृततया राजपथायमाने राजमार्ग इवाचरति मार्गे प्रभास्वरं देदीप्यमान पुरस्सर यत् चक्ररत्नं तदनुसारेण प्राङ्मुख पूर्वमुख यथा स्यात्तथा प्रचलिते सति सकलमपि

चमकते हुए शस्त्रोंको हाथमें धारण करनेवाले पैदल सिपाहियोंके समूहसे सहित चलता हुआ वह सेनाका समूह चक्रवर्तीके प्रतापरूपी समुद्रके समान सुशोभित हो रहा था ॥६॥ § ९) बलाघातेति—सेनाके आघातसे खुदे हुए पृथिवीतलसे उठनेवाली धूलिका समूह जब आकाशमे निरन्तर व्याप्त मेघसमूहकी तुलनाको विस्तृत करने लगा तब प्रत्येक दिशामें पैदल—सैनिकोंके हाथोंमे चमकती हुई तलवारें कौंधती हुई बिजलियोंकी प्रौढताको विस्तृत करने लगीं ॥७॥ § १०) दिशेति—उस अपरिमित सेनासम्बन्धी धूलिके समूहको देवोंने इस प्रकार माना था—क्या यह दिशा रूपी स्त्रियोंके ऊपर फेंका हुआ कपडोंको सुगन्धित करनेवाला चूर्ण है, अथवा जगत्‌रूपी कमलिनीमे निवास करनेवाली लक्ष्मीके ऊपर हर्षसे छोडी हुई मुट्ठीभर गुलाल है अथवा भवनोंपर स्थित नगरवासिनी स्त्रियोंको वश करने वाला वशीकरण चूर्ण है ॥८॥ § ११) तदेति—तदनन्तर जब चलते हुए प्रलयकालीन समुद्रकी शंका करनेवाली चक्रवर्तीकी सेना, आगे-आगे चलनेवाले सेनापतिके द्वारा आगे किये हुए दण्डरत्नके द्वारा समतल किये जानेके कारण राजमार्गके समान आचरण करने-

सकलमपि महीतलं चतुरङ्गमयम्, अशेषदिङ्मण्डल रजोमय, नभःस्थल च दिविजविद्याधरमयम्, अन्तरीक्षं चातपत्रमय, समीरकुल च मदगन्धमयं, भुवनोदर च जयजीवेत्यादिघोषमय चाविरास ।

§ १२) ततः सैन्यैः साक विततपथमुल्लङ्घ्य भरत-
क्षितीशः सोऽद्राक्षीत्पुलिनजघनां पद्मनयनाम् ।
मुदा गङ्गा सद्यस्तनकमलकोशा घनरस-
स्फुरद्रूपा वेणीकलितघनपुष्पां सुरुचिराम् ॥८॥

§ १३) व्यापारितदृश तत्र विलोक्य पृथिवीपतिम् ।
स्फारधीर्वाचमित्यूचे सारथिश्चित्तरञ्जनम् ॥९॥

निखिलमपि महीतल भूतल चतुरङ्गमय चतुरङ्गसैन्यमय, अशेषदिङ्मण्डल निखिलाशाचक्रवाल रजोमय धूलिमय, नभ स्थल च गगनस्थल च दिविजविद्याधरमय देवखेचरमयम्, अन्तरीक्ष गगनम् आतपत्रमय छत्रमय, समीरकुल वायुकुल च मदगन्वमय गजमदगन्धमय, भुवनोदरं च जगन्मध्य च जयजीवेत्यादिघोषमय च आविरास प्रकटीबभूव । § १२) तत इति—ततस्तदनन्तर सैन्यै पृतनाभि साक विततपथं विस्तृतमार्गम् उल्लङ्घ्य स भरतक्षितीशो भरतनरेन्द्रो मुदा हर्षेण गङ्गा गङ्गानदी विशेषणसाम्यात् काचित् कामिनी च अद्राक्षीत् अवलोकयामास । उभयो सादृश्यमाह—तत्र गङ्गापक्षे पुलिन जघनमिव नितम्बमिव यस्यास्ता पक्षे पुलिनमिव जघन यस्यास्ता, पद्मानि नयनानीव यस्यास्ता पक्षे पद्मे इव नयने यस्यास्ता, सद्यस्तनास्तत्कालभवा कमलकोशा कमलकुड्मलानि यस्यास्ता पक्षे सद्य स्तनौ कमलकोशाविव यस्यास्ता, घनरसेन प्रभूतजलेन स्फुरत् रूप यस्यास्ता पक्षे घनरसेन निविडश्रृङ्गारादिरसेन स्फुरद्रूप यस्यास्ता, वेण्या प्रवाहे कलित धृतं घनपुष्प जल यया ता पक्षे वेण्यो कवर्यो कलितानि धृतानि घनपुष्पाणि अधिककुसुमानि यया ता, सुरुचिरा सुन्दरीम् उभयत्र समानाम् । श्लेषोपमा । शिखरिणीछन्दः ॥८॥ § १३) व्यापारितेति—तत्र गङ्गाया व्यापारिते दृशौ येन त तथाभूत पृथिवीपतिं भरतेश्वरम् अवलोक्य स्फारधीर्विशालबुद्धि सारथि.

वाले मार्गसे देदीप्यमान तथा अग्रसर चक्ररत्नके अनुसार पूर्व दिशाकी ओर चलने लगी, तब समस्त पृथिवीतल चतुरगसेनामय, समस्त दिशाओंका मण्डल धूलिमय, आकाश देव और विद्याधरमय, आकाश छत्रमय, वायुका समूह मदकी सुगन्धमय और जगत्का मध्यभाग जय जीव आदि शब्दोंसे तन्मय हो गया । § १२) तत इति—तदनन्तर राजा भरतने सेनाओंके साथ लम्बा मार्ग पार कर बड़े हर्षपूर्वक उस गंगा नदीको देखा जो कि स्त्रीके समान जान पड़ती थी क्योंकि जिस प्रकार स्त्री पुलिनके समान नितम्बोंसे सहित होती है उसी प्रकार गंगा नदी भी नितम्बोंके समान पुलिनों—दोनों तटोंसे सहित थी, जिस प्रकार स्त्री कमलोंके समान नेत्रोंसे सहित होती है उसी प्रकार गगा नदी भी नेत्रोंके समान कमलोंसे सहित थी, जिस प्रकार स्त्री कमल-कुड्मलोंके समान उठते हुए स्तनोंसे सहित होती है उसी प्रकार गंगा नदी भी तत्काल उत्पन्न कमल-कुड्मलोंसे सहित थी, जिस प्रकार स्त्रीका रूप श्रृंगारादि रसो से सुशोभित होता है उसी प्रकार गंगा नदीका आकार भी अत्यधिक जलसे शोभायमान था, जिस प्रकार स्त्री चोटीमें गूँथे हुए अत्यधिक पुष्पोंसे सहित होती है उसी प्रकार गंगा नदी भी प्रवाह युक्त जलसे सहित थी और जिस प्रकार स्त्री अत्यन्त रुचिर—सुन्दर होती है उसी प्रकार गंगा नदी भी अत्यन्त रुचिर—रुचिवर्धक थी ॥८॥ § १३) व्यापारितेति—जिसके नेत्र गंगापर पड़ रहे थे ऐसे भरतेश्वरको देख विशाल बुद्धिका धारक सारथि, मनोरजन करता हुआ इस प्रकारके वचन बोला ॥९॥

§ १४) अप्प्रदानैकशीलापि स्वर्णस्तोमप्रदायिनी ।
सवेगगमनाप्येषा चित्र हंसस्फुरद्गतिः ॥१०॥

§ १५) इय सुकमला पद्मराजीलोपाश्रितापि च ।
सरसत्व गताप्येषा नीरसत्त्वमुपैत्यहो ॥११॥

§ १६) इति सारथिवचन श्रवणदेशे विदधान प्रकृष्टतररथवेगापरिज्ञातवहुदूराध्वलङ्घनश्चक्रधरश्चिरविरहमसहमानतया स्वयमनुयातामिव साकेतपुरी पटमन्दिरपालि प्रविश्य तत्र दिनमतिवाह्यान्येद्युरपरमिव विजयार्धाचल तन्नामधेय सिन्धुरमधिरूढः प्रचलितपरमकरवालयातिशयितसिन्धुरयोज्ज्वलया वहुलहरिजालकोलाहलमुखरितदिगन्तरया षडङ्गवाहिन्या गङ्गावाहिन्या

इति वक्ष्यमाणा वाच गिरम् चित्तरञ्जन यथा स्यात्तथा ऊचे जगाद ॥९॥ § १४) अप्प्रदानेति—एषा गङ्गा अपा जलाना प्रदान वितरण एक शील यस्यास्तथाभूतापि सती स्वर्णस्तोमस्य सुवर्णसमूहस्य प्रदायिनीति विरोध. पक्षे सुष्ठु अर्ण स्वर्ण सुजल तस्य स्तोमस्य समूहस्य प्रदायिनी, सवेगगमनापि तीव्रगतिरपि हसस्येव स्फुरन्ती गतिर्यस्यास्तथाभूता मन्दगमनेति चित्र विस्मयास्पदम्, परिहारपक्षे हसैर्मरालै स्फुरन्ती शोभमाना गतिर्यस्यास्तथाभूता । विरोधाभास ॥१०॥ § १५) इयमिति—इय गङ्गा पद्माना कमलाना राजी पङ्क्तिस्तस्या लोपेनाभावेन आश्रिता सहितापि सुकमला शोभनानि कमलानि पद्मानि यस्या तथाभूतेति चित्र, परिहारपक्षे सुष्ठु कमल जल यस्या तथाभूता 'कमल सलिले ताम्रे जलजे क्लोम्नि भेपजे' इति मेदिनी । एषा गङ्गा सरसत्व रससहितता गतापि प्राप्तापि रसान्निष्क्रान्तो नीरस रसरहितस्तस्य भावस्तत्त्वं रसरहितताम् उपैति प्राप्नोतीत्यहो चित्र परिहारपक्षे सरसत्व सजलत्व गतापि नीरस्य जलस्य सत्त्वमिति नीरसत्त्वम् उपैति प्राप्नोति । विरोधाभास ॥११॥ § १६) इतीति—इति पूर्वोक्त सारथिवचन सूतवचन श्रवणदेशे कर्णप्रदेशे विदधान शृण्वन्नित्यर्थ प्रकृष्टतररथवेगेन प्रभूततरस्यन्दनरहसा अपरिज्ञातमविदित वहुदूराध्वलङ्घन दीर्घतममार्गातिक्रमण येन तथाभूतश्चक्रधरो भरतेश्वर चिरविरह दीर्घविप्रयोगम् असहमानतया सोढुमसमर्थतया स्वय स्वत अनुयाता समनुगता साकेतपुरीमिवायोध्यानगरीमिव पटमन्दिरपालिम् उपकार्याश्रेणी प्रविश्य तत्र दिन दिवसमतिवाह्य व्यपगमय्य अन्येद्युरन्यस्मिन्दिवसे अपर द्वितीय विजयार्धाचलमिव विजयार्धपर्वतमिव तन्नामधेय विजयार्धाचलनामान सिन्धुर गजम् अधिरूढ अधिष्ठित षडङ्गवाहिन्या

---

§ १४) अप्प्रदानेति—यह गंगा नदी एक जलको देनेवाले स्वभावसे सहित होकर भी स्वर्णसमूहको देनेवाली है (पक्षमें उत्तम जलसमूहको देनेवाली है) और वेगसहित गमनसे सहित होकर भी हंसोंके समान सुशोभित मन्थर गतिसे सहित है (पक्षमे हंसोंसे सुशोभित गतिसे युक्त है) ॥१०॥ § १५) इयमिति—यह गगानदी यद्यपि कमलपक्तिके अभावसे सहित है तो भी सुकमला—उत्तम कमलोंसे सहित है (पक्षमें उत्तम जलसे सहित है) तथा सरसताको प्राप्त होकर भी नीरसताको प्राप्त है (पक्षमे जलके सद्भावको प्राप्त है) ॥११॥ § १६) इतीति—इस प्रकार जो सारथिके वचन सुन रहे थे तथा रथके तीव्र वेगसे जिन्हें वहुत लम्बा मार्ग लाँघनेका भी अनुभव नहीं हो रहा था ऐसे भरतेश्वरने दीर्घकाल तक विरहको न सह सकनेके कारण पीछेसे स्वयं आयी हुई अयोध्या नगरीके समान तम्बूओंकी नगरीमें प्रवेश कर वह दिन वहीं विताया दूसरे दिन दूसरे विजयार्ध पर्वतके समान विजयार्ध पर्वत नामवाले हाथीपर सवार होकर आगेके लिए प्रस्थान किया उस समय जिसमें उत्कृष्ट तलवारें चल रही थीं, जिसमें एक से एक बढकर हाथी थे, जो अत्यन्त उज्ज्वल थे, तथा वहुत अधिक घोड़ोंके समूहसे उत्पन्न कोलाहलके द्वारा जो दिग्दिगन्तको मुखरित कर रही थी ऐसी छह अगोंसे युक्त सेना और

चानुगम्यमान प्रतिदेशमुपनीतप्राभृतजालान्नरपालान् प्रतिवन चमरीबालकस्तूरिकाण्डहस्तिमस्तकोद्भूतमुक्ताफलादिकमुपदीकुर्वाणान् शबरधराश्च यथार्हं संभावयन् गङ्गाद्वारमुपजगाम ।

§ १७) बहिःपारावार भरतनृपतिर्द्वैप्यसलिल
मुदा पश्यस्तत्र स्थलपथगतः सैन्यसहित ।
विशन्वेदीद्वार ततसुरतटिन्यास्तटवने
निवेश सेनायाः समतनुत सन्मन्दपवने ॥१२॥

§ १८) तदनु लवणजलधिजयोद्युक्तस्त्रिरात्रप्रोपितः सादरमधिवसितजैत्रास्त्रसततमन्त्रानुचिन्तनपरतन्त्रः पावन दर्भशयनमधिशयान पुरोधस पुरस्कृत्य विहितपरमेष्ठिपूजः सेनारक्षणाय

षडङ्गसेनया गङ्गावाहिन्या गङ्गानद्या च अनुगम्यमान, अथोभयो सादृश्यमाह—प्रचलितपरमकरवालया प्रचलिता प्रकर्षेण चलिता परमकरवाला श्रेष्ठकृपाणा यस्या तया षडङ्गवाहिन्या, प्रचलिता घूर्णमाना मकरवाला जलजन्तुविशेषशिशवो यस्या तथा गङ्गावाहिन्या, अतिशयितसिन्धुरयोज्ज्वलया अतिशयिता श्रेष्ठा सिन्धुरा गजा यस्या तया अतिसिन्धुरया उज्ज्वलया शोभमानया च षडङ्गवाहिन्या, अतिशयिता अतिक्रान्ता. सिन्धवोऽन्यनद्यो येन तथाभूतो यो रयो वेगस्तेनोज्ज्वलया गङ्गावाहिन्या, बहुलेन प्रभूतेन हरिजालस्य हयसमूहस्य कोलाहलेन कलकलेन मुखरितानि वाचालितानि दिगन्तराणि यया तया षडङ्गवाहिन्या बहुलहरिजालस्य प्रभूततरङ्गस्तोमस्य कोलाहलेन मुखरितानि दिगन्तराणि यया तया गङ्गावाहिन्या । प्रतिदेश प्रतिजनपद उपनीतप्राभृतजालान् प्रापितोपहारसमूहान् नरपालान् राज्ञ, प्रतिवन प्रतिकानन चमरीवाला चमरीमृगपिच्छकचा, कस्तूरिकाण्डा कस्तूरीमृगवृषणा, हस्तिमस्तकोद्भूतानि मतङ्गजमूर्धोत्पन्नानि मुक्ताफलानि च आदौ यस्य तत् उपदीकुर्वाणान् उपायनीकुर्वाणान् शबरधरारमणान् पुलिन्दराजाश्च यथार्हं यथायोग्य सभावयन् समानयन् गङ्गाद्वारम् उपजगाम प्राप । श्लेषोपमा । § १७) बहिरिति—भरतनृपतिर्भरतेश्वर. बहि पारावर समुद्राद्बहि स्थित द्वैप्यसलिल द्वीपस्थितोपसागरजल मुदा हर्षेण पश्यन् अवलोकयन् स्थलपथगत स्थलमार्गश्रित सैन्यसहित पृतनायुत वेदीद्वार विशन् सन्मन्दपवने प्रशस्तमन्दसमीरे ततसुरतटिन्या विस्तृतगङ्गाया तटवने तीरोद्याने सेनाया ध्वजिन्या निवेश समतनुत विस्तारयामास । गङ्गातीरोद्याने सेना निवेशयामासेत्यर्थ. । शिखरिणीच्छन्द ॥१२॥ § १८) तदन्विति—तदनु तदनन्तर लवणजलविजये लवणसमुद्रविजये उद्युक्तस्तत्पर त्रिरात्रप्रोपित. रात्रित्रय यावद्गृहीतोपवास सादर यथा स्यात्तथा अधिवासितानि स्थापितानि यानि जैत्रास्त्राणि तै. सततो यो मन्त्रस्तस्यानु-

---

जिसमे मगरोंके बच्चे उछल-कूद कर रहे थे, जिसने अन्य नदियोंके वेगको तिरस्कृत कर दिया था, जो अत्यन्त उज्ज्वल थी और लहरोंके बहुत भारी कोलाहलसे जो दिग्दिगन्तको मुखरित कर रही थी ऐसी गंगा नदी उनके साथ-साथ चल रही थी। प्रत्येक देशमे बड़े-बड़े उपहारोंके समूहको लेकर आये हुए राजाओंको तथा प्रत्येक वनमे चमरी मृगके बाल, कस्तूरी मृगके अण्डकोष और हाथियोंके मस्तकोमें उत्पन्न गजमोतियों आदिकी भेंट देने वाले म्लेच्छ राजाओंका सम्मान करते हुए वे गगा नदीके द्वारके समीप जा पहुँचे। § १७) बहिरिति—वहाँ समुद्रके बाहर स्थित द्वीप-सम्बन्धी जल (उपसागर) को जो बड़ी प्रसन्नतासे देख रहे थे, तथा जो सेना सहित स्थल मार्गसे चल कर वेदी द्वारसे प्रविष्ट हुए थे ऐसे भरतेश्वरने, समीचीन मन्द पवनसे युक्त विशाल गंगा नदीके तटोद्यानमें सेनाके डेरे डाले ॥१२॥ § १८) तदन्विति—तदनन्तर जो लवण समुद्रके जीतनेमें उद्यमशील थे, तीन दिन-रातका जिन्होंने उपवास किया था, जो आदर सहित रखे हुए विजयके साधनस्वरूप देवोपनीत शस्त्रोंसे सम्बद्ध मन्त्रोंके अनुचिन्तनमें लीन थे, जो पवित्र

सेनान्यं नियोज्य जलस्थलविलङ्घनजङ्घालैर्वाजिभिर्योजितमजितं जयनामधेयं दिव्यास्त्रसंभृतरथमधिरूढः पुरोहितविहितपुण्याशीर्वचनं शिरसा प्रतिगृह्णानो गङ्गाद्वारेण प्रस्थाय मनोजवैर्वाहैरुह्यमानेनाधिजलं यानपात्रायमानेन स्यन्दनेन द्वादशयोजनमवगाह्य रथाङ्गपाणिः कोपेन कुण्डलीकृतवज्रकाण्डकोदण्डो निजप्रशस्तिपरिकलितममोघं शरमारोपयामास।

§ १९) किमेष पाथोधिः क्षुभित इह कल्पान्तपवनै-
रहो निर्घातः किं स्फुटविकटघोराट्टहसितः।
इति त्रासात्सभ्यैरनधिगतरूपोऽथ स शरः
सभामध्येऽपप्तद्विभवविलसन्मागधपतेः ॥१३॥

§ २०) तदनु तत्पराभवासहिष्णुतया क्रोधान्धः स मागधक्रोधाग्नेरिन्धनायमानं सायकं विचूर्णयेत्याज्ञप्तभटनिकरस्ततः प्रथितमतिकौशलैरभ्यर्णगतसुरैरयं चक्रधरशरो गन्धाक्षतादिभिर-

---

चिन्तनस्य परतन्त्रः पराधीनः, पावनः पूतः दर्भशयनं कुशशय्याम् अधिशयानोऽधिष्ठितः पुरोधसं पुरोहितं पुरस्कृत्य अग्रेकृत्य विहितपरमेष्ठिपूजः कृतपरमेष्ठिसपर्यः सेनारक्षणाय पृतनात्राणाय सेनान्यं सेनापतिं नियोज्य जलस्थलयोर्विलङ्घने जङ्घालैस्तीव्रगतिभिः वाजिभिरश्वैः योजितम् अजितजयनामधेयं दिव्यास्त्रैः संभृतो रथस्तम् अधिरूढः पुरोहितेन विहितं यत् पुण्याशीर्वचनं तत् शिरसा मूर्ध्ना प्रतिगृह्णानः स्वीकुर्वाणः गङ्गाद्वारेण प्रस्थाय प्रयाय मनोजवैर्मनोवेगैः वाहैरश्वैः उह्यमानेन नीयमानेन अधिजलं जलमध्ये यानपात्रायमानेन जलयानायमानेन स्यन्दनेन रथेन द्वादशयोजनम् अवगाह्य प्रविश्य रथाङ्गपाणिः चक्रेश्वरः कोपेन कुण्डलीकृतं वज्रकाण्डकोदण्डं येन तथाभूतः सन् वक्रीकृतवज्रकाण्डधनुष्कः निजप्रशस्तिपरिकलितं निजयशोगाथासहितम् अमोघमव्यर्थं शरं बाणम् आरोपयामास। § १९) किमेष इति—इहास्मिन् लोके एष किं कल्पान्तपवनैः प्रलयप्रबलसमीरैः क्षुभितः प्राप्तक्षोभः किं पाथोधिः सागरः, अहो किं स्फुटविकटं घोराट्टहसितं यस्य तथाभूतः किं निर्घातो वज्रपातध्वनिः इतीत्थं त्रासात् भयात् सभ्यैः सभासदैः अनधिगतमज्ञातं रूपं यस्य तथाभूतः स शरो बाणः अथानन्तरं विभवविलसंश्चासौ मागधपतिश्चेति विभवविलसन्मागधपतिः ऐश्वर्यशोभमानसमुद्राधिपतेः सभामध्ये अपप्तत् पतति स्म। 'किमेष पाथोधिः' इत्यत्र विवर्गलोपश्चिन्त्यः। शिखरिणीछन्दः ॥१३॥ § २०) तदन्विति—स चासौ पराभवस्तत्पराभवस्तस्या सहिष्णुतया, त्रिभुवनगुरु-

---

डाभकी शय्यापर शयन कर रहे थे, पुरोहितको आगे कर जिन्होंने परमेष्ठीकी पूजा की थी, सेनाकी रक्षाके लिए जो सेनापतिको नियुक्त कर जल-थल दोनोंके लाँघनेमें समर्थ घोड़ोंसे जुते हुए तथा देवोपनीत शस्त्रोंसे सहित अजितजय नामक रथपर आरूढ़ हुए थे, जो पुरोहितके द्वारा प्रदत्त पवित्र आशीर्वादके वचनोंको सिरसे स्वीकृत कर रहे थे और गंगाद्वारसे प्रस्थान कर मनके समान वेगशाली घोड़ोंके द्वारा ले जाये जानेवाले एवं पानीके ऊपर जहाजके समान आचरण करनेवाले रथके द्वारा बारह योजन भीतर जाकर जिन्होंने क्रोधसे वज्रमय धनुषको गोल किया था ऐसे चक्रवर्ती भरतेश्वरने अपनी प्रशस्तिसे युक्त अमोघ बाण चढ़ाया। § १९) किमेष इति—क्या यह प्रलय कालके पवनसे क्षोभको प्राप्त हुआ समुद्र है अथवा स्पष्ट भयंकर अट्टहाससे सहित क्या वज्रपातका शब्द है ? इस प्रकार भयसे सभासदोंके द्वारा जिसका रूप नहीं जाना जा सका था ऐसा वह बाण, वैभवसे शोभायमान मागधदेवकी सभाके मध्यमें जा पड़ा ॥१३॥ § २०) तदन्विति—तदनन्तर उस पराभवको न सह सकनेके कारण जो क्रोधसे अन्धा हो रहा था ऐसे उस मागध देवने पहले तो क्रोधरूपी अग्निके ईंधनस्वरूप इस बाण को चूर-चूर कर डालो इस प्रकार भटोंके समूहको आज्ञा दी

भ्यर्चनीय' स च चक्रभृतामाद्यस्त्रिभुवनगुरुतनयो भरतराजः शरार्पणदानादिना पूजनीय इति प्रतिबोधित. प्रशान्तक्रोधः प्रसन्नचित्तवृत्तिः सुरैः सह प्रस्थितो मणिकिरीटमरीचिविचित्रितगगनतलः शरं रत्नपटलनिवेशित पुरोधायासाद्य च चक्रपाणिमिमा वाणी सविनयमभाणीत् ।

§ २१) पुरा लब्ध पुण्य परिणतमय मे सुदिवसो
भवान्यस्मादस्मन्नयनपथपान्थः समभवत् ।
इदानीमस्माक मिलित इव सर्वोत्सवगुणो
भवत्सङ्गानन्दो विवशयति पाप च नुदते ॥१४॥

§ २२) त्रिभुवनगुरुर्यस्य श्रीमान्पिता सकलेष्टदः
सुरनरमुखाः सर्वे यस्यानुशास्तिमुपासते ।
नव च निधयो रत्नान्यर्च्यानि यस्य च तस्य ते
सुलभमुपदीकर्तु लज्जा तनोति मनो मम ॥१५॥

तनय. वृषभेश्वरपुत्र., मणिकिरीटस्य मणिमयमौलेर्मरीचिभिर्विचित्रित गगनतल येन स. । शेष सुगमम् । § २१) पुरेति—पुरा प्राक् लब्ध समर्जितं पुण्यं सुकृत परिणतमुदितम्, मे मम अय सुदिवस' शोभनवासर, यस्मात् कारणात् भवान् अस्मन्नयनपथपान्थोऽस्मन्नेत्रमार्गपथिकः समभवत् । इदानी साप्रत सर्वोत्सवगणः निखिलोत्सवसमूह अस्माक मिलित इव प्राप्त इव, भवत्सङ्गेनानन्दो भवत्सङ्गानन्दो भवत्सङ्गतिसमुद्भूतसमद विवशयति परवश करोति मामिति शेष, पाप दुरित च नुदते दूरीकरोति । शिखरिणीच्छन्द ॥१४॥ § २२) त्रिभुवनेति—श्रीमान् अनन्तचतुष्टयादिलक्ष्मीयुत सकलेष्टदो निखिलमनोरथपूरक त्रिभुवनगुरु वृषभजिनेन्द्रो यस्य पिता जनक अस्तीति शेप, सुरनरमुखा. देवमनुजप्रधाना सर्वे सकला प्राणिन यस्य तव अनुशास्ति समाज्ञाम् उपासते सेवन्ते, यस्य समीपे नवनिधय अर्च्यानि प्रशस्तानि रत्नानि चतुर्दश रत्नानि च सन्ति तस्य ते तव सुलभ सुप्राप्य साधारण वस्त्वित्यर्थ, उपदीकर्तुमुपायनीकर्तुं मम मनो लज्जा त्रपा

परन्तु उसके बाद जिनकी बुद्धिकी कुशलता प्रसिद्ध थी ऐसे समीपसे बैठे हुए देवोंने जब उसे इस तरह समझाया कि 'यह चक्रवर्तीका बाण गन्ध, अक्षत आदिके द्वारा पूजा करने योग्य है तथा चक्रवर्तियोंमें प्रथम एवं भगवान् वृषभदेवका पुत्र भरत भी बाणको वापस देना आदिके द्वारा पूजनीय है, तब उसका क्रोध शान्त हो गया और प्रसन्न चित्त होकर वह देवोंके साथ मणिमय मुकुटकी किरणोंसे आकाशतलको चित्र-विचित्र करता हुआ चला एवं रत्नोंके समूहके बीच रखे हुए उस बाणको आगे रखकर चक्रवर्तीके पास जाकर विनय पूर्वक यह शब्द कहने लगा । § २१) पुरेति—पहले प्राप्त किया हुआ पुण्य उदित हुआ है, यह मेरा बहुत ही अच्छा दिन है क्योंकि आप मेरे नयन-पथके पथिक हुए हैं । इस समय हम लोगोंको समस्त उत्सवोंका समूह प्राप्त हुआ है ऐसा जान पड़ता है, आपके समागमसे उत्पन्न हुआ हर्ष मुझे परवश कर रहा है तथा पापको नष्ट कर रहा है ॥१४॥ § २२) त्रिभुवनेति—अनन्तचतुष्टय आदि लक्ष्मीसे सहित तथा समस्त इष्ट पदार्थोंको देनेवाले त्रिलोकीनाथ—वृषभजिनेन्द्र जिसके पिता हैं, देव, मनुष्य आदि सभी लोग जिसकी आज्ञाकी उपासना करते हैं, नौ-निधियाँ और श्रेष्ठ चौदह रत्न जिसके पास हैं ऐसे आपके लिए सुलभ

§ २३) अथापि रत्नान्येतानि स्वर्गेऽप्यसुलभानि च ।
अधो निधीनामाधातु सोपयोगानि सन्तु ते ॥१६॥

§ २४) इति शुक्तिवेणुवराहवारणादिष्वनुद्भूतैरक्षरमौक्तिकैर्घटिता वचनमाला रत्नमाला च कर्णदेशे कण्ठदेशे च समर्प्य, मणिकुण्डलमहार्घरत्नादिभिश्चक्रधरमभ्यर्च्य तेन कलितसत्कारो मागधसुरो निजास्पदमाससाद ।

§ २५) तुरङ्गैर्धौताङ्गैर्जलधिजलसक्षालनवशा-
न्मनोवेगैर्जुष्टं रथमुपगतोऽयं निधिपतिः ।
महीशाना पाथोनिधितटजुषा विस्मयकरो
विजेता स प्रापन्निजशिबिरमुद्वेलमहिमा ॥१७॥

§ २६) तदनु चक्रधरो दक्षिणाशाविजयपरायणः कलितभगवत्सपर्यो निखिलदिग्विजृम्भमाण-प्रयाणमङ्गलानकरवभरकम्पितपरचक्र, समुच्चलितबहुलबलधूलिपटलपिहितरिपुनृपतिनगरः साग-

---

तनोति विस्तारयति । हरिणीछन्द ॥१५॥ § २३) अथापीति—अथापि एतावतापि स्वर्गेऽपि नाकेऽपि असुलभानि दुर्लभानि एतानि रत्नानि ते तव निधीना शङ्खादीनाम् अधो नीचै आधातुं निक्षेप्तु सोपयोगानि उपयोगसहितानि सन्तु भवन्तु ॥१६॥ § २४) इतीति—शुक्तिवेणुवराहवारणादिषु शुक्तिवंशसूकरस्तम्बेरमप्रभृतिषु अनुद्भूतैरनुत्पन्नै अक्षराणि मौक्तिकानीवेत्यक्षरमौक्तिकानि तैर्घटिता रचिता वचनमाला वाक्स्रज रत्नमाला च रत्नस्रज च कर्णदेशे कण्ठदेशे च समर्प्य क्रमेणेति योज्य मणिकुण्डलमहार्घरत्नादिभि मणिमयकर्णाभरणमहामूल्यरत्नप्रभृतिभि चक्रधर चक्रवर्तिनम् अभ्यर्च्य पूजयित्वा तेन कलितसत्कार कृतादर सन् निजास्पद स्वस्थानम् आससाद प्राप । § २५) तुरङ्गैरिति—जलधे सागरस्य जलेन सलिलेन सक्षालनवशात् धावनवशात् धौताङ्गैर्निर्मलकलेवरै मनोवेगै शीघ्रगामिभि तुरङ्गैरश्वै जुष्ट योजित रथ शताङ्गम् उपगत प्राप्त पयोनिधितटजुषा सागरतीरस्थिताना महीशाना पृथिवीपतीना विस्मयकर आश्चर्योत्पादक विजेता विजयसहित उद्वेलो निर्मर्यादो महिमा यस्य तथाभूत स निधिपति चक्रेश्वर निजशिबिर स्वसेनानिवेशस्थान प्रापत् । शिखरिणीछन्द ॥१७॥ § २६) तदन्विति—तदनु तदनन्तर चक्रधरो भरतेश्वर दक्षिणाशाया दक्षिणकाष्ठाया विजये परायणस्तत्पर, कलिता कृता भगवत्सपर्या जिनेन्द्रार्चा येन तथाभूत, निखिलदिक्षु सर्वकाष्ठासु विजृम्भमाणो वर्धमानो य प्रयाणमङ्गलानकरवभर प्रस्थानमङ्गलभेरीशब्दसमूहस्तेन

वस्तु भेंट करनेमें मेरा मन लज्जाको विस्तृत कर रहा है ॥१५॥ § २३) अथापीति—तो भी स्वर्गमें भी न मिलनेवाले मेरे ये रत्न आपकी निधियोंके नीचे रखनेके लिए काम आयें ॥१६॥ § २४) इतीति—इस प्रकार सीप, बाँस, वराह और हाथी आदिमें न होनेवाले अक्षररूपी मोतियोंसे निर्मित वचनोंकी मालाको कर्ण देशमें और रत्नमालाको कण्ठ देशमें धारण कर मणिमय कुण्डल और महामूल्य रत्न आदिके द्वारा जिसने चक्रवर्तीकी पूजा की थी ऐसा वह मागध देव चक्रवर्तीके द्वारा सत्कार प्राप्त करता हुआ अपने स्थानपर चला गया । § २५) तुरंगैरिति—समुद्रके जलसे प्रक्षालित होनेके कारण जिनके अग धुल गये थे तथा जिनका वेग मनके समान था ऐसे घोड़ोंसे जुते हुए रथपर सवार हुआ चक्रवर्ती भरत समुद्रके तटपर स्थित राजाओंको आश्चर्य उत्पन्न करता हुआ विजयी बन अपने पड़ावमें आ पहुँचा । उस समय उसकी महिमा सीमाको लाँघ गयी थी ॥१७॥ § २६) तदन्विति—तदनन्तर जो दक्षिण दिशाको जीतनेके लिए तत्पर था, जिसने भगवान्‌की पूजा की थी, जिसने समस्त दिशाओंमें गूँजनेवाले प्रस्थानकालिक मगलमय भेरियोंके शब्दोंके समूहसे शत्रुदलको

रोपसागरयोर्मध्ये प्रचलता तृतीयेनेव सागरेण षडङ्गशबलेन बलेन सह प्रस्थितो विविधान् देशानतीत्य, विलसदेलालतामनोहरे वेलावने सेना निवेश्य, प्रविश्य च पूर्ववद्वैजयन्तमहाद्वारेण लवणोदधिं व्यन्तराधीश्वरं वरतनुं निर्जित्य, पुनः समुद्रोपसमुद्रयोर्मध्ये सेनया सह प्रस्थितः, चन्दननालिकेरताम्बूलवल्लीप्रचुरप्रदेशान्विविधान्देशानतीत्य, सिन्धुद्वारोपान्तविराजमाने कल्लोलिनीविटनिर्लोलकल्लोलान्दोलितवनदेवतालीलादोलानुकारिताम्बूलीलतापेशले मनसिजविजयप्रशस्तिलेखनोचितपत्रविचित्रितश्रीताले वने ध्वजिनीं विनिवेश्य, प्रविश्य च सिन्धुमन्धुमिव मन्यमानः पूर्ववद् व्यन्तरपतिं प्रभासं च निर्जिगाय ।

§ २७) निधीशे कौबेरीं दिशमथ विजेतुं प्रचलिते
प्रविष्टाः पश्चार्धैरतिजवपुरोऽङ्गानि महसा ।

कम्पितं वेपितं परचक्रं शत्रुसैन्यं येन सः, समुच्चलितेन समुत्थितेन बहुलधूलिपटलेन प्रभूतरजःसमूहेन पिहितानि तिरोहितानि रिपुनृपतिनगराणि शत्रुराजनगराणि येन सः, सागरोपसागरयोः लवणसमुद्रोपसमुद्रयोः मध्ये प्रचलता तृतीयेन सागरेणेव षडङ्गैः शबलं चित्रितं सहितमिति यावत् षडङ्गशबलं तेन बलेन सैन्येन सह प्रस्थितः कृतप्रयाणो विविधान् नानाप्रकारान् देशान् जनपदान् अतीत्य समुल्लङ्घ्य, विलसन्त्यः शोभमाना या एलालताः चन्द्रबालावल्लर्यस्ताभिर्मनोहरे रमणीये वेलावने तटोद्याने सेनां पृतनां निवेश्य स्थापयित्वा, पूर्ववत् वैजयन्तमहाद्वारेण लवणोदधिं लवणसमुद्रं प्रविश्य च व्यन्तराधीश्वरं व्यन्तरदेवपतिं वरतनुं तन्नामानं निर्जित्य पराभूय, पुनः समुद्रोपसमुद्रयोः सागरोपसागरयोः मध्ये सेनया ध्वजिन्या सह प्रस्थितः कृतप्रयाणः, चन्दननालिकेरताम्बूलवल्लीभिर्मलयजनारिकेलनागवल्लीभिः प्रचुरा व्याप्ताः प्रदेशा येषु तान् विविधान् देशान् नानाजनपदान् अतीत्य समतिक्रम्य, सिन्धुद्वारस्योपान्ते समीपे विराजमाने विशोभमाने कल्लोलिनीविटस्य समुद्रस्य निर्लोलकल्लोलैः अतिचपलतरङ्गैः आन्दोलिताः कम्पिताः वनदेवतादोलानुकारिण्यो याः ताम्बूलीलताः नागवल्ल्यस्ताभिः पेशले मनोहरे मनसिजस्य मदनस्य या विजयप्रशस्तयस्तासां लेखनोचितानि लेखनयोग्यानि यानि पत्राणि दलानि तैः विचित्रिता श्रीतालाः श्रीताडवृक्षा यस्मिंस्तस्मिन् वनेऽरण्ये ध्वजिनीं सेनां विनिवेश्य स्थापयित्वा, अन्धुमिव कूपमिव मन्यमानः सिन्धुं पश्चिमलवणार्णवं प्रविश्य च पूर्ववत् प्रागिव व्यन्तरपतिं व्यन्तरामरदेवेन्द्रं प्रभासं तन्नामानं च निर्जिगाय जितवान् । § २७) नीधीश इति—अथ प्रभासविजयानन्तरं निधीशे भरतेश्वरे कौबेरीं कुबेरस्येयं कौबेरी

कम्पित कर दिया था, जिसने ऊपरकी ओर उठती हुई सेनाकी बहुत भारी धूलिके समूहसे शत्रु राजाओंके नगरोंको आच्छादित कर दिया था, तथा जो सागर और उपसागरके बीच चलते हुए तीसरे समुद्रके समान छह अंगोंसे चित्रित सेनाके साथ प्रस्थान कर रहा था ऐसे भरतने नाना प्रकारके देशोंका उल्लंघन कर इलायचीको शोभायमान लताओंसे मनोहर तटके वनमें सेनाको ठहराया और स्वयं पूर्व दिशाकी तरह वैजयन्त महाद्वारसे लवणसमुद्रमें प्रवेश कर व्यन्तर देवोंके स्वामी वरतनुको जीता। तदनन्तर समुद्र और उपसमुद्रके बीच सेनाके साथ चलकर तथा चन्दन, नारियल और पानोंकी लताओंसे परिपूर्ण प्रदेशोंवाले नाना देशोंको लाँघता हुआ सिन्धु द्वारके समीप शोभायमान, समुद्रकी अत्यन्त चंचल लहरोंसे चचल एवं वन देवताओंके खेलने-सम्बन्धी झूलाओंका अनुकरण करनेवाली पानकी लताओंसे मनोहर तथा कामदेवकी विजय प्रशस्ति लिखनेके योग्य पत्तोंसे आश्चर्यकारक ताड वृक्षोंसे सहित वनमें जा पहुँचा, वहाँ सेनाको ठहरा कर कुएँके समान मानते हुए उसने समुद्रमें प्रवेश किया और पहलेकी तरह व्यन्तरोंके स्वामी प्रभासको जीता। § २७) निधीश इति—तदनन्तर निधीश्वर भरत, जब उत्तर दिशाको जीतनेके लिए चले तब अपने पिछले अवयवोंसे जिन्होंने

रजोराज्या भूयावनुमितखुराघट्टनकला
हयाश्चेलुर्हेषारवदलितदिग्भित्तिपटलाः ॥१८॥

§ २८) तदानी कर्णतालविगलितपटुपवनसमाकृष्टस्वरङ्गणतरङ्गिणीतरङ्गजलकणैः शुण्डादण्डसभूतफूत्कारशीकरैश्च व्योमलक्ष्म्या वसुधायाश्चान्योन्यसजातव्यात्युक्षिकाविभ्रम विदधानया, प्लावयन्त्येव मदधाराभिर्भुवमाकम्पयत्येव दिक्चक्रवाल, सक्षोभयन्त्येव भुवनोदरमुद्विग्नयन्त्येव दिग्गजानुपरुन्धयन्त्येव पद्मबन्धुगत जङ्गमयेव धराधरपरम्परया भूतलमवतीर्णयेव कादम्बिन्या गजघटया सहेलमस्पन्द्यत ।

§ २९) एव प्रस्थाय सैन्यैर्निजचरणनतोदीच्यभूपालवृन्द
सप्राप्तं रौप्यभूमीधरनिकटतटे क्लृप्तसेनानिवेशम् ।

अथवा कुबेरो देवता यस्या सा कौवेरी ताम् उदीचीम् दिशं ककुभ विजेतु प्रचलिते सति, पश्चार्द्धे पश्चार्धभागे अतिजवपुरोङ्गानि प्रकृष्टवेगयुक्ताग्राङ्गानि सहसा झटिति प्रविष्टा रजोराज्या धूलिपरम्परया भूमौ पृथिव्याम् अनुमिता खुराघट्टनकला शफताडनकला येषा ते, हेषारवेण हेषाशब्देन दलितानि खण्डितानि दिग्भित्तिपटलानि काष्ठाकुड्यपटलानि यैस्तथाभूता हया अश्वा चेलु चलन्ति स्म। शिखरिणीछन्द ॥१८॥ § २८) तदानीमिति—तदानी तस्मिन् काले कर्णतालेभ्य ताडपत्रसदृशकर्णेभ्यो विगलितो नि सृतो य पटुपवनः सवेगसमीरस्तेन समाकृष्टा समानीता ये स्वरङ्गणतरङ्गिणीतरङ्गाणा मन्दाकिनीकल्लोलाना जलकणा शीकरास्तै शुण्डादण्डे सभूता समुत्पन्ना ये फूत्कारशीकरा फूत्काराम्बुकणास्तैश्च व्योमलक्ष्म्या गगनश्रिया वसुधाया पृथिव्याश्च अन्योन्य मिथ सजाता समुत्पन्ना या व्यात्युक्षिका जलोच्छालनकेलि तस्या विभ्रम विलास विदधानया कुर्वाणया, मदधाराभिर्दानसततिभि भुव भूमिं प्लावयन्त्येव, दिक्चक्रवाल दिङ्मण्डलम् आकम्पयन्त्येव, भुवनोदर जगन्मध्य, सक्षोभयन्त्येव, दिग्गजान् उद्विग्नयन्त्येव भीतान् कुर्वन्त्येव, पद्मबन्धुगत सूर्यगमन उपरुन्धन्त्येव, जङ्गमया गतिशीलया धराधरपरम्परयेव पर्वतपङ्क्त्येव भूतल महीतलम् अवतीर्णया कादम्बिन्येव मेघमालयेव गजघटया हस्तिश्रेण्या सहेल यथा स्यात्तथा अस्पन्द्यत चलितम् । § २९) एवमिति—अथो तदनन्तरम्, एव पूर्वोक्तप्रकारेण सैन्यै सह प्रस्थाय निजचरणयोर्नत नम्रीभूतम् उदीच्यभूपालानामुत्तरदिक्स्थनृपतीना वृन्द समूहो यस्य त सप्राप्त समागत, रौप्यभूमीधरस्य विजयार्धपर्वतस्य निकटतटे क्लृप्त

शीघ्र ही अत्यन्त वेगशाली आगेके अंगोंमे प्रवेश किया था, धूलिपंक्तियोंकी परम्परासे जिनके पृथ्वीपर होनेवाले खुराघातकी कलाका अनुमान होता था तथा हिनहिनाहटके शब्दोंसे जिन्होंने दिशारूपी दीवालोंके पटलोंको खण्डित कर दिया था ऐसे घोडे चलने लगे ॥१८॥ § २८) तदानीमिति—उस समय कानोंकी फटकारसे उत्पन्न तीव्र वायुके द्वारा खिंचे हुए आकाशगंगा सम्बन्धी तरंगोंके जलकणों और शुण्डादण्डसे उत्पन्न फूत्कारके छींटोंसे जो आकाश लक्ष्मी और पृथिवीके बीच परस्पर होनेवाली फागका विभ्रम उत्पन्न कर रही थी, जो मदधाराके द्वारा पृथिवीको मानो डुबा रही थी, दिशाओंके मण्डलको मानो कँपा रही थी, संसारके मध्यको मानो क्षोभयुक्त कर रही थी, दिग्गजोंको मानो भयभीत कर रही थी, सूर्यकी गतिको मानो रोक रही थी, जो चलती-फिरती पर्वतोंकी पंक्तिके समान जान पडती थी अथवा पृथिवीतलपर उतरी हुई मेघमालाके समान मालूम होती थी ऐसी हाथियों की घटा झूमती हुई चल रही थी । § २९) एवमिति—तदनन्तर इस प्रकार सेनाओंके साथ प्रस्थान कर जो समीपमे आया था, उत्तर दिशाके राजाओंका समूह जिसके अपने चरणोंमें नम्रीभूत हो रहा था, विजयार्ध पर्वतके निकटवर्ती तटपर जिसने सेनाके डेरे डलवाये थे, तथा जो उपवास आदिका नियम

श्रीमन्तं चक्रपाणिं नियमयुतमथो राजताद्रेरधीशो
देवः संद्रष्टुमागान्मणिमुकुटरुचिद्योतिताशान्तरालः ॥१९॥

§ ३०) नतः सुरः ससत्कारं चक्रिणा धुरि कल्पितम् ।
भद्रासनमलंकुर्वन्नुवाच वदतावरः ॥२०॥

§ ३१) विजयार्धगिरेरह नियन्ता विजयार्धोऽस्मि वनामर प्रभो ! ।
परवान् भवतो नृप ! त्वदाज्ञा मम मौले शिखरे महीयते ॥२१॥

§ ३२) वक्त्रे दोषाकरश्रीर्दृशि जडजरुचिः सूनलक्ष्मीश्च हासे
शक्तिर्निस्त्रिंशजेयं भुजभुवि कुटिला चापयष्टिः करे ते ।
आज्ञेयं सर्वदा श्रीभरतनरपते वृद्धया किं मयात्रे-
त्येवं प्रोच्य प्रकोपात्सुरपतिनगरं प्राप कीर्तिस्त्वदीया ॥२२॥

कृतः सेनानिवेशो येन तं, श्रीमन्तं लक्ष्मीमन्तं नियमयुतमनशनादिनियमसहितं चक्रपाणिं भरतेश्वरं संद्रष्टुं समवलोकितुं राजताद्रेर्विजयार्धपर्वतस्य अधीशोऽधिष्ठाता देवः मणिमुकुटस्य रत्नमयमौले रुचिभिर्मरीचिभिर्द्योतितानि प्रकाशितानि आशान्तरालानि दिगन्तराणि येन तथाभूतः सन् आगात् आजगाम । स्रग्धरा ॥१९॥ § ३०) नत इति—चक्रिणा भरतेन ससत्कारं यथा स्यात्तथा धुरि अग्रे कल्पितं धृतं भद्रासनं मङ्गलासनम् अलंकुर्वन् शोभयन् नतो नम्रो वदतावरो वक्तृश्रेष्ठः सुरोऽमरः उवाच जगाद ॥२०॥ § ३१) विजयार्धेति—हे प्रभो ! अहं विजयार्धगिरेर्विजयार्धपर्वतस्य नियन्ता शासकः विजयार्धो विजयार्धनामधेयो वनामरो व्यन्तरामरः अस्मि, भवतः परवान् अधीनोऽस्मि, हे नृप ! हे राजन् ! त्वदाज्ञा भवदाज्ञा मम मौलेर्मुकुटस्य शिखरेऽग्रे महीयते पूज्यते ॥२१॥ § ३२) वक्त्र इति—हे श्रीभरतनरपते ! हे भरतराजेश्वर ! ते तव वक्त्रे मुखे दोषाकरश्रीः दोषाणामवगुणानामाकरः खनिरिति दोषाकरस्तथाभूता श्रीः लक्ष्मीः अस्तीति शेषः पक्षे दोषाकरस्येव निशाकरस्येव श्रीरिति दोषाकरश्रीः, दृशि नयने जडजरुचिः जडे मूर्खे जायते स्मेति जडजा तथाभूता रुचिरिच्छा चेति जडजरुचिः पक्षे डलयोरभेदात् जलजस्येव कमलस्येव रुचिः कान्तिः, हासे हास्ये सूनलक्ष्मीः अतिशयेन ऊना सूना अत्यल्पा तथाभूता लक्ष्मीश्चेति सूनलक्ष्मीः पक्षे सूनानामिव पुष्पाणामिव लक्ष्मीरिति सूनलक्ष्मीः, भुजभुवि बाहुवसुधायाम्, इयमेषा निर्स्त्रिशजा क्रूरजनोत्पन्ना शक्तिः सामर्थ्यं पक्षे निस्त्रिंशजा खड्गोत्पन्ना शक्तिः सामर्थ्यम्, करे हस्ते च कुटिला वक्रा अपयष्टिः अपकृष्टा कुत्सिता यष्टिरिति अपयष्टिः, पक्षे कुटिला समौर्वीकत्वेन कुटिला वक्रा चापयष्टिः धनुर्यष्टिः, इयमेषा आज्ञा सर्वदा सर्वान् द्यति खण्डयतीति

लेकर स्थित था ऐसे श्रीमान् भरतके दर्शन करनेके लिए विजयार्ध पर्वतका अधिपति देव, मणिमय मुकुटकी किरणोंसे दिशाओंके अन्तरालको व्याप्त करता हुआ आया ॥१९॥ § ३०) नत इति—चक्रवर्ती भरतके द्वारा बहुत सत्कारके साथ आगे किये हुए भद्रासनको अलंकृत करता हुआ, वक्ताओंमें श्रेष्ठ वह नम्रदेव इस प्रकार कहने लगा ॥२०॥ § ३१) विजयार्धेति—हे प्रभो ! मैं विजयार्ध पर्वतका शासक विजयार्ध नामका व्यन्तर हूँ, हे राजन् ! आपके अधीन हूँ, आपकी आज्ञा मेरे मुकुटके अग्रभागपर सम्मानको प्राप्त हो रही है ॥२१॥ § ३२) वक्त्र इति—हे श्री भरतनरेन्द्र ! आपके मुखमें दोषाकरश्रीः—दोषोंकी खान स्वरूप लक्ष्मी है (पक्षमें चन्द्रमाके समान लक्ष्मी है), नेत्रोंमें जडजरुचि—मूर्ख मनुष्यमें उत्पन्न होनेवाली इच्छा है (पक्षमें कमल जैसी कान्ति है), हासमें सूनलक्ष्मी—अत्यन्त अल्प लक्ष्मी है (पक्षमें फूलों जैसी शोभा है), बाहुरूपी भूमिमें यह निर्स्त्रिशजा—क्रूर मनुष्यसे उत्पन्न शक्ति है (पक्षमें तलवारसे उत्पन्न शक्ति है), हाथमें कुटिला-चापयष्टिः—टेढी एवं खराब लाठी है

§ ३३) इत्यभिधायोत्थाय च चक्रधरं सुरैः सह तीर्थाम्बुभिरतिविभवेनाभिषिच्य, स व्यन्तरपतिस्तस्मै दिव्यानि रत्नभृङ्गारश्वेतातपत्रप्रकीर्णकयुगहरिविष्टराणि प्रतिपाद्यासाद्य च तदनुज्ञां निजसदनमाससाद।

§ ३४) विजयार्धगिरौ जिते समस्ते विजितं दक्षिणभारतं स जानन्।
निधिराड्विततान चक्रपूजां जलगन्धाक्षतपुष्पधूपदीपैः ॥२३॥

§ ३५) तदनूत्तरार्धविजयाशंसया प्रतीपमागत्य रजतगिरिपश्चिमगुहाभ्यर्णविलसमाने वने कलितसेनानिवेशं निधीशं नानादेशसमागतनरपालनिकायनिचितसविधप्रदेशं परिवृतामरजालः कृतमालो नाम सुरः सप्रणाममागत्य प्रभुणा सबहुमानमर्पितासनः सादरमिमां गिरमुदाजहार।

§ ३६) देव ! त्वद्वीक्षणाद्भूतं वाचाटयति कौतुकम्।
मतिश्च मुद्रयत्यद्य वाचमेनां करोमि किम् ॥२४॥

सर्वदा सर्वविनाशकरी पक्षे सर्वं ददातीति सर्वदा, अत्र त्वत्समीपे वृद्धया स्थविरया पक्षे विस्तृतया मया किं प्रयोजनम्। इत्येव प्रोच्य कथयित्वा त्वदीया कीर्तिः समज्ञा 'यशः कीर्तिः समज्ञा च' इत्यमरः, प्रकोपात् प्रकृष्टक्रोधात् सुरपतिनगरं स्वर्गं प्राप प्रयाता। श्लेषोत्प्रेक्षा। स्रग्धराछन्दः ॥२२॥ § ३३) इतीति—रत्नभृङ्गारो मणिमयकलशः, श्वेतातपत्रं धवलच्छत्रम्, प्रकीर्णकयुगं चामरयुगम्, हरिविष्टरं सिंहासनम्। शेषं सुगमम्। § ३४) विजयार्धेति—समस्ते निखिले विजयार्धगिरौ रजताचले जिते स्वायत्तीकृते सति दक्षिणभारतं विजितं पराजितं जानन् स निधिराट् निधीश्वरो भरतः जलगन्धाक्षतपुष्पधूपदीपैः चक्रपूजां चक्रार्चाम् आततान विस्तारयामास ॥२३॥ § ३५) तदन्विति—उत्तरार्धविजयाशंसया उत्तरार्धभरतविजयेच्छया प्रतीपमागत्य प्रत्यावृत्य रजतगिरेर्विजयार्धस्य पश्चिमगुहाया अभ्यर्णे निकटे विलसमाने शोभमाने वने। शेषं सुगमम्। § ३६) देवेति—हे देव ! हे राजन् ! त्वद्वीक्षणात् भवदवलोकनाद् भूतं समुत्पन्नं कौतुकं कुतूहलं मां वाचाटयति वाचालं करोति 'स्याज्जल्पाकस्तु वाचालो वाचाटो बहुगर्ह्यवाक्' इत्यमरः, मतिश्च बुद्धिश्च अद्य सांप्रतम्, एनां समुच्चार्यमाणां वाचं मुद्रयति निरोधयति वक्तुं न ददातीत्यर्थः। किं करोमि। किं

(पक्षमें गोल धनुर्दण्ड है), इतनेपर भी आपकी यह आज्ञा सर्वदा—सबका खण्डन करनेवाली है (पक्षमें सब कुछ प्रदान करनेवाली है), यहाँ मुझ वृद्धा—वृद्ध स्त्रीसे क्या प्रयोजन है (पक्षमें विस्तारको प्राप्त हुई मुझसे क्या मतलब है) इस प्रकार कह कर आपकी कीर्ति क्रोधवश स्वर्ग चली गयी है ॥२२॥ § ३३) इतीति—यह कह कर तथा उठकर व्यन्तरेन्द्रने देवोंके साथ तीर्थोदकसे उल्लासपूर्वक चक्रवर्तीका अभिषेक किया, उसके लिए देवोपनीत रत्नोंका भृंगार, सफेद छत्र, दो चमर और सिंहासन दिये तत्पश्चात् उनकी आज्ञा लेकर वह अपने घर चला गया। § ३४) विजयार्धेति—समस्त विजयार्ध पर्वतके जीत लिये जानेपर दक्षिण भारतको जीता हुआ जाननेवाले चक्रवर्तीने जल, गन्ध, अक्षत, पुष्प, धूप और दीपके द्वारा चक्ररत्नकी पूजा की ॥२३॥ § ३५) तदन्विति—तदनन्तर उत्तरार्धको जीतनेकी इच्छासे वापस आकर विजयार्ध पर्वतकी पश्चिम गुहाके निकट शोभायमान वनमें जिसने सेनाको ठहराया था, तथा नाना देशोंसे आगत राजाओंके समूहसे जिसका समीपवर्ती प्रदेश व्याप्त था ऐसे चक्रवर्तीके पास आकर अनेक देव समूहसे घिरे हुए कृतमाल नामक देवने प्रणाम किया, चक्रवर्तीने बहुत सम्मानके साथ उसे आसन दिया, आसनपर आरूढ़ हो उस देवने आदरपूर्वक यह वचन कहे। § ३६) देवेति—हे देव ! आज आपके दर्शनसे उत्पन्न हुआ कौतूहल मुझे वाचाल बना रहा है और बुद्धि मेरी इस वाणीको बन्द कर रही है। मैं क्या करूँ ?

§ ३७) तथा हि—अपि कुशलमिति सकलभुवनकुशलवितरणधुरीणे त्वयि लज्जाकरम्। जयेति कलितजयश्रीपाणिग्रहणे सिद्धसाधनम्। दयस्वेति करुणावरुणालये न चमत्कारि। प्रसीदेति प्रसन्नस्वभावे न विधेयम्। स्वागतमित्यभ्यागतविषयम्। परिपालयेति प्रभुमात्रगोचरम्। तव किङ्करोऽहमिति सुरनरविनुतचरणनलिने नातिशयावहमिति श्रीमदुचितवचनचातुरी च न मे बुद्धिमधिरोहति।

§ ३८) विद्धि मा विजयार्धस्य मर्मज्ञममृताशनम्।
कृतमालं गिरेरस्य कूटेऽमुष्मिन्कृतालयम् ॥२५॥

§ ३९) इत्यादि वदन्तमुपदीकृतचतुर्दशभूषणं प्रतिपादिततद्गिरिगुहाद्वारप्रवेशोपायमादितेयं सबहुमानं विसर्ज्य प्रसन्नेन चक्रधरेण गुहाद्वारमुत्पाट्य यावत्तदुपशमनं तावत्पाश्चात्यखण्डं विजय-

---

विदधामि ॥२४॥ § ३७) तथा हीति—अपि कुशलं भवतः कुशलं विद्यते किम्। इति कथनं सकलभुवनस्य निखिललोकस्य कुशलवितरणधुरीणे कुशलप्रदानदक्षे त्वयि भवति लज्जाकरं त्रपोत्पादकम्, जयेति भवतो जयोऽस्त्विति कथनं कलितं कृतं जयश्रिया विजयलक्ष्म्या. पाणिग्रहणं विवाहो येन तथाभूते त्वयि सिद्धस्य साधनमिति सिद्धसाधनं पिष्टपेषणसदृशं निरर्थकमित्यर्थः। दयस्व दया कुरु इति कथनं करुणावरुणालयेऽनुकम्पाकूपारे दयासागर इत्यर्थः, त्वयि न चमत्कारि न चमत्कारोत्पादकम्। प्रसीद—प्रसन्नो भवेति कथनं प्रसन्नस्वभावे प्रसन्नस्वभावयुक्ते त्वयि न विधेयं न विधातुं योग्यं न करणीयमित्यर्थः। स्वागतं भवतः स्वागतं भवत्विति कथनम् अभ्यागतो विषयो यस्य तथाभूतम् एवं कथनमभ्यागतस्य विषयेऽर्हं भवतीत्यर्थः। परिपालय रक्षेति कथनं प्रभुमात्रगोचरं स्वामिमात्रविषयम्। तव भवतः किंकरोऽहं दासोऽहमिति कथनं सुरनरैरमरमनुजैर्विनुते संस्तुते चरणनलिने पादपद्मे यस्य तथाभूते त्वयि न अतिशयावहं न विशेषतायुक्तम्। इतीत्थं श्रीमतो भवतः उचिता योग्या वचनचातुरी वाग्वैदग्धी च मे मम बुद्धिं मनीषां नाधिरोहति नाधितिष्ठति। § ३८) विद्धीति—मां पुरोविद्यमानं विजयार्धस्य तन्नामपर्वतस्य मर्मज्ञं गुप्तस्थानज्ञानयुक्तम् अमृताशनं देवम् अस्य गिरेः अमुष्मिन् कूटे शिखरे कृतालयं कृतनिवासं कृतमालं कृतमालनामधेयं विद्धि जानीहि ॥२५॥ § ३९) इत्यादीति—इत्यादि वदन्तं कथयन्तम्, उपदीकृतानि चतुर्दशभूषणानि यस्य तं, प्रतिपादितं कथितं

॥२४॥ § ३७) तथा हीति—आपकी कुशल है ? यदि यह कहा जावे तो यह कहना समस्त संसारको कुशलताके प्रदान करनेमें निपुण आपके विषयमें लज्जा उत्पन्न करनेवाला है। आपकी जय हो यदि यह कहा जावे तो विजय-लक्ष्मीके साथ पाणिग्रहण करनेवाले आपके विषयमें वैसा कहना सिद्धको सिद्ध करना अर्थात् पिष्टपेषण करना है। दया कीजिए यदि यह कहा जावे तो दयाके सागरस्वरूप आपके विषयमें ऐसा कहना चमत्कार करनेवाला नहीं है। प्रसन्न होइए यदि यह कहा जावे तो प्रसन्न स्वभाववाले आपके विषयमें वैसा कहना योग्य नहीं है। आपका स्वागत हो यदि ऐसा कहा जावे तो यह कहना आगन्तुकके सम्बन्ध रखने वाला है। रक्षा कीजिए यदि यह कहा जावे तो यह कहना प्रभुमात्रसे सम्बन्ध रखनेवाला है। प्रत्येक प्रभुसे ऐसा कहा जाता है उससे कोई विशेषता सिद्ध नहीं होती। मैं आपका किंकर हूँ यदि यह कहा जावे तो देव और मनुष्योंके द्वारा जिनके चरण-कमलोंकी स्तुति की जा रही है ऐसे आपके विषय यह कहना विशेषताको धारण करनेवाला नहीं है। इस तरह आपके योग्य वचनोंकी चतुराई मेरी बुद्धिमें नहीं आ रही है अर्थात् क्या कहूँ यह मैं नहीं सोच पा रहा हूँ। § ३८) विद्धीति—मुझे आप विजयार्ध पर्वतके मर्मको जाननेवाला कृतमाल नामका देव जानो। मैं इसी पर्वतके इस शिखरपर रहता हूँ ॥२५॥ § ३९) इत्यादीति—जो इस प्रकारके वचन कह रहा था, जिसने चौदह आभूषण भेंटमें दिये थे तथा जिसने उस पर्वतके गुहाद्वारमें प्रवेश करनेका उपाय बतलाया था ऐसे उस

स्वेत्याज्ञप्तश्चमूपतिरधिरूढवाजिरत्न पुरस्कृतदण्डरत्नः तद्गुहाद्वारमासाद्य निर्भिद्य च दण्डरत्नेन तन्मुखनिसृतोष्मज्वालाकलापादश्वरत्नरयेण सुरनिकरेण च रक्षितो बभूव।

§ ४०) निपेतुरमरस्त्रीणां कटाक्षैः सममम्बरात्।
सुमनःप्रकरास्तस्मिन् हारा इव जयश्रियः॥२६॥

§ ४१) तदनु चमूपतिः सकलबलपरिवृतो विजयार्धगिरितटवेदिकामतीत्य सिन्धुनदीपश्चिमदिग्भागवेदिकातोरणद्वारेण निर्गत्य म्लेच्छखण्डमण्डनायमानविविधाकरपुरग्रामसीमारामादिषु विगाह्य प्रतिष्ठापितचक्रवर्तिशासन समागतम्लेच्छभूपालान् पुरस्कृत्य त्रिःपरीत्य च म्लेच्छखण्ड म्लेच्छराजसेनया सह निर्याय पर्यायेणातीतसिन्धुवनवेदिकाद्वार षण्मासैः प्रशान्तोष्मदुःख तद्गुहामुख पुनरासाद्य सशोध्य च कृतरक्षाविधिश्च चक्रधरदर्शनलालसः प्रविश्य विजयशिबिरं तत्र

तद्गिरिगुहाद्वारप्रवेशोपायो येन तथाभूतम् आदितेय देव सबहुमान ससत्कार विसर्ज्य, प्रसन्नेन प्रसन्नचेतसा चक्रधरेण चक्रवर्तिना शेष सुगमम्। § ४०) निपेतुरिति—तस्मिन् भरतनिधीश्वरसेनापतौ अमरस्त्रीणा देवाङ्गनाना कटाक्षैरपाङ्गैः सम सार्धम् अम्बरात् गगनात् जयश्रियो विजयलक्ष्म्या हारा इव सुमनःप्रकरा पुष्पसमूहा निपेतुः निपतन्ति स्म ॥२६॥ § ४१) तदन्विति—तदनु तदनन्तर सकलबलेन समग्रसैन्येन परिवृत परीत चमूपति सेनापतिः विजयार्धगिरितटवेदिका रजताचलतटवितर्दिकाम् अतीत्य समुल्लङ्घ्य सिन्धुनद्या पश्चिमदिग्भागवेदिकायास्तोरणद्वारेण निर्गत्य म्लेच्छखण्डस्य मण्डनायमाना ये विविधा नानाप्रकारा आकरपुरग्रामसीमारामास्तदादिषु विगाह्य प्रविश्य प्रतिष्ठापित चक्रवर्तिशासन येन तथाभूत सन् समागता समायाता ये म्लेच्छभूपाला म्लेच्छराजास्तान् पुरस्कृत्य अग्रेकृत्य म्लेच्छखण्ड त्रिःपरीत्य च त्रीन् वारान् परिक्रम्य च म्लेच्छराजसेनया सह निर्याय निर्गत्य पर्यायेण क्रमेण अतीत सिन्धुवनवेदिकाया द्वार येन तथाभूत सन्, षण्मासै मासषट्केन प्रशान्तोष्मदुःखनिवृत्तोष्ण्यदुःख तद्गुहामुख पुनरासाद्य प्राप्य सशोध्य च कृतो रक्षाविधिर्येन स चक्रधरस्य दर्शने लालसा यस्य तथाभूत. सन् विजयशिबिर प्रविश्य तत्र विचित्रो विलक्षणो

देवको सम्मानके साथ विदा कर चक्रवर्तीने गुहाका द्वार खोला तथा जब तक यह शान्त होता है तब तक पश्चिम खण्डपर विजय प्राप्त करो इस प्रकार सेनापतिको आज्ञा दी। सेनापति भी अश्वरत्नपर सवार हो तथा दण्डरत्नको आगे कर उस गुहा द्वारपर पहुँचा। पहुँचते ही उसने दण्डरत्नके द्वारा गुहाद्वारको तोडा। उस समय गुहाद्वारके मुखसे जो अत्यन्त गर्म ज्वालाओंका समूह निकल रहा था उससे अश्वरत्नके वेग तथा देवोंके समूहने सेनापतिकी रक्षा की थी। § ४०) निपेतुरिति—सेनापतिपर देवांगनाओंके कटाक्षोंके साथ आकाशसे पुष्पसमूहकी वर्षा हुई। उस समय वे पुष्पसमूह ऐसे जान पड़ते थे मानो विजय लक्ष्मीके हार ही हों ॥२६॥ § ४१) तदन्विति—तदनन्तर समस्त सेनासे घिरा हुआ सेनापति विजयार्ध पर्वतकी तटवेदीको लाँघ कर तथा सिन्धु नदीके पश्चिमदिग्भाग सम्बन्धी वेदिकाके तोरण द्वारसे निकल कर म्लेच्छ खण्डके आभूषण स्वरूप नाना प्रकारके खान, पुर, ग्राम और सीमाके उद्यानादिमें जा पहुँचा। वहाँ उसने चक्रवर्तीका शासन स्थापित किया तत्पश्चात् आये हुए समस्त म्लेच्छ राजाओंको आगे कर तथा म्लेच्छ खण्डके तीन चक्कर लगा कर वह म्लेच्छ राजाओंकी सेनाके साथ वहाँसे निकला और क्रमसे सिन्धु नदीकी वनवेदिकाके द्वारको पार कर छह माहमें जिसकी गर्मीका दुःख शान्त हो गया था ऐसे गुहाके द्वारपर फिरसे आया। उसका शोधन कर तथा रक्षाकी विधिको पूर्ण कर चक्रवर्तीके दर्शनकी लालसा रखता हुआ वापस आया। वहाँ विजय-शिबिरमें प्रवेश कर वह चक्रवर्तीके अद्भुत

विचित्रचक्रवल्लभास्थानमण्डपे दूरानतमणिमुकुट करिहरिकन्यारत्नप्रमुखवस्तुवाहनपुरःसर कोटीरकोटिचुम्बितधरणीतल म्लेच्छराजकदम्बक तत्तद्देशनामगोत्रादिनिर्देशेन प्रभवे निवेदयामास ।

§ ४२) ततो भरतभूपतिः सबहुमानमेतान्नृपान्
विसर्ज्य नरपालकार्चितमुदारवीर्याकरम् ।
षडङ्गबलवल्लभ विजयचिह्नितैर्मानयन्
जयाय पुनरादिशन्निखिलवीरचूडामणिम् ॥२७॥

§ ४३) तदा जयानकध्वाना आचान्ताम्भोधिघोषणाः ।
अनुचक्रुर्महाघोरकल्पान्ताम्भोदगर्जितम् ॥२८॥

§ ४४) जयकुञ्जरमारूढ परीतो नृपकुञ्जरैः ।
रेजे निर्यन्प्रयाणाय सम्राट् शक्र इवामरैः ॥२९॥

यश्चक्रवल्लभस्य चक्रपतेरास्थानमण्डप सभामण्डपस्तस्मिन् दूरानतमुकुटो दूरादानत विनम्र मुकुट यस्य तथाभूत करिणो हस्तिनो हरयो हया कन्यारत्नानि कन्याश्रेष्ठानि च तानि प्रमुखानि येषु तथाभूतानि यानि वस्तुवाहनानि तानि पुरस्सराणि यस्य तत्, कोटीरकोटया मुकुटाग्रभागेण चुम्बित स्पृष्ट धरणीतल भूपृष्ठ येन तथाभूत म्लेच्छराजकदम्बक म्लेच्छराजसमूह तत्तद्देशनामगोत्रादिनिर्देशेन तत्तज्जनपदाभिधानवशप्रभृतिकथनेन प्रभवे चक्रवर्तिने निवेदयामास कथयामास । सहागतम्लेच्छराजाना परिचय प्रभवे प्रदत्तवानिति यावत् । § ४२) तत इति—ततस्तदनन्तरं भरतभूपति भरतेश्वर एतान् सेनापतिनिर्दिष्टान् नृपान् म्लेच्छराजान् सबहुमान ससत्कार यथा स्यात्तथा विसर्ज्य नरपालकार्चित राजपूजितम् उदारवीर्याकरम् समुत्कृष्टवीर्यास्पद निखिलवीरेषु चूडामणिरिव त सकलसुभटशिरोमणि त षडङ्गबलवल्लभ षडङ्गसेनाध्यक्ष विजयचिह्नितैः मानयन् सत्कुर्वन् पुन भूयोऽपि जयाय जेतुम् आदिशत् आज्ञा ददौ । पृथ्वीछन्द ॥२७॥ § ४३) तदेति—तदा तस्मिन् काले आचान्ता निगीर्णा अम्भोधिघोषणा समुद्रगर्जनशब्दा यैस्तथाभूता जयानकध्वाना विजयपटहशब्दा 'शब्दो निनादो निनदो ध्वनिध्वानरवस्वना.' इत्यमर, महाघोर महाभयकर कल्पान्ताम्भोदाना प्रलयपयोदाना गर्जितमिति महाघोरकल्पान्ताम्भोदगर्जितम् अनुचक्रुर्विडम्बयामासु. ॥२८॥ § ४४) जयेति—जयकुञ्जर विजयिवारणम् आरूढोऽधिष्ठित. नृपकुञ्जरैः श्रेष्ठनरेन्द्रै परीत परिवृत प्रयाणाय प्रस्थानाय निर्यन्

सभा-मण्डपमे प्रविष्ट हुआ। प्रवेश करते समय उसका मुकुट दूरसे ही नम्रीभूत हो रहा था। हाथी, घोड़ा तथा कन्या रत्न आदि वस्तुएँ और वाहनोंको साथ लेकर मुकुटोंकी कलॅगियोंसे पृथिवीतलको चुम्बित करनेवाले म्लेच्छ राजाओंका एक बड़ा समूह उसके साथ आया था। उन सबके भिन्न-भिन्न देश नाम तथा गोत्र आदिका निर्देश करते हुए उसने चक्रवर्तीके लिए सबका परिचय दिया। § ४२) तत इति—तदनन्तर चक्रवर्तीने बहुत सम्मानके साथ इन राजाओंको विदा कर, राजाओंके द्वारा पूजित, उत्कृष्ट पराक्रमकी खान एवं समस्त वीरोंके शिरोमणि स्वरूप षडंग सेनाके अध्यक्ष सेनापतिका विजय-चिह्नोंसे सम्मान कर उसे विजय प्राप्त करनेके लिए फिरसे आदेश दिया ॥२७॥ § ४३) तदेति—उस समय समुद्रकी गर्जनाको तिरस्कृत करनेवाले जीतके नगाड़ोंके शब्द, प्रलयकालीन मेघोंकी महाभयंकर गर्जनाका अनुकरण कर रहे थे। § ४४) जयेति—प्रस्थान करते समय विजयी हाथीपर सवार तथा श्रेष्ठ राजाओंसे घिरा हुआ चक्रवर्ती देवोंसे घिरे इन्द्रके समान सुशोभित हो रहा था

§ ४५) तदनु भरतमहीपतिर्विजयरामापरिणयमहसमयहरित्पतिकरविकीर्णपिष्टातकचूर्णायमानरज पटलेन, दिगङ्गनाहस्तविक्षिप्तलाजाञ्जलिपुञ्जप्रतिपत्तिकरमदकरिकरशीकरनिकरेण, रयविजितपवनपुर समर्पितमौक्तिकस्तबकोपहारशङ्काकरतुरगमुखगलितफेनलवनिचयेन च भरितगगनतलं षडङ्गबल विजयार्धाचलकटकाभिमुख निर्याय पर्यायेण प्रविश्य च गुहाद्वार, चक्रधरनिदेशपरवशचमूपतिपुरोहितपरिकलिताभ्या भित्तिद्वयसक्रान्तसोमसूर्यमण्डलसकाशाभ्या काकिणीमणिरत्नाभ्या निराकृतसूचीभेद्यान्धतमसे तमिस्रनामगुहामध्ये सिन्धुनदीतटयोर्द्विधाविगाहमानः कैश्चित्प्रयाणैर्गुहार्धसमिता भूमीमतीत्य व्यतीत्य चाधःपतनशक्तियुक्तया निमग्नजलया निम्नगया सम तिर्यक्प्रविष्टामुत्प्लावनशक्तिजुष्टामुन्मग्नजला तटिनी स्थपतिरत्नपरिकल्पितं सारदारुरचितसेतुना कौतुकहेतुना तत' कतिपयप्रयाणैर्गिरिदुर्गं विलङ्घ्य व्यतीत्य च पुर सरमदसिन्धुरनिरर्गलीकृतमद-

---

निर्गच्छन् सम्राट् भरत अमरैर्देवै. परीत शक्र इव पुरंदर इव रेजे शुशुभे ॥२९॥ § ४५) तदन्विति—तदनु तदनन्तर भरतमहीपतिर्निधीश्वर विजयरामाया विजयवल्लभाया परिणयमहो विवाहोत्सवस्तस्य समये हरित्पतीना दिक्पालाना करै पाणिभिर्विकीर्णं विप्रसरित यत् पिष्टातकचूर्णं तद्वदाचरत् यत् रज पटल धूलिसमूहस्तेन, दिगङ्गनानां काष्ठाकामिनीना हस्तैर्विक्षिप्ता विकीर्णा ये लाजाञ्जलयस्तेषां पुञ्जस्य समूहस्य प्रतिपत्तिकरा बुद्धिकरा ये मदकरिकरशीकरा मत्तमतङ्गजशुण्डासलिलकणास्तेषा निकरेण समूहेन, रयेण वेगेन विजित पराजितो य पवनस्तेन पुर समर्पिता अग्रेढौकिता ये मौक्तिकस्तबकास्तेषामुपहारस्य प्राभृतस्य शङ्काकरा सदेहोत्पादका ये तुरगमुखगलितफेनलवा अश्ववदनविगलितडिण्डीरकणास्तेषां निचयेन च समूहेन च भरित गगनतल येन तथाभूत षडङ्गबल षडङ्गसैन्य विजयार्धाचलस्य रजतमहीधरस्य कटकाभिमुख यथा स्यात्तथा निर्याय निर्गत विधाय पर्यायेण क्रमेण गुहाद्वार प्रविश्य च, चक्रधरनिदेशेन चक्रवर्त्याज्ञया परवशौ पराधीनौ यौ चमूपतिपुरोहितौ सेनापतिपुरोधसौ ताभ्या परिकलिताभ्या धृताभ्यां भित्तिद्वये कुड्यद्वये सक्रान्त प्रतिफलित यत् सोमसूर्ययो चन्द्रदिनकरयोर्मण्डल तस्य सकाशाभ्यां सदृशाभ्या काकिणीमणिरत्नाभ्यां निराकृत दूरीकृत सूचीभेद्यान्धतमस यस्मिन् तस्मिन् तमिस्रनामगुहामध्ये, सिन्धुनदीतटयो द्विधा विगाहमान प्रविशन्, कैश्चित् कतिपयै प्रयाणै गुहार्धसमिताम् अर्धगुहापरिमिता भूमी वसुधाम् अतीत्य समुल्लङ्घ्य अध पतनशक्तियुक्तया पतित वस्तु अध पातयति यया साध पतनशक्तिस्तया युक्तया निमग्नजलया तन्नामधेयया निम्नगया नद्या सम सार्धं तिर्यक्प्रविष्टाम् उत्प्लावनशक्तिजुष्टां अध पातितमपि वस्तु ऊर्ध्वं नयति यया सा उत्प्लावनशक्तिस्तया जुष्टा सहिता उन्मग्नजलां तन्नामधेया तटिनी नदी स्थपतिरत्नेन तक्षकरत्नेन परिकल्पितो निर्मित सारदारुरचित सुदृढकाष्ठकल्पित सेतुस्तेन कौतुकहेतुना कुतूहलकारणेन, व्यतीत्य च सतीर्य च तत कतिपय-

---

॥२९॥ § ४५) तदन्विति—तदनन्तर भरत चक्रवर्ती, विजय लक्ष्मीके विवाहोत्सवके समय दिक्पालोंके हाथसे बिखेरे हुए गुलालके चूर्णके समान आचरण करनेवाले धूलिके पटलसे, दिशारूपी स्त्रियोंके हाथोंसे बिखेरी हुई लाईकी अजलियोंके समूहका ज्ञान करानेवाले मदोन्मत्त हाथियोंकी शुंडोंसे निकले जलकणोंके समूहसे और वेगसे पराजित वायुके द्वारा आगे समर्पित किये हुए मोतियोंके गुच्छोंके उपहारकी शका करनेवाले घोड़ोंके मुखोंसे निकले फेनकणोंके समूहसे आकाशतलको भरनेवाली षडग सेनाको विजयार्ध पर्वतके कटकके सम्मुख निकालकर क्रमसे गुहाद्वारमें प्रविष्ट हुआ। वहाँ चक्रवर्तीकी आज्ञाके परवश सेनापति और पुरोहितके द्वारा धारण किये हुए तथा दोनों दीवालोंमे प्रतिबिम्बित सूर्य और चन्द्रमण्डलके समान काकिणी और कौस्तुभमणिके द्वारा जिसका सघन अन्धकार दूर कर दिया गया था ऐसी तमिस्र नामक गुहाके मध्यमे सिन्धु नदीके दोनों तटोंपर दो भागोंमें प्रवेश करते हुए

धार गुहाद्वारं सुरभितमन्दमन्दवलमानपवमानसेवनव्यपगतचिरपरिचितगुहोष्मखेद तस्य सानुमतस्तटवनमध्युवास।

§ ४६) तुरङ्गमखुराहतक्षितिरजःपरीताम्बर
करेणुयुतवारणैस्त्रुटितसल्लकीपल्लवम्।
इद वनमुदारधीरथ विलोक्य चक्रेश्वरो
विचित्रितहृदन्तरः शिबिरमध्युवासामलम् ॥३०॥

§ ४७) पूर्ववत्पश्चिमे खण्डे बलाग्रण्या प्रसाधिते।
विजेतु मध्यमं खण्ड साधनैः प्रभुरुद्ययौ ॥३१॥

§ ४८) तदानी परचक्रकलित स्वचक्रपराभवमसहमानौ प्रस्थानभेरीभाङ्कारपूरितदिगन्तरौ

प्रयाणै गिरिदुर्गं पर्वतकान्तार विलङ्घ्य पुर सरा अग्रेसरा ये मदसिन्धुरा मत्तहस्तिनस्तैर्निरर्गलीकृता स्वच्छन्दतया पातिता मदधारा दानसंततयो यस्मिस्तथाभूत गुहाद्वार च व्यतीत्य सुरभितः सुगन्धित मन्दमन्दं वलमानश्च वहमानश्च य. पवमान समीरस्तस्य सेवनेन व्यपगतो विनष्टो चिरपरिचितगुहोष्मखेदः चिराभ्यस्तगुहौष्ण्यखेदो यस्मिस्तत् तस्य सानुमतो विजयार्धमहीधरतटवनं तीरोद्यानम्, अध्युवास तत्र निवास कृतवान्। § ४६) तुरङ्गमेति—अथानन्तर तुरङ्गमाणा हयाना खरै शफैराहता क्षुण्णा या क्षिति पृथिवी तस्या रजसा रेणुना परीत व्याप्तमम्बर गगन यस्मिस्तत्, करेणुयुतवारणै हस्तिनीयुतहस्तिभि त्रुटिता खण्डिता. सल्लकीपल्लवा सल्लकीकिसलया यस्मिस्तत् इद वनं कान्तार विलोक्य दृष्ट्वा विचित्रितं विस्मयोपेत हृदन्तर हृदयान्तरं यस्य तथाभूत उदारधीरुत्कृष्टबुद्धियुक्त चक्रेश्वरो भरत अमल स्वच्छ शिबिरम् अध्युवास तत्र निवास कृतवान्। पृथ्वीछन्द ॥३०॥ § ४७) पूर्ववदिति—बलाग्रण्या सेनापतिना पूर्ववत् पूर्वखण्ड इव पश्चिमे खण्डे प्रसाधिते वशीकृते सति प्रभुर्भरतेश्वर' साधनै सैन्यै' 'साधन मेहने सैन्ये' इति विश्वलोचन', मध्यम खण्ड विजेतु स्वायत्तीकर्तुम् उद्ययौ उद्युक्तोऽभूत् ॥३१॥ § ४८) तदानीमिति—तदानी मध्यमखण्डविजयोद्यमनवेलायाम्, परचक्रकृतं शत्रुसैन्यकृत स्वचक्रपराभव स्वसैन्यतिरस्कारम् असहमानौ सोढुमशक्नुवन्तौ

भरतने आधी गुहाके बराबर भूमिका उल्लंघन किया तथा गिरी हुई वस्तुको नीचे ले जानेवाली शक्तिसे युक्त निमग्नजला नामकी नदीके साथ तिरछी प्रविष्ट तथा डाली हुई वस्तुको ऊपर उछालनेकी शक्तिसे युक्त उन्मग्नजला नामकी नदीको स्थपति रत्नके द्वारा निर्मित मजबूत लट्ठोंसे रचित कुतूहलोत्पादक पुलसे पार किया। तदनन्तर कुछ पड़ावों द्वारा पहाड़ी दुर्गको लाँघकर तथा आगे चलनेवाले मदोन्मत्त हाथियोंकी मदकी धाराएँ जहाँ स्वच्छन्द रूपसे पड़ रही थीं ऐसे गुहाद्वारको व्यतीत किया। तत्पश्चात् सुगन्धित एवं मन्द-मन्द चलनेवाली वायुके सेवनसे चिर-परिचित गुहासम्बन्धी गर्मीके खेदको दूर करनेवाले उस विजयार्ध पर्वतके तट वनमें निवास किया। § ४६) तुरंगमेति—तदनन्तर घोड़ोंके खुरोंसे ताडित पृथिवीकी परागसे जहाँ आकाश व्याप्त हो रहा था, तथा हथिनियोंसे सहित हाथियोंके द्वारा जहाँ सल्लकी वृक्षके पल्लव तोड़े गये थे ऐसे इस वनको देख कर जिसका हृदय आश्चर्यसे चकित हो रहा था ऐसे उदार बुद्धिके धारक भरतने निर्मल पड़ावपर निवास किया ॥३०॥ § ४७) पूर्ववदिति—जब सेनापतिने पूर्व खण्डके समान पश्चिम खण्डको वशमें कर लिया तब चक्रवर्ती सेनाओंके द्वारा मध्यम खण्डको जीतनेके लिए उद्यमी हुआ ॥३१॥ § ४८) तदानीमिति—उस समय जो परचक्रके द्वारा किये हुए स्वचक्रके पराभवको सहन नहीं कर रहे थे, जिन्होंने प्रस्थान कालिक भेरियों की भांकारसे दिशाओंके अन्तरालको

कुण्डलीकृतकोदण्डमण्डलमध्यविराजमानकोपारुणवदनतया परिवेषमध्यविलसितपद्मबन्धुबिम्ब तुलयन्तौ धनुर्धरहास्तिकाश्वीयमेदुरा ध्वजिनी पुरस्कृत्य युद्धाय प्रचलितौ चलितावर्तविख्यातौ म्लेच्छभूपालौ धीमतामग्रेसरै सचिववरैर्बोधितारातिविजयोपायतया निषिद्धाभिषेणनौ, शात्रवपराजयाय मेघमुखविख्यातान्नागबर्हिमुखान् सत्कृत्य पूजा प्रकटीचक्रतु ।

§ ४९) नागास्ते सहसाम्बुदाकृतिजुष स्फूर्जन्महागर्जितो-
द्घाटोपाटितपुष्कराः पटुनटच्चण्डानिलैढौकिताः ।
वृष्टिं विष्टपविप्लवस्रुतिनिभा कल्पान्तमेघच्छटा-
मुष्टिं मुष्टिसमीककल्पनकलादृप्तास्तदा चक्रिरे ॥३२॥

§ ५०) तज्जल जलदोद्गीर्णं बलमावेष्ट्य जैष्णवम् ।
अधस्तिर्यगथोर्ध्वं च समन्तादभ्यदुद्रवत् ॥३३॥

प्रस्थानभेरीणा प्रयाणदुन्दुभीना भाङ्कारेण पूरितानि दिगन्तराणि याभ्या तौ, कुण्डलीकृत यत्कोदण्डमण्डल धनुर्मण्डल तस्य मध्ये विराजमान शोभमान कोपारुणवदन ययोस्तयोर्भावस्तया परिवेषस्य परिधेर्मध्ये विलसित शोभित यत् पद्मबन्धुबिम्ब सूर्यमण्डल तत् तुलयन्तौ धनुर्धराश्च धानुष्काश्च हास्तिकाश्च हस्त्यारोहाश्च अश्वीयाश्च अश्वारोहाश्च तैर्मेदुरा सहिता ध्वजिनी सेना पुरस्कृत्य अग्रेकृत्य युद्धाय समराय प्रचलितौ चलितावर्तविख्यातौ चलितावर्तनामधेयौ म्लेच्छभूपालौ धीमता बुद्धिमताम् अग्रेसरै. प्रधानै सचिववरैरमात्यवरै बोधितौ विज्ञापितोऽरातिविजयोपायो ययोस्तयोर्भावस्तया निषिद्धम् अभिषेणन ययोस्तौ 'यत्सेनायाभिगमनमरौ तदभिषेणनम्' इत्युक्तम्, शात्रवपराजयाय शत्रुपराभवाय मेघमुखविख्यातान् मेघमुखनाम्ना प्रसिद्धान् नागबर्हिमुखान् नागामरान् सत्कृत्य पूजा सपर्यां प्रकटीचक्रतु प्रकटयामासतु । § ४९) नागा इति—तदा तस्मिन् काले सहसा झटिति अम्बुदाकृतिजुषो मेघाकारयुक्ता स्फूर्जन्महागर्जितस्य वर्धमानघोरगर्जनस्य उद्घाटया परम्परया पाटित पुष्कर गगन यैस्तथाभूता पटु यथा स्यात्तथा नटन्तो ये चण्डानिलास्तीक्ष्णपवनास्तै विष्टपविप्लवाय जगत्क्षयाय या स्रुतिर्वृष्टिस्तया निभा सदृशीं जगत्क्षयकारिवृष्टितुल्या वृष्टिं ढौकिताः प्रापिता मुष्टिसमीककल्पनकलाया दृप्ता मुष्टियुद्धकरणकलाकोविदा ते प्रसिद्धा नागा देवविशेषा कल्पान्तमेघच्छटामुष्टिं प्रलयमेघशोभामुष्टिं चक्रिरे विदधिरे । शार्दूलविक्रीडितच्छन्द ॥३२॥ § ५०) तज्जलमिति—जलदोद्गीर्णं मेघवृष्टं तत् जल जिष्णोरिद जैष्णव चक्रवर्तिसबन्धि बल सैन्यम् आवेष्ट्य परीत्य अध तिर्यग् ऊर्ध्वं च समन्तात् परित

भर दिया था, कुण्डलाकार धनुर्मण्डलके बीचमे शोभायमान क्रोधजनित लालिमासे युक्त मुखसे सहित होनेके कारण जो परिधिके मध्यमें सुशोभित सूर्यबिम्बकी तुलना कर रहे थे, और जो धनुर्धारी, हाथियोंके सवार तथा घुडसवारोंसे युक्त सेनाको आगे कर युद्धके लिए चल रहे थे ऐसे चलित और आवर्त नामके दो म्लेच्छ राजा, बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ उत्तम मन्त्रियोंके द्वारा विजयके उपाय बताये जानेके कारण सेनासे सम्मुख गमनको छोड़ कर शत्रुकी पराजयके लिए मेघमुख नामसे प्रसिद्ध नाग देवोंका संस्कार कर उनकी पूजा करने लगे। § ४९) नागा इति—उस समय जो सहसा मेघका आकार धारण किये हुए थे, वृद्धिको प्राप्त होती हुई बहुत भारी गर्जनकी सन्ततिसे जिन्होंने आकाशको विदीर्ण कर दिया था, जो अत्यन्त वेगसे चलनेवाली तीव्र आँधीसे लोकका संहार करनेवाली वृष्टिको प्राप्त हुए थे तथा मुष्टियुद्ध करनेकी कलासे जो दर्पयुक्त थे ऐसे वे नागदेव प्रलयकालके मेघकी शोभाका अपहरण कर रहे थे ॥३२॥ § ५०) तज्जलमिति--मेघोंके द्वारा वर्षाया हुआ वह जल चक्रवर्तीकी सेनाको व्याप्त कर नीचे, समान धरातलपर तथा ऊपर सर्वत्र फैल गया

§ ५१) तदानीमुपर्यधः परिकलितयोश्छत्ररत्नचर्मरत्नयोर्मध्ये सप्तदिनावधिनिरुपद्रवमासीने चक्रधरसैन्ये निधीश्वरादिष्टगणवद्धामरैर्हुङ्कारेणोत्सारितेषु नागेषु कुरुराजोऽपि मुक्तसिंहगर्जितप्रतिध्वनितहिमाचलकन्दरः करकलितदिव्यास्त्रः समधिरूढदिव्यरथो नागान्प्रत्यभिषेणनं विधाय शरधाराभिर्गगनतलं पूरयामास ।

§ ५२) तन्मुक्ता विशिखा दीप्रा रेजिरे समराजिरे ।
द्रष्टुं तिरोहितान्नागान् दीपिका इव बोधिताः ॥३४॥

§ ५३) तदनु तद्विजयसनाथं समुखागतं प्राप्तमेघेश्वरश्रुतिं कुरुराजं सन्मानयन् चक्रधरो नागानीकविध्वंसनसंजातसाध्वसाभ्या म्लेच्छनायकाभ्या सोपायनमागत्य वन्दितचरणारविन्दः, पृतनया सह हिमाद्रिं प्रस्थितो मध्येमार्गं सिन्धुदेव्या सहर्षं सिन्धुजलैरभिषिक्तः परिलब्धदिव्यभद्रासनः कैश्चित्प्रयाणैर्हिमवत्कूटोपकण्ठमासाद्य, पुरस्कृतपुरोपहितः कृतोपवासः शुचिशय्याममधिशयानो दिव्यास्त्राण्यधिवास्य करकलितवज्रकाण्डकोदण्डो हिमवत्कूटं प्रति दिव्यममोघं शरमारोपयामास ।

अस्यदुद्रवत् प्रससार ॥३३॥ § ५१) तदानीमिति—तदानी नागामरकृतप्रचण्डवर्षणवेलायाम्, उपरि अधश्च परिकलितयोर्धृतयो छत्ररत्नचर्मरत्नयोर्मध्ये सप्तदिनावधि सप्तदिनानि यावत् निरुपद्रवं यथा स्यात्तथा चक्रधरसैन्ये आसीने सति, निधीश्वरेण चक्रवर्तिना आदिष्टा आज्ञप्ता ये गणवद्धामरास्तैः हुङ्कारेण क्रोधजन्यशब्दविशेषेण नागेषु शत्रुपक्षीयदेवविशेषेषु उत्सारितेषु सत्सु कुरुराजोऽपि जयकुमारोऽपि मुक्तेन सिंहगर्जितेन प्रतिध्वनिता हिमाचलकन्दरा येन तथाभूतः करकलितानि हस्तधृतानि दिव्यास्त्राणि येन तथाभूतः समधिरूढदिव्यरथः समधिष्ठितदिव्यस्यन्दनः सन् नागान् प्रति अभिषेणनं सेनया सहाभियानं विधाय शरधाराभिः बाणसंततिभिः गगनतलं नभस्तलं पूरयामास पूर्णं चकार । § ५२) तन्मुक्तेति—तेन जयकुमारेण मुक्ताः त्यक्ताः दीप्राः देदीप्यमानाः विशिखा बाणाः समराजिरे रणाङ्गणे तिरोहितान् अन्तर्हितान् नागान् नागामरान् द्रष्टुमवलोकितुं बोधिताः प्रज्वलिताः दीपिका इव रेजिरे शुशुभिरे ॥३४॥ § ५३) तदन्विति—नागानीकस्य नागामरसैन्यस्य विध्वंसनेन विनाशेन संजातं साध्वसं भयं ययोस्ताभ्याम्, शेषं सुगमम् ।

॥३३॥ § ५१) तदानीमिति—उस समय ऊपर और नीचे धारण किये हुए छत्ररत्न तथा चर्मरत्नके मध्यमें सात दिन तक चक्रवर्तीकी सेना निरुपद्रव बैठी रही। तदनन्तर चक्रवर्तीके द्वारा अज्ञात गणबद्ध देवोंने हुंकारके द्वारा नाग नामक देवोंको खदेड दिया। उसी समय, जिसने छोड़ी हुई सिंह गर्जनासे हिमवान् पर्वतकी गुफाओंको प्रतिध्वनित कर दिया था, जिसने दिव्य शस्त्र धारण किये थे तथा जो दिव्य रथपर सवार था ऐसे कुरुराज-जयकुमारने नाग नामक देवोंके प्रति सेनाके साथ आक्रमण कर बाणोंकी धारासे आकाशतलको भर दिया। § ५२) तन्मुक्ता इति—कुरुराजके द्वारा छोड़े हुए चमकीले बाण युद्धके अंगणमें ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो छिपे हुए नागदेवोंको देखनेके लिए जलाये हुए दीपक ही हैं ॥३४॥ § ५३) तदन्विति—तदनन्तर उनकी विजयलक्ष्मीसे सहित, सम्मुखागत एवं मेघेश्वर नामके धारक कुरुराजका सम्मान करते हुए चक्रवर्तीने नाग नामक देवोंकी सेनाके नष्ट हो जानेसे जिन्हें भय उत्पन्न हुआ था ऐसे दोनों म्लेच्छ राजाओंके द्वारा उपहार सहित आकर वन्दित चरण होते हुए, सेनाके साथ हिमवान् पर्वतकी ओर प्रस्थान किया। बीच मार्गमें सिन्धु देवीने हर्षपूर्वक सिन्धु नदीके जलसे उनका अभिषेक किया और दिव्य आसन

§ ५४) तत्रत्यदेवस्त्वरितं समागाद् द्रष्टुं तदा मागधवद्विनीतः ।
चक्री च तं देवमुदारवाचं संमान्य हर्षाद् विससर्ज भूयः ॥३५॥

§ ५५) तदनु प्रत्यावृत्य सेनया सह समासाद्य वृषभाद्रिं पुञ्जीभूत इव स्वयशोमण्डले तस्मिन् गिरौ स्वनामाक्षराणि प्रकटयितुकामस्तत्रत्यानि राजसहस्रनामाक्षराणि विलोक्य गर्वक्षतिविलक्षतां चापन्न', कस्यचिद्राज्ञो नामाक्षराणि निरस्य विलिखितनिस्तुलनिजप्रशस्तिः 'सर्वः स्वार्थपरो लोकः' इति लोकप्रवाद सार्थक्यमावादयामास ।

§ ५६) भूयः प्रोत्साहितो देवैर्जयोद्योगमनूनयन् ।
गङ्गापातमभीयाय व्याहूत इव तत्स्वनैः ॥३६॥

§ ५७) तत्र किल गङ्गाजलावर्तनविलोकनविविधकौतुकेन वीक्षमाणो गङ्गादेव्या पूजितश्चक्रधर पृतनया समं निवृत्य प्राप्तविजयार्धाचलकटकनिकटः, पूर्ववद्गुहाद्वारपाटनाय प्राच्यखण्डविजयाय सेनान्यमादिश्य तत्र षण्मासान्सुखेन रममाणः, तदा समागताभ्यां पुरस्कृतविचित्रोपाय-

§ ५४) तत्रत्येति—तदा तस्मिन्समये तत्र भवस्तत्रत्य' स चासौ देवश्चेति तत्रत्यदेवः मागधवत् लवणसमुद्राधिपतिमागधदेववत् विनीत नम्र सन् त्वरित शीघ्र द्रष्टु समागात् समायात । चक्री च भरतेश्वरश्च उदारवाच समुत्कृष्टगिर त देव हर्षात् समान्य सत्कृत्य भूयो विससर्ज विसृष्ट विदधौ । उपजातिछन्द. ॥३५॥ § ५५) तदन्विति—सुगमम् । § ५६) भूय इति—देवैरमरै भूय. पुनरपि प्रोत्साहितो वर्धमानोत्सवो भरते जयोद्योग विजयप्रयासम् अनूनयन् ऊनं न करोतीति अनूनयन् तत्स्वनैः तदीयशब्दै व्याहूत. आकारित इव गङ्गापात यत्र हिमवतो गङ्गा प्रपतति तत्र अभीयाय अभिजगाम । उत्प्रेक्षा ॥३६॥ § ५७) तत्रेति—तत्र किल गङ्गाजलावर्तनविलोकनस्य यद् विविध नानाप्रकार कौतुक कुतूहल तेन वीक्षमाणो विलोकयन् गङ्गादेव्या पूजित. समर्चित. चक्रधर पृतनया सेनया समं निवृत्य प्राप्तो विजयार्धाचलकटकनिकटो येन

प्रदान किया। तदनन्तर कितने ही पडावों द्वारा हिमवत्कूटके निकट पहुँच कर उन्होंने पुरोहितको आगे कर उपवास किया, पवित्र शय्यापर शयन किया, दिव्य शस्त्रोंकी पूजा कर हाथमें वज्रकाण्ड नामका धनुष लिया और हिमवत्कूटको लक्ष्य कर देवोपनीत अमोघ बाण चढ़ाया। § ५४) तत्रत्येति—उसी समय वहाँका देव मागध देवके समान नम्र हो दर्शन करनेके लिए शीघ्र ही आया। उत्कृष्ट वचन कहनेवाले उस देवका हर्षपूर्वक सम्मान कर चक्रवर्तीने उसे विदा किया ॥३५॥ § ५५) तदन्विति—तदनन्तर सेनाके साथ लौटकर वृषभाचलपर आये। इकट्ठे हुए अपने यशके समूहके समान उस वृषभाचलपर अपने नामके अक्षर अंकित करनेकी इच्छा करते हुए ज्योंही उन्होंने उसपर अंकित हजारों राजाओंके नाम सम्बन्धी अक्षर देखे त्यों ही गर्वके नष्ट हो जानेसे लज्जाको प्राप्त हो गये। तदनन्तर किसी राजाके नामाक्षरोंको मिटाकर अपनी अनुपम प्रशस्ति लिखाते हुए उन्होंने 'सभी लोग स्वार्थमें तत्पर हैं' इस लोकोक्तिको सार्थकता प्राप्त करायी॥ § ५६) भूय इति—देवोंके द्वारा जिनका पुनः उत्साह बढाया गया था ऐसे भरतेश्वर विजयके उद्योगको कम न करते हुए उसके शब्दोंसे बुलाये गये के समान गंगापातके सम्मुख गये ॥३६॥ § ५७) तत्रेति—वहाँ गंगाजलके आवर्त रूप भ्रमणके देखने सम्बन्धी कुतूहलसे देखनेवाले चक्रवर्ती भरतकी गंगादेवीने पूजा की। तदनन्तर वे सेनाके साथ वहाँसे लौटकर विजयार्ध पर्वतके निकट आये, पहलेकी तरह गुहाद्वारको तोड़ने और प्राच्यखण्डकी विजयके लिए सेनापतिको आदेश देकर वहाँ छह मास तक सुखसे क्रीडा करते रहे। उसी समय विद्याधरोंके राजा नमि और

नाभ्यां नमिविनमिभ्या विद्याधरपतिभ्या प्रार्थितो मदनमोहनमन्त्रदेवतानिभा मूर्तिमती सुभद्रा-नाम सुदती नमेः स्वसारमुद्वाह्य परमानन्दनिर्भरस्तावदागतेन कृतकृत्येन सेनाधिपेन सह खण्ड-प्रपाताख्यां गुहां पूर्ववद् व्यतीत्य नाट्यमालनामधेयेन सुरवरेण पूजितो भरतराजः क्रमेण कैलास-धराधरोपान्ते सेनां निवेशयामास।

§ ५८) तत्रास्थानं विगाह्य त्रिभुवनरमणं शुद्धधीरर्चयित्वा
नुत्वा नत्वा च भूयस्तट निकटगतैः सैनिकैः सपरीतः।
षट्खण्डानां विजेता भरतनरपतिः किन्नरैर्गीयमानः
स्फारप्रागल्भ्यकीर्तिर्निजपुरगमने संमुखः संप्रतस्थे ॥३७॥

§ ५९) तत. कतिपयैरिव प्रयाणैश्चक्रिणो बलम्।
अयोध्या प्रापदाबद्धतोरणा चित्रकेतनाम् ॥३८॥

इत्यर्हद्दासकृतौ पुरुदेवचम्पूप्रबन्धे नवम. स्तबकः ॥९॥

तथाभूतः सन्। शेषं सुगमम्। § ५८) तत्रेति—तत्र कैलासधराधरे आस्थान समवसरण विगाह्य त्रिभुवन-रमणं त्रिलोकीनाथ वृषभजिनेन्द्रम् अर्चयित्वा पूजयित्वा नुत्वा स्तुत्वा नत्वा च नमस्कृत्य च भूयस्तदनन्तरं तटनिकटगतैस्तटाभ्यर्णप्राप्तैः सैनिकै' संपरीत शुद्धधी. षट्खण्डाना विजेता किन्नरै. गीयमानः स्फारे विशाले प्रागल्भ्यकीर्ती गाम्भीर्ययशसी यस्य तथाभूतो भरतनरपति' निजपुरगमने समुखः सन् सप्रतस्थे प्रययौ। स्रग्धराछन्दः ॥३७॥ § ५९) तत इति—सुगमम् ॥३८॥

इत्यर्हद्दासकृते. पुरुदेवचम्पूप्रबन्धस्य 'वासन्ती'समाख्याया संस्कृतव्याख्याया नवम. स्तबक. समाप्तः ॥९॥

विनमिने नाना प्रकारकी भेंटके साथ आकर प्रार्थना की जिससे कामदेवके मोहन मन्त्रकी मूर्तिमती देवीके समान सुन्दर दाँतों वाली नमिकी बहन सुभद्राके साथ विवाह किया। पश्चात् परम आनन्दसे भरे हुए भरतेश्वर, तब तक कृतकृत्य होकर आये हुए सेनापतिके साथ खण्डप्रपात नामकी गुहाको पूर्वकी तरह व्यतीत कर नाट्यमाल नामक देवके द्वारा पूजित होते हुए आगे बढ़े तथा क्रम-क्रमसे चलकर उन्होंने कैलास पर्वतके समीप सेना ठहरायी। § ५८) तत्रेति--वहाँ शुद्ध बुद्धिके धारक भरतेश्वरने समवसरणमें प्रवेश कर त्रिभुवनपति वृषभजिनेन्द्रकी पूजा की, स्तुति की, उन्हें नमस्कार किया तदनन्तर तट निकट स्थित सैनिकोंसे परिवृत हो षट्खण्डके विजेता तथा अत्यधिक गाम्भीर्य और कीर्तिके धारक भरत महाराजने अपने नगरकी ओर प्रस्थान किया। उस समय किन्नर देव उनका यशोगान कर रहे थे ॥३७॥ § ५९) तत इति--तदनन्तर चक्रवर्तीकी वह सेना कुछ ही पड़ावों द्वारा जिसमें तोरण बाँधे गये थे तथा नाना प्रकारकी ध्वजाएँ फहरायी गयी थीं ऐसी अयोध्या नगरीको प्राप्त हो गयी ॥३८॥

इस प्रकार श्रीमान् अर्हद्दास कवि द्वारा रचित पुरुदेव चम्पू-प्रबन्धमें नौवाँ स्तबक समाप्त हुआ ॥९॥

दशमः स्तबकः

§ १) तदनु नातिदूरसनिविष्टस्य चक्रधरस्य पुरप्रवेशसमये विजितारातिचक्रे चक्ररत्ने पुरगोपुर नातिक्रामति, तद्रक्षणदक्षेषु यक्षेषु क्रोधविस्मयाभ्या परवशेषु, तदुदन्तमाकर्ण्य विस्मितेन प्रभुणा पृष्टे पुरोहिते भ्रातृविजयावशेष चक्रानातिक्रमणनिमित्त ब्रुवाणे, तत्क्षणं सोपायनवाचिक प्रहितै कार्यज्ञैर्दूतैर्विज्ञातवृत्तान्तेषु भरतेशानुजेषु, जगद्गुरुसभामासाद्य तपोलक्ष्मीमेव बहुमन्यमानेषु, समागतदूतव्रातविदिततदुदन्तो मनुकुलजलधिकुमुदिनीकान्तो भरतमहीकान्तः किंचिच्चिन्ताक्रान्तो भुजबलशालिन भुजबलिन युवानमनुनेतु व्याकुलमानसः कार्यज्ञ मन्त्रविशारदं दूत तत्प्रान्त प्रतिप्रेषयामास ।

---

§ १) तदन्विति—तदनन्तर नातिदूरे समीपप्रायस्थाने सनिविष्टस्य स्थितस्य चक्रधरस्य भरतेश्वरस्य पुरप्रवेशसमये नगरप्रवेशावसरे विजित पराभूतमरातिचक्रं शत्रुसैन्यं येन तथाभूते चक्ररत्ने सुदर्शनचक्रे पुरगोपुर नगरप्रधानद्वार नातिक्रामति नोल्लङ्घयति सति, तस्य चक्ररत्नस्य रक्षणदक्षेषु रक्षासमर्थेषु यक्षेषु तज्जातीयव्यन्तरामरेषु क्रोधविस्मयाभ्या कोपाश्चर्याभ्या परवशेषु परायत्तेषु सत्सु, तदुदन्त तद्वृत्तान्तम् आकर्ण्य श्रुत्वा विस्मितेन चकितेन प्रभुणा चक्रवर्तिना पृष्टेऽनुयुक्ते पुरोहिते पुरोधसि भ्रातृणा विजयस्यावशेषस्त चक्रानातिक्रमणस्य निमित्त कारण ब्रुवाणे कथयति सति, तत्क्षण तत्कालमेव उपायनवाचिकाभ्या प्राभृतसदेशाभ्या सहेति सोपायनवाचक यथा स्यात्तथा प्रहितै प्रेषितै कार्यज्ञै करणीयकार्यज्ञानयुक्तैर्दूतैश्चरै भरतेशानुजेषु विज्ञानवृत्तान्ते ज्ञाततदुदन्तेषु, भरतेश्वरलघुसहोदरेषु जगद्गुरुसभा वृषभजिनेन्द्रसमवसरणम् आसाद्य प्राप्य तपोलक्ष्मीमेव तप श्रियमेव बहुमन्यमानेषु श्रेष्ठा जानत्सु, समागतदूतव्रातेन प्रतिनिवृत्तचरसमूहेन विदितोऽवगतस्तदुदन्तस्तद्दीक्षाग्रहणसमाचारो येन स , मनुकुलमेव जलधिर्मनुकुलजलधिस्तस्मै कुमुदिनीकान्त चन्द्र भरतमहीकान्तो भरतराज किंचिन्मनाङ् चिन्ताक्रान्त चिन्तित सन् भुजवलशालिन वाहुविक्रमविशोभिन भुजवलिन वाहुवलिन युवान युवराजम् अनुनेतुमनुकूलयितु व्याकुलमानसो व्यग्रहृदयः कार्यज्ञ करणीयकार्यनिपुण मन्त्रविशारद मन्त्रणानिपुण दूत प्रणिधि तत्प्रान्त तत्प्रदेश प्रति प्रेषयामास प्रजिघाय ।

---

§ १) तदन्विति—तदनन्तर चक्रवर्ती अयोध्यासे कुछ दूरीपर ठहर गये। जब उनका नगरमें प्रवेश करनेका अवसर आया तब शत्रुओंके समूहको जीतनेवाला चक्ररत्न नगरके गोपुरका उल्लघन नहीं कर सका। यह देख उसकी रक्षामें समर्थ यक्ष क्रोध और आश्चर्यसे परवश हो गये। उस वृत्तान्तको सुनकर आश्चर्यसे चकित चक्रवर्तीने पुरोहितसे उसका कारण पूछा। पुरोहितने 'भाइयोंका जीतना अभी बाकी है' यही चक्ररत्नके अनुल्लंघनका कारण बतलाया। उसी समय उपहार और सन्देशके साथ कार्यके ज्ञाता दूत उनके पास भेजे गये। दूतोंसे सब वृत्तान्त जान कर भरतके छोटे भाइयोंने वृषभजिनेन्द्रके समवसरणमें जाकर तप लक्ष्मीको स्वीकार करना ही श्रेष्ठ माना। जब लौटे हुए दूतोंके समूहसे उनका वृत्तान्त मालूम हुआ तब मनुवशरूपी समुद्रको वृद्धिंगत करनेके लिए चन्द्रमा स्वरूप भरतराज कुछ चिन्तासे व्याप्त हो गये। तदनन्तर वाहुवलसे सुशोभित युवराज वाहुवलीको अनुकूल करनेके लिए उन्होंने कार्यके ज्ञाता एवं मन्त्रणामें निपुण दूतको उनके प्रान्तकी

§ २) सोऽयं दूतो विविधविषयान्द्रागतीत्यातिचित्रान्
गत्वा स्वर्गादधिमदवती राजधानी क्रमेण ।
ज्ञातोदन्तं भुजबलिनृपं द्वारपालैर्महीभृत्-
पीठासीनं दिनकरनिभं तेजसा संददर्श ॥१॥

§ ३) अनङ्गः साङ्गः किं मधुरुत मनोज्ञाकृतियुतः
प्रतापः किं मूर्तः प्रकटितशरीरं किमु बलम् ।
समूहः किं धाम्ना हरितमणिनद्धः किमु गिरिः
क्षितीशं दृष्ट्वासाविति विविधसंदेहमभजत् ॥२॥

§ ४) ततश्च दूरादवनतशिरा ससत्कारं यथोचितमासनमुपागतः शासनहरो भरतराजस्य निखिलदिग्विजयादिकुशलप्रश्नपूर्वकं तस्य कर्तव्यशेषमस्ति न वेति नरपालेन पृष्टः सादरमिदमभासिष्ट ।

§ ५) मातङ्गोपरि संपतन्त्यनुदिनं श्यामा कृपाणीलता
सद्धाराञ्चितया तया परवशो नान्या समालोकते ।

---

§ २) सोऽयमिति—सोऽयं चक्रवर्तिप्रेषितो दूतः द्राग् झटिति अतिचित्रान् प्रभूतविस्मयकरान् विविधविषयान् नैकविधजनपदान् अतीत्य समुल्लङ्घ्य स्वर्गाद् त्रिदिवात् अधिमदवतीम् अधिकगर्ववती राजधानी क्रमेण गत्वा प्राप्य द्वारपालैः प्रतीहारैः ज्ञातोदन्तं विदितवृत्तान्तं महीभृत्पीठासीनं राजसिंहासनासीनं तेजसा प्रतापेन दिनकरनिभं सूर्यसदृशं भुजबलिनृपं बाहुबलिनरेन्द्रं संददर्श समवलोकयामास । मन्दाक्रान्ताछन्दः ॥१॥ § ३) अनङ्ग इति—असौ दूतः क्षितीशं बाहुबलिनं दृष्ट्वा इतीत्थं विविधसंदेहं नानाप्रकारसंशयम् अभजत् प्रापत् । इतीति किम् । किं साङ्गः सशरीरः अनङ्गो मदनः, उताथवा मनोज्ञाकृतियुतः सुन्दराकारसहितो मधुर्वसन्तः, किं मूर्तः प्रतापस्तेजः, किमु प्रकटितशरीरः धृतदेहं बलम्, किं धाम्ना तेजसा समूहः, किमु हरितमणिभिर्नद्धः खचितः गिरिः शैलः । संशयालंकारः । शिखरिणीच्छन्दः ॥२॥ § ४) ततश्चेति—शासनहरो दूतः । शेषं सुगमम् । § ५) मातङ्गेति—मातङ्गोपरि गजोपरि पक्षे चाण्डालोपरि अनुदिनं प्रतिदिनं संपतन्ती श्यामा नीलवर्णा या कृपाणीलता खड्गवल्ली पक्षे श्यामा नवयौवनवती सती धारा सद्धारा तयाञ्चितया शोभितया पक्षे सश्चासौ धरश्चेति सद्धारस्तेनाञ्चितया शोभितया तया कृपाणीलतया पक्षे नवयौवन-

---

ओर भेजा । § २) सोऽयमिति—वह दूत क्रमशः अनेक आश्चर्योंसे युक्त नाना देशोंको शीघ्र ही लाँघकर स्वर्गसे भी अधिक मदशाली राजधानी जा पहुँचा । वहाँ उसने, द्वारपालोंके द्वारा जिसे सब समाचार विदित हो चुके थे, जो राजसिंहासनपर बैठा हुआ था तथा तेजसे सूर्यके समान था ऐसे बाहुबलीके दर्शन किये ॥१॥ § ३) अनंग इति—क्या यह शरीर सहित काम है ? या मनोहर आकृतिसे युक्त वसन्त है ? क्या मूर्तिधारी प्रताप है ? या शरीरधारी बल है ? क्या तेजका समूह है ? या हरित मणियोंसे खचित पर्वत है ? इस प्रकार राजा बाहुबलीको देखकर वह दूत नाना प्रकारके सन्देहको प्राप्त हुआ ॥२॥ § ४) ततश्चेति—तदनन्तर दूरसे ही जिसका सिर नम्रीभूत हो रहा था, तथा सत्कार सहित जो यथायोग्य आसनको प्राप्त हुआ था ऐसे उस दूतसे 'भरत राजकी समस्त दिग्विजय आदिकी कुशलताके पूछनेके साथ उनके कुछ करने योग्य शेष रहा है या नहीं' इस प्रकार राजा बाहुबलीने पूछा । उत्तरमें दूतने आदरपूर्वक यह कहा । § ५) मातंगोपरीति—जो नील वर्णवाली तलवाररूपी लता प्रतिदिन हाथियोंके ऊपर पड़ती है (पक्षमें जो नवयौवनवती स्त्री

मा भृत्येषु नियुक्तवान्निधिपतिस्तात ! श्रुतं तेऽस्त्विति
श्रीवार्ता गदितुं ध्रुवं जलनिधिं यत्कीर्तिराटीकत ॥३॥

§ ६) किं च यः किल वीर्यलक्ष्मीनिलयो निःस्वोपकारसमासक्तो निखिलसंपद्विराजमानो निध्यादरविरहितो निजाया मतेरधीनः समापततामरातीना रणे संनिधिमात्रेण निधनदः सख्याना नियमप्रकारगोचरः सरसमैत्रीनिघ्नगुणाकरः परनियतिधिक्कारधुरीणः समानना विषयीकृतनियोगिजनः चक्रधरस्तद्रिपुश्च किं तु तद्रिपुर्न्यून इति विशेषः।

वत्या स्त्रिया परवशो निधिपतिर्भरत अन्या नारी न समालोकते न पश्यति । स मा भृत्येषु सेवकेषु नियुक्तवान् दत्तवान् । हे तात ! हे पितः ! ते तव इति पूर्वोक्तं श्रुतम् अस्तु, इतीत्थंभूता श्रीवार्ता लक्ष्मीवार्ता गदितुं कथयितुं यत्कीर्तिर्यदीयसमज्या जलनिधिं सागरम् आटीकत प्राप्नोत् ध्रुवमित्युत्प्रेक्षायाम् तदीया कीर्तिः समुद्रान्त प्रसृतास्तीति भाव । शार्दूलविक्रीडितम् ॥३॥ § ६) किं चेति—य. किल चक्रधरो भरतो वीर्यलक्ष्म्या वीरश्रिया निलयो गृह तद्रिपुश्च तथा किं तु स न्यूनो हीन. नि-अक्षरेण रहितश्च वीर्यलक्ष्मीलयो वीरश्रीविनाशक इत्यर्थः, नि.स्वोपकारसमासक्त निर्धनमनुष्योपकारलीन. तद्रिपुस्तु न्यूनत्वेन स्वोपकारसमासक्तो निजोदरभरणशीलः, निखिलसपद्विराजमान सर्वसंपत्तिशोभमान तद्रिपुस्तु न्यूनत्वेन खिलसंपद्विराजमाना सविघ्नसपत्तिशोभमान., निध्यादरविरहित. निधौ द्रव्यादिषु आदरविरहितः तद्रिपुस्तु न्यूनत्वेन ध्यादरविरहितो बुद्ध्यादररहित', निजायामतेरधीन' स्वस्याबुद्धेरधीन तद्रिपुस्तु न्यूनत्वेन जायामतेरधीन' स्त्रीबुद्धिनिघ्न , रणे युद्धे सनिधिमात्रेण सनिधानमात्रेणैव समापतता समागच्छताम् अरातीनां शत्रूणा निधनदो मृत्युप्रद तद्रिपुस्तु न्यूनत्वेन रणे सधिमात्रेण समापतता शत्रूणा धनदो धनप्रद , सख्याना मैत्रीणा नियमप्रकारगोचरो नियमेन मैत्रीणा विषयः तद्रिपुस्तु न्यूनत्वेन सख्याना यमप्रकारगोचरो विनाशप्रकारविषय , मैत्रीविनाशक इत्यर्थ , सरसमैत्रीनिघ्नाः सरससख्याधीना ये गुणास्तेषामाकरः खनि तद्रिपुस्तु न्यूनत्वेन सरसमैत्रीघ्नगुणाकर. सरसमैत्रीघातकगुणखनि , परनियते. परभाग्यस्य धिक्कारे तिरस्कारे धुरीणो निपुणः

प्रतिदिन चाण्डालोंके ऊपर पड़ती है) समीचीन धारासे युक्त उस तलवारके वशीभूत हुआ चक्रवर्ती दूसरीकी ओर देखता भी नहीं है (पक्षमें समीचीन हारसे युक्त उस स्त्रीके वश हुआ किसी अन्य स्त्रीकी ओर देखता भी नहीं है) मुझे तो उसने नौकरोंके लिए दे रखा है। हे पिता जी ! यह सब समाचार आपके सुन पड़े, इस प्रकार लक्ष्मीका यह समाचार कहनेके लिए ही मानो जिसकी कीर्ति समुद्र तक गयी थी ॥३॥ § ६) किं चेति—एक बात यह भी है कि जो भरतराज वीर्यलक्ष्मीनिलय है—पराक्रमरूपी लक्ष्मीका घर है तथा उसका शत्रु भी ऐसा ही है परन्तु वह न्यून है 'नि' इस अक्षरसे रहित है अर्थात् वीर्यलक्ष्मीलय है—पराक्रमरूपी लक्ष्मीका नाश करने वाला है, जो नि.स्वोपकार समासक्त है—निर्धन मनुष्योंके उपकारमें लीन है परन्तु उसका शत्रु न्यून होनेके कारण स्वोपकार समासक्त है—मात्र अपना उपकार करनेमे लीन है, जो निखिल सम्पद्विराजमान—समस्त सम्पत्तियोंसे शोभायमान है परन्तु उसका शत्रु न्यून होनेके कारण खिलसम्पद्विराजमान—विघ्नित सम्पत्तिसे विराजमान है, जो निध्यादरविरहित—निधि-विषयक आदरसे रहित है परन्तु उसका शत्रु न्यून होनेसे ध्यादरविरहित—बुद्धिके आदरसे रहित है, जो निजायामतेरधीनः—अपनी बुद्धिके अधीन है परन्तु उसका शत्रु न्यून होनेसे जायामतेरधीन'—स्त्रीकी बुद्धिके अधीन है, जो रणमें सन्निधिमात्र—उपस्थित रहने मात्रसे आते हुए शत्रुओंके निधनदः—मरणको देनेवाला है परन्तु उसका शत्रु न्यून होनेसे सन्धिमात्रसे युद्धमें आनेवाले शत्रुओंको धनदः—धनका देनेवाला है, जो मित्रताओंके नियम प्रकार—नियमोंका गोचर है परन्तु

§ ७) स राजराजो भरतः समादिशति मन्मुखात् ।
भवन्तमनुजं धीरं चक्रविख्यातवैभवः ॥४॥

§ ८) न शोभते राज्यमिदं त्वया विना
हितैषिणा दोर्बलिनानुजन्मना ।
तदेव राज्यं समुदाहरन्ति यत्
स्वबान्धवानां परिभागकारणम् ॥५॥

§ ९) किं च,

§ १०) यत्पादाम्बुजमानमत्सुरशिरोमन्दारमालारजो-
जुष्टं लेखकिरीटकान्तिलहरीपुञ्जेन किंजल्कितम् ।
युष्मद्वज्रकिरीटमत्र विमलं नोचेन्मरालायते
तच्छोभां न दधाति देव विलसद्रक्ताङ्गुलीसद्दलम् ॥६॥

तद्रिपुस्तु न्यूनत्वेन परयतिधिक्कारधुरीणः श्रेष्ठसाधुनिन्दननिपुण', संमाननायाः सत्कृतेर्विषयीकृता गोचरीकृता नियोगिजना भृत्यजना' येन स', तद्रिपुस्तु न्यूनत्वेन संमाननस्य सत्कारस्य अविषयीकृता योगिजना मुनिजना येन तथाभूतः । इतीत्थं तद्रिपौ विशेषोऽस्तीति शेष । व्यतिरेकालंकारः । § ७) स राजेति—चक्रेण विख्यातं विश्रुत वैभवं यस्य तथाभूतः राजराजो राजेश्वरः स भरतः धीरं गभीरम् अनुजं लघुसहोदर भवन्त मन्मुखात् समादिशति समाज्ञापयति ॥४॥ § ८) न शोभत इति—हितैषिणा हितेच्छुना अनुजन्मना लघुसहोदरेण दोर्वलिना बाहुवलिना त्वया विना इदं राज्य न शोभते । यत् स्वबान्धवाना स्वसनाभीना परिभागकारणं भवति तदेव राज्य समुदाहरन्ति कथयन्ति । वंशस्थवृत्तम् ॥५॥ § ९) किं चेति—किं च अन्यदपि । § १०) यत्पादेति—यत्पादाम्बुजं यच्चरणारविन्दं, आनमता असमन्तान्नमस्कुर्वता सुराणा देवाना याः शिरोमन्दारमाला मूर्धस्थकल्पवृक्षकुसुमस्रजस्तासा रजोभि. परागै जुष्टं सेवितं, लेखकिरीटाना लेखमौलीना याः कान्तिलहर्यः कान्तिपरम्परास्तासा पुञ्जेन समूहेन किंजल्कितं केसराढ्यं, विलसन्ति शोभमानानि

उसका शत्रु न्यून होनेसे यमप्रकारगोचरः—नाना प्रकारके मरणोंका विषय है, जो सरस-मैत्रीनिघ्नगुणाकरः—सरस मित्रताके अधीन गुणोंकी खान है परन्तु उसका शत्रु न्यून होनेसे सरसमैत्रीघ्नगुणाकर'—सरस मित्रताको नष्ट करनेवाले गुणोंकी खान है, जो परनियति धिक्कारधुरीण—दूसरोंके भाग्यका तिरस्कार करनेमें निपुण है परन्तु उसका शत्रु न्यून होनेके कारण परयतिधिक्कारधुरीण'—श्रेष्ठ मुनियोंका तिरस्कार करनेमें निपुण है और जो सम्मानना—विषयीकृतनियोगिजनः—सेवक जनोंको आदरका विषय बनानेवाला है परन्तु उसका शत्रु न्यून होनेसे सम्माननाविषयीकृतयोगिजनः—योगी जनोंको सम्मानका विषय बनानेवाला नहीं है। इस प्रकार चक्रवर्ती और उसके शत्रुमें विशेषता है। § ७) स राजेति—वह राजाओंका राजा तथा चक्ररत्नसे प्रसिद्ध वैभवका धारक भरत, गम्भीर प्रकृतिसे युक्त आप छोटे भाईको मेरे मुखसे आज्ञा देता है ॥४॥ § ८) न शोभत इति—हितको चाहनेवाले तुझ बाहुबली अनुजके बिना यह राज्य शोभित नहीं होता। वास्तवमें जो अपने भाइयोंके विभागका कारण है उसे ही राज्य कहते हैं ॥५॥ § ९) किं चेति—और भी। § १०) यत्पादेति—जिनके चरणकमल नम्रीभूत देवोंके मस्तकपर स्थित कल्पवृक्षकी मालाओंकी परागसे सेवित देवोंके मुकुटोंकी कान्तिरूपी तरंगोंके समूहसे केशरयुक्त, तथा शोभायमान लाल-लाल अँगुलीरूपी उत्तम दलोंसे युक्त है इनपर यदि आपका निर्मल

§ ११) अवन्ध्यशासनस्यास्य शासनं ये विमन्वते ।
शासन द्विषता तेषा चक्रमप्रतिशासनम् ॥७॥

§ १२) इत्यादि सामभेददण्डप्रदर्शन प्रभुशासनमुदाहृत्य विरतवचसि वचोहरे मन्दस्मितमकरन्दोद्गारिवदनारविन्दो भुजबलिकुमारः सरसमधुरगभीरार्थमित्थं वचनमाचचक्षे ।

§ १३) सामि दर्शयता सामभेददण्डौ विशेषतः ।
अस्मत्सु भवतो भर्त्रा स्वप्रज्ञा प्रकटीकृता ॥८॥

§ १४) खलता खलतामिवाफला सुमनोभी रहितां दधात्ययम् ।
भरतः स यतो दिदृक्षते सहसास्मान्बलतश्च मायया ॥९॥

रक्ताङ्गुल्य एव सद्दलानि यस्मिन् तथाभूत वर्तते । हे देव ! हे राजन् ! चेद् यदि अत्र तदीयपादाम्बुजे विमल निर्मल युष्मद्वज्रकिरीटं त्वद्धीरकमौलिः नो मरालायते नो हंसायते तत् तर्हि शोभा न दधाति । भवद्वज्रमुकुटमरालमण्डितमेव तदीयपदारविन्द शोभामवाप्नुयादिति भाव । रूपकं शार्दूलविक्रीडित छन्दः ॥६॥ § ११) अवन्ध्येति—अवन्ध्य सफल शासन यस्य तस्य भरतराजस्य शासनमादेश ये विमन्वते तिरस्कुर्वन्ति तेषा द्विषता रिपूणाम् अप्रतिशासन प्रतिद्वन्द्विरहित चक्रं चक्ररत्न शासनं नियामक विनाशकमस्तीति शेषः ॥७॥ § १२) इत्यादीति—इत्यादि पूर्वोक्तप्रकार सामभेददण्डाना सान्त्वभेददण्डनीतीना प्रदर्शन यस्मिंस्तत् प्रभुशासन चक्रिनिदेशम् उदाहृत्य कथयित्वा वचोहरे दूते विरतवचसि तूष्णीभूते सति, मन्दस्मितमेव मकरन्द तस्योद्गारि वदनारविन्द यस्य तथाभूतो भुजवलिकुमार बाहुवलिकुमारः सरसमधुरगभीरार्थं सरसो मधुरो गभीरश्चार्थो यस्य तथाभूत वचनम् आचचक्षे समुवाच । § १३) सामिति—अस्मासु विषये सामि अल्प साम सामनीतिं विशेषतो बाहुल्येन भेददण्डौ भेददण्डनीती दर्शयता प्रकटयता भवतो भर्त्रा तव स्वामिना स्वप्रज्ञा स्वबुद्धि प्रकटीकृता प्रदर्शिता ॥८॥ § १४) खलतामिति—यतो यस्मात् कारणात् स भरतः अस्मात् सहसा अविमृश्य बलतो वीर्यतो मायया प्रपञ्चेन च दिदृक्षते द्रष्टुमिच्छति ततोऽय खलतामिव गगनवल्लीमिव 'अमरवेल' इति प्रसिद्धलतामिव अफला फलरहिता प्रयोजनसिद्धिरहिता च सुमनोभिः पुष्पै रहितां विद्वज्जनरहिता च खलता दुष्टतां दधाति बिभर्ति । यमकः श्लेषश्च । वियोगिनी-

---

हीरकनिर्मित मुकुट हंसके समान आचरण नहीं करता है तो वह शोभाको धारण नहीं करता है ॥६॥ § ११) अवन्ध्येति—सार्थक आज्ञाको धारण करनेवाले इसके शासनको जो स्वीकृत नहीं करते हैं—उसके विरुद्ध आचरण करते हैं, प्रतिद्वन्द्वीसे रहित चक्ररत्न उन शत्रुओंका शासन करता है—उनका दमन करता है ॥७॥ § १२) इत्यादीति—इस प्रकार साम, भेद और दण्डनीतिके प्रदर्शनसे युक्त स्वामीकी आज्ञा प्रकट कर जब वह दूत चुप हो गया तब मन्द मुसकानरूपी मकरन्दको प्रकट करनेवाले मुखारविन्दसे युक्त बाहुवली कुमार इस प्रकारके सरस मधुर तथा गम्भीर अर्थसे युक्त वचन कहने लगे । § १३) सामीति—हमारे विषयमें थोड़ा-सा साम और विशेष रूपसे भेद तथा दण्डनीतिको दिखलाते हुए आपके स्वामीने अपनी बुद्धि प्रकट की है—अपनी चतुराई दिखलायी है ॥८॥ § १४) खलतामिति—क्योंकि वह भरत हम लोगोंको विचार किये बिना ही बल और छलसे देखना चाहता है इस लिए यह खलता—गगनवल्ली—अमर वेलके समान निष्फल—फलसे रहित (पक्षमें, कार्यसिद्धिसे रहित) और सुमनोरहित—फूलोंसे, रहित (पक्षमें विद्वानोंसे रहित अथवा सुविचारोंसे शून्य) खलता—दुर्जनताको धारण करता है

§ १५) दिशां जेता चक्री यदि सुरसमूहं विजितवान्
तदा दर्भैः शय्यां किमलभत दारिद्र्यवशतः ।
तथा स्यात्ते भर्तुः प्रतिहतिविदूरं यदि बल
जले म्लेच्छैः क्लृप्तेऽप्लवत् खलु किं कौतुकवशात् ॥१०॥

§ १६) राजोक्तिर्मयि तस्मिश्च सविभक्तादिवेधसा ।
राजराजः स इत्यद्य स्फोटो गण्डस्य मूर्ध्नि कः ॥११॥

§ १७) चक्रभ्रान्तिमुदारदण्डकलिता संसाधयन्पार्थिवान्
साटोपं घटयन्परीतविभवः सत्कुम्भभृद्भिः पुरः ।
संपुष्यत्परमार्तिकः स भरतो नून कुलालायते
सोऽयं यद्यरिचक्रलोपकुतुकी स्याज्जीवनस्य क्षतिः ॥१२॥

छन्दः ॥९॥ § १५) दिशामिति—दिशा काष्ठाना जेता चक्री चक्रवर्ती यदि सुरसमूहं देवसमूह विजितवान् तदा तर्हि दारिद्र्यवशतो नि.स्वतावशेन दर्भैः कुशैः रचितामिति शेप शय्या किम् अलभत । प्राप्तवान् तथा किं च, ते तव भर्तु स्वामिनो बलं वीर्यं यदि प्रतिहतिविदूरं प्रतिघातदूरवर्ति स्यात् तर्हि स म्लेच्छै क्लृप्ते नागामरवृष्टिविहिते जले सलिले खलु निश्चयेन कौतुकवशात् किं किमर्थम् अप्लवत आप्लुतोऽभवत् । शिखरिणी-छन्दः ॥१०॥ § १६) राजोक्तिरिति—आदिवेधसा वृषभेश्वरेण मयि बाहुबलिनि तस्मिन् भरते च राजोक्तिः 'राजा' इति शब्दव्यवहृतिः संविभक्ता समानरूपेण प्रदत्ता, किं तु स राजराजो राज्ञा राजा राज-राज. इतीत्थम् अद्य गण्डस्य पिटकस्य 'गण्डस्तु पिटके योगभेदे खड्गिकपोलयो' इति विश्वलोचनः, मूर्ध्नि उपरि क. स्फोट 'फोडा' इति प्रसिद्धः स्फोटस्योपरि स्फोट इव तस्य राजराजत्वव्यवहार इति भाव ॥११॥ § १७) चक्रेति—उदारश्चासौ दण्डश्चेति उदारदण्ड उन्नतयष्टि पक्षे उन्नतदण्डरत्न च तेन कलिता सहिता चक्रभ्रान्ति कुम्भकारचक्रस्य भ्रमण पक्षे चक्ररत्नभ्रमण च ससाधयन् कुर्वन्, साटोपं सविस्तारं यथा स्यात्तथा पार्थिवान् पृथिव्या विकारा पार्थिवा घटास्तान् पक्षे पृथिव्या अधिपा. पार्थिवास्तान् घटयन् रचयन् सत्कुम्भभृद्भि प्रशस्तगण्डस्थलधारकै हस्तिभि पक्षे सत्कलशधारकैः परीतविभवो विस्तृतैश्वर्यं सपुष्यत्परमार्तिक संपुष्यन्तः परमार्तिकाः श्रेष्ठघटा यस्य स पक्षे संपुष्यन्ती परमा श्रेष्ठा अर्तिर्धनुष्कोटिर्यस्य तथाभूत. स भरत. नून निश्चयेन

॥९॥ § १५) दिशामिति--दिशाओंको जीतनेवाले चक्रीने यदि देवसमूहको जीता था तो फिर वह दारिद्र्यके वशीभूत हो डाभोंसे रचित शय्यापर क्यों सोया ? इसके सिवाय यदि तुम्हारे स्वामीका बल प्रतिघातसे बहुत दूर है तो फिर म्लेच्छोंके द्वारा बरसाये हुए जलमें कुतूहलवश उसने प्लवन क्यों किया--किस लिए उतराया ? ॥१०॥ § १६) राजोक्तिरिति—आदि ब्रह्माने मुझमें तथा उसमें समान रूपसे 'राजा' इस प्रकारकी उक्तिको विभक्त किया था फिर आज वह राजराज—राजाओंका राजा हो गया यह फोड़ेके ऊपर उठा हुआ कौन-सा फोडा है ? ॥११॥ § १७) चक्रेति—जो बहुत बड़े डंडाके द्वारा की हुई चक्रभ्रान्तिको—चक्र घुमानेकी क्रियाको कर रहा है, (पक्षमें जो उत्कृष्ट दण्डरत्नसे युक्त चक्ररत्नके भ्रमणको कर रहा है, जो बड़े विस्तारके साथ पार्थिव—घड़ोंको बनाता है (पक्षमे जो बड़े विस्तारसे राजाओंको मिलाता है) समीचीन कलशोंको धारण करनेवाले लोगोंके द्वारा जिसका विभव व्याप्त हो रहा है (पक्षमें उत्तम गण्डस्थलोंके धारक हाथियोंके द्वारा जिसका वैभव सब ओर फैल रहा है) तथा जो मिट्टीसे निर्मित घड़ोंको ठोक-पीटकर सुदृढ कर रहा है (पक्षमें उत्कृष्ट धनुकोटिको पुष्ट करनेवाला है) ऐसा वह भरत निश्चित

§ १८) स किल मागधकलितरागः सरसमधुरकलयान्वित' पटुगन्धर्वानुगतः प्रवीणो भरत. समररङ्गतले मया सह ताण्डवमारचय्य भरतता सफलयतु ।

§ १९) ततः समरसघट्टे यद्वा तद्वास्तु नो द्वयो ।
नीरेकमिदमेक नो वचो हर वचोहर ! ॥१३॥

§ २०) इत्यादिश्य क्षितिपतिरयं दूतमेन विसर्ज्य
क्षोणिपालप्रकरमुकुटीकोटिसघट्टिताङ्घ्रि' ।

कुलालायते कुम्भकार इवाचरति। सोऽय कुलालायमानो भरतचक्री यदि अरिचक्रलोपस्य शत्रुसैन्यसहारस्य कुतुकम् अरिचक्रलोपकुतुक तद् विद्यते यस्येति तथा मतुवर्थे इन् प्रत्यय पक्षे अरा सन्ति यस्य तत् अरि तच्च तत् चक्र चेति अरिचक्र तस्य लोपस्य कुतुक विद्यते यस्य तथाभूतो यदि स्यात् तदा जीवनस्य जीवितस्य पक्षे जलस्य क्षतिर्विनाश. स्यादिति शेष । श्लेष । शार्दूलविक्रीडितछन्द. ॥१२॥ § १८) स किलेति—मागधे तन्नामव्यन्तरे कलित कृतो रागः प्रीतिर्येन स' मागधदेवप्रीतियुक्त., सरसा मधुरा च या कला तयान्वित. सहितः पटुगन्धर्वैर्दक्षाश्वैरनुगत' सहित प्रवीणो निपुण स भरत' समररङ्गतले रणरङ्गवसुधरातले मया बाहुबलिना सह ताण्डव युद्ध पक्षे नृत्यम् आरचय्य कृत्वा भरतता स्वनामधेयसार्थकता नाटयशास्त्रकारतां सफलयतु सफलां करोतु । एतस्मिन् पक्षे मागधै. स्तुतिपाठकै. कृतरागो गायनरागो यस्य तथाभूत , सरसश्चासौ मधुरश्चेति सरसमधुर सरसमधुर एव सरसमधुरक सरसमधुरकश्चासौ लयश्चेति सरसमधुरकलयस्तेनान्वित सहित , पटुगन्धर्वै चतुरगायकै अनुगत सहित , प्रकृष्टा श्रेष्ठा वीणा यस्य स प्रवीण । § १९) तत इति—ततस्तस्मात् कारणात् नो द्वयोः आवयो द्वयो. समरसघट्टे रणसमर्दे यद्वास्तु तद्वास्तु । हे वचोहर ! सदेशहर ! नोऽस्माकम् इदमेक नीरेक नि'सशय वचो वचनं हर नय । युद्ध विनावयो कर्त्तव्यस्य निर्णयो न भविष्यतीति नि सशय मे प्रत्युत्तर नेयमिति भाव. ॥१३॥ § २०) इत्यादिश्येति—इतीत्थम् आदिश्य आज्ञा दत्त्वा एन भरतराजप्रेषित दूत सदेशहर विसर्ज्य मुक्त्वा क्षोणीपालाना राज्ञा य. प्रकरसमूहस्तस्य मुकुटीनां मौलीनां

ही कुम्हारके समान आचरण करता है, सो यदि वह अरोंके समूहसे युक्त चक्रके नष्ट करनेका कौतुक रखता है तो उससे जीवन--जलकी क्षति हो सकती है घटके नष्ट हो जानेपर उसमें जीवन—पानीकी स्थिति कैसे रह सकती है ? (पक्षमें यदि वह शत्रुदलके विनाशका कुतूहल रखता है) तो जीवनका—जिन्दगीका नाश हो जानेकी सम्भावना है—॥१२॥ § १८) स किलेति—वह भरत क्या है मानो सचमुच ही भरत—नाटयाचार्य है क्योंकि जिस प्रकार नाटयाचार्य मागधकलितराग—वन्दीजनोंमें रागको धारण करनेवाला है उसी प्रकार वह भी मागधकलितरागः—मागधनामक देवमें रागको करनेवाला है, जिस प्रकार नाटयाचार्य सरसमधुरकलयान्वित —सरस और मधुरलयसे सहित होता है उसी प्रकार वह भी सरस और मधुर कलासे सहित है, जिस प्रकार नाटयाचार्य पटुगन्धर्व—चतुर गवैयोंसे सहित होता है, उसी प्रकार वह भी पटुगन्धर्व—समर्थ घोडोंसे सहित है, और जिस प्रकार नाटयाचार्य प्रवीण—प्रकृष्ट वीणासे सहित होता है उसी प्रकार वह भी प्रवीण—निपुण है। इस तरह तुम्हारा भरत युद्धरूपी रंगभूमिमें मेरे साथ नृत्यको रचकर अपनी भरतता—नाटयाचार्यताको सफल करे। § १९) तत इति—इसलिए युद्धकी टक्करमें हम दोनोंके वीच जो हो जावे वही हो। हे सन्देशहर ! तुम हमारा यही एक संशय रहित उत्तर ले जाओ ॥१३॥ § २०) इत्यादिश्येति—इस प्रकार आज्ञा देकर इस दूतको विदा करनेके वाद राजसमूहकी मुकुटोंकी कलंगियोंसे जिसके चरण टकरा रहे हैं तथा युद्ध करनेका

चञ्चत्सेना समरकुतुकः प्रोल्लसद्रोमहर्षां
प्रस्थानाय प्रकटितमदामायतामादिदेश ॥१४॥

§ २१) मदकरिघटाबन्धै रङ्गत्तुरङ्गमसगतैः
प्रचलितबलैर्भेरीरावैर्विदारितदिङ्मुखैः ।
क्षितितलगलद्धूलीपालीविशोषितवारिधि-
र्भुजबलिमहिपालो भेजे भुव समरोचिताम् ॥१५॥

§ २२) अथ दूतवचननिशमनकुपितभरतराजसमादिष्टा समुन्नतजयकेतनकलिततया संततसपतन्मदधाराविराजिततया सिन्दूरपरागशृङ्गारिताङ्गतया रत्नमयखेटकघटितकुम्भस्थलतया च महामहीरुहमहितान् कटकनिकटविशङ्कटनिर्झरान् सध्याम्बुदचुम्बितान् अवलम्बितरविबिम्बान्, असख्याताज्जङ्गमधराधरास्तुलयद्भिर्गन्धसिन्धुरैर्जवविजितपवनैर्निजरय-

---

कोटचाग्रभागेन सघट्टितावङ्घ्री चरणौ यस्य तथाभूत., समरस्य रणस्य कुतुक यस्य तथाभूत अयं क्षितिपति· बाहुबली प्रोल्लसद्रोमहर्षां शुम्भल्लोमहर्षां युद्धवार्तया रोमाञ्चितामित्यर्थ , प्रकटितमदा प्रकटितगर्वाम् आयता दीर्घां चञ्चत्सेना शोभमानपृतना प्रस्थानाय प्रयाणाय आदिदेश आदिष्टवान् । मन्दाक्रान्ता छन्द· ॥१४॥ § २१) मदेति—मदकरिघटाया मत्तमतङ्गजसमूहस्य वन्धो येषु तैः रङ्गत्तुरङ्गैरुच्चलदश्वै· सगतानि सयुक्तानि तै प्रचलितबलैः प्रस्थितसैन्यैः विदारितानि दिङ्मुखानि यैस्तै भेरीरावै दुन्दुभिशब्दैः उपलक्षित. क्षितितलात्पृथिवीतलाद् गलन्त्यो नि सरन्त्यो या धूलीपाल्यो रज·श्रेणयस्ताभिर्विशोषितो वारिधिर्येन तथाभूत. भुजबलिमहीपालो बाहुबलिनरेश्वर समरोचिता रणार्हां भुव भूमिं भेजे प्राप । हरिणी छन्द. ॥१५॥ § २२) अथेति—अथानन्तरं दूतवचनस्य निशमनेन श्रवणेन कुपित· क्रुद्धो यो भरतराजस्तेन समादिष्टा समाज्ञप्ता षडङ्गपताकिनी षडङ्गसेना रणाङ्गणावतरणाय समराजिरावतरणाय प्रचचाल प्रचलति स्म । अथ कथभूता सा षडङ्गपताकिनीत्याह—गन्धसिन्धुरैर्मत्तद्विपैः परीता व्याप्ता । कथभूतैर्गन्धसिन्धुरैरित्याह—समुन्नतेन समुत्क्षिप्तेन जयकेतनेन विजयपताकया कलिततया सहिततया, सतत निरन्तर सपतन्ती या मदधारा दानराजिस्तया विराजिततया शोभिततया, सिन्दूरपरागेण शृङ्गारितं शोभितमङ्गं येषा तेषा भावस्तया, रत्नमयखेटकेन रत्नमयावरणेन घटित युक्त कुम्भस्थल गण्डस्थल येषा तेषा भावस्तया च महामहीरुहैर्महावृक्षैर्महितान् शोभितान्, कटकनिकटे मेखलाभ्यर्णे विशङ्कटा विशाला निर्झरा येषा तान्, सध्याम्बुदै साध्यमेघै चुम्बिता-

---

जिसे कुतूहल है ऐसे इस राजा बाहुबलीने, जिसके रोमांच उठ रहे थे, जिसका बहुत भारी गर्व था तथा जिसका बहुत भारी परिमाण था ऐसी शोभायमान सेनाको प्रस्थान करनेके लिए आदेश दिया ॥१४॥ § २१) मदेति—मदोन्मत्त हाथियोंके समूहसे सहित, उछलते हुए घोड़ोंसे युक्त चलती हुई सेनाओं तथा दिशाओंको विदीर्ण करनेवाले भेरियोंके शब्दोंसे जो सहित था, एवं पृथिवीतलसे उठती हुई धूलिकी पंक्तियोंसे जिसने समुद्रको सुखा दिया था ऐसा राजा बाहुबली युद्धके योग्य भूमिको प्राप्त हुआ ॥१५॥ § २२) अथेति—तदनन्तर दूतके वचन सुननेसे क्रोधको प्राप्त हुए भरतराजसे जिसे आज्ञा प्राप्त हुई थी ऐसी छह अंगोंसे युक्त सेना रणांगणमे उतरनेके लिए चल पड़ी। वह सेना उन हाथियोंसे सहित थी जो ऊपर फहराती हुई पताकासे सहित होने, निरन्तर पड़ती हुई मदधाराओंसे सुशोभित होने, सिन्दूरकी परागसे शरीरके शृंगारयुक्त होने तथा रत्ननिर्मित ढालसे गण्डस्थलके सहित होनेसे उन चलते-फिरते असंख्य पर्वतोंकी तुलना कर रहे थे, जो बड़े-बड़े वृक्षोंसे सुशोभित थे, जिनकी मेखलाओंके निकट बड़े-बड़े झरने पड़ रहे थे, जो सन्ध्याके लाल-लाल मेघोंसे चुम्बित थे

निरीक्षणक्षणह्रीणान् हरिदश्वहरिताश्वान् खुरपुटघट्टितकुट्टिमप्रसृताभ्रलिड्रजोभरे विलीनान् विदधानैः क्रामद्भिरिव गगनतलं, कवलीकुर्वद्भिरिव मार्गायासम्, अतिक्रामद्भिरिवात्मोत्थितानि रजांसि, तर्जयद्भिरिव हेषारवेण सक्थिजवसजातसहचरप्रजवपवनम्, आपिबद्भिरिव मुखलग्नफेनपुञ्जकपटेन शात्रवयशोमण्डलं, तरङ्गैरिव बलजलनिधेः, मूर्तैरिव वेगैर्वाजिभिर्विजयलक्ष्मीवेणीदण्डायमानकृपाणलताकलितकरैः पदातिभिः, सग्रामसमुद्रसतरणनाविकायमानैः सदेहबन्धैरिव वीररसैः, साकारैरिवोत्साहैः, रथकड्यासु विराजमानैः रथिकैर्गगनतलविलसितैः सुरखचरैश्च परीता षडङ्गपताकिनी रणाङ्गणावतरणाय प्रचचाल।

§ २३) तदनु विनटद्वाजिव्राते प्रतापवशोत्थिते
रजसि जगतामान्ध्यं व्यातन्वतीव विजृम्भिते।

स्तान्, अवलम्बितं समाश्रितं रविबिम्बं सूर्यमण्डलं येषु तान्, असंख्यातानपरिमितान् जङ्गमधराधरान् चलनशीलशैलान् तुलयद्भिरुपमितान्कुर्वद्भिः। वाजिभिर्वाहैः 'वाजिवाहार्वगन्धर्वहयसैन्धवसप्तयः' इत्यमरः, परीता षडङ्गपताकिनी, अथ कथंभूतैर्वाहैरित्याह—जवेन वेगेन विजितः पराभूतः पवनो यैस्तैः, निजरयस्य स्ववेगस्य निरीक्षणक्षणेऽवलोकनसमये ह्रीणा लज्जितास्तान्, हरिदश्वस्य सूर्यस्य हरिताश्वान् हरितवर्णवाहान् खुरपुटैः शफपुटैः घट्टितेभ्यः समाहतेभ्यः कुट्टिमेभ्यो भूपृष्ठेभ्यः प्रसृतो योऽभ्रलिड्रजोभरो गगनचुम्बिधूलिनिकरस्तस्मिन् विलीनान् अन्तर्हितान् विदधानैः कुर्वाणैरिव गगनतलं नभस्तलं क्रामद्भिः गच्छद्भिः, मार्गायासं वर्त्मखेदं कवलीकुर्वद्भिर्ग्रसद्भिरिव, आत्मोत्थितानि स्वोत्थितानि रजांसि अतिक्रामद्भिरिव समुल्लङ्घयद्भिरिव, सक्थिजवेन ऊरुवेगेन सजातः समुत्पन्नः सहचरः सहगमनो यो प्रजवपवनः प्रकृष्टवेगयुक्तवायुस्तं हेषारवेण हेषाशब्देन तर्जयद्भिरिव सभर्त्सयद्भिरिव, मुखलग्नफेनपुञ्जस्य वदनसलग्नडिण्डीरपिण्डस्य कपटेन व्याजेन शात्रवयशोमण्डलं शत्रुसबन्धिकीर्तिपुञ्जम् आपिबद्भिरिव, बलजलनिधेः सैन्यसागरस्य तरङ्गैरिव भङ्गैरिव, मूर्तैः वेगैः रयैरिव, विजयलक्ष्म्या विजयश्रिया वेणीदण्डायमाना चूडादण्डायमाना या कृपाणलता खड्गवल्लर्यस्ताभिः कलिताः कराः हस्ता येषां तैस्तथाभूतैः पदातिभिः पत्तिभिः, सग्रामसमुद्रस्य समरसिन्धोः सतरणे नाविकायमानास्तैः, सदेहबन्धैः सशरीरसगैः वीररसैरिव, साकारैः समूर्तिभिः उत्साहैरिव, रथानां समूहा रथकड्यास्तासु विराजमानैः शोभमानैः रथिकैः रथारोहैः, गगनतलविलसितैः नभस्तलशोभितैः सुरखचरैश्च देवविद्याधरैश्च परीता व्याप्ता। § २३) तदन्विति—तदनु तदनन्तरं व्याक्रान्तानि व्याप्तानि सर्वदिगन्तराणि

तथा जिनपर सूर्यका बिम्ब स्थित था। वह सेना ऐसे घोड़ोंसे युक्त थी जिन्होंने अपने वेगसे पवनको जीत लिया था, जो अपने वेगके देखनेके समय लजाये हुए सूर्यके घोड़ोंको खुरपुटसे ताडित पृथिवीतलसे उठती हुई गगनचुम्बी धूलिके समूहमें विलीन करते हुए के समान गगनतलमें आगे बढ़े जा रहे थे, जो मार्गके खेदको मानो ग्रस रहे थे, अपने द्वारा उठी हुई धूलिको मानो लाँघ रहे थे, हिनहिनाहटके शब्दसे जाँघोंके वेगसे उत्पन्न तथा अपने साथ चलनेवाली वेगशाली वायुको मानो डाँट ही दिखला रहे थे, जो मुखमें लगे हुए फेन समूहके बहाने शत्रुओंके कीर्ति समूहको मानो पी ही रहे थे, जो सेनारूपी समुद्रकी तरंगोंके समान जान पड़ते थे, तथा मूर्तिधारी वेगके समान मालूम होते थे। वह सेना ऐसे पैदल सैनिकोंसे सहित थी जिनके हाथ विजयलक्ष्मीकी चोटीके समान आचरण करनेवाली खड्गरूपी लताओंसे सहित थे। वह सेना उन रथ-सवारोंसे भी व्याप्त थी जो संग्रामरूपी समुद्रको पार करनेके लिए नाविकके समान आचरण करते थे, जो शरीरधारी मानो वीररस ही थे, आकारसहित मानो उत्साह ही थे तथा रथोंके समूहमें सुशोभित थे। इनके सिवाय वह सेना गगनतलमें सुशोभित देव और विद्याधरोंसे भी व्याप्त थी। § २३) तदन्विति—तदनन्तर

दिनकरसदृक्चक्रोद्योतेन मार्गमबूबुधत्
निधिपतिमहानीकं व्याक्रान्तसर्वदिगन्तरम् ॥१६॥

§ २४) ततश्च यावच्चक्रधरानीकं भुजबलिबलेन महाप्रलयसमये पूर्वपारावारः पश्चिमपारावारेणेव पटुगर्जनतर्जितदिशावशावल्लभं सगम्य युद्धाय सनद्धं तावदग्रेसरैः प्रज्ञावताम्, अधीनैर्जनानुरागस्य, आवासैर्मन्त्रलक्ष्म्या, आकरैः कार्यचातुर्यस्य, महत्तमैः सचिवैर्मुधा जनविनाशकारणं प्रविदारणं न युज्यते, युज्यते च युवयोर्जयलक्ष्मीतुलारोहणं जलदृष्टिमुष्टिरणमिति बोधितौ परितः पश्यत्सु सुरगगनचरेषु रणाङ्गणमवतीर्णौ तौ नरकुञ्जरौ जङ्गमाविव निषधनीलाचलौ चकासामासतुः।

§ २५) तदा जयश्रीरुभयोः सकाशगतागतायासमनुव्रजन्ती।
तटद्वयोद्भासितशाड्वलाशागतागतायासितगौरिवाभूत् ॥१७॥

निखिलकाष्ठान्तराणि येन तत् निधिपतिमहानीकं चक्रवर्तिविशालसैन्य विनटद्वाजिव्राते विनृत्यदश्वसमूहे प्रतापवशोत्थिते तेजोवशसमुत्थापिते रजसि परागे जगता भुवनानाम् आन्ध्य अन्धता व्यातन्वतीव कुर्वतीव विजृम्भिते वृद्धिगते सति दिनकरसदृक् सूर्यसनिभ यत् चक्रं चक्ररत्नं तस्योद्योतेन प्रकाशेन मार्गं पन्थानम् अबूबुधत् जानाति स्म । हरिणीच्छन्द. ॥१६॥ § २४) ततश्चेति—ततश्च तदनन्तर च यावत् चक्रधरानीक चक्रवर्तिसैन्य भुजबलिबलेन बाहुबलिसैन्येन महाप्रलयसमये षष्ठकालान्तभाविमहाप्रलयकाले पूर्वपारावार पूर्वाब्धि पश्चिमपारावारेणेव पश्चिमाब्धिनेव पटुगर्जनेन तर्जिता दिशावशावल्लभा दिग्गजा यस्मिन्कर्मणि यथा स्यात्तथा सगम्य मिलित्वा युद्धाय सनद्धं तत्पर बभूव, तावत् प्रज्ञावता बुद्धिमताम् अग्रेसरै. प्रधानै, जनानुरागस्य लोकप्रेम्णोऽधीनैरायत्तै, मन्त्रलक्ष्म्या मन्त्रश्रिया आवासै. निवासस्थानभूतै, कार्यचातुर्यस्य विधिवैदग्ध्यस्य आकरै खनिभिः महत्तमै श्रेष्ठतमै. सचिवैरमात्यैः मुधा व्यर्थं जनविनाशकारण जनक्षयकारण प्रविदारण युद्ध 'युद्धमायोधन जन्य प्रधन प्रविदारणम्' इत्यमर., न युज्यते युक्त न भवति । युवयो जलदृष्टिमुष्टिरणं जलरण दृष्टिरण मुष्टिरण च जयलक्ष्मीतुलारोहणं युज्यते च युक्त च भवतीति बोधितौ विज्ञपितौ सुरगगनचरेषु देवविद्याधरेषु पश्यत्सु सत्सु रणाङ्गण समराजिरम् अवतीर्णौ तौ नरकुञ्जरौ नरश्रेष्ठौ जङ्गमौ गतिशीलौ निषधनीलाचलाविव चकासामासतु शुशुभाते । § २५) तदेति—तदा तस्मिन्काले

समस्त दिशाओंके अन्तरालको व्याप्त करनेवाली चक्रवर्तीकी वह विशाल सेना, जिसमें घोड़ोंके समूह नृत्य कर रहे थे, जो प्रतापके कारण उठी हुई थी, तथा जो जगत्‌को अन्धा करनेके लिए ही मानो सब ओर फैल रही थी ऐसी धूलिमें सूर्यके समान चक्ररत्नके प्रकाशसे मार्गको जान पाती थी ॥१६॥ § २४) ततश्चेति—तदनन्तर महाप्रलयके समय पश्चिम समुद्रके साथ पूर्व समुद्रके समान, ज्योंही चकवर्तीकी सेना बाहुबलीकी सेनाके साथ मिलकर तीव्र गर्जनासे दिग्गजोंको धौंस दिखाती हुई युद्धके लिए तैयार हुई त्योंही बुद्धिमानोंमें अग्रेसर, जनानुरागके अधीन, मन्त्रलक्ष्मीके निवासभूत, तथा कार्यसम्बन्धी चतुराईकी खान स्वरूप श्रेष्ठ मन्त्रियोंने जिनसे यह प्रार्थना की थी कि व्यर्थ ही जनक्षयका कारण युद्ध करना युक्त नहीं है आप दोनोंके लिए तो जलयुद्ध, दृष्टियुद्ध, और मुष्टियुद्धके तीन युद्ध ही विजयलक्ष्मीके तुलारोहणके समान है अर्थात् आप दोनोंकी विजयका निर्णय देनेके लिए युक्त है, ऐसे नरश्रेष्ठ भरत और बाहुबली सब ओर देव और विद्याधरोंके देखते रहते रणांगणमें अवतीर्ण हुए। उस समय वे चलते-फिरते निषधाचल और नीलाचलके समान सुशोभित हो रहे थे। § २५) तदेति—उस समय दोनोंके पास जाने-आनेके

§ २६) दृष्टिं धीरतरां निमेषरहितां व्यातन्वता दोर्बलि-
क्षोणीशेन जितेऽत्र दृष्टिसमरे पत्यौ निधीनां क्षणात् ।
उद्वेलस्य बलार्णवस्य विपुलं कोलाहलं वारयन्
पृथ्वीपालगणः कनीयसि जयश्रीभावमाघोषयत् ॥१८॥

§ २७) सरसीजलमागाढौ जलयुद्धमदोद्धतौ ।
दिग्गजाविव तौ दीर्घैर्व्यात्युक्षामासतुर्भुजैः ॥१९॥

§ २८) तदा किल भुजबलियुवा जयश्रीदृढालिङ्गितनिजभुजवंशयुगलनिर्गलितमौक्तिकनिकरैरथवा निजभुजनिर्दयालिङ्गितजयलक्ष्मीवक्षःस्थलत्रुटितोत्क्षिप्तहारमणिभिर्यद्वा बलोत्कृष्टप्रवेष्टप्रासादमधिरूढायाः पराक्रमलक्ष्म्या अट्टहासकान्तिलवैराहोस्विन्नखचन्द्रनिर्गलितसुधाशीकरैरिव

उभयोर्भरतबाहुबलिनोः सकाशगतागतायासं समीपगमनागमनखेदं व्रजन्ती जयश्रीर्विजयलक्ष्मीः तटद्वये उद्भासिवा शोभिता ये शाद्वला हरितघासास्तेषामाशया तृष्णया यद् गतागतं गमनागमनं तेनायासिता खेदं प्रापिता गौरिव धेनुरिव अभूत् । उपमा । उपेन्द्रवज्राछन्दः ॥१७॥ § २६) दृष्टिमिति—अत्र दृष्टिसमरे दृष्टियुद्धे निमेषरहितां पक्ष्मपातशून्यां धीरतरामतिधीरां दृष्टिं दृशं व्यातन्वता विस्तारयता दोर्बलिक्षोणीशेन बाहुबलिनरपालेन निधीनां पत्यौ चक्रवर्तिनि क्षणादल्पेनैव कालेन जिते पराजिते सति उद्वेलस्य कल्लोलितस्य बलार्णवस्य सैन्यसागरस्य विपुलं महान्तं कोलाहलं वारयन् निषेधयन् पृथ्वीपालगणो राजसमूहः कनीयसि लघीयसि दोर्बलिनीति यावत् जयश्रीभावं विजयलक्ष्म्यनुरागम् अघोषयत् घोषितं चकार । शार्दूलविक्रीडितम् ॥१८॥ § २७) सरसीति—सरस्या जलं सरसीजलं कासारसलिलम् आगाढौ प्रविष्टौ जलयुद्धमदेन नीरसमरगर्वेणोद्धतौ समुत्कटौ दिग्गजाविव काष्ठाकरिणाविव दीर्घैरायतैः भुजैः व्यात्युक्षामासतुः जलोच्छालनं चक्रतुः ॥१९॥ § २८) तदेति—तदा किल जलयुद्धकाले भुजबलियुवा बाहुबलियुवा जलच्छटाशीकरैः जलच्छटाम्बुकणैः चक्रधरम् अवाकिरत् अवक्षिप्तमकरोत् । अथ कथंभूतैर्जलच्छटाशीकरैरित्याह—जयश्रिया विजयलक्ष्म्या दृढालिङ्गितात् निजभुजवंशयुगलात् स्वबाहुवेणुयुग्मात् गलितानि निःसृतानि यानि मौक्तिकानि तेषां निकराः समूहास्तैः, अथवा निजभुजाभ्यां निर्दयं यथा स्यात्तथालिङ्गितं समाश्लिष्टं यद् जयलक्ष्म्या विजयश्रिया वक्षःस्थलं तस्मादादौ त्रुटिताः पश्चादुत्क्षिप्ताः पतिता ये हारमणयस्तैः, यद्वा बलोत्कृष्टः पराक्रमश्रेष्ठो यः प्रवेष्टो भुज एव प्रासादो भवनं तम् अधिरूढाया अधिष्ठिताया पराक्रमलक्ष्म्या वीर्यश्रिया अट्टहासस्य कान्तिलवा दीप्तिकणास्तैः,

---

खेदका अनुभव करती हुई विजयलक्ष्मी दोनों तटोंपर सुशोभित हरी घासकी आशासे जाने-आनेके द्वारा खेदको प्राप्त गायके समान हुई थी ॥१७॥ § २६) दृष्टिमिति—इस दृष्टियुद्धमें टिमकाररहित अत्यन्त धीरदृष्टिको विस्तृत करनेवाले राजा बाहुबलीके द्वारा चक्रवर्ती क्षण भरमें जीत लिये गये अतः लहराते हुए सेनारूपी समुद्रके बहुत भारी कोलाहलको शान्त करते हुए राजाओंके समूहने छोटे भाई बाहुबलीको विजयलक्ष्मी प्राप्त हुई है यह घोषणा की ॥१८॥ § २७) सरसीति—तदनन्तर जलयुद्धके मदसे उद्धत हुए दोनों दिग्गजोंके समान तालाबके जलमें प्रविष्ट हुए और लम्बी-लम्बी भुजाओंसे एक दूसरेपर जल उछालने लगे ॥१९॥ § २८) तदेति—उस समय तरुण बाहुबली जलधाराओंके उन जलकणोंसे चक्रवर्तीको व्याप्त करने लगे जो विजयलक्ष्मीके द्वारा अत्यन्त दृढ रूपसे आलिंगित अपने भुजरूपी बाँसोंके युगलसे निकले हुए मोतियोंके समूहके समान जान पड़ते थे, अथवा अपनी भुजाओंके द्वारा निर्दयतापूर्वक आलिंगित विजयलक्ष्मीके वक्षःस्थलसे टूट कर बिखरे हुए हारके मणि ही हों, अथवा बलसे उत्कृष्ट भुजरूप महलपर आरूढ पराक्रमरूपी लक्ष्मीके अट्टहासकी कान्तिके कण ही हों, अथवा नखरूपी चन्द्रमासे निकली हुई सुधाके कणोंके

विराजमानैः, सरभसमुदस्तभुजयुगरयजनितपटुपवनास्फालननिर्लोलस्वर्लोकतरङ्गिणीकल्लोलशीकरनिकरद्विगुणितैर्निलिम्पकरमुक्तकल्पतरुकुसुमनिचयेन मधुकरविसरानुरोधविरहव्यञ्जितभेदैर्जलच्छटाशीकरैश्चक्रधरमवाकिरत् ।

§ २९) बहवः सलिलासारा भरतेश्वरवक्षसि ।
निषधाचलसङ्गिन्यो निम्नगा इव रेजिरे ॥२०॥

§ ३०) भरतेशकरोन्मुक्ताम्भोधारा दोर्बलीशिनः ।
प्रांशोरप्राप्य दूरेण प्रापप्तन्मुखसंनिधौ ॥२१॥

§ ३१) नभःस्थलमुपेयुषा दिविषदां तदा कौतुकात्
करैः कुसुमसचयं जयिनि वर्षतां हर्षतः ।
करोद्धतजलच्छटाविमलशीकराडम्बरैः
प्रतिप्रसववर्षविभ्रममवाप नो दोर्बली ॥२२॥

आहोस्विदथवा नखचन्द्रेभ्यो नखरेन्दुभ्यो निर्गलिता निष्पतिता या सुधा पीयूषं तस्या. शीकरैरिव कणैरिव विराजमानैः शोभमानैः, सरभसं सवेगं समुदस्तस्य समुत्क्षिप्तस्य भुजयुगस्य बाहुयुगलस्य रयेण वेगेन जनितः समुत्पन्नो यः पटुपवनस्तीव्रसमीरस्तेन यदास्फालनं तेन निर्लोलातिचपला या स्वर्लोकतरङ्गिणी मन्दाकिनी तस्याः कल्लोलास्तरङ्गास्तेषां शीकरनिकरेण जलकणकलापेन द्विगुणितास्तै, निलिम्पकरमुक्तानि देवहस्तमुक्तानि यानि कल्पतरुकुसुमानि कल्पानोकहपुष्पाणि तेषां निचयेन समूहेन मधुकरविसरस्य भ्रमरसमूहस्य योऽनुरोधोऽनुगमन तस्य विरहेणाभावेन व्यञ्जित. प्रकटितो भेदो येषा तैः. जलच्छटाशीकरैः जलधाराम्बुकणैः । § २९) बहव इति—भरतेश्वरवक्षसि निधीश्वरवक्षस्थले पतिताः बहवः सलिलासारा जलसपाताः निषधाचलसङ्गिन्यो निषधगिरिसङ्गयुक्ता निम्नगा इव नद्य इव रेजिरे शुशुभिरे ॥२०॥ § ३०) भरतेशेति— भरतेशस्य निधीश्वरस्य कराभ्यां हस्ताभ्यामुन्मुक्ता त्यक्ता अम्भोधारा जलधारा प्रांशोः समुन्नतस्य दोर्बलीशिनो बाहुबलिनरेन्द्रस्य मुखसनिधौ मुखसमीपे अप्राप्य दूरेण प्रापप्तत् पतति स्म ॥२१॥ § ३१) नभःस्थलमिति—तदा तस्मिन्काले कौतुकात् नभःस्थलगगनस्थलम् उपेयुषा प्राप्तवता दिविषदा. देवाना जयिनि विजयशालिनि जने हर्षत. करैः कुसुमसंचय पुष्पसमूह वर्षतां सता, कराभ्यामुद्धतास्ताडिता या जलच्छटास्तासां विमलशीकराणां निर्मलजलकणानामाडम्बरास्तैः दोर्बली बाहुबली प्रतिप्रसववर्षविभ्रमं प्रतिकुसुमवृष्टिसंदेहं

समान सुशोभित हो रहे थे। जो शीघ्रतासे ऊपर उठाये हुए भुजयुगलके वेगसे उत्पन्न प्रचण्ड पवनके आस्फालनसे चंचल आकाशगंगाकी लहरोंके जलकणोंसे दूने हो गये थे तथा देवोंके हाथोंसे छोड़े हुए कल्पवृक्षोंके पुष्पसमूहसे भ्रमरसमूहके अनुगमनका अभाव होनेसे जिनमें भेद सिद्ध हो रहा था। § २९) बहव इति—भरतेश्वरके वक्षःस्थलपर पड़ती हुई बहुत-सी जलकी धाराएँ निषधाचलपर पड़ती हुई नदियोंके समान सुशोभित हो रही थीं ॥२०॥ § ३०) भरतेशेति—भरत चक्रवर्तीके हाथोंसे छोड़ी हुई जलकी धारा ऊँचे बाहुबलीके मुखके पास तक न पहुँचकर दूरसे ही नीचे गिर जाती थी ॥२१॥ § ३१) नभःस्थलमिति—उस समय कुतूहलवश आकाशमें इकट्ठे हुए देव यद्यपि हर्षवश विजयी बाहुबलीपर हाथोंसे पुष्पसमूहकी वर्षा करते थे तो भी हाथोंसे ऊपरकी ओर उछाली हुई जलधाराओंके निर्मल छींटोंके विस्तारसे वे अपने ऊपर होनेवाली पुष्पवर्षाके विभ्रमको

§ ३२) भुजरयपवनाहतद्युसिन्धुप्रचुरजलामलशीकरास्तथा ताः ।
भुजबलिभुजचोदिताम्बुधारा द्युधरण्योरनुचक्रुरम्बुकेलिम् ॥२३॥

§ ३३) तदनु पुनर्भुजबलिकुमारजयोद्घोषणमुखरितदिगन्तरे तत्र समराजिरे नियुद्धाय सन्नद्धौ पञ्चाननवञ्चनाचुञ्चुपराक्रमौ तौ वीराग्रेसरौ गामवतेरतु ।

§ ३४) भुजयन्त्रनियन्त्रणावशेन क्षणसंरुद्धपरस्परप्रयत्नौ ।
सुरवारमनोहरं व्यधत्तां नरवीरौ निपुणं नियुद्धशिल्पम् ॥२४॥

§ ३५) ततश्च जगदेकवीरेण भुजबलिकुमारेण दिवि भ्राम्यमाणो मणिमुकुटकान्तिकल्लोलवेल्लितगगनतल' क्षणमालातचक्रलीला भजमानो नीलाचलशिखरसगिन गाङ्गेयगिरिं तुलयन् भरतराजः बलकोलाहलमसहमानतया क्रोधान्धस्तस्मिन्कनीयसि चक्रं प्रयोजयामास ।

नो अवाप नो प्रापत् । पृथ्वीछन्द ॥२२॥ § ३२) भुजेति—तथा तेन प्रकारेण भुजरयपवनेन बाहुवेगवायुना हतास्ताडिता द्युसिन्धोर्वियद्गङ्गाया प्रचुरा' प्रभूता. जलामलशीकरा निर्मलनीरकणा यासु ता भुजबलिना बाहुबलिना चोदिता प्रेरिता या अम्बुधारा जलधारास्ताः द्युधरिण्योराकाशपृथिव्यो अम्बुकेलिं जलक्रीडाम् अनुचक्रुरनुकुर्वन्ति स्म । पुष्पिताग्राछन्द ॥२३॥ § ३३) तदन्विति—तदनु तदनन्तर पुन भूयोऽपि भुजबलिकुमारस्य जयोद्घोषणेन मुखरितानि वाचालितानि दिगन्तराणि यस्मिंस्तथाभूते समराजिरे रणाङ्गणे नियुद्धाय बाहुयुद्धाय सनद्धौ तत्परौ—पञ्चाननवञ्चनया मृगेन्द्रतिरस्कारेण वित्त इति पञ्चाननवञ्चनाचुञ्चुस्तथाभूतः पराक्रमो येषा तथाभूतौ तौ वीराग्रसरौ वीरशिरोमणी गा युद्धयोग्यभूमिम् अवतेरतु । § ३४) भुजेति—भुजयन्त्रस्य बाहुयन्त्रस्य नियन्त्रणावशेन नियमननिघ्नत्वेन क्षण संरुद्धो निरुद्ध. परस्परप्रयत्नोऽन्योन्यप्रयासो ययोस्तथाभूतौ तौ नरवीरौ नरसुभटौ सुरवारमनोहर देवसमूहचेतोहर निपुण प्रवीणं नियुद्धशिल्प बाहुयुद्धकौशल व्यधत्ता चक्रतु ॥२४॥ § ३५) ततश्चेति—मणिमुकुटकान्तिकल्लोलै रत्नमयमौलिकान्तितरङ्गैर्वेल्लित व्याप्त गगनतल यस्य तथाभूत । गाङ्गेयगिरिं सुवर्णशैल सुमेरुमित्यर्थ । शेष

प्राप्त नहीं हो रहे थे ॥२२॥ § ३२) भुजरयेति—भुजाओंके वेगसम्बन्धी पवनसे जिनमें आकाशगंगाके बहुत भारी जलके निर्मल कण ताडित हो रहे थे ऐसी बाहुबलीकी भुजाओंसे प्रेरित जलधाराएँ आकाश और पृथिवीके बीच होनेवाली जलक्रीडाका अनुकरण कर रही थीं ॥२३॥ § ३३) तदन्विति—तदनन्तर उस रणांगणके दिगन्तर जब फिरसे बाहुबली कुमारकी जयघोषणासे मुखरित हो उठे तब बाहुयुद्धके लिए तैयार हुए, सिंहको तिरस्कृत करनेवाले पराक्रमके धारक दोनों वीर शिरोमणि पृथिवीपर अवतीर्ण हुए—मैदानमें आये। § ३४) भुजेति—भुजयन्त्रकी नियन्त्रणाके वशसे जिनका परस्परका प्रयत्न क्षणभरके लिए रुक गया था ऐसे उन दोनों नरसुभटोंने देवसमूहके मनको हरनेवाला, चातुर्यपूर्ण, बाहुयुद्धसम्बन्धी कौशल प्रकट किया ॥२४॥ § ३५) ततश्चेति—तदनन्तर जगत्के अद्वितीय वीर बाहुबली कुमारके द्वारा जो आकाशमें घुमाये जा रहे थे, मणिमय मुकुटकी कान्तिकी परम्परासे जिन्होंने आकाशतलको व्याप्त कर रखा था, जो क्षणभरके लिए आलातचक्रकी शोभाको प्राप्त हो रहे थे, जो नीलाचलके शिखरपर स्थित सुमेरुपर्वतकी तुलना कर रहे थे, तथा सेनाके कोलाहलको सहन न कर सकनेके कारण जो क्रोधसे अन्धे हो रहे थे ऐसे

§ ३६) अभ्यर्णमेत्य तच्चक्रमथ कृत्वा प्रदक्षिणम् ।
अवध्यस्यास्य पर्याप्तं तस्थौ मन्दीकृतातपम् ॥२५॥

§ ३७) तदानीमहो धिक् साहसं कृतमिति भरतनिन्दामुखरे तस्मिन् रणाजिरे वीराग्रेसरः करेण चक्रधरं तुलयन्नवतार्य नरपालकुलकलितस्तुतिमालः सकलनृपवरिष्ठेन ज्येष्ठेन राज्यानुरागवशेन विहितं गर्हितमनुसंधाय परिकलितविषयवैराग्यस्तत्कालोचितैर्मधुरकर्कशैर्वचनैर्ज्यायसश्चित्ताह्लादं चिरं कुर्वाणो महाबलिनि निजनन्दने निक्षिप्तराज्यभारस्त्रिभुवनगुरुं निकषा दीक्षामासाद्य वत्सरानशनावसाने भरतादिभिरर्चितः केवलाख्यपरंज्योतिराससाद ।

§ ३८) जेता समस्तहरितां पाता सर्वमहीशिनाम् ।
पुरं साकेतमुत्केतु प्राविक्षद्भरतेश्वरः ॥२६॥

सुगमम् । § ३६) अभ्यर्णमिति—अथानन्तरं तत् चक्रिवर्तिचालितं तत् चक्रं न हन्तुं योग्योऽवध्यस्तस्य अस्य बाहुबलिनः, अभ्यर्णं निकटम् एत्य प्राप्य प्रदक्षिणं परिक्रमणं कृत्वा पर्याप्तमत्यधिकं मन्दीकृतोऽल्पीभूत आतपो यस्य तथाभूतं सत् तस्थौ ॥२५॥ § ३७) तदानीमिति—तदानीं चक्रप्रयोगवेलायाम्, 'अहो आश्चर्यम्, धिक् धिगस्तु, साहसं कृतं भ्रातृघातरूपमयोग्यं साहसं विहितम्' इतीत्थं भरतनिन्दया भरतापवादेन मुखरे वाचाले तस्मिन् रणाजिरे समराङ्गणे सति, वीराग्रेसरो वीरशिरोमणिः बाहुबली करेण हस्तेन चक्रधरं भरतं तुलयन् हस्ते धारयन्, अवतार्य भूमाववस्थाप्य नरपालकुलेन राजसमूहेन कलिता कृता स्तुतिमाला यस्य तथाभूतः, सकलनृपवरिष्ठेन निखिलनरेन्द्रश्रेष्ठेन ज्येष्ठेन अग्रजेन राज्यानुरागवशेन राज्यप्रीतिपरवशेन सता विहितं कृतं गर्हितं निन्दितम् अनुसंध्याय विचार्य परिकलितं प्राप्तं विषयेषु वैराग्यं यस्य तथाभूतः तत्कालोचितैः तदवसरयोग्यैः मधुराणि च तानि कर्कशानि चेति मधुरकर्कशानि तैः तथाभूतैर्वचनैः ज्यायसोऽग्रजस्य चित्ताह्लादं मानसामोदं कुर्वाणो विदधानः महाबलिनि तन्नामधेये निजनन्दने स्वसुते निक्षिप्तो राज्यभारो येन तथाभूतः, त्रिभुवनगुरुं वृषभजिनेन्द्रं निकषा तस्य समीपे 'अभितः परितः समयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि' इति द्वितीया, दीक्षां प्रव्रज्याम् आसाद्य प्राप्य, वत्सरानशनावसाने वर्षप्रमितोपवाससमाप्तौ भरतादिभिः अर्चितः पूजितः सन् केवलाख्यपरंज्योतिः केवलज्ञानाभिधानोत्कृष्टज्योतिः आससाद प्राप । § ३८) जेतेति—समस्तहरितां निखिलकाष्ठानां जेता, सर्वमहीशिनां निखिलनरेन्द्राणां पाता रक्षकः भरतेश्वरः उत्क्षिप्ताः केतवो

भरतराजने उस छोटे भाई बाहुबलीपर चक्र चला दिया । § ३६) अभ्यर्णमिति—तदनन्तर वह चक्र, वध करनेके अयोग्य इस बाहुबलीके निकट आकर तथा प्रदक्षिणा देकर खड़ा हो गया । उस समय उसका तेज अत्यन्त मन्द पड़ गया था ॥२५॥ § ३७) तदानीमिति—उस समय जब युद्धका मैदान 'अहो धिक्कार हो, बहुत ही साहस किया' इस प्रकारकी भरतकी निन्दासे गूँज उठा तब वीर शिरोमणि बाहुबलीने हाथसे चक्रवर्तीको तोलते हुए नीचे उतारा । उसी समय राजाओंके समूह जिसकी स्तुति कर रहे थे, समस्त राजाओंमें श्रेष्ठ बड़े भाईने राज्यसम्बन्धी अनुरागके वशीभूत हो निन्दित कार्य किया है ऐसा विचार कर जिसे विषयोंमें वैराग्य उत्पन्न हो गया था, जो उस समयके योग्य मधुर तथा कठोर वचनोंके द्वारा बड़े भाईके चित्तमें चिरकालके लिए हर्ष उत्पन्न कर रहा था ऐसे बाहुबलीने महाबली नामक अपने पुत्रपर राज्यका भार सौंप त्रिभुवनगुरु—वृषभ जिनेन्द्रके निकट दीक्षा लेकर एक वर्षका अनशन व्रत धारण किया । और उसकी समाप्तिपर भरतादि राजाओंके द्वारा पूजित हो केवलज्ञान नामकी उत्कृष्ट ज्योतिको प्राप्त किया । § ३८) जेतेति—समस्त दिशाओंके जीतनेवाले तथा समस्त राजाओंकी रक्षा करनेवाले भरतेश्वरने

§ ३९) नृपास्तथा मागधमुख्यलेखा गङ्गादितीर्थाम्बुनिरूढकुम्भै ।
तमभ्यषिञ्चन्भरताधिराजमानन्दभेरीरवपूरिताशाः ॥२७॥

§ ४०) यस्याज्ञा नृपलेखवर्गमुकुटेषूद्दाममालायते
यत्कीर्तिर्विमला दिशाम्बुजदृशा हेलादुकूलायते ।
यत्तेजश्च दिशावधूकुचतटे काश्मीरपङ्कायते
सोऽयं श्रीभरताधिपो निधिपतिः शास्ति स्म विश्वंभराम् ॥२८॥

§ ४१) सुभद्रा भद्राङ्गी नयनजितनीलोत्पलरुचि
समालिङ्गन्मोदादतिशयितमानन्दमभजत् ।
मुखं यस्याश्चन्द्रो वचनमपि पीयूषमपर
कचालिभृंङ्गालिर्घनकुचयुग चक्रमिथुनम् ॥२९॥

§ ४२) अथ कदाचिदनगाराणा निःस्पृहतया सागारानणुव्रतधरान्धनधान्यादिभिस्तर्पयितु-

---

यस्मिस्तत् उन्नमितपताक साकेत पुरम् अयोध्यानगर प्राविक्षत् प्रविवेश ॥२६॥ § ३९) नृपा इति—नृपा- राजान तथा मागधमुख्यलेखा मागधप्रमुखदेवा आनन्दभेरीणा रवै पूरिता आशा यैस्तथाभूता हर्षदुन्दुभि-शब्दसभरितदिशा सन्त गङ्गादितीर्थानामम्बुभिर्जलैर्निरूढा समृता ये कुम्भास्तै त पूर्वोक्त भरताधिराज भरतचक्रवर्तिनम् अभ्यषिञ्चन् ॥ उपजाति ॥२७॥ § ४०) यस्येति—यस्य भरताधिपस्य आज्ञा नृपलेख-वर्गाणा नरेन्द्रदेवेन्द्रसमूहानां मुकुटेषु मौलिषु उद्दाममालायते उत्कृष्टस्रगिवाचरति, विमला निर्मला यत्कीर्ति यदीयसमज्या दिशाम्बुजदृशा काष्ठाकामिनीना हेलादुकूलायते क्रीडावस्त्रायते, यत्तेजश्च यदीयप्रतापश्च दिशावधूकुचतटे आशास्त्रीस्तनतीरे काश्मीरपङ्कायते कुङ्कुमद्रवायते सोऽय निधिपतिर्निधीश्वर श्रीभरताधिप चक्रवर्ती विश्वम्भरा शास्ति स्म पालयामास । शार्दूलविक्रीडित छन्द । उपमालकार ॥२८॥ § ४१) सुभ-द्रामिति—नयनाभ्या जिता नीलोत्पलरुचिर्नीलारविन्दकान्तिर्यया ता भद्राङ्गी मङ्गलशरीरा सुभद्रा तन्नाम-वल्लभा मोदाद् हर्षात् आलिङ्गन् समाश्लिष्यन् भरताधिप अतिशयितमत्यधिकम् आनन्द हर्षम् अभजत् । यस्या सुभद्राया मुख चन्द्रो विधु, वचनमपि अपर विभिन्न पीयूषममृत, कचालि केशपङ्क्ति भृङ्गालि भ्रमरपङ्क्ति घनकुचयुग पीवरपयोधरयुगल चक्रमिथुन रथाङ्गयुगल बभूवेति शेष । शिखरिणीछन्द. ॥३०॥

जिसपर पताकाएँ फहरायी जा रही थीं ऐसे अयोध्यानगरमे प्रवेश किया ॥२६॥ § ३९) नृपा इति—जिन्होंने आनन्द भेरियोंके शब्दसे दिशाओंको भर दिया था ऐसे राजाओं तथा मागध आदि देवो ने गंगा आदि तीर्थोंके जलसे भरे हुए कलशोंके द्वारा उन भरतेश्वरका अभिषेक किया ॥२७॥ § ४०) यस्येति—जिसकी आज्ञा राजाओं तथा देवसमूहके मुकुटोंपर उत्कृष्ट मालाके समान आचरण करती है, जिसकी निर्मल कीर्ति दिशारूपी स्त्रियोंके क्रीडावस्त्रके समान जान पडती है, और जिसका प्रताप दिशारूपी स्त्रियोंके कुचतटपर केशरके घोलके समान आचरण करता है उस निधियोंके स्वामी भरतेश्वरने पृथिवीका शासन किया ॥२८॥ § ४१) सुभद्रामिति—जिसका मुख चन्द्रमा था, जिसका वचन भी दूसरा अमृत था, जिसको केशपंक्ति भ्रमरावली थी तथा जिसके स्थूल स्तनोंका युगल चक्रवाक पक्षियोंका युगल था, उस मंगलमय शरीरसे युक्त एवं नेत्रोंसे नील-कमलकी कान्तिको जीतनेवाली सुभद्राका हर्षसे आलिंगन करता हुआ भरतेश्वर अत्यधिक आनन्दको प्राप्त हुआ था ॥२९॥ § ४२) अथेति—तदनन्तर राजाधिराज भरतने किसी समय विचार किया कि मुनि तो निःस्पृह होनेसे कुछ लेते नहीं अत अणुव्रतोंके धारक

मना राजराजो हरिताङ्कुरपुष्पफलादिभि कृतोपहारे नृपमन्दिराराजिरे प्रवेशाप्रवेशाभ्या पौरजानपदाना व्रताव्रते विविच्य निश्चित्य च तन्निमित्तमापृष्टाना तत्राप्रविष्टाना प्रतिवचनेन सादर तानिमान् दृढव्रतानभिनन्द्य सयोज्य च पद्मनिधिर्गृहोतैर्ब्रह्मसूत्रै., संपूज्य च दानमानादिभिरुपासकसूत्रप्रतिपादितानि इज्यावार्तादत्तिस्वाध्यायसंयमतपोरूपाणि षट्कर्माण्याधानप्रीतिसुप्रीतिधृतिमोदप्रियोद्भवनामकर्मबहिर्यानिनिषद्यान्नप्राशनव्युष्टिकेशवापलिपिसंख्यानसग्रहोपनयनव्रतचर्याव्रतावतरणविवाहवर्णलाभकुलचर्यागृहीशित्वप्रशान्तिगृहत्यागदीक्षाद्यजिनरूपतामौनाध्ययनवृत्तितीर्थंकरत्वभावनागुरुस्थानाभ्युपगमगणोपग्रहणस्वगुरुस्थानसंक्रान्तिनिःसङ्गत्वात्मभावनायोगनिर्वाणसप्राप्तियोगनिर्वाणसाधनेन्द्रोपपादाभिषेकविधिदानसुखोदयेन्द्रत्यागावतारहिरण्योत्कृष्टजन्मतामन्दराभिषेकगुरुपूजोपलम्भनयौवराज्यस्वराज्यचक्रलाभदिग्जयचक्राभिषेकसाम्राज्यपरिनिष्क्रमणयोगसन्महार्हान्त्यश्रीविहारयोगत्यागाग्रनिर्वृतिरूपास्त्रिपञ्चाशद्गर्भान्वयक्रियास्तथा-अवतारवृत्तलाभस्थानलाभगणग्रहणपूजाराध्यपुण्ययज्ञदृढचर्योपयोगित्वपूर्वोक्तोपनयनादिरूपा अष्टचत्वारिंशद्दीक्षान्वयक्रिया', सज्जातिसद्गृहित्वपारिव्राज्यसुरेन्द्रत्वसाम्राज्यपरमार्हन्त्यपरमनिर्वाणरूपा सप्तकर्त्रन्वयक्रियास्तथातिबालविद्याकुलावधिवर्णोत्तमत्वपात्रत्वसृष्ट्यधिकारव्यवहारेशित्वावध्यत्वमानार्हत्वादण्डत्वप्रजा -

---

गृहस्थोंको धन-धान्य आदिके द्वारा सन्तुष्ट करना चाहिए। मनमें ऐसा विचार कर उन्होंने गृहस्थोंके व्रत और अव्रतकी परीक्षा करनेके लिए राजमन्दिरके अगणको हरे अंकुर पुष्प तथा फल आदिसे सजा दिया। ऐसे सजे हुए अंगणमें जो प्रवेश करेंगे वे अव्रती और जो प्रवेश नहीं करेंगे वे व्रती, इस तरह उनके भेद करनेका निश्चय किया। निश्चयानुसार राजमन्दिरके अंगणको उन्होंने उक्त प्रकारसे सजाकर नगरवासी तथा देशवासी लोगोंको आमन्त्रित किया। कुछ लोगोंने उक्त प्रकारसे सजे हुए ऑगनमें प्रवेश नहीं किया जब उनसे प्रवेश न करनेका कारण पूछा गया तो उन्होंने जो उत्तर दिया उससे भरतेश्वरने उन्हें अपने व्रतमे दृढ़ रहनेवाला समझ बड़े आदरके साथ उनका अभिनन्दन किया तथा उन्हें पद्मनिधिसे प्राप्त ब्रह्मसूत्र—यज्ञोपवीतसे युक्त किया, दान-मान आदिके द्वारा उनकी पूजा की तथा उन्हें उपासकाध्ययन सूत्रमें प्रतिपादित इज्या, वार्ता, दत्ति, स्वाध्याय, संयम और तप इन छह कर्मोंका तथा आधात, प्रीति, सुप्रीति, धृति, मोद, प्रियोद्भव, नामकर्म, बहिर्यान, निषद्या, अन्नप्राशन, व्युष्टि, केशवाप, लिपिसंख्यान, सग्रह, उपनयन, व्रतचर्या, व्रतावतरण, विवाह, वर्णलाभ, कुलचर्या, गृहीशित्व, प्रशान्ति, गृहत्याग, दीक्षाद्य, जिनरूपता, मौनाध्ययनवृत्ति, तीर्थंकरत्वभावना, गुरुस्थानाभ्युपगम, गणोपग्रहण, स्वगुरुस्थानसक्रान्ति, नि सगत्वात्मभावना, योगनिर्वाणसम्प्राप्ति, योगनिर्वाणसाधन, इन्द्रोपपाद, अभिषेक, विधिदान, सुखोदय, इन्द्रत्याग, अवतार, हिरण्योत्कृष्टजन्मता, मन्दराभिषेक, गुरुपूजोपलम्भन, यौवराज्य, स्वराज्य, चक्रलाभ, दिग्विजय, चक्राभिषेक, साम्राज्य, परिनिष्क्रमण, योगसन्मह, आर्हन्त्यश्री, विहार, योगत्याग और अग्रनिर्वृति रूप त्रेपन गर्भान्वय क्रियाओंका, तथा अवतार, वृत्तलाभ, स्थानलाभ, गणग्रह, पूजाराध्य, पुण्ययज्ञ, दृढ़चर्या और उपयोगित्व तथा पहले कही हुई उपनयन आदि चालीस इस प्रकार अड़तालीस दीक्षान्वय क्रियाओंका, सज्जाति, सद्गृहीत्व, पारिव्रज्य, सुरेन्द्रत्व, साम्राज्य, परमार्हन्त्य और परम निर्वाणरूप सात कर्मान्वय क्रियाओंका, तथा अतिबाल, विद्याकुलावधि, वर्णोत्तमत्व, पात्रत्व, सृष्ट्यधिकार, व्यवहारेशित्व, अवध्यत्व, मानार्हत्व, अदण्ड्यत्व और

संबन्धान्तरस्वरूपान्दशाधिकारान् श्रुतिस्मृतिपुरावृत्तमन्त्रक्रियादेवतालिङ्गकामान्न विषयशुद्धिदशक पक्षशुद्धिचर्याशुद्धिसाधनशुद्धिरूपशुद्धित्रय च सविस्तरमुपदिश्यैवमुवाच ।

§ ४३) पूर्वोक्तकर्मनिर्माणकर्मठा ये समाहृता ।
ते वर्णोत्तमभूदेवदेवब्राह्मणशब्दिते' ॥३०॥

§ ४४) निस्तारको ग्रामपतिर्मानार्हो लोकपूजित' ।
इत्यन्वर्थैर्नामभिश्च जोघुष्यन्ते महीतले ॥३१॥

§ ४५) इति भरतनरेन्द्रप्राप्तसस्कारयोगा
व्रतनियमगरिष्ठाः श्रीश्रुताम्भोधिनिष्ठा' ।
जिनपतिचरणाम्भोजातलोलम्बलीला
जगति बहुमतास्ते ब्राह्मणाः ख्यातिमीयु ॥३२॥

§ ४६) अथ कदाचन चक्रवर काश्चिदद्भुतदर्शनान्स्वप्नानवलोक्य किंचिदुद्विग्नः स्वान्तेन कामपि चिन्ता गाहमान. कथचित्फलानि जानानोऽपि दृढतरं तेषा निश्चयाय भगवदास्थान प्रति प्रस्थितः, सेनानुयातैर्मुकुटबद्धै' परिष्कृतपार्श्वभागो दूरादेव भगवदास्थानभूमिं दृष्ट्वा नत्वा च गन्धकुटीमध्ये विलसन्त देवदानवादिसेवित भगवदर्हन्तमवन्दत ।

---

§ ४२) अथेति—हिन्दीटीका द्रष्टव्या । § ४३) पूर्वोक्तेति—ये पूर्वोक्तानां प्रागुदिताना कर्मणा निर्माणे करणे कर्मठादक्षा सन्ति वर्णोत्तम-भूदेव-देवब्राह्मणेतिशब्दितै समाहृता समुच्चरिता ॥३०॥ § ४४) निस्तारक इति—सुगमम् ॥३१॥ § ४५) इतीति—इतोत्थ भरतनरेन्द्रान्निधिपते प्राप्त सस्काराणा योगो येषा ते, व्रतनियमैर्गरिष्ठा श्रेष्ठनरा, श्रीश्रुताम्भोधौ निष्ठा येषा ते, जिनपतिचरणाम्भोजा तयो जिनराजपादाब्जयोर्लोलम्बलीला भ्रमरलीला येषा तथाभूता ते ब्राह्मणा भूदेवा जगति भुवने बहुमता. प्राप्तबहुसन्माना सन्त ख्यातिं प्रसिद्धिम् ईयु प्रापु । मालिनीछन्द ॥३२॥ § ४६) अथेति—सुगमम् ।

प्रजासम्बन्धान्तरस्वरूप दश अधिकारोंका श्रुति, स्मृति, पुरावृत्त, मन्त्र, क्रिया, देवता, लिंग, काम, अन्न और विषय इन दश प्रकारकी शुद्धियोंका और पक्षशुद्धि, चर्याशुद्धि तथा साधनशुद्धि इन तीन शुद्धियोंका विस्तारसे उपदेश देकर इस प्रकार कहा। § ४३) पूर्वोक्तेति—जो पहले कही हुई क्रियाओंके करनेमें कर्मठ हैं वे वर्णोत्तम, भूदेव तथा देव-ब्राह्मण इन शब्दों द्वारा कहे गये हैं ॥३०॥ § ४४) निस्तारकेति—तथा वे पृथिवीतलपर निस्तारक, ग्रामपति, मानार्ह और लोकपूजित इन सार्थक नामोंसे कहे जाते हैं ॥३१॥ § ४५) इतीति—इस प्रकार जिन्हें राजा भरतसे संस्कारोंका योग प्राप्त हुआ था, जो व्रत और नियमसे श्रेष्ठ थे, शास्त्ररूपी समुद्रमे स्थित थे तथा जिनेन्द्रभगवान्‌के चरणकमलोंमें भ्रमरके समान सुशोभित थे वे जगत्‌मे बहुत सम्मानको प्राप्त होकर ब्राह्मण इस प्रकारकी ख्यातिको प्राप्त हुए ॥३२॥ § ४६) अथेति—तदनन्तर किसी समय चक्रवर्ती कुछ अद्भुत घटनाओंको दिखलानेवाले स्वप्न देखकर कुछ उद्विग्न होता हुआ मनसे कुछ विचार करने लगा। यद्यपि वह किसी तरह उन स्वप्नोंके फलको जानता था तो भी उनका दृढ निश्चय करनेके लिए भगवान्‌के समवसरणकी ओर चला, अपनी-अपनी सेनाओंसे अनुगत मुकुटबद्धराजाओंसे उसका समीपवर्ती प्रदेश घिरा हुआ था। दूरसे ही भगवान्‌के समवसरणकी भूमि देखकर उसने नमस्कार किया और गन्धकुटीके मध्यमें सुशोभित तथा देव-

§ ४७) जिनेन्दोरुन्मीलत्पदकमलसत्कान्तिलहरी-
स्फुरत्सध्यारागोल्लसितमणिकोटीरशिखरे ।
तदा चक्रिप्राच्यक्षितिभृति चिरादाविरभवद्
घनध्वान्तध्वंसी विलसदवधिज्ञानतरणि: ॥३३॥

§ ४८) स्तुत्वा स्तुतिभिरीशानमभ्यर्च्य च यथाविधि ।
निषसाद यथास्थान धर्मामृतपिपासित ॥३४॥

§ ४९) तदनु राजराजस्त्रिभुवनगुरौ धर्मसर्गविधातरि त्वयि विलसमाने बालिश्यविलसितमिदं मम ब्राह्मणसर्जनं किं दोषाय किमु गुणायेत्यापृच्छ्य अवधिज्ञानविज्ञानान्यपि स्वप्नफलानि तत्रत्याना प्रकटयितु सादर पुरुदेवमपृच्छत् ।

§ ५०) श्रीमद्दिव्यवचोनवामृतझरीपानेच्छया निश्चल
चित्रस्थापितशङ्कित गगनगैर्ध्यानावबन्धायितम् ।
सभ्याना वलयं समात्तकुतुक प्रोल्लासयन् श्रीपते-
र्वक्त्रादाविरभून्मरन्दमधुरो दिव्यध्वनिस्तत्क्षणम् ॥३५॥

---

§ ४७) जिनेन्दोरिति—तदा तस्मिन्काले जिनेन्दोर्जिनचन्द्रस्य उन्मीलती विकसति ये पदकमले चरणसरोरुहे तयो कान्तिलहरी दीप्तिपरम्परा सैव स्फुरत्सध्याराग प्रकटीभवत्सध्यारुणिमा तेनोल्लसित शोभितं मणिकोटीरं मणिमुकुटमेव शिखर शृङ्ग यस्य तस्मिन् चक्रयेव प्राच्यक्षितिभृत् तस्मिन् भरतेश्वरोदयाचले चिरात् चिरकालाय घनध्वान्तध्वसी निबिडाज्ञानतिमिरविनाशी विलसत् स्फुरद् अवधिज्ञानमेव तरणि: सूर्य इति विलसदवधिज्ञानतरणिः आविरभवत् प्रकटीबभूव । रूपकालंकार । शिखरिणीछन्द ॥३३॥ § ४८) स्तुत्वेति—सुगमम् ॥३४॥ § ४९) तदन्विति—बालिश्यविलसितम् अज्ञानचेष्टितम्, पुरुदेव वृषभजिनेन्द्रम् । शेष सुगमम् । § ५०) श्रीमदिति—तत्क्षण तत्काल श्रीमतो जिनेन्द्रस्य दिव्यवच एव नवामृतझरी नूतनसुधास्रोत तस्य पानेच्छया पिपासया निश्चल गगनगै खेचरै चित्रस्थापितमिव शङ्कितमिति चित्रस्थापितशङ्कितम् आलेख्यलिखितमिव, ध्यानावबन्धायित ध्याननिमग्नमिव समात्तकौतुक गृहीतकौतूहल सभ्याना सभासदाना वलयं मण्डल प्रोल्लासयन् समाह्लादयन् मरन्दमधुरो मकरन्दमिष्टस्वादो दिव्यध्वनिः श्रीपतेर्जिनेन्द्रस्य वक्त्रात्

दानव आदिसे सेवित अर्हन्तभगवान्‌की वन्दना की । § ४७) जिनेन्दोरिति—जिनेन्द्रचन्द्रके खिले हुए चरणकमलोंकी उत्तम कान्ति सन्ततिरूपी सन्ध्याकी लालीसे जिसका मणिमय मुकुटरूपी शिखर सुशोभित हो रहा था ऐसे चक्रवर्तीरूपी पूर्वाचलपर चिरकालके लिए सघन अन्धकारको नष्ट करनेवाला अत्यन्त सुशोभित अवधिज्ञानरूपी सूर्य प्रकट हुआ ॥३३॥ § ४८) स्तुत्वेति—धर्मरूपी अमृतका प्यासा भरत, स्तुतियों द्वारा भगवान्‌की स्तुति कर तथा विधिपूर्वक उनकी पूजा कर यथास्थान बैठ गया ॥३४॥ § ४९) तदन्विति—तदनन्तर राजाधिराज भरतने पूछा कि त्रिभुवनके गुरु तथा धर्मरूप सृष्टिके विधाता आपके शोभायमान रहते हुए मैंने मूर्खतावश ब्राह्मणोंकी जो यह सृष्टि की है वह दोषके लिए है अथवा गुणके लिए है ? इस प्रकार पूछकर उसने अवधिज्ञानके द्वारा जाने हुए भी स्वप्नोंका फल, वहाँ बैठे हुए अन्य लोगोंको प्रकट करनेके लिए आदरपूर्वक आदिजिनेन्द्रसे पूछा । § ५०) श्रीमदिति—उस समय भगवान्‌के दिव्यवचनरूपी नूतन अमृतके झरनेका पान करनेकी इच्छासे जो निश्चल बैठा हुआ था, आकाशगामी देव विद्याधर जिसे चित्रलिखित जैसा समझते थे अथवा ध्यानसे निमग्न जैसा मानते थे, तथा जिसे कौतुक प्राप्त हुआ था ऐसे सभासदोंके

५१) पूजा द्विजाना श्रृणु वत्स । साध्वी कालान्तरे प्रत्युत दोषहेतु' ।
काले कलौ जातिमदादिमेते वैर करिष्यन्ति यतः सुमार्गे ॥३६॥

५२) वत्स । कालान्तरे दोषमूलमप्येतदञ्जसा ।
नाधुना परिहर्तव्य धर्मसृष्ट्यनतिक्रमात् ॥३७॥

५३) इति त्रिभुवनाधीशो गिरा कोमलया सभाम् ।
उल्लास्य मधुर स्वप्नफलान्येवमवोचत ॥३८॥

५४) अये वत्स । मही विहृत्य महीभृत्कूटमास्थिताना त्रयोविंशतिपञ्चाननाना विलोकनेन त्रयोविंशतितीर्थकरोदये दुर्णयानुद्भवन, पुनरेकाकिन' कण्ठीरवपोतस्योपकण्ठे कुञ्जरनिरीक्षणेन सन्मतेस्तीर्थे सानुषङ्गकुलिङ्गिप्रकटन, कुम्भीन्द्रभटभग्नपृष्ठस्य सैन्धवस्यावलोकनेन दुःषमसाधुसदोहस्य मुनिपरिवृढोपवाह्य निखिलतपोगुणवहनासामर्थ्यं, शुष्कपत्रोपयोगिनामजाना निध्यानेन त्यक्तसदाचाराणा नराणामसद्वृत्तिताख्यापन, मदमन्थरसिन्धुरकन्धरारूढशाखामृग-

---

मुखात् आविरभूत् प्रकटीबभूव ॥३५॥ § ५१) पूजेति—हे वत्स ! श्रृणु समाकर्णय, यद्यपि द्विजाना ब्राह्मणाना पूजा साध्वी अस्ति तथापि कालान्तरे समयान्तरे प्रत्युत दोषहेतुर्दोषकारण भविष्यति, यतो यस्मात् कारणात् एते ब्राह्मणा कलौ काले पञ्चमे काले सुमार्गे प्रशस्तमार्गविषये जातिमदादि जातिगर्वादिक वैर निरोध करिष्यन्ति । इन्द्रवज्राछन्द. ॥३६॥ § ५२) वत्सेति—सुगमम् ॥३७॥ § ५३) इतीति—सुगमम् ॥३८॥ § ५४) अये वत्सेति—मही विहृत्य पृथिव्यां विहार कृत्वा महीभृत्कूट पर्वतशिखरम् आस्थितानामधिष्ठितानाम्, त्रयोविंशतिपञ्चाननाना त्रयोविंशतिसिंहाना विलोकनेन त्रयोविंशतितीर्थकरोदये वृषभादिपार्श्वान्तत्रयोविंशतितीर्थकरोदयकाले दुर्णयस्य मिथ्यानयस्यानुद्भवनमप्रकटनम् । पुनः किंतु एकाकिन एकस्य कण्ठीरवपोतस्य सिंहशावकस्य उपकण्ठे समीपे कुञ्जरनिरीक्षणेन गजावलोकनेन सन्मतेर्वर्धमानस्य तीर्थे सानुषङ्गाणां सपरिग्रहाणा कुलिङ्गिना कुतापसाना प्रकटनम् । कुम्भीन्द्रस्य गजेन्द्रस्य भरेण भग्न त्रुटित पृष्ठ यस्य तथाभूतस्य सैन्धवस्य हयस्य अवलोकनेन दु षमसाधुसदोहस्य पञ्चमकालसाधुसमूहस्य मुनिपरिवृढैर्यतिपतिभिरुपवाह्या धर्तुं योग्या ये निखिलतपोगुणास्तेषा वहनस्य धारणस्यासामर्थ्यम् । शुष्कपत्रोपयोगिना शुष्कपत्रभक्षणशीलानाम् अजाना वर्कराणां निध्यानेन दर्शनेन त्यक्तसदाचाराणा परित्यक्तसद्वृत्ताना नराणा

उस मण्डलको हर्षित करती हुई, मकरन्दसे मधुर दिव्यध्वनि भगवान्‌के मुखारविन्दसे प्रकट हुई ॥३५॥ § ५१) पूजेति—उन्होंने कहा कि हे वत्स । सुन, ब्राह्मणोंकी पूजा यद्यपि ठीक है परन्तु वह कालान्तरमे दोषका कारण होगी। क्योंकि कलिकालमें ये ब्राह्मण जातिमदको आदि लेकर समीचीनमार्गमें वैर करने लगेंगे ॥३६॥ § ५२) वत्सेति—हे वत्स । यद्यपि इनका रचा जाना कालान्तरमें दोषका मूल है तो भी इस समय धर्मसृष्टिका उल्लंघन न हो इस भावनासे इनका निराकरण करना अच्छा नहीं है ॥३७॥ § ५३) इतीति—इस प्रकार त्रिभुवनपति वृषभजिनेन्द्र, कोमल वाणीके द्वारा सभाको हर्षित कर स्वप्नोंका फल इस प्रकार कहने लगे ॥३८॥ § ५४) अये वत्सेति—हे वत्स । पृथिवीमें विहार कर पर्वतके शिखरपर स्थित तेईस सिंहोंके देखनेसे सूचित होता है कि तेईस तीर्थंकरोंके उदयकालमें मिथ्यानयकी उत्पत्ति नहीं होगी परन्तु एक सिंहके बच्चेके समीप हाथी देखनेसे सूचित होता है कि सन्मति तीर्थंकरके तीर्थमे परिग्रही कुलिंगी प्रकट होंगे। हाथीके भारसे जिसकी पीठ टूट गयी है ऐसा घोडा देखनेसे सूचित होता है कि दुःषम—पंचमकालसम्बन्धी साधुओंके समूहमें मुनिराजोंके द्वारा धारण करने योग्य समस्त तपके गुण धारण करनेकी सामर्थ्य नहीं रहेगी।

निर्वर्णनेन आदिक्षत्रान्वयविच्छेदिभूपालकत्वमकुलीनाना, काककलितोलूकसबाधदर्शनेन कालान्तरे जनाना जैनधर्मपरिहारेण मतान्तराश्रयणं, नृत्यद्भूतनिरीक्षणेन प्रजाना देवतात्वेन व्यन्तरभजनं, शुष्कमध्यतटाकपर्यन्तजलावलोकनेन धर्मस्यार्यनिवासपरित्यागेन प्रत्यन्तवासिष्ववस्थानं, पासुधूसरमणिगणदर्शनेन पञ्चमयुगे योगिनामृद्ध्यप्रादुर्भवनं, सत्कारसत्कृतसारमेयनिध्यानेन व्रतरहितानां द्विजाना पूजन, तरुणवृषभविहारावलोकनेन तारुण्य एव श्रामण्येऽवस्थानं, परिवेषोपरक्तदोषाकरविलोकनेन कालान्तरीणाना मुनीनां समनःपर्ययावधेरजननम्, अन्योऽन्यं सह सभूय वृषयुगलगमनेक्षणेन मुनीना साहचर्येण वर्तनं, जलधरावरणरुद्धदिवाकरनिरीक्षणेन पञ्चमयुगे प्रायः केवलज्ञाना-

---

मनुष्याणाम् असद्वृत्तिताख्यापनम् असदाचारसूचकम्, मदेन मन्थरो मन्दगामी य· सिन्धुरो गजस्तस्य कन्धराया ग्रीवायामधिरूढो य. शाखामृगो वानरस्तस्य निर्वर्णनेन विलोकनेन आदिक्षत्रान्वयविच्छेदि आद्यक्षत्रवंशविघातकम् अकुलीनाना नीचकुलाना भूपालकत्व महीरक्षकत्व, काकैर्वायसैः कलितो य उलूकसबाधो घूकपीडन तस्य सदर्शनेन कालान्तरे जनाना जैनधर्मपरिहारेण मतान्तराणा मिथ्याधर्माणामाश्रयणम्, नृत्यद्भूतनिरीक्षणेन प्रजाना लोकाना देवतात्वेन देवत्वबुद्धया व्यन्तरभजनम् व्यन्तराराधन, शुष्क मध्य यस्य तथाभूतस्य तटाकस्य सरोवरस्य पर्यन्ते तटे जलावलोकनेन नीरदर्शनेन धर्मस्य आर्येषु निवासस्य परित्यागस्तेन प्रत्यन्तवासिषु समीपवासिषु अवस्थान स्थितिः, पासुधूसरस्य धूलिधूसरस्य मणिगणस्य रत्नराशे दर्शनेन पञ्चमयुगे पञ्चमकाले योगिना मुनीनाम् ऋद्धीनामप्रादुर्भवनमप्रकटनम्, सत्कारेण सत्कृतो य सारमेय कुक्कुरस्तस्य निध्यानेन समवलोकनेन व्रतरहिताना द्विजाना पूजन अव्रतिब्राह्मणसमर्थनम्, तरुणवृषभस्य विहारावलोकने परिभ्रमणदर्शनेन तारुण्य एव यौवन एव श्रामण्ये मुनित्वेऽवस्थान, परिवेषेण परिधिना रक्तो यो दोषाकरश्चन्द्रस्तस्य विलोकनेन कालान्तरीणाना पञ्चमकालभवाना मुनीना समन पर्ययावधे अजननमनुत्पत्ति, अन्योऽन्य परस्पर सह सार्धं सभूय मिलित्वा वृषयुगलगमनेक्षणेन बलीवर्दयुगगमनावलोकने मुनीना यतीना साहचर्येण वर्तन प्रवृत्ति, जलधरावरणेन मेघावरणेन रुद्धो यो दिवाकर सूर्यस्तस्य निरीक्षणेन पञ्चमयुगे प्राय. केवलज्ञानाजननं केवलज्ञानानुत्पत्ति चतुर्थकालजाना पञ्चमकाले केवलज्ञानमुत्पद्यते पञ्चमकालजाना पञ्चमकाले

सूखे पत्ते खानेवाले बकरोंके देखनेसे सूचित होता है कि मनुष्य सदाचारको छोड़कर असदाचारकी ख्याति करेंगे। मदसे मन्द-मन्द चलनेवाले हाथीके ऊपर बन्दरके देखनेसे प्रकट होता है कि आदिक्षत्रियवंशका नाश होगा तथा अकुलीन मनुष्य पृथिवीका पालन करेंगे। कौओंके द्वारा की हुई उलूकोंकी बाधाको देखकर सूचित होता है कि कालान्तरमें लोग जैनधर्मको छोड़कर दूसरे धर्मोंका आश्रय ग्रहण करेंगे। नाचते हुए भूतके देखनेसे सूचित होता है कि प्रजा देवतारूपमें व्यन्तरोंकी सेवा करेंगे। जिसका मध्यभाग सूखा है तथा किनारोंपर पानी है ऐसे तालाबके देखनेसे प्रकट होता है कि धर्म, आर्यजनोंके निवासको छोड़कर समीपवर्ती लोगोंमें स्थित रहेगा। धूलिसे धूसर मणिसमूहको देखनेसे प्रकट होता है कि पंचमकालमें मुनियोको ऋद्धियाँ प्रकट नहीं होंगी। सत्कारसे सत्कृत कुत्ताके देखनेसे सूचित होता है कि व्रतरहित द्विजोंकी पूजा होगी। तरुण बैलके विहारको देखनेसे मालूम होता है कि तरुण अवस्थामें ही मुनिपद धारण किया जायेगा। परिधिसे उपरक्त चन्द्रमाके देखनेसे सूचित होता है कि कालान्तरके मुनियोंके मनःपर्यय तथा अवधिज्ञानकी उत्पत्ति नहीं होगी। परस्पर मिलकर बैलोंकी जोड़ी जा रही है यह देखनेसे प्रकट होता है कि मुनि परस्परके सहयोगसे ही प्रवृत्ति कर सकगे। मेघके आवरणसे रुके हुए सूर्यके देखनेसे सिद्ध होता है कि पंचमकालमें प्राय केवलज्ञानकी उत्पत्ति नहीं होगी। सूखे वृक्षके देखनेसे सूचित होता है कि पुरुष और स्त्री चारित्रसे च्युत हो जायेंगे। और जीर्ण पत्तोंके देखनेसे

जनन, शुष्कद्रुमेक्षणेन पुसा स्त्रीणा च चारित्रच्यवन, जीर्णपर्णावलोकनेन महौषधिरससमापन च सूचितमिति ।

§ ५५) इतीरितस्वप्नफलानि बुद्‌ध्वा विश्वस्य विघ्नोपशमाय धर्मे ।
मतिं समाधेहि मनोज्ञबुद्धे ! धर्मो हि सर्वेष्टदकामधेनुः ॥३९॥

§ ५६) इति भगवतो भाषा श्रुत्वा प्रणम्य पुन पुनः
भरतनृपति प्रत्यावृत्य प्रविश्य निज पुरम् ।
विधिवदकरोत्पूतः शान्तिक्रिया जिनपूजन
निधिपतिरय पात्रे दानानि चैव महामति. ॥४०॥

§ ५७) कदाचिद्वैराग्यादथ स किल मेघेश्वरनृप
सभा भर्तुर्गत्वा प्रणतभगवत्पादजलज ।
कृतग्रन्थत्यागाज्जिनविहितसत्सयमधर
क्रमात्ससर्द्धीद्ध' पुनरजनि भर्तुर्गणधरः ॥४१॥

§ ५८) तदानीमुदारबोधे जगत्त्रयनाथे च धर्मक्षेत्रेषु धर्मबीजान्युप्त्वा सेचयित्वा च धर्मामृतवृष्टिभिर्भव्यसदोहस्य तत्फलसपत्तये चिर विहृत्य पौषपौर्णमासीदिने कैलासशैलविलसितश्रीसिद्ध-

---

केवलज्ञान नोत्पद्यत इति प्राय पदस्य सार्थक्य, शुष्कद्रुमेक्षणेन शुष्कतरुविलोकनेन पुसा स्त्रीणा च चारित्रच्यवन सदाचारच्युति , जीर्णपर्णावलोकनेन जीर्णपत्रदर्शनेन महौषधीना रसस्य समापन च । सूचितमिति प्रत्येक सबध्यते । § ५५) इतीति—सुगमम् ॥३९॥ § ५६) इति भगवत इति—महामति महाबुद्धिमान् अयमेष निधिपतिर्भरत इति पूर्वोक्तप्रकारेण भरतनृपतिर्भरतराजो भगवतो वृषभजिनेन्द्रस्य भाषा दिव्यध्वनि श्रुत्वा निशम्य पुन पुन प्रणम्य प्रत्यावृत्य प्रत्यागत्य निज स्वकीय पुर नगर प्रविश्य विधिवत् यथाविधि शान्तिक्रिया शान्तिकर्म, जिनपूजनं जिनार्चन पात्रे दानानि चैव अकरोत् । हरिणीच्छन्द ॥४०॥ § ५७) कादाचिदिति—अथानन्तर कदाचित् जातुचित्, स किल प्रसिद्ध मेघेश्वरनृपो जयकुमारनरेन्द्र. वैराग्यात् निर्वेदात् भर्तुर्भगवत सभा समवसरण गत्वा प्रणते नमस्कृते भगवत्पादजलजे जिनेन्द्रचरणकमले येन तथाभूत सन् कृतग्रन्थत्यागात् विहितपरिग्रहत्यागात् जिनविहितस्य जिनेन्द्राभिहितस्य सत्सयमस्य सम्यक्चारित्रस्य धरो धारक क्रमात् ससर्द्धिभिरिद्धो दीप्त सन् पुनरनन्तर भर्तुर्जिनेन्द्रस्य गणधरो गणभृत् अजनि

सूचित होता है कि महौषधियोंका रस समाप्त हो जायेगा । § ५५) इतीति—इस प्रकार कहे हुए स्वप्नोंका फल जानकर तथा विश्वास कर विघ्नोंका उपशम करनेके लिए धर्ममें बुद्धि लगाओ । क्योंकि हे मनोज्ञबुद्धिके धारक ! धर्म समस्त इष्ट पदार्थोंको देनेके लिए कामधेनु है ॥३९॥ § ५६) इति भगवत इति—इस प्रकार भगवान्‌की वाणी सुनकर तथा बार-बार प्रणाम कर भरत नरेन्द्र लौटकर अपने नगरमें प्रविष्ट हुआ । वहाँ महाबुद्धिमान् चक्रवर्तीने पवित्र होकर विधिपूर्वक शान्ति क्रियाकी जिनपूजा की और पात्रोंके लिए दान दिया ॥४०॥ § ५७) कदाचिदिति—तदनन्तर किसी समय राजा मेघेश्वर—जयकुमारने वैराग्य होनेसे भगवान्‌की सभामें जाकर उनके चरण-कमलोंको नमस्कार किया और परिग्रहका त्याग कर श्रेष्ठ संयम धारण कर लिया । क्रमसे प्रकट होनेवाली सात ऋद्धियोंसे देदीप्यमान होता हुआ वह भगवान्‌का गणधर बन गया ॥४१॥ § ५८) तदानीमिति—उस समय उत्कृष्ट ज्ञानके धारक त्रिलोकीनाथ जब धर्म क्षेत्रोंमें धर्मके बीजोंको बोकर तथा धर्मरूपी अमृतकी वर्षासे उसे सींचकर एवं भव्य समूहको उसका फल प्राप्त करानेके लिए चिरकालतक विहार-

शिखरं निरभिलाषमध्यासीने, भरतपतिरा प्राग्भारमालोकान्तमतिदीर्घं मन्दरभूधरं, युवराजश्च स्वर्गादागत्य भवरोगनिरसनपूर्वक सुरलोकप्राप्तये कृतोद्यम महौषधिद्रुम, गृहपतिश्च निरन्तरं नरनिकरायाभीष्टार्थं दत्त्वा नाकाक्रमणाय सत्वर कल्पतरुं, सचिवाग्रेसरः पुनर्जिघृक्षुजनेभ्यो नानारत्नानि प्रदाय प्रकटिताग्रगमनाटोप रत्नद्वीप, सेनापतिरपि कैलासोल्लङ्घनसंनद्धं विघटित-वज्रपञ्जरं कुञ्जरारिपु, सुभद्रादेवी च यशस्वतीसुनन्दाभ्यां सह शोचन्ती पुरन्दरसुन्दरी स्वप्ने निशामयामासुः ।

§ ५९) निधिपतिमुखैर्दृष्टस्वप्नान्निशम्य पुरोहितः
पुरुजिनपतेर्हत्वा कर्माणि सर्वजगत्पते ।
बहुमुनिजनैः सार्कं लोकान्तभागसुगामिता
वदति निखिलस्वप्नाल्येषेति धीरमवोचत ॥४२॥

§ ६०) तदानीमेवागतादानदनाम्न शासनधरात् मुकुलीकृतसरोरुहतया सभासरस्या समुपास्यमानभगवतो दिव्यध्वनिदिवाकरास्तमयं श्रुत्वा गत्वा च सत्वर भगवत्सनिधिं चक्रधर-श्चतुर्दशदिनानि महापूजया भगवन्तमसेवत ।

बभूव । शिखरिणीछन्द ॥४१॥ § ५८) तदानीमिति—सुगमम् । § ५९) निधिपतीति—निधिपतिमुखै-श्चक्रवर्तिप्रभृतिभिः दृष्टाश्च ते स्वप्नाश्चेति दृष्टस्वप्नास्तान् निशम्य श्रुत्वा पुरोहित. पुरोधा. इति धीरं यथा स्यात्तथा अवोचत जगाद । एषा निखिलस्वप्नाली सर्वस्वप्नसतति सर्वजगत्पतेः निखिलससारस्वामिन पुरुजिनपते वृषभजिनराजस्य कर्माणि ज्ञानावरणादीनि हत्वा क्षपयित्वा बहुमुनिजनैरनेकयतिभि. साकं सार्धं लोकान्तभाग सुगच्छतीति लोकान्तभागसुगामी तस्य भावस्ता मोक्षप्राप्ति वदति कथयति सूचयतीत्यर्थ. ।

कर पौषमासकी पौर्णमासीके दिन कैलास पर्वतपर सुशोभित श्री सिद्ध शिखरपर बिना किसी इच्छाके अधिरूढ हो गये तब भरतराजने ईषत्प्राग्भार पृथिवी तथा लोकके अन्त तक अत्यन्त लम्बे मन्दर गिरिको, युवराजने स्वर्गसे आकर तथा संसार रूपी रोगको नष्ट कर सुर लोककी प्राप्तिके लिए उद्यम करनेवाले महौषधिरूपको, गृहपतिने निरन्तर मनुष्य समूहके लिए अभीष्टपदार्थ देकर स्वर्गमें जानेके लिए उतावली करनेवाले कल्पवृक्षको, प्रधानमन्त्रीने ग्रहण करनेके इच्छुक मनुष्योंके लिए नाना रत्न देकर आगे जानेके लिए गमनके विस्तारको प्रकट करनेवाले रत्नद्वीपको, सेनापतिने कैलास पर्वतके लाँघनेके लिए तैयार तथा वज्रमय पंजरको तोड़नेवाले सिंहको और सुभद्रादेवीने यशस्वती तथा सुनन्दाके साथ शोक करती हुई इन्द्राणीको स्वप्नमें देखा। § ५९) निधिपतीति—चक्रवर्ती आदिके द्वारा देखे गये दुष्ट स्वप्नोंको सुनकर पुरोहितने धीरतापूर्वक कहा कि यह समस्त स्वप्नोंकी पंक्ति, समस्त जगत्के स्वामी पुरु जिनेन्द्र कर्मोंको नष्ट कर अनेक मुनियोंके साथ लोकके अन्त भागको अच्छी तरह प्राप्त होंगे, यह कह रही है ॥४२॥ § ६०) तदानीमेवेति—उसी समय आये हुए आनद नामके सेवकसे भरतेश्वरने सुना कि जोड़े हुए हाथ रूपी कमलोंसे युक्त सभारूपी सरसी जिनकी उपासना कर रही थी ऐसे भगवान्की दिव्य ध्वनिरूपी सूर्यका अस्त हो गया है अर्थात् भगवान्की दिव्यध्वनि बन्द हो गयी है। उक्त समाचारके सुनते ही चक्रवर्ती भरत शीघ्र ही भगवान्के पास गया और चौदह दिन तक महापूजाके द्वारा उनकी सेवा

§ ६१) माघे मासि चतुर्दशीदिनवरे सूर्योदये श्रीपति-
लग्ने चाभिजिति प्रतीतसुगुणे पक्षे वलक्षेतरे।
पल्यङ्कासनमास्थितः स भगवान् प्राग्दिङ्मुखः सर्ववित्
मुक्तिश्रीकरपीडनाय सहसा सनद्ध एष स्थितः ॥४३॥

§ ६२) अथ खलु भगवांस्तृतीयशुक्लध्यानविध्वस्ताघातिकर्मचतुष्टयः समधिष्ठितायोगिकेवलगुणस्थानो व्यपगतशरीरत्रय सिद्धत्वपर्यायं गुणाष्टकजुष्टमश्नुवानः क्षणाप्ततनुवातः परमौदारिकदिव्यदेहात्किंचिदूनपरिमाणो नित्यनिरञ्जनरूपः सर्वदा विश्वं पश्यन्सुखमासामास।

§ ६३) अथ झटिति चिकीर्षुर्मोक्षकल्याणपूजा
परमपुरुजिनेन्दोर्देवताना निकायः।
इदममलशरीरं भर्तुरस्येति तोषा-
न्मणिमयशिविकायामर्पयामास साधु ॥४४॥

हरिणीछन्द ॥४२॥ § ६०) तदानीमिति—सुगमम्। § ६१) माघे मासीति—माघे मासि माघमासे वलक्षेतरे कृष्णे पक्षे चतुर्दशीदिनवरे चतुर्दश्या श्रेष्ठतिथौ सूर्योदये प्रातर्वेलाया प्रतीता प्रसिद्धा सुगुणा यस्य तस्मिन् प्रसिद्धसुगुणयुक्ते अभिजिति तन्नामनि लग्ने पल्यङ्कासनं पद्मासन यथा स्यात्तथा आस्थित आसीन, प्राग्दिङ्मुख पूर्वाशाभिमुख श्रीपतिरनन्तचतुष्टयलक्ष्मीयुक्त स एष भगवान् पुरुदेव मुक्तिश्रीकरपीडनाय मुक्तिलक्ष्मीविवाहाय सहसा सनद्धस्तत्पर स्थित। शार्दूलविक्रीडितछन्द ॥४३॥ § ६२) अथमिति—तृतीयशुक्लध्यानं सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिनामधेय, व्यपगत नष्ट शरीरत्रयम् औदारिकतैजसकार्मणनामधेय यस्य तथाभूत गुणाष्टकजुष्ट सम्यक्त्वादिगुणाष्टकेन जुष्ट सहित, शेष सुगमम्। § ६३) अथेति—अथानन्तर झटिति शीघ्र परमपुरुषजिनेन्दो वृषभजिनचन्द्रस्य मोक्षकल्याणपूजा निर्वाणकल्याणकसपर्या चिकीर्षु कर्तुमिच्छु देवताना निकाय भवनव्यन्तरज्योतिष्ककल्पामरसमूह, इदम् अमलशरीरं निर्मलशरीरम् अस्य भर्तुर्भगवतोऽस्तीति तोषात् साधु यथा स्यात्तथा मणिमयशिविकाया रत्नरचितचतुरन्तयाने अर्पयामास स्थापयामास। मालिनी-

---

करता रहा। § ६१) माघे मासीति—तदनन्तर माघमासके कृष्ण पक्ष सम्बन्धी चतुर्दशीके दिन सूर्योदयके समय प्रसिद्ध उत्तम गुणोंसे सहित अभिजित् नामक लग्नमें अनन्त चतुष्टय रूपी लक्ष्मीके स्वामी वे सर्वज्ञ भगवान् पूर्वकी ओर मुख कर पद्मासनसे ऐसे विराजमान हो गये मानो मुक्तिरूपी लक्ष्मीके साथ विवाह करनेके लिए शीघ्र ही तैयार होकर बैठे हों ॥४३॥ § ६२) अथमिति—तृतीय शुक्लध्यानके द्वारा जो चार अघाति कर्मोंका नाश कर अयोग केवली नामक चौदहवें गुणस्थानको प्राप्त हुए थे, जिनके औदारिक, तैजस और कार्मण ये तीनों शरीर नष्ट हो गये थे, जो आठ गुणोंसे सहित सिद्धत्व पर्यायको प्राप्त हुए थे, क्षणभरमें जिन्होंने तनुवात वलयको प्राप्त कर लिया था, जो परमौदारिक नामक दिव्य शरीरसे कुछ कम परिमाणसे युक्त थे, नित्य निरंजनरूप थे और सदा विश्वको देख रहे थे इस प्रकार वे वृषभ जिनेन्द्र सुखसे वहाँ विराजमान थे। § ६३) अथेति—तदनन्तर शीघ्र ही परम पुरुष जिनेन्द्र चन्द्रके मोक्ष कल्याणकी पूजा करनेकी इच्छा करता हुआ देवोंका समूह आया। उसने यह भगवान्का निर्मल शरीर है इस प्रकारका सन्तोष होनेसे उसे अच्छी तरह मणिमय पालकीमें विराजमान किया। विशेष—यद्यपि भगवान्का परमौदारिक शरीर मोक्ष प्राप्त होते ही कपूरकी तरह उड जाता है तथापि अन्तिम संस्कार करनेके लिए देव एक कृत्रिम शरीर बनाकर उसे भगवान्का ही निर्मल शरीर समझ आदरपूर्वक मणिमय पालकीमे विराजमान

§ ६८) व्यपास्य चिन्ता गुरुशोकजाता गणेशमानम्य विनम्रमौलिः ।
निन्दन्नपारा निजभोगतृष्णा चक्री विभूत्या स्वपुर विवेश ॥४८॥

§ ६९) अथ कदाचन चक्रधरः करकलितमणिदर्पणबिम्बित शरच्चन्द्रबिम्बविडम्बक पलितनिजवदनबिम्ब पुरुपरमेश्वरसनिधानादागतमिव दूतमवलोक्य विगलितमोहरस साम्राज्य जरत्तृणमिव मन्यमानो निजात्मजमर्ककीर्ति राजलक्ष्म्या सयोज्य महितापवर्गद्वारप्रतिम सयम स्वीकुर्वाण सद्यः समुत्पन्नेन मनःपर्ययबोधेन केवलज्ञानेन च विदितसर्वपदार्थसार्थ. पुरदरादिवृन्दारकसदोहवन्द्यमानपादारविन्दस्तत्र तत्र भव्यसस्येषु धर्मामृतवृष्टि व्यातन्वानश्चिर विहृत्य परम पदमाससाद ।

§ ७०) वृषभसेनमुखा गणिनस्तथा
सकलजन्तुषु सख्यमुपागताः ।
विमलशीलविशोभितमानसा.
परमनिर्वृतिमापुरिमे क्रमात् ॥४९॥

पितृवियोग एव हुताशनोऽग्निस्तेन दीपितं कृततापं भरतराज वचनामृतैः वचनपीयूषै उपशम शान्ति नयति स्म प्रापयति स्म । द्रुतविलम्बितछन्द ॥४७॥ § ६८) व्यपास्येति—चक्री भरत गुरुशोकजाता पितृशोकसमुत्पन्नां चिन्ता दु खपूर्णविचारसतति व्यपास्य त्यक्त्वा विनम्रमौलिर्नतमस्तक सन् गणेश वृषभसेनगणधर आनम्य नमस्कृत्य अपारामत्यधिकां निजभोगतृष्णा स्वकीयभोगस्पृहा निन्दन् विभूत्या समृद्धया स्वपुरं स्वनगर विवेश । अयोध्यानगरं प्रत्यागतवानिति भाव ॥४८॥ § ६९) अथेति—सुगमम् । § ७०) वृषभसेनेति—तथा तेनैव प्रकारेण सकलजन्तुषु निखिलप्राणिषु सख्य मैत्रीभावम् उपागता प्राप्ता विमलशीलेन विशोभित मानस येषा तथाभूता इमे एते वृषभसेनमुखा वृषभसेनप्रभृतयो गणधरा. क्रमात् क्रमेण स्वायु क्षयानुसार-

---

गणधरने पिताके वियोगरूपी अग्निसे दुःखी भरतराजको वचनरूपी अमृतसे शान्ति प्राप्त करायी ॥४७॥ § ६८) व्यपास्येति—तदनन्तर पिताके शोकसे उत्पन्न चिन्ताको दूर कर विनम्रमस्तक हो गणधरको नमस्कार कर अपनी बहुत भारी भोग सम्बन्धी तृष्णाकी निन्दा करता हुआ चक्रवर्ती भरत, वैभवके साथ अपने नगरमे प्रविष्ट हुआ ॥४८॥ § ६९) अथेति—तदनन्तर किसी समय चक्रवर्तीने अपने हाथमें स्थित मणिमय दर्पणमे प्रतिबिम्बित होनेवाले, शरद्ऋतु सम्बन्धी चन्द्रमाके बिम्बकी विडम्बना करनेवाले एवं भगवान् आदि जिनेन्द्रके पाससे आये हुए इनके समान जान पड़नेवाले अपने सफेद बालोंसे युक्त मुख बिम्बको देखा, देखते ही उनके मोहका विपाक दूर हो गया, वे साम्राज्यको जीर्णतृणके समान मानने लगे। फलत. वे अपने पुत्र अर्ककीर्तिको राजलक्ष्मीसे युक्त कर उत्कृष्ट मोक्षके द्वारके समान संयमको स्वीकृत करते हुए शीघ्र ही उत्पन्न हुए मनःपर्ययज्ञान तथा केवलज्ञानसे समस्त पदार्थोंके समूहको जानने लगे, इन्द्र आदि देवोंके समूह उनके चरण-कमलोंकी वन्दना करने लगे। इस प्रकार भव्य जीवरूपी धान्योंमें धर्मामृतकी वर्षा करते हुए चिर काल तक विहार कर उन्होंने परमपद—मोक्षको प्राप्त किया । § ७०) वृषभसेनेति—इसी प्रकार जो समस्त जीवोंमे मैत्रीभावको प्राप्त हुए थे, तथा जिनके हृदय निर्मल शीलसे सुशोभित थे ऐसे ये वृषभसेन

§ ७१) जयता मृदुगम्भीरैर्वचनैः परिनिर्वृतेर्हेतुः ।
सुरसार्थसेवितपदः पुरुदेवस्तत्प्रबन्धश्च ॥५०॥

इत्यर्हद्दासकृतौ पुरुदेवचम्पूप्रबन्धे दशमः स्तबकः ॥१०॥

मित्यर्थः परमनिर्वृतिं मोक्षम् आपु प्रापु. । द्रुतविलम्बितछन्द ॥४९॥ § ७१) जयतामिति—मृदुगभीरैः कोमलगभीरार्थसहितैः । वचनै. परिनिर्वृतेः निर्वाणस्य हेतुः कारण पक्षे सतोषस्य हेतु सुरसार्थसेवितपदः । सुराणा देवाना सार्थेन समूहेन सेविते पदे चरणौ यस्य तथाभूत , पक्षे सुष्ठु रसार्थौ सुरसार्थौ ताभ्या सेवितानि पदानि सुबन्ततिङन्तरूपाणि यस्मिन्स. पुरुदेवो वृषभजिनेन्द्रः तत्प्रबन्धश्च पुरुदेवचम्पुनामप्रबन्धश्च जयता सर्वोत्कर्षेण वर्तताम् । आर्या ॥५०॥

इति श्रीमदर्हद्दासकृतेः पुरुदेवचम्पूप्रबन्धस्य 'वासन्ती'समाख्यायां संस्कृत-
व्याख्याया दशमः स्तबकः समाप्तः ॥१०॥

आदि गणधर भी क्रमसे परमनिर्वाणको प्राप्त हुए ॥४९॥ § ७१) जयतामिति—जो कोमल तथा गम्भीर वचनोंके द्वारा परम निर्वाणके कारण थे (पक्षमें परम सन्तोषका कारण था) तथा सुरसार्थसेवितपद—देवोंके समूहसे जिनके चरण सेवित थे (पक्षमें जिसके शब्द-समूह उत्तम रस और अर्थसे सेवित थे) ऐसे भगवान् पुरुदेव और उनका यह पुरुदेवचम्पू नामका प्रबन्ध सदा जयवन्त रहे ॥५०॥

इस प्रकार अर्हद्दासकी कृति पुरुदेवचम्पू प्रबन्धमें
दसवाँ स्तबक समाप्त हुआ ॥१०॥

कवेः प्रशस्तिपद्यम्

मिथ्यात्वपङ्ककलुषे मम मानसेऽस्मि-
न्नाशाधरोक्तिकतकप्रसरैः प्रसन्ने ।
उल्लासितेन शरदा पुरुदेवभक्त्या
तच्चम्पुदम्भजलजेन समुज्जजृम्भे ॥१॥

अथ पुरुदेवचम्पूग्रन्थः समाप्तः ।

मिथ्यात्वेति—मिथ्यात्वमेव पङ्कस्तेन कलुषे मलिने आशाधरोक्तय एव कतकास्तेषां प्रसरास्तैः प्रसन्ने निर्मलीकृते ममार्हद्दासस्य अस्मिन् मानसे मानसाख्यसरोवरे पुरुदेवभक्त्या शरदा शरदृतुना उल्लासितेन प्रहर्षितेन तच्चम्पुदम्भजलजेन पुरुदेवचम्पुनामकमलेन समुज्जजृम्भे ववृधे । कर्मणि प्रयोगः । वसन्ततिलकच्छन्दः ॥१॥

मिथ्यात्वेति—जो पहले मिथ्यात्वरूपी पंकसे मलिन था तथा पीछे चलकर आशाधर जी के सुभाषितरूपी कतकफलके प्रभावसे निर्मल हो गया था ऐसे मेरे इस मानस—मनरूपी मानसरोवरमें पुरुदेव—वृषभ जिनेन्द्रकी भक्तिरूपी शरदृतुके द्वारा उल्लासको प्राप्त हुआ यह पुरुदेवचम्पू रूपी कमल वृद्धिको प्राप्त हुआ है ॥१॥

यह पुरुदेवचम्पूग्रन्थ समाप्त हुआ ।

टीकाकर्तृप्रशस्तिः

यदीयादेशमासाद्य टीकैषा निर्मिता मया ।
विद्यानन्दो मुनि. सोऽय शिवायास्तु सदा सताम् ॥१॥

पन्नालालेन बालेन गल्लीलालतनूभुवा ।
जानकीजातजनुषा सागरक्रोडवासिना ॥२॥

चैत्रमासत्रयोदश्या श्यामाया सत्तिथौ मया ।
भौमवारदिने रम्ये मुहूर्ते ब्राह्मसञ्ज्ञिते ॥३॥

चतुर्नवयुगद्वन्द्वमिते वीराब्दनामनि ।
संवत्सरे समाप्तैषा टीकेय टीकतां बुधान् ॥४॥

अर्हद्दासकृते काव्ये श्लेषालकारसयुते ।
टीकेय सततं भूयाद्विदुषा मोददायिनी ॥५॥

नानावृत्तमयो नानासदलकारसयुतः ।
पुरुदेवप्रबन्धोऽय चम्पूरीत्या विनिर्मितः ॥६॥

अमन्दानन्दसदायी विदुषां वर्तते भुवि ।
टीका विना महाक्लेश प्राप्नुवन्ति सदा बुधा ॥७॥

विचार्यैतत् कृता टीका यथाबुद्धिसमासतः ।
हिन्द्या गीर्वाणवाण्या च शोधनीया सदा बुधै. ॥८॥

नानाश्लेषतरङ्गाढ्य प्रबन्ध सागरोपमम् ।
कथ तर्तुं समर्थाः स्युष्टीकया नौकया विना ॥९॥

छात्रा इत्येव सधार्यं टीकैषा रचिता मया ।
क्षमन्ता स्खलन मेऽत्र विद्वासोऽवद्यवर्जिताः ॥१०॥

परिशिष्टानि

१. पुरुदेवचम्पूप्रबन्धस्य श्लोकानुक्रमणी

[प्रथम अंक स्तवक, द्वितीय अंक श्लोक तथा तृतीय अक पृष्ठसंख्या का है ।]

[द]

[ध]

[ह]

२. पुरुदेवचम्पूप्रबन्धे समागतव्रतानां विधिनिरूपणम्

जिनगुणसम्पत्ति—पृष्ठ ६१,७१

हरिवंशपुराणमें इसका नाम जिनेन्द्रगुणसम्पत्ति-व्रत दिया है। इसकी विधि पुरुदेवचम्पूमें इस प्रकार दी है—

षोडशतीर्थंकरभावनाश्चतुस्त्रिंशदतिशयानष्टप्रातिहार्याणि पञ्चकल्याणकान्युद्दिश्य त्रिपष्टिदिवसैं क्रियमाणमुपोषितव्रत जिनगुणसपत्तिरिति जोघुष्यते।

सोलह तीर्थंकरभावनाएँ, चौतीस अतिशय, आठ प्रातिहार्य और पाँच कल्याणक इन्हें लक्ष्य कर त्रेशठ दिनमें किया जानेवाला उपवास व्रत जिनगुणसम्पत्ति-व्रत कहलाता है।

इस व्रतमें एक उपवास और एक पारणाके क्रमसे ६३ उपवास और ६३ पारणाएँ की जाती हैं। सब मिलाकर १२६ दिनमें व्रत पूर्ण होता है।

श्रुतज्ञान—पृष्ठ ६२,७१

हरिवंशपुराणमें इसका नाम श्रुतविधि दिया है। इसकी विधि पुरुदेवचम्पूकारने इस प्रकार दी है—

अष्टाविंशतिमतिज्ञानभेदानेकादशाङ्गान्यष्टाशीतिसूत्राणि प्रथमानुयोग परिकर्मद्वय चतुर्दशपूर्वाणि पञ्चचूलिका षडवधिज्ञान मन पर्ययज्ञानद्वय केवलज्ञानमेकमुद्दिश्याष्टपञ्चाशदधिकदिनशतेन क्रियमाणमनशनव्रत श्रुतज्ञानमिति श्रूयते।

अठाईस मतिज्ञानके भेद, ग्यारह अग, अठासी सूत्र, प्रथमानुयोग, दो परिकर्म, चौदहपूर्व, पाँच चूलिकाएँ, छह प्रकारका अवधिज्ञान, दो प्रकारका मन-पर्ययज्ञान और एक प्रकारका केवलज्ञान, इन सबको लक्ष्यकर एक सौ अट्ठावन दिनके द्वारा किया जानेवाला अनशनव्रत श्रुतज्ञानव्रत नामसे प्रसिद्ध है।

इसकी विधि इस प्रकार है कि एक उपवास और एक पारणा इस क्रमसे इसमें १५८ उपवास और १५८ पारणाएँ होती है। यह व्रत तीन सौ सोलह दिनमें पूर्ण होता है।

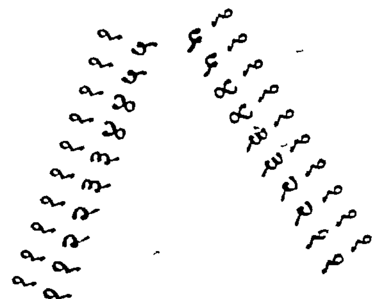
मुक्तावली—पृष्ठ ६९

इस व्रतमें २५ उपवास और ९ पारणाएँ होती है। उनका क्रम यह है—एक उपवास एक पारणा, दो उपवास एक पारणा, तीन उपवास एक पारणा, चार उपवास एक पारणा, पाँच उपवास एक पारणा, चार उपवास एक पारणा, तीन उपवास एक पारणा, दो उपवास एक पारणा और एक उपवास एक पारणा। यह व्रत चौंतीस दिनमें पूर्ण होता है।

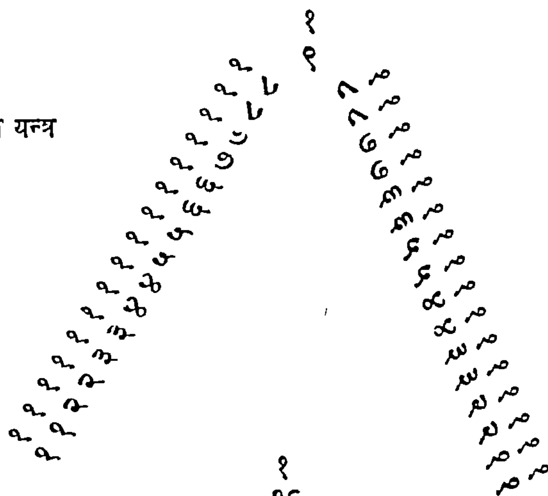
सिंहनिष्क्रीडित व्रत—पृष्ठ ६९

सिंहनिष्क्रीडितव्रतके जघन्य, मध्यम और उत्कृष्टकी अपेक्षा तीन भेद हैं। जघन्यमें ६० उपवास और २० पारणाएँ होती है। यह व्रत ८० दिनमें पूर्ण होता है। मध्यममें एक सौ त्रेपन उपवास और तेंतीस पारणाएँ होती हैं। यह व्रत एक सौ छियासी दिनमें पूर्ण होता है। उत्कृष्टमें चारसौ छियानवे उपवास और इकसठ पारणाएँ होती हैं। इस व्रतमें कल्पना यह है कि जिस प्रकार सिंह किसी पर्वतपर क्रमसे ऊपर चढता है और फिर क्रमसे नीचे उतरता है उसी प्रकार इस व्रतमे मुनि तपरूपी पर्वतके शिखर पर क्रमसे चढ़ता है और क्रमसे उतरता है। इसके उपवास और पारणाकी विधि निम्नलिखित यन्त्रोंसे स्पष्ट की जाती है। नीचेकी पक्तिसे उपवास और ऊपर पक्तिसे जिसमें एकका अक लिखा है पारणा समझना चाहिए।

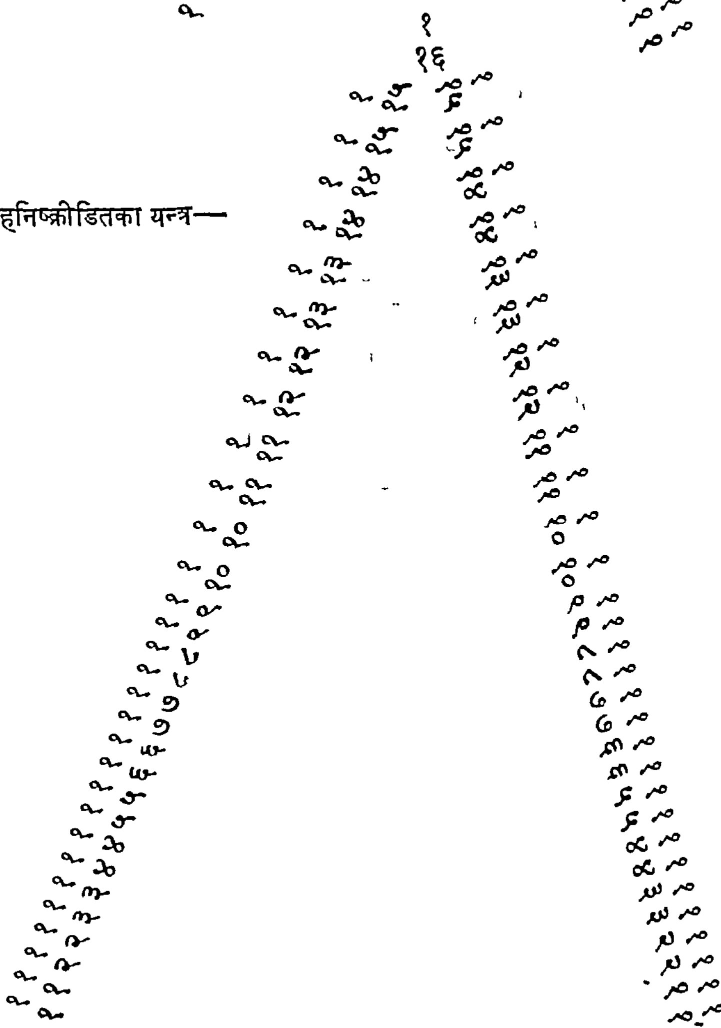
जघन्य सिंहनिष्क्रीडितका यन्त्र।



मध्यम सिंहनिष्क्रीडितका यन्त्र



उत्कृष्ट सिंहनिष्क्रीडितका यन्त्र—



सर्वतोभद्र—पृष्ठ ६९

इसमें ७५ उपवास और २५ पारणाएँ होती हैं। १०० दिनमें व्रत पूर्ण होता है। इसकी विधि जानने के लिए एक पांच भगका चौकोर प्रस्तार बनावे और एकसे लेकर पांच तकके अक उसमें इस तरह भरे कि सब ओरसे गिनने पर पन्द्रह-पन्द्रह उपवासोकी सख्या निकल आवे। इन पन्द्रह उपवासोमें पाँचका गुणा करनेसे उपवासोकी सख्या ७५ और पांच पारणाओंमें पाँचका गुणा करनेसे २५ पारणाओकी सख्या निकलती है। इसकी विधि यह है—एक उपवास एक

पारणा, दो उपवास एक पारणा, तीन उपवास एक पारणा, चार उपवास एक पारणा और पाँच उपवास एक पारणा। इसी प्रकार आगेके भगोमें भी समझना चाहिए।

यन्त्र—उपवास	१	२	३	४	५
पारणा	१	१	१	१	१
उपवास	४	५	१	२	३
पारणा	१	१	१	१	१
उपवास	२	३	४	५	१
पारणा	१	१	१	१	१
उपवास	५	१	२	३	४
पारणा	१	१	१	१	१
उपवास	३	४	५	१	२
पारणा	१	१	१	१	१

रत्नावली—पृष्ठ ६९, ७१

इस व्रतमें ३० उपवास और १० पारणाएँ होती है तथा ४० दिनमें पूर्ण होता है। उपवास का क्रम इस प्रकार है—

एक उपवास एक पारणा, दो उपवास एक पारणा, तीन उपवास एक पारणा, चार उपवास एक पारणा, पाँच उपवास एक पारणा, पाँच उपवास एक पारणा, चार उपवास एक पारणा, तीन उपवास एक पारणा, दो उपवास एक पारणा और एक उपवास एक पारणा।

इस व्रतकी दूसरी विधि हरिवंश पुराणमें इस प्रकार बतलायी हैं—एक वेला एक पारणा, एक वेला एक पारणा—इस क्रमसे दश बेला दस पारणा, फिर एक उपवास एक पारणा, दो उपवास एक पारणा, तीन उपवास एक पारणा, चार उपवास एक पारणा, इस क्रमसे सोलह उपवास तक बढाना चाहिए। फिर एक वेला एक पारणा इस क्रमसे तीस वेला तीस पारणा, फिर षोडशी के सोलह उपवास एक पारणा, पन्द्रह उपवास एक पारणा इस क्रमसे एक उपवास एक पारणा तक आना चाहिए। फिर एक वेला एक पारणाके क्रमसे बारह वेला बारह पारणाएँ तत्पश्चात् नीचेकी चार बेला और चार पारणाएँ करना चाहिए। इस प्रकार यह व्रत एक वर्ष, तीन माह और बाईस दिनमें पूर्ण होता है। इसमें सब मिलाकर तीन सौ चौरासी उपवास और अठासी पारणाएँ होती हैं।

कनकावली—पृष्ठ ७०

इस व्रत में चार सौ चौंतीस उपवास और अठासी पारणाएँ होती है। इनका क्रम इस प्रकार है—

एक उपवास एक पारणा, दो उपवास एक पारणा, तीन उपवास एक पारणा आदि। इस व्रतके उपवास और पारणाओकी सख्या निम्नलिखित यन्त्रसे समझना चाहिए। ऊपर की पक्तिसे उपवासोकी और नीचेकी पक्तिसे पारणाओकी सख्या लेना चाहिए—

१,२,३,३,३,३,३,३,३,३,३,१,२,३,४,५,६,७,८,९,
१,
१०,११,१२,१३,१४,१५,१६,३,३,३,३,३,३,३,३,
१ ,१ ,१ ,१ ,१ ,१ ,१ ,१,१,१,१,१,१,१,१,
३,३,३,३,३,३,३,३,३,३,३,३,३,३,३,३,३,३,३,
१,१,१,१,१,१,१,१,१,१,१,१,१,१,१,१,१,१,१,
३,३,३,३,३,३,१६,१५,१४,१३,१२,११,१०,९,८,
१,१,१,१,१,१,१ ,१ ,१ ,१ ,१ ,१ ,१ ,१,१,
७,६,५,४,३,२,१,३,३,३,३,३,३,३,३,३,२,१,
१,१,१,१,१,१,१,१,१,१,१,१,१,१,१,१,१,१,

आचाम्लवर्धन—पृष्ठ ७१, ७३

इस व्रतकी विधिमें पहले दिन उपवास करना चाहिए, दूसरे दिन एक बेर बराबर भोजन करना चाहिए तीसरे दिन दो बेर बराबर, चौथे दिन तीन बेर बराबर, इस तरह एक-एक बेर बराबर बढ़ाते हुए ग्यारहवें दिन दस बेर बराबर भोजन करना चाहिए। फिर दश को आदि लेकर एक-एक बेर बराबर घटाते हुए दशवें दिन एक बेर बराबर भोजन करना चाहिए और अन्त में एक उपवास करना चाहिए। इस व्रतके पूर्वार्धके दश दिनोमें निर्विकृति—नीरस भोजन लेना चाहिए और उत्तरार्धके दश दिनोमें इक्कट्ठाणाके साथ अर्थात् भोजनके लिए बैठनेपर पहली बार जो भोजन परोसा जाये उसे ग्रहण करना चाहिए। दोनो ही अर्धोमें भोजनका परिमाण ऊपर लिखे अनुसार ही समझना चाहिए। आचाम्लवर्धन तपकी उक्त विधि क्रमसे करना चाहिए।

सूचना—उपर्युक्त व्रतोके यन्त्र आदिकी जानकारीके लिए भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसीसे प्रकाशित हरिवंश पुराणका चौंतीसवाँ सर्ग देखना चाहिए।

३. पुरुदेवचम्पूप्रबन्धस्य पारिभाषिकशब्दानुक्रमणी

[शब्दोके आगे दिये हुए तीन अकोमे पहला अक स्तवक, दूसरा अक श्लोक या साधारण सख्या तथा तीसरा अक पृष्ठका है। दूसरे अकमे कोष्ठकके भीतरका अक गद्यका है जो साधारण सख्याके अनुसार हैं।]

अस्थिसम अप्रत्याख्यान मान— ३.(३४) १०८
मानकषाय के चार भेद हैं—१ शैल-सम, २ अस्थि—हड्डी समान, ३ काष्ठ समान और, ४ वेत्रसम, यह चार प्रकार का मान क्रम से नरकादि आयु के बन्ध का कारण है।

आतोद्याङ्ग— ३ (४५) ११३
एक प्रकारका कल्प वृक्ष, जिससे नाना प्रकारके वादित्र प्राप्त होते हैं।

आधान— १० (४२) ३६३
गर्भान्वय क्रिया

आराधना— १ ८३ ३८
समाधिमरण, सल्लेखना—इसके ३ भेद है—१ भक्त प्रत्याख्यान, २ इंगिनीमरण और ३. प्रायोपगमन।

आर्हन्त्य श्री— १० (४२) ३६३
गर्भान्वय क्रिया

आस्तिक्य— ३ ३२ ११७
सम्यग्दर्शनका एक गुण, आप्त, व्रत, श्रुत, परलोक आदिमें श्रद्धाका भाव।

आस्थानभूमि— १० (४६) ३६४
समवसरण—भगवान्‌की धर्म सभा

आष्टाह्निक महोत्सव— १ (८२) ३७
यह महोत्सव कार्तिक, फाल्गुन, और आषाढ मासके अन्तिम आठ दिनोंमें होता है। इस महोत्सवमें देव लोग नदीश्वर द्वीप जाकर वहाँके अकृत्रिम जिनालयोंकी पूजा करते है।

[इ]

इज्या— १०.(४२) ३६३
श्रावकका एक कर्म

इन्द्रत्याग— १० (४२).३६३
गर्भान्वय क्रिया

इन्द्रोपपाद— १० (४२).३६३
गर्भान्वय क्रिया

[उ]

उत्तम पात्र— ८ १९ २९२
मुनि

उपनयन— १० (४२) ३६३
गर्भान्वय क्रिया

उपयोगित्व— १० (४२).३६३
दीक्षान्वय क्रिया

[क]

कनकावली—एकव्रत २ ५३ ७०

कल्पामर— १० ५० १७०
वैमानिक देव, ये सोलह स्वर्ग, नौ ग्रैवेयक, नौ अनुदिशो और पाँच अनुत्तर विमानो में रहते हैं। सोलहवें स्वर्ग तक के कल्प और उसके आगे के विमान कल्पातीत कहलाते है।

कान्तारचर्या— ३ ९ १०२
वन में आहार मिलेगा तो लेवेंगे अन्यथा नही, ऐसी प्रतिज्ञा।

काम— १० (४२) ३६४
दश शुद्धियो में एक शुद्धि

कुलचर्या— १० (४२) ३६३
गर्भान्वय क्रिया

केवलज्ञान— १ २.२
लोक-अलोक को जाननेवाला पूर्ण ज्ञान

केशवाप— १० (४२).३६३
गर्भान्वय क्रिया

कैवल्य— २ ४६.६७
केवलज्ञान कल्याणक

क्रिया— १० (४२) ३६४
दश शुद्धियो मे एक शुद्धि

[ग]

गन्धकुटी— १० (४६) ३६४
समवशरण का मध्य भाग जहाँ भगवान् जिनेन्द्र विराजमान रहते हैं।

गणग्रह— १० (४२) ३६३
दीक्षान्वय क्रिया

गणोपग्रहण— १० (४२) ३६३
गर्भान्वय क्रिया
गुरुपञ्चक— २ ६ ५१
अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, और साधु ये पाँच परमेष्ठी।
गुरुपूजोपलम्भन— १० (४२) ३६३
गर्भान्वय क्रिया
गुरुस्थानाभ्युपगम— १० (४२) ३६३
गर्भान्वय क्रिया
गृहत्याग— १०.(४२).३६३
गर्भान्वय क्रिया
गृहांग— ३ (४५) ११३
एक प्रकारके कल्पवृक्ष जिनसे इच्छानुकूल गृह प्राप्त होते हैं।
गृहीशित्व— १० (४२) ३६३
गर्भान्वय क्रिया

[च]

चक्रलाभ— १० (४२) ३६३
गर्भान्वय क्रिया
चक्राभिषेक— १० (४२) ३६३
गर्भान्वय क्रिया
चारित्र— ३ ३० ११६
सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानके होने पर हिंसादि पाँच पापोंसे विरत होना चारित्र कहलाता है।
चर्याशुद्धि— १० (४२) ३६४
तीन शुद्धियोमें एक शुद्धि
चारणर्द्धि— २ ५४ ७१
जिस ऋद्धिके प्रभावसे आकाशमें गमन होता है

[ज]

जघन्य पात्र— ८.१८ २९२
अविरत सम्यग्दृष्टि
जिनगुणरूपत्ति— २ ५४ ७१
एक व्रत
जिनरूपता— १० (४२) ३६३
गर्भान्वय क्रिया
जिनाधिपति— १.४३
जिनेन्द्र देव
जिनेन्द्रगुणसंपत्ति— २.२९.६१
एक उपवास व्रत
जीवादि पर्यन्त— ३.३१.११७
जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, सवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व हैं, इनके यथार्थ श्रद्धानको सम्यग्दर्शन कहा गया है।
ज्योतिरङ्ग— ३ (४५) ११३
एक प्रकारका कल्पवृक्ष जिससे स्वय प्रकाश प्रकट होता है।
ज्योतिष्क— ४.४९ १७०
एक प्रकारके देव, इनके सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और प्रकीर्णक तारे ये पाँच भेद है।

[त]

तप— १० (४२) ३६२
श्रावकका एक धर्म
तीर्थकरत्वभावना— १० (४२) ३६३
गर्भान्वय क्रिया
त्रिबोध किरण— ४ ३९ १६५
मति, श्रुत, अवधिज्ञानरूपी किरण
त्रिमूढता— ३ ३१ ११७
१ लोकमूढता, २ देवमूढता, ३ गुरुमूढता।
त्र्यरत्नि प्रमित— ३ ५० १३०
तीन हाथ प्रमाण

[द]

दण्ड— ८ (४१) २९६
धनुष, चार हाथका एक दण्ड या धनुष होता है।
दत्ति— १० (४२) ३६३
श्रावकका एक कर्म, दान
दर्शन— २ ३३.७५
सम्यग्दर्शन

दर्शनमोह— ३ २९ ११६

मोहनीयकर्मका एक भेद, इसके उदयसे मिथ्यादर्शन होता है। इसके तीन भेद हैं—१ मिथ्यात्व, २ सम्यग्मिथ्यात्व और ३ सम्यक्त्व प्रकृति।

दश सागरोपम— ३ (२१) १०४

असंख्यात वर्षोंका एक सागर होता है, ऐसे दश सागर प्रमाण।

दिक्कन्यका— ३ २७ १५९

रुचकगिरि पर रहनेवाली ५६ देवियाँ।

दिग्विजय— १०.(४२) ३६३

गर्भान्वय क्रिया

दिव्य देह— ३ ५०.१३०

वैक्रियिक शरीर

दीक्षाद्य— १० (४२) ३६३

गर्भान्वय क्रिया

दीपाङ्ग— ३.(४५) ११३

एक प्रकारके कल्पवृक्ष, जिनमे विविध प्रकारके दीपक प्राप्त होते हैं।

देवचर्या— १० (४२) ३६४

दीक्षान्वय क्रिया

देवता— १०.(४२) ३६४

दश शुद्धियोंमें एक शुद्धि

द्वादशकोष्ठक— ८.३४ ३०७

समवसरणकी १२ सभाएँ

[ध]

धर्म्यध्यान— ८ (३५) २९३

इसके चार भेद हैं—१ आज्ञाविचय, २ अपायविचय, ३ विपाकविचय, ४ संस्थानविचय। यह ध्यान चतुर्थसे लेकर सप्तम गुणस्थान तक होता है। वीरसेन स्वामीके मतसे दशम गुणस्थान तक।

धृति— १० (४२).३६३

गर्भान्वय क्रिया

ध्यानचतुष्टय— १ ६० ३०

रौद्रध्यान, आर्तध्यान, धर्म्यध्यान, और शुक्ल ध्यान।

[न]

नवकेवललब्धि— ८ (५२) ३०५

केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिकसम्यक्त्व, क्षायिकचारित्र, क्षायिकदान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य ये नव केवललब्धियाँ कहलाती हैं।

नवनिधि— ८ (५२).३०४

काल, महाकाल, नैसर्प, पाण्डुक, पद्म, पिंगल, माणव, शंख, सर्वरत्न ये नौ निधियाँ हैं।

नवपदार्थ— ८ (५२).३०५

जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष ये नौ पदार्थ हैं।

नामकर्म— १० (४२) ३६३

गर्भान्वय क्रिया

निषद्या— १०.(४२) ३६३

गर्भान्वय क्रिया

निःसंगत्वात्मभावना— १० (४२).३६३

गर्भान्वय क्रिया

[प]

पक्षशुद्धि— १० (४२) ३६४

तीन शुद्धियोंमें एक शुद्धि

पञ्चाश्चर्य— ३ १८ १०३

१ रत्नवृष्टि, २ पुष्पवृष्टि, ३ मन्दवायु, ४. दुन्दुभिनाद, ५. जयघोष अथवा अहोदान अहोदान की ध्वनि।

परमार्हन्त्य— १० (४२).३६३

कर्त्रन्वय क्रिया

परमौदारिक शरीर— ६.(२).२२२
मनुष्य और तिर्यंचोका शरीर औदारिक शरीर कहलाता है। श्रेष्ठताको प्राप्त औदारिक शरीर परमौदारिक शरीर कहलाता है। एक परमौदारिक शरीर तेरहवें, चौदहवें गुणस्थानवर्ती अरहन्त भगवान्‌का होता है, वह सप्त धातुओके विकारसे रहित होता है। उसमें बादर निगोद जीव नहीं रहते।

परिनिष्क्रमण— १० (४२) ३६३
गर्भान्वय क्रिया

परमनिर्वाण— १० (४२) ३६३
कर्त्रन्वय क्रिया

पल्य— १ (९८) ४४
असख्यात वर्षका एक पल्य होता है।

पात्रत्व— १०.(४२) ३६३
दश अधिकारोमें एक अधिकार

पारिव्रज्य— १०.(४२).३६३
कर्त्रन्वय क्रिया

पुण्ययज्ञ— १० (४२) ३६३
दीक्षान्वय क्रिया

पुरावृत्त— १०.(४२) ३६४
दश शुद्धियोंमें एक शुद्धि

पुरुषार्थ चतुष्टय— ८.(४१) २९७
धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष।

पूजाराध्य— १०.(४३) ३६३
दीक्षान्वय क्रिया

पूर्व— ६ (२).२२३
चौरासी लाखमें चौरासी लाखका गुणा करने पर जो लब्ध हो उतने वर्षोका एक पूर्वांग होता है, और चौरासी लाख पूर्वांगोका एक पूर्व होता है।

पृथक्त्व— १ (९८).४४
तीनसे लेकर नौसे नीचेकी सख्या पृथक्त्व कहलाती है।

प्रत्यय— ३.३२.११७
सम्यग्दर्शनकी एक पर्याय

प्रवीचार— ३.५०.१३०
मैथुन

प्रजासम्बन्धान्तर स्वरूप— १०.(४२).३६३
दश अधिकारोमें एक अधिकार

प्रबोध— ३.३०.११६
सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन होनेपर जीवादि सात तत्त्वोका जो यथार्थ ज्ञान होता है वह सम्यग्ज्ञान कहलाता है।

प्रशम— ३.३२ ११७
सम्यग्दर्शनका एक गुण, कपायके असख्यात लोकप्रमाण अवान्तर स्थानोमें मनका स्वभावसे शिथिल हो जाना।

प्रशान्ति— १० (४२) ३६३
गर्भान्वय क्रिया

प्रियोद्भव— १०.(४२) ३६३
गर्भान्वय क्रिया

प्रीति— १०.(४२).३६३
गर्भान्वय क्रिया

[ब]

बन्ध— १ ४ ३
आत्मा आदि कर्म प्रदेशोके एक क्षेत्रावगाहको बन्ध कहते हैं। इसके प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश ये चार भेद हैं।

बहिर्यान— १०.(४२).३६३
गर्भान्वय क्रिया

[भ]

भवनामर— ४ ४७ १७०
एक प्रकारके देव, जो भवनवासी नामसे प्रसिद्ध हैं। इनके असुरकुमार आदि दश भेद होते हैं।

भव्य— १.३ ३
सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्‌चारित्र को प्राप्त करने की योग्यता रखने वाले जीव।

भाजनाङ्ग— ३ (४५) ११३
एक प्रकारके कल्प वृक्ष जिनसे तरह-तरहके बर्तन प्राप्त होते हैं।

भूषणाङ्ग— ३.(४५).११३
एक प्रकारका कल्पवृक्ष जिससे मनचाहे आभूषण प्राप्त होते हैं।

भोजनाङ्ग— ३ (४५) ११३
एक प्रकारके कल्पवृक्ष जिनसे तरह तरहके भोजन प्राप्त होते हैं।

[म]

मध्यमपात्र— ८.१९ २९२
श्रावक

मन्त्र— १० (४२) ३६४
दश शुद्धियोमें एक शुद्धि

मन्दराभिषेक— १० (४२) ३६३
गर्भान्वय क्रिया

मद्याङ्ग— ३ (४५) ११२
मद्याङ्ग जातिके कल्पवृक्ष, जिनसे पौष्टिक पेय प्राप्त होता है।

मानस्तम्भचतुष्टय— ८.(४१) २९८
समवसरण—तीर्थंकरकी धर्मसभाकी चारो दिशाओमें स्थित रत्नमय स्तम्भ। इन्हें देखनेसे मानियोका मान नष्ट हो जाता है इसलिए ये मानस्तम्भ कहलाते है।

मानार्हत्व— १० (४२) ३६३
दश अधिकारो में एक अधिकार

माल्याङ्ग— ३ (४५) ११३
एक प्रकार का कल्पवृक्ष जिससे विविध प्रकार की मालाएँ प्राप्त होती हैं।

मुक्तावली— २ ५१ ६९
एक व्रत

मेषश्रृङ्गसम अप्रत्याख्यान माया— ३ (३५) १०८
माया कषाय के चार भेद है, १. वेणुमूल सम, २ मेषश्रृङ्गसम, ३ गोमूत्रसम, ४ क्षुरप्रसम–खुरपी के समान। यह चार प्रकार की माया क्रम से नरकादि आयु के बन्ध का कारण है।

मोक्षमार्ग— ३ (८७) १२७
'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग' सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी एकता मोक्षका मार्ग है।

मोद— १० ४२ ३६३
गर्भान्वय क्रिया

मोह— १ ४४
आठ कर्मो में प्रधान कर्म

मौनाध्ययन वृत्ति— १० (४२) ३६३
गर्भान्वय क्रिया

[य]

योगत्याग— १० (४२) ३६३
गर्भान्वय क्रिया

योगसन्मह— १० (४२).३६३
गर्भान्वय क्रिया

योग निर्वाण संप्राप्ति— १०.(४२) ३६३
गर्भान्वय क्रिया

योजन— ८ (४१) २९६
चार कोश का एक योजन होता है।

यौवराज्य— १०.(४२).३६३
गर्भान्वय क्रिया

[र]

रत्नत्रय— १ ५४
सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र।

रत्नावली— २ (५२) ७०
एक व्रत

रुचि— ३ (३२) ११७
सम्यग्दर्शन की पर्याय

[ल]

लक्षण— ६ (२).२२२
सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार शरीर में पाये जाने वाले शुभचिह्न। जिनेन्द्र के शरीर में १००८ लक्षण

होते हैं जिनमें स्वस्तिक आदि १०८ लक्षण कहलाते हैं और मसूरिका आदि ९०० व्यञ्जन कहलाते हैं।

लिंग— १० (४२) ३६४
दश शुद्धियो में एक शुद्धि

लिपि संख्यान— १० (४२) ३६३
गर्भान्वय क्रिया

[व]

वज्रवृषभनाराच सहनन— ६ (२) २२२
अत्यन्त सुदृढ हड्डियो वाला शरीर

वर्णलाभ— १० (४२) ३६३
गर्भान्वय क्रिया

वर्णोत्तमत्व— १०.(४२) ३६३
दश अधिकारोमें एक अधिकार

वस्त्राङ्ग— ३ (४५) ११३
एक प्रकारके कल्पवृक्ष जिनसे इच्छानुसार वस्त्र प्राप्त होते हैं।

वार्ता— १० (४२) ३६३
श्रावकका एक कर्तव्य

विधिदान १० (४२) ३६३
गर्भान्वय क्रिया

विद्याकुलावधि— १० (४२) ३६३
दश अधिकारोमें एक अधिकार

वसुधाभेद सनिभ अप्रत्याख्यान क्रोध— ३ (३३) १०७
क्रोधके चार भेद हैं—१ शिला भेद, २ पृथिवी भेद, ३ धूलि भेद, ४ जलरेखा भेद, यह चार प्रकारका क्रोध क्रमसे नरक, तिर्यंच मनुष्य और देव आयुके बन्धका कारण है।

विषय— १०.(४२) ३६४
दश शुद्धियोमें एक शुद्धि

विष्वाण— ३ ५० १३०
आहार

विहार— १० (४२) ३६३
गर्भान्वय क्रिया

व्रतचर्या— १० (४२).३६३
गर्भान्वय क्रिया

वृत्तलाभ— १० (४२) ३६३
दीक्षान्वय क्रिया

व्रतावतरण— १० (४२) ३६३
गर्भान्वय क्रिया

व्यञ्जन— ६ (२) २२२
भगवान्के शरीरमें पाये जानेवाले मसूरिका आदि ९०० चिह्न व्यञ्जन कहलाते हैं

व्यन्तर— ४ ४८ १७०
एक प्रकारके देव, इनके किन्नर, किंपुरुष आदि आठ भेद होते हैं

व्यवहारेशित्व— १० (४२) ३६३
दश अधिकारोमें एक अधिकार

व्युष्टि— १० (४२) ३६३
गर्भान्वय क्रिया

[श]

शुक्लध्यान— ८ (३५) २९३
इसके चार भेद हैं—१ पृथक्त्व वितर्क, २ एकत्ववितर्क, ३ सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाती और ४ व्युपरत क्रिया निवर्ति। यह आठवेंसे चौदहवें गुणस्थान तक होता है। वीरसेनाचार्यके मतसे ११वें से १४वें तक

श्रद्धा— ३ (३२) ११७
सम्यग्दर्शनकी एक पर्याय

श्रुतज्ञान— २ ३४ ६२
एक व्रत

श्रुतज्ञान— २ ५४ ७१
एक व्रत

श्रुतस्कन्ध १ ७४
द्वादशाग रूप वृक्ष

श्रुति— १०-(४२) ३६४
दश शुद्धियोमें एक शुद्धि

[ष]

षोडशस्वप्न— ३.२२ १५५
१ गज, २ वृषभ, ३. सिंह, ४ सुरगजोके द्वारा अभिषिच्यमान लक्ष्मी, ५ माला युगल, ६. चन्द्र-मण्डल, ७. सूर्यमण्डल, ८. सुवर्ण कलशयुगल, ९ मीन युगल, १० सरोवर, ११ समुद्र, १२. सिंहासन, १३ देवभवन, १४. फणीन्द्र-भवन, १५. रत्नराशि और १६ निर्धूम अग्नि।

[स]

सज्जाति— १० (४२) ३६३
कर्त्रन्वय क्रिया

सद्गृहित्व— १० (४२) ३६३
कर्मन्त्रय क्रिया

समचतुरस्रसंस्थान— ६ (२) २२२
सुडौल सुन्दर शरीरका आकार

सम्यग्दर्शनके आठ गुण— ३ (६०) ११७
सम्यग्दर्शनके निम्न आठ गुण हैं, इन्हे अग भी कहते हैं—१ निश-कित, २ नि काक्षित, ३ निवि-चिकित्सित ४ अमूढदृष्टित्व, ५ उप-गूहन, ६ स्थितीकरण, ७ वात्सल्य, और ८ प्रभावना।

सर्वतोभद्र— २ ५० ६९
एक व्रत

सल्लेखना— १ (८२) ३८
समाधिमरण, प्रतिकाररहित उप-सर्ग, दुर्भिक्ष तथा मरण आदिका अवसर आनेपर धर्मकी रक्षाके लिए समताभावसे प्राण छोडना समाधि-मरण या सल्लेखना कहलाता है। इसके भक्तप्रत्याख्यान, इगिनीमरण और प्रायोपगमनके भेदसे तीन भेद होते है।

सग्रह— १० (४२) ३६३
गर्भान्वय क्रिया

संवेग— ३ १२ ११७
सम्यग्दर्शनका एक गुण, ससारसे भय अथवा धर्म और धर्मात्माओमे स्नेह।

संयम— १० (४२).३६३
श्रावकका एक धर्म

साधनशुद्धि— १०.(४२) ३६४
तीन शुद्धियोमे एक शुद्धि

साम्राज्य— १० (४२) ३६३
कर्त्रन्वय क्रिया

साम्राज्य— १० (४२) ३६३
गर्भान्वय क्रिया

सिंहनिष्क्रीडित— २ ५०.६९
एक व्रत

सुरेन्द्रत्व— १० (८२) ३६३
कर्त्रन्वय क्रिया

सुखोदय— १० (४२) ३६३
गर्भान्विय क्रिया

सुप्रीति— १० (४२) ३६३
गर्भान्विय क्रिया

सूष्टचधिकार— १० (४२) ३६३
दश अधिकारोमे एक अधिकार

स्थानलाभ— १० (४२) ३६३
दीक्षान्वय क्रिया

स्पर्श— ३ ३२ ११७
सम्यग्दर्शन पर्याय

स्मृति— १० (४२) ३६४
दश शुद्धियोमे एक शुद्धि

स्याद्वाद— १ ६ ४
पदार्थमें रहनेवाले नित्य, अनित्य आदि धर्मोको विवक्षावश गौण और मुख्य करते हुए कथन करना।

स्वगुरुस्थानसक्रान्ति— १० (४२) ३६३
गर्भान्विय क्रिया

स्वराज्य— १० (४२) ३६३
गर्भान्विय क्रिया

स्वाध्याय— १० (४२) ३६३
श्रावकका एक कर्म

[ह]

हिरण्योत्कृष्टजन्मता— १० (४२) ३६३
गर्भान्विय क्रिया

४ पुरुदेवचम्पूप्रबन्धस्य भौगोलिकशब्दानुक्रमणिका

[शब्दोंके आगे दिये हुए तीन अकोमें पहला अक स्तवक, दूसरा अक श्लोक या गद्य तथा तीसरा अक पृष्ठका है। दूसरे अकमें कोष्ठक वाला अक गद्यका है जो कि साधारण सख्याके अनुसार है।]

[म]

[र]



५. पुरुदेवचम्पूप्रबन्धस्य व्यक्तिवाचकशब्दानुक्रमणी

[शब्दोके आगे दिये हुए तीन अकोमें पहला अक स्तबक, दूसरा अक श्लोक तथा गद्य और तीसरा अक पृष्ठका है। दूसरे अकमें कोष्ठकवाला अक गद्यका है जो कि साधारण सख्याके अनुसार है।]

पुरुनन्दन– ६ ३४ २४२
भगवान् वृषभदेवका पुत्र

पुरुपरमेश्वर– ७ (५२) २४२
भगवान् वृषभदेव

पुरुहूत– ५ (४९) २१३
इन्द्र

प्रजापति– ७ (१२) २६८
भगवान् वृषभदेव

प्रभंजन– ३ (२७) १०६
एक देव, वज्रजंघके पुरोहितका जीव

प्रभंजन– ३ (८६) १२७
प्रशान्तमदनका पिता

प्रभाकर– ३ (२७) १०६
एक देव, वज्रजघके सेनापतिका जीव

प्रभावती– २ (५१) ६९
गन्धर्वपुरके राजा वासवकी रानी

प्रियदत्ता– ३ (८६) १२७
शार्दूलार्यके जीव वरदत्तकी माता

प्रहसित– २ (५९) ७३
अमृतमति मन्त्रीका पुत्र

प्रियव्रता ८ (७२) ३१८
एक श्राविका

प्रियसेन– ३ (५३) ११५
पुण्डरीकिणी नगरीका राजा, प्रीतिंकरका पिता

प्रीतिंकर– ३ (५३).११५
एक मुनि, स्वयवुद्धमन्त्री और मणिचूलदेवका जीव

प्रीतिदेव– ३ (५४) ११६
एक मुनि, स्वयंबुद्धके जीव प्रीतिंकर-के भाई

प्रीतिवर्धन– ३ (२२).१०४
एक राजा

पौलोमी– ४ ५९ १७६
सौधर्मेन्द्रकी इन्द्राणी

[ब]

बलाराति– ५ २४ २११
इन्द्र

बाहुबली– ६ (६८) २४७
भगवान् वृषभदेवकी सुनन्दा रानी का पुत्र

ब्राह्मी– ६ ४० २४६
भगवान् वृषभदेवकी पुत्री

[भ]

भरत– ६ (४७) २४१
भगवान् वृषभदेवका यशस्वती रानीसे उत्पन्न पुत्र

भुजबली– ७ ३४ २७३
बाहुबली

[म]

मघवा– ७ (२७) २६७
राजा काश्यपका नामान्तर

मणिकुण्डली– ३ (६४) ११९
एक देव, सूकरार्यका जीव

मणिचूल– ३ (५३) ११५
स्वयंबुद्ध मन्त्रीका जीव, एक देव

मणिमाली– १ (५०) २६
दण्ड विद्याधरका पुत्र

मतिवर– ३ (१२) १०१
वज्रजघका महामन्त्री

मतिसागर– २ (५९) ७३
एक मुनि

मदनकान्ता– २ (२५) ६०
नागदत्त और सुदत्तीकी पुत्री

मनोगति– ३ (१२) १०१
वज्रजघका एक दूत

मनोरमा– ३ ८० १२५
अभयघोप चक्रीकी पुत्री, सुविधिकी स्त्री

मनोरमा– २ (४९) ६८
रत्नसंचयके राजा श्रीधरकी स्त्री

मनोरथ– ३ (८६) १२७
नकुलार्यका जीव

मनोहर– ३ (६४) ११९
एक देव, नकुलार्यका जीव

लोकपाल— ४ (७८) १७३
देवोका एक भेद

लोकेश्वर— ७ २ २५४
भगवान् वृषभदेव

लोलुप— ३ (३६) १०८
सुप्रतिष्ठितपुरका एक हलवाई, नकुलका पूर्वभव

[व]

वज्रजंघ— २ २ ४९
ललितागदेवका जीव, भगवान् वृषभदेवका एक पूर्वभव

वज्रदन्त— २.५ ५१
पुण्डरीकिणी नगरीका राजा, श्रीमतीका पिता

वज्रदन्त— ३ (११२) १३५
वज्रनाभि चक्रवर्तीका पुत्र

वज्रधर— ५ (४१) २११
इन्द्र

वज्रनाभि— ३.(९६) १३१
अच्युतेन्द्रका जीव, भगवान् वृषभदेवका पूर्वभव

वज्रबाहु— २ २ ४९
उत्पलखेट नगरीके राजा वज्रजघके पिता

वज्रसेन— ३ (९६) १३१
वज्रनाभि चक्रवर्तीका पिता

वरदत्त— ३ (८६) १२७
शार्दूलार्य तथा चित्रागदका जीव

वरवीर— ६.(६३) २४६
भगवान् वृषभदेवका पुत्र

वरसेन— २.(२५) ६०
नागदत्त और सुदत्तीका पुत्र

वरसेन— ३.(८६) १२७
मणिकुण्डलीका जीव

वसन्तसेना— ३ (३४) १०८
विजयपुरके राजा महानन्दकी स्त्री

वसुन्धरा— २ (६०) ७४
प्रभाकरपुरीके राजा महासेनकी स्त्री

वसुन्धरा— २ २ ४९
उत्पलखेट नगरीके राजा वज्रबाहुकी रानी, वज्रजघकी माता

वसुन्धरा— २ (६५) ७६
वज्रदन्त चक्रवर्तीकी माता

वसुमती— २ (६०) ७४
राजा अजितजय की स्त्री

वासव— २ (५१) ६९
गन्धर्वपुरका राजा एक विद्याधर

वासव— ४ ६३ १७८
सौधर्मेन्द्र

विकसित— २ (५९) ७३
अमृतमति मन्त्रीके पुत्र प्रहसितका मित्र

विजय— ३ ५३ १३१
शार्दूलार्यका जीव

विजया— १ ३६ २४
राजा अरविन्दकी स्त्री

विजयार्ध— ९ २१ ३३७
विजयार्ध पर्वतका एक अधिष्ठाता व्यन्तरदेव

विद्युल्लता— १ (९६) ४३
ललितागकी स्त्री

विनयंधर— २ (५१) ७०
एक केवली

विनमि— ८ (१०) २८४
राजा महाकच्छका पुत्र

विभीषण— ३ (८६) १२७
शार्दूलार्यके जीव, वरदत्तके पिता

विभीषण— २ (४९) ६८
रत्नसंचयके राजा श्रीधर और मनोरमा रानीका पुत्र नारायण

विमलवाहन— ३ (८७) १२७
एक तीर्थंकर

वीर— ३.(९) ९७
वज्रजंघ और श्रीमतीका पुत्र

वीर— ६ (६३) २४६
भगवान् वृषभदेवका पुत्र

वृषभ— १ १ १
प्रथम तीर्थंकर, [illegible]

६ पुरुदेवचम्पूप्रबन्धान्तर्गत कतिपय विशिष्ट शब्दानुक्रमणी

[यहाँ तीन अकोंमें प्रथम अक स्तवक, दूसरा अक श्लोक अथवा गद्य और तीसरा अक पृष्ठोका सूचक है। दूसरे अकमें कोष्ठकगत अक गद्यका सूचक है जो कि साधारण अक सख्यासे गृहीत है।]

[अ]

अगाभिख्या ४ (७८) १७२
पर्वतकी शोभा

अगद– १ (३३).१९
बाजूबन्द

अग्रमहिषी– २ (१६) ५६
पट्टरानी

अचल– ५ (४१) २११
पर्वत

अचला– ५ (४१) २११
पृथिवी

अच्युतामर्त्येन्द्र– ३ (१०९) १३४
अच्युतस्वर्गका इन्द्र, अकारसे रहित अमर्त्येन्द्र–मर्त्येन्द्र–मनुष्योका राजा

अतनु– १ (२६) १५
कामदेव

अतिप्रचण्ड– १ (४५) २४
अत्यन्त तेजस्वी

अतिवृद्ध– ५ (८) १९३
अत्यन्त बूढ़ा, अत्यन्त बढा हुआ

अदभ्र– ६ (५२) २४३
अकृश

अदेवमातृक– ७ (१२) २५७
मेघवृष्टिपर निर्भर नही रहनेवाले देश

अधरप्रवाल– १.७४
ओष्ठरूपी किसलयसे सहित

अधिकारुण्य– ७ (३) २५३
अधिक दयालुता, अधिक लालिमा

अनघ– १ ७४
निर्दोष

अनवम– ६ (३८).२३६
नवम नही, अवम-हीन नही

अनाग– ४ (७८) १७२
हाथीसे भिन्न, अपराधसे रहित

अनिमेष– १ ७३ ४६
देव, मत्स्य

अनीति– ७ २१.२६९
नीतिसे रहित, ईतियोंसे रहित

अनुकलम्– २ ९ ५५
प्रत्येक समय

अनूप– ७ (१२) २५७
अत्यधिक जलवाले देश

अन्तर्वत्नी– ६ २३ २३४
गर्भवती

अन्तरिक्षाकूपार– १ (१३) ७
आकाशरूपी समुद्र

अन्तरीय– ६ (४५) २४०
वस्त्र

अपरागता– २ ६२ ९२
परागसे भिन्नता, वीतरागता

अपागसुन्दर– २ ३७ ७६
अनग कामके समान सुन्दर, कटाक्षसे सुन्दर

अपापा– ८ २५ २९९
पापरहित, अप + आप जलके समूहसे रहित

अबलाढ्य– १ ३४ २२
अबला–स्त्रियोंसे सहित, अबलो–निर्बलोंसे सहित

अब्ज– ४ २५ १५६
चन्द्रमा (पु) शख (पु) कमल (नपु)

अभिजात— ४ (८४).१७६
सुन्दर
अभिषेणन— ३ (५१) ३४५
सेनाकी चढाई
अमरवधूटी— १ (९१).४१
देवागना
अमरतरुसुमामोदिनी— २ १ ४९
कल्पवृक्षके फूलोकी गन्धसे युक्त
अमरधराधर— १ (१३) ७
सुमेरुपर्वत
अमराली— १ (६४) ३२
देवपक्ति
अमर्त्यपति— १ (४३) २३
इन्द्र
अमानवचरित्र— ४ ३५ १६२
लोकोत्तरचरित्र, अमावस्याका चरित्र
अमृतनिष्ठ— ३ ३२ १६१
अमृतभोजी-देव
अमृतप्रद— ५ (५५) २१५
मोक्षदायक, जलदायक
अमृतराशि— ५ (८) १९३
अमृतका समुद्र, जलकी राशि
अमृताशन— ९ २५ ३३९
देव
अमृतान्धोजन— ५ (४) १८९
देवसमूह
अम्बर— १ (३३) १९
आकाश, वस्त्र
अम्बरमणि— २ ४३ ७९
सूर्य
अम्बरचारी— ३ ९ १०२
आकाशमें चलनेवाले चारण ऋद्धि-धारी मुनि
अम्बुजबान्धव— १ १९ १३
सूर्य
अम्बुजरागरत्न— १ १५ १०
पद्मरागमणि
अयस्कान्त— १ ३१ २१
चुम्बकमणि
अरत्नि— ३.५०.१३०
हाथ
अरविन्दधान— १.(१३) ८
कमलोको धारण करनेवाला
अरालकेशी— २.(२१) ६४
घुँघराले बालोवाली स्त्री
अरिष्टगेह— ४ ५८ १७५
प्रसूतिगृह
अरुणबिम्ब— ४ ३४ १६२
लालबिम्ब, सूर्यबिम्ब
अर्चासनाथ— ८.(५२) ३०५
प्रतिमाओसे सहित
अलकाभिख्या— १ १७ १२
'अलका' यह नाम, अलक—केशोकी शोभा
अवन— १ (१३) ८
रक्षक
अवधिज्ञानतरणि— १० ३३ ३६५
अवधिज्ञान रूपी सूर्य
अवनीपकजन २.(१९) ५७
राजाओका समूह
अश्वीय— ९ (४८) ३४४
घोडोका समूह
असमबाण— १ ३०.२१
काम
असिधेनुका— १ ४८.२६
छुरी
असुभृत्कदम्ब— १ (३१) १७
प्राणिसमूह

[आ]

आचाम्लवर्धन २ (५९) ७३
एक व्रत
आदितेय— ९ (३९) ३३९
देव
आधियुता— २ २५ ६६
मानसिक पीडासे युक्त
आन्तर— ५ २१.२०८
हार्दिक

आभुग्न— १ (८५) ३९
झुका हुआ

आरभटी— ५ (३९) २१०
नाटककी एक वृत्ति

आस्थान— ८ ४६ ३१८
समवसरण

आहिततनु— ३ २० ११०
शरीरको धारण करनेवाला

[इ]

इन्दिन्दिर— २ (७७) ८०
भ्रमर

ईर्याशुद्धि— २ (१०५) ९२
मार्ग सम्बन्धी शुद्धि

[उ]

उच्चकरेणु— ३ १ ९७
ऊँचे हाथी, ऊँची उडनेवाली धूलि

उच्चकोरकसनिभ— १ ७१ ४५
उत्कृष्ट चकोर पक्षीके समान, उन्नत कोरक—कमलकी बोडीके समान

उत्तमश्री ४ (५८) १६५
उत्कृष्ट लक्ष्मी, उठते हुए अन्धकार-की शोभा

उदन्त— १ (३१) १८
वृत्तान्त

उद्दण्डकाण्ड— ५ (६) १९१
ऊपरकी ओर छलकता हुआ पानी, लम्बे बाण,

उपघ्नदण्ड— ६ (७४) २४९
आश्रयदण्ड

उपत्यका— १ (१३) ९
पर्वतके नीचेका मैदान

उल्लसद्धार— २ (१०) ५३
जिनपर हार सुशोभित है, जिनकी धारा सुशोभित है।

उरु— ६ (१३) २२७
विशाल

ऊरु— ६ (१३) २२७
जाघ

[ए]

एकावलीतरलमणि— ४ (९५) १८०
एक लडके हारके नीचे लगा हुआ बडा मध्यमणि

ऐरावण ४ (९१) १७८
देवोका हाथी। यह हाथी विक्रियासे ३२ मुख बनाता है, प्रत्येक मुखमें ८-८ दाँत होते हैं, प्रत्येक दाँतपर सरोवर बनाता है, प्रत्येक सरोवरमें ३२-३२ पखुडियोवाला कमल बनाता है और प्रत्येक पाँखुडीपर देवागनाओका नृत्य दिखाता है।

[क]

ककण— २ (३५) ६३
जलके कण, हाथका कडा

कंचुक— ४ (५४) १६४
स्तनवस्त्र

कचुकी— ३ (१५) १०२
अन्त पुरका वृद्ध पहरेदार, साँप

कण्ठीरवकण्ठरव— ४ (४९) १७०
सिंहके कण्ठका शब्द

कथारसंज्ञा— १.९५
कथाके रसको जाननेवाली

कनकयन्त्रधर २ (९) ९३
सोनेकी पिचकारीको धारण करने-वाला

कनकशिखरी— १ (४५) ३३
सुमेरुपर्वत

कनकाचल २ (७७) ८०
सुमेरुपर्वत

कनकावली २.(५३) ७०
एक तप

कनीयान् १ ५४ ३५
छोटा

कन्तुक— ४ (५४) १६४
काम

कबन्ध— ५ (६) १९१
पानी, शिररहित धड

कमलबन्धु– ६(३०) २३२
सूर्य
कमलसहचर– ६.(२७) २३३
कमलके समान, कमलोका मित्र
कमलाधिकपरिपोष– ६ (३८) २३७
कमलोका अधिक पोषण, कमला–
लक्ष्मीका अधिक पोषण करनेवाला
करकाशंका– ५ (१९) १९९
ओलोकी शंका
करभ– ६ (१३) २२७
कलाईसे लेकर छिगुरी तक हाथकी
बाह्य कोर
करुणावरुणालय– ९ (३७)३३९
दयाके सागर
करेणु– ४ ५५ १७३
हाथी
कर्णप्रणय– १ (२६) १५
राजा कर्णका स्नेह, कान तक लम्बे
कलकण्ठ– ३ (४२) १११
कोयल
कलभकर– ६ (१३).२२७
हाथीके बच्चेकी सूँड
कलशतटिनीविट– ७ (५७) २७८
क्षीरसमुद्र
कलापिकलाप– ९ (४) ३२३
मयूरसमूह
कलितमहातपस्थिति– ६ (५) २२४
बहुत भारी धूपमे स्थित, बहुत
कठिन तप करनेवाला
कल्प– २ (१) ४८
स्वर्ग
कल्पद्रु १ ११
कल्पवृक्ष
कल्पपादपवार ३.(४५) ११३
कल्पवृक्षोका समूह
कल्पभूज १ (८२) ३७
कल्पवृक्ष
कल्पेश्वर– ५ ६ १९४
स्वर्गके इन्द्र

कल्याणगुण– ७.(१९) २६१
स्वर्णकी लडीवाला वस्त्र
कल्याणांचित– ४ (१०१).१८२
सुवर्णसे शोभित, गर्भादि पाँच
कल्याणोसे शोभित
कल्याणाद्रि– १ ४७.३१
सुमेरु पर्वत
कल्लोल– १ (१७) ११
सन्तति
कवरी– २ ६८ ९५
स्त्रीकी चोटी
कांचनाचलसनिभ– २ ४२ ७९
सुमेरुके समान
कांचीकलाप– २ (७७) ८०
मेखला
काण्डवस्त्र– १.१४ १०
कमरका वस्त्र–लँहगा
कान्तारागाचित– ५ (८).१९३
स्त्रियोके रागसे सहित, कान्तार +
अग – वनके वृक्षोंसे सहित
कान्दविक– ३ (३६) १०८
हलवाई
कादम्बिनी– ९ (२८) ३३६
मेघमाला
कालारि– ४ (६०) १६६
समयका शत्रु,यम—मृत्युको जीतने-
वाला
काश्यपी– ५ (४१) २११
पृथिवी
काष्ठा– ८ (११) २८८
सीमा
कीर्ति– ५ (१५) १९७
यश, वर्षा
कीलाल– ४.(४१) १६०
रुधिर, जल
कुञ्जरारातिकिशोर– ६ (३६) २३६
सिंह शिशु
कुमुदिनीकान्त– १ (३१) १८
चन्द्रमा

कुलिशधर– ५ (३५) २०८
इन्द्र
कुवलय– ४ (२३) १५१
नीलकमल, महीमण्डल
कुवलयानन्द– ४ (७८).१७२
पृथिवीमण्डलका आनन्द, नील-कमलका विकास
कुशलिमकर– ६.३७ २४५
कुशलताको करनेवाला, कुशल-सहित–मकरोंसे युक्त
कुशेशयनिकर– ६ (५).२२४
कमलसमूह, तपस्विसमूह
कृतमाल– २ (२१) ५८
चिरालका वृक्ष
कृत्रिम क्षतज– १ (४८) २६
वनावटी खून
केशव– २ (४९) ६८
नारायण
केसर– २ (२१) ५८
वकुल वृक्ष
कौमुदी– ५ (१२) १९५
चाँदनी
क्षणदाक्षय– १,७६ ३६
रात्रिका अन्तिम भाग
क्षमाधर– १ (२६) १५
पर्वत, क्षमागुणके धारक
क्षामता– २ (३४) ६२
कृशता
क्षोणीकल्पतरु– ६ १.२२२
पृथिवीके कल्पवृक्ष
क्ष्माप– १ १८ १३
राजा

[ख]

खण्डप्रपात– ९ (५७) ३४७
विजयार्ध पर्वतकी एक गुफा
खरांशुकान्त– २ (१९) ५७
सूर्यके समान सुन्दर
खलता– १० ९ ३५२
दुष्टता
खलतामिव– १० ९ ३५२
अमरवेलके समान
खेचरकुम्भिनीपति– १.(४८).२५
विद्याधरोंका राजा

[ग]

गणधर– १ ६ ४
तीर्थंकरके प्रमुख श्रोता, अनेक मुनिगणोके नायक
गन्धवहस्तनन्धय– ५ (३०).२०६
मन्द वायु
गाङ्गेयकुम्भ– ५ ३.१९०
सुवर्ण कलश
गिरीश– ४.(१०१).१८२
गिरि + ईश = पर्वतोका राजा,
गिर् + ईश = वाणीका स्वामी
गुण– २.५ ५१
सम्यग्दर्शनादि गुण, धनुषकी डोरी
गृहमेधी– २ (४८) ६७
गृहस्थ
गोत्रातिशय– ५ (८) १९३
पर्वतोको डुबानेवाला, उच्चगोत्र-वाला
गोत्राहित– ७.११ २५८
इन्द्र
गोधिका– १ (४८) २६
छिपकुली
ग्रामकूट– २ (२७).६०
ग्रामका स्वामी
ग्रामसिंह– ६ ४६.२४९
कुत्ता

[घ]

घनकीलाल– ५,(६) १९१
अत्यधिक पानी, अत्यधिक रक्त
घनपुष्प– ५ (४) १९०
जल, अत्यधिक पुष्प
घनपुष्पवृष्टि– ५ (१५) १९७
अधिक पुष्पवर्षा, जलवृष्टि

घनतानघ– ४ (५४) १६४
घन–कांस्य आदि बाजेकी तानका घ–शब्द

घनश्री– ६ ९ २२६
अधिक लक्ष्मी, मेघकी शोभा

घनसार– २.८ ५५
कपूर

घनाघसंघ– ५ (३७).२०८
बहुत भारी पापोंका समूह

घृणि– १ (९१) ४१
किरण

घृणिपूर– ६.(२२).२३७
किरणसमूह

[च]

चक्रशोभा– ६ (३३) २३४
चक्रवाकपक्षीके समान शोभा, चक्ररत्नकी शोभा

चक्राङ्गना– १ १५ १०
चकवी

चक्रिप्राच्यक्षितिभृत्– १० ३३ ३६५
चक्रवर्तीरूपी पूर्वाचल

चञ्चत्– ५ १२ २०१
शोभमान

चञ्चरीकसंचय– १ (१७) ११
भ्रमरसमूह

चञ्चलानन्द– ५ (१५).१९७
बिजलीकी कौंध, क्षणभंगुर आनन्द

चण्डभानु– १.५०.२६
सूर्य

चतुर्णिकायत्रिदश– ४ ५४ २७२
भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक ये चार प्रकारके देव

चन्द्र– २ (३५) ६३
चन्द्रमा, कपूर

चन्द्रहास– २ ४०.७९
तलवार

चन्दनरसासव– २.(१०९).९२
चन्दनका नि[illegible]

चमरजात– ३ (१५) १०२
चमरीमृगोंका समूह, चमर

चरमाङ्ग– ६ (३०) २३३
उसी भवसे मोक्ष प्राप्त करनेवाला

चलाचल– १ (५२) २८
अत्यन्त चंचल

चारणचरितविदित– २ (२६) ६०
चारणऋद्धि धारक मुनियोंके गमनसे प्रसिद्ध

चित्रकेतना– ९ ३८.३४७
नाना पताकाओंसे युक्त

चित्तभू– ६ (५५) २४४
कामदेव

चिरत्न– २ (९५).८६
प्राचीन

चिरत्नरत्न– ४ (६६).१६९
प्राचीन रत्न

[ज]

जगद्गुरु– ५ ५ १९४
जिनेन्द्र

जगड्डामरकारी– ४ ७.१४३
जगद्विजयी

जघायुग– ६ १० २२७
पिंडरियोंका युगल

जंघालता १ (२६) १४
जघारूपी लता, शीघ्रगामिता

जलभृद्रुचि– २ (९८) ८७
मेघके समान कान्ति, मूर्खोंमें रुचि

जलजरुचि– ९.२२ ३२७
कमलके समान कान्ति, मूर्खोंमें उत्पन्न होनेवाली इच्छा

जम्भारिमणि– २ (४१) ६५
इन्द्रनीलमणि

जम्भा[illegible]न ५ (१) १८८
इन्द्र

जाङ्गल– ७ (१२) २४७
जलरहित देश

जातकर्म– ९.१ ३२१
जन्मसंस्कार

जातकर्मोत्सव— ५ २०.२०७
जन्मसस्कारका उत्सव

जामी— ६ १५ २२९
वहिन

जितासमशर— ६ ४८.२५०
कामदेवको जीतनेवाले

जिनगुणसपत्ति— २ (३०) ६१
एक तप

जिनचन्दिर— १ (८२) ३७
जिनेन्द्ररूपी चन्द्रमा

जिनचण्डदीधिति— ४ ४२ १६७
जिनसूर्य

जिनपोत— ४.६३,१७८
जिनवालक

जीवजीवप्रति— १ ३ ३
प्रत्येक जीवको, चकोरको

जीवितान्तकालिक— १ (५०) २७
मरण समय होनेवाला

जैत्र— १ ५ ४
विजयशील

जैष्णव— ९ ३३ ३४४
चक्रवर्ति सम्वन्धी

[त]

तडिल्लताविलसित— १ (५२) २८
विजलीकी कौंध

तनु— १ (२६) १५
शरीर

तपनविम्ब— ५ (१९) २००
सूर्यमण्डल

तमोनाशन— २ २ २
अज्ञान और अन्धकारको नष्ट करने-
वाला

तरङ्गित— १ (१३) ६
वढा हुआ

तुला— २ ४८ ८२
तुलाराशि, उपमा

तुलिताङ्गज— १.६३ ४०
कामदेवकी तुलना करनेवाला

तारापथ— ४ (९५) १८०
आकाश

तारोल्लास— ६ २३ २३४
नक्षत्रोका उल्लास, अत्यधिक
आनन्द

तेजन— ४ (२३) १५०
वाँसके वृक्ष

त्रिदशद्विप— ४ ६२.१७७
ऐरावत हाथी

त्रिदशाधिकस्नेह— ४ (५८) १६५
देवोंका अधिक स्नेह, तीन वत्तियाँ
और तैल

त्रिदशोपसेवित— १ ४८ ३२
तीन वत्तियोंसे सेवित, देवोंसे
सेवित

त्रिदोषसभवामय— ६ (२) २२२
वात, पित्त और कफ इन तीन
दोषोसे होनेवाले रोग

त्रिवर्गप्राप्ति— ५ २२ २०८
धर्म, अर्थकामकी प्राप्ति

त्रिसाक्षिक— ७ ३९ २७६
इन्द्र, सिद्ध और आत्मा इन तीनकी
साक्षी पूर्वक

[द]

दक्षिणमरुद्वर— २ (३५) ६३
दक्षिण दिशासे आनेवाली मलय-
समीर, उदारहृदय-श्रेष्ठदेव

ददशूक— १ (७५) ३५
सर्प

दन्तावल— १ (४८) २५
हाथी

दम्भोलि— १ १० ५
वज्र

दर— १ (२६) १५
शख

दर्पककेलिकाल— २ ६८ ९५
कामक्रीडाके समय

दिनमणि— ४.३८ १६५
सूर्य

नरमणीद्ध– २ (९५) ८७
श्रेष्ठ मनुष्योंसे सुशोभित
नरसार्थ– ३ ४४ १२४
मनुष्य समूह
नरोचितवृत्ति– ४ (८४) १७६
असुन्दरवृत्तिवाला, मनुष्योके योग्य वृत्तिवाला
नवन– ४.(८२).१७५
स्तवन
नाग– ४ (७८) १७२
हाथी
नान्दी– ५ (३७) २१०
नाटकके प्रारम्भमें की जानेवाली स्तुति
नाभिजात– ४ (८४) १७६
असुन्दर, नाभिराजसे उत्पन्न
नालीक– ५ ४०.२१९
कमल
निचय– १ ६ ४
समूह
निधनद– १० (६) ३५०
मृत्युदायक
निधिराट्– ९ २३ ३३८
चक्रवर्ती
नियन्ता– ९ २१ ३३७
नियन्त्रण करनेवाला
नियुद्धशिल्प– १० २४ ३६०
वाहु युद्धसम्वन्धी चतुराई
निर्जरजन– ४ (२३) १४९
देवसमूह, तरुणसमूह
निर्दोष विष्वण– ८ (१५) २८५
निर्दोष आहार
निर्धूममंजरी– १ २२ १४
प्रज्वलित ज्वाला
निर्मलमानस– १ ६ ४
स्वच्छमनरूपी मानसरोवर
निर्वृतिमन्दिर– ६ ५ २२५
मोक्षस्थान
निर्वेग– ७ २३ २६९
वैराग्य
निलिम्प– ७ (५०) २७५
देव
निलिम्पकरमुक्त– १० (२८) ३५९
देवोंके हाथोंसे छोडे हुए
निलिम्पनटी– ८ (४९) ३०१
देवनर्तकी
निलिम्पपति– ४.(७२) १७१
इन्द्र
निशान्त– २ (१) ४८
प्रभात
निष्ठा– ५ ११ २०१
समाप्ति
निस्त्रिंशजा– ९ २२ ३३७
तलवारसे उत्पन्न, क्रूर मनुष्यसे उत्पन्न
नीप– २ (२१) ५८
कदमका वृक्ष
नीरजात– २ (२१) ५८
कमल
नीरजाक्षी– ७ २५ २७०
कमलनयना
नीराजित– २ ३२ ७५
आरती उतारा हुआ
नीरसहित– ३ (९२) १२९
जलसे सहित, नीरस मनुष्योंके लिए हितकर
नीरसत्व– ९ ११ ३३०
नीरसता, जलका सद्भाव
नीरेक– १० १३ ३५४
शकारहित
नीलाचल– १० (२४) ३५७
एक कुलाचल
नीवा– २ ६८ ९५
स्त्रीके अधोवस्त्रकी गाँठ
नेत्र– ६ ९ २२६
वस्त्र, नयन

[प]

पङ्क– ५ (१५) १९७
कीचड, पाप

[फ]

[व]

बाहा— ६ ३३ २४१
वाहु—भुजा

वृत्राहित— ७.(१२) २५७
इन्द्र

व्रह्म— ७.(१२).२५७
ज्योतिषशास्त्रका एक योग

[भ]

भंग— ५ (६) १९१
तरग, पराजय

भगवदास्थान— १० (४६) ३६४
भगवान्का समवसरण

भरत शास्त्र— ७ (५) २५४
नाट्य शास्त्र

भव— ८.२४ २९९
ससार, महादेव

भववाराशि— ४ ६३ १७८
ससार समुद्र

भुजान्तर— ४ (९५) १८०
वक्ष स्थल

भुवनपति— ५ (७) १९१
राजा, जलपति

भूदेव— १० ३० ३६४
ब्राह्मण

भ्रमरहित— १ १ १
भ्रमसे रहित, भ्रमरोके लिए हितकारी

भ्रमराजित— २.(१०) ५२
भ्रमरोसे अपराजित, भ्रम—भँवरके समान सुशोभित

[म]

मजुलकञ्ज— १ (१३) ७
मनोहर कमल

मजुमंजीर— १·(१७) ११
मनोहर नूपुर

मंजुलकुचोज्ज्वल— ७ (३) २५३
मजुल—मनोहर कुचोंसे उज्ज्वल, मजु—मनोहर लकुचोंसे उज्ज्वल

मजुलास्यविराजित— ४ (८२) १७५
मजु—मनोहर लास्य—नृत्यसे सुशोभित, मजुल—मनोहर आस्य—मुखसे सुशोभित

मण्डलाग्र— ६ (३३) २३४
तलवार

मदकण्डूल— १ (६१) ३०
मद की खुजली से युक्त

मदनसहकार— ३.(४२)१११
काम का सहायक

मधु— १०.२ ३४९
वसन्त

मधुकरविततिः— ५ २४ २११
भ्रमरपक्ति

मधुप— २ (९८) ८७
मद्यपायी, भ्रमर

मन्दगन्धवह— १ (१३) ९
मन्दवायु

मन्दराग— ४ (१०१) १८२
मन्द प्रीति का धारक, मन्दर + अग — मन्दर गिरि — सुमेरु

मन्दरोद्यान— १.(१०१) ४६
मेरु पर्वत का वगीचा

मन्द्रतम— १.(१७).११
गम्भीर—जोरदार

मन्मन— ६ (५०) २४२
बच्चो की अस्पष्ट वोली

मराली— ४ (२३) १४८
हसी

मलयज— २ ८ ५५
चन्दन

मल्लिकामतल्लिका— ३ ४२ १११
श्रेष्ठ मालती

महार्घ— ५ (३२) २०७
महामूल्य

महादर्श— ४.३४ १६२
अमावास्या, महादर्पण

महाप्रव्रज्या— ८ (७२) ३१८
दिगम्वर दीक्षा।

महारजत— ४ ६७ १८१
वहुत भारी चाँदी, सोना
महारजत महीध्र— १ (४३) २३
सोने का पर्वत-सुमेरु
महास्थपति— २ ५३ ८६
स्थपतिरत्न-प्रधानतक्षक
महिषी— ३ (१५) १०३
पट्टरानी, भैस
महीकमन— २ (१०) ५२
राजा
महोदर्क— २ ५० ६९
उत्कृष्ट फल से युक्त
माकन्दतरुषण्दोह— १ (१३) ९
आम के वृक्षो का समूह
मातुलानी— २ (६८) ७६
मामा की स्त्री
मातृचर— २ (५०) ६८
भूतपूर्व माता का जीव
मानस— ३ ५० १३०
मानसिक—मनसम्बन्धी
मानस— ५ ३३ २१५
मानससरोवर, चित्त
मार—काम २ २० ६४
मार— २ ८५ ८३
काम, मारने वाला
मार्गण— २ ५ ५१
बाण, गति आदि १४ मार्गणा
मीनकेतन— २ १० ५२
कामदेव
मृदुलतालङ्कृतमुख— १ १ १
कोमल लताओ से अलकृत अग्रभाग वाला
मृत्स्ना— ७ (१७) २५९
अच्छी मिट्टी
मुक्ता— ६ ५ २२५
मुक्तजीव, मोती
मुक्ताधिकशोभाचित— ७ (३) २५३
मोतियों की अधिक शोभा से अचित, मुक्तजीवों की अधिक शोभा से अचित
मुक्तावली— २ (५१)६९
एक व्रत
मुक्तोपम— १ (१६) ११
उपमारहित, मोतियो की उपमा से युक्त, मुक्त—सिद्ध परमेष्ठी की उपमा से सहित
मुनिविकर्तन— १ (५५) २७
मुनिरूपी सूर्य—श्रेष्ठ मुनि
मुष्टिसमीक— ९ ३२ ३४४
मुष्टि युद्ध
मेखला— ६ (२७) २३१
पर्वत की कटनी, कटिसूत्र—करधनी
मेचकपक्षक— ७ ४० २७७
कृष्णपक्ष
मेचकरुचि— ५ (३७) २०८
कृष्णकान्ति
मोचाफल— १ १० ५
केला
मोहक्ष्मावल्लभ— १ ५ ४
मोहरूपी राजा

[य]

यवनिकाविभ्रम— ५ (३९) २१०
परदा का सन्देह
युगायत— ६ (७३) २४८
युग—जुआरी के समान लम्बा
योगयोग्य— ८ (३५)२९३
ध्यानके योग्य

[र]

रक्त— २ ५ ५०
लाल, अनुराग से युक्त
रजतमहीधर— १ (४३)२३
विजयार्ध पर्वत
रजताचल— १ (१३) ९
विजयार्ध पर्वत
रजोराजी— ९ १८ ३३६
धूलिपङ्क्ति
रत्नकोटीर कोटि— ६ १८ २३१
रत्नमय मुकुट की कलँगी

रत्नत्रय– १ ५.४
सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्-चारित्र

रत्नप्रचय– १.१३.१०
रत्नोका समूह

रत्नावलि– २.(५) ७०
एक तप

रथकडचा– १० (२२) ३५६
रथोका समूह

रशना– २ (९८).८९
मेखला

रसज्ञा– १ ९ ५
जिह्वा

राका कोकरिपु– ३.४९ १२८
पूर्णिमाका चन्द्रमा

राका कोकारि– ४ ४५ १६८
पूर्णिमाका चन्द्रमा

राकाहिमकर– ६ २१.२३३
पूर्णिमाका चन्द्रमा

राकेन्दुबिम्बानना– १ ३६ २४
पूर्णचन्द्रमुखी

राजन्– १ (२६) १६
चन्द्रमा, नृपति

राजता– ६ (२७) २३१
चन्द्रता, नृपतिता

राजराज– १० ४ ३५१
राजाधिराज चक्रवर्ती भरत

राजहंसमनोरमा– ३ (४२) १११
राजहस पक्षियोंमे मनोहर, श्रेष्ठ राजाके मनको हरनेवाली

राजहंस– १ १६ ११
राजहसपक्षी, श्रेष्ठ राजा

राजा– ४ (३२) १५१
राजा, चन्द्रमा

रीति– ४ ६७ १८१
पीतल, प्रचार

[ल]

लज्जायवनिका– २ १५ ६०
लज्जारूपी परदा

लतान्त– १ (३१) १८
पुष्प

ललिताङ्गचर– २ ३६ ७६
पूर्वका ललिताङ्ग

लवणतरङ्गिणीरमण– १ (१३) ७
लवणसमुद्र

लेख– ८ २४ २९६
देव

लेखस्त्री– ४ ३९ १६५
देवी

लेखाचल– १ २१ १४
सुमेरु

लोलम्ब– १ (१३) ७
भ्रमर

लोलम्ब निकुरम्ब– १ (९१) ४१
भ्रमरसमूह

लोलम्बकेशी– ४ ३६ १६३
काले केशोवाली स्त्री

लोलाक्षी– २ (५) ५०
चपल नेत्रोवाली स्त्री

[व]

वक्षोरुह– २ (१०) ५३
स्तन

वचोहर– १० १३ ३५४
दूत

वज्रकाण्ड– ९ (१८) ३३२
चक्रवर्तीका धनुष

वज्रकिरीट– १० ६ ३५१
हीरोका मुकुट

वज्रधर– ५ (४१) २११
इन्द्र

वज्री– २ २ ४९
इन्द्र

वदनविधु– १ (१३) ९
मुखरूपी चन्द्रमा

वनवासी– ६ (५) २२४
जलमें निवास करनेवाला, वनमें निवास करनेवाला

विलक्षण– ४.(८४).१७६
लक्षणोसे रहित, अद्भुत

विकासमन्दिर– ६.(३६).२३५
क्रीडाभवन

विविधव्याहारपेशला– ४.(४१).१६१
नाना प्रकारके शब्दोमें कुशल

विवेकवार्ता– १.(२६) १५
भेदवार्ता, हिताहितका ज्ञान

विशङ्कट– २ (१).४८
विशाल

विशासित कुशासन– १.४ ३
मिथ्यामतको नष्ट करनेवाला

विशिख– ९ ३४.३४५
बाण

विशेषकायमाण– ८.(१७)२८६
तिलकके समान आचरण करनेवाला

विश्व– ४ ३८.१६५
ज्योतिषशास्त्रमे प्रसिद्ध महायोग

विष– २ (८५).८३
जल, जहर

विषराशि– ५.(८).१९३
जहरकी राशि, जलकी राशि

विषराशि– ७.२६.२७०
समुद्र

विष्वाण– ३ ५०.१३०
भोजन

विस्रम्भ– १ (८२) ३७
विश्वास

वृत्त– १ १२ ६
छन्द

वृत्ति– ७ ९ २५८
आजीविका

वृन्दारकवृन्द– ४ (८२).१७४
देवसमूह

व्यजनपवनपोत– २ ८ ५५
पखेकी मन्दवायु

व्याकीर्ण– ५ २ १८९
बिखरे हुए

व्याघ्रचर– ६.२२ २३३
पहलेका व्याघ्र

व्यातत– ५.१.१८९
विस्तृत

व्यातुक्षिका– ४.(४१).१६१
फाग

व्यामुक्त– ७.(१७) २५९
लटकते हुए

व्यालोल– ४.(६६).१६९
चंचल

व्याहूत– १०.३६ ३४६
बुलाया हुआ

[श]

शतमन्यु– ६ ३१ २४०
सैकडो शोकोसे सहित, इन्द्र

शम्पावल्ली– २.६६.९४
बिजलीरूपी लता

शम्बर– ४.४१.१६७
जल

शवरारि– ४.४१.१६७
काम, जलके शत्रु

शर्करा– ३ (४५) ११३
धूलि

शर्करा– ३ (४५) ११३
शक्कर

शर्मभोगेच्छा– १ ५२ ३४
सुख भोगकी इच्छा

शातकुम्भमय– ६.(२२) २३०
सुवर्णमय

शाश्वतपद– १.(५७) २९
मोक्ष

शिखी– २ (८५) ८३
मयूर, अग्नि

शीतरोचिष्– ६ २८ २३८
चन्द्रमा

शुक्तिकाशकल– ५ (१९) १९९
सीप के टुकडे

शुचि– २ (८५) ८३
उज्ज्वल, अग्नि

शुद्धान्त– १.३१.१८
अन्त.पुर

शुभतरलाक्ष– २ (१०).५३
अत्यन्त शुभ लाक्षा–महावरसे युक्त, शुभ और चचल नेत्रोसे युक्त

श्यामा– ६ २७ २३७
यौवनवती

श्रितजनतति– १ १ १
आश्रित जनसमूह

श्रीपति– ६ १० २२७
भगवान् वृपभदेव

श्रीमान्– १ २ २
शोभासहित, अनन्तचतुष्टयरूप लक्ष्मी से युक्त

श्रुतज्ञान– २ (३१) ६२
एक तप

श्वशुर्य– २ (७०) ७८
श्वसुर का पुत्र

[ष]

षडङ्गवाहिनी– १० २२ ३५६
हाथी, घोडा, रथ, पयादे, वैल और गन्धर्व इन छह की सेना

[स]

सककलकल– ६ (२६) ३२२
कलकल शब्द से सहित, सकल-कलाओ से सहित

सकलभुवनभृत्– ५ (१५) १९७
समस्त मेघ, समस्त राजा

सकलमहीभृन्मस्तक– ६ (५) २२४
समस्त पर्वतो के शिखर, समस्त राजाओ के मस्तक

सकललेख– १० (६५) ३७१
समस्त देव

सज्जघनोज्ज्वल– २ ६.५२
सजल मेघों के समान शोभमान, सुन्दर नितम्बो से सुशोभित

सज्जनक्रमकर– ५ (८) १९३
सज्जनो के क्रम को करने वाला, तैयार मगर-मच्छो से युक्त

सत्पथ– १ ३ ३
समीचीन मार्ग, आकाश

सत्पति– ३ (११५) १३६
नक्षत्रो का पति–चन्द्रमा, सज्जनों का पति

सदागतिस्वभाव– ४ ४३ १६८
वायु के समान स्वभाव वाला, सदा + अगति–निर्वाण स्वभाव वाला

सदानन्दी– ५.३२ २१४
सदा हर्षित रहने वाला, सत्पुरुषोंको आनन्दित करने वाला

सदापरागरुचिशोभित– ६ (५).२२४
सर्वदा मकरन्दकी कान्तिसे शोभित, सदा + अपराग—वीत-रागतासे शोभित

सद्दर्शनतिग्मरश्मि– ३ ३० ११६
सम्यग्दर्शन रूपी सूर्य

सद्वृत्तरत्न– ३ (९) ९९
सदाचाररूपी रत्नसे सुशोभित, सत्—रेखादि दोषोंसे रहित गोल रत्नोंसे सुशोभित

सद्रूपशोभित– १ (१०१) ४६
सत्-उत्तम रूपसे शोभित, सत्-द्रु-उप—शोभित-अच्छे वृक्षोंसे सुशो-भित।

सपर्या– १ (६६) ३३
पूजा

सप्तपर्णोपशोभित– ८ (४५) २९९
सात पत्तोंसे शोभित, सप्तपर्ण नामक वृक्षोसे शोभित

समरेखिका– १ ३४ २०
नायिका, तलवार

समस्तहरित्– १० २६ ३६१
समस्त दिशाएँ

समा–वर्ष ३ ५१ १३०

समासीन– १ १ १
समवसरणमें स्थित

समीरकिशोर– १ (९१) ४१
मन्द वायु

समुन्नतवंशपोत– ४.(८४) १७५
ऊँचे बाँससे युक्त जहाज, उच्च-कुलीन बालक
सर–हार १ (२६) १५
सरसत्व–सरसता, सजलता ९.११ ३३०
सरःस्थिति–सरस्थिति– ४.३२ १६१
सरोवरकी स्थिति, हारकी स्थिति
सर्वतोमुख– ४ (२३).१५०
पानी, सब ओर फैलने वाली
सर्वतोभद्र–एक तप २ (५०) ६९
सहकार–सुगन्धित आम ३ (४२.)१११
सहस्रनेत्र–इन्द्र ५.(३७) २०९
संक्रन्दन–इन्द्र १ (७१) ३४
सग्रामसिंह–युद्धमे शूर ६.४६ २४९
संजवन–वेग ५ (१९) २००
संजरीजृम्भमाण–बढता हुआ १.(१३) ९
संत्रासन–भय देने वाला १ ४.३
संवेग–संसारसे भय ७ २३ २७९
सागर–असख्यात वर्ष ३ (२१)१०४
साधुचक्र– २.(९८) ८८
सज्जनोका समूह, उत्तम चकवा
सामि–अल्प १०.८ ३५२
सामोद–हर्ष सहित, गन्ध सहित १ १ १
सार्वभौम– ३ ४३.१२४
दिग्गज विशेष, समस्त भूमिका स्वामी
सिकता–बालू ४ ३६ १६३
सितच्छद–हस ९ ३ ३२२
सिता–मिश्री ४ ३६ १६३
सिद्धमातृका–वर्णमाला ७ (५) २५४
सिद्धार्थवृक्ष– ८.(५२) ३०४
समवशरण के वृक्ष विशेप
सिद्धार्चा सनाथ– ८ (५८)३०४
सिद्ध प्रतिमाओ से सहित
सिन्धुरन्ध्र–हाथी ३ ८ १०२
सिंहनिष्क्रीडित–एक व्रत २ ५० ६९
सुत्रामा–इन्द्र ४ १८ १४८
सुत्रामचापोत्कर– ८ २८ ३००
इन्द्रधनुषो का समूह
सुदती–सुन्दर दाँतो वाली स्त्री २.२२ ५९
सुदृश्– १ १६ ११
सम्यग्दृष्टि, सुन्दर नेत्रो वाली स्त्रियाँ
सुधा– ५ १०.१९९
चूना–कलई
सुधा–अमृत ३ (४५).११३
सुधावदाता– २ (५) ५०
चूना के समान उज्ज्वल
सुधासूति–चन्द्रमा २ ७१ ९६
सुपर्वनदी–गङ्गा नदी १.२१ १४
सुपर्वपर्वत–सुमेरुपर्वत ३.(४५).११२
सुपर्वराज– १.(१०१).४६
पूर्णिमा का चन्द्र, इन्द्र
सुपर्वराज–इन्द्र ४ ५४ १७२
सुपर्वाचित– ७ (१९)२६२
देवो से पूजित, उत्तम परतो से सहित
सुप्रतीक– ३ ४३ १२४
दिग्गज विशेष, सुन्दर शरीर वाला
सुमनस्–देव, पुष्प १ १ १
सुमनोजात– १ ७२ ४५
पुष्पसमूह, विद्वत्समूह, उत्तम काम-देव, देव समूह
सुमनिकर–पुष्पसमूह ३ १५.१०२
सुमचाप–कामदेव २ ४१ ७९
सुमनोमाला– ३ (१०५) १३२
फूलो की माला, विद्वानो का समूह
सुमित्रानन्दन– ६ (३३) २३४
उत्तम मित्रो को आनन्द देने वाला, सुमित्रा का पुत्र–लक्ष्मण
सुनाशीर शरासन– ७(१७) २५९
इन्द्रधनुष
सुरगुरु प्रतिच्छन्द– ८ (१९).२८७
बृहस्पति के तुल्य
सुरतानन्द– ४ (२३) १४९
सुरता–देवत्वका आनन्द, सुरत–संभोगका आनन्द
सुरतरुचिरलीलास्पद– ७ (३) २५३
सुरतरु–कल्पवृक्षोकी चिरलीलाका स्थान, सुरत–सभोगकी रुचिर–मनोहर लीलाका स्थान

[ह]

●

BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪTHA

MŪRTIDEVĪ JAINA GRANTHAMĀLĀ

General Editors :

Dr. H. L. JAIN, Jabalpur : Dr A. N. UPADHYE, Kolhapur

The Bhāratīya Jñānapītha, is an Academy of Letters for the advancement of Indological Learning In pursuance of one of its objects to bring out the forgotten, rare unpublished works of knowledge, the following works are critically or authentically edited by learned scholars who have, in most of the cases, equipped them with learned Introductions, etc. and published by the Jñānapītha

Mahābandha or the Mahādhavalā

This is the 6th Khanda of the great Siddhānta work *Ṣatkhaṇḍāgama* of Bhūtabali The subject matter of this work is of a highly technical nature which could be interesting only to those adepts in Jaina Philosophy who desire to probe into the minutest details of the Karma Siddhānta The entire work is published in 7 volumes The Prākrit Text which is based on a single Ms. is edited along with the Hindī Translation Vol I is edited by Pt. S C DIWAKAR and Vols II to VII by Pt. PHOOLACHANDRA Prākrit Grantha Nos. 1, 4 to 9 Super Royal Vol I · pp 20 + 80 + 350; Vol. II pp 4 + 40 + 440, Vol III · pp 10 + 496, Vol IV · pp 16 + 428, Vol. V pp. 4 + 460 , Vol. VI . pp 22 + 370 ; Vol VII : pp 8 + 320. First edition 1947 to 1958. Vol I Second edition 1966 Price Rs. 15/– for each vol.

Karalakkhaṇa

This is a small Prākrit Grantha dealing with palmistry just in 61 gāthās The Text is edited along with a Sanskrit Chāyā and Hindī Translation by Prof. P K MODI Prākrit Grantha No. 2. Third edition. Crown pp 48 Third edition 1964 Price Rs 1/50.

Madanaparājaya

An allegorical Sanskrit Campū by Nāgadeva (of the Saṁvat 14th century or so) depicting the subjugation of Cupid Critically edited by Pt RAJKUMAR JAIN with a Hindī Introduction, Translation, etc · Sanskrit Grantha No 1. Super Royal pp 14 + 58 + 144. Second edition 1964 Price Rs 8/-.

Kannada Prāntīya Tāḍapatrīya Grantha-sūcī ·

A descriptive catalogue of Palmleaf Mss. in the Jaina Bhaṇḍāras of Moodbidri, Karkal, Aliyoor, etc Edited with a Hindī Introduction, etc. by Pt K BHUJABALI SHASTRI. Sanskrit Grantha No. 2 Super Royal pp. 32 + 324 First edition 1948 Price Rs 13/-.

Tattvārtha-vṛtti

This is a critical edition of the exhaustive Sanskrit commentary of Śrutasāgara (c 16th century Vikrama Samvat) on the Tattvārthasūtra of Umāsvāti which is a systematic exposition in Sūtras of the fundamentals of Jainism The Sanskrit commentary is based on earlier commentaries and is quite elaborate and thorough. Edited by Pts MAHENDRAKUMAR and UDAYACHANDRA JAIN Prof MAHENDRAKUMAR has added a learned Hindī Introduction on the exposition of the important topics of Jainism The edition contains a Hindī Translation and important Appendices of referential value Sanskrit Grantha No 4 Super Royal pp. 108 + 548 First edition 1949 Price Rs 16/- (out of print)

Ratna Mañjūṣā with Bhāṣya

An anonymous treatise on Sanskrit prosody Edited with a critical Introduction and Notes by Prof. H D VELANKAR Sanskrit Grantha No 5. Super Royal pp 8 + 4 + 72. First edition 1949. Price Rs. 3/-.

Nyāyaviniścaya-vivarana

The Nyāyaviniścaya of Akalanka (about 8th century A. D) with an elaborate Sanskrit commentary of Vādirāja (c 11th century A D.) is a repository of traditional knowledge of Indian Nyāya in general and of Jaina Nyāya in particular Edited with Appendices, etc by Pt MAHENDRAKUMAR JAIN Sanskrit Grantha Nos. 3 and 12 Super Royal Vol I pp 68 + 546 , Vol II pp 66 + 468 First edition 1949 and 1954 Price Rs 18/- each

Kevalajñāna-Praśna-cūḍāmaṇi

A treatise on astrology, etc Edited with Hindī Translation, Introduction, Appendices, Comparative Notes, etc by Pt NEMICHANDRA JAIN Sanskrit Grantha No 7 Second edition 1969 Price Rs 5/-

Nāmamālā

This is an authentic edition of the Nāmamālā, a concise Sanskrit Lexicon of Dhanañjaya (c 8th century A D) with an unpublished Sanskrit commentary of Amarakīrti (c 15th century A D) The Editor has added almost a critical Sanskrit commentary in the form of his learned and intelligent foot-notes Edited by Pt SHAMBHUNATH TRIPATHI, with a Foreword by Dr P L VAIDYA and a Hindī Prastāvanā by Pt MAHENDRAKUMAR The Appendix gives Anekārtha nighaṇṭu and Ekākṣarī-kosa Sanskrit Grantha No 6 Super Royal pp 16 + 140 First edition 1950 Price Rs 4/50

Samayasāra

An authoritative work of Kundakunda on Jaina spiritualism Prākrit Text, Sanskrit Chāyā Edited with an Introduction, Translation and Commentary in English by Prof. A CHAKRAVARTI The Introduction is a masterly dissertation and brings out the essential features of the Indian and Western thought on the

all- important topic of the Self English Grantha No 1. Super Royal pp. 10 + 162 + 244. Second edition 1971. Price Rs. 15/-.

Jatakatthakatha :

This is the first Devanāgarī edition of the Pāli Jātaka Tales which are a storehouse of information on the cultural and social aspects of ancient India Edited by Bhikshu DHARMARAKSHITA. Pāli Grantha No 1, Vol 1. Super Royal pp 16 + 384. First edition 1951. Price Rs. 9/-

Kural or Thirukkural :

An ancient Tamil Poem of Thevar It preaches the principles of Truth and Nonviolence. The Tamil Text and the commentary of Kavirājapandit Edited by PROF A. CHAKRAVARTI with a learned Introduction in English. Tamil Series No. 1 Demy pp. 8 + 36 + 440. First edition 1951 Price Rs. 12/- (out of print)

Mahapurana :

It is an important Sanskrit work of Jinasena-Gunabhadra, full of encyclopaedic information about the 63 great personalities of Jainism and about Jaina lore in general and composed in a literary style. Jinasena (837 A. D.) is an outstanding scholar, poet and teacher; and he occupies a unique place in Sanskrit Literature. This work was completed by his pupil Gunabhadra Critically edited with Hindī Translation, Introduction, Verse Index, etc by PT. PANNALAL JAIN. Sanskrit Grantha Nos 8, 9 and 14 Super Royal Vol I. pp 8 + 68 + 746, Vol II pp 8 + 556, Vol III pp 24 + 708, Second edition 1963-68. Price Rs 20/- each

Vasunandi Śrāvakācāra :

A Prākrit Text of Vasunandi (c Samvat first half of 12th century) in 546 gāthās dealing with the duties of a householder, critically edited along with a Hindī Translation by PT HIRALAL JAIN The Introduction deals with a number of important topics about the author and the pattern and the sources of the contents of this Śrāvakācāra There is a table of contents There are some Appendices giving important explanations, extracts about Pratiṣṭhāvidhāna, Sallekhanā and Vratas There are 2 Indices giving the Prākrit roots and words with their Sanskrit equivalents and an Index of the gāthās as well Prākrit Grantha No. 3. Super Royal pp 230. First edition 1952. Price Rs. 6/-.

Tattvārthavārttikam or Rājavārttikam

This is an important commentary composed by the great logician Akalanka on the Tattvārthasūtra of Umāsvāti The text of the commentary is critically edited giving variant readings from different Mss. by Prof MAHENDRAKUMAR JAIN Sanskrit Grantha Nos. 10 and 20 Super Royal Vol I. pp 16 + 430, Vol. II pp 18 + 436 First edition 1953 and 1957 Price Rs 12/- for each Vol

Jinasahasranāma

It has the Svopajña commentary of Paṇḍita Āśādhara (V S 13th century) In this edition brought out by PT HIRALAL a number of texts of the type of

Jinasahasranāma composed by Āśādhara, Jinasena, Sakalakīrti and Hemacandra are given Āśādhara's text is accompanied by Hindī Translation Śrutasāgara's commentary of the same is also given here There is a Hindī Introduction giving information about Āśādhara, etc. There are some useful Indices Sanskrit Grantha No 11 Super Royal pp 288 First edition 1954 Price Rs 6/-

Purānasāra-Samgraha

This is a Purāna in Sanskrit by Dāmanandi giving in a nutshell the lives of Tīrthamkaras and other great persons The Sanskrit text is edited with a Hindī Translation and a short Introduction by Dr G C JAIN Sanskrit Grantha Nos 15 and 16 Crown Part I pp 20 + 198; Part II pp. 16 + 206 First edition 1954 and 1955 Price Rs 5/- each. (out of print)

Sarvārtha-Siddhi ·

The Sarvārtha-Siddhi of Pūjyapāda is a lucid commentary on the Tattvārthasūtra of Umāsvāti called here by the name Grdhrapiccha It is edited here by PT PHOOLCHANDRA with a Hindī Translation, Introduction, a table of contents and three Appendices giving the Sūtras, quotations in the commentary and a list of technical terms Sanskrit Grantha No 13 Double Crown pp 116 + 506, Second edition 1971, Price Rs 18/-

Jainendra Mahāvrtti

This is an exhaustive commentary of Abhayanandi on the *Jainendra Vyākarana*, a Sanskrit Grammar of Devanandi alias Pūjyapāda of circa 5th-6th century A. D Edited by Pts S N TRIPATHI and M CHATURVEDI There are a Bhūmikā by Dr V S AGRAWALA, *Devanandikā Jainendra Vyākarana* by PREMI and *Khilapāṭha* by MIMĀMSAKA and some useful Indices at the end Sanskrit Grantha No 17 Super Royal pp 56 + 506 First edition 1956. Price Rs 18/-

Vratatithinirnaya

The Sanskrit Text of Sinhanandi edited with a Hindī Translation and detailed exposition and also an exhaustive Introduction dealing with various Vratas and rituals by Pt NEMICHANDRA SHASTRI Sanskrit Grantha No 19. Crown pp 80 + 200 First edition 1956 Price Rs. 5/-

Pauma-cariu

An Apabhraṁśa work of the great poet Svayambhū (677 A D). It deals with the story of Rāma The Apabhraṁsa text with Hindī Translation and Introduction of Dr DEVENDRAKUMAR JAIN, is published in 5 Volumes. Apabhraṁśa Grantha Nos 1, 2, 3, 8 & 9 Crown Vol I pp 28 + 333, Vol II · pp 12 + 377, Vol III pp 6 + 253, Vol. IV pp 12 + 342, Vol V pp 18 + 354 First edition 1957 to 1970 Price Rs 5/- for each vol

Jīvamdhara-Campū :

This is an elaborate prose Romance by Haricandra written in Kāvya style dealing with the story of Jīvaṁdhara and his romantic adventures It has both the features of a folk-tale and a religious romance and is intended to serve also as a medium of preaching the doctrines of Jainism The Sanskrit Text is edited

by PT PANNALAL JAIN along with his Sanskrit Commentary, Hindī Translation and Prastāvanā There is a Foreword by PROF. K K HANDIQUI and a detailed English Introduction covering important aspects of Jīvaṁdhara tale by Drs A N UPADHYE and H. L. JAIN. Sanskrit Grantha No. 18 Super Royal pp 4 + 24 + 20 + 344 First edition 1958 Price Rs 15/-.

Padma-purāna

This is an elaborate Purāna composed by Ravisena (V S 734) in stylistic Sanskrit dealing with the Rāma tale It is edited by PT. PANNALAL JAIN with Hindī Translation, Table of contents, Index of verses and Introduction in Hindī dealing with the author and some aspects of this Purāṇa Sanskrit Grantha Nos 21, 24, 26 Super Royal Vol I : pp 44 + 548; Vol. II : pp 16 + 460, Vol. III : pp. 16 + 472. First edition 1958-1959 Price Vol. I Rs 16/-, Vol II Rs. 16/-, Vol. III Rs. 13/-

Siddhi-viniścaya ·

This work of Akalankadeva with Svopajñavrtti along with the commentary of Anantavīrya is edited by Dr MAHENDRAKUMAR JAIN. This is a new find and has great importance in the history of Indian Nyāya literature. It is a feat of editorial ingenuity and scholarship The edition is equipped with exhaustive, learned Introductions both in English and Hindi, and they shed abundant light on doctrinal and chronological problems connected with this work and its author. There are some 12 useful Indices Sanskrit Grantha Nos. 22, 23. Super Royal Vol I pp 16 + 174 + 370 , Vol II · pp 8 + 808 First edition 1959. Price Rs 20/- and Rs 16/-

Bhadrabāhu Saṁhitā

A Sanskrit text by Bhadrabāhu dealing with astrology, omens, portents, etc. Edited with a Hindī Translation and occasional Vivecana by PT NEMICHANDRA SHASTRI There is an exhaustive Introduction in Hindī dealing with Jain Jyotisa and the contents, authorship and age of the present work Sanskrit Grantha No. 25 Super Royal pp 72 + 416. First edition 1959. Price Rs 14/-.

Pañcasamgraha .

This is a collective name of 5 Treatises in Prākrit dealing with the Karma doctrine the topics of discussion being quite alike with those in the Gommatasāra, etc. The Text is edited with a Sanskrit Commentary, Prākrit Vrtti by PT HIRALAL who has added a Hindī Translation as well A Sanskrit Text of the same name by one Śrīpāla is included in this volume There are a Hindī Introduction discussing some aspects of this work, a Table of contents and some useful Indices Prākrit Grantha No 10 Super Royal pp 60 + 804 First edition 1960 Price Rs 21/-

Mayaṇa-parājaya-cariu

This Apabhraṁśa Text of Harideva is critically edited along with a Hindī Translation by PROF Dr HIRALAL JAIN. It is an allegorical poem dealing with the defeat of the god of love by Jina This edition is equipped with a learned

Introduction both in English and Hindi The Appendices give important passages from Vedic, Pāli and Sanskrit Texts There are a few explanatory Notes, and there is an Index of difficult words. Apabhraṁśa Grantha No 5. Super Royal pp. 88 + 90 First edition 1962 Price Rs 8/-

Harivaṁśa Purāṇa ·

This is an elaborate Purāna by Jinasena (Śaka 705) in stylistic Sanskrit dealing with the Harivaṁśa in which are included the cycle of legends about Kṛṣna and Pāndavas The text is edited along with the Hindī Translation and Introduction giving information about the author and this work, a detailed Table of contents and Appendices giving the verse Index and an Index of significant words by PT PANNALAL JAIN Sanskrit Grantha No 27 Super Royal pp 12+16+812+160 First edition 1962 Price Rs 25/-

Karmaprakṛti

A Prākrit text by Nemicandra dealing with Karma doctrine, its contents being allied with those of Gommatasāra. Edited by PT. HIRALAL JAIN with the Sanskrit commentary of Sumatikīrti and Hindī Ṭīkā of Pandita Hemarāja, as well as translation into Hindī with Viśeṣārtha Prākrit Grantha No. 11. Super Royal pp 32 + 160 First edition 1964 Price Rs 8/-.

Upāsakādhyayana

It is a portion of the Yaśastilaka-campū of Somadeva Sūri It deals with the duties of a householder Edited with Hindī Translation, Introduction and Appendices, etc by Pt KAILASHCHANDAR SHASTRI Sanskrit Grantha No. 28 Super Royal pp 116 + 539. First edition 1964 Price Rs. 16/-

Bhojacaritra

A Sanskrit work presenting the traditional biography of the Paramāra Bhoja by Rājavallabha (15th century A D.) Critically edited by Dr B CH CHHABRA, Jt Director General of Archaeology in India and S SANKARNARAYANA with a Historical Introduction and Explanatory Notes in English and Indices of Proper names Sanskrit Grantha No. 29. Super Royal pp 24 + 192 First edition 1964 Price Rs 8/-

Satyaśāsana-parīkṣā ·

A Sanskrit text on Jain logic by Ācārya Vidyānanda critically edited for the first time by Dr GOKULCHANDRA JAIN It is a critique of selected issues upheld by a number of philosophical schools of Indian Philosophy There is an English compendium of the text, by Dr NATHMAL TATIA Sanskrit Grantha No 30. Super Royal pp 56 + 34 + 62. First edition 1964 Price Rs 5/-

Karakanda-cariu

An Apabhraṁśa text dealing with the life story of king Karakanda, famous as 'Pratyeka Buddha' in Jaina & Buddhist literature Critically edited with Hindī & English Translations, Introductions, Explanatory Notes and Appendices, etc by Dr HIRALAL JAIN Apabhraṁśa Grantha No 4. Super Royal pp 64 + 278 1964. Price Rs 15/-

Sugandha-dasamī-katha :

This edition contains Sugandha-daśamī-kathā in five languages, viz. Apabhramśa, Sanskrit, Gujarātī, Marāthī and Hindī, critically edited by Dr HIRALAL JAIN Apabhramśa Grantha No 6 Super Royal pp. 20 + 26 + 100 + 16 and 48 Plates First edition 1966. Price Rs 11/-

Kalyānakalpadruma :

It is a Stotra in twenty five Sanskrit verses Edited with Hindī Bhāṣya and Prastāvanā, etc by Pt JUGALKISHORE MUKHTAR Sanskrit Grantha No 32. Crown pp 76. First edition 1967. Price Rs 1/50.

Jambū sāmi cariu :

This Apabhramśa text of Vīra Kavi deals with the life story of Jambū Svāmi a historical Jaina Ācārya who passed in 463 A D The text is critically edited by Dr VIMAL PRAKASH JAIN with Hindī translation, exhaustive introduction and indices, etc Apabhramśa Grantha No 7 Super Royal pp. 16 + 152 + 402 First edition 1968 Price Rs. 15/-

Gadyacintāmani :

This is an elaborate prose romance by Vādībha Singh Sūri, written in Kāvya style dealing with the story of Jīvamdhara and his romantic adventures The Sanskrit text is edited by Pt PANNALAL JAIN along with his Sanskrit Commentary, Hindī Translation Prastāvanā and indices, etc. Sanskrit Grantha No 31 Super Royal pp 8 + 40 + 258 First edition 1968 Price Rs 12/-

Yogasāra Prābhrta :

A Sanskrit text of Amitagati Ācārya dealing with Jaina Yoga vidyā Critically edited by Pt JUGALKISHORE MUKHTAR with Hindī Bhāṣya, Prastāvanā, etc Sanskrit Grantha No 33 Super Royal pp 44 + 236 First edition 1968 Price Rs 8/-

Karma-Prakrti

It is a small Sanskrit text by Abhayacandra Siddhāntacakravartī dealing with the Karma doctrine Edited with Hindī translation, etc by Dr. GOKUL CHANDRA JAIN Sanskrit Grantha No. 34 Crown pp. 92 First edition 1968. Price Rs 2/-

Dvisamdhāna Mahākāvya

The Dvisamdhāna Mahākāvya also called Rāghava-Pāndavīya of Dhanamjaya is perhaps one of the oldest if not the only oldest available Dvisamdhāna Kāvya Edited with Sanskrit commentary of Nemicandra and Hindī translation by Prof KHUSHALCHANDRA GORAWALA There is a learned General Editorial by Dr. H L Jain and Dr A N Upadhye. Sanskrit Grantha No 35 Super Royal pp 32 + 404, First edition 1970 Price Rs. 15/-.

Saddarśanasamuccaya

The earliest known compendium giving authentic details about six Darsanas, i.e six systems of Indian Philosophy by Ācārya Haribhadra Sūri. Edited with the

commentaries of Gunaratna Sūri and Somatilaka and with Hindī translation, Appendices, etc by Pt Dr MAHENDRA KUMAR JAINA NYĀYĀCĀRYA There is a Hindī Introduction by Pt D. D MALVANIA Sanskrit Grantha No. 36 Super Royal pp 22 + 536 First edition 1970 Price Rs 22/-

Śākaṭāyana Vyākaraṇa with Amoghavṛtti

An authentic Sanskrit Grammar with exhaustive auto-commentary Edited by PT. ŚAMBHU NĀTHA TRIPĀTHI There is a learned English Introduction by PROF. Dr R BIRWE of Germany, and some very useful Indices, etc. Sanskrit Grantha No. 37. Super Royal pp 14 + 127 + 488. First edition 1971. Price Rs 32/-.

Jainendra-Siddhānta Kośa

It is an Encyclopaedic work of Jaina technical terms and a source book of topics drawn from a large number of Jaina Texts Extracts from the basic sources and their translations in Hindī with necessary references are given Some Twenty-one thousand subjects are delt in four vols Compiled and edited by Śrī Jinendra Varnī. Two volumes are published and as Sanskrit Grantha No 38 and 40 Super Royal pp Vol I pp 516, Vol II pp 642 First edition 1970-71 Price Vol I Rs 50/-, Vol II Rs 55/- Advance Price for full set Rs 150/-.

Dharmaśarmābhyudaya

This is a Sanskrit Mahākāvya of very high standard by Mahākavi Haricandra. Edited with Sanskrit commentary, Hindī translation, Introduction and Appendices, etc. by PT PANNALAL JAIN Sanskrit Grantha No. 39 Super Royal pp. 30 + 397 First edtion 1971 Price Rs 20/-

Nayacakra (Dravyasvabhāvaprakāśaka)

This is a Prakrit text by Śrī Māilla Dhavala dealing with the Jaina Theory of Naya covering all the other topic delt in the Ālāpapaddhati. Edited with Hindī translation and useful indices, etc by PT KAILASH CHANDR SHASTRI In this edition Ālāpapaddhati of Devasena and Nayavivarana from Tattvārthavārtika are also included with Hindī translations Prakrit Grantha No. 12 Super Royal pp 50 + 276. First edition 1971 Price Rs 15/-

Dakṣina Bhārata Men Jaina Dharma

A study in the South Indian Jainism by PT KAILASH CHANDRA SHASTRI. Hindī Grantha No 12. Demy pp 209 First edition 1967 Price Rs. 7/-

Sanskrit Kāvya ke Vikāsa men Jaina Kaviyon kā Yogadāna

A study of the contribution of Jaina Poets to the Development of Sanskrit Kāvya literature by Dr NEMI CHANDRA SHASTRI Hindī Grantha No 14. Demy pp 32 + 684 First edition 1971 Price Rs. 30/-

For Copies Please write to

BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪṬHA,
3620/21, Netaji Subhash Marg, Dariyaganj, Delhi-6